श्रीभाईजी-
एक अलौकिक विभूति

रस-सिद्ध-संत भाईजी
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
एवं
संतप्रवर सेठजी श्रीजयदयालजी
गोयन्दका का जीवन-दर्शन

श्रीभाईजी——एक अलौकिक विभूति

(रस–सिद्ध–संत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं संतप्रवर सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका जीवन दर्शन)

मूल संग्रहकर्त्ता

गोलोकवासी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी

संकलन–संयोजन

श्यामसुन्दर दुजारी

SHRI BHAIJI--EK ALUKIK VIBHUTI

प्रकाशक
गीतावाटिका प्रकाशन
पो० गीतावाटिका
गोरखपुर—२७३००६
✆ ३१२४४२
E-MAIL-rasendu@vsnl.com

प्रथम संस्करण—श्रीराधाष्टमी वि० सं० २०५७
(६ सितम्बर सन् २०००)

मूल्य — नब्बे रुपये

।। श्रीहरिः ।।

नम्र निवेदन

पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी रसनिमग्नदृष्टि तथा उनके रसार्द्र हृदयके बारेमें कुछ भी लिखना एक अनाधिकार चेष्टा है। सारा भारतवर्ष उनका चिर ॠणी रहेगा। अपनी लेखनी पवित्र करनेके लिये कुछ लिख रहा हूँ। श्रीभाईजीने अपने साहित्यकी रचना किस मनःस्थितिमें की है, इसका संकेत उनके ही काव्यमें मिलता है। श्रीभाईजीने लिखा है——

लिखता लिखवाता वही, करता करवाता वही।
पता नहीं क्या गलत है, पता नहीं क्या है सही।।

श्रीभाईजीने स्वीकार किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही यह सब लिख रहे हैं या वे ही मेरे द्वारा यह सब लिखवा रहे हैं। वे ही मेरे माध्यमसे सारे कार्य करते–करवाते हैं। मेरे द्वारा जो क्रिया हो रही है, उसके कर्त्ता वे भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। व्यक्ति विशेषके रूपमें मेरी कोई सत्ता रही ही नहीं। यही रहस्य है उनके द्वारा इतना महान् कार्य होनेका। इन्हीं महान् विभूतिका जीवन–दर्शन, उनके जीवनके विभिन्न सोपानोंका निदर्शन इस पुस्तकमें हुआ है।

अपने पिताजी द्वारा संग्रहीत सामग्रीके आधारपर श्रीश्यामसुन्दर दुजारीने यह मंगलमय कार्य श्रीभाईजीकी अर्चनाके रूपमें किया है। इनके द्वारा तैयार की हुई श्रीभाईजीके संक्षिप्त जीवन–परिचयकी पुस्तक मैंने पहले पढ़ी थी और उससे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। कल्याण–पथके पथिकके लिये यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण संबलकी भूमिका निभायेगी। कुछ प्रसंग तो इतने प्रभावोत्पादक हैं कि ध्यानसे पढ़नेवाला साधक उनसे प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता। विशेषतया

श्रीराधाबाबाकी लेखनीसे श्रीभाईजीके सम्बन्धमें लिखी हुई सामग्री किसी भी अध्यात्म–पथके पथिकका मार्ग आलोकित करनेमें सक्षम है। इतनी विपुल मात्रामें यह सामग्री सर्वप्रथम ही प्रकाशित हो रही है। इसी तरह श्रीभाईजी और संत श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पत्र–व्यवहार साधकोंका पथ–प्रदर्शन करेगा। श्रीभाईजीके जीवनके विभिन्न आयामोंको उद्घाटित करनेमें यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। आजके आस्थाहीन युगमें जो भी यह पुस्तक पढ़ेगा और इसमें दिये हुए प्रसंगोंका मनन करेगा वह अवश्य लाभान्वित होगा——ऐसा मेरा विश्वास है। मैं इस पुनीत कार्यके लिये श्रीश्यामसुन्दरको साधुवाद देता हूँ और मंगल कामना करता हूँ।

विष्णुकान्त शास्त्री
राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश

।। श्रीराम ।।

अर्चनाके स्वर

बीसवीं शताब्दीमें 'कल्याण' एवं 'कल्याण–कल्पतरु'के प्रर्वतक सम्पादक एवं गीताप्रेसके कर्णधार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको निर्विवाद रूपसे एक उत्कृष्ट संत और साक्षात्कार प्राप्त भक्तके रूपमें स्वीकार किया गया और भारतीय संस्कृतिके प्रचार–प्रसारमें उनके योगदानको युगांतकारी माना गया है। यह योगदान उन्हें आदि शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु या गोस्वामी तुलसीदास जैसी अवतारी विभूतियोंकी श्रेणीमें बिठानेमें पर्याप्त है। भाईजीके भगवान्‌की शाश्वत लीला परिकरसे जुड़े होनेकी सबसे बड़ी प्रतीति उनके 'पद–रत्नाकर'से होती है जिसमें सबसे पहले उनका निवेदन इस सत्यको प्रकट करता है। उन्होंने अपने जीवनकालमें मेरे विनम्र अनुरोधपर 'ज्ञान भारती' नामक पत्रिकाके 'देश रक्षा विशेषांक' के लिये लेख भेजा था जिसका मैं उस समय सम्पादक था। साथ ही, उन्होंने मेरे जैसे साधारण युवकको जो विनय भरा पत्र भेजा था। उससे उनकी महानता सिद्ध होती है। उनके जीवनकालमें तो उनके लौकिक योगदानको ही लोग समझ पाये थे और कुछ महात्माओंको उनकी अलौकिक पृष्ठभूमिका भी ज्ञान था,' किन्तु उनके गोलोकवासके बाद विश्वव्यापी धार्मिक समाजने उनको बहुत कुछ जाना और समझा।

सन् १९८५ में श्रीश्यामसुन्दर दुजारीने मुझे भाईजीकी संक्षिप्त जीवनी भेजी जिसे पढ़कर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई और लगा कि मैं जिस पुस्तककी खोजमें था, वह मुझे मिल गयी। पुस्तक पढ़ते–पढ़ते मैंने अनुभव किया कि मैं स्वयं उनके आध्यात्मिक सूत्रसे कहीं बंधा हुआ हूँ। उसके बाद मेरा दुजारीजीसे सम्पर्क बढ़ता गया और उनसे निकटताका सम्बन्ध हो गया। वे अपने शब्दोंके माध्यमसे जो भी भाईजीकी अर्चना करते उसका रसास्वादन मुझे भी कराते रहते। किसी अलौकिक प्रेरणाके अन्तर्गत उनके सुझाव पर ही मैंने भाईजीकी जन्मशती पर 'विशेष हिन्दी दर्शन' का विशेषांक प्रकाशित किया था। उनके पिताजी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीने अपना सम्पूर्ण जीवन भाईजीके जीवन–संस्मरणोंका संग्रह करनेमें ही समर्पित

कर रखा था। उन्होंने जो संग्रह किया उसकी मुक्तकंठसे सराहना भाईजीकी जीवनीके सभी लेखकोंने की। पहली पुस्तक थी श्रीराधेश्यामजी बंकाकी 'माँ और बाबूजी'। उसे उन्होंने श्रीगम्भीरचन्दजीको समर्पित करते हुए लिखा—"जीवनी लिखना ही उनका व्यसन था और इनके जीवनके प्रसंगोंको एकत्रीकरण ही उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य। साथियोंसे असहयोग एवं स्वयं बाबूजीसे फटकार पानेके पश्चात् भी वे बाबूजीकी जीवनीको अपने ढंगसे लिखते ही रहे, लिखते ही गये।" उसके बाद "भाईजी : पावन स्मरण" नामसे विशाल ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। उसमें श्रीगम्भीरचन्दजीका परिचय देते हुए लिखा "आज जगत्को भाईजीके जीवनके विषयमें जो भी कुछ तथ्य ज्ञात हैं, वे उन्हींके सत्प्रयत्नोंका फल है।" इसके बाद 'कल्याण पथ : निर्माता और राही' में उसके विद्वान् लेखक डॉ० भगवती प्रसाद सिंहने लिखा—"यह स्वीकारनेमें मुझे कोई संकोच नहीं है कि पोद्दारजीकी जीवनीका जो स्वरूप आज हमारे सामने हैं, उसके निर्माणकी आधारभूमि दुजारीजीका विशाल वृत्त–संग्रह ही है। यह निर्विवाद है कि यदि दुजारीजी द्वारा लिखित पोद्दारजीकी दैनन्दिन–जीवनगाथा प्राप्त न होती तो उनके पुण्यचरितके अधिकांश तथ्य विस्मृतके अन्धकारमें विलीन हो जाते।"

अपने पिताजीके संग्रहके आधारपर श्रीश्यामसुन्दरने भाईजीकी पहली संक्षिप्त जीवनी सन् १९८४ में प्रकाशित की थी। उसके दो संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गये। तीसरे संस्करणमें और सामग्री जोड़कर "भाईजी परिचय" के नामसे प्रकाशित किया। उसके भी तीन संस्करण प्रकाशित हो गये। आगामी भाद्र शु० ८ (श्रीराधाष्टमी) को उनके पिताजीका सौंवा जन्मदिन है। इसलिये उनके मनमें पुनः प्रेरणा हुई कि पिताजी द्वारा संग्रहीत सामगीमें और जो प्रकाशनीय अंश हैं उन्हें यथासंभव लेकर भाईजीकी कुछ विस्तृत जीवनी प्रकाशित की जाय। वैसे तो यह पुस्तक उसीका छठा संस्करण है पर नयी सामग्री पर्याप्त जोड़कर परिवर्द्धित और संवर्द्धित स्वरूपके कारण नाम बदल दिया गया है।

इस पुस्तककी अनेक विशेषताओंमेंसे दो तीनका यहाँ उल्लेख करना उचित लगता है। भाईजीकी दिव्य स्थितिका वास्तविक परिचय उनकी जैसी दिव्य आत्माको ही हो सकता है। वे थे श्रीराधाबाबा (पूर्व नाम

श्रीचक्रधरजी महाराज) जिनसे मैं स्वयं गीतावाटिकामें मिला था। उनके द्वारा भाईजीके सम्बन्धमें लिखित कुछ सामग्री पहले प्रकाशित हुई है पर जिस विपुल मात्रामें इस पुस्तकमें है वैसी शायद पहले कभी प्रकाशित नहीं हुई है। यह अध्यात्म साधकोंके लिये अनुपम है। दूसरा भाईजीके श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको लिखे पत्र यत्र–त्रत प्रकाशित हुए हैं परन्तु दोनों महापुरुषोंका पत्र–व्यवहार जैसा इस पुस्तकमें है वैसा कहीं अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुआ है। 'दिव्य अनुभूतियाँ' शीर्षकके अन्तर्गत कुछ पदोंका रचनाकाल देनेसे उनकी उपादेयता बढ़ गयी है। उदाहरणार्थ : भाईजीको प्रथम साक्षात् दर्शन हुए उसके ५ दिन पहले जिस पदकी रचना हुई उससे ज्ञात होता है कि अन्तःकरणकी कैसी स्थिति होनेपर साक्षात् दर्शन होनेमें समय नहीं लगता। भाईजी श्रीनारदजी एवं महर्षि अंगिरासे भी मिले जो सत्ययुगके ऋषि थे। अनेक ऐसे अलौकिक प्रसंग हैं जिनका भाईजीसे प्रत्यक्षतः सम्बन्ध न होनेपर भी भाईजीकी दिव्यताको उदघाटित करते हैं।

सहज मानवीय न्यूनताओंके कारण बहुत सम्भव है कि कुछ त्रुटियाँ इस पुस्तकमें भी पढ़नेवाले भाई–बहिनोंको दृष्टिगोचर हो सकती हैं––उनको मेरा निवेदन है कि वे ऐसी त्रुटियाँ और पुस्तकके सम्बन्धमें अपने विचार श्रीश्यामसुन्दरको लिखनेका कष्ट करें। इस पुस्तकके प्रूफ आदि देखनेमें श्रीबृजदेवजी दुबेसे सहायता मिली है।

लल्लनप्रसाद व्यास
(अंतर्राष्ट्रीय सभापति––विश्व रामायण सम्मेलन,
सम्पादक –– विश्व–हिन्दी–दर्शन)

सी १३, प्रेस एन्क्लेव 'साकेत',
नई दिल्ली––११००१७

।। श्रीहरिः ।।

विषय–सूची

विषय पृष्ठ–संख्या

चित्र–सूची

श्रीहरिः

अलौकिक विभूतिके अलौकिक प्रसंग

श्रीभाईजीने चमत्कारोंको कभी महत्त्व नहीं दिया और न जान–बूझकर उन्हें प्रकट होने दिया। कुछ अलौकिक प्रसंग प्रकाशमें आ ही गये। अधिक प्रसंग ऐसे ही हैं जिनमें भाईजीका प्रत्यक्ष रूपसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ श्रीदेशपाण्डेजी भाईजीको नहीं जानते थे और न भाईजी उन्हें जानते थे। उन्हें स्वप्नमें किसी महात्माके दर्शन हुए और उन्होंने भाईजी लिखित "साधन–पथ" पुस्तक दी। जागनेपर वह पुस्तक बिछावनपर मिली। भाईजीको तो उनके पत्रसे इसकी जानकारी मिली। ऐसी ही अलौकिक प्रसंगोंकी सूची नीचे दी जा रही है। भाईजीके आशीर्वादसे रोग ठीक हो गये या धन–सम्पत्ति मिल गयी—ऐसे प्रसंगोंको मैंने इस पुस्तकमें नहीं लिये हैं।

श्रीराधा—माधव

पता नहीं कुछ रात दिवसका

श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति

दिव्य जीवनकी एक झलक

हमारा सौभाग्य है कि हमारी वसुन्धरा कभी संतोंसे विरहित नहीं रही। संतोंकी चेष्टायें साधन कालमें भी एवं सिद्धावस्थामें भी विभिन्न प्रकारकी होती हैं पर होती है सभी जगत्‌के कल्याणके लिये। हम अपनी रज–तमाच्छादित मन–बुद्धिके द्वारा संतोंको पहचान नहीं सकते। देवर्षि नारदजीके सूत्र 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' के अनुसार श्रीभगवान् एवं उनके परम भक्तमें भेदका अभाव हो जाता है। ऐसी स्थितिमें संतोंकी तुलना करनेकी चेष्टा करना महान् मूर्खता है। मेरे जैसे व्यक्तिके लिये संतको पहचानना ही संभव नहीं है तब कोई तुलना करनेकी कल्पना भी मनमें नहीं है। सभी ज्ञात–अज्ञात संतोंके चरणोंमें सभक्ति साष्टांग प्रणाम करके अपने मनकी बात लिख रहा हूँ।

विगत १५–२० वर्षोंसे संतों–भक्तोंके जीवन चरित्र पढ़नेमें मेरी रुचि रही है। ऐसे पठनसे सत्प्रेरणा मिले यह भाव तो था ही साथमें यह भी था जो विशेषताएँ मुझे पूज्य श्रीभाईजीमें प्रतीत हो रही हैं उनका दर्शन अन्यत्र कैसा है ? यद्यपि मेरा अध्ययन बहुत व्यापक नहीं है इस कारण मैं कोई दावा नहीं कर सकता पर तीन बातें मुझे भाईजीमें बहुत विशेष लगीं। संत चाहे अभेदोपासक हो या भेदोपासक मोटे रूपमें हम ब्रह्ममें स्थिति होने या साकार विग्रहके साक्षात् दर्शन होनेपर ही सिद्ध संत कहते हैं। दोनों स्थिति ही स्वसंवेद्य है। अतः किसीको पता लगना कठिन ही होता है। सत्यताका

दर्शन तभी संभव है जब या तो स्वयं संत कृपा करके संकेत कर दें या भगवान् कोई ऐसी प्रकटीकरणकी लीला प्रस्तुत कर दें।

पहली बात पू० भाईजीको विष्णु भगवान्के साक्षात् प्रथम दर्शन हुए आश्विन कृष्ण ६, शुक्रवार वि० सं० १९८४ (१६ सितम्बर सन् १९२७) को जसीडीहमें मारवाड़ी आरोग्य भवनके समीपकी पहाड़ीपर महेन्द्र सरकारकी कोठीके पूर्व–दक्षिण भागमें सीताफलके वृक्षके समीप १५ महानुभावोंकी उपस्थितिमें। इसका विस्तृत वर्णन कई पुस्तकोंमें प्रकाशित हो चुका है। अब यदि कोई पू० श्रीसेठजी एवं भाईजीके कथनको असत्य मानें या उनमें दम्भके अंशकी ज़रा भी कल्पना करें उनको तो न कुछ कहनेकी आवश्यकता है न मेरे लिखेको पढ़नेकी ही। उपस्थित लोगोंमेंसे २–३ महानुभावोंसे मैंने स्वयं जिज्ञासा की एवं उनसे पूर्ण सन्तोषजनक उत्तर मिला। कुछ वर्षों पूर्वतक ये व्यक्ति जीवित थे। घटनाका पूर्ण विस्तृत वर्णन गीताप्रेसके प्रतिष्ठित प्रकाशक श्रीघनश्यामदासजी जालान द्वारा मारवाड़ी भाषामें लिखित एवं स्वयं भाईजी द्वारा संशोधित अभी भी पू० पिताजी श्रीगम्भीरचन्दजीके संग्रहमें सुरक्षित है। यह एक आध्यात्म जगत्की अनोखी घटना है जिसने स्वयं भाईजीको विस्मयमें डाल दिया। दूसरी ऐसी ही घटना फिर तीन दिन बाद १९ सितम्बर १९२७ को उसी स्थानपर घटित हुई। जब भाईजी स्वयं समाधान न कर पाये तो श्रीसेठजीसे पूछा कि जो कार्य एकान्तमें होता है वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ ? श्रीसेठजीने यही उत्तर दिया कि 'इससे जगत्को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है। जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक संभावना होती है, उसीको भगवान् इस प्रकार दर्शन देते हैं।' इसके बाद गोरखपुर आनेपर चार बार साक्षात् दर्शन एवं वार्तालाप हुआ जिसका वर्णन भाईजीकी डायरी एवं श्रीसेठजीको लिखे पत्रमें मिला। आगे चलकर उनका श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंमें प्रवेश हो गया जिसके लिये उन्होंने लिखा—'मनमें शत–शत विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी रूप–माधुरी देखी, समझी और किसी–किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया।'

अधिक विस्तार यहाँ न करके केवल इतना ही इंगित करना है कि जितने भी साकारोपासक सिद्ध संत हुए हैं उनको इष्टके साक्षात् दर्शन हुए ही हैं। विभिन्न कालोंमें अनेक स्मरणीय–वन्दनीय संतोंका प्रादुर्भाव हुआ है और उनका उल्लेखनीय चरित्र–साहित्य विपुल और विशद है। अधिकांश

संतोंके जीवन चरित्र प्रायः श्रद्धालु विद्वानों द्वारा ही लिखे गये हैं। यह कहा जाता है कि श्रद्धातिरेकमें लेखकोंने ऐसे वर्णन कुछ बढ़ा–चढ़ाकर लिखे हैं। इस बातको आंशिक स्वीकार भी करें तब भी उस विस्तृत वर्णनमें इतना प्रमाणिक विशद वर्णन मुझे नहीं मिला।

दूसरी बात है कि देवर्षि नारद और महर्षि अंगिराके मिलन की। नारद–भक्ति–सूत्रोंकी एक वृहद् व्याख्या भाईजीने शिमलापालमें अपने नजरबन्दीकी अवधिमें लिखी थी। यही व्याख्या कुछ परिवर्तन–परिवर्द्धनके साथ सन् १९३५ में गीताप्रेससे 'प्रेमदर्शन' के नामसे प्रकाशित हुई। संभवतः इस व्याख्यासे प्रसन्न होकर या अन्य निमित्तसे सन् १९३६ में देवर्षि नारदने महर्षि अंगिराके साथ गीतावाटिकामें पधारकर भाईजीको दर्शन दिये एवं लम्बी वार्ता की। इसका विस्तृत वर्णन पिताजीकी संग्रहित सामग्रीमें उपलब्ध है। यह स्वंय भाईजीका बताया हुआ है। फिर भी मैं खोजने लगा कि कहीं भाईजीके हाथसे स्वीकृति लिखी हुई मिल जाय। श्रीरामनिवासजी पोद्दार कलकत्ताके पत्रमें भाईजीने लिखा––'यहाँ जब अखण्ड हरिकीर्तन हुआ था, उस समय देवर्षि नारद तथा अंगिराजीके दर्शन हुए थे। बड़े सुन्दर, बड़े ही लाभप्रद। उन्होंने कुछ बड़ी उत्साहप्रद बातें बतायी थी। यह सत्य है।' शास्त्रोंके जानकार विश्वास रखनेवाले सभी जानते हैं कि श्रीनारदजी एवं श्रीअंगिराजी ब्रह्माजीके पुत्र थे एवं सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तीनों युगोंमें अनेक भक्तोंको दर्शन, प्रेरणा, उपदेश दिये थे। कलियुगके लगभग पाँच हजार वर्ष बीत चुके हैं। इस अवधिमें जितने संतोंका जीवनवृत्त इतिहासके पन्नोंमें उपलब्ध है उन विद्वान् लेखकोंने जब छोटी–छोटी घटनाओंका विशद वर्णन किया है तो नारदजीके दर्शनोंकी बात भी अवश्य लिखी होती। मुझे जब कहीं नहीं मिली तो मैंने अपने अध्ययनशील मित्रोंसे, परिचित संत विद्वानोंसे जानकारी प्राप्त करनेकी चेष्टा की पर किसीने ऐसे वर्णनकी जानकारी नहीं दी। आदि शंकराचार्यजीकी जीवनीमें मैंने पढ़ा था कि उत्तर काशीमें श्रीवेदव्यासजीने उन्हें दर्शन दिये थे। कुछ संतोंके बारेमें ऐसा कहा जाता है कि उनको दीक्षा प्राचीन ऋषि–मुनियोंने दी। पर भाईजीको तो नौ साल पहले भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो गये थे। उनसे अनेक बार वार्तालाप हुआ। भगवान्‌के प्रत्यक्ष आदेशसे काम भी करने लगे थे। ऐसी स्थितिमें श्रीभाईजीको साधन बताने श्रीनारदजी आवें––इसका स्वारस्य समझमें नहीं आता। वे यह भी कह गये कि जब याद करोगे हम आ जायँगे। दोनोंमें क्या

बातें हुई इसका विस्तृत प्रामाणिक वर्णन प्राप्त नहीं है पर भाईजी दिव्य संत–मण्डलमें सम्मिलित कर लिये गये थे—इससे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

तीसरी विशेष बात भाईजीके जीवनके अन्तिम १०–१२ वर्षोंमें विशेषरूपसे देखनेको मिली। यद्यपि भाईजीका लीलाओंमें प्रवेश सन् १९४० से पूर्व हो गया था पर उन्होंने २० वर्षोंतक लोगोंसे छिपाये रखा। उसके बाद उनका पूरा प्रयास छिपानेका ही रहा पर श्रीकृष्णको यह मंजूर नहीं था। बड़ी विचित्र स्थिति थी, वस्तुतः नितान्त कल्पनातीत। वे चाहते थे वृत्तियाँ जागतिक धरातलपर रहें एवं 'कल्याण' के सम्पादन एवं अन्य सेवा कार्य सुचारु रूपसे चलते रहें। ऐसा सतत् प्रयास करने पर भी बलात् वृत्तियाँ लीलामें विलीन हो जाती थी। यह एक अद्‌भुत विवशता थी। अचानक शरीर सर्वथा निश्चेष्ट, निस्पन्द हो जाता। आँखें खुली हैं पर दिखाई नहीं देता। कलम हाथमें है तो नीचे भी नहीं रखी गई मात्र श्वास–प्रश्वासके अतिरिक्त कोई क्रिया नहीं। यह स्थिति घंटो–घंटोंतक रहती थी। इसीको 'भाव–समाधि' विद्वानोंने कहना आरम्भ कर दिया। लीलाओंके दर्शन, लीलाओंमें प्रवेश कई व्रजभावके संतोंके जीवनमें पढ़नेको मिला। योगियोंकी जीवनीमें कई दिनों, महीनोंका ही नहीं वर्षोंकी समाधिके विवरण भी पढ़नेको मिले। कई भक्तोंके ऐसे प्रसंग भी पढ़नेको मिले कि साक्षात् भगवान्‌के प्रकट होनेपर भी उन्होंने सेवा अथवा भजन छोड़नेसे मना कर दिया। पर वृत्तियोंको संघर्षपूर्वक जगत्‌में लगानेकी पूरी चेष्टा करनेपर भी बलात् न चाहने पर भी लीला–सिन्धुमें निमग्न हो जाना और १५–२० घंटोंतक भाव–समाधिमें रहनेका विवरण मेरे कहीं भी पढ़ने–सुननेमें नहीं आया। यद्यपि प्राप्त विवरणोंके अनुसार अन्य कार्य करते हुए भी भाईजीका मन लीला–राज्यमें ही विहरण करता था पर तल्लीनता घनीभूत न होनेसे दोनों कार्य सुचारु रूपसे चलते रहते थे। भाईजीके शब्दोंमें—'अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोंकी, मनकी सारी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। जगत्‌का सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते हैं। आँखें खुली हों तो भी दिखता नहीं। इसे समाधि कहिये या और कुछ। कभी–कभी तो वृत्तियोंको बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो जाता है। पहले यह स्थिति कई दिनों बाद हुआ करती थी, अब तो बहुत जल्दी–जल्दी हो जाती है।'

यह कोई ध्यान या समाधि नहीं है जिसका अभ्याससे सम्बन्ध हो, न किसी क्रियाका ही फल है। यह तो उनकी अपनी लीलाकी एक विलक्षण स्फूर्ति है या उनकी लीलाकी लीला है--जो अत्यन्त दुर्लभ है। यहीं वास्तवमें ठीक--ठीक स्वरूपका साक्षात्कार होता है।'

यहाँ विस्तार नहीं करना है वैसे तो इनका विवेचन–विश्लेषण करनेमें कोई विद्वान् लेखक पूरा ग्रन्थ लिख सकता है। मेरा अध्ययन व्यापक न होनेसे मैं दृढ़तापूर्वक ऐसा नहीं कह सकता कि ये तीनों बातें अन्य संतोंके जीवन–वृत्तोंमें नहीं है। कोई यदि बतानेकी कृपा करेंगे तो मैं अपनी भूल सुधार भी लूँगा। पर पूज्य राधाबाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) ने लिखा है--'आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी भी शास्त्रमें नहीं पढ़ा और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता।' पूज्य बाबा उद्‌भट विद्वान् थे एवं शास्त्रोंका अध्ययन उनका अति गहन था--यह सर्वविदित है।

अब एक दृष्टि उनके बहिरंग जीवनपर डालें। शरीर छोड़नेके कुछ समयपूर्व उन्होंने अपने वसियतनामामें संकेत किया कि उनके द्वारा कुछ 'विशेष–कार्य' करानेकी योजना प्रभु की थी। इस 'विशेष कार्य' की कल्पना करना मेरे लिये संभव नहीं है, न उन्होंने कहीं संकेत दिया। एक ऐतिहासिक कार्य तो उन्होंने किया कि हमारे विशाल आध्यात्मिक संस्कृत साहित्यको हिन्दीमें उपलब्ध कराया। हमारे संस्कृत ग्रन्थ लुप्त होते जा रहे थे, और जनसाधारणके लिये उनका कोई उपयोग संभव नहीं था। उन्होंने पुराणों, उपनिषदों, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, आचार्यो द्वारा लिखे विभिन्न भाष्य लाखों–लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित कराके केवल देशके कोने–कोनेमें ही नहीं बल्कि विश्वके कोने–कोनेमें पहुँचा दिया। जो ग्रन्थ देखनेको नहीं मिलते थे, वे पढ़नेको मिल गये। अब उन बहुमूल्य ग्रन्थोंकी होली जलाकर आतताइयोंके अत्याचारोंसे उनके नष्ट होनेकी आशंका सदा–सदाके लिये समाप्त हो गई है। पूरे भारतको भी कोई परमाणु बमसे नष्ट कर दे तब भी हमारे ग्रन्थ इस पृथ्वीके प्रलयकालतक सुरक्षित रहेंगे क्योंकि वे विश्वके कोने–कोनेमें पहुँच चुके हैं केवल हिन्दी, संस्कृतमें ही नही, अंग्रेजीमें भी। उनके समकालीन संत, महात्मा, विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्य, विभिन्न पार्टियोंके राजनैतिक नेता, विद्वान्, साहित्यकार, उद्योगपति, समाजसेवी, ईसाई, मुसलमान उन्हें कितने आदर एवं श्रद्धासे देखते थे--इसकी जानकारी 'भाईजी पावन–स्मरण' ग्रन्थको

देखनेसे मिल सकती है। दूसरा उन्होंने स्वयं विशाल मौलिक साहित्य सृजन करके हिन्दी साहित्यकी जो अभिवृद्धि की एवं ठोस आध्यात्मिक सामग्री प्रदान की वह अतुलनीय है। गोस्वामी तुलसीदासजीके ग्रन्थोंको घर–घर पहुँचानेका श्रेय भाईजीको ही है। पूरे शुद्ध रामचरितमानसको पचास पैसेमें उपलब्ध कराना भाईजीकी एक अनोखी देन है। जो कार्य कई संस्थाएँ मिलकर नहीं कर सकतीं वह अकेले व्यक्तिने कर दिखाया।

'कल्याण' के विशेषांकोंकी गरिमा अलग ही है जो अपने विषयके विश्वकोष कहे जाते हैं। कितने व्यक्ति उनकी प्रेरणासे साधनमार्गमें अग्रसर हुए इसकी गणना संभव नहीं है। आर्थिक सेवा, सहायता करना तो उनका सहज स्वभाव था। सेवा होती थी इतनी गुप्त कि उनके परिवारके सदस्य या निकटस्थ व्यक्ति भी नहीं जान पाते थे। उनके पाससे कभी किसीको निराश लौटते नहीं देखा गया। ऐसी सेवाओंमें कितने करोड़ रुपये व्यय हुए इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता।

कितनी कर्मठता थी उनमें इसका भी अनुमान करना कठिन है। प्रातः ४ बजेसे रात्रिके १२ बजेतक तो वे प्रायः कार्यमें व्यस्त रहते थे। विशेषांक प्रकाशनके समय दो बजेतक भी काम करते देखा गया। भोजन करते समय भी एक हाथसे डाक पढ़ते रहते।

अब एक दृष्टि डालें उनके सम्पर्कमें आये हुए महानुभावोंपर। पूज्य राधाबाबा पहले पू० श्रीसेठजीसे पास बाँकुड़ा गये। कई दिन उनके पास रहकर अपनी जिज्ञासाका समाधान कराते रहे फिर श्रीसेठजीने उन्हें भाईजीके पास भेजा। सूचना मिलनेपर भाईजी उनसे मिलने आये एवं संन्यासीके नाते उनके चरण छूकर प्रणाम किया। उस स्पर्शका क्या जादू हुआ कि कट्टर वेदान्ती बाबा जो राधा–माधवको भगवान् न मानकर मायोपाधिक ब्रह्म मानते थे वे वेदान्तकी साधना छोड़कर श्रीराधाके उपासक बन गये और कालान्तरमें क्षेत्र संन्यास लेकर जीवन पर्यन्त भाईजीसे एक रात्रिके लिये भी विलग नहीं हुए तथा उनके नित्यलीलालीन होनेपर सम्पूर्ण जीवन भाईजीकी समाधिके सामने पेड़के नीचे व्यतीत किया। पात्र होनेपर एक स्पर्शका क्या चमत्कार होता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण। भाईजीके नीचे कार्य करनेवालोंमेंसे पण्डित शान्तनुबिहारीजी द्विवेदी, श्रीअखण्डानन्दजीके नामसे प्रख्यात भारतके एक प्रमुख विद्वान्, महात्मा हुए। श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी 'कल्याण' से जाकर उज्जैन विश्वविद्यालयके कुलपति हुए। श्रीमुनिलालजी परवर्ती जीवनमें

श्रीसनातनदेवजीके नामसे आदर्श संन्यासी बने। इतना निस्पृह जीवन बिताया कि न कहीं आश्रम बनाया न किसीको शिष्य। पं० भुनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' 'कल्याण' से निकलकर गया कॉलेजके प्रिंसिपल बने। 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागसे ही श्रीराजबली पाण्डेय जबलपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपति बने। पं० रामनारायण दत्तजी शास्त्री काशीके संस्कृत महाविद्यालयके वरिष्ठ आचार्य बने। श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी पाण्डिचेरीके श्रीअरविन्दाश्रमके मान्य सदस्य बने। पं० देवधर शर्माको श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने आग्रहपूर्वक भाईजीसे माँगकर श्रीकृष्ण जन्मस्थान मथुरा एवं स्वर्गाश्रम ट्रस्ट, ऋषिकेशका संचालक बनाया। श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदीने आदर्श सदाचारका जीवन बिताया। पं० चिम्मनलालजी गोस्वामीको तो पुरीके शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णजी तीर्थ अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे पर पू० गोस्वामीजीने भाईजीके संगको छोड़कर जानेसे सर्वथा इन्कार कर दिया। कहाँतक लिखा जाय बंगालके सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजीने तो यहाँतक लिख दिया कि––'श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र–प्रचार एवं धर्म–प्रचारकी लीलाकी है वह न कभी हुई है और न होगी।'

सचमुच हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बींसवी सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थाएँ मिलकर नहीं कर सकती वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे संभव हुआ। दूसरे वेद व्यासकी भाँति शास्त्रों एवं धर्म–प्रचारका कार्य हमारे पूर्ववर्ती आचार्योंसे भी बढ़कर कहा जा सकता है साथ ही आचार–विचारको सुनियंत्रित करनेका कार्य जिसकी तुलना मनु–याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारोंसे की जा सकती है। भक्तिकाव्यकी सरस रचना का जो कार्य सूरदास, तुलसीदास जैसे भक्त कवियों द्वारा हुआ एवं साथ ही लीला–सिन्धुमें निरन्तर निमग्न रहनेके, आदर्शकी जो प्रतिष्ठा श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे संतों द्वारा हुई––इन सबका अद्‌भुत एकीकरण श्रीभाईजीके विशाल व्यक्तित्वमें स्पष्ट प्रकट है।

वंश परिचय

शास्त्रकी यह स्पष्ट उद्‌घोषणा है––वे माता–पिता, वह कुल, वह जाति, वह समाज, वह देश धन्य है, जहाँ भगवत्‌परायण परम भागवत महापुरुष आविर्भूत होते हैं। राजस्थानके बीकानेर जिलेमें (वर्तमानमें चूरू

जिलेमें) रतनगढ़ एक छोटा प्रसिद्ध शहर है। भाईजीके पितामह सेठ श्रीताराचन्दजी पोद्दारकी गणना नगरके इने–गिने व्यापारियोंमें थी। वे बड़े ही धर्म–प्राण थे। उनके दो पुत्र थे—कनीरामजी और भीमरामजी। श्रीभीमरामजीको ही भाईजीके पिता होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीकनीरामजी पिताकी अनुमति प्राप्त करके आसाम व्यापार करने चले गये। रतनगढ़से शिलांग जानेवाले मारवाड़ी व्यापारियोंमें ये सर्वप्रथम थे। वहाँ इन्हें सेनाको खाद्य–सामग्री पहुँचानेका ठेका मिल गया। काम बढ़ जानेसे उन्होंने पूरे परिवारको वहीं बुला लिया। श्रीकनीरामके कोई संतान नहीं थी, अवस्था भी अधिक हो गयी थी, अतः छोटे भाई भीमरामजीको ही उन्होंने दत्तक पुत्र मान लिया। जैसे आम आमके ही वृक्षमें फलता है, वैसे ही भाईजीका कुल भी दैवी सम्पदाओंसे सम्पन्न था। श्रीकनीरामजीकी रामचरितमानसमें अगाध श्रद्धा थी। ये उसका नियमित रूपसे पाठ करके ही अन्न ग्रहण करते थे। इनकी पत्नी पूजनीया रामकौरदेवी तो संत सदृश थी। सामान्य पढ़ी–लिखी होनेपर भी सत्संग तथा स्वाध्यायसे धार्मिक ग्रन्थोंका मर्म ग्रहण करनेकी उनमें अच्छी क्षमता थी। श्रीहनुमानजी उनके इष्ट थे। मानस–पाठ और नामजपमें अत्यधिक श्रद्धा थी। जबतक वे रतनगढ़में रहीं गृहकार्यसे अवकाश पाते ही वे संतोंके चरणोंमें उपस्थित हो जातीं। हर महीने घरमें ब्राह्मण भोजन करातीं। अनेक प्रकारसे गुप्तदान भी किया करतीं। कलकत्तामें रहतीं तो प्रातः गंगा–स्नान करके साढे तीन बजे श्रीसांवलियाजीके मंदिरमें पहुँच जातीं। मंगला–आरतीके दर्शन करके श्रीहनुमानजी एवं श्रीसत्यनारायणजीके मंदिर दर्शन करने जातीं।

श्रीभीमराजजी बहुत अच्छे सत्संगी थे। सनातन धर्मकी रक्षाके लिये उन्होंने कलकत्तेमें 'सनातन धर्म पुष्टिकारिणी सभा' की स्थापना की। ऋषिकेश–स्थित कैलाशाश्रमके प्रसिद्ध महन्त एवं विद्वान पूज्य श्रीजगदीश्वरानन्दजीने जब संन्यास लिया तो पहले–पहल होशियारपुर (पंजाब) से श्रीभीमराजजीके पास आये। ईमानदारी इनकी अद्वितीय थी। भूलसे भी परायी चीज घरमें आ जाय तो सहन नहीं होती। एक दिनकी घटना है—कलकत्तेमें कपड़ेका व्यापार था। एक पुर्जेमें भूलसे एक सौ रूपये जोड़में अधिक लग गये। भुगतान देनेवाले व्यापारीके यहाँ भी भूल हो गयी और एक सौ रूपये अधिक आ गये। इनके यहाँ केवलसिंह नामका एक व्यक्ति हिसाबका काम देखता था। दो दिन बाद उसके ध्यानमें वह भूल

आयी तो उसने सारी बात श्री भीमराजजीको बता दी। सुनते ही श्रीभीमराजजी बोले––एक सौ रूपये अधिक क्यों आ गये ? जाओ अभी लौटाकर आओ। उसने कहा––'अभी तो शाम हो गयी है............।' वह पूरा बोल भी नहीं पाया था कि श्रीभीमराजजी बोले––शाम हो गयी तो क्या हुआ ? अभी तुरंत देकर आओ। बिना दिये हम रोटी नहीं खायेंगे। यह पैसा हमारे घर दो दिन रहा, अतः दो दिनका ब्याज भी देकर आओ। यह है उनकी ईमानदारीका एक नमूना। ये सभी पारिवारिक संस्कार भाईजीके जीवनमें बचपनसे ही उतर आये।

आविर्भावकी पृष्ठभूमि

श्रीभीमराजजीके कोई संतान न होनेसे रामकौरदेवी चिन्तित रहने लगीं। उनका विश्वास साधु–संतोंमें अधिक था। शिलांगमें ऐसी सुविधाएँ न होनेसे वे पतिकी अनुमति लेकर एक नौकरके साथ अकेली रतनगढ़ चली आईं। उस समय इतनी लम्बी यात्रा सहज नहीं थी––यह इनके अद्भुत साहसका परिचायक है। उन दिनों रतनगढ़में नाथयोगियोंमें शायद श्रीलक्ष्मीनाथजी, श्रीमोतीनाथजी, श्रीमंगलनाथजी, श्रीबखन्नाथजी आदि प्रमुख थे। रामकौरदेवीकी सेवाके कारण वे इनपर कृपा भाव रखते थे। रामकौरदेवीने 'नाथजी' से अपनी चिन्ताकी बात कही। 'नाथजी' प्रसन्न थे, उन्होंने एक दिन वरदान रूपमें कह दिया कि आजसे एक वर्षके अन्दर आपके एक सर्वगुण–सम्पन्न पौत्र होगा––वह बहुत ही सुशील विद्वान् और भगवद्भक्त होगा। जन्मके समय उसके ये चिह्न होंगे––मस्तकपर 'श्री' का निशान, कंधोंपर केश और दाहिनी जंघापर काले तिलका निशान तथा वह साधारण बालकोंके समान जन्मके समय रुदन नहीं करेगा। ऐसा भी सुना जाता है कि उन्होंने यह भी कहा कि हमारे साथ रहनेवाले टूँटिया महाराज ही आपके घर अवतरित होंगे। नाथजीके कृपापूर्ण वचन सुनकर रामकौरदेवीका हृदय प्रफुल्लित हो गया और पौत्र होनेमें उनके मनमें कोई संदेह नहीं रहा।

इसी समय एक घटना और घटी। रामकौरदेवी निम्बार्क सम्प्रदायके रतनगढ़ निवासी बाबा महरदासजी महाराजकी शिष्या थीं। इनकी प्रेरणासे रामकौरदेवीने स्थानीय श्री लक्ष्मीनारायण मंदिरमें विष्णु सहस्रनामके १०८ सम्पुट पाठका आयोजन किया। तीन अन्य ब्राह्मण और चौथे स्वयं बाबा महरदासजी उस अनुष्ठानको करनेमें लग गये। जिस दिन १०८ सम्पुट

सम्पूर्ण हुए, उस दिन दीपकमें एक ही बार घी डाला गया था और दीपक अखण्ड जलता रहा। अनुष्ठानके विधिवत् पूर्ण होते ही बाबा महरदासजी बोले——रामकौर ! आज तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। यह अभिमन्त्रित जल अपनी बहू रिखीबाईको पिला देना। निश्चय ही एक भगवद्भक्त धर्मात्मा पौत्रकी प्राप्ति होगी जो तुम्हारे वंशकी कीर्तिको उज्ज्वल करेगा। उसका नाम हनुमानजीके नामपर रखना। इस बातको सुनकर देवी रामकौरके तो हर्षकी सीमा ही नहीं रही।

अब रतनगढ़ रहनेकी आवश्यकता नहीं थी, अतः वे शीघ्र शिलांग चली गयीं।

जन्म

शिलांग पहुँचनेके कुछ समय बाद रामकौरदेवीको रिखीबाईके गर्भवती होनेका पता लगा तो उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। परम अभिलषित वस्तुकी प्रतीक्षामें हृदयकी क्या अवस्था होती है——यह किसीसे सुनकर समझा नहीं जा सकता है। पल–पलपर विघ्नकी आशंकासे मन कैसे चंचल हो उठता है——यह तो सर्वथा भुक्तभोगी ही जानता है। आखिर वह परम पुण्यमय क्षण उपस्थित हुआ आश्विन कृष्ण १२, वि०सं १९४६ (दि० १७ सितम्बर सन् १८९२) को रिखीबाईने पुत्ररत्न प्राप्त किया। यह सुयोग हनुमानजीके दिन शनिवारको संघटित हुआ। सभीको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रतनगढ़के महात्माने जन्मके समय जिन चिह्नोंके होनेकी बात कही थी, वे सभी नवजात शिशुके शरीरपर विद्यमान् थे। रामकौरदेवीने अपनी निष्ठाके अनुसार अपने इष्टदेवका कृपा–प्रसाद मानकर बालकका नाम 'हनुमान प्रसाद' रखा।

मातृवियोग

बालक हनुमानप्रसादके जन्मके दो मास पश्चात् सं० १९४६ (१५ नवम्बर १८९२) के मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को इनके वृद्ध दादाजी श्रीताराचन्दजीका शिलाँगमें देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु बड़े विलक्षण ढंगसे हुई। जिस दिन देहान्त हुआ उस दिन इन्होंने घरवालोंसे पूछा कि सबने भोजन तो कर लिया है न ? फिर बोले——कनीरामको बुलाओ और मुझे घरकी गौशालामें ले चलो। यद्यपि उस समय आपकी अवस्था ८४ वर्षकी हो चुकी थी, परंतु आप अच्छी प्रकार चल–फिर कर घरका काम करते थे। गौशालामें जानेके बाद बोले——मेरे

प्राण–प्रयाणका समय निकट आ गया है। देखो, भगवान्‌के पार्षद, चार भुजावाले मेरे सामने खड़े हैं, आपलोग भी दर्शन कर लें। सब लोग 'हरे राम' महामन्त्रका उच्चारण करें। वे स्वयं भी इसी मन्त्रका जप करने लगे। फिर कहा––मुझे स्नान कराओ। श्रीकनीरामजीने उनको स्नान कराकर ललाटमें चन्दन लगा दिया और अपनी गोदमें लिटा लिया। देखते–ही–देखते उनके प्राण नेत्रोंद्वारा प्रयाण कर गये। वे बड़े तपस्वी थे। प्रातःकाल तीन बजे उठकर हाथ–मुँह धोकर नित्यप्रति वे पचास माला 'हरे राम' वाले महामन्त्रकी जपते और श्रीगीताजीके १८ अध्यायका सम्पूर्ण पाठ करनेके पश्चात् शौच–स्नानादि करते। नित्यप्रति १०८ पाठ विष्णु सहस्रनामके भी करते।

शिशु अभी दो वर्षका भी न हो पाया था कि उसके लिये मातृवियोगका क्षण उपस्थित हुआ। अपने कलेजेके टुकड़े लाड़ले लालको रामकौरदेवीको सौंपकर रिखीबाईने सामान्य बीमारीके पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा सं० १९५१ (१८ जुलाई १८९४) को अपना पाञ्चभौतिक कलेवर त्याग दिया। सारा परिवार शोकसागरमें निमग्न हो गया। मातृहीन शिशुके पालन–पोषणका सारा दायित्व दादीपर आ गया। बालक जब जानने–पहचानने योग्य हुआ तो मातारूपमें उसने दादी रामकौरदेवीको ही पाया। उसने उन्हें ही 'माँ' कहना प्रारम्भ किया। और यह सम्बोधन जीवन पर्यन्त चला। पिताजीने घरवालोंके आग्रहसे दूसरा विवाह किया। आगे चलकर इसके तीन कन्याएँ हुईं––कमलीबाई, अन्नपूर्णाबाई और चन्दाबाई।

भीषण रोगसे आक्रान्त

बालक हनुमानप्रसाद लगभग तीन वर्षका होगा कि एक दिन रुग्ण हो गया। पहले समझा साधारण रोग है, शीघ्र ही ठीक हो जायगा पर बालककी स्थिति सूखा रोगके कारण चिन्ताजनक हो गयी। दादी रामकौरदेवीके मनकी क्या अवस्था होगी, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। कितने देवाराधन, कितनी प्रार्थना, कितने अनुष्ठानके फलस्वरूप बालक घरमें आया और वही भीषण रोगाक्रान्त होकर खाटपर पड़ा है। हर सम्भव उपचारके पश्चात् भी स्थिति बिगड़ती चली गयी। अन्तमें सब ओरसे निराश होकर दादी बालकको लेकर रतनगढ़ चली आयीं एवं संत–महात्माओंकी शरण लेकर पाठ, पूजा, जप, दान, अनुष्ठानादिका मार्ग

अपनाया। संतोंका आशीर्वाद प्राप्त हुआ और बालक स्वस्थ होने लगा और कुछ दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ होकर अपनी मधुर मुस्कानसे दादीको प्रफुल्लित करने लगा। दादी उसे लेकर शिलाँग चली गयीं।

भूकम्पसे प्राण–रक्षा

'जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय' इसका दूसरा उदाहरण शीघ्र ही सामने आया। वि० सं० १९५३ (सन् १८९६) में शिलाँगमें भीषण भूकम्प आया। सन्ध्याका समय था। देखते–ही–देखते कतारमें खड़ी गृहावलियाँ धरतीमें लोटने लगीं। अपार धन–सम्पत्ति नष्ट हो गयी। इस दुर्घटनामें बालक हनुमानप्रसादकी रक्षा किस अचिन्त्य शक्तिकी कृपासे हुई, इसका वर्णन उन्हींकी भाषामें पढ़ें जो उन्होंने स्वयं 'कल्याण' में प्रकाशित किया—

सन् १८९६ ई० (वि०सं० १९५३) में आसाममें भयानक भूकम्प हुआ था। उस समय मेरी उम्र लगभग चार वर्षकी थी। शिलाँग (आसाम) में हमारा कारबार था। मेरे दादाजी कनीरामजी वहाँ रहते थे। पिताजी कलकत्तेका कारबार सँभालते थे। माताजीकी बहुत छोटी उम्रमें मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीजीने मुझे पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एवं उन्होंने मेरे लिये जितने कष्ट सहे, उसका बदला मैं हजार जन्म सेवा करके भी नहीं चुका सकता। उनके जीवित रहते मैंने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। जिनके माता–पिता आदि जीते हैं, उन्हें बड़ा सौभाग्य प्राप्त है। वे जी भर उनकी सेवा करके आनन्द लूट लें, नहीं तो पीछे मेरी तरह पश्चातापके सिवा प्रत्यक्ष सेवाका कोई साधन नहीं रहेगा। अस्तु ! मैं दादीजीके साथ शिलाँगमें रहता था। मेरी बुआ भी वहीं आयी हुई थी। उनके दो सन्तानें थीं। हम तीनों साथ–साथ खेला करते। भूकम्पके दिन हमारे निकटवर्ती श्रीभजनलाल श्रीनिवासके यहाँ किसी व्रतका उद्यापन था। उनके यहाँ हमें भोजन करने जाना था। बुआजीके दोनों बालकोंने जानेसे इंकार कर दिया। मैं अकेला ही गया। वे घरपर रह गये। सन्ध्याका समय था। लगभग पाँच बजे होंगे। मैंने श्रीभजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पीछे रसोईमें जाकर भोजन किया। रसोईसे निकलकर गोलेमें घुस ही रहा था कि धरती बड़ी जोरसे काँप उठी। मैं चिल्लाया, मेरे आस–पास पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। सारा मकान मिनटोंमें ध्वंस हो गया। मैं दब गया, परन्तु आश्चर्य, मेरे चारों ओर पत्थर हैं, उनपर एक तख्ता आ

गया और उसके ऊपर पत्थरोंका पहाड़। मैं मानों खोहमें––काली गुफामें पड़ गया। पता नहीं, वायुके आने–जानेका रास्ता कैसे रहा, परन्तु मैं मरा नहीं। भूकम्प बन्द होनेपर मूसलाधार वर्षा हुई और उसी समय हमारे बगलके एक गोलेमें आग लग गयी। चारों ओर हाहाकार मचा था। कौन दबा, कौन बचा, कुछ पता नहीं। दादाजी हम तीनों बालकोंकी खोजमें लगे। मेरी बुआजीके दोनों बालक पत्थरोंके नीचे मरे मिले। मेरी बड़ी बुआजीके पौत्र (मुझसे कुछ बड़ी उम्रके) श्रीराम गोयनकाकी भी लाश मिली। ढूँढ़ते और पुकारते दादाजी भजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पास आये। वे बड़े जोरसे पुकार रहे थे––'मन्नू–मन्नू'। मैंने आवाज सुन ली। नन्हा–सा बालक था, भयभीत था, रो रहा था। परन्तु न मालूम किस प्रेरणासे मैंने शक्तिभर जोरसे उत्तर दिया––यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये। पत्थरोंका ढेर हटाया गया। मैं निकलकर दादाजीके गोदीमें चढ़ गया, उन्होंने हृदयसे लगा लिया। दोनों रोने लगे। उनके रोनेके कई अर्थ थे। दादीजी तबतक अपने इष्ट श्रीहनुमानजीको याद कर रही थीं। हनुमानजीने उनकी पुकार सुनी, बुआजीके बालकोंके दबनेका दुःख क्षणभरके लिये कुछ हलका हो गया। भूकम्पके कारण कनीरामजीके हृदयको धक्का लगा। सहसा वे रुग्ण हो गये और मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा सं० १९५६ (३ दिसम्बर १८९९) के दिन कलकत्तेमें 'सोऽहम्–सोऽहम्' का जप करते हुए शरीर छोड़ दिया।

शिक्षा एवं दीक्षा

(क) **दीक्षा**–महान संतोंकी चेष्टा भविष्यके जीवनकी सूचना देती हैं। विशाल प्रासादके निर्माणके पूर्व, उसकी नींव भी स्वतः उसी अनुरुप ही होती है। बालक हनुमानप्रसादके जीवनमें भी इसी प्रकार आध्यात्मिक प्रवृत्तिका श्रीगणेश बचपनसे ही आरम्भ हुआ। दादी रामकौरके लाड़में पला हुआ बालक न अधिक चंचल था, न गम्भीर। वह दादीको सन्तोंके पास जाते देखता। देवी रामकौरकी श्रद्धामयी चेष्टा देख–देखकर वह मन–ही–मन अनेक बातें सोचता। पवित्र हृदय सन्त जिस समय देवी रामकौरसे भजनकी चर्चा करते, उस समय बालक एकान्तचित्तसे उनकी बातें सुनता। सन्तोंकी घटनाएँ, सन्तोंकी बात सुनकर बालक आनन्दमें भर जाता। जिस समय गुरु–शिष्य विषयक चर्चा चलती, उस समय बालकके हृदयमें भी शिशु–सुलभ

उमंगका उन्मेष हो जाता तथा हृदयके अन्तस्तलमें मूक चाह उत्पन्न होती—मेरे भी एक गुरुजी होते और मेरी दीक्षा होती। देवी रामकौर बालककी गम्भीर मुद्रा देखती, देखते ही दोनों हृदयके भावतन्तु नैसर्गिक विद्युतकणोंके द्वारा जुड़ जाते। देवी रामकौरके मनमें स्फुरणा होने लगती—इसे दीक्षा दिला दूँ। उच्च सम्प्रदायके उच्च संन्तके चरणाश्रयमें ही मेरा बालक फले फूले। अस्तु, मनके बार बारके विचार मूर्तरूप धारण करते ही हैं, देवी रामकौरने एक दिन निश्चय कर लिया कि बालकका दीक्षा संस्कार करा देना है। तैयारियाँ होने लग गयीं।

उन दिनों निम्बार्क सम्प्रदायके बड़े विद्वान् महन्त मेहरदासजी रतनगढ़में रहते थे। उनके शिष्यका नाम रामरतनदासजी था तथा रामरतनदासजीके शिष्य श्रीव्रजदासजी थे। सन्त श्रीव्रजदासजीको बालक हनुमानप्रसादके दीक्षा गुरू होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। देवी रामकौरने सन्त श्रीव्रजदासजीसे दीक्षा–संस्कार सम्पन्न करनेकी प्रार्थना की। सन्त व्रजदासजीने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मंगलमय मुहूर्तमें बालकने स्नान किया। नवीन वस्त्र पहनकर श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुआ। हृदयमें उमंगका सागर लहरा रहा था। गुरूदेवने देखा, बालक हृदयसे चाहता है, एक दिन भगवान् नारदने भी ध्रुवको ऐसे ही देखा था और—"**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**" की दीक्षा दी थी। आज मानों उसीकी पुनरावृत्ति हो रही है। सन्त श्रीव्रजदासजीने विधि पूरी की। बालकके सुकोमल कण्ठमें गुरूदेवने कंठी बाँध दी तथा कानमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्रोपदेश कर दिया। वैष्णवी दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। यह संस्कार सम्वत् १९५७ वि० में रतनगढ़में हुआ था। इसी वर्ष देवी रामकौर अपनी पीहर अमृतसर गयीं। लाडला पौत्र भी गया। बालककी दैवी दीक्षा तो हो चुकी। अब दादीकी क्रियात्मक दीक्षा प्रारंभ हुई। देवी रामकौरको श्रीहनुमानजीका इष्ट था। उन्हें श्रीहनुमानजीके साक्षात् दर्शन भी हुये थे। बालककी उम्र भी आठ वर्षकी हो चुकी थी। देवी रामकौरने हनुमान कवचका पाठ बालकको सिखा दिया और बालकने भी सीखकर नित्य पाठ करना आरम्भ कर दिया। पाठका यह बीजारोपण इतना दृढ़ हुआ था कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गयी। आगे चलकर तो वह बालक सूर्य, गणपति, देवी, शिव आदि अनेक देवस्तोत्रोंका नियमसे पाठ करने लगा। नवरात्रके दिनोंमें तो सांगोपांग सप्तशतीका अनुष्ठान एवं

भागवतकी कई स्तुतियोंका बड़ी श्रद्धासे पाठ करता। जब दादी संत श्रीबखन्नाथजीके पास सत्संगके लिये जाती तो साथमें बालक हनुमानप्रसाद भी जाता। धीरे–धीरे नाथजीने बालकके संस्कार देखकर गीताजीके श्लोक कंठस्थ कराने शुरु किये। बालकने एक वर्षके अन्दर सारी गीताजी कंठस्थ करके सुना दी। अद्‌भुत प्रतिभा और आध्यात्मिक प्रवृत्ति देखकर नाथजी और दादीजी बड़े प्रसन्न हुए। इसी बीचमें व्यापारिक जीवनमें परिवर्तन आवश्यक हो उठा। श्रीकनीरामजीकी मृत्युके बाद श्रीभीमराजजी अकेले रह गये। इसलिये आसाम प्रान्तके विस्तृत व्यापारको न सँभाल सकनेके कारण, वहाँका व्यापार बन्द करना पड़ा और कलकत्तेकी दुकान (कनीराम भीमराज) का काम चालू रखकर संवत् १९५८ के सालसे सपरिवार कलकत्ते आकर रहने लगे, क्योंकि उस समय अकेले भीमराजजीको सब कामकाज देखना पड़ता था।

(ख) शिक्षा––यह आश्चर्यकी बात है कि जो आगे चलकर कई भाषाओंके इतने बड़े विद्वान् बने, उस बालकने कहीं विधिवत् पढ़ाई नहीं की। बादमें कलकत्तावासके समय तत्कालीन हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वानों एवं सम्पादकोंके सम्पर्कमें आकर इन्होंने हिन्दी साहित्यका समुचित ज्ञान प्राप्त किया। अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान भी कलकत्तेमें ही व्यक्तिगत रूपसे श्रीअयोध्याप्रसादजीके पास अध्ययन करके प्राप्त किया। अन्य भाषाओंका ज्ञान इन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभासे समय–समयपर बढ़ाया। उपनयन–संस्कार पं० श्रीछोटेलालजी द्वारा सम्पन्न हुआ।

विवाह

उन दिनों कम उम्रमें विवाह होनेकी प्रथा थी। बालक हनुमानप्रसादकी आयु १२ वर्ष की थी। व्यापारमें इनकी दूकानकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। दादीको इन्हें दूल्हारूपमें देखनेकी बड़ी इच्छा थी इसलिये रतनगढ़ निवासी श्रीगुरुमुखरायजी ढंढ़ारियाकी पुत्री महादेवीबाईसे सगाई तय कर दी। इस समयका प्रसंग बड़ा ही रोचक है, जिसमें देवी रामकौरका आदर्शरूप सामने आता है। विवाहके पूर्व ही महादेवी चेचकसे आक्रान्त हो गयीं। फलस्वरूप सारे शरीरमें चेचकके धब्बे रह गये। सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया। इनके माता–पिता चिन्तामें निमग्न थे कि अब सगाई निश्चय ही छूट जायेगी। पर देवी रामकौरने स्पष्ट कह दिया कि जैसे कन्याका वाग्दान एक बार ही

होता है वैसे ही मैं अपने पौत्रका वाग्दान महादेवीके लिये कर चुकी हूँ। उसके जीवित रहते मैं अपने वचनको कदापि नहीं छोड़ूँगी। प्रथम जेष्ठ कृष्ण ४ सं० १९६१को विवाह संस्कार धूम–धामसे सम्पन्न हुआ। पर विधिका विधान और ही था। यह दाम्पत्य–सुख अधिक दिन न रह सका। विवाहके ५ वर्ष बाद महादेवीने प्रथम पुत्रका मुँह देखा पर स्वयं सदाके लिये आँखें मूँद ली। उस दुःखको भूलनेके पहले ही नवजात शिशु हठात् परलोक चल बसा। वि० सं० १९६८ में देवी रामकौरने राजगढ़ निवासी श्रीमँगतूरामजी सरावगीकी पुत्री सुवटीबाईसे द्वितीय विवाह सम्पन्न कराया। अब पितृ वियोग सामने आया। श्रावण कृष्ण ५ सं० १९६९ के दिन रतनगढ़में श्री भीमराजजीने पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ दिया। श्राद्ध–आदिसे निवृत होकर ये कलकत्ते आये और दूकानका सारा भार मनोयोगेसे सँभालने लगे। वि० सं० १९७२ में सुवटीबाईने एक पुत्र प्रसव किया। जन्मके दो ही दिन बाद शिशु परलोक चल बसा और उसके ६ महीने बाद माँ भी चल बसी। देवी रामकौरपर इन सभी घटनाओंका बड़ा आघात लगा। वे गृहस्थकी समस्याओंसे बड़ी चिन्तित थीं। पौत्र जिसकी उम्र अभी २३ सालकी थी पुनः गठ–बन्धनके लिये दबाव डालने लगीं। भाईजी उस समय देश–सेवाकी धुनमें मस्त थे पर दादीके प्यारभरे आग्रहके सामने सिर झुका दिया। दादीने आपने पौत्रका तीसरा विवाह अक्षय तृतीया वि० सं० १९७३ को श्रीसीतारामजी सांगानेरियाकी पुत्री रामदेईसे किया। श्रीरामदेईने गृहलक्ष्मीके रूपमें अंततक साथ निभाया। इन्होंने भाईजीके मनमें अपना मन मिलाकर उनके हर कार्यमें कन्धेसे कन्धा मिलाकर सतत् सहयोग दिया। अपना अलग अस्तित्व रखा ही नहीं।

भाईजीका चरित्रबल एवं देवी सरोजनीका अलौकिक आत्मोत्सर्ग *

आर्य रमणीका जीवन कैसा होता है, आज इस विलासिताके युगमें समझ लेना कुछ कठिन है। पूर्वकालकी बात है मुगल सेना एवं राजपूत वीरोंमें सारे दिन युद्ध हुआ। रणभूमि शवसे पाट दी गयी। अनेक राजपूत

* यह पूरा प्रसंग पूज्य बाबाके हाथसे लिखा हुआ है। वे स्लेटपर लिखते थे, पिताजी उसकी नकल कर लेते थे।

वीर, अनेक क्षत्रिय युवक अपनी मातृभूमिकी गोदमें चिरनिद्रामें सो गये। संध्याकालीन सूर्यकी रश्मियोंमें उनका निर्मल प्रशान्त मुख चमक रहा था। मातृभूमिके लिये अपना जीवन अर्पण करनेवाले उन वीरोंके साथ ही हजारों मुगल वीर सो रहे थे। सम्पूर्ण नीरवता थी। हाँ, कुछ काक एवं गिद्धोंका दल एकत्रित हो गया था और उनकी कर्कश ध्वनि बीच–बीचमें इस पुनीत नीरवतासे टकराती और अन्तरिक्षमें विलीन हो जाती थी। सूर्यदेव इस दृश्यको अधिक देर नहीं देख सके। अस्ताचलमें जा छिपे। धीरे–धीरे घोर अन्धकार छा गया।

मुगल सेना कुछ दूरपर ही पड़ाव डाले हुए थी और चौकन्ना थी। कहीं प्राणोंकी बाजीसे खेलनेवाले वीरोंकी कोई टुकड़ी अवशिष्ट रह गयी हो और फिर भिड़ना न पड़े। इसीलिये बारम्बार दृष्टि निर्वीड़ अन्धकारको चीरती हुई उस शवपुंजकी ओर जा लगती। अवश्य ही थकी आँखें कुछ क्षण ही खुली रह सकीं। रात्रिके प्रथम पहरका अवसान भी न हो पाया था कि सेना गम्भीर मुद्रामें बेसुध हो गयी। एक जग रहा था। गठीला जवान था। प्रत्येक अंगसे रोब टपक रहा था। वह स्वयं दिल्लीश्वर था। अपने आपको शस्त्रोंसे पहले सजाया, नीचेसे ऊपरतक लैस होकर, पर अपने इस वीर वेशको चादरसे छिपाकर पैरोंको अत्यन्त धीमे धीमे रखते हुए चल पड़ा। शवपुंजके पास आ पहुँचा। उसने देखा––तेरह वर्षकी एक सुन्दर सुकोमल बालिका अपने हाथसे एक प्रदीप लेकर शवोंके बीच घूम रही है। वह प्रत्येक शवके पास जाती है, दीपकके प्रकाशमें मुख देखती है, फिर आगे चल पड़ती है। मुगल वीर यह देखकर कुछ स्तब्ध सा हो गया। बालिकाके सुन्दर केश उसके कन्धोपर बिखरे हुए थे। मुखपर एक अनिर्वचनीय शान्ति, प्रेम एवं व्याकुलता–सी छायी हुई थी। मुगल वीरने सोचा, मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। यह स्वर्गकी अप्सरा तो नहीं है। बालिका दीपक लिये शवोंको देखती हुई उस मुगल वीरके समीप जा पहुँची थी। दीपककी ज्योतिसे मुगल वीरकी सफेद चादर चमक उठी। बालिकाके नेत्र उस ओर गये। वीरने एकबार अपने शस्त्र सुसज्जित अंगोंकी ओर देखा तथा दो कदम आगे बढ़कर बालिकाके ठीक सामने खड़ा हो गया। अब उस बालिकाने आँखे ऊपर उठायी। एक क्षणके लिये वह किंचित् सहम गई, पर दूसरे क्षण ही एक अपूर्व तेजसे उसका सम्पूर्ण अंग चमकने लगा। बालिकामें भयकी गन्ध भी न रही। मुगल वीरने विनयपूर्वक धीमी कण्ठसे पूछा––देवि ! क्या कर रही हो ? एक क्षणके लिये मौन रहकर बालिकाने

उत्तर दिया--खोजने आयी हूँ। इस बार उत्सुकतामिश्रित, पर किंचित् झिझकके साथ मुगल वीरने कहा--"इस निस्तब्ध रात्रिमें इन शवपुंजोंमें तुम किसे ढूँढ रही हो देवि ! बालिकाने इस बार तेजीसे कहा--"अपने पतिदेव, प्रियतम, प्राणनाथकी देहको खोजने आयी। इस युद्धमें आज वे धराशायी हुए हैं। उनकी देह मुझे चाहिये। उनकी देहको अपनी गोदमें रखकर इस दीपकको आंचलसे लगाकर सती हो जाऊँगी। मैं तुम्हें बड़ा भैया कहकर पुकार रही हूँ। तुम ऊपरसे कुछ लकड़ियाँ डाल देना"।

मुगल वीर उस बालिकाके तेजसे अभिभूत था। उसमें सामर्थ्य नहीं रह गयी थी कि कुछ पूछे, पर उसने सारा साहस बटोरा और बोला--देवि ! बुरा न मानना, तुम्हारी उम्र तो बहुत छोटी है। तुम्हारा विवाह कब हुआ होगा ? बालिकाने सरलतासे उत्तर दिया---"विवाह तो अभी नहीं हुआ था, सगाई हुई थी। मुगलवीरने अन्तिम प्रश्न किया--देवि ! जबतक विवाह नहीं हुआ तबतक वह आपका पति कैसे ? उसके साथ प्राण देना ....बालिका रोषपूर्ण कण्ठसे बीचमें ही बोल उठी---"चुप, सावधान ! ऐसी बात जीभपर फिर न लाना। राजपूत रमणी एकबार ही पतिका वरण करती है।"

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि देवी सरोजनीने भी अपना प्राणविसर्जन करनेके पूर्व अपने पत्रमें एक शब्दके हेरफेरसे यही बात हनुमानप्रसादजीको लिखी थी--**"हिंदू रमणी वरे एक पति"** यह सरोजनी कौन थी ? भाईजीसे उसका क्या सम्बन्ध था ? यह घटना भाईजीने अपने एक मित्रको दो बार सुनायी थी---

"सम्बत् १९६४ वि० (सन् १९०७) का वर्ष था। अपने मामाजीके बुलानेसे ग्वालन्दे होते हुए अपनी ननिहाल चाँदपुर जा रहा था। साथमें मेरे सुखलाल जमादार था। उस समय ग्वालन्देसे चाँदपुर जहाजमें बैठकर जाया करता था। अतः मैं भी जहाजपर सवार हुआ। मैं जहाजके जिस स्थानपर बैठा, भाग्यचक्रसे वहीं एक बंगाली सज्जन परिवार सहित बैठे थे। उनके साथ उनकी स्त्री और उनकी एक कन्या सरोजनी नामकी थी जिसकी आयु १३-१४ वर्षकी होगी। उसका एक छोटा भाई पाँचसे छः वर्षका था। वह भी उसके साथ था। मेरे पास कुछ मेवे थे। उनमेंसे मैंने स्वाभाविक ही कुछ मेवे उस बालकको दे दिये। उस बालकने भी वह मेवा ले लिया। थोड़ी देरमें जहाजकी एक स्टेशन लोहगंज (नारपांसा) आई।

उसी स्टेशनपर वे लोग उतरकर डोंगीमें बैठकर चले गये।"

ऊपरसे यह घटना कितनी स्वाभाविक दीखती है। प्रतिदिन न जाने कितने यात्री ठीक इसी प्रकार मिलते हैं, मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इसमें किसीको कुछ भी स्मृति नहीं रहती। पर नहीं, सरोजनीदेवीके परिवार एवं भाईजीके इस मिलनके अन्तरालमें एक पुनीत रहस्यमय घटना छिपी है, इसकी गन्धतक स्वयं भाईजी भी करीब चार वर्षतक न पा सके। इस मिलनकी स्मृतिको तो वे लोहजंग स्टेशनके जलकलरवके साथ ही विदा दे चुके थे। तबसे अनन्त नूतन स्मृतियाँ आयीं, गयीं। उनके भारसे सरोजनीके मिलनकी यह स्मृति इतनी दब गयी थी कि चंचल मनके साथ यह मधुमय साजके साथ पुनः नाच उठेगी, यह कल्पना भाईजीके लिये सम्भव नहीं थी। पर, इससे क्या होता ? भाग्यचक्र तो निरन्तर घूम रहा था। उषा आती, प्रभात हँसता, मध्याह्न रोषमें भर जाता, संन्ध्या गम्भीर हो जाती, निशा सान्त्वना देती। इन कालस्रोतकी लहरियोंपर प्रभुका मंगल विधान नियमित क्रमसे नाचता रहता था। एक क्षणके लिये इस नृत्यका विकास हुआ। एक लहर नाचती हुई आती। हनुमानप्रसादके गलेमें एक माला डाल जाती, दूसरी आती तिलक कर जाती, तीसरी आती पान खिला जाती, चौथी आकर अंजन लगाती फिर एक नयी आती आभूषण पहना जाती। इस प्रकार प्रत्येक लहर आती और लीलामय प्रभुके निर्धारित विधान भेंट देकर लौट जाती और हनुमानप्रसादजी क्या करते ? वे अपनी जीवनसंगिनीके निर्मल प्रेमकी धारामें अवगाहन करते हुए ही, विधानके आगे हँसते हुए सिर नवा देते। अस्तु।

लहरोंमें बहता हुआ एक दिन एक पत्र प्रथम श्रावण कृष्ण ६ सं० १९६९ (६ जुलाई सन् १९१२) को आया। कलकत्तेकी पगयापट्टीमें, पारखजीकी कोठीकी अपनी दुकानमें हनुमानप्रसादजी बैठे थे। रात्रिकी चादर डालकर कलकत्ता नगर विश्राम करने जा रहा था, पर हनुमानप्रसादजी जाग रहे थे। सोते भी कैसे ? अभी–अभी एक लहरीने उनकी अज्ञात चेतनासे कह गयी थी, मेरी बहन तुम्हें एक पत्र देने आ रही है, सो मत जाना भला और सचमुच दूसरे ही क्षण पत्र आया। पत्रपर किसी अज्ञात रमणीके अक्षर थे। भाईजीने पत्र खोला। वह अत्यन्त विस्तृत था। नीचे लिखा था––"सरोजनी" और पास ही लिखा था मेरे मिलनेका पता कालीघाट है। पत्रके आरम्भमें पूर्ण विवरण दिया हुआ था। किस प्रकार आप ग्वालन्दीसे चाँदपुर जहाजपर

बैठे हुए जा रहे थे और मैं पिताजीके साथ आपके समीप ही बैठी थी। लोहजंगपर मै उतर पड़ी थी और शेष पत्रमें क्या था, इसकी कल्पना पाठक मेरी असमर्थ लेखिनीकी निम्नांकित शब्दावलिसे स्वयं करें। अवश्य ही वैसा करनेसे पूर्व अपने हृदयको पवित्र पाशविक इन्द्रियसम्पर्क, इन्द्रियसुखसे सर्वथा शून्य निर्मलतम प्रेम–मन्दाकिनीकी धारामें डुबो लें, अन्यथा उस पूजनीया प्रेममयी देवी सरोजनीके मंगलमय आशीर्वादसे वंचित हो जायँगे।

इस बातको जानता था विश्वनाटकका सर्वत्र सूत्रधार और जानती थी सरोजनी। इसके बाद सरोजनीके जाननेसे जान पाये भाईजी, जो सर्वथा सरोजनीकी स्मृतितक भूले हुए थे। लोहजंग स्टेशनपर सरोजनी उतरी थी, पर उतरी थी अपना शरीर, अपना प्राण, अपना हृदय, अपना सर्वस्व हनुमानप्रसादके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित करके। पर उसका यह समर्पण खोखला न था। वह अन्तस्तलके निर्मलतम प्यारसे लबालब भरा था। इसीलिये प्रकट न हुआ। देवी सरोजनी बाह्य व्यवहारमें भी अत्यन्त कुशल थी, इसीलिये उसने प्रकटमें कुछ भी न कहकर श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ जो सुखलाल नामक जमादार था, उससे नाम और जाति सब पूछकर अपनी डायरीमें नोट कर लिया। इस बातका हनुमानप्रसादजीको भी पता न लगने दिया और न हनुमानप्रसादजीको सुखलाल जमादारने ही कहा। भाईजी उसे बिल्कुल ही भूल गये थे, किन्तु जिस देवीने अपने जीवनको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया था, वह कब भूलनेवाली थी ? उसके हृदय पटलपर तो वह मधुर मूर्ति उसी क्षणसे निरन्तर नाच रही थी। वह कैसे जीवन बिता रही होगी, इसका अनुभव किसी हृदयवान्‌को ही यत्किंचित् हो सकता है। यद्यपि उस देवीने अपने विशुद्ध और निश्छल प्रेमको किसी पर भी प्रकट नहीं किया, किन्तु उसके घरवालोंने चार वर्षके बाद सम्बत् १९६७ वि० के लगभग उसका विवाह किसी अन्य पुरुषके साथ करनेका विचार किया, तब उस देवीके मनमें बड़ी दुविधा उत्पन्न हुई। यदि वह अपने विवाहका विरोध करती है तो उसका प्रेम प्रकाशमें आ जाता है और प्रेमका प्रकाशमें आना प्रेमीके लिये कितना असाध्य होता है, संसार–आसक्त मानव उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। और यदि स्वीकृति देती है तो अपने आराध्यदेवकी वंचना होती है। सरोजनीका मन इस दुविधामें चंचल हो उठा, पर एक अचिन्त्य शक्तिने उसकी चिन्ता हर ली। उसे पथ मिल गया। प्रस्तुत होकर वह चल पड़ी। विवाहका नाटक रचे जानेमें उसने बाधा

न दी, क्योंकि उसकी दृष्टिमें उसके आराध्य देवके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष था ही नहीं। उसके अन्तरके पट खुल चुके थे। प्रेमकी निर्मल धारामें सभी मल धुल चुके थे। **"उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं"** की उज्ज्वल मूर्ति वह बन चुकी थी। मेदिनीपुर जिलेके किसी ग्राममें विवाहका नाटक पूर्ण हुआ। संसारकी दृष्टिमें वह सच्चा था, पर उसकी दृष्टिमें यह सर्वथा खेल था।

सरोजनी ससुराल पहुँची। ससुरालमें चार–पाँच महीने रही, पर रही **"चंचरीक जिमि चंपक बागा"** की तरह। अब प्रेमकी परीक्षा प्रारम्भ हुई। सतीत्व रक्षाका प्रश्न उपस्थित हुआ। सरोजनी क्या करती है ? सम्बत् १९६६ श्रावणके लगभगकी बात है। एक दिन नाटकके संसारको उसने अंतिम बार प्रणाम किया सदाके लिये बाहर चल पड़ी। हृदयमें आराध्यदेव भाईजीकी मूर्ति सान्त्वना दे रही थी बाहर श्रीभगवान्‌की कृपा रक्षा कर रही थी। सरोजनी जिस दिन अपनी माँसे बिदा होकर खेलने ससुराल जा रही थी, उस दिन तीस गिन्नियाँ माँने उसे दी थी। नाटक खेलकर जब वह अपनी वास्तविक ससुरालकी ओर चली तो उस समय भी वे ३० गिन्नियाँ उसके अंचलमें बँधी थी।

एक दिन मीरा अपने गिरधरलालको खोजनेके लिये चली थी सरोजनी भी आज अपने आराध्यदेवको ढूँढ़ने चली है। दोनोंके अन्तस्तलमें भावोंमें पूर्ण साम्य है, पर बाहर कुछ अन्तर है। सरोजनीने अपने ऊपरका भेष बदल लिया। उसने अपनेको एक सिख बालकके रूपमें सजाया और घूमने लगी। कलकत्ते पहुँची। इस विशाल नगरमें अपने आराध्यदेवको ढूँढ़ने लगी। उस समय बर्द्धवानमें बाढ़के कारण हाहाकार मचा हुआ था। पत्रोंमें उसकी सहायताके लिये सूचना निकली थी। सरोजनीने देखा कि उन्हीं समाचारोंमें उसके आराध्यदेवका नाम छपा था। नाम पढ़ते ही रोम–रोम आनन्दसे नाच उठा। पर अब मिलूँ कैसे ? ––यह प्रश्न था ? सोचती क्या स्वयं चली जाऊँ। पर दूसरे ही क्षण हृदयके अन्तस्तलमें प्रेमकी किरणें फूट पड़ती और सरोजनी निश्चय करती––भला प्रेन भी प्रकट करनेकी वस्तु होती है, ना, कभी न जाऊँगी, पर शीघ्र ही अन्तस्तल उफनने लगा। एकबार दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठासे, एकबार प्रियतमके चरणोंमें उपस्थित होकर दो–चार शब्द निवेदन करनेकी लालसासे उसके प्राण विकल हो उठे। प्रेमके आवेशमें उसे केवल एक ही पथ दीखा। वह यह कि

प्रियतमको एक पत्र लिखूँ। जहाज परके प्रथम मिलनसे लेकर आजतककी सम्पूर्ण घटना स्वामीको लिखकर भेजूँ। तब वे यदि मिलना चाहेंगे तो अवश्य आ जायँगे। इसी निश्चयका परिणाम यह पत्र है, जिसे हाथमें लिये हुए हनुमानप्रसादजी स्तब्ध बैठे हैं।

भाईजीके निर्मलतम हृदयमें भावोंकी आँधी चल रही थी। हाथका पत्र शोणित धमनियोंमें विद्युतका संचार कर रहा था। अतीतकी स्मृति चित्रपटकी भाँति सामने आ रही थी। जहाजका वह दृश्य मानों अभी–अभीका है। भाईजी भावमें विभोर होकर कुछ क्षणके लिये निश्चेष्ट हो गये। आजतक उनके जीवनको पापकी छाया तक भी स्पर्श न कर पायी थी, पूर्ण सदाचार जीवनका व्रत रहा था। अतः इस पत्रसे उनके मनमें कोई इन्द्रिय मलिन विकार तो न हुआ, सर्वथा पवित्र भाव ही उत्पन्न हुआ, पर वे अपने वर्तमान कर्तव्यको लेकर गहरे विचारमें पड़ गये। सरोजनीके पत्रके 'प्रत्येक अक्षरमें निर्मल प्रेम छलक रहा था। इस विशुद्ध प्रेमने बाध्य कर दिया। एकबार उसे दर्शन देने की प्रार्थनाको पूर्ण करनेकी पवित्र इच्छा जाग उठी। पत्रमें लिखा था—–कालीघाट मन्दिरके पास हमसे कल नौ बजे प्रातःकाल मिल सकते हैं। अतः वहीं निश्चित समयपर चल पड़े। साथमें एक मित्र थे जिनका नाम बालचन्द मोदी था। पर वह वहाँ न मिली और ये अन्यमनस्क वहाँसे लौट आये। उसी रात्रिको उपर्युक्त पतेसे एक पत्र फिर मिला, जिसमें लिखा था—–"आप जब वहाँ पहुँचे, तब मैं वहाँ थी अवश्य पर आपके साथ एक सज्जन और थे इसीसे मैं न मिली। अब आप मुझे न खोजें, मैं आपका स्थान जान गयी हूँ। मैं ही आपसे मिल लूँगी।" इसके कुछ देर बार उसी रात्रिको दूसरा पत्र मिला—–कल प्रातः आउटरामघाटके स्टेचूके पास हमसे मिलें, दूसरे दिन भाईजी उस स्थानपर जाकर उत्सुकता भरे नेत्रोंसे उस देवीको ढूँढ़ने लगे पर वह आज भी न मिली। हाँ उस स्टेचूके पास कागजकी एक चिट मिली, जिसपर लिखा था—–"आपके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नहीं है। अब मैं आकर स्वयं मिल लूँगी।"

वह दिन बीता। संन्ध्या हुई, रात्रि हुई। भाईजीके मनमें एक चिन्ता–सी लगी थी। रात्रिके समय वे दुकानसे घर लौट रहे थे। घर हरिसन रोड पर था। पथमें घरसे थोड़ी ही दूरपर एक शिवमंदिर था। वहीं एक सिख बालक मिला उसने अपना परिचय दिया—–"मैं सरोजनी हूँ। यह

कृत्रिम वेश है।" भाईजीने भी पहचान लिया। सचमुच वही बालिका है। परिचय होनेके बाद रमणी सुलभ सौन्दर्य उस सिख वेशमें छिप ही कैसे सकता था ?

अपने प्रियतम स्वामीको पाकर प्रेममूर्ति सरोजनीकी क्या दशा हुई होगी——इसका चित्रण करना लेखनीसे असंभव है। इतना लिख देना सम्भव है, आवश्यक भी है कि यह निर्मल विशुद्ध प्रेम था। इसमें भोगवासनाकी गन्ध तक भी नहीं थी। इसलिये दोनों परस्पर प्रेममें डूबकर बात करते हुए भी किसीने भी किसीके शरीरका किंचित्मात्र स्पर्श तक भी न किया। इस मिलनमें इसकी आवश्यकता भी न थी, क्योंकि यह प्रेमका मिलन था, कामका उद्दाम उच्छवास नहीं।

कई घण्टेंतक बातें हुई। सरोजनीके प्रत्येक शब्दसे सत्य झर रहा था। उसकी समस्त चेष्टायें आन्तरिक सरलता, आन्तरिक विशुद्ध प्रेमसे ओतप्रोत थी, उनमें कृतिमताकी गन्ध भी नहीं थी। भाईजीका हृदय सरोजनीके प्रति पवित्र अनुरागसे भर उठा, पर शरीर तो वे अपनी विवाहिता पत्नीके हाथोंमें दे चुके थे। धर्मतः वैसे सम्बन्धकी दृष्टिसे उनके शरीरपर उनकी एकमात्र विवाहिता पत्नीका ही अधिकार था। दी हुई वस्तुको छीनकर उससे फिर दूसरेको दे देना सच्चे सज्जनोंने सीखा ही नहीं। अतः सरोजनीके अनमोल प्रेनकी भेंटमें शरीर न्यौछावर करनेका प्रश्न समाप्त हो चुका था। अवश्य ही भाईजीके मन, प्राण उस देवीके विशाल प्रेमसागरसे जा मिले। सरोजनीने अनुभव किया, उसके हृदयके अन्तस्तलमें अभी–अभी जो प्रेमके बुदबुदे उठ रहे थे, वो प्रियतम स्वामीके प्राणोंका संयोग पाकर उत्ताल तरंगें बन गये हैं।

अब बाह्य जगत्की व्यावहारिक समस्या हल करनी थी। भाईजीने अपने हृदयके प्रेमसे सानकर कहा——"देवि ! तुम यहीं रहो, पर एक अलग मकानमें। तुम्हारे जीवन यापनकी सारी व्यवस्था हो जायगी, सारा प्रबन्ध हो जायगा।" पर सरोजनी वास्तविक प्रेम करना चाहती थी। उसके जीवनमें स्वसुखवासना थी ही नहीं। स्वामीका सुख ही उसके जीवनका सच्चा सुख था। भविष्यमें स्वामीके सुखमें व्याघात न हो, इस उद्देश्यसे बोली——कदाचित् आपके हमारे इस निर्मल प्रेममें आगे चलकर कोई कलुषित विचार उत्पन्न हो जाय तो आश्चर्य नहीं। मेरा दूर रहना ही उचित है, आवश्यक है। अवश्य ही आपके प्रति मेरे प्रेममें कामवासना, अंगसंगकी इच्छाकी रंचमात्र

गन्ध भी हेतु नहीं है।

जाते समय सरोजनी अपने आराध्यदेवको अपनी स्वर्णनिर्मित अँगूठी देती गयी। यह अँगूठी मानो उसके अर्पित हृदयके प्रतीक उसकी अँगुलीमें रहती थी, पर हृदय देकर प्रतीक रखना प्रेममें कलंक है, इस भावसे प्रतीकको भी वहीं रख दिया, जहाँ हृदय था।

कुछ दिनों बाद सरोजनीके प्रेममय हाथका अन्तिम पत्र आया। उसमें लिखा था––"शरीर–वियोग व्यथा सहनेमें असमर्थ है, अब मैं इसे नहीं रखूँगी।" भाईजीने पत्र पाकर उसे ढूँढ़नेकी बहुत चेष्टा की, पर कोई अनुसन्धान न मिला। बादमें ज्ञात हुआ कि उसने प्रयागमें जाकर त्रिवेणी संगममें जल समाधि ले ली।

प्रेम–प्रतिमा देवी सरोजनीके हृदयकी वह प्रतीक अँगूठी, उसको स्वर्णमेडल (तमगा) के रूपमें परिणत किया गया। प्रतीकके आकारमें अन्तर न आया। पहले भी गोल था, अब भी गोल रहा। पर खोखला था, होना ही चाहिये। हृदय भी प्रियतम वियोग वेदनामें घुल घुलकर खोखला हो गया था और आज मानो उसके प्रियतमके पिघले हुए प्राण उस खोखले स्थलके पास जा पहुँचे, पोल भर गया। वह मेडल नहीं था, दो पिघले हुए, एकमेक हुए प्रेमिल हृदयोंका प्रतीक था। मेडल जालन्धर कन्या महाविद्यालयकी एक कन्याको भाईजीने पुरस्कारमें दिया। उसकी एक ओर खुदा था––**"सरोजनीके स्मृत्यर्थ"** और दूसरी ओर लिखा था––**"हिंदू रमणी वरे एक पति।**

बहुत वर्षों बाद इस घटनाकी चर्चा करते हुए भाईजीने कहा कि सरोजनीके विशुद्ध प्रेमका आदर करते हुए भी मेरे मनमें लौकिक वासनाकी गंध भी पैदा नहीं हुई एवं सरोजनी भी आर्य–मर्यादापर दृढ़ रही।

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे मिलन

परम संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका एक ऐसे मारवाड़ी संत थे, जिन्हें लोग जानकर भी नहीं पहचान पाते थे। उनका रहन–सहन, वेष–भूषा, मारवाड़ी–मिश्रित हिन्दी बोली, सब इतने साधारण थे कि लोग निकटसे देखकर भी नहीं पहचान पाते थे कि ये आध्यात्मिक जगत्‌की विशेष विभूति हैं। साधारणतया सत्संगी लोग इन्हें 'सेठजी'के नामसे ही पुकारते थे। सत्संग करानेके उद्देश्यसे ये स्थान–स्थानपर जाया करते थे। भाईजीने भी अपने व्यापारिक जीवनके बीच इनकी प्रशंसा सुनी थी। सं०

१९६७–६८ (सन् १९१०–१९११) में श्रीसेठजीका कलकत्तेमें आगमन हुआ। संयोगवश उनके सत्संगका आयोजन पगयापट्टीमें श्रीहरिबक्सजी साँवलकाकी दूकानपर हुआ। इनकी दूकान भाईजीकी दूकानके सामने थी। अतः भाईजी भी इनके सत्संगमें गये। उनका प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन, दम्भहीन अन्तःकरण, अनुभूतिपूर्ण आध्यात्मिक उद्‌गार भाईजीको आकर्षित करने लगे। यद्यपि उस समय भाईजीके जीवनमें राजनीतिक एवं सामाजिक विचारोंकी प्रधानता थी, फिर भी श्रीसेठजीके सत्संगमें भाईजीको ऐसा आकर्षण, ऐसा रस मिला कि वे उनके कलकत्ता आनेपर नियमित रूपसे सत्संगका लाभ उठाने लगे। साथ ही इनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अपने मित्रोंको भी इनसे मिलाने लगे। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीबनारसीप्रसादजी झूँझनूवाला आदिको इनसे मिलाया।

आगे चलकर तो भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिकी प्रेरणासे श्रीसेठजी और भाईजीका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। भाईजीके जीवनको एक ही अध्यात्मपथपर सुरक्षित रखनेका सारा श्रेय उन्हींको है।

देश–प्रेमके प्रवाहमें

भाईजीकी रुचि सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियोंमें तो पहलेसे ही थी, पिताजीका नियन्त्रण न रहनेसे इन कार्योंमें पूरी स्वतंन्त्रतासे भाग लेने लगे। वैश्य–महासभा, हिन्दू–क्लब, हिन्दी–साहित्य–परिषद, सावित्री कन्या–पाठशाला, मारवाड़ी सहायक समिति (मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी), कलकत्ता हिन्दू महासभा आदिमें इनका प्रमुख सक्रिय सहयोग था। यह वह समय था, जब देशमें स्वतन्त्रता–आन्दोलन चल रहा था एवं बंगालका स्थान उसमें विशेष उल्लेखनीय था। भाईजी जैसे संवेदनशील व्यक्तिके लिये अपनेको उससे अलग रखना असम्भव था। इनका चित्त उत्तरोत्तर देश–प्रेमसे भरता जा रहा था, उधर दूकानकी सँभाल शिथिल होती जा रही थी। भाईजीको उग्रवादी सिद्धान्त ही समयोचित जान पड़े। स्थान–स्थानपर गुप्त–समितियाँ बनने लगी। भाईजी भी एक ऐसी ही गुप्त–समितिके सक्रिय सदस्य थे। इसकी सारी कार्यवाही गोपनीय रखी जाती थी। इस समितिके कुछ सदस्योंका बंगाली क्रान्तिकारी समितिसे सम्बन्ध था, जिसमें श्रीविपिनचन्द्र गांगुली, श्रीवैद्यनाथ विश्वास आदि प्रधान थे। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया समितिके प्रमुख थे एवं समितिकी बैठकें

श्रीफूलचन्दजी चौधरी, बेलूर तथा बिरलाकोठी, लिलुआमें हुआ करती थी। उस समय आन्दोलनका उद्देश्य था—देशके लिये तन–मन–धन, सर्वस्व अर्पण कर देना। इससे भाईजीको नियमानुवर्तिता, संयम, त्याग और सादगीकी क्रियात्मक शिक्षा मिली। इसी प्रसंगमें उन्हें श्रीअरविन्द, श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीविपिनचन्द्र पाल, श्रीचितरञ्जन दास, श्रीवीरेन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्ती, श्रीब्रह्मबान्धव उपाध्याय, श्रीसत्याचरण शास्त्री, श्रीसखाराम गणेश देउस्कर, श्रीशारदाचरण मित्र, श्रीकृष्णकुमार मिश्र आदि विभिन्न क्षेत्रोंके महानुभावोंसे बार–बार मिलने तथा बहुतोंके साथ अन्तरंग सम्पर्कमें आनेका सुअवसर मिला। इसीके साथ उस समयके कलकत्ताके धुरीण साहित्यिक पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र, पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्र, श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त, पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, श्रीपाँचकड़ी बनर्जी, पं० झाबरमलजी शर्मा, पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे, श्रीरामकुमारजी गोयनका, श्रीबाबूविष्णु पराड़कर आदि विद्वानों एवं सफल सम्पादकोंके बहुत निकट सम्पर्कमें आये। उसके कुछ समय बाद ही इनका महामना पं० मदनमोहन मालवीय, डा० राजेन्द्रप्रसाद, महात्मा गाँधी, श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन, लोकमान्य तिलक आदिसे निकटका सम्बन्ध हो गया।

सं० १९७१ (सन् १९१४) के लगभग मालवीयजी कलकत्ता पधारे तो भाईजीने काशी हिन्दू विश्व–विद्यालयके लिये लोगोंसे मिलकर आर्थिक सहायता भी दिलवायी। उसी समयसे इनसे स्थायी प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो गया। सं० १९७२ (सन् १९१५) में महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीकासे लौटते समय रंगून होकर कलकत्ता पधारे, तो भाईजीने हिन्दू–महासभाके मन्त्रीके रूपमें उन्हें अभिनन्दन–पत्र दिया। आगे चलकर गाँधीजीसे घर जैसा सम्बन्ध हो गया था।

कलकत्तेकी अलीपुर जेलमें

गुप्त–समितिमें सक्रिय भाग लेने तथा क्रान्तिकारियोंके मुकदमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेसे भाईजीका नाम भी पुलिसकी डायरीमें आ गया। इनकी गतिविधिका निरीक्षण होने लगा। ये बिना किसी भयके अपने कार्यक्रमोंमें भाग लेते रहे। बन्दी होनेके एक मास पूर्व इनको सूचना मिल गयी कि सरकार कोई–न–कोई उपयुक्त अवसर पाकर इन्हें बन्दी बनानेकी चेष्टामें है। इसे जानकर भी ये, न तो कहीं भागकर छिपे, न अपने

कार्यक्रमोंसे विरत हुए। अचानक एक दिन सदल-बल पुलिस इनकी क्लाइव स्ट्रीट स्थित दूकानपर पहुँच गयी एवं श्रावण कृष्ण ५ सं० १९७३ (२० जुलाई, १९१६) को राजद्रोहके अपराधमें इन्हें बन्दी बनाकर ले गयी। इनके मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया एवं श्रीफूलचन्द चौधरीको भी बन्दी बना दिया गया। आरम्भमें पन्द्रह दिन तो इन लोगोंको डुराण्डा हाउसमें रखा गया, उसके पश्चात् अलीपुर जेलमें स्थानांनतरित कर दिया।

अभी इनका विवाह हुए तीन महीने भी नहीं हुए थे तथा घरमें अकेली स्त्रियाँ थी। यह पता नहीं था कि कारावासमें कितने दिन रहना पड़ेगा।, इन सब बातोंको सोचकर एक बार तो ये घबरा गये। उस समय मनकी क्या दशा थी उसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें पढ़ें--

'ज्वालाप्रसादजी आदि हम लोग कई साथी थे। पर पकड़े जानेके दिन ही जेल जानेपर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा हृदय तड़पड़ाने लगा। मेरे हृदयमें व्याकुलता छा गयी, चारों ओर अन्धकार दिखाई पड़ता था। जब कोई सहारा न मिला तो अन्तमें मुझे उस परमपिता परमेश्वरका नाम स्मरण हो आया। 'अशरणके शरण' को स्मरण करना ही मुझे एक अवलम्ब मालूम हुआ। मैंने नामकी रट लगा दी। भजन करनेकी देर थी कि शान्तिका आविर्भाव होने लगा। धीरे-धीरे व्याकुलता दूर हो गयी, हृदयमें शान्तिका साम्राज्य छा गया। इसी समय मुझे नामका माहात्म्य मालूम हुआ। मुझे मालाकी आवश्यकता मालूम पड़ी। मेरी उन्नतिका प्रथम सूत्रपात यहींसे हुआ।'

इन्होंने पहरेदारसे माला माँगी। उसने माला देनेमें तो अपनी लाचारी प्रकट की, किन्तु एक और उपाय बताया कि गिनती करके माला पूरी होनेपर इस कीलसे दीवालपर एक लकीर खींच दो। इन्हें एक कील दे दी। इनका जप चलने लगा।

राजद्रोहका मुक़दमा चलानेकी सरकारने पूरी चेष्टा की, परन्तु ठोस आधार न मिलनेसे सम्भव नहीं हो सका। सन्देहके आधारपर लम्बे समयके लिये जेलमें रखना सम्भव नहीं था। अतः भारत-रक्षा-विधानके अनुसार साथियों सहित इनको अनिश्चित कालके लिये नजरबन्द करनेका आदेश दे दिया। सभी साथियोंको विभिन्न-विभिन्न स्थानोंपर भेजा गया। इनको बाँकुड़ासे २४ मील दूर शिमलापाल नामक ग्राममें जानेका आदेश मिला। जानेसे पूर्व एक घंटे घरवालोंसे मिलनेकी अनुमति मिली। उस एक घंटेके मिलनमें घरवालोंकी मनःस्थितिका अनुमान लगाया जा सकता है।

शिमलापालमें नजरबन्दी एवं साधना

भगवान् कुछ छीनते हैं, तो उससे अनन्त गुना देते भी हैं। वे देनेके लिए ही छीनते—से दिखाई देते हैं। भगवान्ने भाईजीके देश—प्रेमकी सारी उमंगे छीन ली, मित्र—मण्डली तोड़ दी, प्रियजनोंसे अलग कर दिया, परिवारके किसी व्यक्तिको साथ नहीं रहने दिया, पर इनके बदलेमें ऐसी वस्तु दी जिसकी तुलनामें विश्वकी समस्त लोभनीय वस्तुएँ सर्वथा तुच्छ, अत्यन्त नगण्य हैं। वह वस्तु थी——'भगवान्का मंगलमय स्मरण'। कलकत्तेकी दिनचर्या कुछ और थी, शिमलापालकी कुछ और ही।

नजरबन्दीके जीवनमें श्रीभाईजीमें एक विलक्षण परिवर्तन हुआ। शिमलापालका जीवन एक कठोर साधनाका समय बन गया। सरकारके नियमके अनुसार ये गाँवके बाहर जा नहीं सकते थे। शामके बाद गाँवके भी किसी व्यक्तिसे नहीं मिल सकते थे। शिक्षा सम्बन्धी किसी व्यक्तिसे न मिले। शामके छः बजेसे प्रातः छः बजे तक झोपड़ीसे बाहर न जायँ, जो भी पत्र आवे वह पुलिसके मार्फत। सरकार इन्हें खर्चेके लिये अस्सी रुपये मासिक देती थी जिसमेंसे ये तीस रुपये अपने खर्चके लिये रखकर बाकी पचास रुपये अपनी दादीके पास परिवारका खर्च चलाने भेज देते। उन दिनों भाईजी प्रायः तीन—चार बजे प्रातः उठ जाते एवं तीस माला 'हरे राम' षोडशमन्त्रका जपकर फिर शौच स्नानके लिये जाते। नहाकर सन्ध्या—वन्दन, गीता, विष्णुसस्त्रनामका पाठ करके रविवर्माके बनाये हुए ध्रुव—नारायणके चित्रके आधारपर ध्यान करते। थोड़े ही दिनोंमें वृत्ति ध्येयाकार बनकर ध्यानका इतना सुन्दर अभ्यास हो गया कि प्रातः, दोपहर एवं रात्रिमें तीन—तीन घंटे ध्यानमें बीतने लगे। शेष समय नाम—जपमें एवं स्वाध्यायमें लगाते। बहुत थोड़े समयमें शरीरके आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर शेष सारा समय इसी तरह साधना—तपस्यामें व्यतीत करते। आगे चलकर छः महीनेमें ध्यानका इतना अभ्यास हो गया कि आँखें खुली रहते हुए जिस वस्तुके स्थानपर भगवान्की धारणा करते, वहीं श्रीविष्णु भगवान्की मूर्ति दिखलायी देने लगती। बादमें भाईजीने कई बार यह बताया कि यह कोई सिद्धि या चमत्कार नहीं है, जो भी इस तरह अभ्यास करेगा, उसे ऐसा अनुभव हो सकता है।

नाम—जपमें इतना रस आने लगा कि नाम—जप छूटना सहन नहीं होता था। मनमें भावना आती कि कोई मुझसे बात न करे एवं यदि

आवश्यक बात करनी ही पड़े तो मुझे बोलना न पड़े। जीभ सतत् नाम–जपमें लगी रहती। जब कभी आनेवाला व्यक्ति बहुत देर बैठ जाता तो विनम्र शब्दोंमें बोल देते––देखिये मैं तो निकम्मा आदमी हूँ, बहुत देर हो गयी, आपको काम होगा, अतः आप पधारिये। इनकी चेष्टा यही रहती कि कम–से–कम लोगोंके सम्पर्कमें आना पड़े। नाममें धन–बुद्धि हो जानेसे ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

उस समय इनके द्वारा किसीके प्रति यदि रूखा व्यवहार हो जाता तो इन्हें बड़ा दुःख होता। एक दिनकी बात है, ये स्वाध्यायमें तल्लीन थे। एक सज्जन चाकू माँगने आये। इन्होंने स्वाध्यायमें विघ्न न पड़े इस दृष्टिसे कह दिया––अभी नहीं, पीछे ले जाइयेगा। वे सज्जन तो चले गये पर इनको इतना दुःख हुआ कि ये दौड़कर उनके पास गये, चाकू देकर उनसे विनम्र शब्दोंमें क्षमा याचना करके उन्हें संतुष्ट किया। इसी समय इन्होंने नारद–भक्ति सूत्रोंकी हिन्दी टीका की। यह आगे चलकर कुछ परिवर्तन–परिवर्द्धनके साथ गीताप्रेससे 'प्रेम दर्शन' नामसे प्रकाशित हुई। इन्होंने इतनी छोटी उम्रमें प्रेमरूपा भक्तिकी इतनी गम्भीर व्याख्या की, जो कि चिरकालके लिये एक मनन करने योग्य पुस्तक बन गयी।

इस प्रवास कालमें एक और सेवा–कार्यमें ये समय लगाते––वह था दवा बाँटनेका। जो सिविल सर्जन इन्हें देखने आते थे उन्हींके सहयोगसे इन्होंने कुछ होमियोपैथिक दवाएँ एवं पुस्तकें मँगा ली एवं उसीके आधारपर रोग–ग्रस्तोंकी सेवा करने लगे। बादमें इनकी धर्म–पत्नीको भी सरकारने रहनेकी अनुमति दे दी एवं वह भी इस सेवा–कार्यमें हाथ बँटाने लगी। सच्ची सेवा–भावना होनेसे भगवान्‌ने कल्पनातीत सफलता दी। एक बार वहाँ हैजा फैला, उसमें इकसठ व्यक्तियोंकी इन्होंने चिकित्सा की, जिसमेंसे अट्ठावनको लाभ हुआ। एक मुसलमान बहुत वर्षोसें गूँगा था, उसके घरवाले दवाई दिलाने लाये। पहले तो ये निर्णय नहीं कर सके कि कौन–सी दवा दें, फिर पुस्तकसे कुछ लक्षण मिलाकर दवाई दे दी। इनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही जब तीन दिन बाद बहुत भीड़के साथ वह व्यक्ति बोलता हुआ आया एवं लोग इन्हें बधाई देने लगे। वहाँके लोगोंसे, पुलिसवालोंसे, सभीसे बहुत ही प्रेमका, घर–सा सम्बन्ध हो गया था।

एक और विलक्षण अनुभव इन्हें हुआ। एक बार इन्हें समाचार मिला कि इनकी दादीजी कलकत्तेमें बीमार हैं एवं इनसे मिलना चाहती हैं। ये

नियमानुसार बाहर जा नहीं सकते थे। दादीजीके विशेष स्नेहके कारण इनकी उनसे मिलनेकी तीव्र इच्छा हो गयी। सरकारको तार दिया पर अस्वीकृति आ गई। इनके मनमें बड़ी व्याकुलता हुई एवं इसी निमित्तसे भगवन्नाम जप आरम्भ कर दिया। उसी दिन एक मुसलमान डिप्टी कलक्टर मुआयना करने आये, उनको भाईजीने सारी बातें कही। वे बड़े सहृदय थे, उन्होंने कहा—आपके लिये कल ही आर्डर आता है। इन्हें विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि आर्डर गर्वनर ही दे सकता था। ये अपने नाम–जपमें लग गये। दूसरे ही दिन सात दिनके लिये पेरोलपर जानेकी आज्ञा मिल गई एवं ये आश्चर्यचकित हो भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए उसीमें डूब गये।

इस नजरबन्दीके जीवनमें भाईजी साधनाके सोपानोंपर बढ़ते ही जा रहे थे। वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयी थीं। ईक्कीस मासकी अवधिके बाद इन्हें सरकारका विमुक्ति आदेश मिला कि चौबीस घंटेके अन्दर बंगाल छोड़ दो।

पौने दो वर्ष शिमलापालमें रहकर सचमुच ही भाईजीने एक नया परिवार बसा लिया था। ग्रामवासियोंके सुख–दुःखमें हाथ बँटाकर, उनकी सेवा करके इन्होंने उनके हृदयपर अधिकार कर लिया था। सरकार द्वारा नजरबन्दीकी समाप्तिके आदेशकी सूचना जब वहाँके लोगोंको मिली तो वे स्तब्ध रह गये एवं उनको कष्टकी प्रतीति होने लगी। आह, जो प्रतिदिन उनकी सार–सँभाल करता था, अपने हाथोंसे दवा देता था, जिसके पास अपना रोना सुनाकर हृदयको हल्का करते थे, जो सबको प्यार–सम्मान देता था, वह उनके बीचमेंसे हमेशाके लिये चला जायगा। ग्रामवासियोंके आँखोंसे आँसू रुक नहीं सके और सबने भाईजीको घेर लिया। उधर बाँकुड़ा जानेके लिये बैलगाड़ी तैयार खड़ी थी। ये हाथ फैलाकर आन्तरिक स्नेहसे एक–एकको हृदयसे लगाकर सान्त्वना दे रहे थे, उनके आँसू पोंछ रहे थे। इन्होंने सबसे अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगी और आशीर्वाद चाहा कि जीवन भगवान्‌की ओर तीव्र गतिसे बढ़े। सबने हृदय भरके आशीर्वाद दिया। दोनों बैलगाड़ीपर बैठे। गाड़ी चली, लगता था शिमलापालवासियोंका हृदय चला जा रहा है—आगे–आगे गाड़ी जा रही थी और पीछे–पीछे चल रहा था—शिमलापालका जनसमूह, आबाल–वृद्ध नर–नारियाँ। भाईजी हाथके इशारेसे सबको लौट जानेका संकेत कर रहे थे, पर भाव–प्रवाहका बाँध टूटनेपर उसकी गतिमें विराम आना कठिन होता है। शिमलापाल गाँव बहुत पीछे छूट गया था। भाईजीको ग्रामवासियोंके लौटनेकी चिन्ता हुई।

इन्होंने साहस बटोरा और अवरुद्ध कण्ठसे अस्पष्ट वाणीमें हाथ जोड़कर प्रार्थना की—भाइयों ! बहुत दूर चले आये, अब लौट जाइये; अब आगे मत चलिये। आपलोग कितनी दूर चलेंगे ? आपलोगोंका स्नेह–प्यार मैं जीवनभर स्मरण रखूँगा। वह मेरे जीवनकी परम निधि है ....। अन्तस्तलके निकले शब्दोंका ग्रामवासियोंपर प्रभाव पड़ा और वे वहीं रुक गये। भाईजी ग्रामवासियोंकी ओर मुँह किये उनको निहारते रहे। कई घंटोंकी यात्राके पश्चात् वे बाँकुड़ा पहुँचे। वहाँ सम्बन्धियों और मित्रोंसे मिलकर रेलसे आसनसोल आये। दादी तथा अन्य कुटुम्बी पहलेसे ही आसनसोल पहुँच गये थे। सभीको साथ लेकर वहाँसे सीधे रतनगढ़के लिये रेलद्वारा प्रस्थान किया।

बम्बईका जीवन

भाईजी सपरिवार रतनगढ़ पहुँच गये पर वहाँ घरके सिवा और था ही क्या ? दादाजीकी कमाई शिलाँगमें भूकम्पके भेंट चढ़ गई थी। कलकत्तेकी वृत्तिसे ही कुछ मिला वह राजनीति, समाज–सेवा और संत–महात्माओंके समर्पित हो गया। पिताजीके जानेके बाद कलकत्तेकी दूकान भाईजी सँभालते थे, पर इनकी अनुपस्थितिमें वहाँ केवल कर्ज ही बचा था। इस अव्यवस्थित स्थितिमें पारिवारिक जीवन–निर्वाहकी समस्या सामने थी। भाईजीके मनमें कोई उद्वेग नहीं था, क्योंकि ये सब बातें पहले सोचकर ही राजनीतिमे प्रवृष्ट हुए थे। अनुकूल पत्नी और सहिष्णु दादीके कारण दिन हँसते–हँसते कट रहे थे। पर वृत्तिके लिये कुछ व्यवस्था तो करनी ही थी। इसी सोच–विचारमें थे कि एक दिन अचानक सेठ जमनालालजी बजाजका पत्र मिला कि तुम बम्बई चले आओ। कोई काम शुरू कर दिया जायगा। पत्र मिलनेके एक–दो दिन बाद ही बम्बई जानेका निश्चय कर लिया। मुर्हूत दिखाकर भाद्र सं० १९७५ (अगस्त, १९१८) में ये अकेले बम्बई चले गये। वहाँ अपनी बुआके यहाँ ठहरे। दूसरे दिन श्रीजमनालालजी बजाजसे मिलने गये। उनके स्नेहको देखकर वे गद्गद् हो गये। यह स्नेह–सम्बन्ध निरन्तर बढ़ता ही रहा।

सर्वप्रथम गुलाबरायजी नेमाणीके साझेमें रुईकी दलालीका कार्य आरम्भ किया। तीन–चार मासके बाद शेयरोंकी दलालीकी ओर झुकाव हुआ और श्रीमदनलालजी चौधरीके साझेमें शेयरोंकी दलालीका कार्य करने लगे। यह काम बारह महीने चला पर विशेष आमदनी नहीं हुई। नया

आयोजन सोचने लगे। श्रीजमनालालजीके कौटुम्बिक भाई श्रीगंगाविष्णुके साथ 'गंगाविष्णु हनुमानप्रसाद' के नामसे शेयरोंकी दलाली करने लगे। इसमें भी लाभ हुआ पर परिवारके आनेसे बम्बईमें खर्च भी बढ़ गया था। रामकौर जैसी दादी और भाईजी जैसे पौत्रकी जोड़ी मिल जानेसे दान–पुण्य भी बहुत बढ़ गया था। सं० १६७७ (सन् १९२०) में 'ताराचन्द घनश्यामदास' फर्मके मालिक श्रीबालकृष्णलालजी एवं श्रीश्रीनिवासदासजी पोद्दारके साझेमें 'एस. डी. पोद्दार' के नामसे शेयरोंकी दलालीकी नई व्यवस्था हुई। लाखों रुपयोंका व्यापार होने लगा। अचानक तीन लाख रुपये व्यापारियोंसे लेने रह गये। दो लाख तो किसी तरह आये पर एक लाख तो नहीं आये। मुनीमोंने भाईजीकी शिकायत की। किन्तु श्रीनिवासदासजीने मुनीमोंको डाँट दिया---मेरी सम्मतिसे सब कार्य हुआ है। घाटा हुआ तो हो गया। भाईजीके हृदयपर इस घाटेका गहरा धक्का लगा और वे रुग्ण हो गये। स्वास्थ्य–सुधारके लिये नासिक जाना पड़ा। वहाँ एक मास रहनेसे स्वास्थ्यमें लाभ हुआ। जमनालालजीको पता लगा तो उन्होंने अपने साले श्रीचिरंजीलालजी जाजोदियाके साथ काम शुरु करवा दिया। 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' के नामसे तीसी आदिके सट्टेकी दलाली, निजी व्यापार एवं आढ़तका काम होने लगा। यह काम जबतक बम्बई रहे तबतक चलता रहा।

देश–प्रेम एवं समाज–सेवाकी प्रवृत्तियोंका पुनर्जागरण

भाईजीने जबसे होश सँभाला तबसे ही देश–सेवा एवं समाज–सेवाकी प्रबल इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। यदि नजरबन्दीका प्रतिबन्ध–बीचमें न आ जाता तो न जाने उसका मूर्त–रूप अबतक क्या होता ? पर भगवान्ने इनको दूसरे कार्यके लिये भेजा था। अतः शिमलापालकी साधनाके बाद इनका हिंसात्मक राजनीतिमें विश्वास नहीं रहा। बम्बईमें अनुकूल वातावरण मिलनेसे पुराने संस्कार फिर जागने लगे। जमनालालजीका संग इसमें अत्यधिक सहायक बना। वे उस समय राष्ट्रनेताओंके एक प्रकारसे आश्रयदाता थे। सभी नेता प्रायः इनके ही अतिथि–गृहमें ठहरते एवं उनकी व्यवस्थाका भार भाईजीपर ही था। भाईजीका राष्ट्रनेताओंसे परिचय तो कलकत्तेसे ही था, अब और निकटता बढ़ने लगी। गाँधीजीसे तो अत्यन्त आत्मीयता हो गयी थी। यहाँतक कि गाँधीजी जब भी बम्बई आते, तो दादी रामकौरसे मिलने इनके घरपर अवश्य जाते थे। श्रीबालगंगाधर तिलक एवं लाला

लाजपतरायसे भी स्नेहका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। सं० १९७६ (सन् ५९१९) में अखिल भारतीय काँग्रेसका अधिवेशन पं० मोतीलाल नेहरुके सभापतित्वमें अमृतसरमें हुआ। उस समय वे गरम दलके नेता लोकमान्य तिलकके अनुयायी थे। सं० १९७७ (सन् १९२०) में काँग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामें लाला लाजपतरायके सभापतित्वमें हुआ उसमें भी ये गये। उसी वर्ष नागपुरमें काँग्रेसने विजय राघवाचार्यके सभापतित्वमें कुछ परिवर्तनके साथ असहयोग प्रस्तावको स्वीकार किया। इस अधिवेशनमें भी भाईजी उपस्थित थे। सं० १९७८ (सन् १९२१) में हकीम अजमलखाँके सभापतित्वमें काँग्रेसका अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ उसमें भी इन्होंने भाग लिया। पर काँग्रेसके साथ क्रियात्मक सहयोगकी यहींसे इति श्री हो गयी। भाईजीकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही इसमें कारण बनी। जीवनमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति बढ़नेसे कांग्रेसवालोंसे धार्मिक विचारोंमें मतभेद रहने लगा। धीरे–धीरे राजनीतिसे ये पृथक हो गये। इतने वर्ष शीर्षस्थ नेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेसे, भाईजीको देशके प्रमुख नेताओंसे मिलने और विचारोंके आदान–प्रदान करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। इनमें थे––श्रीविट्ठलभाई पटेल, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीविनायक दामोदर सावरकर, श्रीमहादेवभाई देसाई, श्रीकाका कालेलकर, श्रीखान अब्दुल गफ्फार खाँ, श्रीविनोबाजी, श्रीमुहम्मद अली जिन्ना, श्रीशौकत अली आदि।

भाईजी देश–सेवाके साथ ही समाज–सेवामें भी पूर्ण तत्परतासे लग गये थे; उस समय प्रमुख संस्था 'अखिल–भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल सभा' के सं० १९७६ (सन् १९१९) से ही सक्रिय सदस्य थे। उसी वर्ष महासभाका पहला अधिवेशन हैदराबादमें हुआ। अपने नये व्यापारिक कार्यको गौण करके ये हैदराबाद गये। सं० १९७७ (सन् १९२०) में ये महासभाकी बम्बई–शाखाके मन्त्री चुने गये। महासभाके प्रान्तीय मंत्रीकी हैसियतसे भाईजीने अग्रवाल महासभाकी बहुत सेवा की। इस वर्ष महासभाका अधिवेशन बम्बईमें हुआ, जिसकी सफलताका श्रेय इन्हींको था। तृतीय अधिवेशन कलकत्तामें एवं चतुर्थ इन्दौरमें आयोजित हुआ, उनमें भी भाईजीने सक्रिय भाग लिया।

जैसे–जैसे आध्यात्मिक प्रवृत्ति प्रधान होने लगी, सामाजिक कार्योंमें गौणता आने लगी, पर व्यक्तिगतरूपसे सेवाके कार्य भी करते ही रहते थे। एक बार इन्होंने गुण्डोंके चंगुलसे एक लड़कीका उद्धार किया था पर

गुण्डोंने इनके विरुद्ध पुलिसमें रिपोर्ट कर दी। सी० आई० डी० के इन्सपेक्टर श्रीपटवर्द्धनने इन्हें बुलाकर समझाया कि आप तो विशुद्ध सेवाभावसे इस कार्यमें पड़े हैं पर यह खतरेका काम है, आप इस कार्यको छोड़ दें। हमलोग यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं। भाईजीको बात युक्तिसंगत लगी। अतः इन्होंने उस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया।

इन कार्योंके अतिरिक्त गुप्तरूपसे अनाथोंकी सेवा, निर्धन विद्यार्थियोंकी सहायता, विधवाओंकी आर्थिक सहायता, रोगियोंकी तन-मन-धनसे सेवा करते रहते थे। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होनेपर भी इन कार्योंके लिये घरके खर्च कम करके रुपयोंकी व्यवस्था कर देते थे। इन कार्योंके कारण ये सभीके प्रिय हो गये थे।

विदेशी-वस्त्रोंकी होली

भाईजीने लार्ड कर्जनद्वारा सं० १९६२ (सन् १९०५) में बंग-भंगकी घोषणा करनेपर स्वदेशी-व्रत लिया था, उस समय उनकी आयु तेरह वर्षकी थी। बचपनका यह निश्चय जीवन-पर्यन्त निभा ही नहीं, उसमें और उज्ज्वलता आ गई। गाँधीजीसे भी डेढ़ साल पहले भाईजीने खादीका प्रयोग आरम्भ किया और अन्ततक खादी ही पहनते रहे। बम्बईके जीवनमें जब गाँधीजीसे आत्मीयता बढ़ी तब खादीके प्रचारमें भी सक्रिय सहयोग दिया। यहाँतक कि भाईजी एवं उनके कुछ साथी अपने व्यापारसे समय निकालकर खादीके बंडल पीठपर लादकर घर-घर बेचने जाते थे।

इसके बाद गाँधीजीके स्वदेशी-आन्दोलनने जोर पकड़ा तो केवल विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार ही नहीं हुआ, विदेशी वस्त्रोंको जलाया जाने लगा। गाँधीजीका कहना था—जब विदेशी-वस्त्र पहनना ही पाप है तो उसे दूसरेको पहननेके लिये न देकर जलाया जाना ही उचित है। गाँधीजी भाईजीके घर आकर दादी रामकौरसे भी विदेशी वस्त्र माँगकर ले गये और उन्हें जला दिया गया।

भाईजी भी इस आन्दोलनके पूरे पक्षमें थे। उन्हें पता था कि दादीके द्वारा विदेशी वस्त्र दिये जानेके पश्चात् भी उनकी धर्मपत्नीके पास विदेशी वस्त्र थे। उनको भी जलानेके उद्देश्यसे उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा कि यदि तुम्हारी अनुमति हो तो घरके सारे विदेशी वस्त्र जला दिये जायँ। पत्नीकी इच्छा थी कि जलानेके स्थानपर गरीबोंको बाँट दिये जायँ। किन्तु

भाईजीने गाँधीजीकी दलील रखकर समझाया। जब उन्होंने भाईजीकी हार्दिक इच्छा देखी तो सच्ची पतिव्रताकी तरह घरके सारे विदेशी वस्त्र एकत्रित करके सामने रख दिये। यह विचार भी नहीं किया कि अमुक साड़ी तो बहुत कीमती है। जब वस्त्रोंका ढेर लग गया तो भाईजीने पूछा––और तो कोई विदेशी वस्त्र घरमें बचा नहीं है न ? उत्तर मिला––नहीं। भाईजीने सावधान किया कि फिर देख लो, शायद कहीं बचा–खुचा पड़ा हो। वही उत्तर मिला––कहीं कुछ नहीं है। भाईजीको एक साड़ी दिखलाई दे रही थी, अतः उन्होंने पत्नीकी पहनी हुई साड़ीको देखा। भाईजीके बार–बार आग्रह करनेका अर्थ अब उनकी समझमें आया। अभी आती हूँ––यह कहकर वे कमरेमें चली गयीं, अपनी साड़ी बदलकर उस अन्तिम अवशेष साड़ीको भी वस्त्रोंके ढेरपर डाल दिया। देखते–ही–देखते वह ढेर राखमें परिणत हो गया।

इसी तरहकी दूसरी घटना घटी जब भाईजी गोरखपुरमें गोरखनाथ मन्दिरके निकट बगीचेमें रहते थे। एक सम्बन्धी उनकी एक मात्र सन्तान सावित्रीके लिये कुछ विदेशी वस्त्र दे गया। शामको भाईजी गीताप्रेससे लौटे तो उन्हें पता लगा। उसी समय वे वस्त्र माँगकर आँगनमें ही वस्त्रोंको जलाकर होली मना ली।

अध्यात्म–भावनाका पुनरुद्रेक

भगवान्‌ने जिस कार्यके लिये भाईजीको भेजा था, उसकी ओर आकर्षण बम्बईके भोग–प्रधान व्यापारिक जीवनमें रहते हुए भी होने लगा। यह साधारण नियमका अपवाद कहा जा सकता है। प्रधान रूपसे व्यापार करते हुए तथा राजनीतिक एवं सामाजिक कार्योंमें पूरा भाग लेते हुए किसीका जीवन साधनाके सोपानोंपर चढ़ने लगे, और वह भी बम्बई जैसे नगरोंमें रहते हुए तो उसे अवश्य ही भगवत् इच्छा ही कहना पड़ेगा। भाईजीके जीवनमें यही हुआ।

बम्बई आनेके दस महीने बाद ही छोटी बहिन अन्नपूर्णाके विवाहके लिये भाईजीको बाँकुड़ा जाना पड़ा। इस निमित्तसे श्रीसेठजीका सत्संग भी प्राप्त हुआ। दोनोंमें लगातार कई दिनोंतक साथ रहनेका सुअवसर इसके पहले नहीं आया था। इस बार पावन हृदयोंका मिलन अत्यन्त निकटसे हो रहा था। भाईजीका हृदय कृतज्ञतासे पूर्ण था, क्योंकि श्रीसेठजी इनकी

नजरबन्दीके समय जब भी कलकत्ता जाते, तब भाईजीके परिवारसे अवश्य मिलते थे। इस मिलनके बाद भाईजी श्रीसेठजीके प्रति और भी अधिक खिंच गये। बम्बई लौटने पर भी मिलनेकी इच्छा होती ही रहती। इच्छा होनेसे, उसके अनुरूप भगवान् व्यवस्था कर देते हैं। थोड़े समय बाद श्रीजमनालालजी बजाज, श्रीसेठजीसे मिलने चक्रधरपुर जा रहे थे। भाईजी भी उनके साथ हो गये। चक्रधरपुरमें श्रीसेठजीके सत्संगका लाभ तो मिला ही, साथ ही उन्होंने अपनी दो पुस्तकें 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेमभक्ति प्रकाश' के भाषा संशोधनका कार्य भाईजीको सौंपा। भाईजीने केवल उनकी भाषा ही नहीं सुधारी, एक प्रकारसे उनका कायाकल्प कर दिया। श्रीसेठजी अपने मूल भावोंको अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रभावशाली शैलीमें अभिव्यक्त देखकर गद्‌गद हो गये। उन्हें भाईजीके हृदयके भावों एवं योग्यताका परिचय प्राप्त हो गया। श्रावण सं० १९७७ (जुलाई–अगस्त, १९२०) में ये पुनः बम्बई लौट आये।

सं० १९७८ (सन् १९२१) में भिवानीके भक्त श्रीलक्ष्मीनारायणजीका हरिनाम प्रचारके लिये बम्बई आगमन हुआ। ये नवद्वीपवासी गौड़ीय संत श्रीरामकरणजीके अनुगत थे। स्थान–स्थानपर घूमकर, मस्त होकर कीर्तन करते हुए हरिनामका प्रचार करते थे। कीर्तनमें नृत्य करते हुए इन्हें भाईजीने देखा तो इनकी कीर्तन–निष्ठासे भाईजी बहुत प्रभावित हुए। इनके संगसे भाईजीके मन, प्राण, वाणी, शरीर सब भगवान्‌में डूबने लगे। पुनः वही सत्संग–भजन–कीर्तनका प्रवाह जीवनको जगत्‌की ओरसे मोड़कर अनन्तकी ओर बहा ले चला। लगभग माघ सं० १९७८ (जनवरी, १९२२) से भाईजाकी साधना पुनः विशेष तत्परतासे प्रारम्भ हुई। उन्हीं दिनों भगवत्कृपाके चमत्कारकी कुछ ऐसी घटनाएँ हुई जिन्हें देखकर भाईजीका भगवत्कृपापर अखण्ड विश्वास हो गया। पद–रचना भी इन्हीं दिनों प्रारम्भ हुई।

बहिनका अनोखा विवाह

भाईजीकी सबसे छोटी बहिन थी चन्दाबाई। अपनी सभी छोटी बहिनोंका भार भी भाईजीके कंधोंपर ही था। बम्बईसे रामगढ़ (राजस्थान) गये। रामगढ़के श्रीचिरंजीलालजी गोयनकासे चन्दाबाईका विवाह ज्येष्ठ शु० ६, सं० १९७९ को सम्पन्न हुआ। यह विवाह अन्य विवाहोंसे भिन्न रहा। भाईजी भक्ति–रसमें डूब चुके थे। भाईजीके जीवनका मुख्य लक्ष्य भजन–कीर्तन ही था। अतः इस विवाहमें भी इसी रसकी प्रधानता रही। हिन्दू–संस्कृतिमें

विवाहके अवसरपर भिन्न–भिन्न तरहके गीत सदासे गाये जाते हैं। इस विवाहमें वे साधारण गीत न गाये जाकर भक्ति–रसके गीत गाये गये। भाईजीने स्वयं उन गीतोंकी सरस भाषामें रचना की थी। ये गीत 'मारवाड़ी धार्मिक गीत' नामसे एक छोटी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित भी हुए। इन गीतोंने समाजको एक नयी जागृति दी। कई प्रथाओंमें सुधार हुआ।

उस समयके प्रसिद्ध संत लक्ष्मणगढ़ निवासी श्रीरामनामके आढतियाजीको उस विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये भाईजीने आग्रहपूर्वक बुलाया था। उन्होंने विवाहके अवसरोंपर भजन–कीर्तन करके समाजमें भक्ति रसकी धारा प्रवाहित की।

विवाहके बाद मिठाई अवश्य बंटी परंतु केवल मिठाई ही नहीं बंटी मिठाईके साथ–साथ भाईजीने सभीको धार्मिक पुस्तकें बाँटी। उन्हें पढ़कर समाजमें धार्मिक चेतना आयी।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका भाईजीके आग्रहपर बम्बई आगमन

कलकत्तेके समयसे ही श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया भाईजीके घनिष्ठ मित्र थे। आजके युगमें श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाकी मित्रताको मित्रताकी कसौटीपर पूरा खरा उतरता पाते हैं। भाईजी और ये बहुत वर्ष पूर्व मिले थे। इतने वर्षोमें कानोड़ियाजीके विचार, रहन–सहन, कार्यक्षेत्र सभी समयानुसार बदलते रहे पर एक वस्तु नहीं बदली—वह वस्तु थी भाईजी एवं उनकी मित्रता। मित्रताके प्रथम क्षणसे लेकर श्रीकानोड़ियाजीके जीवनकालतक दोनोंका हृदय एक दूसरेके प्रति भरा रहता था। दोनों ही एक–दूसरेका सुख अपना सुख एवं एक दूसरेका दुःख अपना दुःख मानते थे। श्रीकानोड़ियाजीके जीवनमें अनेकों हेर–फेर होनेपर भी ये दो बातें अक्षुण्ण बनी रहीं।

जबसे भाईजीने श्रीज्वालाप्रसादजीको पूज्य श्रीसेठजीसे मिलाया तबसे श्रीज्वालाप्रसादजीका आकर्षण पूज्य श्रीसेठजीके प्रति बढ़ता ही गया। भाईजीका पूज्य श्रीसेठजीके प्रति जितना आकर्षण था, उनसे बहुत अधिक श्रीज्वालाप्रसादजीका था। श्रीज्वालाप्रसादजीकी दृष्टिमें पूज्य श्रीसेठजी कुछ और ही होते चले जाते थे। इनका सत्संग सुनते, इनसे बातें करते, अनेकों आध्यात्मिक प्रश्न करते हुए इनपर पूज्य श्रीसेठजीकी पवित्रताका

इतना गहरा असर पड़ने लगा कि ये उनपर लुट पड़े। मन–ही–मन अपने आपको पूज्य श्रीसेठजीके प्रति न्यौछावर कर दिया। कानोड़ियाजीकी दृष्टिमें उस समय पूज्य श्रीसेठजीसे बढ़कर आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न और कोई व्यक्ति नहीं था। इनके चरणोंमें अपने आपको देकर ये आनन्दमें आत्मविस्मृत होने लगे, पर यह आनन्द अकेले अकेले लेना उन्हें खला। आनन्दमें सब कुछ भूलते हुए–से भी अपने मित्र श्रीभाईजीको ये न भूल सके। भाईजी इन दिनों बम्बई रहने लगे थे। पूज्य श्रीसेठजीके सत्संगका आनन्द लेते समय मित्रकी बात याद आ ही गयी। पर भाईजी पास थे नहीं। वे कलकत्तामें और भाईजी बम्बई। बम्बईसे भाईजीको बुलाना भी उचित प्रतीत नहीं हुआ। उनके मनमें आया कि भाईजीको बम्बई लिख दिया जाय कि वे आग्रहपूर्वक चेष्टा करके पूज्य श्रीसेठजीको बम्बई बुलायें। आग्रहपूर्वक चेष्टाकी उपेक्षा श्रीसेठजी नहीं कर सकते। पूज्य श्रीसेठजी अवश्य बम्बई जायेंगे और इस प्रकार उनके मित्र भाईजीको अवश्य उनके सत्संगका लाभ प्राप्त होगा ही। श्रीकानोड़ियाको यह भी ध्यान हो गया था कि मेरे मित्र भाईजी अभी बम्बईमें अन्य कार्योंमें व्यस्त हो रहे हैं। अतः उनको पुनः पूज्य श्रीसेठजीसे मिलाना उन्होंने बहुत जरूरी समझा। मित्रके प्रति कर्तव्यकी यत्किञ्चित् पूर्ति भी होगी। विचार आनेकी देर थी ज्वालाप्रसादजीने भाईजीको बम्बई पत्र दिया कि चेष्टा करके पूज्य श्रीसेठजीको सत्संगके लिये बम्बई बुलाओ।

इधर बम्बईमें भाईजी मानो अपने मित्रके पत्रकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। भाईजीने स्वयं तो पूज्य सेठजीको तार एवं पत्र दिये ही——अपने मित्रोंसे भी आग्रहपूर्वक बार–बार तार एवं पत्रोंसे पूज्य सेठजीको प्रार्थना करायी कि वे सत्संगके लिये बम्बई पधारे ही। सं० १६७६ की (सन् १६२२) शरद–ऋतुमें बम्बई नगर जगत्के परमोच्च संतका दर्शन पाकर पवित्र हो गया। भाईजीके उत्साहका क्या कहना। स्टेशनपर सैकड़ों प्रतिष्ठित सज्जनोंके साथ उमंगमें भरे हुए ये खड़े हुए थे। गाड़ी आयी पूज्य सेठजी अपने २०–२५ मित्रोंके साथ उतरे। मिलनेके समय सबका रोम–रोम आनन्दसे पुलकित हो उठा। आनन्दमें मस्त सभी पैदल ही चल पड़े। यदि श्रीजयदयालजी गाड़ीमें बैठकर जाते तो अधिक–से–अधिक ४–५ व्यक्ति ही उनके पास बैठकर उनके सुखमय सानिध्यका सौभाग्य पाते। पर सच्चे संतमें विषमता होती ही नहीं। उनकी प्रत्येक क्रियामें ही सबके लिये समान भावसे प्रेम झरता है। यह नहीं कि उसके लिये वे चेष्टा करते हैं, स्वाभाविक

ही उनमें दिव्य समता निरन्तर बनी रहती है। पूज्य श्रीसेठजी भी सबके थे, उनके सभी अपने थे, सबके प्रति उनके हृदयमें अगाध, अनन्त, असीम प्रेमका सागर लहरा रहा था और उस समय प्रेम सागरमें ऊँची–ऊँची लहरें उठ रही थीं। सभी उसमें अवगाहन कर रहे थे। वे भला किसीको प्रेम–तरंग–दानमें भेद क्यों करते। क्या सागर भी कभी तरंग दानमें भेद करता है ? नहीं तो। अतः पूज्य श्रीसेठजीने भी पैदल ही चलना पसन्द किया। अपने आप एक जुलूस बन गया। मान–अपमानसे ऊपर उठे हुए संतके लिये जुलूसका किंचित्मात्र भी महत्त्व नहीं था। वे तो स्वाभाविक निजानन्द स्वरूपमें स्थित थे, उनका शरीरमात्र चिन्मय स्वरूपानन्द सागरकी लहरियोंपर नाचता हुआ प्रारब्धकी निर्धारित गतिसे आगे बढ़ता जा रहा था। जुलूस सुखानन्दजीकी धर्मशालामें पहुँचा।

श्रीसेठजी दस दिन बम्बई ठहरे। धर्मशालामें पहला व्याख्यान निष्काम कर्मयोगपर हुआ। श्रीनर–नारायणजीके मन्दिरमें कीर्तन आरम्भ हुआ। दस दिनमें सत्संगकी पवित्र धारामें न जाने कितने व्यक्तियोंने निमज्जन किया। लौटनेके दिन सत्संगमें श्रीसेठजीने सुन्दर विदाईकी याचना की। नम्रतासे कहा––मेरे जानेके बाद आपलोग प्रतिदिन नियमसे सत्संग करें। उत्तरमें श्रीशिवनारायणजी नेमाणी बोले––सत्संग अवश्य होना चाहिये। मैं कम–से–कम पाँच सालके लिये अपनी बाड़ीमें स्थान देता हूँ। वक्ताकी व्यवस्था आप करें। श्रीसेठजीने भाईजीको आदेश दिया कि कुछ देर सत्संगकी बातें कहा करें। भाईजी पहले तो कुछ झेंप–से गये पर आदेशके सामने नतमस्तक हो गये। श्रीसेठजी तो बम्बईसे लौट गये, पर अपनी स्मृतिमें सत्संगकी धारा छोड़ गये। यह धारा भाईजीके साथ तेजीसे बह चली। भाईजी विस्तारसे गीतापर प्रवचन करने लगे। कई वर्षोंतक यह क्रम चालू रहा। गीताकी दो आवृत्तियाँ विस्तारपूर्वक समाप्त हुई। अठारहवें अध्यायके ६६ वें श्लोकपर एक महीने प्रवचन हुआ। पहले तो सत्संग दिनमें होता था पर कुछ दिनों बाद रात्रिमें होने लगा। सत्संगमें मारवाड़ी–मराठी–गुजराती भाषी सभी लोग आते। श्रीजमनालालजी बजाज जब बम्बईमें रहते, तब बराबर आते। गाँधीजीके अनुयायी श्रीकृष्णदास जाजू नियमित आते। बादमें रामचरितमानस पर भाईजी प्रवचन करने लगे। प्रवचन अत्यन्त भावपूर्ण होता एवं श्रोता मन्त्र–मुग्ध होकर सुनते। बीच–बीचमें साधु महात्मा भी पधारते तो भाईजी उनसे सत्संग कराते। इस नाते

भाईजीका परिचय अच्छे–अच्छे महात्माओंसे हो गया। इनमें मुख्य थे——स्वामी अच्युतमुनिजी, श्रीभोलेबाबाजी, श्रीउड़ियाबाबाजी, श्रीहरिबाबाजी, स्वामी शिवानन्दजी, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी। भाईजीका रामानुज–सम्प्रदायके आचार्य श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज एवं वल्लभ–सम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी महाराजसे भी स्नेहका सम्बन्ध हो गया। इन्हीं दिनों पं० हरिबक्षजी जोशी सत्संगमें आने लगे। वे भाईजीको संस्कृतके सुन्दर–सुन्दर श्लोक सुनाते। भाईजीसे इनकी मित्रता हो गई। प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बरजी महाराजसे भी परिचय हो गया। वे भी भाईजीपर बड़ा स्नेह रखने लगे। सं० १९८० (सन् १९२३) के पुरुषोत्तम (ज्येष्ठ) मासमें इनकी कथा प्रातः सातसे नौ बजे तक सत्संग भवनमें हुई। कथाके समय रसका श्रोत बहता। कभी–कभी रात्रिमें भी पधारकर कथा कहने लगे। समय–समयपर नगर–संकीर्तनका भी आयोजन होता। रामनवमी, जन्माष्टमी, छारण्डीके दिन बृहद् नगर–संकीर्तन निकलता। हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते। भाईजी कभी–कभी कीर्तनमें बेसुध हो जाते। इनके प्रवचनोंसे प्रभावित होकर भाईजीको बालकोंको गीताकी शिक्षा देनेके लिये आग्रह पूर्वक स्थानीय मारवाड़ी विद्यालयमें बुलाया। ये बड़े प्रेमसे रोज एक घंटे विद्यार्थियोंको गीताका मर्म समझाने लगे। प्रसिद्ध नेता डा० राममनोहर लोहिया उन दिनों इस विद्यालयके विद्यार्थी थे। भाईजीकी गीता शिक्षाकी बातें उन्हें जीवनभर स्मरण रहीं एवं कई बार अपने व्याख्यानोंमें इसकी चर्चा की। यह सब श्रीसेठजीकी बम्बई यात्राका ही परिणाम था। भाईजीकी साधना भी उद्दीप्त होने लगी।

दादी रामकौर अपने पौत्रकी दिनचर्यासे परम प्रसन्न थी। संतोंके आशीर्वादसे लेकर अभी तकका दृश्य उनके सामने था। अब उनका अभिनय समाप्त हुआ। दादी रामकौर बम्बईमें बैसाख शुक्ला १३, सं० १९८०, (सन् २६ अप्रैल, १९२३) नृसिंह जयन्तीके दिन सूत्रधारके चरणोंमें जा पहुँचीं। जानेसे पूर्व सभीने देखा, दादी रामकौर प्रसन्न चित्तसे 'सोऽहम्–सोऽहम्' का जप कर रही थीं। ये ही भाईजीके परिवारकी कर्णधार थीं, उनके जानेसे परिवार एकबार सूना–सा हो गया। भाईजीने बहुत उदारतासे धन व्यय करके इनका श्राद्ध सम्पन्न किया, मानो कोई विशेष आनन्दोत्सव हो।

व्यवस्थाके लिये अपरिचित व्यक्तिको स्वप्नादेश

बम्बई प्रवासके समय एक और विचित्र घटना घटित हुई। भाईजी

एक बार किसी कार्यवश इन्दौरके पास एक मोहू नामक नगरमें गये। वे पहुँचे तबतक रात्रि हो गयी थी। वे एक धर्मशालामें गये और वहाँके व्यवस्थापकसे रहनेके लिये स्थान माँगा। व्यवस्थापकने कह दिया यहाँ कोई कमरा खाली नहीं है। भाईजीने पुनः कहा मुझे तो केवल रात्रि–विश्राम करना है, कोई छोटा स्थान भी दे दें तो काम चल जायगा। व्यवस्थापकने कुछ रुखाईके साथ कहा––आपको एक बार कह दिया यहाँ कोई कमरा खाली नहीं है। किसी होटलमें ठहर जाइये। होटलमें ठहरनेका भाईजीके लिये प्रश्न ही नहीं था। अतः वे चुपचाप बाहर आ गये। सोचने लगे काफी देर हो गई है पर शेष रात्रिको गुजारनेके लिये कहीं विश्राम तो करना ही है। उनकी दृष्टि धर्मशालाके पास एक स्थानपर गई। वहाँ जाकर देखा तो एक अस्तबल था। एक किनारे घोड़ा बाँधनेका स्थान था, दूसरा किनारा खाली था। भाईजीने सोचा यहीं रात्रि–विश्राम किया जाय। उन्होंने उस स्थानको हाथसे ही साफ किया। दिनभरके थके हुए थे, बिस्तर खोला और बिना खाये–पीये ही सो गये। थकानके कारण सोते ही नींद आ गयी।

उस धर्मशालाका मालिक बड़ा आस्तिक एवं धर्मपरायण था। उसी रात्रिमें उसे स्वप्न हुआ––भगवान् कह रहे हैं तुम्हारी धर्मशालाके पास जो अस्तबल है उसमें मेरा एक भक्त भूखा सो रहा है। तुम जाकर उसके खाने–पीने और ठहरने–सोनेकी समुचित व्यवस्था करो।

धर्मशालाके मालिककी नींद खुल गयी। वे हड़बड़ाकर उठे। रात्रिमें तत्काल धर्मशाला आये और देखा कि बगलके अस्तबलमें एक व्यक्ति सो रहा है। स्वप्नकी बात सच्ची देखकर हृदय गद्‌गद हो गया। प्रभुकी अद्‌भुत अनुकम्पा देखकर भाव–विभोर हो गया। निकट जाकर बड़े आदरसे भाईजीको जगाया, आदरसे प्रणाम किया। भाईजीने बड़े प्रेमसे पूछा––आप कौन हैं ? इस समय आपका आना कैसे हुआ ? मेरे लायक कोई बात हो तो कहिये।

उसके मुखसे भाव–विभोर अवस्थामें शब्द ही नहीं निकल रहे थे। नेत्र सजल हो रहे थे। उसी अवस्थामें भाईजीके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। भाईजीने उसकी पीठ हाथसे सहलाते हुए कहा––कहिये, क्या बात है ?

कुछ रुककर उसने कहा––आपकी कृपासे आज मुझे भगवान्‌ने अपना लिया और अपने भक्तकी सेवा सौंपी है। फिर स्वप्नकी सारी घटना सुनाई। उसने बिस्तर अपने हाथसे समेट लिया और भाईजीको अपने साथ

चलनेकी प्रार्थना की। भाईजीको उसका आतिथ्य स्वीकार करना पड़ा। अपने घर लाकर भाईजीको भोजन कराया एवं वहीं शयनकी व्यवस्था की। दोनोंके हृदय प्रभु अनुकम्पासे आप्यायित थे।

पारसी प्रेतसे बातचीत

भाईजीके बम्बई–निवासके समय लगभग सं० १९८२ की घटना है। भाईजीने इसका विवरण एक प्रसंगमें बताया था––

"साधना प्रारम्भ होनेपर उसमें तीव्रता आने लगी थी। मैं प्रतिदिन सायंकाल भोजन करनेके पश्चात चौपाटीमें समुद्रके किनारे चला जाता था। बहुत–सी बेन्चें पड़ी रहती थीं, वहाँ बैठकर नाम–जप एवं भगवच्चिंतन करता था। एकान्त रहता था, कुछ अंधेरा–सा रहता था। एक दिन मैं बेंचपर बैठा नाम–जप कर रहा था। अचानक मेरी बेन्चके ठीक सामने मेरे पैरोंकी तरफ एक पारसी सज्जन खड़े दिखायी दिये। पारसियोंके पुरोहित विशेष प्रकारकी पोशाक पहनते हैं, वैसी पोशाक पहने हुए थे। बहुत देर तक मैं नाम–जप करता रहा, वे खड़े रहे। फिर सभ्यतावश मैंने कहा––"साहेबजी ! आप बैठ जाइये, खड़े–खड़े आपको बहुत देर हो गयी।" वे बोले––"आप डरियेगा नहीं, मैं प्रेत हूँ" यह सुनते ही मैं भयभीत हो गया, मुझे पसीना आ गया। उन्होंने फिर कहा "आप डरिये नहीं, मैं आपका अनिष्ट नहीं करूँगा। मैं आपसे सहायता चाहता हूँ, आपका मंगल होगा।" यह सुनकर मैं कुछ आश्वस्त हुआ। उन्होंने कहा––"यदि आप पहले मुझसे बात नहीं करते तो मैं बोल नहीं पाता। मुझमें ऐसी ताकत नहीं है कि यहाँके लोगोंसे मैं पहले बोल सकूँ। इसीलिये मैं प्रतिक्षा करता रहा कि आप बोलें। प्रेत लोकमें अनेक स्तर हैं, प्रेतोंकी विभिन्न शक्तियाँ हैं। मैं सब जगह जा सकता हूँ, हर एकको दिखायी दे सकता हूँ, पर मुझसे कोई पहले नहीं बोले तो मैं बोल नहीं सकता। प्रेत–लोकमें मेरी स्थिति अच्छी नहीं है। आप कृपा करके किसीको भेजकर गयामें मेरे लिये पिण्डदान करवा दें तो मेरी सद्गति हो जायेगी।" मैंने उनसे कहा––"आप पारसी हैं, आप लोग श्राद्धपर विश्वास नहीं करते, फिर श्राद्ध करनेकी बात कैसे कहते हैं।" उन्होंने उत्तर दिया––"सत्य यदि सत्य है तो जाति सापेक्ष नहीं है। जीवमें जातिका भेद नहीं होता।" उन्होंने अपने बम्बईके निवास स्थानका नाम–पता बताया। इसके पश्चात् वे अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन उनके कथनानुसार

मैंने उनका पता लगाया। वे बम्बईके बाँदरा नामक अञ्चलमें रहते थे। छः महीने पहले उनकी मृत्यु हुई थी। उनका नाम आदि सब पता मिल गया। वे पारसी होनेपर भी गीतापाठ किया करते थे। सब बातोंका ठीक–ठीक पता लग जानेपर मैंने अपने पास रहनेवाले हरीराम ब्राह्मणको गया भेजकर उनका श्राद्ध एवं पिण्डदान करवाया। जिस दिन गयामें उनके लिये पिण्डदान हुआ, उसी दिन चौपाटीमें ही मुझे उनके फिर दर्शन हुए। उन्होंने कहा––"मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने आया हूँ। आपने मेरा काम कर दिया। अब मैं प्रेतलोकसे उच्च लोकमें जा रहा हूँ।" उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।

मैंने प्रेतसे प्रेतलोककी स्थिति, वहाँके जीवन–कर्मोंके फल आदिके बारेमें बहुत–सी बातें पूछी। उन्होंने सब बातोंका सविस्तार उत्तर दिया। उन्होंने बताया––किसीके प्रति बैर लेकर मरने वालेकी बहुत दुर्गति होती है। उसे नरकोंमें बड़ा कष्ट होता है। सब नरक सत्य है। नाना प्रकारके पाप करने वालोंकी भी बहुत दुर्गति होती है। प्रेत लोकमें बहुतसे सद्भावनायुक्त प्रेत हैं, बहुतसे दुर्भावनायुक्त। वृत्तिके अनुसार उनके स्वभाव एवं कर्म होते हैं। इस जीवनके सम्बन्ध उनको स्मरण रहते हैं और उसी प्रकारका बर्ताव यहाँके व्यक्तियोंके प्रति करनेकी चेष्टा करते हैं। अच्छे प्रेतोंको कुछ दिन वहाँ रखकर पितृलोकमें भेज दिया जाता है। वहाँ भी पहले अभ्यासके अनुसार भजनकी प्रवृत्ति होती है। प्रेतलोकके प्राणियोंके लिये अन्न–जल वस्त्रादिका दान उनके नामपर घरवालोंको सदा करते रहना चाहिये। प्रेतोंको सद्गति प्राप्त करानेके लिये गयाश्राद्ध, पिण्डदान, गायत्रीजप, भागवत–पारायण, विष्णुसहस्रनाम–पाठ और अपने–अपने धर्मानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे उन्हें लाभ होता है।

इसके पश्चात् भाईजीने उस प्रेतके माध्यमसे वहाँकी कुछ आत्माओंसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कुछ दिव्य लोकोंसे भी सम्बन्ध हो गया। किसी व्यक्तिकी मृत्युके बाद क्या स्थिति है, इसका पता वहाँके कुछ प्राणियोंके माध्यमसे, जिनसे भाईजीने घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लिया था, लगाया करते थे। भाईजीके निकट सम्पर्कमें आने वाले लोग अपने स्वजनोंकी गतिके विषयमें पता लगाया करते थे। भाईजी मृत व्यक्तिका नाम, गोत्र, जिस स्थानपर मृत्यु हुई तथा उसके दाह–संस्कारके स्थानका पता उन लोकोंके प्रणियोंको दे देते थे। उनके प्रयत्नसे कुछ

व्यक्तियोंका ठीक–ठीक पता लग जाता था, कुछका अधूरा एवं कुछका बिलकुल ही नहीं लगता था। ऐसे दस–बीस 'केस' बराबर पता लगानेके लिये रहते थे।

कुछ वर्ष पूर्व बनारसके एक होटलमें एक व्यक्ति द्वारा अपने मित्रकी हत्या कर दी गयी। उसकी पत्नी गोरखपुरकी बालिका थी। वह बहुत दुःखी थी। भाईजीने उसके कहनेपर अन्य लोकोंके प्राणियोंसे पता लगाया और उनका बताया हुआ उपाय करवाया। उस व्यक्तिकी सद्‌गति हो गयी। ऐसे ही कलकत्तेके एक सज्जनने अपने पिताकी स्थितिका पता लगानेके लिये भाईजीसे प्रार्थना की तो कुछ दिनों बाद भाईजीने पता लगाकर बताया कि वे ऊँचे लोकोंकी ओर जा रहे हैं।

भगवत्प्रेरित चार विलक्षण घटनाएँ

भगवान् अपने सच्चे भक्तका कितना ध्यान रखते हैं, इसका थोड़ा–सा दिग्दर्शन इन घटनाओंसे प्राप्त होता है। भक्त चाहे याचना करे या न करे भगवान् अनहोनी लगनेवाली बातें स्वाभाविक रूपसे घटित कर देते हैं। भाईजी बराबर कहा करते थे कि भगवान्‌की कृपासे असंभव भी संभव हो जाता है। यह बात वे केवल शास्त्रोंके आधारपर नहीं कहते थे। उनके जीवनमें ऐसी घटनाएँ घटी थी, जिससे उनका विश्वास अडिग हो गया था। यहाँ ऐसी चार घटनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं——

(१) बम्बईमें भाईजीके एक साथी थे श्रीहरिराम शर्मा जो रुईकी दलाली करते थे। भाईजीके परम मित्र श्रीरामकृष्णजी डालमिया उस समय सट्टेमें नुकसान कर चुके थे। भाईजीने हितकी दृष्टिसे श्रीहरिराम शर्माको सलाह दी कि तुम इस समय उन मित्रका सट्टेका काम नहीं करना। उनके अभी नुकसान हो चुका है। यदि और अधिक नुकसान हुआ तो वह दे नहीं सकेगा। पर विधिका विधान, लोभ बड़ी बुरी चीज है। हरिरामने दलालीके लोभवश उनका बड़ा सौदा कर दिया। उसमें फिर अधिक नुकसान हो गया और डालमियाजी उसका भुगतान करनेकी स्थितिमें नहीं थे। भुगतान न होनेसे हरिरामकी इज्जत चली जाती। हरिराम अत्यन्त उदास होकर भाईजीके पास आकर बैठ गया और सारी परिस्थिति बता दी। भाईजीने कहा——मैंने इसीलिये तुम्हें सावधान किया था, मेरे पास इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। वह रोने लगा और बोला——अब

मैं क्या करूँ ? भाईजी बोले--और क्या करोगे, भगवान्‌के सामने रोओ। वे कातर प्रार्थना अवश्य सुनते हैं। वह समीपकी कोठरीमें चला गया और अन्दरसे बंद करके प्रार्थना करने लगा।

थोड़ी देरमें भाईजीके मित्र श्रीबालकृष्णलालजी पोद्दारका फोन आया कि चौपाटी घूमने चलोगे क्या ? चलो तो मैं गाड़ी लेकर आ जाऊँ। भाईजीके हाँ कहनेपर वे गाड़ी लेकर आ गये। दोनों घूमने चले गये। दूसरी बाते होने लगीं, लौटनेपर उन्होंने अचानक भाईजीसे पूछा--आज-कल हरिराम कहाँ हैं ? तब भाईजीने सारी बातें बता दी। वे रुपये देनेके मामलेमें बहुत अनुदार व्यक्ति थे, पर किसी अज्ञात प्रेरणासे कहा कि कल मेरेसे ब्लैंक चेक मँगवा लीजियेगा। उनके जानेके बाद भाईजीने अपने दो-तीन मित्रोंसे सलाह की कि इस तरह उनसे इतनी रकम मँगा लेना मित्रताका दुरुपयोग तो नहीं है ? एक मित्रने कहा--भाईजी ! द्रौपदीका चीर आपने बढ़ाया था क्या ? आपने उनसे कुछ कहा नहीं। उन्होंने अपनी तरफसे हरिरामको बुलाकर सारी बातें कह दी। वह तो गद्‌गद हो गया। सारी बातें डालमियाजीको बता दी गई। उन्होंने एक रसीद लिखकर भेज दी और साथमें अपनी पैतृक सम्पत्तिके पट्टे भेज दिये। दूसरे दिन रसीद और पट्टे श्रीबालकृष्णलालजीको भेज दिये गये। उन्होंने कहा मैं कभी पट्टे रखकर रुपये नहीं देता हूँ। मैं तो कभी रुपये देता ही नहीं, यह तो पता नहीं क्यों मेरे मनमें आ गई। रसीद उन्होंने फाड़कर फेंक दी, पट्टे लौटा दिये और ब्लैंक चेक सही करके दे दिया। सभी लोग आश्चर्यचकित थे। रुपयोंका भुगतान समय पर हो गया। दो-तीन महीने बाद रुपये श्रीडालमियाजीने ब्याज सहित लौटा दिये।

(२) दूसरी घटना इससे भी अधिक आश्चर्यकी हुई। श्रीभाईजीके ही शब्दोंमें--बम्बईकी बात है। हमारा एक पार्टनरशिप फर्म था। एकबार एक सज्जनको कष्टके समय मैंने अपने साझीदारसे बिना पूछे रोकड़से दस हजार रुपये दिला दिये। वे रुपये उन्होंने कहींसे ला तो दिये पर जहाँसे लाये उनपर कोई बड़ी आफत आ गई। वे सज्जन मेरे पास आकर बहुत रोये कि कैसे भी एकबार दो-तीन महीनोंके लिये रुपये मिल जाय तो बादमें कहींसे मँगवा देंगे। वे बहुत ऊँचे घरानेके आदमी थे। देशके बहुत ऊँचे महान् पूज्य नेताके घरानेके व्यक्ति थे। मेरे मनमें आई कि किसी तरह इनका काम निकाला जाय। अब मैं क्या करूँ ? मेरे पास तो बस भगवान्‌का नाम

था। उन दिनोंमें सकाम जप कभी–कभी करता था, पर बहुत कम। यह बात सन् १९२४ के पहलेकी है। उसके बाद तो मैंने सकाम जप नहीं किया। उसके बादके अनुभव तो मुझे नहीं बताने हैं। मैंने जप शुरू किया। वे बेचारे बड़े उदास थे। मैं उनके साथ अपनी गद्दीसे नीचे उतरा। हमलोग साथ–साथ उनके ऑफिसकी तरफ जाने लगे। हमलोग इण्डिया बैंकके सामने पहुँचे तो हमारे एक मित्र मिले। उन्होंने कहा––आप दोनों उदास क्यों हैं ? मैंने सारी बात बता दी ? उन्होंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि सामने ही इण्डिया बैंक है, इसमें मेरा खाता है। मेरे रुपये अफ्रीकासे आनेवाले हैं, यदि आ गये होंगे तो रुपये मैं अभी दे देता हूँ। उनका अनुमान था कि रुपये दो सप्ताह बाद आयेंगे, इस तरह रुपये देने भी नहीं पडेंगे और मित्रोचित व्यवहार भी हो जायगा। भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र होती है। रुपयोंकी जरूरत तो आज हुई और व्यवस्था भगवान् पहलेसे ही कर देते हैं। हमलोग सामनेके फुटपाथपर इण्डिया बैंक गये। उन्होंने पूछा कि हमारे खातेमें कितने रुपये हैं। उत्तर मिला कि कलतक तो कुछ नहीं थे, आज अभी–अभी अफ्रीकासे बीस हजारका ड्राफ्ट आया है। उत्तर हमलोग पासमें खड़े सुन ही चुके थे। अब वे बेचारे क्या बोलते, उनको रुपये देने पड़े। उन्होंने दस हजार रुपये दे दिये। उनका काम निकल गया। फिर रुपये उन्हें वापिस दे दिये गये। भगवान्‌के नामने यह काम किया। इस तरह भगवान्‌के नामके पहले–पहलेकी उम्रके मेरे बहुत–से अनुभव हैं।

(३) केवल रुपयोंकी बात नहीं है। भगवत्कृपासे कैसे प्राण–रक्षा होती है इसका एक चमत्कार तो आसाममें भूकम्पके समय देख चुके थे। अब बम्बईमें एक घटना ऐसी हुई कि जिससे भाईजीके मनमें श्रीभगवान्‌पर अत्यधिक विश्वास बढ़ा। यह घटना उनकी लेखनीसे ही आगे चलकर कल्याणमें प्रकाशित हुई।

सन् १९१९ ई० की बात है। मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफाजी श्रीलक्ष्मीचन्दजी लोहियाके घरपर, जो बम्बईसे कुछ दूर बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेके (आजकल पश्चिम रेलवे) सान्ताक्रूज स्टेशनके समीप पं० शिवदत्तरायजी वकीलके बँगलेमें रहते थे, जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है रातको करीब आठ बजे थे, कृष्ण पक्षकी अँधेरी रात थी। मैं लोकल ट्रेनसे जाकर सान्ताक्रूजके प्लेटफार्मपर

उतरा। अब तो दोनों ओर प्लेटफार्म है, उस समय एक ही ओर था और रोशनीका भी प्रबन्ध नहीं था। न इंजिनकी सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्तजीके बँगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन लाँघकर उस ओर जाना पड़ता था। मैंने बेवकूफी की, दौड़कर इंजिनके सामनेसे लाइन पार करने चला। लोकल ट्रेन एक ही मिनट टहरती है, मैं नया था, मैंने समझा गाड़ी छूटनेसे पहले ही मैं लाइन पार कर जाऊँगा, परंतु ज्यों ही मैंने लाइनपर पैर रखा, त्यों ही गाड़ी छूट गयी। परंतु ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय किसी अज्ञात पुरुषने मेरा हाथ पकड़कर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जा गिरा। गाड़ी सर्राटेसे निकल गयी। तीन काम एक साथ हुए मेरा लाइन लाँघना, गाड़ी छूटना और अज्ञात व्यक्ति द्वारा खींचे जाना। एक ही दो सेकेंडके विलम्बमें मेरा शरीर चकनाचूर हो जाता। परन्तु बचानेवाले प्रभुने उस अँधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रबन्ध कर रखा था। मैं थर–थर काँप रहा था। ईश्वरकी दयालुतापर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा था। आँखोंसे आँसू बह रहे थे, मैंने स्टेशनके धुँधले प्रकाशमें देखा, एक नौजवान बोहरा खड़ा हँस रहा है और बड़े प्रेमसे कह रहा है––आइन्दा ऐसी गलती न करना, आज भगवान्‌ने तुम्हारे प्राण बचाये। मैंने मूक अभिनन्दन किया, कृतज्ञता प्रकट की। लाइनपर रोड़ोंमें गिरा था पर दाहिने पैरमें एक रोड़ा जरा–सा गड़नेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं लगी। मैं दौड़कर घर चला गया और ईश्वरको याद करने लगा।

(ईश्वरांक पृष्ठ सं० ६१४)

अनन्त दयामय प्रभुने हम सबकी भी न जाने कैसे–कैसे कितनी बार रक्षा की होगी, अब भी करते हैं, पर हम अभागे प्राणी इस अयाचित, अप्रत्याशित करुणाकी बात भूल जाते हैं। इन घटनाओंसे हमारे मनमें उनकी मधुर स्मृति नहीं जागती पर भाईजी हृदयसे अनुभूतियोंका आदर करना जानते थे, इसीलिये मस्तिष्कसे न तौलकर, हृदयसे परखा और आनन्द लिया।

(४) एक ऐसी ही और घटना हुई जिसे भाईजीने 'कल्याण'में इस प्रकार प्रकाशित किया––

सन् १९२६ की बात है, मैं लक्ष्मणगढ़के भाई श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालेके धन और परिश्रमसे स्थापित ऋषिकुलके उत्सवमें शरीक होने बम्बईसे जा रहा था। अहमदाबादसे दिल्ली ऐक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ।

मैं सेकेंड क्लासमें था। मेरे साथ एक ब्राह्मण बालक ऋषिकुलमें भर्ती होने जा रहा था। मैं इधरकी एक सीटपर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अन्दाजसे पाँच बजे थे। ब्यावर स्टेशनपर एक टी० टी० महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। मैं जिस सीटपर सोया था, उसी सीटपर मेरे पैरोंके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था। अपने पैरोंके पास किसीका बैठना मुझे अच्छा न लगा, इससे शिष्टाचारके नाते मैं उठ बैठा। सोया था तब मेरा सिर सीटकी अन्तिम पहली खिड़कीके पास था, जागकर बैठा तो वह खिड़की खाली हो गई। मैं बीचकी खिड़कीके पास बैठ गया और टी० टी० महोदय इधरकी तीसरी (पहली) खिड़कीके पास बैठे थे। तीनों खिड़कियाँ बन्द थीं। मैं टी० टी० महोदयसे बातें कर रहा था। इतनमें ही पीछेसे बडे जोरकी आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो मालूम हुआ कि एक बहुत बड़ा पत्थर खिड़कीके काँचको लगा। खिड़कीका बहुत मोटा काँच टूटकर चूर–चूर हो गया और उसके टुकड़े उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा–सा टुकड़ा बालकके सिरमें लगा था, इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिड़कीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और काँचकी चोटसे फूट जाता। परंतु बचानेवालेने टी० टी० महोदयको भेजकर मुझे प्रेरणा की, मैं बैठ गया और बच गया। यह घटना अजमेरके पास मकरेरा और सरघना स्टेशनके बीचकी है।

(ईश्वरांक पुष्ठ ६१४)

निराकार साधना एवं स्थिति—भगवान् श्रीरामके दर्शन

श्रीसेठजीके दस दिनोंके सत्संगके पश्चात् भाईजीकी अपनी साधनामें बड़ी तीव्रता आ गयी थी। उन दिनों भाईजी विशेष रूपसे निर्गुण निराकार ब्रह्मकी उपासना करते थे पर उनकी निष्ठा भगवान् और भगवन्नाममें वैसे ही बनी हुई थी। सच्चे संतका संग अमोघ होता ही है।

श्रीसेठजीसे निर्विशेष ब्रह्मकी धारणा, ध्यानकी बातें भी दस दिनोंमें काफी हुई थी। उसीके अनुसार नियमित रूपसे ध्यान करने लगे। अल्पकालमें ही भाईजीकी कितनी ऊँची स्थिति होने लग गयी थी—इसका विवरण स्वयं भाईजीके समय–समयपर श्रीसेठजीको लिखे हुए पत्रोंसे ही पता चलता है।

यथा——

"पत्र लिखते समय आनन्दमय बोधस्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है। कलमसे अक्षर लिखे जा रहे हैं। लिखनेकी जो स्फुरणा हो रही है, वह सच्चिदानन्दके अन्तर्गत कल्पित रूपसे भास रही. है। कभी–कभी यह भी नहीं भासती। एक परमात्माके अतिरिक्त किसी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता——मानो अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बरफ पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी, वह मिट गयी, केवल जल ही जल रह गया। ....फिर भी कलम चल रही है, लिखती जा रही है। हाँ बोधस्वरूप आनन्द, भूमानन्दमें स्थितिमें कोई अन्तर आता हुआ नहीं दीखता। स्थिति क्या है, वह लिखी नहीं जा सकती ....बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा–सी अनुमान होती है, पर भाव उसी तरह है ....इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा ऐसी नहीं रहती। बीच–बीचमें कुछ परिवर्तित–सी दीखती है, पर परिवर्तनकालमें भी अधिक–से–अधिक इतना ही परिवर्तन होता है——अचिन्त्यकी स्थितिसे एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिसे दृष्टाकी स्थिति होती है, काम करते समय जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है, उस समय उस शरीरके सहित और सारे विषय अपने समष्टि, सर्वव्यापी चेतन स्वरूपमें कल्पित भ्रमवत ही प्रतीत होते हैं, पर प्रतीत अवश्य होते हैं। हाँ कभी–कभी इस तरह होते–होते विषयोंका अस्तित्व भी सर्वथा नष्ट हो जाता है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम, अनिर्वचनीय, अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं कर पाता ....।"

ज्ञानकी बातें भाईजीके लिये केवल सुनने–सुनानेकी चीज नहीं रही थी, बल्कि सचमुच ही अन्तस्तलमें जा पहुँची थी। उन बातोंने मनमें घर कर लिया था। जगत् उनके लिये सत्य–वस्तु नहीं रह गया था, पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जगत्को मिथ्या माननेके साथ वे आजकलके ज्ञानाभिमानीकी भाँति भगवान्‌के विग्रह अवतार आदिको भी मिथ्या, मायाकल्पित मानते थे। एक तरफ तो उनके ध्यानकी ऐसी ऊँची अवस्था होती थी कि रात्रिमें लगातार नौ–नौ घंटे वे समाधिस्थसे रहते थे। बात करते हुए सत्संगमें स्वयं कहे थे कि उस समय मुझे शरीरका बिल्कुल भान नहीं रहता था। यदि मेरे शरीरमें कोई सूई चुभा देता तो मुझे बिल्कुल प्रतीति नहीं

होती——इतनी गाढ़ अवस्था ध्यानकी होती थी और व्यवहार करते समय यह प्रतीति होती थी कि आकाशमें तिरमिरोंकी भाँति जगत् शुद्ध अनन्तानन्द, बोध स्वरूपानन्द ब्रह्ममें भ्रमवत् है। पर यह होते हुए भी भगवान्, भगवन्नामपर उनकी आस्था ज्यों–की–त्यों बनी हुई थी। साकार विग्रहके प्रति उनके मनमें यह भाव कदापि नहीं था कि यह भी तिरमिरेकी भाँति एक मिथ्या प्रतीति है। वे तो भगवान्, भगवत्कृपा और भगवन्नामकी कृपाका पद–पदपर निरन्तर अनुभव करते रहते थे।

उन दिनों एक अनुभव तो इन्हें ऐसा हुआ कि जिसके लिये बड़े–बड़े योगी–मुनि भी लालायित रहते हैं। गोरखपुरमें एक दिन सत्संगके समय उन्होंने उसका वर्णन करते हुए स्वयं कहा था——बम्बईकी बात है। मैं सागरमल गनेड़ीवालेके साथ सूरदासका नाटक देखनेको जानेवाला था। सागरमलका घर रास्तेमें ही था। सागरमलने कहा——चलो घर चलकर पानी पी लें। मैंने स्वीकार कर लिया और हम दोनों उसके घर पहुँचे। घर पहुँचनेपर श्रीभगवन्नामके सम्बन्धमें बात चल पड़ी। सागरमलका कहना था कि भगवन्नाम जपका, भगवत्–स्मृतिके साथ होनेसे ही विशेष फल होता है। मैं कहता था कि नहीं, किसी भावसे जाने या अनजानेमें, अन्त समय यदि 'रा' और 'म' ये दो अक्षर मुखसे निकल गये तो प्राणीकी सद्‌गति होगी ही। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मंत्रके अक्षरोंमें ही ऐसी शक्ति है। यह सुनकर सागरमलने कहा——आर. ए. एम. (Ram)——'राम'का अर्थ अंग्रेजीमें मेंढ़ा होता है। यदि कोई अँग्रेज मरते समय मेंढ़के भावसे 'राम' पुकार उठे तो क्या उसकी सद्‌गति हो जायगी ? उसके ज्ञानमें रामका अर्थ मेंढ़के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। बोलो क्या उत्तर है ? मैंने कहा——मेरे विश्वासके अनुसार तो उसकी गति हो ही जानी चाहिये। यह बात तो हो ही रही थी कि हठात् मेरा बाह्य ज्ञान जाता रहा। मेरे नेत्र खुले हुए थे पर बाहरसे कुछ भी होश नहीं रहा। नेत्र खुले हुए ज्यों–का–त्यों उसी स्थानपर बैठा रहा। मुझे इतना स्मरण है कि उस समय मुझे वनवेषधारी भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन हुए। कितनी देरतक दर्शन होते रहे, यह याद नहीं। बातें भी हुई थीं, पर सब बातें स्मरण नहीं रही। केवल दो बातें याद रहीं। एक तो भगवान्‌ने कहा था——किसी प्रकार भी नामलेनेवालेकी सद्‌गति ही होगी। दूसरी यह कि भगवान्‌ने भक्त विष्णुदिगम्बरजी गायनाचार्यका इसी सिलसिलेमें नाम लिया था। इसके अतिरिक्त और कुछ भी याद नहीं

रहा। होश आनेपर दूसरे दिन सागरमलने मुझसे कहा कि तुम उस समयसे कह रहे थे कि 'यह भगवान् हैं, इनके चरण पकड़ लो' आदि–आदि। पर मुझे न तो बाहरका ज्ञान था, न मैंने अपने ज्ञानमें कुछ कहा ही था। अस्तु, इस प्रकार सारी रात बीत गयी। मुझे बाह्यज्ञान नहीं हुआ। अब सागरमल घबड़ा गया कि इसे क्या हो गया ? आखिर उसने मेरा हाथ पकड़कर खड़ा किया, पकड़े हुए ही मुझे सीढ़ियोंसे नीचे उतार लाया। फिर उसी तरह मेरे घर मुझे ले आया। घर आनेपर मुझसे कहा कि शौच हो आओ, पर मुझे तो बिल्कुल ही होश नहीं था कि बाहर क्या हो रहा है। इसलिये मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। मुझे उसी तरह बाह्यज्ञान शून्य देखकर उसने मुझे पानीके नलके नीचे बिठा दिया। मेरे सरपर जलकी धार गिरने लगी और स्वयं सागरमलजी नाम–कीर्तन करने लगे। अब जाकर मुझे कहीं धीरे–धीरे बाह्यज्ञान हुआ। उसी दिन दोपहरके समय श्रीविष्णुदिगम्बरजी मुझसे मिले। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी, सुनकर वे रोने लग गये।

अब सहज ही अनुमान हो सकता है कि किस प्रकार भाईजीका हृदय एवं मस्तिष्क दोनों ही भगवान्‌से जुड़ते जा रहे थे। भगवान्‌के निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपकी ज्योति मस्तिष्कको उद्भासित कर रही थी। इधर रसमय भाव हृदयमें संचित होता जा रहा था। यद्यपि यह सारी बातें भगवत्कृपासे ही इनके जीवनमें हो रही थीं, पर निमित्तके लिये कहा जा सकता है कि इनकी साधनाकी लगन भी अद्भुत ही थी। साधनाकी तत्परता ऐसी थी कि रातमें नींद प्रायः दो–ढाई घंटेसे अधिक नहीं लेते थे। कामकाज अथवा अन्य पारमार्थिक प्रचारमें शरीरको, मस्तिष्कको काफी परिश्रम पड़ता था। फिर भी बड़ी लगनके साथ यह रातको साधना करते। पर शरीर तो आखिर प्राकृतिक नियमोंके बन्धनमें ही रहता है। नींद नहीं लेनेके कारण इनके सिरमें भयानक पीड़ा हुई। बड़े–बड़े वैद्य डाक्टरोंके द्वारा औषधोपचार हुआ। हजारों रुपये खर्च किये गये, पर कोई लाभ न हुआ। दो–तीन वर्षके बाद जब वेदान्तकी साधना छूट गयी, तब दर्द भी अपने–आप चला गया। वेदान्तकी साधना छूटनेमें साक्षात् भगवान्‌की ही इच्छा हेतु थी।

स्वजनोंकी सहायता

जैसे–जैसे भाईजीकी साधनाकी स्थिति प्रगाढ़तर होती जा रही

थी वैसे-वैसे साधकोंका जमघट भी उनके पास एकत्रित होने लगा। साधकोंके लिये बीस नियम बनाये जिनके पालनसे पारमार्थिक उन्नति हो। इस साधन कमेटीके लगभग ५० सदस्य थे जो उत्साहसे नियमोंका पालन करते थे। इन्हीं दिनों भाईजीने अपने अनुभवके आधारपर एक पुस्तक लिखी 'मनको वशमें करनेके उपाय'।

प्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णुदिगम्बरजी भाईजीके परम मित्र थे। उन्होंने एक संस्था 'गान्धर्व महाविद्यालय' खोल रखी थी। उदारतावश वे पैसा खुले हाथ खर्च करते। अतः लगभग पचहत्तर हजारका ऋण हो गया और महाविद्यालयके नीलाम होनेकी नौबत आ गयी। भाईजीके पास यह बात आयी। उनकी स्वयंकी ऐसी स्थिति नहीं थी कि इतनी रकम दे सके। मित्रका संकट दूर करनेकी प्रबल लालसाने इन्हें ऋण लेनेको बाध्य कर दिया। श्रीबालकृष्ण लालजी पोद्दार, श्रीनिवासदासजी पोद्दार, बिड़ला बन्धु, श्रीनिवासजी बजाज, श्रीलक्ष्मणदासजी डागा आदिसे अपने नामपर ऋण लेकर पचहत्तर हजार रुपया इकट्ठा करके महाविद्यालयका ऋण चुकाया। पं० विष्णु दिगम्बरजीका रोम-रोम इनके प्रति कृतज्ञतासे भर गया। इस ऋणके कारण भाईजीको भी बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी और इसका परिशोध बारह साल बाद सं० १९९२ (सन् १९३५) में हुआ।

एक बारकी बात है—'मारवाड़ी-अग्रवाल-जातीय कोष'के कैशियर श्रीराजारामने अपने खर्चके लिये दो हजार रुपये रोकड़मेंसे ले लिये। पता लगते ही अधिकारियोंने उसे पुलिसमें गिरफ्तार करा दिया। किसीको अपना सहायक न देखकर वह भाईजीके सामने रोने लगा। भाईजीके हाथमें उन दिनों रकमकी बिलकुल छूट नहीं थी। परन्तु इसकी परवाह न करके दो-तीन मित्रोंसे भाईजीने रुपये उधार लेकर उसे छुड़ा दिया। वह भाईजीके कृपाके सामने नतमस्तक हो गया। भाईजीने अनेकों बार अपने कष्टकी परवाह किये बिना दूसरोंको कष्टसे मुक्त कराया।

दूसरी बारकी बात है—'सांगीदास जैसीराम' नामकी फर्ममें इनकी फर्म 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' को लगभग दस हजार रुपये लेने थे। भाईजी यह जानते थे कि सट्टेमें घाटा लगनेके कारण सांगीदासजीकी अवस्था गिरी हुई है। अतः तकाजा करना तो दूर रहा, जब सांगीदासजी कहीं रास्तेमें मिल जाते तो ये आँख बचाकर निकल जाते, जिससे उन्हें संकोचमें न पड़ना पड़े। एक ओर इनका तो इतना साधु व्यवहार था, पर

इनके साझीदार चिरंजीलालजी रुपया वसूल करनेके लिये आकाश–पाताल एक कर रहे थे। उन्होंने देखा कि भाईजीकी जानकारीमें तो रुपये वसूल होना कठिन है इसलिये इनसे कुछ नहीं कहकर उन्होंने नालिश कर दी तथा उनके नाम वारंट कट गया। वारंट कटनेपर, बात भाईजीके पास जा पहुँची और पता लगते ही अविलम्ब पहली चेष्टा इनकी यह हुई कि टेलीफोनसे सांगीदासजीको सूचित कर दिया कि मेरे अनजानेमें इस प्रकारसे बातें हुई हैं। आपको पकड़वाने लोग जा रहे हैं, आप अपना बचाव कर लें। सचमुच ही अपने साझीदार चिरंजीलालजीके व्यवहारसे भाईजीके मनमें बड़ा विचार हुआ, पर शीलतावश ये उनसे भी प्रकटमें कुछ नहीं कह सके। जो हो, इस प्रकारकी अनेकों अत्यन्त साधुतापूर्ण चेष्टाके कारण लोग इनके प्रति बहुत विश्वास रखते थे। इसीसे जब भाईजी ऋषिकेश गये तो वहाँसे बम्बईके मित्रोंका आग्रह देखकर शीघ्र लौटना पड़ा। इसके अतिरिक्त इनके बाहर चले जानेसे सत्संगभवनकी सम्भालका काम भी अस्त–व्यस्त हो जाता था। सत्संगका काम स्वयं इन्हें तथा इनके पथ–प्रदर्शक (पूज्य श्रीसेठजी) को अतिशय प्रिय था, अतः यह भी शीघ्र लौट आनेमें हेतु हुआ।

कल्याणका शुभारम्भ

भाईजीका "मारवाड़ी अग्रवाल सभा" के साथ सम्बन्ध था, केवल समाजसेवाकी दृष्टिसे। उनकी परमार्थ–साधनाका यह विशेष अंग कदापि नहीं था। यों तो सभी शुभ चेष्टायें परमार्थमें सहायक होती हैं, पर जैसे कर्मयोगीका तो साधन–क्षेत्र ही शुभ कर्म होता है, वैसे इन चेष्टाओंसे सम्बन्ध नहीं था। फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशनमें ही जाया करते थे।

मारवाड़ी अग्रवाल सभाका आठवाँ अधिवेशन (चैत्र शुक्ल १, २, ३/ १९८३ वि०) दिल्लीमें हुआ। इस बार सभापति श्रीजमनालालजी बजाज थे एवं स्वागताध्यक्ष थे श्रीआत्मारामजी खेमका। दोनोंसे ही भाईजीका घनिष्ठ सम्पर्क था। किसी कारणसे आत्मारामजीने तो पहले स्वागताध्यक्षका पद ग्रहण करना ही अस्वीकार कर दिया था, पर जयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजीके आग्रहसे स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिल जानेपर यह प्रश्न उठा कि इतनी शीघ्रतामें स्वागताध्यक्षका सर्वांग सुन्दर भाषण तैयार हो जाना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि २४ घंटेमें लिखकर छपकर दूसरे ही दिन उसे पढ़ना था। खेमकाजीने इसका भार भाईजीपर डाला। सचमुच ही

इनके सिवा इतनी शीघ्रतामें गम्भीरतापूर्ण भाषण तैयार कर देने वाला और कोई था भी नहीं। ये भी खेमकाजीकी प्रेमभरी इच्छाकी उपेक्षा नहीं कर सके। रातमें ही भाषण लिखकर, छपाकर इन्होंने तैयार कर दिया। दूसरे दिन अधिवेशनमें भाषण पढ़ा गया। लोगोंको बड़ा सुन्दर लगा। अधिवेशनमें श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला भी आये हुए थे। यद्यपि बिड़लाजीके एवं भाईजीके विचारोंमें मतभेद था, पर बचपनकी मित्रता थी। इस बारका भाषण उन्हें भी मतभेद रहते हुए भी अच्छा लगा। वे अधिवेशनके समाप्त होनेपर बातके सिलसिलेमें भाईजीसे बोले——भाई, तुम लोगोंके विचार क्या हैं ? कैसे हैं ? कहाँतक ठीक हैं ? इसकी आलोचना हमें नहीं करनी है, पर इसका प्रचार जगत्में तुम लोगोंके द्वारा हो रहा है। जनता इसे दूरतक मानती भी है। यदि तुमलोगोंके पास अपने ही विचारोंका, सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुम लोगोंको और भी सफलता मिलती। तुम लोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो।

बिड़लाजीने परामर्शके रूपमें एक चुभती हुई–सी बात कह दी थी, पर सचमुच ही यह चर्चा 'कल्याण' मासिक पत्रके जन्ममें हेतु बनी। अधिवेशन समाप्त होनेपर सभी अपने–अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल पड़े। भाईजी भी बम्बईकी ओर चले। उस समय श्रीजयदयालजी चूरूसे भिवानी आये हुए थे। उन्हें बाँकुड़ा जाना था। सत्संगके लिये भिवानीमें ठहर गये थे। भाईजीके मनमें आया कि दर्शनका सुयोग क्यों छोड़ूँ ? भिवानी चलूँ, वहाँसे साथ ही रिवाड़ी चला जाऊँगा। रिवाड़ीसे बम्बई चला जाऊँगा, यही हुआ। भिवानीका सत्संग समाप्त करके श्रीजयदयालजी बाँकुड़ाके लिये रवाना हुए। गाड़ीमें अधिवेशनकी चर्चा छिड़ गयी। उसी प्रसंगमें भाईजीने घनश्यामदासजीकी पत्र निकालनेकी सलाहवाली बात कह डाली। पासमें बैठे थे लच्छीरामजी मुरोदिया। मुरोदियाजी सुनते ही बोले——बस–बस बिल्कुल ठीक है, अवश्य निकलना चाहिये। इतना ही नहीं, गाड़ीके एक कोनेमें ये भाईजीको ले गये तथा अत्यन्त प्रेमभरे आग्रहसे समझा–बुझाकर इनसे वचनतक ले लिया कि मैं प्रतिदिन दो घंटा सम्पादनका कार्य किया करूँगा। इनसे वचन लेकर गोयन्दकाजीके पास आये तथा पत्र निकालनेकी स्वीकृति माँगने लगे। गोयन्दाकाजीने जब यह सुना कि भाईजीने सम्पादनका भार सम्भालना स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने भी सहर्ष अनुमति दे दी। गाड़ीमें ही चैत्र शुक्ल ६ सं० १९८३ को यह निश्चय
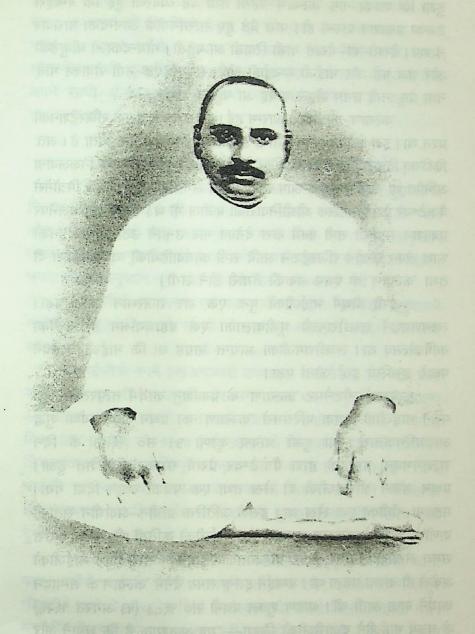
बम्बईमें 'कल्याण'के प्रवर्तनके समय श्रीभाईजी

हुआ कि पत्रका नाम 'कल्याण' रहेगा तथा यह व्यवस्था हुई कि बम्बईसे इसका प्रकाशन प्रारम्भ हो। पास बैठे हुए सत्संगियोके आनन्दका पारावार न रहा। देखते–ही–देखते गाड़ी रिवाड़ी आ पहुँची। गोयन्दकाजी बाँकुड़ेकी ओर चल पड़े और भाईजी बम्बईकी ओर। हृदयमें एक नयी सेवाका भाव, नया प्रेम, नयी उमंग लेकर बम्बई आ पहुँचे।

'कल्याण' की तैयारी आरम्भ हुई। सबसे पहले उसके रजिस्ट्रेशनका प्रश्न था। इस क्षेत्रका अनुभव तो इन्हें था नहीं कि कैसे क्या होता है। अतः किञ्चित् विचारमें पड़ गये। पर जिन विश्वसूत्रधार प्रभुको 'कल्याण' निकलवाना अभिप्रेत था, उन्होंने अपने–आप सारा संयोग लगा दिया। भाईजीके मित्रोंमेंसे वैंकटेश्वर प्रेसके मालिक श्रीश्रीनिवासजी बजाज भी थे। उनसे बात चलनेपर प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य करा देनेका भार उन्होंने उठा लिया। इनको साथ लेकर उन्होंने रजिस्ट्रेशन आदि सभी कार्यवाहियोंकी व्यवस्था करा दी तथा 'कल्याण' के प्रथम अंकको तैयारी होने लगी।

इसी बीचमें भाईजीको पुनः एक बार राजस्थान जाना पड़ा। लक्ष्मणगढ़में लच्छीरामजी चूड़ीवालाका एक ब्रह्मचर्याश्रम है, उसीका वार्षिकोत्सव था। लच्छीरामजीका अत्यन्त आग्रह था कि भाईजी उत्सवमें पधारें, इसलिये इन्हें जाना पड़ा।

बम्बई लौटनेपर 'कल्याण' के प्रकाशन कार्यमें तत्परतासे जुट पड़े। भाईजीके अथक परिश्रमसे 'कल्याण' का प्रथम अंक सर्वथा शुद्ध आध्यात्मिकतासे रंगा हुआ श्रावण कृष्णा ११ सं० १९८३ के दिन सत्संगभवन, बम्बईके द्वारा वैंकेटेश्वर प्रेसमें छपकर प्रकाशित हुआ। प्रथम अंकमें श्रीसेठजीके दो लेख तथा एक पत्रको स्थान दिया गया। महात्मा गाँधीका एक लेख था। इसके अतिरिक्त प्राचीन–अर्वाचीन संतोंकी वाणीसे, शास्त्रोंसे संकलन था तथा शेष भाईजीकी कृतियाँ थी। बम्बईमें उस समय लेखोंके संग्रहसे लेकर ग्राहकोंतक पहुँचानेका सारा कार्य भाईजीको अकेले ही करना पड़ता था। बम्बईमें इतना समय देनेमें 'कल्याण'के सम्पादन कार्यमें बाधा आती थी। श्रावण शुक्ल पंचमी सं० १९८३ (१३ अगस्त १९२६) के पत्रमें भाईजीने दुजारीजीको लिखा—"यह आवश्यक है कि छपाने और ग्राहकोंके यहाँ पहुँचाने वगैरहके झंझटसे मुझे जितना शीघ्र मुक्त कर दिया जाय उतना ही सम्पादनका कार्य सुचारु रूपसे होना संभव है।" इस संकेतको पाकर दुजारीजी अपने सनावद (मध्यप्रदेश) की दुकानके कामको

छोड़कर भाईजीको पूर्ण सहयोग देनेके लिये बम्बई आ गये क्योंकि उस समय 'कल्याण' की स्थितिको देखते हुए किसीको वेतन पर रखना संभव नहीं था। दूसरे वर्षसे 'कल्याण' का प्रथम अंक विशेषांकके रूपमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीकी प्रेरणासे 'भगवन्नामांक' निकला। श्रीदुजारीजीने अपने साथी श्रीरामकृष्णजी मोहताके सहयोगसे 'कल्याण'के बहुत नये ग्राहक बनाये।

बम्बई छोड़नेका उपक्रम एवं विदाई

'कल्याण' का पहला अंक निकालकर भाईजी निश्चिन्त हुए ही थे कि एक नयी चिन्ता आ पड़ी। श्रीसेठजीका स्वास्थ्य विशेष खराब हो गया। औषधोपचारसे कोई लाभ नहीं हुआ। उनके लिये एक विशेष अनुष्ठान उनके यज्ञोपवीत–गुरु बीकानेरके पं० गणेशदत्तजी व्याससे भाईजीने करवाया। भगवत्कृपासे अनुष्ठान पूरा होते ही श्रीसेठजी स्वस्थ हो गये।

भाईजीके व्यवहारसे एवं साधनासे बम्बईके मारवाड़ी समुदायमें भाईजीकी बहुत प्रतिष्ठा हो गई थी। वे इस मान–बड़ाईके चक्करसे निकलना चाहते थे।

भाईजीके मनमें इस प्रपञ्चसे उपरामता तेजीसे बढ़ रही थी। सारे कार्य करते हुए भी मन प्रभुकी ओर लगा रहता था। प्रभु तीव्रतासे अपनी ओर खींच रहे थे। सोचने लगे कहीं एकान्तमें गंगातटपर जीवन व्यतीत किया जाय। ज्येष्ठ सं० १९८४ (मई, १९२७) से निराकारके ध्यानके स्थानपर शिमलापालके सदृश श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रत्यक्ष ध्यान होने लगा। इन दिनों भाईजी ताराचन्द घनश्यामदासके मकानमें सबसे ऊपरकी मंजिलपर श्रीरामकृष्णजी डालमिया, श्रीबनारसीदासजी झुनझुनवाला, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके साथ ही रहते थे।

श्रीसेठजीकी प्रेरणासे अग्रवाल–महासभाके कामसे कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँसे भाईजी अपनी जन्मभूमि आसाम गये। इनके सास–ससुर गौहाटीमें रहते थे और उन दिनों वे अस्वस्थ थे, उनसे मिलने गौहाटी गये। मन तीव्र वैराग्यसे भरा हुआ था, वहीं भाईजीने बम्बईकी दूकानसे अलग होनेका निश्चय कर लिया। वहाँसे बम्बई दूकानवालोंको तार दे दिया कि घरू सौदे (माथे पोतेके कामको) बराबर कर दो। वहाँसे बाँकुड़ा श्रीसेठजीसे मिलने गये।

अब इन्हें बंम्बईका रहना, एक–एक दिन भारी लगने लगा। इन्हें अपने फर्म 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' से अपना हिस्सा निकालना था। यद्यपि इनके पास उस समय पूँजी एकत्रित नहीं थी पर फर्ममें उस समय लाभ था अतः साझीदारसे अपना हिस्सा निकालनेका दृढ़तापूर्वक नम्र प्रस्ताव किया। उन्होंने पहले तो स्वीकार नहीं किया, पर इनकी उपराम वृत्तिसे वह परिचित था, इसलिये मनमाना जमा खर्च कराके इन्हें अलग कर दिया। भाईजीको धनकी परवाह तो थी नहीं, उन्होंने जैसे कहा वैसे ही लिखा–पढ़ी कर दी और व्यापारसे सर्वथा अलग होकर साधन–भजनमें मस्त हो गये।

इधर 'कल्याण' के प्रकाशनकी योजना गीताप्रेस, गोरखपुरसे बनने लगी। श्रीसेठजीका जसीडीहसे तार मिला कि 'कल्याण' का सब स्टाफ लेकर शीघ्र गोरखपुर जाकर दूसरे वर्षका, दूसरा अंक वहींसे प्रकाशित करो। भाईजी तो बम्बई छोड़नेको लालायित थे ही। इन्होंने श्रीसेठजीको अपने गंगातट सेवनकी अभिलाषासे अवगत कराया। उनका उत्तर आया––दो तीन महीने गोरखपुर रहकर 'कल्याण' का काम वहाँके लोगोंको समझाकर पीछे तुम जहाँ जाना हो चले जाना और वहींसे प्रति मास छापनेकी सामग्री भेज देना। भाईजीको यह बात अपने मनके अनुकूल लगी। भाईजी कहीं एकान्तमें भजन करनेके लिये विदा ले रहे हैं––यह संवाद आगकी तरह चारों ओर फैल गया। जो–जो सुनता वही अधीर हो जाता। भाईजीसे रहनेका आग्रह करनेपर भी ये अपने निर्णयपर अडिग थे। यह समाचार पाकर उनके मित्र पं० हरिवक्षजी जोशी मिलने आये। बोले––भाईजी आप जा रहे हैं, मन बड़ा भारी है। मैं चाहता हूँ आपका भावी जीवन भी ऐसा पवित्र बना रहे और साधनामें उत्तरोत्तर उन्नति करें। पर आप किसी सत्संगीसे पैसेका सम्बन्ध कभी मत रखियेगा। भाईजीने इस बातकी गाँठ बाँध ली और जीवन पर्यन्त इसे निभाया। शरीर छोड़नेके दस दिन पहले भाईजीसे मिलने जोशीजी गोरखपुर आये तो भाईजीने कहा––पण्डितजी आपने मुझे बहुत बड़े दोषसे बचनेकी जो बात कही थी, वह मुझे बराबर याद रही और उसके कारण मैं अनेक दोषोंसे बच गया। भगवान्‌की कृपासे मेरा व्रत अक्षुण्ण निभ गया।

गोरखपुर जानेकी तैयारी होने लगी और श्रावण शुक्ला १३ सं० १९८४ (११ अगस्त, १९२७) के दिन पैंतीस वर्षकी अल्पायुमें व्यापारसे सर्वथा

विलग होकर अध्यात्म साधनाके लिये बम्बईसे चल पड़े। रात्रिको दिल्ली एक्सप्रेससे रवाना होना था। स्टेशनपर एकत्रित सैकड़ों प्रेमीजन सिर्फ एक ही चर्चा कर रहे थे--क्या भाईजी सदाके लिये बम्बई छोड़ रहे हैं ? समाजके अनेक प्रतिष्ठित लोग आये थे। भाईजीने सबसे अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा याचना की और आजीवन कृपा बनाये रखनेकी भीख माँगी। गाड़ी रवाना हो गयी। भगवान्‌के नामका जय घोष हुआ, सभीके नेत्र बरस पड़े। भाईजी हाथ जोड़े सबकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे निहारते रहे। इनका 'भाईजी' नाम बम्बईसे ही पड़ा। जिसे बादके जीवनमें बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभीने अपनाये रखा।

प्रलोभनोंमें न फँसना

गोरखपुर पहुँचकर भाईजी एक बार गीताप्रेसमें ठहरे एवं 'कल्याण' के काममें लग गये। गीताप्रेसका कार्य उस समय भी श्रीघनश्यामदासजी, श्रीशुकदेवजी, श्रीगंगाप्रसादजी, पं० लाधूरामजी देखते थे। बम्बईके साथी मित्र सभी भाईजीसे मिलनेको उत्सुक थे। उनका भाव सच्चा था। अतः प्रभुने वैसी व्यवस्था की। अभी गोरखपुर आये पन्द्रह दिन भी नहीं हुए थे कि श्रीरामकृष्णजी डालमियाके विशेष कार्यसे बम्बई जाना पड़ा। भगवत्-साक्षात्कारके पहले प्रायः परीक्षा होती ही है। भाईजीकी भी परीक्षाका समय आया। बम्बईमें सभी प्रतिष्ठित मारवाड़ी बन्धुओंके ये आदरणीय सुहृद थे। वहाँ 'हरनन्दराय रामनारायण रुइया' एक करोड़पति फर्म थी। उस समय उनकी तीन-चार बड़ी मिलें थीं। भाईजीके बम्बई पहुँचनेका समाचार सुनकर फर्मके मालिक श्रीरामनारायणजी रुइया पूनासे बम्बई आये। इन्हें एकान्तमें ले जाकर अपने हृदयकी बात कही कि मेरी अवस्था वृद्ध हो गयी है एवं बच्चे अभी छोटे हैं। इसलिये अब बम्बईमें रहकर आप मेरे फर्मकी एवं बच्चोंकी देख-भाल करें। इसके लिये पचास हजार रुपये सालाना अपने खर्चके लिये लेते रहें, रहनेके लिये बंगला और गाड़ी भी रहेगी। इसके साथ ही आप जिस काममें चाहें अपना हिस्सा रख लें। मैं आपको पूर्ण अधिकार देकर आपकी इच्छानुसार लिखा-पढ़ी कर देता हूँ वास्तवमें भाईजीके सामने यह बड़ा लुभावना प्रस्ताव आया था। परन्तु जिनके मनमें भगवान्‌के दर्शनोंकी उत्कंठा जाग उठती है, उनको प्रलोभन क्या लुभायेंगे ? भाईजीने बड़ी नम्र भाषामें उत्तर दिया--मैंने तो बम्बई रहनेका विचार ही छोड दिया

है, अतः मैं बम्बई रहकर आपके कार्य संचालनमें सर्वथा असमर्थ हूँ। उन्होंने बहुत अनुनय–विनय की, परन्तु भाईजी पूर्ण दृढ़ रहे। प्रभुने परीक्षा लेनी चाही जिसमें भाईजी सर्वथा उत्तीर्ण हो गये।

भगवद्दर्शनकी उत्कंठा

भाद्र शुक्ला ३ सं० १९८४ (३० अगस्त, १९२७) को भाईजी पुनः गोरखपुर आ गये एवं 'कल्याण' के दूसरे वर्षके तीसरे अंकके सम्पादनमें लग गये। ऊपरसे तो ये सारा कार्य कर रहे थे, परन्तु इनके हृदयमें भगवद्दर्शनोंकी लालसा प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुहाता था।

भाईजीका मन छटपटा रहा था, प्रभु सामने क्यों नहीं आते। हमलोग वैसी स्थिति हुए बिना कुछ भी कल्पना नहीं कर सकते। भाईजी अपना सब कुछ स्वाहा करनेको तैयार थे—

प्रियतमसे मिलनेको जिसके, प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरी को वह किसी प्रकार।।
नहीं ताकता किंचित् भी शत–शत बाधा–विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते, मधुर बंशरी नन्द–किशोर।

(पद–रत्नाकर)

यही हालत भाईजीके हृदयकी थी। हर समय एक ही लालसा लगी हुई थी—

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंशी बट, कालिंदी–तट नट नागर नित्य निहारौं।

(पद–रत्नाकर / प० सं० १०५२)

अपने अध्यात्मपथपर चलते हुए भाईजी भगवान्के अत्यन्त निकट आ गये थे। दर्शनोत्कंठा प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। श्रीसेठजी भी इस उत्कंठाको और तीव्र करते जा रहे थे। उस समय श्रीसेठजी जसीडीहमें स्वास्थ्य लाभके लिये गये हुए थे। वहाँ रहते हुए भी वे भाईजीकी मनः स्थितिसे पूर्ण परिचित थे और सूक्ष्मतासे निहार रहे थे। वे उपयुक्त अवसरकी ताकमें थे।

जसीडीहमें दो बार भगवान् श्रीविष्णुके साक्षात् दर्शन

भाईजीकी परीक्षा भी हो गयी थी एवं साधना भी पूर्ण परिपक्व

हो गयी थी। सचमुच इनके तन–मन–प्राण भगवान्‌की रूप–माधुरीके दर्शनके लिये छटपटा रहे थे। न दिनमें चैन था, न रातमें नींद। अजीब–सी आकुलता हृदय और आँखोंमें छायी हुई थी। भक्तके हृदयकी आकुलता भगवान्‌के हृदयमें प्रतिबिम्बित हो जाती है और वे अपने प्राकट्यकी भूमिकाका निर्माण कर देते हैं। भाईजी अपने गुरु रूपमें श्रीसेठजीको ही मानते थे, अतः यह कार्य भगवान्‌ने उनके माध्यमसे ही पूर्ण किया। श्रीसेठजीने अवसर देखकर इन्हें तार देकर अपने पास जसीडीह बुलाया। तार मिलनेकी देर थी, उसी दिन सायंकाल ये श्रीघनश्यामदासजी जालानके साथ गोरखपुरसे रवाना हो गये।

अब आगे जो घटना घटी, वह आध्यात्म–जगत्‌की एक सुदुर्लभ घटना थी। जहाँ भी भगवान्‌के साक्षात् दर्शन होते हैं, साधककी परिपक्वावस्थामें और एकान्तमें प्रायः होते हैं, पर भाईजीको साक्षात् दर्शन पन्द्रह–बीस महानुभावोंकी उपस्थितिमें होना एक अनहोनी बात है, जिसका रहस्य श्रीसेठजीने ही आगे चलकर खोला। अब आगेकी घटना श्रीघनश्यामजी जालान द्वारा मारवाड़ी भाषामें लिखित और भाईजी द्वारा संशोधित किये हुए कागजके मुख्य अंशको हिन्दीमें रूपान्तर करके दिया जा रहा है।

पहली घटना

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

तिथि––आश्विन कृष्ण ६, शुक्रवार, वि० सं० १९८४ (१६ सितम्बर, १९२७)
स्थान––जसीडीह, मारवाड़ी आरोग्य भवन
समय––दिनके ग्यारह बजे

श्रीसेठजी आरोग्य भवनके अपने कमरेमें पलंगपर लेटे हुए थे। भाईजी और घनश्यामजी नीचे बैठे थे। श्रीसेठजीकी भाईजीके साथ ध्यान विषयकी बात हुई।

भाईजीको पहले जिस प्रकार भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए थे, वह बात कही तथा शिमलापालमें आँख खुले हुए भगवान् विष्णुका ध्यान होने लग गया था, बीचमें बन्द हो गया तथा फिर होता है, वह बात कही। श्रीसेठजीने कहा––भगवान्‌का दर्शन होनेके बाद तत्त्वज्ञान उसी समय होना चाहिये। यदि कोई प्रतिबन्ध रह जाय तो उसी समय नहीं होता। फिर भी उसका भार भगवान्‌पर आ जाता है। फिर एक या दो–बार दर्शन देकर

उसको तत्त्वज्ञान करा देते हैं। मुक्तिमें कोई संशय रहता ही नहीं। फिर आपने (श्रीसेठजीने) पूछा——तुम्हें जो विष्णु भगवान्‌का ध्यान होता है, उसके विषयमें तुम्हारी क्या धारणा है ? वह ध्यान है या साक्षात्कार मानते हो ? तब भाईजीने कहा——बातचीत व स्पर्श होनेके सिवाय साक्षात् होनेके जैसा ही लगता है। आप (श्रीसेठजी) बोले——तुम साक्षात् समझते हो, तो चरण–स्पर्श करनेकी कोशिश नहीं करते ? यह तो तुम्हारी दृढ़ भावना ही हो सकती है। तब भाईजी बोले——मुझे भी दृढ़ भावना ही लगती है। जबतक मैं ध्यान करता हूँ ....तबतक मूर्ति दिखती तथा चलते हुए भी दिखती है, बैठे हुए भी दिखती है तथा आसपासकी वस्तुएँ भी दीखती हैं। तब श्रीसेठजी बोले——इसे तो ध्यानकी प्रगाढ़ स्थिति समझनी चाहिये। इसके बाद श्रीसेठजीके विश्रामका समय होनेसे भाईजी, घनश्यामजी दोनों चले आये। फिर भाईजीकी ऐसी प्रबल इच्छा हुई कि भगवान्‌का सगुण साक्षात्कार हो, उसके लिये श्रीसेठजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। थोड़ी देर बाद, दो बजे भाईजी तथा घनश्यामजी श्रीसेठजीके पास गये। जाते ही श्रीसेठजी बोले——आज तो ध्यानके लिये पहाड़ीपर चलनेका विचार है। इतनेमें और भी लोग आ गये।

सब लोग पहाड़ीपर गये। आगे–आगे श्रीसेठजी थे, रास्तेमें कई जगह देखी गयीं। लोगोंने कहा जगह अच्छी लगती है, परंतु श्रीसेठजीको पसन्द नहीं आयी। फिर उन्होंने एक जगह चुनकर बतायी, वह स्थान महेन्द्र सरकारके कोठीके पूर्व–दक्षिण भागमें सीताफलके वृक्षके समीप है। जसीडीहमें भी उस स्थानपर, श्रीज्वालाप्रसादजीके हाथसे लिखे हुए पन्नेके अनुसार, निम्नलिखित लोगोंकी उपस्थिति थी——(१) श्रीजयदयालजी गोयन्दका (२) हनुमानप्रसादजी पोद्दार (३) घनश्यामदासजी नुवेवाला (जालान) (४) रामेश्वरलालजी नुवेवाला (जालान) (५) द्वारकादासजी नुवेवाला (जालान) (६) सुखदेवजी (गीताप्रेस) (७) प्रह्लादरायजी जालुका (८) शुभकरणजी चूड़ीवाला (९) रामलालजी चूड़ीवाला (१०) डूँगरमलजी बागला (११) ज्वालाप्रसादजी कानोडिया (१२) केदारनाथजी कानोडिया (१३) शिवदयालजी गोयन्दका (१४) दौलतरामजी (१५) वैद्यनाथजी शेखपुरवाला।

सभी लोग एक तरफ बैठ गये भाईजी श्रीसेठजीके सामने बैठे थे। उनके एक तरफ ज्वालाप्रसादजी और दूसरी तरफ घनश्यामजी थे। श्रीसेठजी बोले——हनुमान आँख खोले हुए भगवान्‌का ध्यान करता है, उसे उसी तरह

करना और कहना चाहिये। भाईजीने पूरी तरह स्वीकार किया। तब वैद्यनाथजी शेखपुरवाला बोले––आप (श्रीसेठजी) ही कहें। तब श्रीसेठजी बोले––मैं तो यही विचार करके आया था कि हनुमानके द्वारा ही लोगोंको बात सुनानी है। इसलिये तुम्हें (हनुमानको) ही उसी तरहसे ध्यान करना चाहिये और लोगोंको बताना चाहिये। मेरा भी पीछे कहनेका विचार है। इतना कहते ही भाईजी बोले––आपकी आज्ञासे कहनेको तैयार हूँ। तब श्रीसेठजी बोले––गीता ४/७, 'यदा–यदा' तथा भगवान्‌की स्तुतिके श्लोक बोलकर भगवान्‌का ध्यान करो। तब भाईजीने पहले 'शान्ताकारं', 'सशंखचक्रं', 'यदा–यदा' तथा 'परित्राणाय' ये चार श्लोक बोलकर, शिमलापालमें उन्हें भगवान्‌का जैसा ध्यान हुआ था, वह बात बतलाई और फिर थोड़ी देरके लिये चुप हो गये। फिर अकस्मात् बोले––मुझे जिस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन होता है, वह बोलता हूँ। आप लोग भी उसी प्रकार ध्यान करें। भाईजी भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लग गये। तब वैद्यनाथजी शेखपुरवालाने पूछा––भगवान् बैठे हैं या खड़े हैं ? तब भाईजी बोले––कमलपर बैठे हैं। फिर थोड़ी देर तक स्वरूपका वर्णन करके चुप हो गये। फिर थोड़ी देर बाद भाईजी बोले––मैं चरण–स्पर्शके लिये हाथ आगे बढ़ाता हूँ, लेकिन हाथ रुक गये, अभी वे हाथ बढ़े नहीं। फिर थोड़ी देर बाद बोले––हाथ तो बढ़े हैं, किन्तु भगवान्‌का आसन पीछे खिसक गया। फिर थोड़ी देर बाद बोले––यह देखो, भगवान्‌के चरण मेरे समीप आ गये हैं। मैं स्पर्श करता हूँ, आप भी स्पर्श करें। इतनेमें वे जोरसे बोले––भगवान् तो अन्तर्धान हो गये। ये सारी बातें भाईजीने आँख खोले हुए कही। इसपर श्रीसेठजी बोले––अन्तर्धान होनेका तो क्या मालूम, पर मुझे यह स्फुरणा हुई कि हनुमानसे यह बात पूछूँ कि ध्यानकी बात तुम कहते हो या मैं कहूँ ? इसपर भाईजी बोले––ध्यानकी बात मैं ही कहूँगा, पर मुझे चरणोंका स्पर्श जरूर होना चाहिये। तब श्रीसेठजी बोले––ध्यान तो जिस प्रकार हुआ था, वैसा होना सहज ही है, बाकी चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

इतनेमें भाईजी उसी तरह हो गये और उन्हें फिर भगवान्‌के दर्शन होने लग गये। आँखें उनकी खुली रहीं और बोले––किसीको दर्शन करना हो तो आप मेरे पास आकर दर्शन करें। ये भगवान्‌के चरण रहे। मैं स्पर्श करता हूँ, आप लोग भी स्पर्श करें। इतना कहकर वे जोरसे हाथ बढ़ाकर और श्रीसेठजीके दाहिने चरणको पकड़कर बाह्यज्ञान शून्य होकर गिर पड़े।

तब श्रीसेठजी बोले——घनश्याम, इसे उठाओ। लेकिन घनश्यामजीसे उठे नहीं। तब श्रीसेठजी बोले——ज्वालाप्रसादजी, आप हनुमानको उठायें। तब ज्वालाप्रसादजीने सावधानीसे उठाकर भाईजीको अपनी गोदमें सुला लिया। इस प्रकार भाईजी निष्पंद और निश्चल अवस्थामें प्रायः डेढ़ घंटा पड़े रहे।

इसी बीच श्रीसेठजीने श्रीविष्णु भगवान्‌के ध्यानका वर्णन करना आरम्भ किया। श्रीसेठजी द्वारा ध्यानके वर्णनकालके समय निम्नलिखित लोग और आ गये थे——(१) बद्रीप्रसादजी गोयन्दका (२) कुञ्जलालजी सुलतानिया (३) सीतारामजी पोद्दार। आरम्भमें 'त्वमेव माता', 'सशंखचक्रम्' श्लोकका बहुत प्रेमसे उच्चारण करके भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लग गये। फिर वर्णन करनेके बाद 'भगवान्‌को हृदयमें शेषशैयापर सुलाकर मैं सूक्ष्म शरीर धारणकर पूजा कर रहा हूँ', इस प्रकार कहा——'प्रेम–भक्ति–प्रकाश' पुस्तकमें बतायी गयी विधिके अनुसार उन्होंने पूजा की।

इसके बाद भगवानकी बहुत मार्मिक शब्दोंमें स्तुति की। स्तुति समाप्त होनेके थोड़ी देर बाद भाईजीने आँख खोलकर फिर उसी समय बन्द कर ली। फिर थोड़ी देर बाद आँख खोलकर बोले——भगवान् तो चले गये। तब श्रीसेठजी बोले——हम लोग भी चलें। इसके बाद सब लोग चलने लगे। आगे–आगे श्रीसेठजी बहुत उन्मत्ततासे चल रहे थे। शरीर डगमगा रहा था, पैर इधर–उधर पड़ रहे थे। रामेश्वरजी तथा शुभकरणजी श्रीसेठजीके आस–पास चल रहे थे। भाईजी पीछे–पीछे आ रहे थे और घनश्यामजी तथा ज्वालाप्रसादजीने उन्हें पकड़ रखा था। उन्हें शरीरका बिल्कुल होश–हवाश नहीं था और पैर डगमगा रहे थे। भवनमें आनेके बाद श्रीसेठजी तो अपने कमरेमें चले गये। भाईजी ज्वालाप्रसादजीके कमरेके बाहर तख्तपर लेट गये, उनके पास घनश्यामजी थे। वे लेटे–लेटे बेहोशीकी हालतमें बोलने लगे (उसका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है)——

शेष शैयापर वे लेटे हैं।

प्रसाद रखा है, आपको याद है ना ? कितने पेड़े थे ? कितने लड्डू थे?

कमरेके बाहरकी तरफ 'ॐ' लिखा हुआ था, उसे देखकर भाईजी बोले——देखो, 'ॐ' के अन्दर भगवान् बैठे हैं। यहाँसे कहाँ जायेंगे ? सुन्दर बहुत हैं, 'ॐ' के अन्दर बैठे हैं।

देखिये तो सही, कैसा सुन्दर स्वरूप है, प्रकाश–ही–प्रकाश चारों

तरफ हो रहा है।

आपकी जगह भी वही हैं, मेरी जगह भी वही हैं। जायेंगे कहाँ वे ?

आकर हाथ पकड़कर यहाँ तक पहुँचा गये, फिर तो चले गये। गये, जायेंगे कहाँ ? सब जगह वही हैं।

फिर घनश्यामजी ज्वालाप्रसादजीको भाईजीके पास बैठाकर भोजन करने चले गये। घनश्यामजीसे श्रीसेठजीने पूछा––हनुमानका क्या हाल है, भोजन करेगा क्या ? तब घनश्यामजी बोले––वो तो कह रहा था, बहुत लड्डू–पेड़ा खाया है। तब आपने (श्रीसेठजीने) घनश्यामजीसे कहा––तुम उसे दूध भी पिला दो। उससे कहो कि लड्डू–पेड़ेपर दूध भी पी लो। घनश्यामजी एक गिलास दूध ले आये और भाईजीसे बोले––दूध आप (श्रीसेठजी) ने भेजा है। भाईजी बोले––प्रसाद सब लोगोंमें बाँट दो। तब घनश्यामजीने दूध द्वारका, शुभकरण, रामेश्वर, केदारनाथजीको दिया तथा खुद भी लिया। बाकी बचा दूध भाईजीने पी लिया। दूध पीनेके उपरान्त बोले––आप (श्रीसेठजी) के पास चलें क्या ? फिर श्रीसेठजीके यहाँ गये और तख्तपर बैठ गये। इतनेमें ही सेठजी आ रहे थे। उन्हें देखकर भाईजी बोले––भगवान् आ रहे हैं ! उठो ! और बेहोशीकी हालतमें श्रीसेठजीके चरणोंमें गिर गये। फिर श्रीसेठजीके पास कुछ देर रहकर सोनेके लिये आ गये। रात्रिमें आनन्द बहुत अधिक रहा। निद्रा बिलकुल नहीं आयी।

उपर्युक्त घटनाका विवरण भाईजीने बादमें बोलकर निम्नलिखित शब्दोंमें लिखवाया––

मेरी बड़ी उत्कंठा थी कि कोई रहस्यकी बात प्रत्यक्ष देखूँ। भगवान्के साक्षात् दर्शनोंकी उत्कंठा मेरे जीवनमें कभी भी हुई नहीं। मेरी सेठजीसे भगवान् रामके दर्शनोंकी बात और ज्वालाप्रसादजीसे श्रीसेठजीके प्रेम–भावकी बात होनेसे उत्कंठा बहुत ज्यादा बढ़ गयी थी।

इस निमित्त उनसे प्रार्थना करनेकी ....। घनश्याम मेरे साथ था। जाते ही बिना कहे ही सेठजी बोले कि चलो, आज ध्यान करने पहाड़ीपर चलें। पहाड़ी पर जानेकी बात अलग लिखी हुई है। जब मैंने ध्यानकी भावना की, तब सब दृश्य एकदम जाते रहे। चारों तरफ अकस्मात् बड़ा भारी प्रकाश हो गया।

जिस जगह श्रीसेठजी विराजमान थे, उस जगह भगवान्की चतुर्भुज मूर्तिका मुझे प्रत्यक्ष आँखें खोले हुए, दो व्यक्ति आमने–सामने बैठे हों उस

प्रकार, दर्शन होने लग गया। मेरे आनन्दका पार नहीं रहा। मैंने थोड़ी देर भगवान्‌के रूपका वर्णन किया। वृत्तियाँ बाहरसे बिलकुल हट गयीं। मैंने भगवान्‌के चरणोंको स्पर्श करनेके लिये हाथ आगे बढ़ानेके लिये कई दफे चेष्टा की, पर हाथ आगे नहीं बढ़े। किन्तु भगवान्‌का आसन पीछे हट गया। फिर मैंने कहा, तब भगवान्‌का आसन मेरे हाथके समीप आ गया। मैं चरण–स्पर्श करना चाहता था कि इतनेमें भगवान् अन्तर्धान हो गये और उस जगह श्रीसेठजी दीखने लग गये। मैं बोला——ये क्या बात हुई ? तब श्रीसेठजी बोले——मुझे ये स्फुरणा हुई कि मैं वर्णन करूँ। तब मैं बोला——मैं करता हूँ, पर मुझे भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श होना चाहिये। तब श्रीसेठजी बोले——पहले हुआ, वैसा ध्यान होना तो बहुत सहज है, पर चरणोंका स्पर्श होना तो अगलेकी मर्जीपर है।

इतना कहनेके साथ अकस्मात् अनन्त प्रकाश हो गया। मुझे फिर उसी तरह दर्शन होने लग गये। मैं आनन्दमें विह्वल होकर भगवान्‌के दाहिने चरणको पकड़ लिया और चरणोंमें बलात्कारसे जा पड़ा। भगवान्‌ने मेरे मस्तकपर हाथ रख दिया। तब पीछेसे लोगोंने कहा कि तुम तो श्रीजयदयालजीके चरणोंपर पड़े थे। बाकी मेरी दृष्टिमें उस जगह भगवान् नारायणके सिवाय और कोई भी नहीं था। श्रीजयदयालजी भी नहीं थे। केवल श्रीनारायणदेव ही थे। इस स्थितिमें मैं बहुत देरतक पड़ा रहा और भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ रखे हुए हँसते रहे। कुछ समयके बाद मुझे यह दिखा, कोई विलक्षण पुरुष भगवान्‌की षोडशोपचारसे पूजा कर रहा है। मैं पूजाको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ समयके बाद मैं देखता हूँ तो बहुत–से ऋषि पधारे हैं। ऋषियोंमें भगवान् नारद, व्यास, सनत्कुमार, हनुमान इत्यादि थे। वे आते ही अपना–अपना नाम बताकर मेरी ही तरह भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करने लग गये और मुझे भगवान्‌के चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद विलक्षण पुरुष द्वारा पूजा करते समय जो प्रसाद लगाया गया था, वह प्रसाद सबको बाँटनेके लिये भगवान्‌ने एक ऋषिबालकको आज्ञा दी और उसने भगवान्‌की आज्ञा पाकर सबको प्रसाद बाँट दिया। तब भगवान्‌ने कहा——इसे भी दो। तब मुझे भी उठकर प्रसाद दिया और मैंने बड़े आनन्दके साथ उस प्रसादको खाया। इतने विलक्षण स्वादका अनुभव जीवनमें कभी भी हुआ नहीं। इसके थोड़ी देर बाद श्रीभगवान्‌के अन्तर्धान होते ही मेरे चित्तमें व्याकुलता–सी होकर

आँख खुल गई और मैंने कहा––भगवान् तो चले गये। तब श्रीसेठजीने कहा––हमलोग भी चलें। मैंने देखा मेरा सिर श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदमें था। उन लोगोंने मुझे उठाया, पर मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरा बाह्यज्ञान फिर जाता रहा। मुझे प्रत्यक्ष दिखा कि भगवान् मेरे साथ चल रहे हैं। मैं बड़े आनन्दके साथ चलता रहा। मुझे लाकर भवनमें बिठा दिया। वहाँ भी मुझे उन्हीं श्रीभगवान्‌के दर्शन होते रहे। फिर मुझे श्रीजयदयालजीके पास ले गये, वहाँ फिर श्रीभगवान्‌के दर्शन हुए तथा मैंने दण्डवत की। उसके पश्चात् मुझे बाहरी ज्ञान हो गया।

दूसरी घटना

तिथि––आश्विन कृष्णा ६ वि०सं० १९८४ सोमवार, (१९ सितम्बर, १९२७)
स्थान––जसीडीह, महेन्द्र सरकारकी कोठीके पूर्व–दक्षिण भागमें

(मारवाड़ी) आरोग्य भवनके पुस्तकालयमें दिनके दो बजे लोग एकत्रित हुए। श्रीसेठजीने हरदत्तरायजी गोयन्दकाके कहनेपर भाईजीसे कहा कि हरदत्त कहता है, इसलिये उस दिनकी तरह आँखें खोले हुए प्रत्यक्ष भगवान्‌के दर्शन हों, इस बातके लिये चेष्टा करनी चाहिये। उसके बाद थोड़ी देर तो भाईजी चुप रहे। पीछे श्रीसेठजीने कहा––कुछ स्तुतिके श्लोक और 'अजोऽपि' इत्यादि श्लोक बोलकर आरम्भ करना चाहिये। इसके बाद स्वयं ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' उच्चारण करके चुप हो गये। इसके कुछ मिनट बाद भाईजीने 'शान्ताकारम्' बोलकर 'अजोऽपि', 'यदा–यदा' 'परित्राणाय'––ये तीन श्लोक बोलकर उपस्थित लोगोंसे एक साथ मिलकर एक ध्वनिसे भगवान्‌के आह्वानके लिये व्याकुल होकर मनसे प्रार्थना करनेके लिये कहा और यह भी कहा कि किसीको, किसी प्रकारका शब्द नहीं करना चाहिये। यदि कोई शब्द हो तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये। यहाँतक मनको भगवान्‌में लगाना चाहिये कि यदि वज्रपात हो तो भी उसकी तरफ ध्यान न जाय। उसके बाद भाईजी भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे।

उन्होंने कहा––हे प्रभो ! हे दीनानाथ !! मेरे तो कोई प्रेम नहीं, मेरा तो कोई बल नहीं, मेरी तो कोई योग्यता नहीं, कोई शक्ति नहीं, जिसके प्रेम और बलके बशीभूत होकर उस दिन आप साक्षात् प्रकट हुए थे, उसीके प्रेम और बलसे आज भी हमलोगोंमें आविर्भूत होनेकी दया करिये। हे नाथ !

मैं तो कोई प्रार्थनाकी योग्यता नहीं रखता, उसीकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना करनेमें भाईजी बीच–बीचमें रुक रहे थे। कुछ समयतक चुप रहनेके बाद उन्होंने कहा——हे प्रभो ! आज आप प्रकट क्यों नहीं होते ? आज क्या बात है ? थोड़ी देर बाद भाईजीने श्रीसेठजीसे कहा——आज चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं होता। साधारण आँख खोले हुए ध्यान किया करता हूँ, वो भी नहीं हो रहा है। आज क्या बात है ? आप अब मुझको फिर एक बार आज्ञा करें, जिससे मुझको वैसा दर्शन हो सके। इसके बाद भाईजी बोले——अब थोड़ा ध्यान होने लग गया। इसपर श्रीसेठजीने कहा——मेरे यह स्फुरणा हो रही है कि इसके लिये पहाड़ी ठीक है। यह जगह राजसी है, वह जगह सात्विकी है और वह प्राकृत है। इसपर भाईजीने कहा——अच्छा, वहाँ चलना चाहिये। सब लोग तैयार हो गये। श्रीसेठजी भी उठ खड़े हुए और आगे–आगे चलने लगे। पहाड़ीके रास्तेमें एक स्थानको देखकर यह बात कही——यह स्थान भी अच्छा है, परन्तु आज तो उसी जगह चलना चाहिये। आखिर सब लोग पहाड़ीके उस स्थानपर पहुँच गये, जिस स्थानपर पहले भगवान्‌के दर्शन हुए थे। वहाँ पहुँचनेपर श्रीसेठजीने भाईजीसे कहा——हाथ–पैर धो लिया कि नहीं ? भाईजी बोले——हाथ–पैर धो लिया। मोहनलालजी जल ले गये थे, उन्होंने हाथ–पैर धुलाया था। श्रीसेठजी और भाईजी पहले जिस जगह बैठे थे, उसी जगह बैठ गये। और सब लोग पहले, शुक्रवारके दिन जिस जगह बैठे थे, उसी तरह बैठ गये। बैठनेके बाद भाईजी 'त्वमेव माता', 'यदा–यदा हि' 'परित्राणाय' ये तीन श्लोक बोलते–बोलते बीचमे अटके। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोले——देखिये, सब भाई सावधान हो जायें। मन एकाग्र करके भगवान्‌का दर्शन करना चाहिये। आँख खोले जिसका मन दूसरी तरफ जाये, उसको आँख बंद कर लेनी चाहिये। इसपर श्रीसेठजी बोले——दोनों ही बात ठीक है। या तो आँख बंद कर ली जाय या नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखी ज़ाय।

भाईजी बोले——पूर्वकालमें मैं हनुमान गोयन्दकाको ध्यानकी बातका वर्णन किया करता था, उसी प्रकार भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। हनुमान भी ध्यान लगानेकी चेष्टा किया करता था, उस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपकी भावना सभीको करनी चाहिये। फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद भाईजी बोले——उस दिनकी तरह श्रीभगवान् उस स्थानपर प्रकट हो गये हैं। आज आनन्दकी अधिक विलक्षणता है। वही कमलका विशाल आसन

है। कमलका रंग नीचेमें सफेद, बीचमें लालिमा, ऊपर नीलिमा। उसपर उसी प्रकारसे भगवान् दाहिने चरणारविन्दको नीचेकी तरफ करके विराजमान हैं। मेरी वृत्तियाँ रुक रही हैं। जितना भगवान्के रूपका वर्णन कर सकता हूँ, उतना करता हूँ। आपलोगोंको उसी प्रकार भगवान्के रूपका ध्यान करना चाहिये। इसके बाद भाईजी बोले——भगवान्के चरण–कमलके नखकी ज्योतिमें कितना प्रकाश हो रहा है। उनके गहनोंके नाम मैं नहीं जानता हूँ। इसके बाद भाईजीका बोलना रुक गया। इसके बाद सेठजी बोले——तुमने बोलना बन्द क्यों कर दिया ? भगवान्के स्वरूपका स्पष्ट वर्णन करो। श्रीसेठजीने दो बार कहा, पर भाईजी बोले नहीं। थोड़ी देर बाद भाईजी बेहोश होकर गिर पड़े। रामजीदासजी बाजोरिया (भागलपुर) की गोदमें भाईजीका सिर गिर गया। रामजीदासजीसे श्रीसेठजीने कहा——इसे बैठाओ। उन्होंने चेष्टा की और बोले कि मेरी उठानेकी सामर्थ्य नहीं है। श्रीसेठजी बोले——हनुमान, सावधान होकर ध्यान करो। फिर श्रीसेठजीने कीर्तन शुरू किया——

"श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।"

कुछ देर बाद रामजीदासजीने सहारा देकर भाईजीको बैठाया, तब श्रीसेठजी बोले——तुम बोलते क्यों नहीं ? तब भाईजीने कहा——मैंने बोलनेकी चेष्टा की, पर मेरेसे नहीं बोला गया। तब श्रीसेठजी बोले——तुम्हारे द्वारा स्वरूपका वर्णन किये बिना दूसरेको क्या लाभ होगा। इतने व्यक्तियोंको संग क्यों लाये थे ? नहीं बोलना था तो अकेले क्यों नहीं आये ? इतना कहनेके साथ भाईजी बोलने लगे——मैंने पहले बहुत चेष्टा की थी, पर मेरेसे बोला नहीं गया।

इसके बाद भाईजी भगवान्के स्वरूपका वर्णन करने लगे। स्वरूपका वर्णन करनेके बाद श्रीसेठजीने पूछा——तुम पड़े थे, तब क्या व्यवस्था हुई ? तब भाईजी बोले——मैं क्या बताऊँ, आपको क्या मालूम नहीं ? आप क्या सुन नहीं रहे थे ? अब सुनिये, अब क्या कह रहे हैं। इतना कहकर फिर बेहोश हो गये। फिर श्रीसेठजीने कीर्तन शुरू किया——

"जै रघुनन्दन जै सियाराम, जानकीबल्लभ सीताराम।"

फिर थोड़ी देरके पश्चात् आँख खुलनेके बाद भाईजी बोले——मेरी इतनी सुनवाई नहीं हो सकती है। आपके कहनेसे सबको दर्शन हो सकता है। तब श्रीसेठजीने कहा——मैं क्यों कहूँ ? भगवान् जैसा उचित समझें, वैसे ही करें। तब भाईजी बोले——दर्शनकी सबको इच्छा नहीं है।

तब श्रीसेठजी बोले——जिन–जिनकी इच्छा हो, उन–उनको होना चाहिये। तब भाईजी बोले—— आप कहें, उन–उनको दर्शन हो सकता है। तब श्रीसेठजी बोले——यदि वे पूछे तो मैं नाम बता सकता हूँ। तब भाईजी बोले——आप कहें, वैसे करनेके लिये वे राजी हैं। तब श्रीसेठजी बोले——सामने आकर क्यों नहीं कहते ? सब लोग सुनें। यदि सामने आकर प्रकट नहीं होते तो जैसे पहले आकाशवाणी होती थी, उसी प्रकार कहनेसे सभी सुन सकते हैं। तब भाईजी बोले——यह कानून नहीं है, आपको क्या मालूम नहीं है ? इसके बाद फिर भाईजीकी आँखें बंद हो गयीं और बेहोश हो गये। थोड़ी देर बाद भाईजी फिर आँखें खोलकर बोले——आप कहें तो दर्शन हो सकता है। तब श्रीसेठजी बोले——मैं क्यों कहूँ ? फिर आँखें बन्द हो गयीं। फिर थोड़े देर बाद आँखें खुलनेसे भाईजी बोले——भगवान् कहते हैं कि तुम (श्रीसेठजी) बोलो तो तुम्हारे (श्रीसेठजीके) कहनेसे दर्शन हो सकते हैं। तब आप (श्रीसेठजी) बोले——तुम्हें तो दर्शन हो रहे हैं। तब भाईजी बोले——मेरी बात नहीं। आपके कहनेसे सबको दर्शन हो सकते हैं। इसपर आप (श्रीसेठजी) बोले——अगलेको गरज हो तो दर्शन दो, मुझे तो गरज नहीं है। हम तो खुशामदिया नहीं। अगलेको गरज होवे तो दर्शन दो, नहीं तो अगलेकी मरजी। हम तो अगलेकी राजीमें राजी हैं। फिर आँखें बंद हो गयीं। फिर आँखें खुलनेके बाद भाईजी बोले——श्रीभगवान्को गरज है, तब ही तो आपकी बात मानते हैं। तब आप (श्रीसेठजी) बोले——हम तो हमारा काम नुकसान करकर आयें हैं। इसपर भी खुशामद चाहते हैं तो अगलेके नामका कीर्तन कर सकते हैं और खड़े होकर नाच सकते हैं। इसके बाद भाईजी बोले——आप सिर्फ कह दें। इसपर श्रीसेठजी बोले——हम तो इस प्रकार कहते नहीं। इसके बाद बहुत गम्भीरताके साथ भाईजी सबसे यह बात कही——इनके (श्रीसेठजी) कहे अनुसार चलनेसे दर्शन हो सकते हैं। इसके थोड़ी देर बाद फिर भाईजी जोरसे बोले——सुनो, भगवान् क्या कह रहे हैं——

१. इनकी आज्ञा पालनसे ही मेरी आज्ञा पालन है।

२. इनकी प्रसन्नतासे ही मेरी प्रसन्नता है।

३. इनकी इच्छामें ही, मेरी इच्छा है।

४. इनके रूपमें ही मेरा रूप है।

इसके बाद भाईजी बोले——भगवान् अन्तर्धान हो गये।

भाईजी आश्विन कृष्ण ६ सं० १९८४ (१६ सितम्बर, १९२७) को ही गोरखपुर रवाना होनेवाले थे, पर उस दिन प्रत्यक्ष दर्शनोंकी जो विलक्षण घटना हुई, उसीमें रात्रि हो गयी। अतः दूसरे दिन श्रीसेठजी और भाईजी अन्य प्रेमीजनोंके साथ बनारस रवाना हुए। रास्तेमें भाईजीने श्रीसेठजीसे प्रश्न किया——इसबार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया गया। जो कार्य एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ ? इसका क्या हेतु है ? श्रीसेठजी बोले——इससे जगत्को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है, परन्तु ऐसी घटना जीवनकालमें प्रकाशमें न आवे तो अच्छा है।

भाईजी बोले——इससे मेरे प्रश्नका पूरा उत्तर नहीं हुआ। मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें क्या हेतु है ?

श्रीसेठजी बोले——जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसीको भगवान् इस प्रकार दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परन्तु यों सबके सामने नहीं देते।

इस वार्तालापका पूर्ण विवरण श्रीभाईजीके हस्ताक्षरोंमें प्रस्तुत किया जा रहा है——

यह बात आगे चलकर प्रत्यक्ष हो गयी कि जैसा भक्तिका प्रचार भाईजीके द्वारा हुआ, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जसीडीहमें भगवान्के दर्शनोंकी बात

श्री

मिती आश्विन [illegible] को जसीडीहसे [illegible] जाते हुए रास्तेमें बातें हुई
[illegible]
निम्नलिखित पुरुष थे — [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

इसबारकी बार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखलाया गया, जो कार्य बहुत एकान्तमें होता है वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ, और केवल

प्रश्न— ये दर्शन हुए, इसका क्या हेतु है? [illegible]

उत्तर— इससे भाइयोंको लाभ ही होगा, ऐसी बातें प्रकाशित नहीं होने से अधिक लाभ होता है। क्योंकि उत्सवके समय लोगोंने १५ दिन [illegible] एक घटना बिना किसीकी स्वाभाविक [illegible] कारणके न बतलाना तो और भी अधिक अच्छा होता, परन्तु सम्भवतः ऐसी सूचना नहीं हुई। अब तो कलकत्तेमें बात फैल गयी इससे भी लाभ ही है परन्तु ऐसी घटना लोगोंमें बातोंमें प्रचार न होती अच्छी है।

प्रश्न— आपने मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं दिया, मैं तो पूछता हूँ कि एक प्रत्यक्ष प्रभाव हम लोगोंके सामने होनेमें हेतु क्या है!

उत्तर, हेतु ये हैं —

१. ये एक शरीर धारण होनेके तो उनके बादमें भक्तोंका प्रभाव सूचन देते।

२ जिनके द्वारा भगवान्‌के प्रभावकी अधिक संभावना होती है उनको इसप्रकारसे साक्षात् दर्शन देते हैं, दर्शन तो औरोंको भी देते हैं परन्तु यों सबके सामने नहीं देते।

जैसे श्रीरामचन्द्रजी महाराजने सीताजीकी खोजमें भेजनेके समय केवल श्रीहनुमानजीको ही अंगूठी दी, वे जानते थे कि इन्हींके द्वारा काम होनेवाला है। साधारण लोगोंने समझा कि हनुमानके बल बुद्धिमत्ता आदि गुण अधिक हैं इसलिए भगवान्‌ने इनको अंगूठी दी है परन्तु भगवान्‌ने यह समझकर नहीं दी, भगवान् जानते थे कि इनके द्वारा ही काम होगा, नहीं तो सुग्रीव अंगद जाम्बवन्त आदिको दोनों हाथ अंगूठियां देते। इसी प्रकार [illegible] जिनके द्वारा विशेष [illegible] होनेवाला समझते हैं उन्हीं को [illegible] प्रभावित करते हैं। श्रीहनुमानजीसे जितना काम हुआ उतने ही अनुरूप [illegible] काम हनुमानसे हो सकता था उसमें [illegible]

उपस्थित लोगोंने अपने स्वजनों, मित्रोंको लिखी, जिससे यह बात अनेक स्थानोंमें शीघ्र ही फैल गयी। लोगोंके पत्र श्रीसेठजी एवं भाईजीके पास आने लगे।

गोरखपुरमें पुनः भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंकी विलक्षण घटनाएँ

गोरखपुरमें कान्तीबाबूके बगीचेमें, जहाँ भाईजी उस समय निवास

करते थे, नित्यप्रति सत्संग प्रारम्भ हो गया। प्रेमीजनोंने भाईजीसे जसीडीहकी घटना जाननेके लिये अनेक प्रश्न किये, जिसका उत्तर भाईजी बड़े संकोचसे देते। इन दिनोंकी बातोंका वर्णन पू० भाईजीने श्रीसेठजीको पत्रोंमें पूरा भेजा है। विशेष जानकारीके लिये इसी पुस्तकमें दिये पत्रोंको देखना चाहिये। जो घटनाएँ श्रीभाईजीने अपनी डायरीमें नोट की, उनकी नकल नीचे दी जा रही है।

पहली घटना——

सं० १९८४ वि० आश्विन शुक्ल ६, रविवार ता० २–१०–१९२७ ई०

स्थान—– कान्ति बाबूका बगीचा (गोरखपुर शहरके बाहर) दक्षिण तरफके कमरेके पासवाला बीचका बड़ा कमरा।

समय—– प्रातःकाल करीब साढ़े सात बजे सत्संगके समय कई लोग थे, उनमेंसे कुछके नाम ये हैं।

उपस्थिति—–श्रीचेतरामजी, बद्रीप्रसादजी, रामेश्वरजी, घनश्यामदासजी, शंकरलालजी।

ध्यानकी बात हो रही थी, ध्यान भी हो रहा था। अकस्मात् परम प्रकाश हो गया, भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए। आकाशमें खड़े हुए थे। करीब ५–६ मिनटोंतक दर्शन होते रहे। मुझसे कुछ भी बोला न गया। उनके मुखारविन्द और नेत्रोंसे कृपा झलक रही थी। जैसे पिता अपने पुत्रको और मित्र अपने मित्रको स्नेह और प्रेमकी दृष्टिसे देखता है, ऐसा भाव प्रत्यक्ष प्रतीत होता था। यह भी अनुभव हो रहा था कि भगवान् कुछ कहना चाहते हैं और फिर भी उनकी या मेरी जब कभी इच्छा हो पधारकर दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हैं। कुछ समय बाद अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। दिनभर उपरामता रही।

दूसरी घटना——

सं० १९८४ वि० मिति आश्विन शुक्ल १२ शनिवार, ता० ८–१०–१९२७ ई०

स्थान——कान्तीबाबूका बागीचा, दरवाजेके सामनेवाली दक्षिणाभिमुखी कोठरी, जिसमें आफिस था।

"दिनके करीब १२ बजे उपरामताने जोर पकड़ा। मैं बाहर बैठा हुआ था। घरमें चूना पोतनेवाले मजदूरोंका काम देखनेकी चेष्टा कर रहा था कि अचानक किसीके द्वारा खिंचा–सा जाकर कोठरीके अन्दर चला

गया और किवाड़ बन्द कर लिया। उत्तरकी खिड़कीके पास कुर्सीपर बैठ गया और उनकी भावनाके अनुसार किसीके बैठनेके लिये सामने एक कुर्सी और रख ली। अकस्मात् प्रकाश हो गया। महान् शान्ति–सी प्रतीत होने लगी। मेरी उस समयकी अवस्थाका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। तत्काल ही भगवान्‌का अविर्भाव हो गया। मेरे सामनेकी कुर्सीपर एक बार उनका चरर्ण–स्पर्श हुआ। फिर आकाशमें ही उनकी स्थिति रही। मैं मंत्रमुग्ध–सा हो रहा था। मेरे आनन्दका पार नहीं था। प्रभु मेरे सामने स्थित हुए करूणा और प्रेमके साथ महान् आनन्दकी वर्षा कर रहे थे। मैं कुछ बोल नहीं सका, न स्तुति कर सका, चरण–स्पर्श मैंने उसी समय कर लिये। मन–ही–मन भगवान्‌की इस अयाचित कृपाको देखकर परम आह्लादित हो रहा था। बहुत देरतक यह स्थिति रही। फिर भगवान् बोले मानो आनन्दका समुद्र उमड़ा। तेरी कुछ इच्छा बाकी ? बड़ी हिम्मत से एक–दो वाक्य मेरे मुँहसे निकले——कुछ नहीं, केवल आप.............................।

इस समय भगवान्‌की मधुर मुस्कान अनोखी ही थी। भगवान्‌ने हँसकर मेरा समर्थन किया। फिर धीरे–धीरे बीच–बीचमें रुककर इतनी बातें कही——

१– दर्शनोंकी बातें गुप्त रखनेमें ही लाभ है।

२– धर्मके नामपर लड़नेवाले मेरा प्रभाव नहीं जानते।

३– पूरी गोरक्षामें अभी विलम्ब है।

४– मेरे अवतारका समय अभी बहुत दूर है।

५– जगत्‌का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचारकर लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायेगा। मेरे अवतारमें भी नाम ही हेतु होगा।

६– जो लोग नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते हैं, उनको सावधानकर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नहीं कर सकता।

७– पापोंका नाश तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये नामका प्रयोग करना मूर्खता है। पापका नाश तो फलभोग और प्रायश्चितसे भी हो जाता है। क्षणिक भोगोंकी तो परवाह नहीं करनी चाहिये। भोगोंके आने–जानेमें तो हानि ही क्या है ?

८– नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है। इसका प्रयोग तो इसीके लिये करना चाहिये।

९– दम्भ बहुत बढ़ गया है। दम्भ मेरी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है। दम्भियोंसे सावधान रह और उनको भी सावधान कर दे कि उनकी बुरी गति होगी। काम–क्रोधसे भी दम्भ बुरा है।

१०– किसीको मेरे दर्शनोंका पक्का आश्वासन मत दे।

११– जसीडीहके सिवा इन बातोंका मेरे नामसे प्रचार न कर।

१२– अब इस तरह नहीं आऊँगा। तेरे बिना बुलाये दो बार आ गया। मुझे ये बातें कहनी थीं। इसलिये जब चाहे स्मरण कर बुला सकता है, परन्तु भूल मत करना।

इसके बाद भगवान् चुप हो गये। मैं बड़े हर्षके साथ उनकी ओर ताकता रहा उस समय जगत्‌में उनके सिवा मानो मुझे और कुछ नहीं भासता था। किसीकी स्फुरणा तक भी नहीं थी। अकस्मात् श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। मेरी स्थिर दृष्टि विचलित हो गयी। मैं देखता हूँ कि पूर्व ओरकी खिड़कीसे श्रीरामेश्वरजी ताकके देख रहे हैं। मैंने सामनेकी कुर्सी अलग हटाकर किवाड़ खोल दिये। उस समय घड़ीमें करीब सवा दो बजे थे। इसके बाद करीब चालीस घंटेतक उपरामता बनी रही।

तीसरी घटना—

श्रीसेठजीसे वार्तालाप करने कार्तिक कृष्ण ७ सं० १९८४ को भाईजी पुनः जसीडीह गये। भाईजीको गोरखपुर आनेके बाद दूसरे ही दिन श्रीभगवान्‌के पुनः प्रत्यक्ष दर्शन हुए। भगवान्‌के दर्शनोंकी तीसरी और चौथी घटनाका विस्तृत विवरण श्रीभाईजीने श्रीसेठजीको कार्तिक कृ० १४ सं० १९८४ (२४ अक्टूबर सन् १९२७) के पत्रोंमें लिखा है। यह पत्र श्रीभाईजी श्रीसेठजीके पत्र–व्यवहारमें दिया जा रहा है।

इसके बाद भाईजीने भगवद्दर्शनोंकी घटनायें नोट करनी बन्द कर दी। गिनतीकी घटनायें हो तो नोट भी की जाय, जब जीवनकी यह स्वाभाविक बात हो गयी तो कहाँ तक नोट की जाय।

श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके आनेपर भाईजी उन्हें एकान्त कोठरीमें ले गये एवं जसीडीहकी घटना बड़े प्रेम भरे शब्दोंमें सुनायी। वे मन्त्र मुग्धकी तरह सुनते रहे एवं मनमें सोचने लगे कि इस कृपाका कोई मूल्य तो हो ही नहीं सकता, अब तो अपनेको इनके श्रीचरणोंपर न्यौछावर कर देना और अपने जीवनका उद्देश्य इनके जीवनकी घटनाओंको नोट करते रहना। इसे

इन्होंने जीवनके अन्ततक निभाया। भाईजीकी इच्छा न होते हुए भी इनके अत्यधिक आग्रहपूर्ण प्रार्थना रहनेपर कभी–कभी कुछ बता देते थे।

भाईजीकी उन दिनोंकी मस्तीका क्या कहा जाय। बार–बार भगवान्‌के दर्शन, स्पर्श, वार्तालापका सुदुर्लभ सौभाग्य मिल रहा था। उन दिनों उनके समीप रहनेवालोंको दिव्यताका अनुभव होता था। इन्हीं दिनों भाईजीको भगवान्‌ने यह प्रेरणा की कि अपना बाहरी जीवन बिलकुल साधारण रखो, जिससे कोई पहचान न सके। इसे भाईजीने जीवनके अन्ततक निभाया, जिससे इनके निकट रहनेवाले भी इन्हें नहीं पहचान सके। बहुत लोग केवल 'कल्याण' के सम्पादक रूपमें ही जानते थे।

धर्म–पत्नीको भी भगवान्‌के दर्शन

भाईजीकी धर्मपत्नी रामदेईबाई जब रतनगढ़से गोरखपुर पहुँची तो भाईजीको भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शनोंकी सारी बातें उन्होंने भी सुनी। वे सोचती—भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंके बाद तो वह व्यक्ति संसारको भूल जाता है, उसे भगवान्‌के अलावा किसीसे कुछ मतलब नहीं रहता, अतः अब मेरे जीवनका क्या होगा। कभी–कभी उन्हें सूनापन–सा लगता और आँखोंमें आँसू आ जाते। एक दिन उन्हें रोते देखकर भाईजीने पूछा—तुम रोती क्यों हो ? क्या बात हुई ? उत्तर दिया—रोऊँ नहीं तो क्या हँसूँ ? आपको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो गये, पर मेरा संसार तो समाप्त हो गया। भाईजीने मुस्कुराते हुए कहा—अरी, मैं तो तेरे लिये वही हूँ, जैसा पहले था। इतना कहकर भाईजीने उनके सिरपर अपना हाथ रख दिया। उसी समय एक विलक्षण चमत्कार हुआ कि उन्हें भी चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन होने लगे। इतना ही नहीं लगातार कई महीनेतक यह क्रम चालू रहा कि चलते–फिरते, घरका काम करते उन्हें उसी रूपके दर्शन होते रहते। बादमें बन्द हो गये।

इसी तरह एक बार वे भाईजीके साथ काशी गयी थी। स्नानादिके बाद भाईजी तो 'कल्याण' के प्रूफ देखने लग गये। उन्होंने भाईजीसे कहा कि बाबा विश्वनाथ और मैया अन्नपूर्णाके दर्शन करा दीजिये। भाईजीने उत्तर दिया कि मुझे अभी जरूरी प्रूफ देखने हैं, अतः मैं तो कहीं नहीं जाऊँगा। कई बार कहनेपर भी जब भाईजीने स्वीकार नहीं किया तो वे उदास होकर कमरेमें चली गयी। मनमें कहने लगी कि यहाँ आकर भी

दर्शन नहीं कर सकी। इतनेमें बाबा विश्वनाथ और मैया अन्नपूर्णा उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गये और बोले––तुम उदास क्यों हो रही हो। तुम हमारे दर्शन ही तो करना चाहती थी, अब कर लो। इस तरह दर्शन देकर थोड़ी देर बाद अन्तर्धान हो गये।

श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाको पत्र

जसीडीहमें साक्षात् दर्शनोंवाली बातको लेकर स्थान–स्थानपर समाजमें चर्चा थी। लोग अपने–अपने भावानुसार आलोचना करते। भारतवर्षके प्रमुख उद्योगपति श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला पोद्दारजीके बचपनसे मित्र थे। उन्होंने यह घटना सुनी तो सेठजी को पत्र लिखा कि ऐसी दिव्य बातोंका इस तरह प्रचार नहीं होना चाहिये। वे ऐसी बातें गुप्त रखना अच्छा मानते थे। श्रीसेठजीने उन्हें जो उत्तर दिया वह नीचे दिया जा रहा है––

श्रीहरिः

प्रिय श्रीमान् घनश्यामदासजी बिड़ला,

सप्रेम राम–राम । भाई हनुमानप्रसादके भगवद्दर्शन विषयक समाचार ज्ञात हुए। उसको साकार चतुर्भुज श्रीविष्णु भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन हुआ है। यह बात विश्वास करने योग्य ही है क्योंकि मुझे भाई हनुमानप्रसाद झूठ बोलनेवाला ज्ञात नहीं होता। आपने भाई हनुमानप्रसादकी स्थितिके विषयमें लिखा सो सबकी स्थिति सब समय समान नहीं रहती, और न किसीकी स्थितिका दूसरेको अच्छी तरह ज्ञान ही हो सकता है। इस विषयमें आपका मानना न मानना आपके विश्वासपर निर्भर है। आपने लिखा कि "ऐसी बातोंके कहने तथा फैलानेमें प्रोत्साहन देना मुझे तो अयोग्य मालूम देता है।" सो ठीक है, पर इसमें भाई हनुमानप्रसादका दोष नहीं है। मैंने ही उसकी इच्छा न रहनेपर भी सब बातें पूछी थीं और लोगोंमें प्रकटकी थीं। अतः वास्तवमें मेरी भूल हुई।

गीताप्रेस, गोरखपुर विनीत

पौष शुक्ल १९८४ (दिसम्बर, १९२७) जयदेव गोयन्दका

गोरखपुरका जीवन

उस समय गोरखपुर शहर जलवायु, मकान, रास्ते आदि सभी दृष्टियोंसे गया–गुजरा था। बम्बईके अच्छे मकानमें रहनेवाले भाईजीके

रहने योग्य गोरखपुर कदापि नहीं था। गोरखपुरमें रहनेका प्रधान हेतु 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस' ही था। पूज्य श्रीसेठजीको भाईजी सदैव गुरुतुल्य मानते थे। पूज्य सेठजीकी आज्ञा थी कि 'कल्याण' गीताप्रेससे प्रकाशित हो और भाईजी उसे सम्भालें। गोरखपुरमें भाईजीने अपने रहनेका स्थान गीताप्रेस एवं शहरसे २–२।। मील दूर असुरनके पोखरे एवं रेलवे लाइनके समीपमें श्रीकान्तीबाबूके बगीचेको चुना। वह बगीचा किराये पर लिया गया। गीताप्रेससे कान्तीबाबूके बगीचेका रास्ता बिलकुल कच्चा था। वह कच्चा रास्ता खासकर बरसातमें तो बड़ा भयंकर हो जाता था। उस रास्तेमें न कोई सवारी जा सकती थी और न वहाँ रोशनीका प्रबन्ध था। बरसातके दिनमें चिकनी मिट्टीके कीचड़का कहना ही क्या ? उसी रास्ते भाईजी नित्य गीताप्रेस आया–जाया करते थे। अँधेरी रात, रोशनी नहीं, वर्षाके दिन भाईजी नित्य गीताप्रेस पैदल आते–जाते थे। कई बार वर्षा अचानक आनेसे उनके पास छाता भी नहीं रहता था। शुरूमें भाईजी अकेले श्रीबद्रीदासजी आचार्य (जो गम्भीरचन्द दुजारीकी प्रेरणासे आये थे) के साथ उस बगीचेमें रहते थे। बादमें भाईजीका परिवार भी उसी बगीचेमें आ गया। आजका विश्वविख्यात 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस'—भाईजीके इस सतत परिश्रमका फल है। भाईजीको न बम्बईमें रहनेमें आसक्ति थी और न बगीचेमें रहनेमें अनासक्ति थी। उन्हें अपने प्रियतम भगवान्‌का काम करना था। भाईजी गोरखपुरमें कान्तीबाबूके बगीचेमें करीब २८ महीने भाद्र शुक्ल सं० १९८४ से पौष कृष्ण सं० १९८६ वि० तक रहे।

उक्त बगीचेको छोड़नेका भी एक प्रेरणात्मक प्रसंग है। उन दिनों गोरखपुर शहरमें प्लेगकी महामारी फैला करती थी। सैकड़ों आदमी प्लेगकी चपेटमें आते थे और काल कवलित होते थे। सं० १९८६ के मार्गशीर्ष मासमें भी प्लेग फैला। शहरसे लोग इधर–उधर गोरखपुरसे बाहर जाने लगे। आस–पासके बगीचोंमें भी शहरके लोग आश्रय लेने लगे। साहबगंज मोहल्लेके एक गरीब ब्राह्मण श्रीबनारसीजी भी प्लेगकी चपेटमें कालकवलित हो गये। उनका परिवार अनाथ हो गया। उनके पास कोई आश्रय नहीं था। उक्त परिवारने भाईजीसे उनके बगीचेमें आश्रय माँगा। अनाथ शरणागतको आश्रय देना जरूरी था। भाईजीने एक कमरा देनेकी स्वीकृति दे दी।

इस बगीचेमें भाईजीको कई बार भगवान्‌के दर्शन हुए एवं उनके दिव्य सन्देश भी प्राप्त हुए। अतः भाईजीके रहनेसे इस बगीचेका महत्त्व

दिन–पर–दिन बढ़ने लगा। गोरखपुरके जालान बन्धु भाईजीपर श्रद्धा रखते थे। अतः वे लोग भी इस बगीचेका महत्त्व समझते थे। उन्होंने यह बगीचा खरीद लिया था।

उक्त अनाथ परिवारको आश्रय देनेकी बात जालान परिवारके एक सदस्यको अच्छी नहीं लगी और उन्होंने उसका विरोध किया। भाईजीके कानोंमें यह बात गयी। भाईजीने अपनेको निरुपाय पाया। परंतु भाईजीको हृदयमें एक बहुत बड़ी ठेस लगी। 'आज मैं एक अनाथ गरीब परिवारको, शरणागतको आश्रय नहीं दे सका'।

भाईजीने तत्काल एक निर्णय लिया। उनके रहनेके लिये दूसरा स्थान खोजा गया। बाबू श्रीबालमुकुन्दजीका एक छोटा टूटा–फूटा खपरैलका मकान गोरखनाथ मन्दिरके दक्षिणकी ओर था। यह मकान किराये पर लिया गया। यद्यपि यह मकान कान्तिबाबूके बगीचेसे काफी दूर था परंतु जहाँ बन्धनमें रहना पड़े, शरणागतको आश्रय न दिया जा सके यह भाईजीको सह्य नहीं था। अपने कष्टकी उन्हें तनिक भी परवाह नहीं थी। अपने स्वयं पर वे कम–से–कम खर्च करना चाहते थे। अतः बहुत कम किरायेका टूटा–फूटा मकान लिया गया था। भाईजीने जीवनभर गीताप्रेस–कल्याणसे एक पैसा भी अपने लिये नहीं लिया। जीवनभर अपने शरीरपर कम–से–कम खर्च करते थे। उस समय भाईजी एवं उनके साथ रहनेवाले सभीका जीवन बहुत ही सादा था। बहुत थोड़ा–सा सामान, साधारण भोजन, कपड़े आदि। आये थे थोड़े दिन रहकर गंगातटपर जानेके लिये पर भगवान्‌की इच्छासे गोरखपुरमें ही रह गये।

'कल्याण'के विकासमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका जीवन भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति, ज्ञान एवं निष्काम कर्मका मूर्तिमान् आदर्श है। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी–सम्पदाके गुण सहज एवं स्वाभाविकरूपसे उनमें प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण' में लिखते थे, वह सब उनमें था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी, पवित्र दृष्टि, पवित्र विग्रहसे नित्य–निरन्तर भगवद्रसकी विश्वपावनी अखण्ड सुधा–धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्‌के जीवोंको सहज ही अमृत प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण' का छोटा–सा पौधा सहजरूपसे विकसित होता हुआ आज इस रूपमें जनता–जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण' की सेवामें श्रद्धेय

श्रीभाईजीने अपने जीवनका क्षण–क्षण तथा शरीरका कण–कण होम दिया था। वास्तवमें 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये हैं।

भाईजी 'कल्याण' के कार्यके लिये सदैव तत्पर रहते थे। 'कल्याण' मासिक पत्रके रूपमें जबसे निकलना प्रारंभ हुआ तभीसे बहुत तीव्र गतिसे भारतवर्षमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामके साथ–साथ सदाचार, ज्ञान, वैराग्य, निष्काम, कर्मयोग आदि ऋषि प्रणीत सनातन धर्मके भावोंका प्रचार करने लगा था। श्रीभाईजीने सं० १९८५ के श्रावण मासमें तृतीय वर्षका विशेषांक 'भक्तांक' के रूपमें पूर्वापेक्षा दुगुने पृष्ठ तथा अधिक चित्रोंसे अधिक कलेवरको लेकर बारह हजारका प्रथम संस्करण निकला जिसे सब लोग देखकर चकित हो गये। यद्यपि द्वितीय वर्षके अन्ततक केवल चार हजार ही 'कल्याण' के स्थायी ग्राहक हुए थे फिर भी भाईजीने बड़े उमंगके साथ बहुत अधिक नुकसानकी बिना कुछ परवाह करके निकाल दिया। उन दिनों 'कल्याण' का हिसाब गीताप्रेससे अलग रखा जाता था। 'कल्याण' के नुकसानकी जिम्मेवारी व्यक्तिगतरूपसे श्रीभाईजी पर रहती थी। भाईजी लाखों रुपये कर्ज लेकर दूसरोंकी सहायता कर देते थे। अतः वे 'कल्याण' के नुकसानकी भी परवाह नहीं करते थे।

किसी कारणवश दिल्लीके श्रीआत्मारामजी खेमका गोविन्द भवनके न्यासी मण्डलसे अलग हो गये। गीताप्रेसके तत्कालीन व्यवस्थापक श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दारने भी गीताप्रेसके कार्यसे विरक्ति ले ली। उस भीषण समयमें श्रीभाईजी एवं उनके अभिन्न मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाने पूज्य श्रीसेठजीके कंधे–से–कंधा मिलाकर उस विषम परिस्थितिसे झूझते रहे।

कुछ समयके लिये 'कल्याण' व्यवस्था विभाग भी पूज्य श्रीभाईजीने ही सम्भाला। 'कल्याण'के गोरखपुर आनेपर श्रीदुजारीजीने प्रेरणा करके श्रीबद्रीप्रसादजी आचार्यको बीकानेरसे गोरखपुर बुलाया। श्रीआचार्यजीने 'कल्याण'के ग्राहकोंकी व्यवस्थाका काम तो सम्भाला ही साथमें श्रीभाईजीके अकेले रहनेके गोरखपुरके समय उनके भोजन बनाने आदिका भी काम सम्भाला। श्रीबद्रीदासजी आचार्य भी इतने कर्मठ व्यक्ति थे कि इन्होंने अपने स्वास्थ्यकी बिना परवाह किये 'कल्याण'की व्यवस्थामें कहीं कोई कमी नहीं आने दी। विषम परिस्थितिमें भी श्रीभाईजीके मुँहसे यही निकला था कि अभी तो 'कल्याण' के ग्राहक चार हजार ही हैं, जल्दी ही चालीस हजार हो जायेंगे। उनके वचन सत्य होनेमें देर नहीं लगी। भाईजीके समयमें ही

कल्याणके ग्राहक एक लाख साठ हजारसे ऊपर हो गये थे। यह भी एक अनोखी–सी बात है 'कल्याण' पत्रकी माँग पूरी न करनेकी स्थितिमें कुछ समयके लिये 'कल्याण'के नये ग्राहक बनानेपर रोक लगा दी गयी।

श्रीभगवन्नाम–प्रचार

भगवान्‌के आदेशानुसार श्रीभाईजी श्रीभगवन्नाम–प्रचारमें पूर्ण मनोयोगसे लग गये। निवास–स्थानपर नित्यप्रति संकीर्तन होने लगा। संकीर्तन नित्य रात्रिमें तो ग्यारह–बारह बजेतक समाप्त होता पर दीपावली, कार्तिक कृष्ण ३० सं० १९८४ (२५ अक्टूबर, १९२७) को रात्रिके पौन दो बजेतक भाईजी मस्तीसे संकीर्तन कराते रहे। अंतमें बोले––भगवान्‌के नामका कीर्तन करानेसे अनन्त लाभ होता है। कीर्तनकी ध्वनि जहाँतक जाती है, वहाँ तकके सभी जीव–जन्तु पवित्र हो जाते हैं। वास्तवमें कीर्तनकी महिमा अनिर्वचनीय है।

कई बार भाईजी खड़े होकर प्रेमसे नृत्यके साथ कीर्तन कराते। मार्गशीर्ष कृष्ण १० सं० १९८४ (१९ नवम्बर, १९२७) को श्रीसेठजीकी अनुमतिसे भाईजी अन्य पन्द्रह प्रेमीजनोंके साथ कलकत्ता होते हुए आसाममें भगवन्नाम–प्रचारके लिये रवाना हुए। हाबड़ा स्टेशनपर सैकड़ों प्रेमीजन भाईजीके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहे थे। स्टेशनसे ही उमंग पूर्वक कीर्तन करते हुए पैदल ही भाईजीके साथ सब लोग जुलूसकी तरह बाँसतल्ला गलीमें श्रीगोविन्द भवन पहुँचे। गोविन्द भवन ठसाठस भरा हुआ था, वहाँ भाईजीका चित्ताकर्षक भाषण हुआ। भाषणके बाद कई प्रेमीजनोंने भाईजीसे भगवान्‌का दर्शन करानेकी प्रार्थना की। बहुत आग्रह करनेपर भाईजीने जोशीले शब्दोंमें कहा कि जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌के दर्शन करना चाहता हो वह खड़ा हो जाय। यह अमोघ वाक्य न जाने किस भगवत्प्रेरणासे निकला। उस समय सब लोग बैठे थे, केवल डूँगरमलजी लोहिया खड़े थे। वे भी तुरन्त बैठ गये। कोई भी खड़ा नहीं हुआ। इसी प्रकार कई स्थानोंपर इस तरहकी घटनायें भाईजीके जीवनमें हुई।

विस्तारसे इस यात्राका वर्णन तो यहाँ संभव नहीं है। पर भाईजीने कलकत्ता, नलबाड़ी, गोहाटी, शिलाँग, तिनसुकिया, डिबरूगढ़, नौगाँव, भागलपुर आदि स्थानोंकी यात्रा बहुत ही उमंगसे सम्पन्न की और उनके भगवन्नामके प्रचारको देखकर लोगोंको चार सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्यके

भगवन्नाम–प्रचारकी पुनरावृत्ति प्रतीत होने लगी। गीता–जयन्तीवाले दिन कलकत्तामें विशाल जुलूस निकला। कलकत्तेकी सड़कोंपर नृत्य करनेका भाईजीका यह पहला और अन्तिम अवसर था। कलकत्तेमें भाईजीकी भेंट 'स्वतन्त्र' के सम्पादक पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और 'भारतमित्र' के सम्पादक श्रीलक्ष्मीनारायण गर्देसे हुई। यात्रामें 'कल्याण' सम्पादनका कार्य भी चालू रहा। यात्रामें साथ चलनेवालोंके लिये नियम बनाये गये थे, जिनका पालन सभी उत्साहसे करते थे।

वे नियम इस प्रकार थे——(१) श्रीमद्भगवद्गीताके एक अध्यायका पाठ करना (२) ध्यान नित्य नियमपूर्वक करना (३) 'हरे राम' वाले षोडश मन्त्रकी नित्य १४ माला जप करना (४) सन्ध्या दोनों कालकी करते समय एक–एक माला गायत्री–मन्त्रका जप करना (५) हाथसे बुने हुए कपड़े पहनना (६) मिठाई न खाना (७) तम्बाकू नहीं पीना (८) ब्रह्मचर्य पालन करना। (९) असत्य न बोलना (१०) वेश–भूषामें शौकीनी न करना (११) नौकरको साथ न रखना (१२) अपना काम बने जहाँ तक अपने हाथसे करना (१३) खर्च अपना–अपना करना (१४) यथासंभव क्रोध न करना (१५) नियत समय पर सोना और उठना (१६) मान–बड़ाई न चाहना और न स्वीकार करना (१७) किसीसे शारीरिक और आर्थिक सेवा न कराना (१८) विरोध शान्तिपूर्वक करना (१९) अपने मतका अभिमान न करना (२०) स्त्रियोंसे बचना।

गोरखपुर लौटनेके लगभग पन्द्रह दिनों बाद ही भगवन्नाम–प्रचारकी दूसरी यात्राका श्रीगणेश करते हुए पौष शुक्ल ८ सं० १९८४ (३१ दिसम्बर, १९२७) को बम्बईके लिये प्रस्थान किया। वहाँ भाईजी नेमाणीजीकी वाड़ीमें ठहरे और 'सत्संगभवन' में सत्संगका आयोजन हुआ। बम्बईके प्रेमी इनकी प्रतीक्षा बड़े चावसे कर रहे थे। घर–घर घूमकर जपके लिये प्रार्थना भी की। दादी सेठ अग्यारी लेनमें चार सौ माला 'हरे राम' मन्त्रकी नित्य जपनेका वचन मिला। अपने स्नेही श्रीयादवजी महाराज एवं रामानुज पीठाचार्य श्रीअनन्ताचार्यजीसे भी भाईजी मिले। सम्पादकीय विभाग साथ होनेसे 'कल्याण' के काममें कोई व्यवधान नहीं पड़ा।

बम्बईसे माघ कृष्ण २ सं० १९८४ (९ जनवरी, १९२८) को भाईजी अहमदाबाद पहुँचे। भाईजी वहाँ श्रीजमनालालजी बजाजकी पत्नी, काका

कालेलकर, महादेवभाई देसाई एवं मीरा बहिन (इंग्लैण्डके नौ सेनापतिकी पुत्री मिस स्लेड) से मिले। शामको साबरमती आश्रममें गाँधीजीकी प्रार्थना सभामें सम्मिलित हुए और वहीं गाँधीजीसे एकान्तमें रात्रि नौ बजेतक वार्तालाप किया। भगवन्नाम–प्रचारमें साथ रहनेवालोंके नियम सुनकर गाँधीजी बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रचार–कार्यकी बहुत प्रशंसा की। भाईजीने गाँधीजीसे 'कल्याण' के लिये लेख लिखनेकी प्रार्थना की, जिसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। अहमदाबादसे भाईजी बोराबड़ (जोधपुर) गये। वहाँ चैतन्य–सम्प्रदायके महंत मुकुन्ददासजीने हार्दिक स्वागत किया और इसी गाँवसे होलीके जप–यज्ञमें साढ़े तीन करोड़ 'हरे राम' मन्त्र जपनेका वचन दिलाया। वहाँसे एक दिन मूँडवा होते हुए माघ कृष्ण ६ सं० १९८४ (१३ जनवरी, १९२८) को प्रातः बीकानेर पहुँचे। स्टेशनपर भाईजीका भव्य स्वागत हुआ। दूसरे दिन नगर–संकीर्तनका आयोजन हुआ। चार दिनोंके प्रवासकालमें शहरमें संकीर्तनकी धूम मच गयी। इसी यात्रामें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भाईजीसे पहली बार मिले और आकर्षित भी हुए।

भाईजी बीकानेर, रतनगढ़, सरदारशहर, छापर, साँडवा, बीदासर, सुजानगढ़, लोसल, मौलासर, डीडवाना, चुरू, भिवानी, रोहतकमें भगवन्नाम–प्रचारकी धूम मचाते हुए दिल्ली पहुँचे। वहाँसे खुर्जा गये, जहाँ श्रीहरिबाबा बहुत दूर पैदल चलकर स्टेशनपर मिलने आये। वहाँसे फिरोजाबाद, कानपुर, लखनऊ आदि स्थानोंमें भगवन्नामकी मंदाकिनी बहाते हुए फाल्गुन कृष्ण १ सं० १९८४ (७ फरवरी, १९२८) को गोरखपुर लौट आये।

इसी बीच एक दिन भाईजीने एकांतमें दुजारीजीको बताया कि कार्तिक शुक्ल ७ सं० १९८४ (१ नवम्बर, १९२७) को श्रीसेठजीके प्रश्न करनेके बाद दो दिनतक बड़ी विलक्षण स्थिति रही फिर मार्गशीर्ष कृष्ण १ (१० नवम्बर, १९२७) को मैदानमें कीर्तनके समय और भी विचित्र स्थिति हो गयी। उसके दो दिन बाद प्रातःकाल जब सबके सामने मानसिक पूजा करा रहा था, तब मैं अपनेको सम्भाल नहीं सका। जो बातें गुप्त रखनेकी हैं, वे बतायी नहीं जा सकती।

कीर्तनका प्रभाव

जहाँ भाव होता है, वहाँ तो संत द्वारा कीर्तनका प्रभाव तत्काल होता है, पर जहाँ भाव नहीं भी होता वहाँ भी उसका प्रभाव देखनेमें आता

है। ऐसी ही एक घटना जब भाईजी चैतन्य महाप्रभुकी तरह नाम–प्रचारके लिये स्थान–स्थानपर घूम रहे थे उस समयकी है।

श्रीरविन्द्रजी (सम्पादक 'पुरोधा' एवं 'अग्निशिखा', पाण्डिचेरी) बचपनमें आर्य समाजी थे। उन दिनों वे कीर्तनको एक मात्र तमाशा मानते थे। एक बार उन्होंने सुना कि भाईजी अपनी टोलीके साथ कीर्तन करते हैं। लड़कपनवश श्रीरविन्द्रजीकी भी इच्छा भाईजीको कीर्तन करते हुए देखनेकी हुई। वे तो एकमात्र तमाशा देखनेकी इच्छासे ही उनकी टोलीको देखने गये थे। परन्तु कीर्तन सुनकर एवं भाईजीकी भाव–मुद्रा देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो उठा। उस कीर्तनका एवं भाईजीकी भाव–मुद्राका ऐसा विलक्षण प्रभाव उनके मानस पटलपर पड़ा कि वे स्वयं एक जगह लिखते हैं—'आज पैंतिस–चालीस वर्ष बाद भी भाईजीकी मुद्राको भुलाया नहीं जा सकता। कीर्तन क्या था—अमृत वर्षा थी।'

जीवनोपरान्त भगवद्दर्शनोंकी बातें प्रकट करनेसे लाभ

जसीडीहमें भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंकी बातें बहुत ही थोड़े समयमें दूर–दूरके स्थानोंमें पहुँच गई थी—विशेषतया जहाँ श्रीसेठजी एवं भाईजीके परिचित लोग रहते थे। बम्बईमें भी भाईजीके बहुतसे व्यापारी मित्रोंको भी समाचार मिलनेमें देरी नहीं लगी। घटना कुछ ऐसी हुई थी जिसपर हर एकको विश्वास होनेमें भी कठिनता होती थी। कुछ मित्रोंसे भाईजीकी बहुत घनिष्ठता थी। ऐसे मित्रोंके भाईजीके पास पत्र आने लगे। कुछ मित्र भाईजीसे पूरा विवरण चाहते, कुछ भाईजीकी स्वीकारोक्ति चाहते। यह विश्वास तो सभीको था कि भाईजी जरा भी असत्य नहीं लिखेंगे। ऐसे ही एक मित्र थे प्रतिष्ठित व्यावसायी श्रीबालकृष्णलालजी पोद्दार (सर्वश्री ताराचन्द घनश्यामदास)जिन्होंने बम्बईसे पत्र दिया एवं भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंके सम्बन्धमें कई प्रश्न किये। भाईजीने जो उत्तर दिया वह नीचे दिया जा रहा है जिसमें भाईजीने स्पष्ट लिखा कि ऐसी बातोंका जीवनकालमें प्रकाशन अच्छा नहीं रहता, मरनेके बाद होनेमें कोई आपत्ति नहीं बल्कि लोगोंको लाभ होता है।

यह बात तो निर्विवाद रूपसे कही जा सकती है कि सभी संतोंने नाम एवं रूपको मिथ्या कहा है एवं मिथ्याके प्रचारका विरोध किया है। जो सच्चा संत होगा वह कभी अपने नाम–रूपका प्रचार नहीं चाहेगा। पर यह

भी परम सत्य है कि संतोंके चरित्रसे जीवोंका परम कल्याण होता है एवं साधकोंको विशेष सहायता एवं प्रेरणा मिलती है। इसीलिये हमारे पुराणोंमें संतोंके चरित्र भरे पड़े हैं एवं गीताप्रेससे श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजीने विपुल मात्रामें अर्वाचीन संतोंके विस्तृत जीवन–चरित्र प्रकाशित किये। वैसे तो स्वयं भाईजीने अपनी जीवनी लिखनेका घोर विरोध किया एवं उनके जीवनकालमें जब–जब उनके मित्र विद्वानोंने ऐसा प्रयास शुरू किया भाईजीने तत्काल उसे कड़ाईसे रोक दिया। यहाँतक कि अपने अन्तिम दिनोंमें लिखे वसीयतनामेंमें भी उन्होंने इस विरोधका उल्लेख किया। पर जीवनोपरान्त ऐसी सत्य घटनाओंसे लोगोंको लाभ होता है यह इस पत्रसे स्पष्ट ही है। श्रीसेठजीने भी वि०सं० १९८४ मार्गशीर्ष कृ० ६ को अपनी जीवनीके नोट स्वयं बोल–बोलकर भाईजीको लिखाने शुरू किये थे। वे नोट भाईजीके हाथसे लिखे हुए अभी भी सुरक्षित हैं। यह क्रम कई दिन चला। फिर बीचमें एक ऐसी दुर्घटना हो गई जिससे यह कार्य सर्वथा बन्द कर दिया गया। इतना ही नहीं एक पत्र स्वयं श्रीसेठजीके हाथका श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाको लिखा मिला जिसमें उनको अपनी (श्रीसेठजी) फोटो तैयार कराकर बाँकुड़ा भेजनेका लिखा था तथा साथमें यह भी लिखा था कि आप भी रखना चाहें तो रख सकते हैं। इससे यह स्पष्ट ही है कि श्रीसेठजी जो जीवनी एवं फोटोका विरोध करते थे वह उस दुर्घटनाके बाद ही करना प्रारम्भ किया। भाईजीका पत्र इस तरह है।

डिबरूगढ़, मार्गशीर्ष शु० ५ सं० १९८४

प्रिय भाई बालकृष्णलालजी पोद्दार

सप्रेम राम राम। आपका कृपा पत्र गोरखपुरके मार्फत मुझे कलरातको यहाँ मिला। इधर चले आनेके कारण समयपर उत्तर नहीं दिया जा सका इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ। बहुत दिनों बाद आपने पत्र लिखा, परन्तु कृपापूर्वक स्मरण रक्खा, इसके लिये मैं आपका अभारी हूँ। आपकी स्मृति मुझे बहुत बार हो जाया करती है। आपका सरल स्वभाव स्मरण होनेपर मन खिंचता है।

एक और अनुरोध है यथासंभव फैशन तथा पाश्चात्य सभ्यताके बढ़ते हुए अनुरागको घटानेकी कृपा करें।

भगवत् सम्बन्धमें आपके प्रश्नका मैं इस समय विशेष ब्यौरेवार उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ। यह विषय वास्तवमें गोपनीयसे भी परम गोपनीय

हुआ करता है। ऐसी बातोंके विस्तार पानेसे उल्टी मर्यादा घटनेकी संभावना समझी जाती है। ऐसी किसी बातका प्रकाशन और प्रचार उसके जीवनकालमें न होना ही अच्छा है। मरनेके बाद हो तो कोई आपत्ति नहीं, बल्कि उससे लोगोंको लाभ ही होता है। कई भक्तोंकी ऐसी विलक्षण बातें तो उनके मरनेके बाद भी प्रकाशित नहीं होती। क्योंकि वे अपने जीवनकालमें इसे इतना गुप्त रखते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा और उनके सिवा तीसरा कोई जानता ही नहीं। प्रेमी और प्रेमास्पदकी गुप्त क्रीड़ाएँ प्रकाश करनेकी चीज नहीं हुआ करतीं। जिसको जैसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे प्रकाशित करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। प्रकाशन केवल दो कारणोंसे हो सकता है। (१) जगत्के लाभके लिये और (२) जगत्के मान बड़ाई, पूजा प्राप्त करनेके लिये। इनमेंसे जो दूसरे उद्देश्यके लिये इस बातका प्रकाश करता है, उसे या तो परमात्माके दर्शन कभी हुए ही नहीं, वह मिथ्या भाषण करता है अथवा वह उसका महत्त्व नहीं समझता। जिसको ऐसा महान् सौभाग्य मिल जाता है वह जगत्से मिलनेवाली मान–बड़ाई क्यों चाहेगा। उसे जो ऊँचे–से–ऊँचा मान मिला है, क्या उससे भी ऊँचा कोई मान है ? जगत्की मान–बड़ाई तो तुच्छ, अतितुच्छ है, उसकी तरफ तो वह आँख उठाकर भी नहीं ताकता। जगत्के मान–अपमानकी जैसे परवा नहीं होती। वह केवल विभोर रहता है अपने प्रेमीके मिलनकी मस्तीमें। वास्तवमें उसकी दृष्टिमें केवल उसका एक प्रियतम ही बच रहता है, और कोई रह ही नहीं जाता, तब वह मान–बड़ाई किससे और कैसी चाहे ?

उत्तम के अस बस मनमाहीं। सपनेंहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।

रही जगत्के लाभकी बात सो यह भी उस गुप्त रहस्य–प्रकाशनसे ही नहीं होता। यह तो संभव नहीं कि वह पापी, पुण्यात्मा, तर्की, कुतर्की, बुरे, भले सबको ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन करवा दे क्योंकि ईश्वर कोई उसके इशारेपर नाचनेवाली कठपुतली नहीं है। दूसरे ऐसा नियम भी नहीं है कि सबको प्रत्यक्ष हो जाय। और यदि ऐसा हो भी जाय तो मानता कौन है। भगवान् कृष्णने दुर्योधनकी राजसभामें सबके सामने अपना विराट रूप दिखलाया। जाननेवाले उसे देखकर मुग्ध हो गये। अविश्वासी दुर्योधनने कहा कि यह मायावीकी माया है, जादू है उसने विश्वास नहीं किया।

जब साक्षात् भगवान्को ही लोग मानना स्वीकार नहीं करते, तब यदि कोई अपने मुँहसे कहे कि मेरे साथ कोई ऐसी घटना हुई है तो उसकी

बात कौन माने ? सन्देह, शंका, कुतर्क, व्यंग और खण्डन करनेवाले बहुत मिल सकते हैं। यद्यपि उसे सन्देहसे लेकर कुतर्क पर्यन्त किसी भी बातका भय या परवाह नहीं है, तथापि इसमें उसके प्राणाधिक प्रियतमका तिरस्कार होता है, ऐसी भावनासे भी वह ऐसी गुप्त बातें प्रकाशित नहीं करता। कर दे तो वास्तवमें उसका या उसके प्रियतमका वस्तुतः किसी भी कालमें कोई नुकसान नहीं होता परन्तु कई कारणोंसे लोगोंको नुकसान पहुँच जाता है। इससे कहना नहीं बन पड़ता और न इन बातोंके कहनेसे जगत्का लाभ ही सब जगह होता है। अधिकांश सुनने और पूछनेवाले कौतूहलसे ही पूछना चाहते हैं। बात सुननेके बाद कुछ तर्क वितर्कके बाद कौतूहल शान्त हो जाता है। नाटकके ड्राप सीनकी भाँति खेल खत्म हुआ, इससे प्रायः ऐसी महान् घटनाओंकी अवमानना ही होती है। इस स्थितिमें किसी भी साधारण हेतुसे उस सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जाता। इतनी बातें आपके सन्तोष और विषयका नियम बतलानेके उद्देश्यसे लिखी गई है।

० ० ० अभी तो केवल इतना ही आपको लिखा जा सकता है कि यदि आप उचित समझें तो आपको उस बात पर विश्वास करना चाहिये कि तीव्र आकांक्षा और साधना होनेपर भगवत्कृपासे किसीके लिये भी ऐसा होना सम्भव है।

एक अनुरोध और वह है जोरके साथ। कृपापूर्वक भगवान्के नामका स्मरण आप जितना बढ़ा सकें उतना ही बढाना चाहिये। इससे सब कुछ हो सकता है। नाम स्मरण होना चाहिये, विशुद्ध प्रेम भावसे। कहीं कामनाका कलंक न रह जाय।

यह पत्र प्राईवेट है इसे पढ़कर या तो लौटा देना चाहिये या अपने पास अलग सुरक्षित रखना चाहिये। अथवा फाड़कर फेंक देना चाहिये, दूसरे लोग नहीं पढ़े तो ठीक हैं।

आपका—हनुमान

मित्रता निभानेका एक और अनुपम उदाहरण

श्रीहरिराम शर्माकी एक घटना आप पहले पढ़ चुके हैं। ये रतनगढ़ निवासी थे और बम्बईमें भाईजीके मित्र बन गये थे। भाईजीने इनपर अनेकों बार ऐसे–ऐसे उपकार किये थे, इस प्रकारके संकटोंसे निवारण किया था कि जिसका बदला वे प्राण–न्यौछावर करके भी नहीं चुका सकते थे!

भाईजीकी कृपापूर्ण उदारता ही उनको आजीविकाका एक बड़ा अवलम्बन था। परन्तु संगके असरकी बलिहारी है। रतनगढ़ जाकर वे कुसंगमें पड़ गये। फाल्गुन सं० १९८५ (मार्च, १९२९) में बीमार पड़कर मरणासन्न हो गये और लोगोंके बहकावेमें आकर कई व्यक्तियोंके सामने भाईजीसे दो हजार रुपये हिसाबमें लेने बाकी बताये और भाईजीको पत्र भी लिखा। इसके बाद उनकी मृत्यु हो गयी। भाईजी सबको यदि सत्य बात बतलाते तो सब उसपर विश्वास करते, परन्तु हरिराम पर कलंकका टीका लग जाता। भाईजी नहीं चाहते थे कि उनके मित्रको कोई झूठा समझे। रुपयोंकी छूट उस समय भाईजीके पास थी नहीं, अतः अपनी रतनगढ़की पैतृक सम्पत्ति बेचकर उसके घरवालोंको दो हजार रुपये देनेका तय किया। यह बात भाईजीके परम मित्र श्रीरामकृष्ण डालमियाको मालूम हुई। उन्होंने तुरन्त पत्र लिखा कि हरिरामको झूठे हिसाबके रुपये देना एक प्रकारका अन्याय है और आपको अपनी सम्पत्ति कदापि नहीं बेचनी चाहिये। यह तो आपकी उदारताका सर्वथा दुरुपयोग है, पर भाईजीने बड़ा नम्र उत्तर दिया कि भैया आज हरिराम संसारमें नहीं है, मैंने उसे अपना मित्र माना था। अब मैं सत्य कह दूँगा तो सब लोग उसपर कलंक लगायेंगे कि जिसने आजीवन हरिरामका पालन किया उसीपर हरिरामने मरते समय असत्य आरोप लगाया। यदि मैं एक ब्राह्मणकी तुच्छ सेवा कर दूँगा तो मेरी क्या हानि होगी। लोग मेरी बदनामी ही तो करेंगे सो वह तो मेरी प्रिय वस्तु है। मित्रके कलंकको अपनेपर लेनेमें मुझे सुख मिलेगा। मैंने तो ये रुपये देनेका निश्चय कर लिया है।

इस तरह रुपये देनेका उदाहरण शायद खोजनेपर भी न मिले।

साधन–समितिकी स्थापना

उन दिनों भाईजी प्रतिदिन प्रातःकाल सत्संग कराया करते थे। वैशाख शुक्ल ४ सं० १९८४ (५ मई, १९२७) को भाईजीने सात–आठ प्रेमीजनोंके सामने कहा कि साधकोंको साधन करनेके लिये कुछ नियम बनाकर उनका पालन करना अत्यावश्यक है। बिना साधनके शान्ति नहीं मिलती। अतः आपलोग तैयार हों तो एक साधन–समिति बनाकर उसके सदस्योंके लिये कुछ नियम बनाये जायँ। नियमोंका पालन आदरपूर्वक कड़ाईके साथ किया जाय, जिससे मानव जीवनके लक्ष्यकी प्राप्ति शीघ्र हो।

सब लोग सहर्ष राजी हो गये। परामर्शके बाद पन्द्रह नियम और बारह उपनियम बनाये गये। वे नियम इस प्रकार थे––

(१) आहार––नमकके सिवा अन्य सब मसालोंका त्याग, भोजन अधिक–से–अधिक पाँच वस्तुओंके द्वारा बना होना चाहिये। जैसे (१) आटा या चावल (२) घृत (३) दाल (४) नमक (५) साग या दूधमेंसे कोई एक वस्तु।

(२) वस्त्र––अपने पहननेके लिये देशी सूतके हाथसे बुने हुए अधिक–से–अधिक चार वस्त्र (लंगोटा और अंगोछाके अतिरिक्त)

(३) जप––प्रतिदिन कुछ भी खानेसे पहले तीन माला 'हरे राम' षोडश नामवाले महामंत्रकी अवश्य तथा सोनेसे पहले कुल १४ माला पूरी कर लें।

(४) सदाचार––क्रोध सर्वथा न करे और क्रोधकी कोई क्रिया तो सर्वथा न होने पावे।

(५) ब्रह्मचर्य––अपनी धर्मपत्नीसे एक महीनेमें एक बारसे अधिक स्त्री सहवास न करें। पर स्त्रीको बुरी दृष्टिसे न देखें।

(६) उपासना––नित्यप्रति नियत समय तथा नियत स्थानपर एक घंटेके लिये प्रार्थनामें अवश्य उपस्थित हों।

(७) आदेश––समितिके आदेश बिना किसी प्रश्नके अवश्य पालन करें।

१–समितिके आदेशानुसार प्रायश्चित करना।

२–समितिकी बात बिना आज्ञा किसीसे प्रकट न करना।

(८) श्रीमद्भगवद्गीताके एक अध्यायका अर्थ समझते हुए पाठ करना।

(९) सन्ध्या, गायत्री तथा स्वाध्याय नियमपूर्वक करना। संध्या तथा तर्पणमें कम–से–कम आधे घंटेतक एक आसनपर बैठकर श्रद्धा और आदरपूर्वक पंचपात्रोंके द्वारा संध्या करना। संध्या प्रातःकाल एवं सायंकालके उत्तम समयपर ही करना।

(१०) प्रार्थना नित्य प्रति आधे घंटे एकान्तमें रहना।

(११) सत्य भाषण––भूतकाल एवं वर्तमान कालके वचन जान करके असत्य न बोलना।

(१२) कम–से–कम पाँच मिनट व्यायाम नित्य करना।

(१३) श्रीभगवानको सर्वत्र देखनेकी चेष्टा करना जिन–जिनसे व्यवहार करना हो उनमें विशेषरूपसे भगवान्‌को देखना।

(१४) श्रीभगवान्‌को प्रत्येक पन्द्रह मिनटपर स्मरण और स्मरण होनेपर न भूलनेकी चेष्टा करना।

(१५) नियमोंकी डायरी नित्यप्रति सोनेसे पहले भरना।

उपनियम :—नियमोंके अतिरिक्त उपनियम भी ये थे—

१—दंभ न करना २—मन, वाणी और कर्मसे किसीका अनिष्ट न करना ३—दिल्लगीका त्याग ४—अधिक न बोलना ५—मादक वस्तुओंका त्याग ६—सबसे प्रेम करना ७—जाति, वर्ण, धर्म, देशके विचारोंसे तथा बीमारीके कारण किसीसे घृणा न करना ८—दूसरेके दोष न देखना ९—शारीरिक परिश्रम करना १०—जहाँतक बने अपना काम स्वयं करना ११—किसीसे सेवा न कराना १२—नीचे लिखे गये अवसरोंमें भगवत् स्मरण करना—प्रातः उठते समय, निद्रा लेते समय, स्नान करते समय, कुल्ला करते समय, भोजन करते समय, जल पीते समय।

इस समितिके सर्वेसर्वा पू० श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजी थे। इसके प्रमुख सदस्य थे—१—श्रीगंगाबाबू २—श्रीशुकदेवजी ३—श्रीघनश्याम बाबू ४—श्रीबिहारी लालजी झुनझुनवाला ५—पं० लाधूरामजी शर्मा ६—पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ७—श्रीगंभीरचन्दजी दुजारी ८—श्रीनन्दलालजी जोशी ९—श्रीशिवकृष्णजी डागा १०—श्रीरामेश्वरजी बाजोरिया ११—श्रीरामकृष्णजी काबरा १२—श्रीमदनलालजी चूड़ीवाला १३—श्रीईश्वरदासजी डागा १४—श्रीरामजीदासजी बाजोरिया १५—श्रीबद्रीदासजी आचार्य १६—श्रीप्यारेलालजी डागा १७—श्रीमुरलीधरजी १८— श्रीवेणीमाधवजी १९—पं० श्रीगोवर्धनजी शर्मा

साधन समितिका नित्य कार्यक्रम होता था। सभी लोग १० मिनट गीताजीके ११वें अध्यायके ३६—४६ श्लोकोंकी प्रार्थना करते थे। इसके बाद श्रीभाईजीका प्रवचन होता था। उसके बाद श्रीभाईजीकी रचित

हे स्वामी ! अनन्य अवलम्बन, हे मेरे जीवन आधार

(पद—रत्नाकर, सं० १४७)

यह प्रार्थना होती थी। इसके बाद श्रीभाईजी अकेले बोलकर श्रीभगवान्‌की आर्त प्रार्थना करते। अन्य सभी लोग उन्हींके शब्दोंके अनुसार अपने मनको बनानेकी चेष्टा करते।

इस प्रकार श्रीभाईजीकी प्रार्थनाका ऐसा प्रभाव हुआ कि साधन समितिके सदस्योंका सहसा थोड़े ही दिनोंमें एक प्रकारसे सचमुच जीवनका

लक्ष्य ही बदल गया। ऐसे–ऐसे उत्तम नियम समितिके प्रत्येक सदस्य अक्षरशः श्रद्धापूर्वक पालन करनेकी चेष्टा करते। थोड़ेसे नियम भंगपर कठोर–से–कठोर दण्ड सहर्ष स्वीकार कर लेते। एक दिन सभी लोग करीब आधा मिनटकी देरसे समितिमें पहुँचे। उसके प्रायश्चितके लिये सबने एक दिन उपवास किया।

श्रीभाईजी स्वयं उपर्युक्त नियमोंका खूब कड़ाईके साथ पालन करते थे। अतः सभी अन्य सदस्योंको नियम पालन करनेमें बहुत उत्साह होता था।

गीताप्रेस द्वारा जो इतना बड़ा कार्य हुआ––सभी क्षेत्रोंमें आज इसका सम्मान है। इसमें इन सभी व्यक्तियोंकी त्याग, तपस्या एवं निष्ठापूर्वक लगनने अद्भुतकार्य किया। गीताप्रेस प्रासादके ये सभी नींवके पत्थर रहे हैं।

पुत्रीका जन्म

बम्बईमें सं० १६७७ (जुलाई, १६२०) के श्रावण मासमें रामदेईबाईको प्रथम पुत्रकी प्राप्ति हुई थी पर लगभग अठारह–उन्नीस मासके पश्चात ही वह भगवान्के धाममें पहुँच गया। भगवान्को भाईजीको अभी गृहस्थाश्रममें रखकर ही अपना कार्य कराना था। अतः मार्गशीर्ष कृष्ण ६ सं० १६८६ (२२ नवम्बर, १६२६) को प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें कन्याका जन्म हुआ, जिसका नाम सावित्री रखा गया। भाईजी जिस स्थितिमें थे, उनकी सन्तानमें विशेषता होना स्वाभाविक ही था।

प्रयाग कुम्भके गीता–ज्ञान–यज्ञमें

कुम्भके समय तीर्थराज प्रयागमें लाखों लोग दूर–दूरसे एकत्रित होते हैं। गीताप्रेसका जो आज इतना विशालरूप है विश्वके प्रत्येक कोनेमें जहाँ भी हिन्दू निवास करते हैं, वहाँ अधिकांश घरमें गीताप्रेसकी पुस्तकें देखनेको मिलेगी। इतने व्यापक प्रचार–प्रसारके पीछे भाईजीका अथक परिश्रम रहा है।

गुजरातके प्रसिद्ध संत श्रीअखण्डानन्दजी महाराज (सस्तु साहित्य मण्डलके स्थापक) गोरखपुर भाईजीसे मिलने आये। उन्होंने माघ सं० १६८६ वि० में प्रयागमें होनेवाले १२ वर्षीय कुंभमें गीताप्रेस द्वारा 'गीता–ज्ञान–यज्ञ' करनेकी प्रार्थना की। उस कार्यके खर्चके लिये उन्होंने भाईजीको एक

अच्छी राशि स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। गीताप्रेसके व्यापक प्रचारके लिये भाईजीने यह भार स्वीकार किया। भगवन्नाम–प्रचारका बहुत सुन्दर अवसर देखकर वहाँ 'गीता–ज्ञान–यज्ञ' का आयोजन श्रीसेठजीके परमर्शसे किया गया। वे स्वयं भी पधारे एवं भाईजी भी पौष शुक्ल १३ सं० १९८६ (१३ जनवरी, १९३०) को श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके साथ वहाँ पहुँचे। इसका शुभारम्भ पं० मदनमोहन मालवीयके करकमलों द्वारा हुआ। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० विष्णुदिगम्बरजी भी पधारे थे, इनके द्वारा रात्रिके समय सुमधुर कीर्तन होता। प्रातःकाल काशीके विद्वान् श्रीमदनमोहनजी शास्त्री श्रीमद्भागवतकी कथा करते एवं दिनमें श्रीसेठजीका प्रवचन होता। भाईजीके भी ओजस्वी प्रवचन होते ही रहते थे। गीता प्रदर्शनीका भी आयोजन किया गया था। पं० जवाहरलाल नेहरूकी माता श्रीमती स्वरूपरानी नियमित रूपसे सम्मिलित होती थी। एक महीने तक यह आयोजन सफलतापूर्वक चलता रहा।

हिंदी–साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन गोरखपुरमें

फाल्गुन शुक्ल १ सं० १९८६ (१ मार्च, १९३०) से अखिल भारतीय हिन्दी–साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन गोरखपुरमें प्रारम्भ हुआ। भाईजीके मित्र एवं प्रेमी विद्वानोंने उनके साथ ही टूटे–फूटे खपरैलके मकानमें गोरखनाथ मन्दिरके पास ठहरना स्वीकार किया। इनमें मुख्य थे—श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी, श्रीनरोत्तमजी एवं ठाकुर शिवमूर्ति सिंह आदि। भाईजीने उनकी सेवाका भार श्रीरामदासजी बाजोरियाको दिया, जिन्होंने अपनी सेवा–आतिथ्य–सत्कारसे सबको आप्यायित कर दिया। श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी तो इनकी सेवासे इतने उल्लसित हुए कि बादमें उन्होंने भाईजीको लिखा कि यदि कोई सेवाका कालेज खुले तो श्रीरामजीदास बाजोरियाको उसका प्रिंसिपल नियुक्त किया जाय।

उपरामकी वृत्तिकी प्रबलता

बम्बई छोड़कर भाईजी गोरखपुर आये थे इस आशासे कि कुछ महीनोंमें 'कल्याण' की व्यवस्था ठीक करके फिर गंगातटपर एकान्त सेवन करना है। पर भगवान्‌को जगत्‌के सामने एक नया आदर्श रखना था कि सेवा कार्योंमें पूर्ण व्यस्त रहते हुए भी पूर्णरूपेण लीलामें कैसे अवस्थित रहा जा सकता है। 'कल्याण' और गीताप्रेसका कार्य दिन–दूना रात–चौगुना

बढ़ रहा था और इसके साथ ही बढ़ रही थी भाईजीकी व्यस्तता भी। चारों ओरकी परिस्थितियोंके दबावके कारण भाईजीको एक मिनटके लिये भी अवकाश नहीं था। सब होते हुए भी भाईजीकी एकान्त सेवनकी आन्तरिक इच्छा ज्यों–की–त्यों बनी हुई थी। 'भक्तांक' विशेषांकका कार्य पूरा करके भाईजीने मनमें गंगातटपर जानेका विचार कर लिया और श्रीसेठजीसे अनुमति लेने बाँकुड़ा गये। उनको अपने मनकी सारी स्थिति समझाकर 'कल्याण' एवं गीताप्रेसका कार्य दूसरेको सँभलानेकी आग्रहपूर्वक अनुमति माँगी, परन्तु श्रीसेठजीने समझा दिया कि यह कार्य भगवान्‌का अपना कार्य है, इससे जगत्‌को बड़ा लाभ होगा। अभी तक तुम्हारे जैसा व्यक्ति तैयार नहीं हुआ है, अतः अभी तुम्हें इससे उपराम नहीं होना चाहिये। भाईजीने अपनी इच्छाको दबाकर उनकी बातका आदर किया, पर उत्कंठा तीव्र होती गयी, अतः श्रीसेठजीको पुनः पत्र लिखा। जिसका उत्तर श्रीसेठजीने पौष शुक्ल ४ सं० १९८६ (४ जनवरी, १९३०) को बाँकुड़ासे लिखा—"तुमने लिखा मेरे द्वारा अधिक दिन काम होना कठिन–सा है। सो भगवान्‌की इच्छा और उनकी आज्ञा होनेसे कुछ भी कठिन नहीं है। तुमने लिखा कई दिनसे मन उपराम रहता है सो ठीक है। 'कल्याण' का 'रामायणांक' बंद करनेसे क्या लाभ है ? ....तुम्हारे जानेके विषयमें मैं क्या लिखूँ ? मुझे तो 'प्रेस' और 'कल्याण'से संसारमें बहुत लाभ दीख रहा है। मेरी बुद्धिके अनुसार तो तुम्हें गोरखपुरमें ही एकान्तमें रहकर काम देखना चाहिये। ....यदि मेरा और तुम्हारा प्रयाग जाना हो जाय तो वहाँपर एकान्तमें सब बातें की जा सकती हैं।"

प्रयागमें जब दोनों मिले तथा सारी व्यवस्था ठीक करके माघ कृष्ण ३० सं० १९८६ (२९ जनवरी, १९३०) को जब श्रीसेठजी बाँकुड़ा जानेवाले थे तो एकान्तमें भाईजीने अपनी हार्दिक लालसा उनके सामने रखी। श्रीसेठजीने बहुत प्रेमसे कहा कि मेरे तो गोरखपुरके महान् कार्यको छोड़कर कहीं जानेकी बिलकुल नहीं जँचती है। तुम्हारा इतना आग्रह है तो तुम्हारी प्रबल इच्छाको रोकना उचित न समझकर कुछ दिनोंके लिये तुम्हें छुट्टी दी जा सकती है, पर 'रामायणांक' के सम्पादनकी जिम्मेदारी तुम्हारी है, तुम चाहे जहाँ रहकर कर सकते हो।

भाईजी और श्रीसेठजीका यह प्रेमका सम्बन्ध न जाने कितनों जन्मोंसे चला आ रहा था। इसका पूरा ज्ञान तो उसीको होता है, जिसे

उनके पूर्व जन्मोंका पता हो। भाईजीने तो ऐसे रहस्योंको कभी खोला नहीं, परन्तु एक बार पूज्य बाबाने बताया कि पहलेके एक जन्ममें श्रीसेठजी पिता थे और भाईजी उनके पुत्र। भाईजी उनकी बातका पूरा आदर करते थे और एकान्त सेवनकी बात टल जाती।

श्रीसेठजीको इन्होंने फिर पत्र लिखा कि मेरा शीघ्र ही चित्रकूट जानेका मन है। भाईजीको श्रीसेठजीका फाल्गुन कृष्ण १ सं० १९८६ (१४ जनवरी, १९३०) का लिखा पत्र मिला जिसमें लिखा था—

फाल्गुन शुक्ल (मार्च १९३०) में तुम्हारा चित्रकूट जानेका मन लिखा तथा मेरेसे सलाह पूछी सो 'प्रेस' का काम देखनेके लिये तुमको गोरखपुर रखनेका विचार नहीं है। प्रयागमें अपने एकान्तमें पूरी बातें नहीं हो सकीं। ....विशेष हर्ज न हो तो होली बाद (चित्रकूट) जा सकते हो। फाल्गुन सुदीमें ऋषिकेश जाते समय तुमसे पुनः इस सम्बन्धमें निश्चय करनेका विचार है।

इसी तरह भाईजी आग्रह करते रहे और श्रीसेठजी उसे स्थगित करते गये। इस तरहका पत्राचार और मिलनेका आग्रह वर्षोंतक चलता ही रहा। अत्यधिक आग्रह होनेपर कुछ दिन एकान्त सेवनके लिये कहीं चले जाते, पर भगवान्‌को इनके माध्यमसे जो लीला करानी थी उसके लिये इन्हें फिर प्रपंचमें ले आते।

नमक सत्याग्रहमें जानेसे श्रीसेठजीने रोका

बैशाख कृ० १ सं० १९८७ (अप्रैल १९३०) को कानपुरके श्रीगणेश शंकरजी विद्यार्थी सम्पादक 'प्रताप' गोरखपुर पहुँचे। वे नमक सत्याग्रह करनेके लिये बाबा राघवदासजीके निमन्त्रण पर पडरौना जा रहे थे। उन दिनों नमक सत्याग्रह जोरसे चल रहा था। श्रीभाईजीको गाँधीजीने लिखा तुम मेरे पास आ जाओ। कई मित्रोंने इस सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेके लिये आग्रह किया। श्रीभाईजीकी भी इस काममें तन–मनसे सहानुभूति थी। वे अपने साथ श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको लेकर नमक सत्याग्रहमें सक्रिय भाग लेनेके लिये श्रीविद्यार्थीजीके साथ पड़रौना गये। वहाँ पर जोशीले व्याख्यान होकर नमक नीलाम किया गया तो श्रीभाईजीने भी जरा–सा नमक २५) की बोली देकर खरीदा। इस आन्दोलनमें विशेष भाग लेनेके लिये उन्होंने श्रीसेठजीसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना की। भाईजीने उन्हें लिखा कि मेरे बहुतसे मित्र नमक सत्याग्रहमें

गिरफ्तार हुए हैं और मैं भी इस सत्याग्रहमें सम्मिलित होना चाहता हूँ, कृपा करके आज्ञा दीजिये। श्रीसेठजीने तुरन्त तारसे उत्तर दिया कि पत्र देखो, सत्याग्रहमें सम्मिलित नहीं होना। श्रीसेठजीने विस्तृत पत्रसे उत्तर दिया जो पुस्तकमें दिये पत्र–संग्रहमें देखा जा सकता है। श्रीभाईजीका हृदय अपने प्रेमीजनोंके दुःखसे द्रवित था इसलिये उनका मन पूरी तरह बदला नहीं। दस दिन बाद श्रीभाईजी श्रीसेठजीके कहनेसे ऋषिकुलके उत्सवमें सम्मिलित होने चुरू गये। श्रीसेठजीने स्पष्ट आज्ञा देकर सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेसे श्रीभाईजीको रोक दिया। श्रीभाईजी विनोदमें कहा करते थे कि श्रीसेठजीके पास एक ब्रह्मास्त्र था जिसे वे भी जानते थे और मैं भी जानता था। वे उसका प्रयोग बहुत ही कम करते थे पर जब मैं अधिक आग्रह करता और उनके बिलकुल नहीं जँचती तो कह देते—"भैया मैं कहता हूँ इसे नहीं करना चाहिये।" मैं चुप हो जाता और स्वीकार कर लेता। श्रीसेठजीके रोक देनेसे भाईजी राजनीतिमें आगे नहीं बढ़ सके।

चुरू दो तीन दिन रुककर दोनों संत श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके साथ बीकानेर चले गये। वहाँ उन्हींके घर पर भोजन करके स्थानीय संत श्रीलालीमाईजीके यहाँ पधारे। ये बीकानेरके एक उच्चकोटिकी संत महिला थी। बीकानेरके स्त्री–समाजकी सैकड़ों विधवा बहिनोंका उन्होंने जीवन सुखमय बना दिया था। श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजी जब भी बीकानेर पधारते उनसे मिलते थे। श्रीलालीमाईजीकी इन दोनोंमें बहुत श्रद्धा थी। श्रीभाईजी एक–दो दिन वहाँ रहकर श्रीरामायणांकके लिये चित्र संग्रह आदिके कार्य से रतनगढ़, जयपुर होते हुए दस–बारह दिन बाद गोरखपुर लौटकर रामायणांकके कार्यमें लग गये।

भगवान्‌की लीलाशक्ति द्वारा अयाचित व्यवस्था

श्रीभाईजी अपने प्रवचनमें कई बार कहते कि भगवान्‌की लीला शक्ति इतनी विलक्षण है कि भगवान् कब, क्या संकल्प करेंगे उसकी सारी व्यवस्था पहलेसे ही कर देती है जिससे भगवान्‌का संकल्प और संकल्प पूर्ति एक ही कालमें हो जाते हैं। ऐसे कई उदाहरण श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलते हैं। प्रसंग सन् १९३१ का है। महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीयसे भाईजीका सम्बन्ध बहुत ही निकटका था। बम्बईमें रहते समय उनके लड़कोंसे भी निकटता हो गई थी। उनके भतीजे श्रीकृष्णकान्त

मालवीय उस समय नैनी जेलमें थे। वहाँसे उनको बस्ती जेलमें भेजनेका आदेश मिला। नैनीसे बस्ती जानेका रास्ता गोरखपुर होकर ही है। उन्होंने भाईजीको तार दिया कि दस व्यक्तियों सहित बस्ती जाते हुए गोरखपुर स्टेशनपर शामको पहुँच रहा हूँ, आप भोजनकी व्यवस्था कर दीजियेगा। तार दस बजे करीब गीताप्रेस पहुँच गया। भाईजी उस समय गोरखनाथ मन्दिरके पास बालमुकुन्दजीके छोटेसे पुराने बगीचेमें रहते थे। प्रेसवालोंने शामको तार भाईजीके पास भेजा जब गाड़ी पहुँचनेमें करीब आधा घंटा समय बचा था। तार पढ़कर भाईजी सोचने लगे। खेद हुआ कि जब प्रेसवालोंने तार खोल लिया तो उसी समय तार भेज देते अथवा वहीं बासेमें पूड़ी–साग बनाकर स्टेशन भेज देते। अब आधा घंटेमें न भोजन बन सकता है न कोई सवारी यहाँ मिलती है। फोन उस समय था नहीं। इक्का (तांगेका पूर्वरूप) काफी दूर पैदल चलनेके बाद मिलता था। एक बार सोचा पैदल ही स्टेशन चलूँ। भाईजीने बताया भगवान्‌से मैंने कोई प्रार्थना नहीं की। सन् १९२४ के पहले तो अपने लिये सकाम प्रार्थना या जप करनेका काम पड़ा था पर उसके बाद कभी नहीं। सोच–विचारमें थे कि इतनेमें देखते हैं कि सामनेसे दो इक्के आ रहे हैं। इक्के वहीं आकर रुके। एक व्यक्ति मिठाई, फल, पूड़ी, साग आदि लेकर आया और बोला बाबू बालमुकुन्दजीके यहाँ आज प्रसाद था सो भेजा है। अब सारी व्यवस्था देखकर भाईजीको बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। सारा समान उन्हीं इक्कोंमें उस व्यक्तिके साथ अपने एक स्वजनको स्टेशन भेज दिया। गाड़ी १५–२० मिनट लेट आई। श्रीकृष्णकान्त मालवीय और उनके साथियोंने भरपेट पूड़ी, मिठाई, फल खाये। भाईजीने कहा देखिये भगवान् कैसे व्यवस्थाकर देते हैं। यह सामान सुबह बना होगा या दिनमें बना होगा। अपने यहाँ एक घंटे पहले आ जाता तो सब लोग खा लेते और आधे घंटे बाद आता तो भी उनके काम नहीं आता। तार मिलते ही उसी समय पूड़ी भी, साग भी, मिठाई–फल भी और साथमें इक्के भी सब चीजोंकी व्यवस्था भगवान्‌ने ठीक समयपर कर दी। सामान भी इतना कि १०–१२ व्यक्ति भरपेट खा सकें।

अनाथ बालकको आश्रय

सन् १९३१ की बात है। एक दिन एक व्यक्ति दुःखकी स्थितिमें गीताप्रेस आया। उसकी पत्नीका देहान्त हो गया था। उसके १४ सालका

बालक जिसका नाम आनन्द मण्डोलिया और एक बालिका थी ८ सालकी। घरमें और कोई था नहीं जो बच्चोंको सँभाल सके। बच्चोंको अकेला छोड़कर वह आजीविकाके लिये कहीं जा नहीं सकता था। गीताप्रेसकी प्रतिष्ठा उस समय दूर–दूरतक फैल चुकी थी। और कोई आश्रय न देखकर वह गोरखपुर आया और गीताप्रेस जाकर सारी स्थिति बताकर बच्चोंको वहाँ आश्रय देनेकी प्रार्थना की। कार्यकर्ताओंने साफ अस्वीकार कर दिया कि गीताप्रेस कोई धर्मशाला या अनाथालय नहीं है। हम यहाँ बच्चोंको नहीं रख सकते। आप किसी अनाथालयमें भर्ती करा दीजिए। वह बेचारा दुःखी होकर स्टेशन चला गया। भाईजीको जब इस बातका पता लगा तो उन्होंने तत्काल स्टेशन अपना आदमी भेजकर उनको अपने निवास–स्थानपर बुला लिया। उस व्यक्तिने वही प्रार्थना की कि आप कुछ दिनों तक बच्चोंको रख लें तो मैं अपनी आजीविकाका प्रबन्ध कर सकूँ। भाईजीने बड़े प्रेमसे उत्साहपूर्वक दोनों बच्चोंको अपने पास रख लिया। वह व्यक्ति प्रसन्नतासे बच्चोंको छोड़कर चला गया। बच्चे कुछ अधिक चंचल थे। अतः उदण्डता करते रहते थे। गीताप्रेसमें सबके सामने भाईजीने कहा कि क्या गीताप्रेस केवल बड़े–बड़े भक्तोंके चरित्र और पुस्तके छापनेवाली मशीनोंका नाम है क्या ? क्या किसीके दुःखमें सहायता करना हमारा कर्तव्य नहीं है। इसी तरह आगे भी कई बार भाईजीने ऐसे दुःखी–अनाथ व्यक्तियोंको आश्रय दिया।

व्रज–भ्रमण

'श्रीकृष्णांक' की तैयारी करनेके उद्देश्यसे भाईजी अपने परिवार एवं बारह परिकरोंके साथ चैत्र शुक्ल ६ सं० १९८८ (२० मार्च, १९३१) को व्रजयात्राके लिये रवाना होकर अलीगढ़में संकीर्तनमें सम्मिलित होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ तीन दिन निवास करके प्रधान–प्रधान मन्दिरोंके दर्शन किये और फोटो लेनेकी व्यवस्था की। प्रमुख संतोंके दर्शन, वार्तालाप किया। फिर मथुरा आये एवं 'श्रीकृष्णांक' के लिये सामग्री संग्रह करनेकी व्यवस्था की। इसके साथ ही श्रीनन्दगाँव, बरसाना, राधाकुण्ड, कुसुम–सरोवर, गोवर्धन आदि सभी प्रमुख स्थलोंका भ्रमण किया।

लौटते समय काजिमाबादमें 'गीता–ज्ञान–यज्ञ' में सम्मिलित हुए

और श्रीहरिबाबा, श्रीभोलेबाबा, श्रीअच्युतमुनिजी आदि संतोंसे मिले। सत्संगमें भाईजीने नाम-महिमाके सम्बन्धमें विशेष प्रवचन दिया एवं अपने अनुभव भी बताये।

बैशाख शुक्ल ५ सं० १९८८ (२३ अप्रैल, १९३१) को भाईजी ऋषिकेश पहुँचे और वहाँ तीन-चार दिन सत्संगकी मंदाकिनीमें बाढ़ आ गयी। वहाँसे श्रीउड़ियाबाबासे मिलने काजिमाबाद पहुँचे। इस तरह भ्रमण करते हुए ज्येष्ठ कृष्ण ५ सं० १९८८ (७ मई, १९३१) को गोरखपुर पहुँचकर 'श्रीकृष्णांक' के सम्पादनमें व्यस्त हो गये।

स्वामी विशुद्धानन्दजीसे भेंट

स्वामी विशुद्धानन्दजी महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराजके गुरु थे। इनकी उन दिनों अध्यात्मिक जगत्में बड़ी ख्याति थी। भाईजी भी उनसे मिलनेके लिये चैत्र कृष्ण १ सं० १९८८ (२३ मार्च, १९३२) को काशी गये। वे चमत्कार दिखानेके लिये बहुत प्रसिद्ध थे। सत्संगके बाद भाईजीका परिचय हुआ। उन्होंने भाईजीसे कहा—कुछ कहिये। भाईजीने कोई अन्य चमत्कार दिखानेके लिये न कहकर, भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अंग सुगन्धकी अनुभूति और उनके दर्शन करानेके लिये कहा। यह सुनकर 'गंधी बाबा' (वे इसी नामसे प्रसिद्ध थे) हँसे। थोड़ी देरमें कमरा दिव्य-सुगन्धसे भर गया। उपस्थित श्रद्धालुओंने ऐसी दिव्य-सुगन्धका अनुभव कभी नहीं किया था। फिर भाईजीसे बोले—मेरे नेत्रोंकी ओर देखो। भाईजीको उनके नेत्रोंमें श्रीकृष्णके दर्शन होने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—अब इस खेलको बन्द कर दूँ ? भाईजीने हाथ जोड़े और कहा—जैसा आप ठीक समझे। कुछ ही देर बाद नेत्रोंमें श्रीकृष्णके दर्शन बन्द हो गये एवं कमरेकी दिव्य सुगन्ध भी समाप्त हो गयी।

श्रीहरिबाबाके बाँधके उत्सवमें

फाल्गुन कृष्ण ७ सं० १९९० (६ फरवरी, १९३४) को प्रातःकाल सन्त श्रीहरिबाबा अचानक भाईजीके निवास-स्थानपर बिना पूर्व सूचनाके पधारे। उन्होंने आकर बतलाया—बाँधपर कई वर्षोसे होलीपर वृहत्संकीर्तन उत्सव हुआ करता था। परन्तु जैसा लाभ होना चाहिये, वैसा दृष्टिगत न होनेसे तीन-चार वर्षोसे वह उत्सव बन्द कर दिया गया था। जबसे संकीर्तन बन्द

संत श्रीहरिबाबाके साथ

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके साथ

हुआ, तभीसे आस–पासके गाँवोंमें नाना प्रकारके उपद्रव होने लगे। बहुतसे लोग व्याकुल होकर मेरे पास आये और पहले जैसा संकीर्तन–उत्सव प्रतिवर्ष आयोजन करनेकी प्रार्थना करने लगे। फिर उड़िया बाबासे इस विषयमें आज्ञा माँगी तो उन्होंने कहा कि संकीर्तन उत्सव अवश्य होना चाहिये। उसी दिन बाँधपर जाकर मैंने दिनमें बारह घण्टेका अखण्ड संकीर्तन प्रारम्भ करा दिया एवं आगामी फाल्गुन शुक्ल १–१५ तक (१४ फरवरी, १९३४) चौबीस घंटे अखण्ड संकीर्तन करनेका निश्चय हुआ है। अधिक–से–अधिक संत–महात्माओंको इस उत्सवमें पधारनेकी प्रार्थना करनेके लिये मैं प्रयाग होता हुआ यहाँ आपसे और श्रीसेठजीसे प्रार्थना करने आया हूँ। आप अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, अतः पत्रसे प्रार्थना न करके आपकी निश्चित स्वीकृति लेनेके लिये स्वयं आया हूँ। भाईजीने अत्यन्त प्रेमसे उनका आदर सत्कार किया फिर दिनमें उनके साथ श्रीसेठजीके पास जाकर सारी बातें कही। श्रीसेठजीने कहा——अस्वस्थताके कारण मेरा आना तो संदेहास्पद है, पर भाईजी विचार रख लेंगे।

फाल्गुनके शुक्ल १२ सं० १९९० (२६ फरवरी, १९३४) को भाईजी अपने प्रेमीजनों सहित बाँध उत्सवमें सम्मिलित होने गये। अगले दिन ब्रह्ममुहूर्तमें साढ़े चार बजे भाईजी संकीर्तनमें सम्मिलित हुए। हरिबाबा उन्मत्त अवस्थामें खड़े होकर नृत्य करते हुए संकीर्तन करते थे, जिससे सभीको अद्भुत आनन्द मिलता था। वहाँसे भाईजी श्रीउड़ियाबाबा, श्रीनागाबाबा, श्रीशिवानन्दजी, श्रीकृष्णानन्दजी, श्रीभोलेबाबा, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आदि संतोंसे मिले। भाईजी उस उत्सवमें तीन–चार दिन सम्मिलित हुए एवं नाम–जप, कीर्तनकी महिमा पर उनके बड़े प्रभावोत्पादक प्रवचन हुए। चैत्र कृष्ण ३ सं० १९९० (४ मार्च, १९३४) को प्रातः गोरखपुर लौट आये।

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका जन्म आषाढ़ कृष्ण ६ सं० १९५७ (२७ जून, १९००) को हुआ था। इनका परिवार धार्मिक संस्कार सम्पन्न था एवं इन्हें बल्लभ–सम्प्रदायके संस्कार जन्मसे ही प्राप्त हुए।

भक्तिमती श्रीचन्द्रकलादेवी तथा श्रीव्रजलालजी गोस्वामीको इनके माता–पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। सन् १९१६ में हाई स्कूलकी परीक्षा उतीर्ण करके आप वाराणसी चले आये और क्वीन्स कालेजमें

अँग्रेजी, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृतका अध्ययन करने लगे। यहाँ पढ़ते समय महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराजका विशेष सामीप्य और संरक्षण मिला। क्वीन्स कालेजका अध्ययन पूर्ण करके आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९२२ में संस्कृतकी एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। तदुपरान्त कुछ समयके लिये आपने महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीयके निजी सचिवके रूपमें कार्य किया। वाराणसीसे बीकानेर वापस आनेके बाद चार वर्षतक प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर छः वर्षोंतक बीकानेर राज्यके राजनैतिक विभागमें कार्य किया और राज्यके प्रधान दीवान आदरणीय श्रीमन्नू भाई शाहके निजी सचिव रहे।

भगवान्के आदेशसे भाईजी भगवन्नामका प्रचार करते हुए सं० १९८४ में बीकानेर गये। उसी समय गोस्वामीजीने भाईजीके दर्शन किये और पहली भेंटमें ही उनकी ओर अत्यन्त आकर्षित हो गये। इस प्रथम समागमका उनके मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमें कुछ अधिक रहनेकी प्रबल लालसा जागृत हुई। यह लालसा क्रमशः बढ़ती गयी एवं श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी भी इन्हें बराबर भाईजीके पास रहनेकी प्रेरणा देते रहे। उनकी चेष्टासे ये छुट्टी लेकर बैसाख शुक्ला ७ सं० १९८६ (१५ मई, १९२९) को गोरखपुर पधारे। लगभग डेढ़ महीने भाईजीके पास रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। उस समय गोरखपुरमें साधन–समितिका गठन होकर, उसके नियमोंका बड़े उत्साहसे पालन हो रहा था। ये भी उसमें सम्मिलित होकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करने लगे। इस छोटी–सी अवधिमें भाईजीके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़–विचारों एवं अनुभवोंको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर इन्हें प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्वका मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दस–पन्द्रह दिनके बाद ही इन्होंने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोड़कर भाईजीके चरणोंमें ही रहा जाय और शेष जीवन इन्हींकी छत्रछायामें बिताया जाय। इन्होंने अपनी अभिलाषा आग्रहपूर्वक भाईजीके समक्ष रखी। भाईजीने इन्हें कहा कि आपका मन दृढ़ हो एवं पिताजी आज्ञा दें तो आप 'कल्याण' के सम्पादन विभागमें आ सकते हैं।

यद्यपि ऐसे निर्णयको क्रियान्वित करना कठिन होता है, पर दृढ़ रहनेसे भगवत्कृपा सहायता करती ही है। वही हुआ और पौष सं० १९८६

(जनवरी सन् १९३३) में ये बीकानेर राज्यका उच्च–पद छोड़कर, सपत्नीक भाईजीके पास स्थायी–रूपसे रहनेके लिये आ गये।

गोस्वामीजीका सहयोग पाकर भाईजीको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। समाजमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये तथा जन–जीवनमें आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी प्रतिष्ठाके लिये बाबूजी सतत प्रयत्नशील थे और इस लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ानेके लिये अन्य अनेक साधनोंके साथ–साथ सबसे सशक्त सहायिका थी 'कल्याण' मासिक पत्रिका। 'कल्याण' मासिक पत्रिका केवल हिन्दीमें निकलती थी। गोस्वामीजीके शुभागमनसे अब अँग्रेजी भाषामें भी एक मासिक पत्रिका निकलने लगी। इसका नाम था 'कल्याण–कल्पतरु'। 'कल्याण–कल्पतरु' का भी उद्देश्य वही था, जो 'कल्याण' का था, बस, अन्तर केवल भाषाका था। गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत एवं अँग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओंके व्याकरणपर गोस्वामीजीका असाधारण अधिकार था।

'कल्याण–कल्पतरु' का प्रकाशन सन् १९३४ ई० से प्रारम्भ हुआ था। गोस्वामीजी 'कल्याण–कल्पतरु' के प्रधान सम्पादक तो थे ही, 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रिकामें भी भाईजीको सहयोग देने लगे और सन् १९३६ ई० से 'कल्याण' के सहायक सम्पादकके रूपमें उनका नाम छपने लगा। भाईजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके उपरान्त 'कल्याण' के सम्पादनका कार्य–भार गोस्वामीजीपर ही आ गया। अब 'कल्याण' और 'कल्याण–कल्पतरु' दोनों पत्रिकाओंका कार्य गोस्वामीजीको सँभालना पड़ता था। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण' के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए—श्रीरामांक, श्रीविष्णु–अंक और श्रीगणेशांक। सामग्री और सुसज्जाकी दृष्टिसे ये तीनों विशेषांक ठीक वैसे ही थे, जैसा भाईजीके सम्पादकत्वमें अनेक विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें भी 'कल्याण' की गौरवमयी परम्परा और आध्यात्मिक गरिमा अक्षुण्ण रही।

भाईजीके महाप्रस्थानके उपरान्त 'कल्याण' के सम्पादनका भार सँभालनेपर उन्होंने जो निवेदन लिखा, उसमें उनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप देखनेको मिलता है। निवेदनमें उन्होंने लिखा था—"परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण' के सम्पादनका भार मेरे कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें

मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण' का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अन्दर न तो साधनाका बल है, न आध्यात्मिक अनुभव है, न त्याग है, न तप है, न दैवी सम्पदा है, न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है और न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अन्दर सर्वथा अभाव देखता हूँ। 'कल्याण' की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनाधिकारी मानता हूँ। पर परम श्रद्धेय भाईजी जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्तव्य–निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण' के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण' के कार्यको मैं भाईजीके द्वारा ही किया हुआ अनुभव करता हूँ। पद–पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान् कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य हो जाता है। उनकी पद–पदपर सँभालको देखते हुए मनको विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण' से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है और वे 'कल्याण' के हैं, या यों कहें कि वे 'कल्याण' स्वरूप ही हो गये हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनुभव है कि श्रीभाईजी परोक्ष रूपमें आज भी 'कल्याण' को सँभाल रहे हैं और इसी कारण इसका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।"

श्रीरामचरितमानसके बारेमें अब तो यह बात प्रायः कही–सुनी जाती है कि यदि इस ग्रन्थकी रचनाका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको है तो इस ग्रन्थका नगर–नगर, ग्राम–ग्राम पहुँचानेका श्रेय गीताप्रेसके माध्यमसे भाईजीको है। गीताप्रेससे रामचरितमानसको प्रकाशित करनेके पहले भाईजीने मानस पाठका संशोधन गोस्वामीजीसे करवाया। गोस्वामीजीको इस संशोधन–कार्यमें महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला, हिन्दीके विद्वान् श्रीनन्ददुलारेजी बाजपेयीसे। फिर स्वयं भाईजीने मानसका हिन्दीमें अर्थ लिखा। मलीहाबाद स्थित मानसकी प्रति, राजपुर स्थित अयोध्या काण्डकी प्रति, दुलही ग्राम स्थित सुन्दर काण्डकी प्रति श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) स्थित बालकाण्डकी प्रति, गोलाघाट (अयोध्या) स्थित मानसकी प्रति तथा और भी कुछ प्रतियाँ, इन सभी प्रतियोंका तुलनात्मक

अध्ययन करके ही गोस्वामीजीने मानसका पाठ संशुद्ध किया था। आज गीताप्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित हो रहा है, उसे प्रस्तुत किया गोस्वामीजीके अध्ययनशील व्यक्तित्वने ही।

गोस्वामीजी अनुवाद एवं सम्पादनके कार्यमें अधिक व्यस्त रहा करते थे, अतः कई-कई दिनतक वे भाईजीसे मिल नहीं पाते थे। भाईजीके सेवा-परायण नित्य परिकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने गोस्वामीजीसे कहा—आपको दिनमें कम-से-कम एक बार भाईजीके पास जाना चाहिये। न जाने कितने लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलनेके लिये आते थे और आप यहाँ रह करके भी बाबूजीसे नहीं मिलते ?

गोस्वामीजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया—यदि मैं मिलने जाता हूँ तो कम-से-कम आधा घंटा समय लग ही जायगा। इस आधे घंटेका उपयोग यदि मैं उनके बतलाये हुए कार्यको करनेमें लगाऊँ तो कितना सुन्दर हो ? उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य पहले ही पूरा नहीं हो पाता। यदि मैं प्रतिदिन उनके पास जाने लगूँ तो जानेसे उनके कार्यकी ही हानि होगी। मैं अपने मनकी बात कैसे समझाऊँ ? उनका दर्शन और उनका सामीप्य कौन नहीं चाहता ? उनके दर्शन और संभाषणसे मुझे सुख मिलेगा, परंतु इस सुखसे अधिक सुखप्रद है उनकी आज्ञाका पालन। मेरी आन्तरिक चाह है कि उनका कार्य पूर्ण हो। गोस्वामीजीके उत्तरको सुनकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी मौन हो गये।

सन् १९५९ ई० के आस-पास एक बार बाबाने गोस्वामीजीके पास एक सन्देश भिजवाया। इस संदेशको सूचना कहना चाहिये। सूचना यह थी कि बीकानेर नरेश महाराजा श्रीगंगासिंहजीका लीला-प्रवेश हो गया है। जब गोस्वामीजी बीकानेरके प्रशासन-विभागमें कार्य करते थे तो उनका महाराजा श्रीगंगासिंहजीसे निकट सम्पर्क रह चुका था। इस सूचनाको पाकर गोस्वामीजीको आनन्द हुआ, परंतु आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि उनका निधन तो कई वर्ष पहले हो चुका था और श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यमें उनका प्रवेश अब हुआ और यह हुआ तो किस पुण्य अथवा साधना अथवा कृपाके फलस्वरूप हुआ ? गोस्वामीजीको ज्ञात था कि महाराजा श्रीगंगासिंहजी तो राजसी ठाट-बाटके मध्य जीवन व्यतीत करनेवाले मात्र एक श्रेष्ठ हिन्दू नरेश थे। गोस्वामीजीने अपने आश्चर्यको व्यक्त किया तो बाबाने बतलाया कि महाराजा श्रीगंगासिंहजीको

अपनी किसी साधनाके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त नहीं हुई, अपितु यह तो वस्तुतः श्रीपोद्दार महाराजसे होनेवाले सम्पर्क एवं सम्बन्धका सुन्दर परिणाम था। इस तथ्यको सुनकर गोस्वामीजीकी भाईजीके प्रति आन्तरिक श्रद्धा–भावना कितनी पुष्ट और प्रफुल्ल हुई होगी, यह कल्पनासे परेकी बात है।

गोस्वामीजी गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण' और 'कल्याण–कल्पतरु' के सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे, केवल सेवा–भावसे भावित होकर। द्रव्यार्जनका उद्देश्य तो रंचमात्र भी नहीं था। इसके बाद भी गीताप्रेसकी ओरसे जीवन–निर्वाहके लिये यत्किंचित् मिलता ही था।

गोस्वामीजीका कण्ठ बड़ा सुरीला था। वृद्धावस्थामें भी उनके गायनका लालित्य बना रहा। गीतावाटिकामें प्रायः प्रतिदिन ही बाबूजीका प्रवचन एक घंटे प्रातःकाल हुआ करता था। बादके वर्षोमें तो गोस्वामीजीको समय कम मिला करता था, परंतु गीतावाटिकाके आरम्भिक वर्षोमें इस प्रवचनके पूर्व गोस्वामीजी एक भक्ति–पदका गायन किया करते थे। जब तीर्थ–यात्रा–ट्रेन गयी थी, तब उस ट्रेनमें भाईजीके साथ गोस्वामीजी भी गये थे। जहाँ–जहाँ ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ–वहाँ बाबूजीका स्वागत होता था और उपस्थित भक्तोंके मध्य भाईजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। वहाँ भी गोस्वामीजी प्रवचनके पूर्व पद गाया करते थे। गोस्वामीजीके सामने प्रलोभन कम नहीं आये। सबसे बड़ा प्रलोभन था शंकराचार्य–पदका। श्रीजगन्नाथपुरी स्थित श्रीगोवर्धनपीठके पीठाधिपति अनन्त श्रीविभूषित शकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थ जी महाराजने गोस्वामीजीकी साधुता और विद्वत्तासे प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करनेकी अभिलाषा व्यक्त की।

शंकराचार्य–पदका प्रस्ताव ज्यों ही सामने आया, त्यों ही गोस्वामीजीके अन्तरमें धर्म–संकटकी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अपने धर्माचार्य हैं, वे नित्य परम वन्दनीय हैं, ऐसे गौरवपूर्ण शंकराचार्य–पदके लिये चयन उनका कृपा–प्रसाद ही है, उनका संकेत मात्र ही आदेशके समकक्ष है और रुचि देखकर इस प्रस्तावको तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये था, परंतु गोस्वामीजीने इस प्रस्तावको स्वीकार करनेंमें अपनी विवशता व्यक्त कर दी।

गोस्वामीजीकी सुदृढ़ धारणा थी कि शंकराचार्य–पदके मूलमें जो आदि–विभूति हैं, उन आदि–शंकराचार्यजी द्वारा धर्म–संस्थापनका जो महान् कार्य उस समय हुआ था, वही महान् कार्य इस समय अब भाईजीके

द्वारा हो रहा है। धर्मकी ग्लानिको दूर करनेके लिये एवं सामाजिक प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेके लिये जैसा पावन कार्य भाईजीके द्वारा हो रहा है; इतना ही नहीं, उनके द्वारा जैसे विशाल श्रेष्ठ साहित्यकी सृष्टि हुई है तथा उनकी जैसी महाभावमयी भागवती स्थिति है, उन सबको देखकर यही लगता है कि शंकराचार्य–रामानुजाचार्य जैसे धर्म–संस्थापक आचार्योंकी, मनु–याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार मुनियोंकी, तुलसीदास–सूरदास जैसे महाभक्त कवियोंकी एवं चैतन्यमहाप्रभु–वल्लभाचार्य जैसे रसज्ञ महान् विभूतियोंकी परम्परामें भाईजी भी परिगण्य हैं।

बाबा गोस्वामीजीकी आस्थाओंकी बड़ी सराहना किया करते थे, इस सम्बन्धमें एक बड़ा सरस प्रसंग षोडश गीतको लेकर है। षोडशगीतके दसवें पदकी छठवीं पंक्तिमें नित्य–निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी उक्ति है—

आठों पहर बसे रहते तुम मम मन–मन्दिरमें भगवान।

बाबाके मनमें ऐसा भाव स्फुरित हुआ कि इस पंक्तिमें 'भगवान्' शब्दके स्थानपर कोई अन्य शब्द अर्थात् ऐश्वर्य–भावसे रहित प्रेमिल शब्द होता तो पदकी भावमयता और भी सरस हो जाती। बाबाकी तथा भाईजी, दोनोंकी ही स्पष्ट मान्यता है कि नित्य–निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य–निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण साक्षात् भगवती–भगवान् हैं, पंरतु परम प्रेमके मधुर राज्यमें उनकी यह भगवत्ता प्रसुप्त रहती है। इन परस्पर नित्य परम प्रेमी–प्रेमास्पद युगलका जो परम मधुर प्रेम–सिन्धु है, उस सिन्धुके अतल–तलमें उनकी भगवत्ता छिपी रहती है। उस भगवान्की अभिव्यक्ति क्वचित् ही होती है और होती है तभी, जब कभी किसी लीलाको सम्पन्न करा देनेमें उस भगवान्की आवश्यकता हो। कभी–कभी लीलाको सम्पन्न करा देनेके लिये ही ऐश्वर्य शक्ति भगवत्ताको किंचित् सेवा करनेका अवसर मिल जाता है, अन्यथा वह भगवत्ता सर्वथा–सर्वथा प्रसुप्त–प्रच्छन्न रहती है। षोडश गीत सच्चिन्मय प्रेम–राज्यकी परम सरस वस्तु है, अतः बाबाने अपनी भावनाको समझाते हुए भाईजीसे कहा—इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर यदि कोई अन्य सरस शब्द प्रयुक्त हो तो इस पदकी सरसता और भी अधिक समृद्ध हो जायेगी।

भाईजीने कहा—आप जैसा कहें, जो भी कहें, मैं वैसा ही कर दूँगा।

बाबाके मनमें भी उस समय जो पंक्ति स्फुरित हुई, वही पंक्ति

बाबाने बाबूजीको बता दी—'आठों पहर सरसते रहते तुम मन सरवरमें रसवान'।

भाईजीने बाबाके सुझावकी बड़ी सराहना की और यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली। पदमें पुरानी पंक्तिके स्थानपर इस नवीन पंक्तिको रख दिया। भाईजी इस परिवर्तनसे प्रसन्न थे।

फिर यह बात बाबाने गोस्वामीजीको बतलायी। गोस्वामीजीने विनम्र शब्दोंमें कहा—बाबा ! क्या यह परिवर्तन आवश्यक है ?

बाबाने गोस्वामीजीको अपनी भावना बतलायी, जिस प्रकार उन्होंने भाईजीको बतलाया था। यह बात नहीं कि गोस्वामीजी इस भाव-गरिमाको समझ नहीं रहे हों। ऐसी समझ होनेके बाद भी अत्यधिक दैन्यके साथ गोस्वामीजी अपने मनकी बात कहने लगे—बाबा ! मैं आपकी मान्यता तो सर्वांशमें स्वीकार करता हूँ, पर मेरे मनमें भी एक छोटी बात है। अपनी आस्थाके अनुसार मैं षोडश गीतको और उसकी शब्दावलीको साधारण स्तरकी वस्तु नहीं समझता। ये पद मात्र काव्य-रचना नहीं हैं। श्रीभाईजीको भाव-समाधिकी स्थितिमें जैसी लीला और जैसे उद्गार उनके दृष्टि-पथपर एवं श्रुति-पथपर आविर्भूत हुए, वे ही किसी अचिन्त्य कृपासे इन पदोंकी शब्दावलीकी सीमामें सिमट आये हैं! षोडश गीतका सम्बन्ध उस भाव-समाधिकी स्थितिसे होनेके कारण इनमें किसी प्रकारका संशोधन-परिवर्तन मुझे जँच नहीं रहा है। मेरे विचारसे मूल पंक्तिको ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहिये।

बाबाको गोस्वामीजीके विचार बड़े प्रिय लगे और इन विचारोंको बाबाने हृदयसे सम्मान दिया। तदुपरान्त उस दसवें पदमें किसी भी प्रकारके परिवर्तनकी बात समाप्त हो गयी। हाँ, बाबूजीने इतना अवश्य कर दिया कि बाबाद्वारा बतलायी गयी पंक्तिको 'एक दूसरा पाठ' के रूपमें स्वीकार कर लिया। यह दूसरा पाठ भी षोडश गीतके दसवें पदके अन्तमें छपा रहता है।

गोस्वामीजीकी धोती-कुर्तेकी साधारण पोशाक एवं उनके सहज व्यवहारको देखकर कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि ये संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजीके प्रकाण्ड पंडित हैं। इनका सबके साथ सरल एवं निष्कपट व्यवहार था। ऐसा लगता था कि भाईजीके सुमधुर व्यवहारकी छाया इनपर भी पड़ी थी। ये आवश्यकतासे अधिक नहीं बोलते थे, पर मिलनेपर भी सभीसे सुख-दुःखकी बात अवश्य पूछते थे। स्वयंकी प्रशंसा इनके मुँहसे कभी नहीं सुनी गयी बल्कि इनके सामने कोई उनकी प्रशंसा

करता तो संकोचमें पड़ जाते एवं बड़ी विनम्रतासे उसका विरोध कर देते। इनके निकट सम्पर्कमें आनेवाले इनके व्यवहारसे प्रभावित हो जाते थे।

अपने जीवनकी अन्तिम अवधिमें गोस्वामीजी पाँच-छः मास बहुत अधिक अस्वस्थ रहे। गीतावाटिकाके अति समीप एक मकानमें गोस्वामीजी रहा करते थे। उनकी व्याधि और पीड़ाको देखकर बाबा उन्हें गीतावाटिका ले आये। गीतावाटिकाके जिस भवनमें भाईजी रहा करते थे, उसी भवनके एक कमरेमें गोस्वामीजीको रखा गया। गोस्वामीजीकी चिकित्सा एवं सँभाल पूर्ण तत्परताके साथ होने लगी। रुग्ण शय्यापर पड़े हुए गोस्वामीजीका शरीर अत्यधिक कष्टसे पीड़ित था। रुग्ण गोस्वामीजीकी चिकित्सा और परिचर्यामें जितना समय और जैसा ध्यान बाबाने दिया, उसको देखकर विस्मय होता है। इस कष्टकी स्थितिमें भी गोस्वामीजीके अधरोंपर एक ही वाक्य था—नाथ ! तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

गोस्वामीजीकी भीषण रुग्णताको देखकर बाबाने कहना आरम्भ कर दिया था कि अब चलाचलीका मेला है और गोस्वामीजी अधिक नहीं रह पायेंगे। एक बार परिचर्या-रत व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि गोस्वामीजी सम्भवतः करवट बदलना चाहते हैं अथवा बोलकर कुछ कहना चाहते हैं। उन व्यक्तियोंने पूछा—आप क्या चाहते हैं ?

उनसे गोस्वामीजीने कहा—मैं कुछ नहीं चाहूँ, बस, यही चाहता हूँ।

असह्य वेदनाके होते हुए भी गोस्वामीजीने यह नहीं कहा कि उन्हें औषधि अथवा उपचारकी आवश्यकता है। कष्टकी अधिकताको देखकर यदि कोई सहानुभूति दिखलाता तो गोस्वामीजी यही कहा करते थे—प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। इस रुग्णतामें भी प्रभुका मंगल स्पर्श क्रियाशील है और उसीका अनुभव होता रहता है।

गोस्वामीजीने एक स्थानपर स्वयं लिखा है—मेरा श्रीभाईजीके साथ चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क, मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने जन्मार्जित सुकृतोंके फलस्वरूप उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबल धारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी

बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक–से भी अनुकूल आचरणकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं, मेरे पथ–प्रदर्शक, जीवन–सर्वस्व थे और हैं। उनकी स्मृति मात्रसे हृदय भर आता है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जाय, यही अभिलाषा है।

गोस्वामीजी रुग्ण शय्यापर पड़े–पड़े ही कमरेकी खिड़कीसे जब–तब भाईजीकी पावन समाधिका दर्शन कर लिया करते थे। यह समाधि इत्र–मिश्रित–पीत–मिट्टीसे पुती रहती है। महाप्रस्थान करनेके कुछ दिनों पूर्व गोस्वामीजीने समीपस्थ स्वजनोंके समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा––मेरे जीवनधन श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर जो पीली मिट्टी पुती हुई है, वह मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके पीत दुकूलका प्रतीक है तथा मेरे प्राणवल्लभकी पावन स्मृतिको सतत सजीव बनाये रहती है। मेरे शवका अन्तिम स्नान उस पवित्र मिट्टीको धोकर एकत्रित किये गये जलसे ही करवाया जाये।

सं० २०३१ वि० बैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अनन्त चतुर्दशी तिथि (५ मई १९७४) के दिन गोस्वामीजीके जीवनका पटाक्षेप हो गया। गोस्वामीजी इस भूतलपर लगभग ७४ वर्ष रहे।

इनके कोई सन्तान नहीं थी। कुछ समय बाद इनकी धर्मपत्नीका बीकानेरमें देहान्त हो गया।

'कल्याण–कल्पतरु' का प्रवर्तन

भाईजी बहुत दिनोंसे इस आवश्यकताका अनुभव कर रहे थे कि 'कल्याण' की तरह ही एक मासिक–पत्र अंग्रेजी भाषामें भी निकाला जाय, जिससे अंग्रेजी–भाषा–भाषी जनता एवं विदेशोंमें रहनेवाले लोगोंको 'कल्याण' का संदेश सुगमतासे प्राप्त हो सके। इस गुरुतर कार्यको सँभालनेके लिये भाववाले विद्वान् व्यक्तिकी आवश्यकता थी। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके आनेसे उस कमीकी पूर्ति हो गयी और अंग्रेजीमें 'कल्याण–कल्पतरु' निकालनेका निर्णय ले लिया गया। इसका प्रकाशन सं० १९९१ (जनवरी सन् १९३३) से शुभारम्भ हुआ। भाईजी इसके कंट्रोलिंग एडीटर रहे और सम्पादक श्रीगोस्वामीजी। कुछ समयतक इसके संयुक्त सम्पादक श्रीकृष्णदास बंगाली रहे जो श्रीसतीशचन्द्र

बनर्जीके शिष्य थे। विदेशोंमें इस पत्रकी अच्छी माँग रही और लोग इससे बहुत लाभान्वित हुए। इसके माध्यमसे श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकि राभायण, रामचरितमानस आदि ग्रन्थोंका प्रामाणिक अनुवाद अंग्रेजी भाषामें प्रस्तुत किया गया। अनेक कठिनाइयोंके कारण 'कल्याण–कल्पतरु' के प्रकाशनको कुछ मासके लिये स्थगित करनेके अवसर दो–तीन बार आये, किन्तु भगवान्‌की कृपासे कठिनाइयाँ दूर हो गयीं एवं प्रकाशन चलता रहा। परन्तु श्रीगोस्वामीजीके जानेके बाद यह बन्द हो गया।

श्रीशुकदेवजीकी विचित्र ढंगसे प्राणरक्षा

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा।।

गीताप्रेसकी नींवके एक पत्थर श्रीशुकदेवजी अग्रवाल थे। जिन्होंने जीवनभर गीताप्रेसकी सेवा की। पूज्य श्रीसेठजी एवं भाईजीमें उनकी अद्‌भुत निष्ठा एवं श्रद्धा थी। यह घटना सं० १९९१ (सन् १९३४ ई०) ज्येष्ठ कृष्ण पक्षकी है। श्रीशुकदेवजी स्वर्गाश्रमसे गोरखपुर आ रहे थे। उनके साथमें भाईजीकी माँजी–पत्नी आदि थी। भाईजी उस समय गोरखपुरमें थे। श्रीशुकदेवजीके मनमें अत्यन्त उत्कण्ठा थी कि किसी प्रकार भाईजीके जल्दी दर्शन हो जायँ, उनसे मिल लूँ। खलीलाबाद स्टेशन आनेसे पहले ही वे मानसिक संध्या एवं ध्यान करके निवृत्त हो गये थे। अभी तो खलीलाबाद स्टेशन भी दूर था। गाड़ी चल रही थी। उन्हें अपनी उत्कण्ठावश ऐसा मालूम दिया कि गोरखपुर स्टेशन आ गया है। उन्होंने डब्बेका दरवाजा खोला और गाड़ीसे उतरने लगे। दरवाजेके पास लगा हुआ लोहेका हैंडल उनके हाथमें था और वे चलती गाड़ीमें डब्बेके बाहर लटकने लगे। गाड़ी चल रही थी। कुछ देर तो वे अचेत रहे परंतु बादमें उन्हें होश आया और सोचा अब मैं मृत्युके निकट हूँ। इतनेमें ही उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि सशरीर भाईजी उन्हें थामें हुए हैं और खलीलाबाद स्टेशन आते ही उन्हें हाथ पकड़कर उतार रहे हैं और स्टेशनपर खड़ा कर रहे हैं। उसके बाद भाईजी दिखने बन्द हो गये। खलीलाबाद स्टेशनसे गोरखपुर लगभग बीस मील दूर है। भाईजी गोरखपुर स्टेशनपर थे। परंतु भाईजीने श्रीशुकदेवजीकी रक्षा की। गोरखपुर पहुँचनेपर उन्होंने भाईजीको यह घटना सुनायी। परंतु भाईजीने इसकी अनभिज्ञता प्रकट की।

श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी (स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी) का गोरखपुरमें आगमन

'कल्याण' में प्रकाशित लेखोंसे प्रभावित होकर श्रीशान्तनुबिहारी द्विवेदी ज्येष्ठ सं० १९९१ (जून १९३४) में पहली बार गोरखपुर आये। 'कल्याण' के तीसरे वर्षके विशेषांक 'भक्तांक' को पढ़कर इनकी भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई। मिलनेकी उत्कंठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये–पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे थे, वैसे ही चल पड़े। दोहरीघाट स्टेशन तक रेलसे आये और वहाँसे गोरखपुर करीब चालीस मील पैदल चलकर। भाईजीसे मिलनेपर इन्होंने पहला प्रश्न किया––भगवान्‌में प्रेम कैसे हो ? उत्तरमें श्रीभाईजीके नेत्रोंसे अश्रु टपकने लगे एवं उन्हें गले लगाकर बोले––'उमा राम सुभाउ जेंहि जाना, ताहि भजन तजि भाव न आना।'

भाईजीके स्नेहने इन्हें आकर्षित कर लिया। एक बार तो तीन–चार दिन रहकर चले गये। दूसरी बार संकीर्तनके समय आषाढ़ शुक्ल ११ सं० १९९३ (३० जून, १९३६) को गोरखपुर आये। भाईजीके निकट रहनेकी प्रबल इच्छा होनेसे ये गोरखपुरमें सम्पादकीय विभागमें कार्य करने लगे, साथ ही साधन–भजनमें विशेष रुचि लेने लगे। सम्पादन कार्य और श्रीभागवतके हिन्दी अनुवादके कार्यमें इनका अच्छा सहयोग रहा। भाईजीमें विशेष श्रद्धा रखते थे। कालान्तरमें इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया एवं स्वामी अखण्डानन्दजीके नामसे विख्यात हुए।

शरद–पूर्णिमाको बेहोश अवस्थामें मंत्र–दान

श्रीभाईजीकी लगातार यह चेष्टा रही कि मेरे पास रहनेवालोंकी भी आध्यात्मिक उन्नति हो। इसके लिये वे समय–समयपर विशेष साधन–अनुष्ठान आदिका आयोजन करते रहते थे। आश्विन सं० १९९० (सन् १९३४) में निकटस्थ प्रेमीजनोंकी अतिउत्कण्ठा देखकर भाईजीने बहुत कड़े नियम बनाकर रात्रिके समय कीर्तन–मंडल बनाकर संकीर्तनका आयोजन किया। यह आयोजन पूरे समय साधकोंके बहुत ही उत्साहके कारण बड़े अच्छे ढंगसे सम्पन्न हुआ जिसमें कुछ लोगोंको विशेष अनुभूतियाँ भी हुई।

अगले वर्ष आश्विन सं० १९९१ (सन् १९३५) में भाईजीने पुनः रात्रिमें संकीर्तनका आयोजन किया। संकीर्तनके मध्य ही भाईजी पुनः कुछ ऐसे शब्द बोल देते जिससे सबका उत्साह बढ़ जाता। पूरे आश्विन मास पद–संकीर्तन

चलते रहे। शरद–पूर्णिमाको रात्रिके समय सबके मनमें बड़ा उत्साह था। पद–संकीर्तनके बाद भाईजीने रासपंचाध्यायीके अनुसार मधुर वर्णन करना प्रारम्भ किया। श्रीभगवान्‌के वंशी–वादनको सुनकर गोपियोंके अपने–अपने घरोंसे प्रस्थानका वर्णन बड़े ही सुमधुर ढंगसे करते–करते भाईजी गद्‌गद हो गये और बोलना बंद करके संकीर्तन प्रारम्भ किया। थोड़ी देर बाद पुनः प्रकृतिस्थ होकर भाईजी बोलने लगे——श्रीभगवान्‌ने स्त्रियोंके धर्म बताये, लौटनेको कहा, गोपियाँ निराश होने लगी, परीक्षाके बाद रासनृत्यका वर्णन करते–करते भाईजी पुनः गद्‌गद हो गये। फिर संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। थोड़ी देर बाद भाईजी कठिनतासे कहने लगे——श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये तब गोपियाँ बड़ी कातर प्रार्थना करने लगी। फिर भगवान् प्रकट हुए ऐसा कहते–कहते भाईजी मौन हो गये। भाईजी और सभी लोग खड़े होकर नृत्य करते हुए संकीर्तन करने लगे। भाईजी बड़ा ही भाव–पूर्ण नृत्य कर रहे थे पर नृत्य करते–करते ही बेहोश होकर गिर पड़े। बहुत देर बाद संकीर्तन बन्द हुआ। सब लोग बैठ गये। भाईजीके सामने रामजीदासजी बाजोरिया बैठे थे, उन्होंने कहा——हम लोगोंको भी दर्शन होने चाहिये। भाईजीने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि वे अभीतक इस राज्यमें आये ही नहीं थे। उन्होंने कई बार कहा तब भाईजी बोले सब लोग चले गये। उन्होंने फिर पूछा कौन–कौन चले गये। भाईजी बोले——सब लोग चले गये। केवल हम लोग ही रह गये हैं। पुनः पूछा हम लोग कौन कौन ? भाईजी बोले——केवल दो थे एक श्रीविशाखाजी और एक मैं। रामजीदासजी कुछ समझे नहीं तो फिर पूछा दो कौन कौन थे ? भाईजी खूब अट्टहासपूर्वक हँसने लगे। थोड़ी देर बाद रामजीदासजीने पुनः दर्शन करानेकी प्रार्थना की। तब भाईजी बोले——कौन चाहता है दर्शन करना ? कोई तो यहाँ तमाशा देख रहे हैं, कोई ढोंग या पाखण्ड करते है। श्रीराधाकृष्णपर विश्वास करो। यदि दर्शन चाहते हो तो "ॐ क्लीं श्रीराधा कृष्णाभ्याम् नमः" इस मन्त्रका ब्रह्मचर्यपूर्वक एक वर्षतक प्रतिदिन तीन हजार जप करो। मोहनलालजीने पूछा——ललिताजी नहीं थी क्या ? इसपर भाईजीने बडे जोरसे पूछा——कौन है ? इसके थोड़ी देर बाद भाईजी होशमें आ गये। तब उन्होंने लोगोंसे पूछा कि क्या हुआ ? किसीने मन्त्रके सम्बन्धमें पूछ लिया। तब भाईजी बोले कैसा मन्त्र ? मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं क्या कह गया ? फिर सब लोग खीरका प्रसाद पाने लगे। थोड़ी देर बाद भाईजीने बजरंगलालजी बजाजसे प्रेमसे आग्रह करके पूछा कि मैं तो बहुत सीधे ढंगसे पूछ रहा हूँ

कि जबसे मैंने संकीर्तनमें पहले बोलना बन्द किया तबसे अबतक क्या हुआ, मुझे कुछ भी मालूम नहीं। मेरे द्वारा कोई प्रमाद तो नहीं हो गया। बीचमें किसने प्रश्न किया, मैंने क्या उत्तर दिया मुझे कुछ भी पता नहीं।

इसके पश्चात् तो भाईजी बहुत ही सावधान हो गये। न तो भावपूर्वक आगे–आगे बोलकर संकीर्तन कराया न ऐसी बातें कही जिससे भावोद्दीपन हो जाय।

कुछ दिनों बाद मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें भाईजी चूरू ऋषिकुल उत्सवमें सम्मिलित होने गये। वहाँसे कुछ लोगोंके साथ बीकानेर गये। वहाँ श्रीगम्भीर चन्दजी दुजारीके घरपर भोजन करके वहीं प्रेमीजनोंके साथ एकान्तमें बातें करने लगे। उस समय श्रीभाईजीके अतिरिक्त श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीशुकदेवजी, पं० गोवर्धनजी, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी आदि थे। श्रीदुजारीजीने कहा आज बहुत दिनों बाद ऐसा सुअवसर मिला है। इसलिये शरद–पूर्णिमाकी तरह मधुर–प्रेमकी बातें कृपापूर्वक बताइये।

श्रीभाईजीने कहा––मुझे तो उस दिनकी बातें कुछ भी याद नहीं हैं। श्रीगोस्वामीजी बोले––आप तो उस दिन बाह्य ज्ञान शून्य हो गये थे इसलिये आपको वे बातें कैसे याद रहेंगी। पर हम लोगोंको अनुभव कराइये। श्रीभाईजीने कहा––देखिये आप लोग सब अपने ही हैं इसलिये मैं अपनी स्थिति स्पष्ट करता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप लोगोंसे मुझे अधिक वस्तु प्राप्त है। किन्तु जो वस्तु मुझे प्राप्त है वह मैं किसी दूसरेको प्राप्त नहीं करा सकता क्योंकि वैसी मेरी शक्ति नहीं है। यह मेरी इच्छा रहती है कि मेरे साथियोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाय। किन्तु मैं किसीको प्रेम प्राप्त करा दूँ ऐसी मुझमें योग्यता नहीं है। एक व्यक्तिके लिये मैंने चेष्टा की थी किन्तु उसका फल नहीं मिला क्योंकि उनके द्वारा इसी जन्ममें कुछ उग्र पाप बन गया था, उस प्रतिबन्धकके कारण लाभ नहीं हुआ।

स्वप्नमें भाईजी द्वारा लिखित पुस्तक–प्राप्ति

नागपुरके पास किसी गाँवमें एक सज्जन, श्रीदेशपाण्डेजीको रातमें स्वप्नमें एक महात्माके दर्शन हुए, जिनकी आकृति श्रीशिवजी जैसी थी। उन्होंने स्वप्नमें ही श्रीदेशपाण्डेको भाईजी द्वारा लिखित पुस्तक "साधन–पथ"

दी। जागनेपर वह पुस्तक उन्हें बिछावनपर मिली तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। इस घटनाका विवरण देकर उन्होंने भाईजीको पत्र लिखा उस पत्रको भाईजीने नष्ट कर दिया। भाईजीने जो उत्तर भेजा वह नीचे दिया जा रहा है—

श्रीहरिः

गोरखपुर, बैसाख कृष्ण ८, सं० १९९२

श्रीदेशपाण्डेजी,

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र मिला। आपके पत्रमें लिखी बात यदि सत्य है तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इससे मैं आपके लेखकी सत्यतामें संदेह करता हूँ, ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ, कि मुझे इस सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं है। आपका यह पत्र मिलनेसे पूर्व मैं इस सम्बन्धमें कुछ नहीं जानता था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझमें कोई भी सिद्धि नहीं है। "साधन–पथ" नामक पुस्तक स्वप्नमें आपको किसी महात्माने दी और जागनेपर वह आपके बिछावनपर मिली, यह आपकी ही श्रद्धाका फल होगा। वे महात्मा कौन थे, मैं कुछ भी नहीं जानता। इसमें क्या रहस्य है, मुझे कुछ भी पता नहीं है। आप कृपया अवश्य लिखिये कि उन महात्माने आपको और कुछ कहा या नहीं, कहा तो क्या कहा ? आपने जो उनकी आकृति लिखी, वह तो भगवान् शिवकी–सी मालूम होती है। आप भाग्यवान् हैं, जो स्वप्नमें महात्माने आपको दर्शन दिया।

"साधन–पथ" में जो कुछ लिखा गया है, सो सब शास्त्रोंके आधारपर ही लिखा गया है। मेरा उसमें क्या है ? देखता हूँ तो मुझमें वे बातें सब नहीं मिलती। अतएव मैं आपको क्या उपदेश दूँ ? उपदेश देनेका तो मेरा अधिकार भी नहीं है। "साधन–पथ" पढ़नेसे आपको शान्ति मिलती है, इसको आप महात्माका प्रसाद समझिये, मेरा कुछ भी न समझिये। आप साधन करके भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं, यह बड़े आनन्दकी बात है।

आपका,

हनुमानप्रसाद पोद्दार

अंग्रेजभक्तको दर्शन

"कल्याण" एवं "कल्याण–कल्पतरू" के द्वारा कितने

विदेश–वासियोंको अध्यात्मका मार्ग–दर्शन मिला इसकी गणना करना सम्भव नहीं है। इसकी एक झलक अंग्रेज कृष्णभक्त श्रीराधाकृष्ण–प्रेम–भिखारी (रोनाल्ड निक्सन) के निम्नलिखित पत्र एवं उत्तरसे मिल सकेगी––

श्रद्धेय सम्पादकजी, १७–१–३५

करीब ११ वर्षका "हृषिकेश" नामका साँवरे रंगका परम सुन्दर बालक आज लगभग १२ बजे दोपहरको आया। उस समय यह श्रीराधाकृष्ण–प्रेम–भिखारी पौष मासके "कल्याण" भाग ६ संख्या ६ को बड़े ध्यान और प्रेमसे पढ़ रहा था। बड़ी नम्रता–पूर्वक उस बालकने इस भिखारीसे एक छोटी ताबीज साइजकी गीता माँगी और कहा कि "गीता अध्याय ६ के २२ वें श्लोकको पढ़ा दीजिये एवं समझा दीजिये।" ज्यों ही यह भिखारी **"अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्"** पढ़ने लगा, त्यों ही वह कहने लगा कि "गीता भगवान्‌का एक स्वरूप है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।" इस भिखारीने हृषिकेशसे पूछा––"भाई, तुम कहाँ रहते हो और क्या करते हो ?" उसने प्रेम तथा आनन्दाश्रुओं सहित बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया, मैं तो "कल्याण" में रहकर "कल्याण" द्वारा सब प्राणियोंकी चिन्ता किया करता हूँ। भक्त ही मेरे चिन्तामणि हैं। भगवान्, भक्त और भागवत––तीनों एक ही हैं।" तब इस भिखारीने उनसे पूछा, "भाई, तुम्हारा घर कहाँ है ?" उन्होंने धीमी स्वरमाधुरीमें कहा, "मेरा निवास–स्थान वृन्दावन, सेवाकुंजमें है। वहाँके श्रीराधाकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं।" इतना सुनकर उन्हें कुछ जलपान करानेकी मेरी इच्छा हुई। तुरन्त यह भिखारी अन्तरंग–विभागमें जलपान लानेके लिये गया। लौटकर देखा––हृषिकेश कहीं चले गये हैं। अनुमानतः ५ मिनटका समय लगा होगा। इस भिखारीने बहुत चेष्टा की और स्वयं ४ मील तक दौड़ा गया, परन्तु उनका कहीं कुछ पता नहीं चला।

जब इस भिखारीसे हृषिकेशका साक्षात्कार हुआ, तब उस स्थानपर संयोगवश कोई नहीं था। बस, इतना आप कृपया सूचित कर दें कि "हृषिकेश" नामक कोई बालक आपके कार्यालयमें कार्य करता है क्या, वह सेवाकुंज, वृन्दावनमें रहता है ? इस कृपाके लिये यह भिखारी आपका अत्यन्त कृतज्ञ होगा।

आपका विनीत शरणागत
राधाकृष्ण प्रेम–भिखारी

भाईजी द्वारा "श्रीराधाकृष्ण–प्रेम–भिखारी" को लिखा गया उत्तर

गोरखपुर दिनांक २०–१–३५

सम्मान्य श्रीराधाकृष्ण–प्रेमभिखारीजी,

सादर हरिस्मरण। आपका तारीख १७–१–३५ का पत्र मिला। "कल्याण" में हृषिकेश नामक कोई परम सुन्दर बालक नहीं रहता। सेवाकुंज–बिहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वत्र रहते ही हैं। इसलिये "कल्याण"—कार्यालयमें भी जरूर रहते हैं। "कल्याण" में विशेषरूपसे रहते हों तो वे जानें। हमलोगोंको तो कभी उन्होंने ब्राह्मण–बालकके रूपमें दर्शन दिया नहीं। सचमुच वे हृषिकेश आपको प्रेम–भिक्षा देनेके लिये यदि आपके समीप पधारे हों तो आप बड़े भाग्यवान् हैं। आपने यह भूल अवश्य की, जो उनको पकड़ नहीं लिया और अपने साथ ही जलपान कराने नहीं ले गये। उन्होंने आपको "हृषिकेश" नाम कब और कैसे बतलाया, लिखनेकी कृपा कीजियेगा।

आपका

हनुमानप्रसाद पोद्दार

स्वप्नमें श्रीभाईजीसे उपदेश लेनेका आदेश

६–५–३५

श्रीयुत् सम्पादकजीको कृष्णकुमारीका "ॐ नमो कृष्णाय" ज्ञात हो। मुझे ता० २–५–१९३५ को एक स्वप्न हुआ। मैंने स्वप्नमें देखा—भगवान् वृन्दावनविहारी आज्ञा दे रहे हैं कि "मुझे पानेके लिये और मुझमें प्रेम होनेके लिये हनुमानप्रसादसे उपदेश लो।

"जात पाँत पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।।"

बस इतना ही मैंने सुना कि मेरी आँखें खुल गयी। रातके करीब दो बजे थे। मैंने सोचा—"हनुमानप्रसाद" किसका नाम है ? यहाँपर तो मैंने किसीका नाम "हनुमानप्रसाद" नहीं सुना। यही सोचते–सोचते निद्रा आ गयी और पुनः मुझे सुनायी पड़ा कि "तुझे भ्रम हो गया है कि कौन हनुमानप्रसाद है। अरे, वही "हनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण—सम्पादक, गोरखपुर।" बस फिर क्या था। मुझे परम आनन्द हुआ। अब आपसे मेरी बार–बार यही प्रार्थना है कि अपनी पुत्री समझकर समय–समयपर आप मुझे उपदेश देते रहिये। भूल–चूक क्षमा कीजिये।

इस पत्रके उत्तरमें पोद्दारजीने जो पत्र लिखा, उसे भी नीचे दिया जा रहा है—

ज्येष्ठ सुदी १२, सं० १९९२, गोरखपुर

प्रिय बहन,

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र आये बहुत दिन हो गये। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका, इसलिये आप क्षमा करें। स्वप्नकी घटना ज्ञात हुई। जिनको स्वप्नमें श्रीवृन्दावनबिहारीकी वाणी सुननेको मिलती है, वे सर्वथा धन्य हैं। मेरा तो यह निवेदन है कि आप श्रीवृन्दावनबिहारीसे ही उनसे साक्षात् मिलनेका उपाय पूछिये। उनसे प्रार्थना कीजिये कि किसी दूसरेका नाम बतलाकर क्यों छलते हैं ? मेरा तो यह विश्वास है कि यदि आपकी प्रार्थनामें करुणा और उत्कट इच्छा होगी तो वे स्वयं मिलनेका उपाय आपको बतला सकते हैं। भगवान् श्यामसुन्दर इतने दयालु हैं कि वे अपने बँधनेकी रस्सी आप ही दे देते हैं और आकर स्वयं बँध जाते हैं। बस आप यही प्रार्थना कीजिये और दृढ़ विश्वास रखिये कि जरूर दर्शन देंगे। जिन्होंने आपको स्वप्नमें मुझसे मिलनेकी आज्ञा दी है, वे आपकी सच्ची उत्कण्ठा होनेपर नहीं मिलेंगे, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। मेरा तो यही निवेदन है।

आपका भाई,

हनुमानप्रसाद पोद्दार

एक अपूर्व घटना और जीवन परिवर्तन

इन्दौर निवासी श्रीदेवचन्दजीका जीवन विलक्षण ढंगसे बदल गया। बादमें वे श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये कई बार आते थे। पिताजीने उनकी विलक्षण अनुभूतिका वर्णन उन्हींके हाथसे लिखवाया था। उसी वर्णनको उनकी भाषामें प्रस्तुत किया जा रहा है। 'मैं'के स्थानपर उन्होंने 'साधक' शब्दका प्रयोग किया है। यह घटना वि० सं० १९९२ (सन् १९३५) की है—

वह था एकदम नास्तिक। भगवान् एवं उनके माननेवाले समाज सम्प्रदाय तथा साधुओंके प्रति अनादरका भाव और बर्ताव करना ही उसका धर्म था। तर्क प्रधान होनेसे कहिये या चापल्यता लेकिन इससे अवश्य ही वह काम लेता और अनेकों प्रसंगोंपर बड़ी कड़वी-कड़वी बातोंसे भगवत्भक्तोंका विरोध करता था। यहाँतक कि बिचारे सीधे-साधे भक्त भगवान्‌का स्मरण कर रो उठते थे, अथवा वे रोनेमें भगवान्‌से उसकी बुद्धि ठीक हो जानेकी

करुण प्रार्थना करते थे।

एक दिनकी घटना है। भक्तोंकी प्रार्थना खाली कैसे जा सकती थी, भगवान्ने सुनी। उस दिन शामको जब कि हवाखोरीसे मित्रोंके साथ लौट रहा था तब भगवान्की चर्चा चल गयी। एक मित्र बड़े भावुक थे उन्होंने भावमें आकर अनेक बातें भगवान्की लीलाएँ और उनके अनन्त प्रेम प्रभावकी बातें कहीं जो रसमय थी। किन्तु नास्तिकने तो विपक्षमें जो कुछ मिलें उसीसे उसका विरोध और भगवान्के प्रति अश्रद्धाकी बातें भी जोरोंसे की। इतनी अधिक बातें हुई कि भावुक मित्र अत्यधिक रोने लगे और साथ छोड़कर अन्यत्र चल दिये। उनका रोना हृदय–स्पर्शी था उनके शुद्ध अन्तःकरणकी निकली आवाज थी जिसने प्रभुके समीप प्रार्थना पहुँचायी।

नास्तिकके हृदयपर आजके भावुक मित्रताका रोना बैठ गया, पता नहीं क्यों ! ऐसे पहले भी कई बार अवसर आये लेकिन उसके कठोर हृदयपर कोई असर नहीं हुआ था लेकिन आज तो उसके मनमें भावुक मित्रके दुःखका पारावार न रहा। और वह भी बिना कुछ खाये–पीये उसी समय घर पहुँचकर पड़ रहा और अत्यधिक पश्चात्तापके बाद आ गयी निद्रा।

यहींसे था उसके जीवनका परिवर्तन। उसे निद्रामें बहुत प्रकाशका अनुभव होने लगा साथ ही आनंद। उस अनुपम सुंदर प्रकाशमें बड़े गम्भीर भावसे एक सज्जन उपस्थित हुए और एक पुस्तक रखकर लुप्त हो गये। पुस्तक सामने थी, उसमें लिखा था 'तुलसीदल' इतना पढ़ते ही उसके पन्ने अपने आप उलटने लगे । दो पन्ने उलटनेके बाद भगवान्का चित्र आया और ऊपर लिखा था एक श्लोक और नीचे था 'व्रजनवयुवराज' इसके नीचे एक श्लोक और था। थोड़ी देरमें प्रत्यक्ष की ज्यों भगवान् दीखने लगे और बड़े–बड़े नेत्रोंसे बैठे–ही–बैठे देख रहे थे बड़े प्रेमसे। लगभग १० मिनट बाद वे बड़े मधुर स्वरमें हाथ उठाकर बोले—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मां शुचः।।

और अदृश्य हो गये।

साधकको याद रहा 'तुलसीदल' गीताप्रेस और श्लोक। भगवान्का मधुर स्वरूप तो छूट ही कैसे सकता था। निद्रावस्थासे उठनेके बाद साधक इन्हीं बातोंकी उलझनको सोचनेमें संलग्न रहा। उसे याद आया कि उसके

एक मित्रके बड़े भाई धार्मिक विचार एवं स्वाध्याय प्रिय हैं। उन्हींके पास तुरंत गया और गीताप्रेससे निकली हुई पुस्तक 'तुलसीदल' को पूछा। उन्होंने बताया कि यह गीताप्रेससे निकली हुई पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी लिखी हुई बहुत सुंदर पुस्तक है। मेरे पास भी है और वह लाकर दिखायी गयी। देखते ही वही भगवान् श्लोक और वैसी–की–वैसी ही सब बातें पायी। तुरंत उस पुस्तकको स्वतंत्र रूपसे प्राप्त करनेको बाजारमें दुकानदारोंके यहाँ गये और ले आये।

इस पुस्तकके अध्ययनके बाद ही इन्हींकी 'साधन–पथ' नामक पुस्तक भी पढ़ी गयी और साधकका यहाँसे अपूर्व साधन प्रारंभ हुआ जो बाहरके जीवनसे एकदम विपरीत था और गुप्त ही साधन शुरू हो गया।

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

मन्त्रकी ६४ मालाका जप नित्य और भगवान् व्रजनवयुवराजका ध्यान शुरू हुआ। वह लगातार ३ माह चला। इतनेमें गीताप्रेसकी अन्य पुस्तकें पढ़ी गयीं। संतोंकी महिमा सुनी गयी। ३ माहके अभ्याससे स्थिति इतनी हो गयी कि निरंतर भगवन्नामका जप और ध्यान होने लगा। सोनेमें भी, उनके घरके लोगोंका अनुभव था, जप होता था।

इतना सब होनेपर भी भगवान् न आवें या कोई विशेष बात जो भगवान् भक्तके लिये ठीक समझते हों वह न हो ?—ऐसा नहीं हो सकता है।

इसी बीचमें एक दिन प्रातः निद्रावस्थासे उठते ही हृदयमें इतनी प्रसन्नता और जगत् भी इतना सुंदर दिव्य दीखने लगा कि जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता था। हृदयमें अपूर्व आनंद प्रसन्नता थी और थी एक आवाज कि आज अवश्य ही प्रभुके दर्शन होंगे। दिनभर खूब मस्ती रही, भूखका पता नहीं, बेसुध अवस्था। पासके मित्रोंने भी देखी और मित्रोंके पूछनेपर बताया कि आज बहुत अधिक आनन्द प्रसन्नता है और ऐसा अनुभव हो रहा है कि भगवान् प्रकट होंगे। शामको और मित्र भी आये किन्तु बेसुध अवस्था होनेसे घरके लोगोंने अधिक मिलने–जुलने नहीं दिया और शीघ्र ही सोनेका प्रबंध किया गया। एक मित्र भावुक थे और इस विशेष घटनाकी आकांक्षासे वे भी उनके साथ ही बड़े आग्रहसे सोये।

रातके ग्यारह बजे होंगे, घरके सब सो चुके थे। आनन्दातिरेकमें साधकको होती है मस्ती और अर्ध निद्रावस्थाकी–सी स्थिति थी।

साधक एक पलंगपर अपने मित्रके साथ लेटा हुआ था और देखता है—आकाश मार्गसे एक बहुत सुंदर दिव्य चौकी (कमरा), जो कि दिव्य रत्नोंसे जटित अत्यन्त प्रकाशवान थी, साधककी ओर उतरती जा रही थी, जिसकी चौड़ाई ६'–१२' के लगभगकी चौकी दिव्य थी जिसके नीचेकी ओरसे ऊपरकी सुसज्जित वस्तुएँ रत्नाभूषण मंत्रादि साफ–साफ दीखते थे। वह चौकी पलंगके ऊपर उतारकर रखी गयी। साधक लेटा था सो बैठ गया उसके मित्र निद्रामें स्थित रहे और आस–पासके अन्य सोनेवाले भी।

वह चौकी क्या थी, एक वृहत् कमरा ही था। रत्नजटित चौकीके ऊपर छत थी जो १२ फुट होगी। छतके बीचों–बीच

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

महामन्त्र लिखा हुआ था जिसमेंसे अनेकों रंगका प्रकाश–सा निकल रहा था। संभवतः वह मणियाँ जो जड़ी हुई थीं उनका ही हो। महामन्त्रके चारों ओर वेदोंके मन्त्र लिखे हुए थे जिनमेंसे भी प्रकाशका श्रोत बहता रहता था। चारों ओर दीवालें अवश्य थीं किन्तु उनमेंसे निरंतर वायुका आवागमन रहता था और उसके हरेक कणसे अन्दरकी चीजें दीखती थीं। पूर्व तरफसे दीवालोंसे सटे हुए दो दरवाजे थे। बीचके हिस्सेमें पास–पास दिव्य रत्नोंसे जटित सिंहासन सजे हुए दीख रहे थे। दीवालोंके सब तरफसे अनेक मंत्र लिखे हुए चित्र बने हुए थे और हर एकसे प्रकाश निकलता था। दीवालके बीचों बीच कुछ चौड़ी तिरंगे झंडे जैसी लकीरें थीं जिनमेंसे अलग–अलग रंगका प्रकाश निकल रहा था। साधक एकटक उसी दृश्यको देख रहा था इतने ही में उसपर एक सज्जन टहलते हुए दिखाई देने लगे। खादीका सफेद लम्बा कुर्ता, मोटी धोती पहने थे। बीचकी श्रेणीका स्थूल शरीर था, घूम रहे थे। वे बोले साधकसे—तुम उठो हाथ–पैर धोकर ऊपर आ जाओ। साधक उठा पासमें एक लोटेमें शुद्ध जल रखा हुआ था। उससे हाथ–पैर धोकर ऊपर उन संतके पास पहुँच गया। उन्होंने कहा—आज भगवान्‌की आज्ञानुसार तुम्हारे यहाँ उनके मण्डलकी बैठक होगी। इसमें अनेक संत–महात्मा सम्मिलित होते हैं। कीर्तनके बाद भगवान् द्वारा स्वयं नये भक्तोंसे कुछ कहकर बादमें जगत्‌में सुख, शान्ति, संरक्षण आदिकी क्या व्यवस्था करनी है। इसपर विचार किया जायगा। यह कमेटी नियमसे होती है इसमें सब मिलकर सदस्य हैं जिसमें ४५ प्राचीन ऋषि–मुनि एवं ४५ आजके जगत्‌में सशरीर प्रत्यक्ष काम करनेवाले

संत महात्मा। प्रत्येकको इच्छानुसार वर्षमें ४ दिन ४ स्थानोंपर मण्डलकी बैठक रखी जाती है। इस तरह वर्ष पूरा हो जाता है आज मेरी इच्छानुसार तुम्हारे यहाँपर रखी गयी है। मैं भारतमें गोरखपुरसे निकलने वाला धार्मिक पत्र 'कल्याण' के सम्पादकका काम करता हूँ——हनुमानप्रसाद पोद्दार। ठीक ११।। बजेसे संत महात्माओंका आना क्रमशः प्रारंभ होता है। वे सब क्रमशः आते हैं और अपने–अपने नियत स्थानोंपर बैठ जाते हैं।

संत ज्यों–ज्यों आते रहते थे, वैसे–वैसे भाईजी प्रत्येकका नाम परिचय देते जाते थे। इस तरहसे सब आ गये।

सबके आनेके बाद कीर्तन प्रारंभ होता है। पहले ऋषि–मुनि बोलते हैं और बादमें संत–महात्मा दुहराते हैं।

धीरे–धीरे कीर्तनकी गति बढ़ती गयी और लगभग आधा घंटा कीर्तन होनेके बाद सब खड़े हो गये। कीर्तनमें कई नाचते–कूदते और कई आवेशमें हो रहे थे।

यह साधक और भाईजी भी कीर्तन कर रहे थे। बीचमें ही भाईजीने साधकसे कहा कि अब भगवान् आ रहे हैं, और आजके तीन माह बाद बुधवारको फिरसे तुम्हारे यहीं मण्डलकी बैठक रखी जायगी।

भगवान्‌के आनेके पूर्व एक तरहकी बड़ी मीठी मोहक गन्धका आना प्रारंभ हुआ। उस गंधके कारण कीर्तनमें विशेष रस पैदा हो रहा था। कुछ ही देर बाद प्रकाश आया और स्वयं भगवान् भी पधारे। शनैः शनैः पृथक् दरवाजोंसे आकर सिंहासन पर बैठ गये। कीर्तनमें साधकका मन तन तल्लीन था। भगवत् इच्छासे दीख रही थी लीला। भगवान्‌के सिंहासनारूढ़ होते ही साधक आवेशमें आया। रोमांच, अश्रुपात और अखण्ड आनंदकी मस्तीमें झूमता भगवान्‌के चरणोंमें गिर गया। फिर क्या हुआ इसका विवरण पता नहीं। साधककी शक्तिके बाहरकी बात थी। साधक अन्तमें गिरा अपने पलंगपर बेहोश। उसका मित्र और पासके सोनेवाले जाग गये। ६ घंटे बाद साधकको होश हुआ।

पं० जवाहरलाल नेहरूका गोरखपुर आगमन

बात सन् १९३६की है जब गीतावाटिका, गोरखपुरमें एक वर्षके अखण्ड संकीर्तनका भाईजीने आयोजन किया था। इस आयोजनमें देशके बड़े–बड़े संतों एवं विशिष्ट व्यक्तियोंने भाग लिया था। उन दिनों पं०

श्रीजवाहरलाल नेहरूका तेज–प्रताप बढ़ रहा था। राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिये उनके त्याग, बलिदान, कष्ट सहनकी प्रशंसा हो रही थी। साईमन कमीशनके विरोधके प्रसंगमें, उनको और पण्डित श्रीगोविन्दबल्लभ पन्तको ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो पीड़ा पहुँचायी गयी थी, मार–पीट की गयी थी, वह लोगोंके हृदयपर घाव कर गयी थी। लोगोंकी उनमें बहुत रुचि थी।

उस समय गोरखपुर तथा आस–पासके क्षेत्रमें भयंकर बाढ़ आई थी जिसमें भाईजीने तन–मन–धनसे बाढ़ पीड़ितोंकी सहायता की। उस समय बाढ़की दशा देखने पं० जवाहरलाल नेहरू भी गोरखपुर पधारे। उस समय कलेक्टर अंग्रेज थे एवं यह आशंका थी कि जो नेहरूजीको कार देगा उसकी कार जब्त कर ली जायेगी। ऐसी स्थितिमें कौन अपनी कार देनेका साहस करता। बाबा राघवदासजी भाईजीके समक्ष उपस्थित होकर बोले—भाईजी, कार नहीं मिल रही है और इज्जत जा रही है। भाईजीके पास उस समय कार थी, बोले—कार ले जाइये। नेहरूजी उसी कारमें आस–पासके क्षेत्रोंमें गये और घूम–फिरकर भाषण देकर गोरखपुर लौट आये उसी रात रामप्रसादजी सी० आई० डी० इन्सपेक्टर भाईजीके पास आये और विनोदमें कहने लगे—"आज आपने पण्डितजीको अपनी कार दे दी।" भाईजीने उत्तर दिया—"हमने चोरीसे नहीं दी।" उस समय बहुतसे नेता भाईजीके पास ही ठहरते थे, यह बात सभीको मालूम थी। कलक्टरने कहा—"हम जानते हैं कि भाईजीने कार दी है पर हम कोई कार्यवाही नहीं करेंगे। उनका विश्वास था कि भाईजी राजनीतिक आदमी नहीं हैं, प्रेमसे सबको ठहराते हैं। नेहरूजी "संकीर्तन–महायज्ञ"में आमन्त्रित किये गये। वे यज्ञमें आये। उन्होंने यज्ञ मण्डपमें भगवान्‌को नमस्कार भी किया। उन्होंने पूछा—"क्या दिन–रात यह संकीर्तन होता रहता है ? ढोलक और झाँझ बजते रहते हैं ?" उन्हें उस समय तक इन बातोंसे इतना परिचय नहीं था। भाईजीने उनके सामने भारतीय भक्ति–भाव एवं संकीर्तनकी महिमापर प्रवचन किया। नेहरूजीने आश्चर्यचकित होकर प्रवचन श्रवण किया एवं उससे प्रभावित होकर प्रशंसा करते हुए प्रस्थान किया।

भगवन्नाम–प्रचारकी द्वितीय योजना

कलियुगमें भगवन्नाम ही सर्वोपरि साधन है और भगवान्‌ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर इसीके प्रचारका आदेश भाईजीको दिया था। भाईजी इसे आजके

युगमें सर्वसुलभ एवं सर्वोत्कृष्ट साधन मानते थे। अपने एक प्रेमीके विदा होते समय भगवन्नाम–महिमाके सम्बन्धमें भाईजीने कहा था कि मेरी तो First, last and latest Discovery (प्रथम, अन्तिम और नवीनतम आविष्कार) यही है कि अपना कल्याण चाहनेवाला व्यक्ति नामका आश्रय पकड़ ले। और साधन हो सके तो अवश्य करे, किसीका विरोध नहीं है, परंतु और कुछ भी न हो सके तो केवल जीभसे निरन्तर नाम–जप करता रहे।

पहली योजनामें भाईजी अपने परिकरोंके साथ स्थान–स्थानपर स्वयं गये और नामकी महिमा सुनाकर लोगोंको नाम–जपमें लगाया। इतनेसे भाईजीको संतोष नहीं हुआ तब योजना बनायी कि जैसे चैतन्य महाप्रभुके भक्त–गण ग्राम–ग्राममें जाकर नाम–प्रचार करते थे, वैसे ही कुछ सच्चे साधक तैयार किये जायँ जो स्थान–स्थानपर जाकर संकीर्तनका आयोजन करके लोगोंको नाम–जप–कीर्तनमें लगायें। इसी निमित्तसे सर्वप्रथम श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे पत्र–व्यवहार करके उन्हें समझाकर ऐसे ही साधकोंके लिये कुछ नियम बनाकर सं० १९९१ (सन् १९३५) के अन्तमें झूँसीमें छः महीनेका अखण्ड–हरिनाम–संकीर्तनका अनुष्ठानका आयोजन कराया। लगभग पैंतीस–चालीस साधक उसमें सम्मिलित हुए, किन्तु पूरी तत्परतासे साधन करनेवाले न मिलनेसे ब्रह्मचारीजीका उत्साह कम हो गया। उन्हें नवीन उत्साह दिलानेके लिये भाईजी अपने प्रेमी–परिकरोंके साथ भाद्र कृष्ण १४ सं० १९९२ (२७ अगस्त, १९३५) को संकीर्तन आयोजनमें सम्मिलित होने झूँसी गये। भाईजीके जानेसे उस संकीर्तनमें प्राण आ गये एवं पुनः नवीन उत्साहसे ब्रह्मचारीजीने अखण्ड–संकीर्तनका आयोजन छः महीनोंके लिये और बढ़ा दिया। ब्रह्मचारीजीके उत्साह बढ़ानेके लिये भाईजीने पाँच चुने हुए साधकोंको गोरखपुरसे भेजनेका वचन दिया। भाद्र शुक्ल ४ सं० १९९२ (२ सितम्बर, १९३५) को गोरखपुर पहुँचकर भाईजीने पाँच साधकोंको झूसी भेजा। ऐसे साधकोंके सम्मिलित होनेसे, अन्य साधकोंमें भी उत्साहकी लहर आ गयी। साधकोंके लिये प्रमुख नियम थे छः महीनेतक पूर्ण मौन रहना, प्रतिदिन एक लाख नाम–जप करना, चार घंटे अखण्ड–संकीर्तनमें समय देना, हल्का फलाहार करना। इससे साधकोंके जीवनमें ठोस आध्यात्मिक प्रगति हुई। इसके सफलतापूर्वक सम्पन्न होनेसे भाईजीको बड़ी प्रसन्न्ता हुई।

झूँसीमें पुनः अखण्ड–संकीर्तनका अनुष्ठान प्रारम्भ करा देनेके बाद भाईजी चुपचाप नहीं बैठे। बरहजके परमहंस आश्रमके बाबा

राघवदासजीके शिष्य ब्रह्मचारी सत्यव्रतजीको प्रेरणा देकर झूँसीकी भाँति बरहजमें भी अखण्ड–संकीर्तनका आयोजन संगठित करानेके लिये भाईजी स्वयं कार्तिक शुक्ल ५ सं० १९९२ (१ नवम्बर, १९३५) को बरहज गये। भाईजीके जानेसे अखण्ड–संकीर्तन अनुष्ठान प्रारम्भ करनेका निर्णय लिया गया। कार्तिक शुक्ल ११ सं० १९९२ (७ नवम्बर, १९३५) को पुनः बरहज गये एवं अपने ओजस्वी प्रवचनसे साधकोंका उत्साहवर्धन करते हुए अनुष्ठानका श्रीगणेश कराया।

बरहजसे लौटनेके बाद भाईजीके मनमें संकल्प हुआ कि सबको उत्साह दिलानेके लिये एवं साधकोंको ठोस लाभ प्रदान करनेके लिये गोरखपुरमें अपने निवास–स्थानवाली वाटिकामें भी एक वर्षके अखण्ड–संकीर्तनका विस्तृत आयोजन किया जाय। सर्वप्रथम श्रीसेठजीसे परामर्श करके निर्णय लिया गया। फिर मुनीलालजी (स्वामी सनातनदेवजी) को अयोध्या भेजकर श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे इस आयोजनके मुख्य संचालकका भार वहन करनेकी स्वीकृति ली गयी। तत्पश्चात् वाटिकामें बड़े पंड़ाल एवं साधकों–अतिथियोंके निवासके लिये कुटियाओंका प्रबन्ध किया गया। भाईजी बैसाख कृष्ण पक्ष सं० १९९३ (मार्च–अप्रैल १९३६) को कानपुर गये और संत एकरसानन्दजीसे उनके प्रधान शिष्य स्वामी नारदानन्दजी, स्वामी शुकदेवानन्दजी एवं स्वामी भजनानन्दजी सहित गोरखपुरके अखण्ड–संकीर्तन यज्ञमें सम्मिलित होनेकी स्वीकृति लेकर लौटे।

संकीर्तन–महायज्ञ आषाढ़ शुक्ल ११ सं० १९९३ (३० जून, १९३६) को प्रारम्भ हुआ। प्रातःकाल श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी मण्डली सहित गोरखपुर पहुँचे। स्टेशनपर स्वागतके लिये भाईजी अपने परिकरों सहित उपस्थित थे। बाहरसे और कीर्तन मण्डलियाँ आयीं थी। वहींसे सब लोगोंने उत्साहपूर्वक उद्दाम संकीर्तन करते हुए जुलूस बनाकर वाटिकाकी ओर प्रस्थान किया। श्रीब्रह्मचारीजी कई वर्षोंसे मौन रहते थे। आषाढ़ शुक्ल १३ सं० १९९३ (२ जुलाई, १९३६) को मध्याह्नमें गीताप्रेससे इस महायज्ञका सज–धजके साथ नगर–संकीर्तनका आयोजन किया गया, जिसमें अपार जनसमूह सम्मिलित हुआ। भाईजी अपने परिकरों सहित मस्तीमें नृत्य करते हुए संकीर्तनके समय अनेक बार बाह्य–ज्ञान शून्य हो गये। जिन भाग्यवान् लोगोंने उस समय भाईजीको संकीर्तनकी मस्तीमें

डूबते देखा वे उस मुद्राको भूल नहीं सकते। वह अपार जनसमूह संकीर्तनमें झूमता हुआ रात्रिके नौ बजे भाईजीके निवास स्थानपर पहुँचा। वाटिकामें प्रसाद-वितरणके पश्चात् उस दिनका आयोजन सम्पन्न हुआ।

विस्तारभयसे इस एक वर्षके अखण्ड-संकीर्तन यज्ञका पूरा विवरण यहाँ देना सम्भव नहीं है। भावुक जन अनुमान लगा सकते हैं। बहुतसे संत समय-समयपर बाहरसे पधारकर इस यज्ञमें सम्मिलित होते रहे। स्वामी एकरसानन्दजी, स्वामी नारदानन्दजी, स्वामी शुकदेवानन्दजी, स्वामी भजनानन्दजी, नागाबाबा, स्वामी अखण्डानन्दजी (अहमदाबादवाले), श्रीजयरामदास 'दीन' रामायणी स्वामी रामदासजी महाराज आदि महात्माओंके पधारनेसे एवं भाईजी, श्रीसेठजी और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी उपस्थितिमें यह यज्ञ बहुत ही सफल रहा। पं० ज़वाहरलाल नेहरू भी संकीर्तनके दर्शन करने वाटिकामें पधारे थे। देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराने भी इसी बीच भाईजीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनसे वार्तालाप किया। अनेकों संत-महात्मा बिना परिचयके आकर सम्मिलित होकर चले जाते। ऐसे ही एक मौनी महात्मा ज्येष्ठ शुक्ल २ सं० १९९४ (१० जून, १९३७) को पधारे और वाटिकाके कथाभवनमें विराज गये। किसीने कुछ दे दिया तो प्रसाद पा लिया अन्यथा संकेत आदि भी नहीं करते थे। ऐसा भी हुआ कि साधक आये तो अखण्ड-कीर्तनमें सम्मिलित होनेके लिये पर फिर आजीवन वहीं रह गये। श्रीदौलतरामजी तांबी जो उज्जैनके रहनेवाले थे, अखण्ड-कीर्तनमें चार महीने साधक रूपसे सम्मिलित होने आये थे, पर सात्त्विक वातावरणसे प्रभावित होकर आजीवन रह गये।

आषाढ़ कृष्ण १ सं० १९९४ (२४ जून, १९३७) को इस अखण्ड-संकीर्तन यज्ञका समापन हुआ। उस दिन नाम-महिमापर बड़ा विलक्षण प्रवचन करते हुए भाईजीने कहा—नामने ही इस यज्ञको एक वर्ष तक चलाया। उनकी कृपासे सारे विघ्न टल गये। आग लगी पर किसीको आँच नहीं आयी, प्लेग फैला पर किसीको टीका न लगानेपर भी कुछ नहीं हुआ। **आप नाम-जपका नियम लें, यदि यह नियम चलता रहा तो शब्द याद रखिये—'भगवान् मिल जायँगे।'** नामसे मेरेको जो लाभ हुआ है, वह मैं कह नहीं सकता। नाम असम्भवको सम्भव कर सकता ही नहीं, करता है। आप नाम-जपकी प्रतिज्ञा कीजिये—निभायेंगे भगवान्।

इस संकीर्तन–यज्ञके सम्बन्धमें श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने अपने संस्मरणमें लिखा——

इसके लिये सारी व्यवस्था भाईजीने की। किन्तु अपना नाम कहीं भी नहीं दिया, सब मेरे ही नामसे करते रहे। हमारे साथ दस–बारह साधक थे, सबके ठहरने, खाने–पीने और सवारीका जैसा प्रबन्ध किया, वे सब बातें जब याद आती हैं तो हृदयमें हूक–सी उठती है। उन दिनों कैसा सुन्दर सत्संग होता था। न जाने कितने अच्छे–से–अच्छे विद्वान् बैठकर भगवत्–चर्चा किया करते थे। 'ते ही नो दिवसा गता'——हाय ! वे हमारे दिन चले गये और ऐसे गये कि फिर लौटकर नहीं आनेके।

देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराके साक्षात् दर्शन

इस अलौकिक घटनाका विवरण देते हुए भाईजीने बताया——सन् १९३६ में गीतावाटिका (गोरखपुर) में एक वर्षका अखण्ड–संकीर्तन हुआ था। शिमलापालमें "नारद भक्ति–सूत्र" पर मैंने एक विस्तृत टीका लिखी थी। वह टीका उन दिनों प्रकाशित हो रही थी। भागवतकी कथामें भी नारदजीका प्रसंग सुन रखा था। इन सब हेतुओंसे उन दिनों नारदजीके प्रति मनमें बड़ी भावना पैदा हुई। बार–बार उनके दर्शनोंकी लालसा जगने लगी।

एक दिन रात्रिमें स्वप्नमें दो तेजोमय ब्राह्मण दिखायी दिये। मैं उन्हें पहचान न सका। परिचय पूछनेपर उन्होंने बताया कि हम दोनों नारद और अंगिरा हैं। फिर उन्होंने कहा, "हम कल दिनमें तीन बजे तुमसे मिलनेके लिये प्रत्यक्ष रूपमें आयेंगे।" यह स्वप्न प्रायः जाग्रत अवस्थाके समयका था और इतना स्वाभाविक था कि मुझे उसमें कोई संदेह नहीं रहा। मैंने पीछे बगीचेमें इमलीके पेड़ोंके पास एक कुटिया, साफ करवाकर उसके सामने एक बेंच लगवा दी और उसपर दो आसन लगा दिये। मैंने किसी भी व्यक्तिसे इसकी चर्चा नहीं की। मैं स्वयं अपने निवास स्थानके बाहर बरामदेमें बैठ गया और उनकी प्रतीक्षा करने लगा। ठीक तीन बजे दो ब्राह्मण आये और मुझसे मिलना चाहा। मैं उन्हें पहचान गया। ठीक वही आकृति, वही स्वरूप, जो स्वप्नमें मैंने देखा था। मैं पीछे बगीचेमें बढ़ने लगा और वे मेरे पीछे–पीछे चलने लगे। हम लोग उस एकान्त कुटियापर पहुँचे। उन दोनोंको मैंने बेंचपर लगे हुए आसनोंपर बैठा दिया, मैं नीचे बैठ गया।

दोनों ब्राह्मण सफेद कपड़े पहने हुए थे, किन्तु आसनपर बैठते ही दोनोंका वास्तविक रूप प्रकट हो गया। बड़ा ही भव्य और दर्शनीय रूप था। वे कुछ देर बैठे रहे और उन्होंने मुझे कुछ बातें कही। अन्तमें उन्होंने कहा, "जब कभी याद करोगे, तब हम आ जायेंगे।" वे मुझ जैसी वाणीमें बोल रहे थे। वे जिस व्यक्तिके सामने प्रकट होते हैं, उससे वे उसकी समझमें आनेवाली भाषामें बोलते हैं।

नारदजीने भाईजीके सामने बहुत–से गूढ़ तत्त्वोंका रहस्योद्‌घाटन किया, जिनका शास्त्रोंमें विस्तृत वर्णन नहीं है। इसके बाद भाईजीके जो प्रवचन होते थे तथा "कल्याण"में जो लिखते थे, उनमें उन्हीं सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता था। किसीका विरोध करनेकी प्रवृत्ति नहीं थी।

इसके पश्चात् तो नारदजी आदि देवर्षिगण भाईजीसे वार्तालाप करनेके लिये पधारते रहते थे क्योंकि भाईजी भी दिव्य संत–मण्डलमें सम्मिलित कर लिये गये थे।

स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज (श्रीराधाबाबा)

गीतावाटिका गोरखपुरमें जिस समय एक वर्षका अखण्ड–संकीर्तन चल रहा था, उसी समय स्वामीजी चक्रधरजी महाराज गीतावाटिका पधारे। कालान्तरमें इनका भाईजीके साथ अत्यन्त प्रगाढ़ सम्बन्ध हो गया। इनका परिचय संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है––

बिहार प्रदेशके गया जिलेमें फखरपुर एक छोटा–सा ग्राम है। इसी ग्राममें परम्परागत वैदुष्य सम्पन्न 'मिश्र' उपाधिधारी ब्राह्मण कुलमें बाबाका जन्म पौष शु० ६ वि०सं० १९६९ (१६ जनवरी सन् १९१३) को हुआ था। बाबाके पिताका नाम श्रीमहीपालजी एवं माताका नाम श्रीमती अधिकारिणी देवी था। श्रीमहीपालजी बहुत ही ईमानदार, सच्चरित्र थे एवं पूजा–पाठमें समय बिताते थे। माता भी अत्यन्त सरल हृदय एवं भक्ति भावापन्न थी। इन सभीका असर बाबा पर जन्मसे ही पड़ा।

सन् १९२८ से १९३१ तक बाबाका जीवन राजनैतिक कार्योंमें व्यतीत हुआ। १९२८ में बाबा गया नगरके जिला स्कूलकी नवीं कक्षामें पढ़ते थे और उनकी आयु केवल पन्द्रह वर्षकी थी। राजनैतिक और क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण बाबाको दो बार जेल जाना पड़ा

और प्रत्येक बार छः मासका कारावास–दण्ड मिला। जेलके भीतर उन्हें भीषण दारुण यन्त्रणा भोगनी पड़ी। उन अतिक्रूर और कष्टपूर्ण परिस्थितियोंमें बाबाको पद–पदपर सच्ची प्रार्थना एवं भगवत्कृपाके अनेक अद्भुत दिव्यानुभव हुए। इन चिरस्मरणीय अनुभवोंने बाबाके जीवनकी धाराको आध्यात्मिकताकी ओर मोड़ दिया। बाबा जब जेलके भीतर थे, तभी इस प्रकारके विचार उनके मनमें आने लगे कि बाहर जानेके बाद अध्यात्मपूर्ण जीवन व्यतीत करना है।

सन् १९३१ में जब दूसरी बार जेलसे बाहर आये तो उनके बड़े भाई लोग उन्हें कलकत्ते ले गये और वहाँ उनका नाम सोहरावर्दी बेगम मेमोरियल स्कूलकी नवीं कक्षामें लिखा दिया। सन् १९३४ में बाबाने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उतीर्ण की। इसके बाद घरवालोंने उनका नाम रिपन कालेज (अब सुरेन्द्रनाथ कॉलेज) के इण्टरमीडियेट कक्षामें लिखवा दिया। सन् १९३५ में बाबाने प्रथम वर्षकी कक्षा उतीर्ण कर ली। प्रथम वर्ष उतीर्ण कर लेनेके बाद बाबाके जीवन–प्रवाहमें ऐसा आमूल परिवर्तन आया कि भविष्यका रूप ही बदल गया।

बाबाने सं० १९९२ वि० की आश्विन मासवाली शारदीय रासपूर्णिमा (शनिवार, १२ अक्टूबर १९३५) के दिन सन्यास लिया था। तब बाबा कलकत्तेमें इंटरमीडियेटके द्वितीय वर्षमें पढ़ते थे। काषाय वस्त्र धारण करनेके उपरान्त बाबाने अपने बड़े भाइयोंसे कहा था——इंटरमीडियेटकी शिक्षामें डेढ़ वर्षतक आपने मुझपर बहुत व्यय किया है। इस व्ययको निरर्थक करना उचित नहीं लगता, अतः मैं इंटरमीडियेटकी पढ़ाईको पूरा करके परीक्षा दूँगा, जिससे आप लोगोंके मनकी सन्तुष्टि हो सके। इस छः–सात मासकी पढाईके बाद जागतिक विषयोंसे सम्बन्धित मेरा अध्ययन समाप्त हो जायेगा।

कुछ समय कलकत्तामें रहनेके पश्चात् वे पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ कुछ वर्ष बाँकुड़ामें रहे। पू० श्रीसेठजीने इन्हें बड़े स्नेहसे अपने पास रखा। उन दिनोंमें ये निर्गुण–निर्विशेष ब्रह्मके उपासक थे। श्रीसेठजी तत्त्वके ज्ञाता होते हुए भी सगुण–साकार रूपका विवेचन भी किया करते थे। इन्हें वह रुचिकर नहीं लगता था, अतः उनसे ये विचार–विनिमय करने लग जाते। श्रीसेठजीने इन्हें शास्त्र–प्रमाणोंसे बहुत समझाया, पर ये उनके तर्कोंको स्वीकार नहीं कर पाये। तब श्रीसेठजीने

इन्हें एक बार भाईजीसे मिलनेके लिये कहा पर इन्होंने रुचि नहीं दिखायी। परन्तु जगन्नियन्ताका विधान और ही था। श्रीसेठजी गोरखपुर आनेवाले थे सो इन्हें भी निर्धारित तिथि तक गोरखपुर पहुँचनेके लिये कहा। ये गोरखपुर आ गये पर कारण विशेषसे श्रीसेठजी नहीं पहुँच पाये। आश्विन शुक्ल एकादशी सं० १९९३ (२६ अक्टूबर, १९३६) को गीताप्रेस जानेपर इन्हें पता चला कि श्रीसेठजी आये नहीं हैं। इन्होंने भाईजीका निवास स्थान पूछा और गीतावाटिका चले आये।

सूचना मिलनेपर भाईजी आये और स्वामीजीके चरण–नखोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। भाईजीके चरण–स्पर्श करते ही स्वामीजीको ऐसी विलक्षण अनुभूति हुई, जैसे "विश्वका सम्पूर्ण व्रज–रस उनके मानसमें उडेल दिया हो ?" अपने पूर्व जीवनमें कट्टर वेदान्ती होते हुए भी स्वामीजी इन परिवर्तनोंको रोक नहीं पाये। इसके बाद स्वामीजीने वाटिकामें ही पीछेकी ओर इमलीके पेड़के नीचे कुछ दिनोंतक वास किया। संकीर्तन–यज्ञकी भीड़से साधनामें बाधा होते देखकर ये वहाँसे हटकर नगरके दूसरे छोरपर हनुमान गढ़ीके पास जाकर रहने लगे। वहाँ चार–पाँच महीने रहे।

स्वामीजी संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे एवं उनका शास्त्र–ज्ञान अगाध था। संगीत–शास्त्रका भी उनको अच्छा अभ्यास था। उनकी वाणीमें अद्भुत प्रवाह एवं आकर्षण था।

श्रीसेठजीके अनुरोधपर श्रीमद्भगवद्–गीताकी टीका लिखवानेके लिये उनके साथ चुरू (राजस्थान) गये और फिर उनके सान्निध्यमें कुछ समय बाँकुड़ामें रहकर टीका लिखवानेका कार्य अप्रैल १९३९ में पूर्ण किया।

टीका लेखनका कार्य पूर्ण होनेके बाद बाबाने वृन्दावन जानेका निर्णय लिया एवं भाईजीसे मिलकर उन्हें अपने निर्णयकी जानकारी दी। भाईजीने कहा––हम जाने देंगे तभी तो आप जायेंगे। बाबा उस समय समझे नहीं कि भाईजीका क्या भाव है ? उन्होंने उत्तर दिया––आप टिकट ही तो नहीं कटायेंगे। मैं रेल लाइनके सहारे चलता–चलता पैदल जाऊँगा। यह बात कलकत्तेमें हुई। भाईजी मुस्कुरा दिये। बाबा अपने कक्षमें चले गये। जैसे ही वे ध्यानस्थ हुए उन्हें भगवान् श्रीकृष्णका स्पष्ट निर्देश मिला कि तुम मेरे लिये ही तो वृन्दावन जाना चाहते हो, मैं तो हनुमानप्रसादके

पाँचभौतिक ढाँचेके अन्दर लीलायमान हूँ। फिर तुम मेरे लिये क्यों इसे छोड़कर जा रहे हो। बाबाके समझमें आ गया कि पोद्दार महाराजका शरीर साक्षात् वृन्दावन स्वरूप है एवं इनके नित्य साथ रहनेका अर्थ है वृन्दावन क्षेत्रमें नित्य निवास करना। उसी दिन ज्येष्ठ कृ० ७ सं० १९९६ (११ मई १९३९) को उन्होंने भाईजीके नित्य संग रहनेका 'क्षेत्र–सन्यास' व्रत लेकर भाईजीको बता दिया। इसके पश्चात् बाबा एक दिनके लिये भी भाईजीसे अलग नहीं हुए।

लगभग सन् १९४१ में एक दिन बाबा प्रवचन देने जाने लगे तो भाईजीने संकेत किया––आप आये तो थे किसी और कामके लिये और लग गये लोक–सुधारके कार्यमें। संकेत बाबा तुरन्त समझ गये और उसी दिनसे मौन हो गये। स्लेटपर लिखकर बात करने लगे। फिर सन् १९५६ की शरद् पूर्णिमासे बाबाने काष्ठ मौन लेनेका निर्णय किया। मौन लेनेके पूर्व अपने अन्तिम प्रवचनमें बाबाने कहा––"श्रीपोद्दारजी महाराज यदि गुलाबका एक सुन्दर पौधा हैं तो मैं उसकी एक शाखापर एक छोटा–सा गुलाबका फूल हूँ। मुझसे भी अधिक सुन्दर, श्रेष्ठ एक नहीं अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।" इस मौनमें भाईजीसे बोलनेकी छूट बाबाने रख ली थी। इस काष्ठ मौनकी अवधिमें ही बाबाको काव्य–रचनाका स्फुरण हुआ और इसी अवधिमें 'प्रियतम–काव्य' की रचना हुई।

एक बारकी बात है––२ जुलाई १९८० को पूज्य बाबाने मुझे बुलाया। वे उस दिन बड़ी प्रसन्न मुद्रामें थे एवं बड़े स्नेहसे कुछ बातें बता रहे थे। उसी प्रसंगमें उन्होंने कहा कि मुझे अपने पूर्वके चार जन्मोंकी बातें याद है। मैंने जाननेकी जिज्ञासाकी तो बोले––इससे पहलेवाले जन्ममें मैं बंगालके मैमनसिंहमें किसी बंगालीके घर महिलाके रूपमें था। वहाँ भी माँस–मछली नहीं खाता था। उसके पहले एक जन्ममें मैंने चाणक्यके परिवारमें जन्म लिया था। उसके करीब १७०० वर्ष पहले मैं और भाईजी एक माता–पिताके सहोदर भाई थे और जयदयालजी गोयन्दका हमारे पिता थे। उसके पहले करीब ३५०० वर्ष पूर्व ग्रीसके एथेन्स नगरमें था। मैंने सुकरातका नाम लिया तो बोले सुकरात तो नहीं था पर उनके साथ ही था जिसको वे जाते समय कुछ करनेको बोल गये थे। इससे ज्यादा तुमको जाननेकी

जरूरत नहीं है।

दूसरी बार १४ मई, १९८४ को मैं बाबाके पास बैठा था, और भी कई भाई–बहिन बैठे थे। बाबा बोले जब मैं सामनेवाली कुटियामें रहता था, उन दिनों प्रायः रातमें २–३ बजे उठ जाता था। एक दिन उठकर उत्तराभिमुख होकर बैठ गया तो देखा सामने महाप्रभु वल्लभाचार्य प्रकट हो गये, पासमें गाय खड़ी थी उसपर एक हाथ रखे हुए थे। मैंने खड़े होकर प्रणाम किया, तो बोले––मैं तो गृहस्थ हूँ, आपको ऐसे प्रणाम नहीं करना चाहिये। मैंने कहा––आप तो सन्यासियोंके भी परम पूज्य हैं तो बोले कुछ नहीं, मुस्कुराने लगे। थोड़ी देर बाद दीखने बंद हो गये। इसी तरह एक बार महाप्रभु चैतन्यके दर्शन हुए पर वह स्थान और घटना अभी याद नहीं है।

एक बार रतनगढ़में था, इसी तरह दो बजे उठा। देखता हूँ मेरे सामने श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उन दिनों तीन सालतक भाईजीको पाइल्सकी बहुत तकलीफ रही थी। फिर अन्तमें अजमेरमें चिकित्सा करानेसे ठीक हुई। श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले कि भाईजीको इतनी तकलीफ हुई यह तुम्हें भोगनी पड़ती। मैंने कहा––मैं समझा नहीं। तब बोले––यह तुम्हारा किया हुआ कर्म था। फिर अन्तर्धान हो गये। दिन होनेपर मैं भाईजीके पास जाकर उनसे पूछने लगा। पहले तो थोड़ी देर टालमटोल करते रहे। फिर मैंने थोड़ा जोर–से कहा––मुझे उस सूत्रसे पता लगा है जो सर्वोपरि है। तब हँसने लगे, बोले मैं और आप दो थोड़े ही हैं। अभी तो आप मुझे 'कल्याण' का काम करने दीजिये बादमें किसी दिन बात करेंगे।

भाईजीने अपनी इह–लीलाका संवरण २२ मार्च १९७१ के दिन किया। बाबाने नित्य साथ रहनेका जो महाव्रत लिया था, उसे (११ मई १९३६ से लेकर २२ मार्च १९७१ तक) अक्षुण्ण रूपसे निभाया। भाईजीकी चिता गीतावाटिकामें ही प्रज्जवलित हुई। इसी दिन बाबाने गीतावाटिकामें स्थित अपनी पुरानी कुटियाका परित्याग कर चिता–स्थलीके उत्तरी ओर पेड़के नीचे एक छोटेसे टिन–शेडके नीचे निवास करने लगे। अपने जीवनके शेष दिन उस परम पावन चिता–स्थलीका सजल नेत्रोंसे नित्य दर्शन करते हुए बिताये। १३ अक्टूबर १९९२ के दिन पूज्य बाबाने अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दिया। उस पावन कलेवरको उसी स्थानपर १४

अक्टूबर १९९२ के दिन भूमि–समाधि प्रदान कर दी गयी। वहीं एक सुन्दर समाधि मन्दिरका निर्माण हो गया है, जो उनकी परम मंगलमयी स्मृति दिलाता रहता है।

राधाबाबाके अपने अग्रज बन्धुओंको पत्र

पूज्य बाबाके छायावत् भाईजीके साथ रहनेके नियमका जब उनके अग्रज बन्धुओंको पता लगा तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे बाबाके उद्‌भट् विद्वत्व, अटूट वेदान्त–निष्ठा एवं सन्यासके कठोर नियमोंके पालनसे भाँति–भाँति परिचित थे। अपने ऐसे अनुजको एक बनियेके साथ निरन्तर रहनेके कारणको वे ठीकसे हृदयंगम नहीं कर पा रहे थे। समय–समयपर पत्र लिखकर पू० बाबासे अपनी शंकाएँ निवारणके लिये प्रश्न किया करते थे। पू० बाबाने उनको जो उत्तर लिखे उन पत्रोंके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं।

श्रावण कृ० ११, सं० १९९९ वि०

पूज्य देवदत्त भैया,

सादर सप्रेम प्रणाम ....एक और बड़े ही रहस्यकी बात लिख रहा हूँ। यथासंभव इसका प्रकाश बहुत कम लोगोंके सामने हो, यह मेरा आपके प्रति विशेष अनुरोध है। देखें आपने श्रीजयदयालजी एवं हनुमानप्रसादजीका दर्शन किया है। चाहे आपकी श्रद्धा कम भी हो पर इसका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति ही है। श्रीजयदयालजी एवं हनुमानप्रसादजी केवल दीखनेमें बनिया हैं, यह बात मैं केवल अनर्गल कह रहा हूँ सो नहीं है, जैसा कह रहा हूँ वैसा ही ठीक घटेगा। समय ही मेरे इस कथनकी सत्यताको प्रमाणित कर सकता है। श्रीमद्भागवतके यमलार्जुन उद्धारके प्रसंगको पढेंगे—वहाँ एक श्लोक आया है—

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद्‌बन्धःपुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा।।

(श्रीमद्‌भा० १०। १०। ४१)

जो बात श्रीनारदजीके दर्शनसे यमलार्जुनके लिये सिद्ध हुई है, वही बात इन दोनोंके दर्शन करनेवालोंपर भी लागू होगी। दर्शन करनेवालोंकी श्रद्धा हो चाहे मत हो। यह संभव है कि आपकी श्रद्धाकी कमीके कारण, अथवा अन्य किसी प्रतिबन्धके कारण अथवा कुसंगमें पड़कर साधन छोड़ देनेके कारण आपको एक जन्म और धारण करना पड़े। जिस तरह यमलार्जुनको

जड़त्वकी प्राप्ति हुई थी। किन्तु जो इस बारका जन्म होगा, उसका प्रारब्ध ऐसा बनेगा, जो भगवान्‌को मिलाकर छोड़ेगा। किन्तु आप उधार रखें ही क्यों ? तीव्रतासे साधनमें लगकर इसी जीवनके किसी थोड़ेसे अंशमें ही भगवत्प्राप्तिकर अपना जीवन सार्थक कर दें।

आपका——चक्रधर

आश्विन कृ० ४ सं० १९९७ वि०

पू० देवदत्त एवं तारादत्त भैया,

सादर सप्रेम प्रणाम। ....अपने जीवनकी सर्वतोमुखी गति भगवान्‌की ओर करनेके परम पवित्र उद्देश्यसे ही मैं भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पास यावज्जीवन रहनेका व्रत लिये हूँ और रह रहा हूँ। भगवान्‌की इच्छासे श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ मेरा जीवन–व्यापी संग नहीं हो सके, एक क्षणके पश्चात् दूसरे क्षण क्या घटित होनेवाला है, इसकी सूचना तो मात्र जगन्नियन्ता प्रभुको ही होना संभव है। परन्तु जबतक जगन्नियन्ताकी मरजी ऐसी ही है भाईजीको छोड़कर एक कदम भी इधर–उधर होनेका न तो मेरा संकल्प ही है, न ही मेरी रुचि।

विश्वास करें, श्रीभाईजीसे मेरा संग किसी भी व्यवहारके हेतुसे कदापि नहीं है। आप लोगोंसे नहीं मिलनेमें कोई लौकिक अड़चन हो, सो बात भी नहीं है। बड़े मजेमें श्रीभाईजी मेरे आने–जानेका टिकट कटा सकते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि न तो मैं कारण ही बता सकता हूँ और न श्रीभाईजीको छोड़कर मैं कहीं भी आ–जा ही सकूँगा। कल क्या होगा, इसका पता नहीं।

मैं पिछले किन्हीं पत्रोंमें यह बात लिख भी चुका हूँ कि श्रीभाईजीके अनुग्रहसे ही मुझे परम तत्त्वके परमसार भगवान्‌के सगुण–साकार स्वरूपका अनुभव हुआ है। कर्तुम–अकर्तुम——अन्यथाकर्तु समर्थ भगवान् जिसके अधिकारमें हों, जो अपनी सत्प्रेरणासे किसीको भगवत्प्रेम दान करनेमें समर्थ हो, किसी भी मरणातुर व्यक्तिको जो हाथ पकड़कर भगवान्‌के दर्शन दिलाकर उसे भगवद्धामकी यात्रा करानेमें समर्थ हो, आप लोग कल्पना कर लें कि ऐसे व्यक्तिके जीवनव्यापी छायावत् संग रहनेकी मेरी कामना किस हेतुसे होनी संभव है ?

आपका——चक्रधर

प्रसंगवश पू० बाबाने शिवकुमारजी केडियाको दि० २०। २। ४१ को रतनगढ़में श्रीभाईजीके बारेमें लिखकर दिया उसका थोड़ा

अंश नीचे प्रस्तुत है—

"श्रीभाईजीकी स्थितिको सर्वसाधारण समझ ही नहीं सकता। उच्च साधन सम्पन्न सत्संगी भी इन बातोंको हृदयंगम नहीं कर सकता. ....मेरे ध्यानमें युगों–युगोंमें ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थितिका कोई सिद्ध भगवत्कृपा पात्र आया ही नहीं है, परन्तु हुआ होगा तो मेरी जानकारीमें नहीं है। मैंने कहीं उल्लेख नहीं पाया है। नारद भक्ति–सूत्रोंमें महासिद्ध प्रेमी भक्त नारदजीने सिद्धान्तोंमें ऐसी स्थितिका उल्लेख अवश्य किया है।

उनके सम्पर्कमें आनेवाले माया जगत्के सभी जीव चाहे वे मक्खी, मच्छर, पशु–पक्षी, मनुष्य, पितर, देवगण कोई भी हों एक–न–एक दिन तर जावेंगे। उनके प्राकृत शरीरका अस्तित्व त्रिभुवनके लिये परम पवित्र और मंगल विधान है।"

स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका हस्त लिखित पत्र

बीकानेरमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका पूज्य रामसुखदासजी महाराजसे मित्रताका भाव था। बहुत बार दोनों मिलकर भगवच्चर्चा करते थे। जसीडीहमें श्रीभाईजीको भगवान्के साक्षात् दर्शनोंकी घटना दुजारीजीने विस्तारसे उन्हें सुनाई। 'तत्त्व–चिन्तामणि' के लेख पढ़नेसे उनका आकर्षण श्रीसेठजीके प्रति पहले ही था, यह घटना सुनकर उनका श्रीसेठजीसे मिलनेका मन हुआ। मार्गशीर्ष कृ० २ सं० १९९१ को दुजारीजी उनको साथ लेकर चुरू गये और श्रीसेठजीसे मिलाया। बादमें पूज्य स्वामीजीको भाईजीसे भी मिलाया। अभी उनकी एक नयी पुस्तक प्रकाशित हुई जिससे जानकारी मिली कि उन्नीस वर्षकी अवस्थासे ही वे भगवद्भावोंका प्रचार करने लग गये थे। इनके एक मित्र साधू श्री च्यवनरामजी थे। इन दोनोंका श्रीभाईजीके प्रति बहुत आकर्षण हो गया था। पूज्य श्रीस्वामीजी महाराजका श्रीच्यवनरामजीको हाथसे लिखा पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीभाईजी अभी गोरखपुरमें करीब दो घंटे प्रेमदर्शी-
न पर रहा करते हैं और कोन कोन साधकोंमें-
से कुछ तटपरांगजी पूछ लेते हैं तो बड़ा ही अ-
च्छा उत्तर देते हैं और सत्संग कथाएं कीर्तनादि
हरदम चलता ही रहता है साधकोंके लिए वे चाहें तो
एकान्त समय बातचीत करनेके लिए देते हैं इत्यादि
व्यवहारसे उन्होंको मन आकर्षित है ही
वहां श्रीपरमहंसदासजी महाराजके चरणोंमें दासका
प्रेम श्रीरामशरण महाराज मालूम करेंगे और
भाई लोकोंसे भी सप्रेम पत्र पावक

आपका
रामसुखदास
गोविन्द भवन
कलकत्ता

सं १९८९ आज आश्विन कृष्णा ५ मी
८-३

रतनगढ़में निवास

'कल्याण' का सम्पादन एवं सेवा–कार्योका संचालन करते हुए भी भाईजीका मन बीच–बीचमें सर्वथा एकान्त सेवनके लिये व्यग्र हो जाता। जब भी किसी निमित्त ऐसा शुभ अवसर मिलता भाईजी एकान्तमें चले जाते। ऐसा ही एक अवसर मिलने पर ये अपने मित्र लच्छीरामजी चूड़ीवालाके आग्रह पर आश्विन कृष्ण ३ सं० १९८९ (१८ सितम्बर, १९३२) को लक्ष्मणगढ़ गये। वहाँ ऋषिकुलके संचालनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें परामर्श करके वहाँसे रतनगढ़ चले गये। वहाँ रहनेकी इच्छा थी, अतः 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागको भी वहीं बुला लिया। एकान्तकी दृष्टिसे, रहनेके लिये

मोतीराम भरतियाकी ढाणीको चुना जो शहरसे लगभग डेढ़ मील दूर थी। 'कल्याण' के सम्पादन कार्यको देखते हुए ही, वहाँ एकान्त साधना चलने लगी। उस समय गीताप्रेसके कर्मचारियोंने हड़ताल कर दी और 'कल्याण' का सारा कार्य बन्द हो गया तो उसका समाधान करनेके लिये भाईजीको गोरखपुर बुलानेका आग्रह होने लगा किन्तु भाईजी कुछ दिन एकान्त साधनामें बिताना चाहते थे, अतः वहींसे पत्र द्वारा निर्देश देते हुए सात बातें लिखकर भेजी, जिनके आधारपर एक बार समझौता हो गया। फिर चिकित्साके लिये कलकत्ता जाकर गौहाटी होते हुए चैत्र कृष्ण १३ सं० १९८९ (२४ मार्च, १९३३) को गोरखपुर लौट आये।

पुनः एक वर्षका अखण्ड–संकीर्तन यज्ञ पूर्ण होनेपर 'कल्याण' का विशेषांक 'सन्तांक' तैयार करके भाईजी श्रीसेठजीसे अनुमति लेकर रतनगढ़ रहनेके लिये श्रावण शुक्ल ६ सं० १९९४ (१५ अगस्त, १९३७) को गोरखपुरसे रवाना हो गये। वहाँ अधिक दिन रहनेका मन था, अतः 'कल्याण' के पूरे सम्पादकीय विभागको भी साथ ले लिया। उस समयकी अपनी मनकी स्थितिका सांकेतिक चित्र एक पत्रमें लिखा, जिसका अंश निम्नलिखित है—

गोरखपुर, श्रावण शुक्ल ३, सं० १९९४
(९ अगस्त, १९३७)

प्रिय भाई ....,

सप्रेम हरिस्मरण। अभी ता रतनगढ़ जानेकी ही बात है। यद्यपि रतनगढ़ जानेमें, गोरखपुरसे जानेका मेरा उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। मैं तो बिलकुल एकान्तमें चार–छः महीना सर्वथा अकेला रहना चाहता था, परन्तु पूज्य माँजी वगैरह भी मुझको अकेला नहीं छोड़ना चाहती और मेरे कामकाजके साथी लोगोंको भी रखना आवश्यक–सा हो गया है।

जबतक जो काम करता हूँ, लगनसे जिम्मेदार आदमीकी तरह ही करता हूँ और लीलामयका संकेत समझकर ऐसा करनेमें प्रसन्नता होती है। इतना होनेपर भी जो कामसे भागनेका मन करता है, इसमें प्रधान कारण 'निवृत्ति परक प्रकृति' ही मालूम पड़ती है। यह बात नयी नहीं है। जबसे होश सँभाला, तबसे नाना प्रकारके व्यावहारिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रोंमें रहते हुए भी इस 'निवृत्तिपरक प्रकृति' की धारा निरन्तर समान रूपसे चित्तमें बहती देखी गयी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि शिमलापालके पौने दो वर्षको छोड़कर शेष सारा जीवन रहा है प्रवृत्तिमय

ही। उस पौने दो सालमें भी प्रवृत्तिका अभाव नहीं रहा है, तथापि चित्त तो निवृत्तिकी ओर ही ताकता रहा। संभव है, पूर्वजन्ममें कोई त्यागी संन्यासी रहा होऊँ। मैं बहुत दिनोंसे लक्ष्य करता हूँ गेरूआ वस्त्र, कमण्डलु, कौपीन आदि, अपने कपड़े और पात्र–से लगते हैं। नदी, तीर्थ और सन्यासियोंकी कुटियाएं घर–सा मालूम होती है। संग्रहकी अपेक्षा त्यागमें सुख मिलता है। बल्कि संग्रहका तो ध्यान ही नहीं रहता। घरकी चीज कोई ले जाता है या किसीको दे दी जाती है, तो अच्छा लगता है। अकेलेमें बिना किसीसे बोले–चाले पड़े रहनेमें अनुकूलता मालूम होती है। भीड़–भाड़से चित्त भागता है। कोई पास न आये, कोई न मिले किसीसे न बोलना पड़े, कोई नयी बात जाननेमें न आवे, ऐसी–सी इच्छा रहती है। ....इस बार इसी भावनासे अलग जानेका मन हुआ था। स्वास्थ्यादिकी बात तो गौण है। परन्तु यह भावना सफल नहीं होती दिखायी देती। अवश्य संन्यास--ग्रहण करनेकी इच्छा बिल्कुल नहीं है, परन्तु संन्यासीकी तरह रहनेका मन जरूर होता है, ...यह चित्तकी स्थिति है। ....

तुम्हारा—– हनुमान

भाईजीके साथ सहयोगियोंमें सर्वश्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी, शान्तनुबिहारीजी द्विवेदी (स्वामी अखण्डानन्दजी), भुवनेश्वरजी मिश्र 'माधव', कृष्णदासजी बंगाली, पं० देवधरजी शर्मा, दौलतरामजी तांबी, पं० गोवर्धनजी शर्मा आदि रतनगढ़ गये।

रतनगढ़ आनेके बाद भाईजी नित्य नियमित रूपसे प्रातःकाल तीन–चार घण्टे एकान्तमें बैठते थे, वस्तुतः वे ऐसे एकान्त सेवनके लिये ही यहाँ आये थे। बादमें उन्होंने प्रेमीजनोंको संकेत किया कि उस एकान्तमें भगवान् प्रायः स्वयं पधार कर सूत्ररूपसे रहस्यकी बातें समझा देते हैं।

श्रीगोस्वामीजी गणेशपुराणकी कथा कहते थे, उसके समापनपर भाद्र शुक्ल ३ सं० १९९४ (७ सितम्बर, १९३७) को भाईजी अपने परिकरों सहित बीकानेर गये। वहाँ श्रीलालीमाईजी एवं श्रीस्वयंज्योतिजी महाराजसे मिले। उन्हीं दिनों श्रीचम्पालालजी कोठारीके दामादका असामयिक देहान्त हो गया था, सो उनके घर जाकर ऐसे विलक्षण शब्दोंमें सान्त्वना दी कि उनका पूरा परिवार ही भगवान्‌में लग गया। (श्रीचम्पालालजीकी मृत्यु सं० २०२१ (सन् १९५४) में कलकत्तामें श्रीभाईजीके सम्मुख बड़े विलक्षण ढंगसे

भगवान्‌का दर्शन करते हुई थी।) दूसरे दिन ही पुनः रतनगढ़ लौट आये। रतनगढ़में भाईजीके रहनेसे प्रेमीजनोंमें कीर्तन–सत्संगका उत्साह बढ़ने लगा। बहुत बार चौबीस घण्टेके अखण्ड कीर्तनके आयोजन हुए कई बार तीन–तीन दिनोंके अखण्ड कीर्तनके आयोजन होते रहे।

आश्विन शुक्ल पूर्णिमासे फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा तक भाईजीने वहीं रहकर एक विशेष अनुष्ठान करनेका निश्चय किया। जिस धर्मशालामें 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागके लोग रहते थे, वहाँ नियमसे प्रातः पाँच बजे प्रार्थना एवं कीर्तन होता था। भाईजीका सत्संग प्रतिदिन होता था। प्रेमीजन भी भाईजीसे मिलनेके लिये दूर–दूरसे आते थे। अनुष्ठानकी समाप्तिके पश्चात् भाईजीकी उपरामता और भी बढ़ गई।

फाल्गुन शुक्ल ८ सं० १९९४ (१० मार्च, १९३८) को श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी रतनगढ़ पधारे तब नगर–संकीर्तनका आयोजन किया गया। श्रीसेठजी भी रतनगढ़ पधारे, उनके और भाईजीके प्रयत्नसे साम्प्रदायिक दंगा होते–होते बच गया। गीताप्रेसके कर्मचारियोंका उपद्रव शान्त न होनेसे श्रीभाईजी एक बार गोरखपुर गये। भाईजीके पहुँचते ही उनके नेता भाईजीकी बातें मान गये एवं उपद्रव शान्त हो गया। श्रीसेठजीके आग्रहसे कई महीने गोरखपुर रहना पड़ा।

सर्दी–गर्मीका शरीरपर असर नहीं

सं० १९९५ (सन् १९३८) में राजस्थानमें भयंकर अकाल पड़ा। भाईजी ऐसे सेवा कार्योंमें सबसे आगे रहते ही थे। उस समय अकाल पीड़ितोंकी सेवाका प्रबन्ध किया। इसी सहायता कार्यके बारेमें श्रीसेठजीसे परामर्श करने भाईजी बाँकुड़ा गये। वहाँसे राजस्थान लौट रहे थे, पौषका महीना था, कड़ाकेकी ठंड पड़ रही थी। बाबा भी भाईजीके साथ थे। भाईजीने देखा बाबाको जाड़ा लग रहा है सो उन्होंने अपनी कम्बलें भी बाबाको ओढ़ा दी। बाबाने कहा––आपको ठंड नहीं लगेगी ? भाईजी बोले––आप मुझे क्या समझते हैं ? मैंने इसका साधन किया हुआ है। इसी क्षण मैं जाड़ेका द्रष्टा बन जाऊँ तो मुझे जाड़ेका बिलकुल भान भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार गोरखपुरमें गर्मीके दिनोंमें काम करते हुए मेरे शरीरसे तड़–तड़ पसीना आता रहता है, लेकिन इससे मेरे काममें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती, न पंखेकी जरूरत पड़ती, न ठण्डी हवाकी। यह सुनकर बाबा

बोले——जाड़ेका भान न भी हो, तज्जनित असरके कारण शरीर अस्वस्थ तो हो सकता है। भाईजीने उत्तर दिया——वह भी नहीं हो सकता। इसके बाद तो बाबा क्या कहते, मुस्कुराने लगे।

दादरीमें एकान्त–सेवन

भाईजीकी एकान्त सेवनकी लालसा फाल्गुन सं० १९९५ (सन् १९३८) से पुनः तीव्र हो गई। काम करते थे पर मन नहीं लगता था। इस समय श्रीसेठजी द्वारा गीताकी तत्त्व–विवेचनी टीका लिखायी जा रही थी जिसे सं० १९९६ (सन् १९३९) के 'कल्याण' के विशेषांकके रूपमें निकालनेका निश्चय किया गया था। इस कार्यसे भाईजीको कुछ समय बाँकुड़ा भी रहना पड़ा। पर मनमें निश्चय कर लिया था कि इसके पश्चात् गोरखपुरसे कहीं एकान्तमें जाना ही है। श्रावण सं० १९९६ में 'गीतातत्त्वांक' छपकर तैयार हुआ। इसी बीच भाद्र कृष्ण ३ सं० १९९६ (१ सितम्बर, १९३९) को द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो जानेसे श्रीसेठजीने पन्द्रह–बीस दिन जानेसे रोक लिया। उन दिनों भाईजीका किसी काममें मन नहीं लगता था। 'कल्याण' का सम्पादन, लेख लिखना आदि सभी कुछ बन्द था। कार्यालयमें जाकर बैठ जानेपर, मन साथ न रहनेसे कोई कार्य नहीं कर पाते। अन्ततोगत्वा भाद्र शुक्ल १२ सं० १९९६ (२५ सितम्बर, १९३९) को दादरी (हरियाणा) के लिये प्रस्थान किया। रवाना होनेसे पूर्व भाईजीने सभी प्रेमीजनोंको बुलाया और बड़े प्रेमसे कहा——आपका प्रेम है तो मैं चाहे जहाँ रहूँ, आपके पास ही हूँ। प्रेमका बदला तो कुछ हो नहीं सकता। मैं जहाँ भी रहूँगा आपके प्रेमका ऋणी ही रहूँगा। हो सकता है मैं शीघ्र ही वापस आ जाऊँ या भगवान्की इच्छासे कुछ अधिक दिन वहाँ रहना हो जाय। ऐसा मेरा निश्चय नहीं है कि कभी वापिस न आऊँ। दूर रहनेपर मेरे एक पत्रका भी बड़ा असर हो सकता है। मैं दैवीप्रेरणासे ही जा रहा हूँ। विदाईके समयका दृश्य बड़ा ही हृदय विदारक था। सैकड़ों लोग स्टेशनपर खड़े करुण भावसे भाईजीकी ओर देख रहे थे।

एकान्त–सेवनके लिये स्थान दादरी चुननेका कारण यह था कि वहाँ डालमिया बन्धुओंकी सीमेन्ट फैक्ट्री थी और उनका आग्रह था कि एकान्तकी सारी व्यवस्था भाईजीके मनोनुकूल कर दी जायगी। डालमिया–बन्धुओंसे भाईजीका बहुत वर्षोसे मैत्री भाव था अतः उनका

आग्रह स्वीकार कर लिया। वहाँ पहुँचने पर भाईजीको एक पृथक बंगला दे दिया गया एवं जैसा भाईजी एकान्त चाहते थे, वैसी सारी व्यवस्था कर दी।

एक प्रश्न उठता है कि भाईजीको जब भगवान्‌के साक्षात् दर्शन, वार्तालापका सौभाग्य प्राप्त था, उसके बारह वर्ष बाद भी भाईजीको एकान्तमें साधना करनेकी क्यों आवश्यकता हुई ? इसका वास्तविक उत्तर तो अन्तर्यामी ही जाने, पर एक संकेत मिलता है। एक बार गोरखपुरमें भाईजीके कुछ प्रेमीजन उनसे आग्रह कर रहे थे कि हमको भी भगवान्‌के दर्शन करवाइये। जब आपकी भगवान्‌से बातें होती हैं तो हमारे बारेमें उनसे कहिये। तब भाईजीने कहा कि मैं जानता हूँ जो वस्तु मुझे प्राप्त है, वह आप लोगोंको प्राप्त नहीं है। किन्तु मैं चाहनेपर भी आपको वह प्राप्त नहीं करा सकता। मेरे प्रेमीजनोंका मेरे संकल्प–मात्रसे कल्याण हो जाय ऐसी मैं चेष्टा करना चाहता हूँ। परन्तु इस स्थितिको प्राप्त करनेका साधन बड़ा ही कठिन है। उसकी भूमिका मात्रके लिये छः महीने तो सर्वथा एकान्तमें अज्ञातवास और अजगरवृत्तिसे रहना पड़ता है। पूरे साधनमें कितना समय लगे पता नहीं।

भगवान्‌की ऐसी ही इच्छा थी––दादरीमें भाईजी लगभग तीन महीने ही रह सके। वहाँ भाईजीने अपनी निम्नाकिंत दिनचर्या बना रखी थी––

प्रातः	४ बजेसे ५ बजेतक	भगवान्‌की मधुर लीलाओंका आस्वादन
	५ बजेसे ६ बजेतक	शौच, स्नान, संध्या आदि
	६ बजेसे ७ बजेतक	आये हुए पत्रोंका हाथसे उत्तर देना
दिनमें	७ .३० बजेसे १०.३० बजेतक	कमरा बन्द करके एकान्त–साधन
	१०.३० बजेसे ११.३० बजेतक	शौच, स्नान, तर्पण आदि
	११.३० बजेसे १२.३० बजेतक	मौन रहकर जप करना
	१२.३० बजेसे १ बजेतक	भोजन
	१ बजेसे १.३० बजेतक	मौन खोलकर स्वल्प वार्तालाप
	१.३० बजेसे २.३० बजेतक	लिखकर बातें करना आवश्यक होनेपर
	२.३० बजेसे ५.३० बजेतक	कमरा बन्द करके एकान्त–साधना

५.३० बजेसे ६ बजेतक	आये हुए पत्रोंको पढ़ना
सायंकाल ६ बजेसे ७ बजेतक	शौच, स्नान, संध्या आदि
७ बजेसे ८.३० बजेतक	बाहर दूबपर बैठकर स्वल्प समाचार-पत्र पढ़ना, भोजन, मौन खोलकर आवश्यक वार्तालाप
रात्रि ८.३० बजेसे	एक लाख नाम-जप करके शयन

वहाँसे श्रीगोस्वामीजीको एक पत्रमें भाईजीने लिखा—

डालमिया, दादरी

आश्विन कृ० ६ सं० १९९६ (७ अक्टूबर, १९३९)

प्रिय श्रीगोस्वामीजी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला।

मैं एकान्तमें रहता हूँ, मेरे पास प्रायः कोई आते भी नहीं, परन्तु यहाँका वातावरण मीलका है और भी कई बातें हैं। अतः यहाँ स्थायी रूपसे रहनेका विचार न पहले था, न अब है। परन्तु यह भी निश्चय नहीं हो पाया कि यहाँसे कहाँ जाना चाहिये। रतनगढ़ मेरे मनके अनुकूल नहीं और दूसरी जगह स्थायी रूपसे रहनेमें पूज्य माँजी तथा सावित्रीकी माँको प्रतिकूलता मालूम होगी। यद्यपि जहाँ मैं रहूँ, वे वहीं रहनेको कहती हैं और रहेंगी भी, परन्तु उन्हें अनुकूल नहीं है, ऐसा मेरा अनुमान है। ऐसी स्थितिमें देखा जाय, कहाँ रहना हो। ....निस्तब्ध-नीरव-सा जीवन है और अभी यही प्रिय मालूम होता है।

आपका——हनुमान

दादरीमें भाईजीके साथ केवल बाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी) एवं गम्भीरचन्दजी दुजारी थे। वहाँ भाईजी जो लिखकर बातें करते थे उसका कुछ थोड़ा-सा अंश दिया जा रहा है—

आज सबेरे साढ़े सात बजेसे दस बजेतक बहुत आनन्द रहा। यह सोचा है छः घंटे लगभग अकेला रहूँ। ....संख्यासे कम-से-कम एक लाख नाम-जप नित्य हो। इससे अधिककी संख्या नहीं। ....शरीर प्रतिक्षण मर रहा है। इसलिये नाम-जप जबतक होश रहे घड़ी भर भी न

छोड़े। यदि ऐसा होगा तो बेहोशीमें भगवान् सम्भालेंगे। ....यदि भगवान् हमारी चिन्ता करें तो यह सिद्ध होता है कि हमारी चिन्ताका कोई कारण तो है। ....जब भगवान् हमारे हैं तो चिन्ताका कारण ही कहाँ ? ....भविष्यकी चिन्ता न करके वर्तमानमें जैसी कुछ भगवान्‌की प्रेरणा मनमें मालूम हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये––बस, चेष्टामात्र। भविष्यमें जो कुछ रचा हुआ है, हो ही जायगा। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है, पता नहीं मन कल क्या चाहेगा। भगवान्‌ने जो रच रखा है वही लक्ष्य है। .... .शरीरके संयोगको महत्त्व न देकर आत्माके संयोगको महत्त्व देना चाहिये। अतएव यदि भौतिक शरीरसे प्रेमियोंको परस्पर अलग रहना पड़े और आत्माका संयोग सच्चा हो तो अलग होनेपर भी रोज मिलन हो सकता है। ....सबसे उत्तम है कोई भी संकल्प न हो, हो तो यही कि भगवान्‌का संकल्प पूरा हो। .... यह न हो सके तो पारमार्थिक शुभ संकल्प हों। एकान्तमें बैठा रहूँ उस समय बीचमें उठनेसे कई दिनोंका किया हुआ कार्य कुछ खराब हो जाता है। ....कई बार बहुत ही serious stage में रहता हूँ

............चिन्ता तो बस एक भगवच्चिंतनकी ही करनी चाहिये। मन ठीक न हो तो भी कोई बात नहीं। भगवान्‌की कृपासे मनके ठीक हुए बिना भी जो कुछ होना है, हो जायगा। मन ठीक करनेकी जरूरत होगी तो उसे भी कृपा अनायास ही ठीक कर लेगी। आप यह विश्वास कीजिये, हम लोगोंपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। ....यहाँ तो सर्वथा एकान्त कमरा नहीं है इससे (कोई नये आदमीके आनेका) कम पता लगता है। यदि बिल्कुल एकान्त हो––दूसरा कोई प्रवेश करे ही नहीं तब तो बहुत जल्दी पता लग जाता है। साधनाके लिये उसीकी जरूरत है। नहीं तो स्थान व्यभिचार होनेसे वातावरण साधनके अनुकूल नहीं रहता। ....वस्त्र और आसन शुद्धि भी यहाँ ठीक नहीं है।

श्रीकृष्णभक्त विदुषी महिला रैहाना तैय्यबजीसे प्रेम-साधनापर गम्भीर पत्रोंका आदान-प्रदान यहींसे हुआ। इन्हीं दिनों राजस्थानमें भयंकर अकाल पड़ा। रतनगढ़के आस-पासका सेवा-कार्य भाईजीने अपने निर्देश द्वारा यहींसे प्रारम्भ करा दिया। बादमें भाईजीको इस कार्यके उपलक्षमें बीकानेरके महाराज श्रीगंगासिंहजी द्वारा 'सिरोपाव' और 'खास रुक्का' (प्रशंसा पत्र)

भाईजीको दिया गया। बादमें भाईजी दादरीसे रतनगढ़ चले गये।

पूज्य बाबाकी लेखनीसे स्वानुभूतियाँ

भाईजीको बाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) ने स्वानुभूतियाँ अपने हाथसे लिखकर दीं, वह आगे प्रस्तुत हैं——

(१)

गीतातत्त्वांक निकलनेके बादकी बातें लिख रहा हूँ। आपपर विश्वास तो बहुत था, पर डर यह था कि आपको सुनाकर कह दूँगा तो आप कह दीजियेगा कि तुम्हारे अन्दर कामविकार होते हैं, इसलिये तुम अधिकारी नहीं हो, पर सोचता था, मेरे इस कामविकारका स्वरूप कैसे समझाऊँ। स्त्री मेरी भोग्य वस्तु है——यह भाव न तब था और न अब है, पर अब भी मेरे मनकी दशा विचित्र है, मैं सुन्दरी स्त्रीको देखता हूँ तो बराबर नहीं कभी-कभी यह मनमें आता है, देखो यह सुन्दर है, भगवान्‌ने इसे देहाध्यास भी ऐसा ही दिया है कि अपने वास्तविक स्वरूपके अनुरूप यह अपनेको देह समझती है। राधारानीका अंश होकर भी मैं तो पुरुषदेहमें हूँ, देहाध्यास भी है, पुरुषका है, मैं अभागा हूँ। फिर सोचता हूँ, यह तो पार्थिव शरीर है, गन्दा है, राधारानीमें तो देह-देहीका भेद नहीं है। यह तो पार्थिव सौन्दर्य ही वस्तुतः है नहीं, शरीर तो यहीं रहता है, राधारानीका अंश जबतक रहता है, तभीतक सुन्दर है, तो सुन्दर अंश है, यह शरीर नहीं——इस प्रकार घृणा और आकर्षणके भाव न जाने कितने रूपोंमें, कितने प्रकारसे अब भी, जब वृत्ति बहिर्मुखी रहती है, तब कभी-कभी आते हैं। साथ ही यह बात स्फुरित होती है——मैं स्त्री होती। अस्तु, मनके इस standard को लेकर एकाकी उस समय भी बढ़ रहा था। वैराग्य, रागका स्वरूप ही कुछ और ही मेरे लिये थे। अवश्य ही प्रारम्भमें तथा अब भी यही धुँधली चाह मेरे मनमें काम कर रही है कि प्रेम अर्थात् श्रीकृष्णके सुखमें सुखी हो जाना, मेरे जीवनमें उतर जाय। इसी इच्छासे प्रेरित होकर चाहे मनका धोखा भी इसमें सम्मिलित हो——अबतककी चेष्टाएँ लगन-बेलगनसे होती गयी हैं। कह ही चुका हूँ कि गौड़ीय साहित्यका मेरे ऊपर बहुत असर हुआ, क्योंकि मेरे मनके भावोंका, जो अपने-आप उदय हुए थे——समर्थक था। पढ़ते-पढ़ते सेवाका भाव प्रबल होता गया। पहले स्त्रीरूपमें कुछ अपने सुखकी वासना छिपी रहती थी, वह शिथिल हो गई। फिर मनमें आया गुरु बनाओ, किसे

गुरु बनाऊँ यह प्रश्न उपस्थित हुआ, थोड़ा सोचकर मानसिक जगत्‌में बिना किसी विधि–विधानके श्रीरूपमंजरी देवीको गुरुरूपमें स्वीकार कर लिया। यह कहना भूल गया कि सर्वथा प्रारम्भसे लेकर अबतक जो हुआ है, हो रहा है, किया है, कर रहा हूँ, इन सबके होते समय, करते समय मेरे मनकी कैसी दशा है, इसे ठीक–ठीक समझ नहीं सकता। कभी उत्कट व्याकुलता, कभी निराशा, कभी आसक्ति, कभी पतनका डर, कभी–कभी बिना विचारे निरुद्देश्य ये बातें होती गयी हैं, पर अधिकांश क्या, प्रायः सबमें, चाहे कृत्रिमभाव ही हो, 'कैसे श्रीकृष्णका हो जाऊँ', यह वासना कर रही है। अतः नाम–जप करते हुए अष्टकालीन लीला अथवा किसी प्रकारकी लीलाका कोर्स बनाकर सेवा करनेका विचार उत्पन्न हुआ। साथ ही पुरुषोत्तम–तत्त्व लेख नित्यकर्ममें शामिल हो गया था। रोज पढ़ता था, अब भी रोज पढ़ता हूँ और यही सोचता था और सोचता हूँ कि मैं तो राधारानीका एक अंश हूँ, एक क्षुद्रतम अंश हूँ, चाहे मेरा स्थान कुछ भी क्यों न हो, हूँ उसी धातुका। यह विचार व्याकुल करने लगा––लीलाका कोर्स कहाँ पाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे बतायेगा, कौन मेरी मानसिक अवस्थाको समझेगा। कोई मेरा पतन होनेका अनुमान करेंगे, कोई हँसेंगे। आपसे संकोच था। पैसे थे नहीं कि सब गौड़ीय साहित्य मँगाकर देखूँ––उसमें आशा थी कि लीलाका कोर्स प्राप्त होगा। एक दिन दोपहरमें आपके पास बैठा था, फिर उठकर चला आया। (गोरखपुरकी बात है) आपने मुझे बुलाया और पद्मपुराणकी बातें सुनायीं। मुझे बुलाकर सुनाया और कहा कि देखिये, आपको कुछ बातें सुनाता हूँ। थोड़ा सुनाकर आपने कहा––इसे आप पढ़ जाइये। मैं कुटियापर या आपके पास ही पढ़ने लग गया, उसमेंसे तीन अध्याय ऐसे मिले जो मेरे जीवनके प्राणस्वरूप हो गये। उसीमें एक अष्टकालीन लीलाका एक कोर्स अत्यन्त सुन्दर प्राप्त हुआ। उसमें शंकर भगवान्‌ने कहा––जैसे प्रकट लीलामें वृन्दावनमें विहार करते हैं, वैसे ही नित्य करते हैं। उनकी लीला, नित्यलीला चलती रहती है, यह श्लोक मुझे अत्यधिक प्यारा लगा। सोचने लगा––ऐ ! आज भी, इस क्षण भी, इस समय भी वे लीला कर रहे हैं, मैं उन्हें देख नहीं रही हूँ (क्रियाका स्त्रीलिंग व्यवहार इसलिये कहीं–कहीं हुआ है कि मानसिक जगत्‌में मेरी प्रार्थना आदि सब कुछ इसी रूपमें होती है)। बार–बार यह श्लोक मनमें आता और अब भी आता है––

यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्तिताः।

तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि।।

सोचता त्रिकालज्ञ सर्वथा सत्यवादी ऋषियोंके वचन हैं।

'नित्यलीलायां' और 'सन्ति' ऐसा प्रयोग है। शंकरके वचन हैं, नारद सुननेवाले हैं। तो आज भी इसी रूपमें, इसी प्रकार वे हैं, नित्य हैं, रहेंगे। इसको नारदजीने वृन्दादेवीके पास जाकर पूछा है, वृन्दाने लीलाका कोर्स बतलाया है। भगवान् शंकरने उससे यह भी कहा है कि अपनेको स्त्रीके रूपमें भावना करके तब इस लीलाके द्वारा सेवा करनी चाहिये। यह मेरे भावोंका समर्थक ही था। अतः साधना चल पड़ी, धीरे-धीरे, जल्दी-जल्दी, कभी कैसे, कभी कैसे, उसीके आधार पर मानसिक सेवा शुरू हुई, जीवनमें सफ़लताकी आशासे आनन्दित हो उठा। 'हरे राम हरे राम' जप और मनके द्वारा सब काम करते हुए भी मानसिक सेवा चल पड़ी। चलती गयी! वृन्दावनके प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया, पर साथ ही आपके प्रति! उस समय आपके प्रति यही सोचता था, मैं परा प्रकृति हूँ, राधारानीका अंश हूँ, तो भाईजी भी तो यही हैं। फर्क यह है कि मेरा देहाभ्यास निवृत्त नहीं हुआ, मुझे सेवा का अधिकार नहीं है, भाईजी इस देहसे ऊपर उठ चुके हैं, सेवा पाकर कृतार्थ हो चुके हैं। अस्तु, गोरखपुरसे दादरी आये। वहाँ साधना ज्योंकी त्यों थी, पर हठात् एक परिवर्तन हुआ। बाँकुड़ासे यह चौपाई याद आती रहती थी—**'एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।** सोचता; सेवाके योग्य शरीर तो है नहीं, मन है, वाणी है। मनसे तो यथाशक्ति चेष्टा करता हूँ, पर वाणीसे क्या सेवा करूँ, कैसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे। हठात् यह विचार आया कि श्रीकृष्णको तो राधारानी सबसे अधिक प्यारी हैं, फिर उनका नाम उन्हें जरूर प्रिय होगा। इस प्रकारका स्पष्ट तो नहीं कुछ-कुछ ऐसे ही समर्थक भाव ब्रह्मवैवर्तके कई श्लोकोंमें प्राप्त हुए थे। अतः हठात् वह विचार इतना प्रबल हो गया कि तीन लाख नामका नियम छूट गया, जबरदस्तीसे छूट गया। आपकी सलाहकी परवाह न करके 'राधे-राधे कृष्ण' कहने लगा। फिर पीछे आपको कह दिया था। राधासुधानिधि ग्रन्थमें एक अपूर्व श्लोक प्राप्त हुआ, जिससे यह विश्वास बढ़ा कि 'राधा' नाम श्रीकृष्णको बहुत प्यारा है। अतः 'राधेकृष्ण-राधेकृष्ण' जप और मानसिक अष्टकालीन सेवा चली।

रतनगढ़का जीवन प्रारम्भ हुआ। हठात् एक पुस्तकमें यह श्लोक मिला जो 'रा' शब्द कहता है, उसे तो मैं अपनी उत्तमा भक्ति देता हूँ और 'धा'

उच्चारण करते ही तो मैं सुननेके लोभसे उसके पीछे–पीछे चलता हूँ। यह स्वयं श्रीकृष्णके वचन हैं और राधारानीके प्रति। श्लोक ब्रह्मवैवर्तका है, पहले तो बहुत ढूँढ़नेपर भी यह नहीं मिला, पर एक विलक्षण ढंगसे एक दिन मुझे मिल गया। श्लोक तो ब्रह्मवैवर्तमें हालमें मिला, पर पहले ही बहुत कुछ विश्वास हो गया था कि उद्धृत करनेवालेने झूठ नहीं किया होगा। दिल्लीमें महानन्दकी स्त्रीके इलाजके समय मथुराप्रसादजीके घरपर, 'श्रेय'में यह श्लोक उद्धृत देखकर बहुत विश्वास हुआ——अवश्य ही ये श्रीकृष्णके वचन हैं। फिर तो यह 'राधा' नाम साध्य और साधन हो गया। 'रा' कहते–कहते मुझे उत्तमा भक्ति प्राप्त हो जायगी और 'धा' अर्थात् 'राधा' से श्रीकृष्णकी श्रवणेन्द्रियकी तृप्ति होती है। इतनी तृप्ति होती है कि 'राधा' कहनेवालेके पीछे–पीछे चलते हैं, इतनी तृप्ति उन्हें किसी कार्यसे नहीं होती, क्योंकि पीछे–पीछे चलनेका एक उल्लेख केवल भागवतमें प्राप्त होता है, पर वह मर्यादाका है, यहाँ तो उससे ऊँची चीज है, इस प्रकारके भाव जाकर अनेक विचार–तरंग उठकर 'राधा' नाम लेनेकी प्रवृत्ति बढ़ती ही चली गयी। पर सोचता था, मेरी राधारानी तो 'कृष्ण' नामसे प्रसन्न होंगी, अतएव 'राधेकृष्ण' नाम जीवनकी प्रिय वस्तु हो गयी। यह भाव कभी–कभी इतना बढ़ जाता है कि गोरखपुरमें इस बार विचार आया कि गोपी–देहसे सेवा करनेवाली बहुत–सी सखियाँ हैं, मैं स्त्री–शरीर गोपी–देहकी कामना करके तो आत्मेन्द्रिय–प्रीतिकी इच्छा ही करता हूँ। अतः अच्छा हो, दिव्य वृन्दावनधाममें तोता बन जाऊँ और निरन्तर 'राधेकृष्ण' कहकर उड़कर प्रिया–प्रियतमको सुख पहुँचाऊँ। फिर सोचा——तोता पुरुष है, मैं तो सारी होऊँगी। कुछ दिनतक यह भाव इतना प्रबल रहा कि मनमें आता कि सारी देखनेमें कैसी होती है, अपने भावी शरीरको देख तो लूँ। मैंने मैना नहीं देखी है। सोचा है, अंग्रेजी डिक्शनरीमें चित्र मिल सकता है। पर मैनाका अंग्रेजी नहीं जानता था, गोस्वामीजीसे, माधवजीसे पूछा——वे लोग भी नहीं बता सके। इच्छा हुई आपको मैना मँगानेके लिये कहूँ। उसे देखूँगा। फिर आया श्रीकृष्ण चाहेंगे तब दिखा देंगे, कुछ भी नहीं कहूँगा। आगे चलकर यह भाव ठंडा पड़ गया और इस रूपमें हो गया——उनकी इच्छापर छोड़ दूँ, वे जैसी सेवा चाहें, जैसे शरीरसे चाहें, वही शरीर दें, उनके सुखके लिये सेवा है। सेवा करनी है। अस्तु।

इस प्रकार 'राधेकृष्ण' नाम और सेवा चलती रही। मौन लेनेके पूर्व

कई कारणोंसे यह डर लगने लगा कि कहीं मेरा पतन न हो जाय, पर क्या करूँ, किसका आश्रय लूँ, मेरा कौन ? ये बातें, ये विचार तभी उठते थे जबकि वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर मानसिक सेवाके जगत्‌से नीचे अधिक देर रह जाती थीं। ....फिर, 'नामचिन्तामणिकृष्णः' यह श्लोक ध्यानमें आया और भावोंके प्रवाह आ गये, सोचा 'कृष्ण' नाम चैतन्य है। इस रूपमें श्रीकृष्ण हैं मेरे पास, फिर भय किस बातका और **'न मे भक्तः प्रणश्यति'** वचन झूठा नहीं है। 'राधा' उच्चारणके नाते उनका भक्त भी हूँ तो। यह भी आया, दादरीमें भी आता था और अब भी किसी रूपमें आता है कि गिर ही जाऊँगा तो क्या होगा, उनकी इच्छा यही है तो हो, अनन्त जन्म बीते, और भी अनन्त बीतें। पर गिरनेसे डर मालूम पड़ता था, यह भाव उस समय कुछ कमजोर हो जाता था, गिरनेकी इच्छा नहीं होती थी। अब गिरनेका वह भय तो मालूम नहीं पड़ता, पर हृदयको एक ठेस-सी लगती है कि यदि गिर जाऊँगा तो मुझे वह सेवा नहीं मिलेगी पर इधर यह भाव बहुत तेजीसे बहुत जोरसे दृढ़ होता जा रहा है कि जो कुछ भी होता है, श्रीकृष्ण ही करते हैं, उनकी इच्छा पूर्ण हो। न मैं देह हूँ, न नाम हूँ, मैं तो उनकी प्रियसे प्रिय वस्तु हूँ, यदि नारकीय देह देकर वे सुख पायें तो क्या हर्ज है ? प्रार्थना भी कभी-कभी होने लगती है—ले चलो नाथ ! जहाँ इच्छा हो, नरकमें इच्छा हो नरकमें ले चलो। यमदूतके रूपमें तुम मेरे शरीरको चीर-फाड़कर खाना चाहो, खाओ, अरे, यह फाड़ी जानेवाली देह भी तुम ही तो बनोगे। वर्तमानके विचारके सम्बन्धमें पीछे लिखूँगा। अब मौनके पास लौट आता हूँ। ठीक याद नहीं, कई प्रकारके विचार करके यह तय किया कि अब 'राधेकृष्ण' ही बोलना है और कुछ नहीं। ....डेढ़ सालसे 'राधेकृष्ण' जप और कीर्तन तथा पूर्ववत् मानसिक सेवा चल रही है।

अब तात्त्विक विचारके सम्बन्धमें भी कुछ लिखना जरूरी समझकर लिख रहा हूँ। श्रीकृष्णके वचन कहीं भी किसी शास्त्रमें हों, बड़े प्यारे लगते हैं और मेरा जगत्‌से सबसे अधिक विश्वास आपकी बातोंपर होता, आपकी बात सबसे अधिक खींचती है। यह प्रश्न उठता ही रहता है, मैं कौन हूँ। विचार उठने लगते हैं और सोचता हूँ, चक्रधर और इस नामसे अभिहित शरीर तो मैं हूँ नहीं। इस नामसे मेरा सम्बन्ध, इस शरीरसे मेरा सम्बन्ध तो केवल उन्तीस-तीस सालका है, फिर कौन हूँ ? मनसे उत्तर मिलता है—भाईजीने कहा है, उनसे बड़ा विश्वासपात्र और कौन है, मैं राधारानीका

अंश हूँ। फिर इस शरीरमें क्यों हूँ, यह अध्यास क्यों है, यह ममता क्यों है ? कभी मनमें आता है कि इस शरीरको भूल जाऊँ। जैसे पूर्वके शरीरोंको भूल गया, वैसे ही जीते हुए ही इस शरीरको भूल जाऊँ और राधा-रानीके चरणोंमें, जैसे मानसिक जगत्‌में हूँ, उसमें स्थित हो जाऊँ। शरीर छूट जायगा, मुझे पता नहीं चलेगा, मैं तो कभी अन्त न होनेवाले देशमें रहूँगा, उस सौभाग्यका कभी अन्त न होगा। वह दिव्य राज्य रहेगा, राधारानीके चरणोंमें रहकर अनन्तकालके लिये सेवा करती रह जाऊँगी। फिर क्यों नहीं इस जगत्‌को भूल पाती ? भूलनेकी तीव्र चाह क्यों नहीं हो पाती ? ....कभी विचार आता है, यह सामने क्या दृश्य देख रहा हूँ, यह जगत् क्या है ? ....गोरखपुरमें आपने कहा था——श्रीकृष्णने समस्त जगत्‌को अपने अन्दर दिखलाकर, केवल कहकर ही नहीं, यह बतला दिया——सब कुछ वे ही हैं, सब कुछ उनके नियन्त्रणमें ही है। ....यह बात बहुत जोरसे असर कर गयी। ....इसके बाद मानसिक जगत्‌में राधारानीके महलकी अटारीपर राधारानीके चरणोंमें बैठकर यह सोचा करती——वे जो श्रीकृष्ण इस समय दूध दुह रहे हैं, उन्होंने अपने ही अन्दर इतना बड़ा जगत् छिपा रखा है। संध्याके समय राधारानी अपने महलकी अटारीपर चढ़कर गोष्ठसे लौटकर आये हुए श्रीकृष्णकी शोभा निहारती है, गायोंके झुण्डमे रहकर श्रीकृष्ण बार-बार राधारानीकी ओर देखते रहते हैं और राधारानीके पास बैठी हूँ, इस प्रकारका चिन्तन संध्याके समय होता है। उस समय यह विचार कई बार उठता है——मेरे हृदयधन ! तुमने इतनी लीला रच रखी है, कभी-कभी व्याकुल होकर प्रार्थना होने लग जाती है कि नाथ ! मेरे सामनेसे यह रूप हटा लो, इसी श्यामसुन्दरके रूपमें रह जाओ और सब भूल जाऊँ। कभी-कभी राधारानीसे प्रार्थना होने लग जाती है——राधारानी ! तुम्हारा ही अंश हूँ, क्षुद्रतम ही सही, तुम्हारा ही हूँ, फिर एक बारके लिये मुझे बुला लो, ...इस प्रकार अनेक प्रार्थना अनेक समय होती रहती हैं।

....भागवत मेरा प्रिय ग्रंथ है, खासकर श्रीकृष्णके वचन जहाँ पढ़ता हूँ, वही मन खिंचने लगता है। कुछ दिन हुए यह विचार फिर आया कि यह आँखोंके सामने जो जगत् है, वह वस्तुतः क्या है ? बहुत शास्त्रोंके वचनोंके संस्कारके आधारपर मन यह निर्णय देता कि यह सब श्रीकृष्ण ही हैं। ....इस प्रकार उधेड़बुन होते-होते एक दिन एक श्लोक एकादश

स्कन्धमें प्राप्त हुआ—'मनसे, वचनसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो ग्रहण होता है, वह सब मैं ही हूँ, मेरे सिवा कुछ है ही नहीं, ऐसा जानो। यह श्रीकृष्णका हंसरूपसे सनकादिकोंके प्रति उपदेश है। इस श्लोकने मुझे बहुत अधिक आकर्षित किया—फिर तो बार-बार यही सोचता कि वे ही श्रीकृष्ण जो मानसिक जगत्‌में हैं, इतने रूपमें दीख रहे हैं, पर राधारानी कहाँ हैं ? जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ तो राधारानी हैं ही, क्योंकि राधारानी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं। पद्मपुराण एवं स्कन्दपुराणवाले भागवत-माहात्म्यमें तथा कई जगहके ऐसे संस्कार मनमें हैं कि राधारानी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, श्रीकृष्ण राधा हैं, राधा श्रीकृष्ण हैं। अतः दो-चार दिनतक किसी जन्तु, प्राणी, मनुष्यपर दृष्टि जाती तो ऐसा चिन्तन होता है कि इसके अन्दर श्रीकृष्ण हैं और उनके हृदयमें राधारानी हैं। फिर यह श्लोक (मनसा, वचसा, दृष्टा..............अहमेव) इस रूपमें स्फुरित होने लगता कि जो देखती हूँ, जो सुनती हूँ, जो स्पर्श करती हूँ सब कुछ, सबके सब श्रीकृष्ण हैं। भूख लगती तब सोचता—भूखका अनुभव तो मनके द्वारा होता है, तो भूखके रूपमें श्रीकृष्ण ही आयें हैं। तृप्तिके रूपमें श्रीकृष्ण ही आते हैं, फिर यह मन क्या वस्तु है ? गीताका (इन्द्रियाणां मनश्चास्मि) यह श्लोक ध्यानमें आया—तो फिर मन भी श्रीकृष्ण है, तो यह कभी मलिन क्यों दीखता है, इसमें पहले गन्दी स्फुरणायें, विषयासक्ति क्यों है ? भाव बढ़ जानेपर प्रार्थना कहने लगती—मनके रूपमें भी तुम्हीं हो नाथ ! मेरे स्वामिन् ! इस गन्दे रूपमें क्यों आते हो, मेरे सामने उसी श्यामसुन्दर-रूपमें परिणत हो आओ, तुम्हारा यह वीभत्स रूप मुझे अच्छा नहीं लगता..............फिर विचार आता—पतिव्रता किसीको प्यार नहीं करती, पतिको प्यार करती है ....हे नाथ ! जिस रूपमें ....हो, उसी रूपमें रहो......................मैं जानती हूँ, मै अबला हूँ, मेरेपर कृपा करो, कृपामय ! ....फिर सोचता—इस प्रार्थनाके रूपमें भी तो वे ही आये, बस-बस, मैं देख रही हूँ, अनन्त रूपोंमें देख रही हूँ, पर जानती नहीं थी, आज पहचान गयी। यह अन्तिमभाव आजकल निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। जब सेवाके समय मानसिक जगत्‌में अपनेको चिन्तन करता हूँ उस समय यह कभी-कभी विचार होता है कि जिस गोपी देहसे मैं सेवा कर रही हूँ, उस देहके दृश्यका भी अनुभव तो मनसे हो रहा है, मुझे हो रहा है, तो मनसे अनुभूत चीज तो श्रीकृष्ण ही हैं..............तो क्या होगा ? मालूम पड़ता है, यह होगा कि मेरा यह शरीर छूटते ही मैं उस देहमें प्रविष्ट

हो जाऊँगी और श्रीकृष्णमयी होकर श्रीकृष्णमयी लीलामें अनन्तकालके लिये सम्मिलित हो जाऊँगी, यही परमतत्त्व है। बस, मनकी जहाँतक पहुँच है यह चरमतत्त्व है। फिर विचार होता है, कि उस मानसिक जगत्‌से लौटकर इस सामनेके जगत्‌में क्यों आ जाती हूँ ....उस समय

राधेकृष्ण

इससे ऊपरकी बातें कल रातको १२ बजेतक लिखी थीं, कल लिखनेकी बहुत बात थी, पर आज क्रम नहीं सूझ रहा है, इतनी अधिक बातें—इतने अधिक भावोंकी तरंग है, जिन्हें लगातार कई दिनतक लिखकर भी समाप्त नहीं कर सकूँगा। वर्तमानकी मेरी दशा कैसी है, यह मैं इच्छा करनेपर भी नहीं समझा सकता। समझाने जाकर कुछ-का-कुछ लिख जाऊँगा। मलिन, नीरस, सरस व्याकुलतामय भावोंका प्रवाह बहता रहता है, पता नहीं आगे मेरी कैसी दशा होगी। वर्तमानकी स्थितिका कुछ नमूना उपसंहारके रूपमें लिख रहा हूँ—

...........सोचता हूँ—मैं लीला देख रहा हूँ, स्वामीकी लीला देख रही हूँ। कबतक यह लीला बदलेगी—पता नहीं ....समस्त बुरे-भले विचार, स्फुरणायें, भावके रूपमें वे मेरे सामने आ रहे हैं, जिस मनसे, जिस वाणीसे साधना हो रही है वह मानवतीकी साधनाके रूपमें भी वही है, साधनाके फलरूपमें भी वही आयेंगे। मैं केवल देख रही हूँ, मैं कौन हूँ ? मैं उन्हीं राधारानीका, जो मानसिक जगत्‌में है, एक क्षुद्रतम अंश हूँ ....पर इतनी ही लीला नहीं है, इससे भी परे है, क्या है, पता नहीं। ....वे अनन्त लीलामय हैं। किसी भी लीलाका एक कण भी अनुभव कर पाती तो निहाल हो जाती .... क्यों नहीं अनुभव करती हूँ ? चाहती नहीं हूँ। चाहती क्यों नहीं हूँ ? मोहित हूँ। मोहित कौन कर रहा है ? श्रीकृष्णकी प्रिय-से-प्रिय वस्तु मैं हूँ, मुझे श्रीकृष्णके सिवा और कौन मोहित कर सकता है ? तो करो मोहित। नाथ ! तुम सुखी होओ ....

कभी ये तात्त्विक विचार भूल जाता हूँ। अत्यन्त व्याकुल हो जाता हूँ। रोने लग जाता हूँ। अत्यन्त असहाया, निराश्रया अबलाके रूपमें अनुभव करके रोने लगता हूँ। प्रार्थना करता हूँ—तुम्हारे सिवा मेरा और कोई तो नहीं है, कौन मेरी सुनेगा .... मेरे सामनेसे यह दृश्य हटा लो ** मुझे राधारानीके पास पहुँचा दो, बस इतना ही ....कभी-कभी प्रार्थना करता हूँ—मेरे मनमें विरहकी आग जला दी, बस, निरन्तर अनन्तकालके

लिये तुम्हारे लिये रोता ही रह जाऊँ। ....कभी कहता हूँ राधारानी तो सर्वथा तुम्हारे प्रेममें विभोर रहती हैं, सरलताकी चरम सीमा हैं। सर्वज्ञता आदि गुण उनमें हैं या नहीं, पता नहीं। एक बारके लिये उन्हें मेरी याद दिला दो, तुम्हें मेरी अवस्थाका पता है।

..........कभी सोचता हूँ, वे सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं, हमारे सुहृद हैं, हमारे स्वामी हैं, मैं उन्हें अत्यधिक प्यारी हूँ---बस आनन्दमें भर जाता हूँ, आनन्दकी बाढ़ आ जाती है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, कहकर शान्त हो जाता हूँ।

.............महाप्रभुने अपने जीवनमें शिक्षाष्टकमें **'आश्लिष्ट मां पादरतां'** श्लोक कहकर उसकी व्याख्या की है। कृष्णेन्द्रि–प्रीतिकी कामनाके स्वरूपका उच्चतम वर्णन है। **'एद् राधार वचन विशुद्ध प्रेम लक्षण आस्वादाय गौरराय'** पढ़कर सोचता हूँ---राधारानीका यह प्रेममय स्वरूप कितना उच्च है, मैं अंश हूँ, एक कण भी मुझमें आ जाता तो मैं कृतार्थ हो जाता। 'गोपीभावकी साधना' शीर्षक लेखमें आपने लिखा है कि गोपियोंका हृदय यही पुकारा करता है ......। सर्वस्व अर्पणका उच्चतम चित्रण है। सोचता हूँ, ऐसा भाव तो कुछ–कुछ मेरा है, पर है ऊपरी, यदि भीतर उतर जाता तो निहाल हो जाता। ये बातें बहुत पहले मेरे मनमें आती थीं। मैंने आपके लेखोंको, महाप्रभुके जीवनको बहुत बार पढ़ा है। सम्भव है, ऐसे संस्कार उद्‌भुत होनेमें यही हेतु हुए हैं, पर जब मैंने महाप्रभुकी उस श्लोककी व्याख्या तथा आपका वह लेख पढ़ा तो मालूम हुआ ठीक–ठीक मेरे अन्तर्हृदयके भावोंका चित्रण हुआ है। 'आमि कृष्णपददासी' महाप्रभुकी यह व्याख्या तथा आपके उस लेखका कुछ अंश---उन–उन भावोंके उच्चतम चित्रण हैं, उन्हें पढ़कर कभी–कभी इतने ऊँचे त्यागपूर्ण समर्पणकी भावनामें तन्मय हो जाता हूँ कि कोई दुःख ही नहीं रह जाता। ....

.... जब बाह्य वृत्तियाँ होती हैं तो कभी याद आता है 'आश्वचाण्डाल–गोखरम्' सबको प्रणाम करो। सोचता हूँ, मेरे श्रीकृष्ण ही, मेरे स्वामी ही इन रूपोंमें हैं .... वे प्रणाम करानेके लिये कहते हैं ....कुत्ते, गदहे, बैल, साँड़ पर दृष्टि जाती है, सोचते–सोचते अपनी कुटियामें चला आता हूँ। कभी–कभी अत्यन्त व्याकुल होकर पूछता हूँ, एक बारके लिये आकर बता जाओ, नाथ ! तुम्हीं हो, सर्वथा तुम्हीं हो अथवा कुछ फर्क है ? तुम्हारी सेवा कैसे करूँ ? फिर मन आता है सेवा शरीरसे होगी, मनसे होगी, वाणीसे होगी। मैं तीनों नहीं हूँ, इन तीनोंके रूपमें वे ही हैं। मैं तो

देखूँगा, वे अपनी ही सेवा अपने–आप जैसी मर्जी हो करें। मैं देखती रहूँगी।

...........कभी सोचता हूँ तुम किस बातसे प्रसन्न होगे, नाथ ! मुझसे क्यों रूठे हो, मैंने क्या अपराध किया है ? मैं व्यभिचारिणी हूँ इसीलिये रूठे हो ? बताओ नाथ ! और कितने दिनतक यह नीरस जीवन, प्रेमशून्य जीवन, मलिन जीवन चलेगा ? भर दो मेरे नाथ ! पेरे हृदयको अपने प्रेमसे। उसमें डूबती–उतराती रहूँ!

.... तुमंसे अलग क्यों हूँ नाथ ? .... फिर यह बात याद आती है––गोपियों, तुमसे अलग हूँ, तुम्हारे नयनोंका तारा होकर भी तुमसे अलग हूँ, पर इसलिये अलग हूँ कि तुन निरन्तर मेरा ही चिन्तन करो, तुम्हारी प्रत्येक वृत्तियाँ मेरेमें लग जायँ। मैं दूर हूँ, दूर रहनेपर प्रियतममें मन जैसा लगता है वैसा नजदीक रहनेपर नहीं लगता। यह उद्धवके द्वारा प्रेषित सन्देश है। सोचता हूँ, इसलिये मुझसे अलग हैं, तो अखण्ड चिन्तन करूँ। बस, उन्हींका चिंतन करूँ। फिर क्यों नहीं कर पाती ? यह मोह क्या है ? कौन इसे मेटेगा ? यह विचार आकर चिन्तनकी तत्परता बढ़ती है।

भागवत मेरा प्रिय ग्रन्थ है, कुछ संस्कृत जानता ही हूँ। खासकर जो श्लोक प्यारे हैं उनकी अनेक टीकायें पढ़ चुका हूँ। पर भागवतांक निकलनेके बाद अब दूसरी टीका नहीं देखता। सोचता हूँ, लिखा है शान्तनुजीने, पर भाईजीकी दृष्टि एक बार सब श्लोकोंके ऊपर पड़ चुकी है, उन्होंने एक बार देखकर ही इस अर्थको छापा है। बस, अब मेरे लिये यही प्रमाण है। उसीको पढ़ते–पढ़ते भ्रमरगीता पढ़ी––उसमें पढ़ा––जैसे स्वप्नमें मनुष्य अनेक पदार्थ देखता है, वे मिथ्या हैं, वैसे ही मनुष्य जागृतके दृश्योंको स्वप्नकी तरह मिथ्या समझकर उससे उपरत हो जाय और मेरा साक्षात् करे। सोचा, श्रीकृष्णने कहा और सो भी अपनी प्रियतमा गोपीजनोंके प्रति, भाईजीने यह अर्थ देख–भालकर छापा है। तो क्या स्वप्न देख रही हूँ ? राधारानीके चरणोंके पास बैठी–बैठी शायद सो गयी और उसमें स्वप्न आने लग गये, ऐसी बात है क्या ? पर मेरा यह स्वप्न कौन तोड़ेगा। मेरे नाथ ! मेरा स्वप्न तोड़ दो––ऐसी प्रार्थना होने लगती है। फिर मनमें आता है, चाहे जागृतका दृश्य, चाहे स्वप्नका दृश्य––दोनोंको अनुभव तो मन करता है और 'मनसे अनुभूत वस्तु मैं हूँ' ऐसा श्रीकृष्णने कहा है। तो स्वप्न कहाँ है ? यह तो श्रीकृष्णकी लीला है, उनकी माया हैं, वे ही हैं। तो तुम्हारी मर्जी नाथ ! मैं तुम्हें प्यार करूँगी, मुझे तो तुम्हें प्यार करना चाहिये, तुम्हारे

रूपको नहीं, रूप भयानक हो तो क्या मैं तुमसे प्यार न करूँ ?

............इस प्रकारकी तरह–तरहकी इतनी बातें आती हैं कि कहाँतक लिखूँ। कभी–कभी मलिन संस्कार जाग उठते हैं। तो सोचता हूँ इस मलिन रूपमें आये हो, मुझे नरक ले चलनेके लिये, तो तुम्हारी जैसी मर्जी, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। ....इस सम्बन्धमें भी अजब–अजब बातें आती हैं, कहाँतक लिखूँ।

आपके प्रति क्या–क्या भाव होते हैं, वह भी एक लम्बा इतिहास है। सुनकर आप खूब हँसियेगा, पर अभी मौका नहीं है। जीवित रहा, होश ठीक रहा और सबसे पहली बात है, वे चाहेंगे तो आपके प्रति भावोंको सुनाऊँगा, आज नहीं।

..................आज गोविन्दरामजीके यहाँ विचित्र दशा थी, ठीक–ठीक समझा नहीं सकता, आवश्यकता भी नहीं है।

आपके पास हूँ, सोचता हूँ, मुझे रखनेमें भाईजीका क्या स्वार्थ है ? उत्तर सर्वथा कुछ नहीं। तो सर्वथा अपने स्वार्थसे हूँ ? हाँ। तब छोड़ दूँ क्या ? क्योंकि प्रेम तो त्यागमूलक होता है, पर इतनी अधिक ममता (अवश्य ही यह ममता विचित्र ढंगकी है) होती है, और तरहके विचार उठते हैं कि आपको छोड़नेकी आशंका होनेसे काँप जाता हूँ। .... प्रार्थना अवश्य करता हूँ, मेरे नाथ ! तुम्हें नहीं रुचे तो छुड़ा देना, तुम सुखी हो नाथ, वही करो। कभी–कभी प्रार्थना करता हूँ, मत छुड़ाना नाथ। फिर प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

शरीरका ढंग विचित्र चलता है। पता नहीं कबतक चलेगा। कभी–कभी सोचता हूँ ....लिखते–लिखते यही इस सम्बन्धमें कुछ न लिखनेकी इच्छा हो गई।

इतना लिखकर भी अपनी वास्तविक दशा आपको समझा सका कि नहीं, पता नहीं ! आजकल तो विचित्र ढंग चल रहा है, क्या होगा, पता नहीं।

ये बातें सुनकर पता नहीं आप घृणा करेंगे, प्रेम करेंगे या दया करेंगे। एकाकी प्रवाहमें बह रहा हूँ। कभी–कभी सोचता हूँ, कई बार सोचा, मैं इनके सुखका उपकरण हूँ। जहाँ जिस रूपमें रखना चाहें; उसी रूपमें रखें, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ सुख हे।

साधनाका स्वरूप वर्तमानमें क्या है, ऊपर बता चुका हूँ। लिखते–लिखते कुछका कुछ लिखा जानेके कारण बहुत काट–कूट हुआ

है। क्रियामें स्त्रीलिंग, कभी पुलिंग, जैसा मनमें आता गया, करता गया हूँ। मेरे हृदयकी ओर देखते हुए घृणाके योग्य भी कोई बात हो तो दया कीजियेगा। क्योंकि श्रीकृष्णका प्रेमराज्य तो सर्वथा मन-वाणीके परेकी चीज है। अभी तो मैं मलिन जगत्के स्पर्शसे मुक्त नहीं हो सका हूँ, फिर प्रेमकी चर्चा तो विडम्बना है। पर भाईजी, मनकी यही दशा है। सर्वथा जिद्दी, उद्दण्ड होकर लगा था, अभी भी वही जिद चल रही है कि चाहे जो हो, वस्तुस्थिति जो है उसे ही पकड़ूँ। क्या होगा, पता नहीं। होश रहनेतक आपकी बात माननेकी लालसा अवश्य है भाईजी, पर होता नहीं। क्षुद्रतम, मलिनतम समझकर भी प्रेम रखियेगा, मुझपर दया रखियेगा। इतना लिखकर समाप्त करता हूँ।

(२)

एक दिनकी बात है। मनमें आया कि मेरा नाम मंजुलाली है। कल्पना हो गयी उसी दिनसे। ठीक इसी भावमें कई बार भावित हो गया।

हाँ भाई, मैं तो गाँवकी ग्वालिन, न रूप, न यौवन, फिर तुम मुझे क्यों प्यार करते हो ? बहन, तुम लोग जानती हो ये श्यामसुन्दर मुझे क्यों प्यार करते हैं। न रूप, न यौवन, फिर क्यों मुझे प्यार करें। राम-राम, क्या हो गया, मैं बावली हो गई। हाँ बहन, सचमुच किसी कामकी नहीं रह गयी हूँ। दिनरात श्यामसुन्दरको देखती रहती हूँ। सखि, प्राण देने जाती हूँ। पर जलमें डूबनेपर मेरे दम नहीं घुटते, वहाँ देखती रहती हूँ कि श्यामसुन्दर खड़े हँस रहे हैं। कहते हैं—तू प्राण देने आयी है, मंजु तू प्राण दे देगी फिर मैं कैसे रहूँगा ? बहन, इसीलिये अब न मैं मर सकती हूँ, न जी सकती हूँ, क्या करूँ ?

पर बहन, मुझे आखिर हुआ क्या ? अरे, इस वृन्दावनमें भी कोई जादू है। सच, इसीलिये ऐसा हुआ, राम-राम, मुझे क्या मालूम था। बहन, मैं केवल दही बिलोना जानती हूँ, छाछ बनाना जानती हूँ, और कुछ नहीं जानती। सुखसे घरका काम करती थी। रानी मुझे अतिशय प्यार करती थी। रानीने कहा—मंजु, पूजाके लिये थोड़ा फूल ले आ। बहन, मैं फूल तोड़ने गयी, किसीने मधुर स्वरमें कहा—मंजु ! सावधान ! इस वनमें जो फूल तोड़ता है, उसपर मेरा अधिकार हो जाता है। वह मेरी संपत्ति हो जाती है। बहन, मैं चौंकी, किसने मना किया, पर मैं रानीके लिये फूल तोड़ने गयी थी। कड़ककर बोली—तुम कौन हो जी ? किसीने हँस दिया, आवाज

आयी, देखकर क्या करेगी, पर याद रखना, फूल तोड़ेगी तो फिर वही बात, समझी। बहन ! रानीको देर न हो जाय, मेरी रानी हमारी प्रतीक्षा करती होंगी, यह समझकर मैंने फूल तोड़ लिये, अचलोंमें बाँधकर ले चली। फिर वही मधुर हँसी सुन पड़ी—मंजु ! तू फँस गयी।

बहन ! पता नहीं था, फिर पीछे जान पायी वे श्यामसुन्दर ही थे। ....

बहन ! क्या बताऊँ ! जहाँ दृष्टि डालती हूँ वे मुझे दीखते हैं। सच बहन, मुझे रोग हो गया है, पर कौन–सा रोग जानती नहीं। आँखोंमें श्यामसुन्दर, कानोंमें श्यामसुन्दर, रोम–रोममें श्यामसुन्दर। सचमुच इसने मुझे बर्बाद कर दिया। बहन, पता नहीं यह कैसे मनकी बात जान लेता है। मेरी रानी हमें देखकर हँसती है।

एक दिन बहन, मैं अपना बाल सँवार रही थी। फूलोंको गूँथ–गूँथकर उसमें लगा रही थी। देखती हूँ, पीछे श्यामसुन्दर खड़े हैं बोले—मंजु ! तुम्हें बाल सँवारना आता नहीं, मैं बहुत अच्छा जानता हूँ, मैं सँवार दूँ। बहन ! मैं भागी, दौड़ती–दौड़ती रानीके पास आयी, मुँह छिपाकर रोने लग गयी। रानीने पूछा—मेरी प्यारी मंजु, तुम्हें क्या हो गया है ? मैंने सब बातें सुना दीं। रानी हँसने लगी। बोली—वह बड़ा नटखट है, कोई बात नहीं और मुझे प्यार करके हृदयसे लगा लिया। राम–राम, बहन, सच मैं आई थी रानीकी सेवा करने, पता नहीं रानीकी क्या दशा है, कौन उनकी देखरेख रखता होगा ? मैं तो श्यामसुन्दरके पीछे बावली हो गयी, न खा पाती हूँ, न सो पाती हूँ। कई दिन हो गये, सारा दिन, सारी रात जाग रही हूँ। स्वप्न देखती हूँ, श्यामसुन्दर आये हैं, मुसकराते हैं। कहते हैं—मंजु, झूला झूलेगी ? मैं चौंक पड़ती हूँ। उठ जाती हूँ।

अच्छा ! बहन, सच बताओ आखिर ये श्यामसुन्दर मेरे कौन होते हैं ? मैं इन्हें क्यों प्यार करूँ ? राम–राम, क्या बक रही हूँ ? श्यामसुन्दर ! मेरे जीवनधन ! मेरे जीवन–सर्वस्व। सचमुच मैं तुम्हारे पीछे बिल्कुल नष्ट हो गयी। जीवन गया, कुल गया, धर्म गया, सब गया। अच्छा हुआ, रखकर ही क्या करती। हाँ बहन, जहाँ श्यामसुन्दर नहीं, वहाँ जाकर करूँगी ही क्या ? पर राम–राम, मैं सचमुच बावली हो गयी। श्यामसुन्दर तो वे खड़े हैं। पता नहीं, मुझे क्या हो गया है। माँ रोने लगी, वैद्यको बुलाया। बोली—देखो मेरी प्यारी मंजुको क्या हो गया है। यह दिन–रात बकती रहती है। हाय ! मेरे घरका सब कामकाज यह करती थी, दिन–रात मेरी सेवा करती थी,

मेरी बहू राधाकी सँभाल करती थी, पर बिलकुल बीमार हो रही है। सखि ! वैद्य भी यही श्यामसुन्दर ही आकर बन गये थे, माँने उन्हें नहीं पहचाना। उन्होंने मेरी नाड़ी देखकर कहा––हाँ जी, यह रोग बड़ा कठिन है, यह छूटना बड़ा मुश्किल है, यह मिटता तो बिलकुल नहीं। हाँ बीच–बीचमें दब जाया करता है। अच्छा बूढ़ी ! यह बता, यह सबसे अधिक किसको प्यार करती थी ?

माँ बोली––मेरी बहू राधाको।

वैद्य बोले––अच्छा तो देख, दो काम करना। तुम्हारी बहूको चाहिये कि जब जहाँ जानेको कहे, वहीं चली जाय और तुम इसके किसी काममें बाधा मत देना, नहीं तो यह और भी बीमार हो जायगी। बहन ! रानी अंचलके ओटमें हँस रही थी। वैद्य चले गये। मैं रो पड़ी, रानीकी गोदमें सिर रखकर रोने लगी। बोली––रानी, मैं पगली हो गयी हूँ। अब क्या होगा, कौन तुम्हारी सँभाल करेगा ? रानीने मुझे हृदयसे लगाकर कहा––मेरी प्यारी मंजु ! तुम्हारा यह पागलपन ऐसा–वैसा नहीं, यह विरले किसीको अनन्त सौभाग्यसे ही प्राप्त होता है। जगत्के प्राणी इसके लिये तरसते हैं। यह कहकर रानी मुझे हृदयसे लगाकर चूमने लग गयी।

सखि ! रानी भी हँसती हैं, श्यामसुन्दर भी हँसते हैं, पर मैं दिन–रात सूखी जा रही हूँ। पता नहीं बहन, मुझे क्या हो गया है ?

इस प्रकार बेसिर–पैरकी कल्पनाएँ बढ़कर माथा बिलकुल गरम–सा हो जाता है। लिखनेमें तो वह बात बहुत कम आती है। कभी कुछ, कभी कुछ, कभी–कभी तो दिनभर। और कभी–कभी एक दो दिन शांतिसे जप हो रहा है। कभी कुछ।

कई बार सोचा आपसे पूछूँ ? फिर मनमें आया कि जानकर छोड़ूँ नहीं, छूट जाय, स्मृति ही न रहे तो फिर ......। इससे यह न समझेंगे कि वस्तुतः मेरा मन इन बातोंका अधिकारी है। मेरे अंदर तो आपकी जो कसौटी है––काम–विकारशून्यता, वह बिलकुल है नहीं। बरबस मानो मुझे कोई खींच ले जा रहा है।

एक सलाह पूछनी थी। बात यह है कि मेरा नित्यकर्म कुछ Fixed है। उसमें होता क्या है, कुछ पाठ, कुछ खास श्लोकोंका मनन तथा यह भी नियम है कि भोजनके पहले इतना, फिर इतना। जपका कोई नियम एवं संख्या नहीं रह गयी है।

उस दिन संध्याकी बात है। आपसे कहा——भाईजी, समय कम, रास्ता बहुत ज्यादा रह गया है। आप बोले——महाराजजी, वाहन इतना तेज है कि उसके मुकाबलेमें रास्ता कुछ नहीं। पर ख्याल ही नहीं कि रास्ता तय करना है। एक हलकी-सी निराशा इस बातसे मनमें आयी, पर फिर उसी क्षण उसी भावसे अपने-आप भावित हो गया। बाहर धोरे (बालूका टीला) में गया, मन-ही-मन इस प्रकार बकता गया——

क्या करूँ बहन ! मैं आयी थोड़े थी, मुझे तो किसीने लाया है। हाँ जी, इसी तरह तड़पा-तड़पाकर मारनेके लिये लाया है। पर बहन, मर भी नहीं पाती। क्या करूँ, मरने देते नहीं, कई बार यमुनामें डूबने गयी ....

इस प्रकार उस दिन कई घंटे चलता रहा। बात यह पूछनी थी कि जब शान्त मन होता है तब सोचता हूँ कि क्या करूँ, इस नियमके बन्धनको छोड़ दूँ क्या ? क्योंकि स्मृति हो जाती है, भिक्षाके पहले उस नियमको पूरा कर लेना है। फिर आँख खोलते ही भावांतर हो जाता है।

कोई बात नहीं, पर रोज-रोज यह असमंजस उपस्थित हो जाता है। फिर वह तो पूरा हो नहीं और एक बार यह छूटा कि छूटा। कभी तो पाठके अक्षर कुछ-कुछ ध्यानमें रहते हैं और मन वैसी कल्पनामें ही आधा लगा रहता है और कहीं भावान्तर हो जाता है। पर वर्षोंसे नियमके बन्धनको तोड़ते हुए यह डर लगता है कि कहीं मन धोखा न दे दे।

श्रीरामनाथजी 'सुमन' पर अयाचित कृपा

किसीकी सहायता करनेका भी भाईजीका एक अद्भुत तरीका था। ऐसे अगणित उदाहरण है जहाँ दूसरेको तो क्या, स्वयं जिसकी सहायता करते थे उसे प्रकट रूपसे पता नहीं लगता था। ऐसा ही एक उदाहरण श्रीरामनाथजी 'सुमन' के शब्दोंमें पढ़िये——

बिना लिखे, बिना कहे, महीनोंसे जब पत्र-व्यवहार नहीं, मिलना नहीं, न जाने कैसे उन्हें मेरे कष्टोंका पता लग जाता था। सन् १९३९ की बात है। मैं अत्यन्त मारक रोगोंके पंजेमें फँसी पत्नीको जलवायु-परिवर्तनार्थ दिल्लीसे प्रयाग ले आया था। साधन-हीन और अकिंचन, पास पूँजी नहीं, क्योंकि मुझपर उन दिनों बापूजीका गहरा रंग चढ़ा था और वे कलके लिये सोचने और संचय करनेको नास्तिकता कहते और मानते थे। महीनेका

अन्तिम दिन था। मैं बाहर चबूतरेपर बैठा चिंतामें मग्न था, मेरे पास कुल तीन–चार रुपये बच रहे थे और पहली तारीख (आनेवाला कल) को ग्वाले, महरी, महराजिन, मकान मालिक सबको पैसे चुकाने थे। मैं नया–नया आया था और अपरचित था। मेरे कहनेपर कोई विश्वास ही क्यों करता ? सो बैठा हुआ आँखें मूँदकर भगवान्‌को पुकार रहा था––कैसे होगा, क्या होगा, पत्नीके गहने एक–एक करके पहले ही बिक चुके थे। आँखें मेरी बन्द हैं और 'निरालम्बमीश' के प्रति गुहारके साथ ही अपनी विवशता और असहाय अवस्थापर आँसू गिर रहे हैं। अचानक एक पोस्टमैन आता है। मैं अपनेमें इतना डूबा हूँ कि मुझे कुछ भान नहीं होता। पोस्टमैन पुकारता है––बाबूजी आपका बीमा है। अब मैं सोचता हूँ कि जो सज्जन पहले उस मकानमें रहते होंगे उनका होगा। इसलिये सूखी हँसी हँसकर कहा––भैया मेरा नहीं होगा। परन्तु देखिये तो––कहकर उसने उसे मेरे हाथमें पकड़ा दिया। सचमुच मेरा ही है। तीन सौ रुपयेका बीमा है, 'कल्याण' से आया है। इस बीमारीके कारण लगभग डेढ़ सालसे मैंने भाईजीको कोई पत्र नहीं लिखा था, कोई हालचाल उन्हें मालूम न था। उनके अनुरोधपर 'कल्याण' में मैंने कुछ लेख लिखे थे। 'कल्याण' प्रायः पारिश्रमिक नहीं देता, न उसकी कोई बातचीत थी, न माँग थी। आजतक मैं न जान सका कि भाईजीको कैसे ये सब मालूम हुआ, कैसे उन्हें मेरे तत्कालीन पतेका ज्ञान हुआ और कैसे उन्होंने बिना किसी भूमिका या पत्रके, पर्देकी ओटमें छिपे दीनबन्धुकी भाँति, वे रुपये भिजवाये। पूछनेपर वे हँस देते थे, कभी बताया नहीं।

अब मेरी हालत सुनिये। बीमा लेना तो मैं भूल गया हूँ, आँखे पुनः मूँद गयी हैं और आँसू गिर रहे हैं। पोस्टमैन घबरा गया और कुछ देरतक ठक–सा देखता रह जाता है। फिर मेरा कंधा हिलाकर कहता है––बाबूजी क्या बात है ? रसीदपर दस्तखत तो कीजिये। मैं हस्ताक्षर करता हूँ, परन्तु रोये जा रहा हूँ और रोये जा रहा हूँ। यह जीवनमें भगवद्दर्शन है और भाईजी भगवान्‌के आवाहक हैं।

रतनगढ़में पुनः एकान्त सेवन

रतनगढ़ आनेके पश्चात् भाईजीकी दिनचर्या कुछ परिवर्तनके साथ दादरीकी भाँति ही चलती रही। लगभग पाँच–छः घण्टे एकान्त कमरेमें

रहते या शामके समय शहरके बाहर टीबोंमें चले जाते। एक दिन उन्होंने अपने एक प्रेमीको संकेत भी किया कि गोरखपुरकी अपेक्षा दादरीमें और दादरीकी अपेक्षा भी रतनगढ़में श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके दर्शन नित्य नये रूपमें अधिक होते हैं। इसी समय एक और विशेष घटना घटी। गोरखपुरमें मार्गशीर्ष शुक्ल ११ सं० १९९६ (२२ दिसम्बर, १९३९) को गीता--जयन्तीके उत्सवके समय जो जुलूस निकला उसपर साहबगंजकी मस्जिदके पास कुछ मुसलमानोंने उपद्रव किया एवं कई व्यक्तियोंपर कोर्टमें मुकदमा भी कर दिया। भाईजीकी अनुपस्थितिके कारण सभी लोग घबरा गये। भाईजीको बुलानेके लिये प्रार्थनाके आग्रहपूर्वक अनेक पत्र आये, पर भाईजी एकान्त छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। भाईजी पत्रोंसे समझाते रहे। एक पत्रमें वे लिखते हैं——

मेरा यह निवेदन है कि बाहरकी चेष्टा पूरी उत्साह एवं लगनके साथ जरूर होनी चाहिये। रुपयेसे जो काम हो सकता हो उसमें भी त्रुटि नहीं करनी चाहिये। दौड़–धूप पूरी होनी चाहिये। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होने चाहिये जो गीताके उपदेशोंको और संतोंकी वाणीको कार्यरूपमें (practically) करनेकी भी नम्र चेष्टा करते रहें।

मान लीजिये गीताप्रेस उजड़ जायगा, गीताप्रेसवालोंकी बात नीची हो जायेगी, झूठ–मूठ ही वे दोषी मान लिये जायेंगे और दण्ड हो जायगा। प्रेसकी जो इज्जत है, उसका लोगोंके सामने जो स्वरूप है वह नष्ट हो जायगा। मैं कभी–कभी सोचता हूँ——ऐसा भी होगा तो क्या बिगड़ जायगा। अहंकारको छोड़ करके कहें तो यह सत्य है कि गीताप्रेसका यह स्वरूप हमारी किसी स्कीम (योजना) या शक्तिसे बना नहीं और अब हमारी स्कीमोंसे और हमारी ताकतसे यदि हम इसके स्वरूपको बचाना चाहेंगे (और जिस शक्तिसे यह बना है, वह शक्ति बिगाड़ना चाहेगी) तो यह बचेगा नहीं। बस उनकी सर्वथा कल्याणमयी व्यवस्थापर आस्था जमाकर आनन्दसे रहिये। चिन्ता करनी हो तो यह कीजिये कि उनके चिन्तनमें कमी क्यों होती है ? क्या लिखूँ ?

आपसे प्रार्थना है——करबद्ध प्रार्थना है कि मैं कुछ कर रहा हूँ, मुझे करने दिया जाय। आप लोगोंका समझाते रहिये जिसमें मुझको बुलानेमें ज्यादा जोर नहीं दिया जाय।

गोरखपुरके प्रेमीजनोंको विश्वास था कि भाईजी वहींसे शक्तिका संचार करके सारा कार्य ठीक कर देंगे और हुआ भी वही। लोगोंके आश्चर्यका उस दिन ठिकाना नहीं रहा जब मुकदमा कोर्टके समक्ष प्रस्तुत हुआ तो बिना किसी गवाही, बहसके हाकिमने मुकदमा खारिज कर दिया।

इसी समयके श्रीगोस्वामीजीको दिये हुए एक पत्रमें भाईजीने लिखा——

.................मुझ भीतरी पागलको दूर पड़ा रहने दें। कहीं पागलपन बाहर आ गया तो सबको हैरान होना पड़ेगा। रोक–रोककर रखता हूँ सबके सामने, अन्दर तो उन्माद बढ़ रहा है।

अगले वर्ष 'कल्याण' का विशेषांक 'साधनांक' निकालनेका निर्णय हुआ था। इधर भाईजीकी उपरामताके कारण 'साधनांक' तैयार होना कठिन था। अतः फाल्गुन शुक्ल ३ सं० १९९६ (१२ मार्च, १९४०) को श्रीसेठजी रतनगढ़ पधारे एवं एकान्तमें भाईजीसे बात की और गोरखपुर जाकर 'साधनांक' की तैयारी करनेके लिये कहा। भाईजीने नम्रतापूर्वक कहा कि मेरा गोरखपुर जानेका मन नहीं है और न काम करनेमें मन लगता है। श्रीसेठजी इनकी मनकी स्थितिको समझ गये और कहा कि सम्पादकीय विभागको यहाँ बुला लो और यहींसे तैयार करो। भाईजीने कहा कि उन लोगोंको यहाँ बुलाकर तैयार करा सकता हूँ पर बादमें उनके साथ मेरा गोरखपुर जानेका मन नहीं है।

इन्हीं दिनों भारतीय संसदमें 'हिन्दू–कोड बिल' विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। भाईजीका विश्वास था कि ऐसा कानून बन जानेसे हिन्दुओंके सामाजिक जीवनमें अनाचारकी वृद्धि होगी जो सम्पूर्ण देशके नैतिक पतनका कारण बनेगी। इसे ध्यानमें रखते हुए भाईजीने इसके विरोधमें एक व्यापक हस्ताक्षर अभियान चलाया। 'कल्याण' में इस आशयके कई लेख प्रकाशित किये। राष्ट्रपतिको, मन्त्रियों एवं राजनीतिक नेताओंको भाईजीने इस सम्बन्धमें तार दिये और लोगोंको भी तार एवं पत्र देनेकी प्रेरणा दी।

श्रीगोविन्दरामजी पोद्दारकी अलौकिक मृत्यु

भाईजीके रतनगढ़ प्रवासके समय एक और विलक्षण घटना हुई। श्रीगोविन्दरामजी पोद्दार रतनगढ़के प्रतिष्ठित गल्लेके थोक व्यापारी थे। व्यापारमें बड़े ईमानदार और स्वभावके बड़े सरल थे। व्यापारका अधिकांश

कार्य इनका लड़का और मुनीम देखते थे, ये प्रायः अधिक समय जप करते रहते थे। भाईजीपर इनकी अटूट श्रद्धा थी, पर इसे बहुत कम व्यक्ति जानते थे। भाईजीके सत्संगमें नित्य जाते थे और भाईजीकी रुचिका ये बहुत आदर करते थे। इसका एक उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त होगा।

एक बार रतनगढ़के एक करोड़पति सेठके परलोकगमनपर द्वादशेका ब्राह्मण-भोजन था, जिसमें रतनगढ़के सभी ब्राह्मणोंको निमन्त्रण था। पर कुछ ब्राह्मण आस-पासके गाँवोंसे बिना निमन्त्रणके आ गये थे। जिनको वहाँ भोजन नहीं कराया गया और वे निराश भूखे लौटने लगे। यह बात भाईजीके पास पहुँची तो भाईजीसे न रहा गया और चल पड़े कि ब्राह्मणोंको भोजन कराकर लौटना है। जब इस बातको श्रीगोविन्दरामजीको पता लगा तो उन्होंने उन सभी ब्राह्मणोंको लड्डू, पूरी, साग बनवाकर बड़े ही आदर-प्रेमसे भोजन करवाया और दक्षिणा देकर विदा किया तथा भाईजीको सूचना दे दी कि आपके संकल्पानुसार कार्यकी व्यवस्था हो गयी है। भाईजी यह सुनकर प्रसन्न हो गये।

एक दिन भाईजीके सामने गद्‌गद स्वरमें बोले कि अपनी करनी तो ऐसी नहीं देखता पर आपकी दयालुताकी ओर देखकर एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि अन्तिम समयमें मुझे भगवान्‌के दर्शन करानेकी कृपा अवश्य ही करें। भाईजीने उत्तर दिया कि **आपकी निष्ठा हो तो कौन-सी बड़ी बात है।**

मृत्युके कुछ समय पूर्व ये बीमार हो गये। पीठ पर विषैला फोड़ा हो गया, जिसका विष शरीरमें फैलने लगा। डाक्टर निराश हो गये। भाईजी बीच-बीचमें उनसे मिलने जाते तो वे भगवान्‌के दर्शनोंवाली बात उन्हें याद दिला देते। स्थिति गम्भीर देखकर भाईजीने उनके समीप अखण्ड-संकीर्तन शुरू करा दिया। वे भी भरसक नाम-जपकी चेष्टा करते रहे।

कार्तिक शुक्ल १५ सं० १९९८ के दिन एक व्यक्ति उनके घरसे दौड़ता हुआ भाईजीके पास आया कि उनकी स्थिति बहुत खराब है, आप जल्दी चलिये। भाईजी बाबाको साथ लेकर उनके घर गये। भाईजी समझ गये कि अब ये थोड़ी ही देरके मेहमान हैं। भाईजीने बाबाको कहा—"जबतक मैं न आ जाऊँ, तबतक आप मत जाइयेगा। मैं जल्दी ही आता हूँ।" बाबा बीच-बीचमें उन्हें आश्वासन दे रहे थे कि नाम मत भूलिये। उन्होंने बड़े

करुण स्वरमें कहा––"स्वामीजी, तकलीफ बहुत है, नाम लिया नहीं जाता।"

मृत्युके दो घण्टे पूर्व भाईजी अपनी मस्तानी चालसे चलते हुए आये। ऐसे समयमें भाईजीकी एक विलक्षण मुद्रा हो जाती थी––एक गंभीर प्रसन्नता–पूर्ण मुद्रा मानों किसीको पहुँचाने आये हों। भाईजी उनके पास बैठ गये और बोले––"नाम–जप कीजिये, सामने भगवान्‌को देखिये।" हठात् तेजीसे नाम–जप करने लगे। भाईजी बोले––देखिये कितनी तेजीसे नाम–जप हो रहा है। सब लोग देखने लगे––कैसा जादू हो गया। अभी कुछ क्षण पहले पीड़ाके कारण नाम ले नहीं सकते थे, अब जीभ मशीनकी तरह नाम–जप कर रही है। भाईजी खेलकी तरह सब लोगोंको बुला–बुला कर दिखलाने लगे। बोले–देखो, कितना सुकृति प्राणी है। कितनी तेजीसे नाम–जप कर रहे हैं लोग हक्के–बक्केसे देख रहे थे। भाईजीने उनसे पूछा––क्यों ! भगवान्‌के दर्शन हो रहे हैं न ? उन्होंने गर्दन हिलाकर अपनी स्वीकृति दी। भाईजी बच्चेकी तरह उपस्थित लोगोंसे कहने लगे देखो, देखो, ये कहते हैं मुझे भगवान्‌के दर्शन हो रहे हैं। अब तो लोगोंके पूछनेका ताँता–सा लग गया। उपस्थित परिवार–वाले, सत्संगी लगभग २०–२५ व्यक्तियोंने उनसे पूछा––क्या भगवान्‌के दर्शन हो रहे हैं। और उन्होंने प्रत्येक बार गर्दन हिलाकर अपनी स्वीकृति दी। आँखें बंद थी पर पूर्ण चेतना थी। सन्निपातका कोई चिह्न नहीं था। भाईजी बार–बार लोगोंसे कहते––कितनी विलक्षण बात है। विलक्षण ढंगसे मुस्कुराते रहे। इसके बाद भाईजीने **"स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या"** वाली स्तुति की एवं बादमें गीताजीका सातवाँ अध्याय सुनाया––मानो ज्ञान–दान कर रहे हैं। इसके बाद उनके प्राण निकल गये।

पुत्री सावित्रीका विवाह

भाईजीकी इकलौती सन्तान सावित्रीबाईका शुभ विवाह श्रीशिवभगवानजी फोगलाके सुपुत्र श्रीपरमेश्वरप्रसादजीके साथ रतनगढ़में बड़ी धूम–धामसे मार्गशीर्ष शुक्ल १० सं० १९६८ को सम्पन्न हुआ। विवाहका मंडप घरमें ही सजाया गया एवं पूर्ण शास्त्रीय विधिसे सारे कार्य सम्पन्न करानेके लिये काशीके सुप्रसिद्ध पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री पधारे थे। भाईजीका परिचय क्षेत्र बहुत विस्तृत होनेसे इस अवसरपर दूर–दूरसे

महानुभाव पधारे। कई संत–महात्मा भी पधारे। इस समय एक प्रसंग उल्लेखनीय है—

विवाह की मुख्य जीमनवार (सज्जनगोठ) के समय भोजन करनेवालोंका ताँता लग गया। भाँति–भाँतिकी मिठाइयाँ, पकवान बने थे। भाईजीके स्वभावको सभी जानते थे, चाहे निमन्त्रण मिला हो या नहीं सभीके लिये द्वार खुला था। अपार जन–समूह भोजन कर रहा था। भण्डारके कोठारीको ऐसा प्रतीत हुआ कि मिठाइयाँ कहीं कम न पड़ जायँ, अभी तो बारातने भोजन किया ही नहीं और भोजन करने वालोंकी संख्याका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। भोजनकी सामग्री देखकर वह चिन्तित हो गया। घरके एक दो विशेष व्यक्तिके सामने उसने अपनी चिन्ता व्यक्त की। बात भाईजीके कान तक पहुँची। भाईजी मिठाई–भण्डारमें आये और कहा—दिखाओ तो सही कितनी मिठाई है, सब कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी। ऐसा कहकर भाईजीने सब मिठाइयोंको अपनी नजरसे देखा और कहा लोग व्यर्थ ही कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी। मिठाई कहाँ कम है ? कहते–कहते बाहर चले गये और दूसरे कार्योंमें लग गये। कोठारीके आश्चर्यकी सीमा न रही। जब उसने देखा कि सारी बारातके भोजन करनेके बाद भी मिठाइयाँ बच गयी हैं। उसका विश्वास था यह केवल भाईजीके मिठाई देखनेका ही फल था।

कालान्तरमें सावित्रीबाईके चार सन्तान हुईं, दो लड़के—सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त और दो लड़कियाँ राधा एवं पुष्पा।

पूज्य बाबाकी लेखनीसे पूज्य श्रीभाईजीके सम्बन्धमें

पूज्य श्रीचक्रधरजी महाराजका परिचय आप पूर्व पृष्ठोंमें पढ़ ही चुके हैं। अपने मौनके समय वि० सं० १९९८। ९९ (सन् १९४१। ४२) में कुछ अनन्य श्रद्धालुओंके समक्ष उन्होंने श्रीभाईजीके सम्बन्धमें विशेष बातें लिखकर दी थी। अपने और श्रीभाईजीके जीवनकालमें इन बातोंको प्रकाशमें लानेका उन्होंने निषेध किया था। श्रद्धालु व्यक्ति इनको पढ़कर लाभान्वित हो सके इसी दृष्टिकोणसे यह सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

(१)

सं० १९९८, पौष शु० १३ को रतनगढ़में रात्रिके समय पूज्य बाबाने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी,

[illegible]

(२)

रतनगढ़ सं० १९९८ मार्गशीर्ष शुक्ल २ श्रीभाईजीके घरपर रात्रिके १० बजे श्रीचक्रधरजी महाराजने श्रीदुजारीजीके प्रश्नके उत्तरमें निम्नलिखित बातें लिखी

उपस्थिति—(१) श्रीचक्रधरजी (२) शुकदेवजी (३) मदनलालजी चूड़ीवाले (४) शिवकृष्णजी डागा (५) गोवर्द्धनजी (६) केदारनाथजी कानोड़िया (७) शिवभगवान्‌जी फोगला (८) गम्भीरचन्दजी दुजारी।

स्वामीजीका प्रश्न—क्या लिखें ?

दुजारीजीने पूछा—महापुरुषोंमें श्रद्धाप्रेम कैसे हो ?

स्वामीजीने कहा—(१) जिसे महापुरुष माने, उसके सामने कभी-कभी एकान्तमें बैठकर अपनी दीनता सुना देनी चाहिये। बस, (२) इस रूपमें ही कह दें कि मैं आपके सामने दीन बनना भी नहीं चाहता, इससे बढ़कर नीचता क्या। (३) मतलब यह है कि कभी कभी उनके दिव्य अन्तःकरणमें अपनी स्मृति डाल दें। बस। (४) बिल्कुल एक ही बात है, चाहे भगवान्, चाहे महापुरुष किसी भी भावसे संग निस्तार करेगा ही। अवश्य ही बैर भावसे संग करनेवाला जैसे केवल भक्ति पाकर ही रह जाता

है, प्रेमकी प्राप्ति अनुकूल सेवाके द्वारा ही होती है। वैसे ही महापुरुषका वस्तु, गुण निस्तार तो कर देता है पर भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये उसके अनुकूल बननेकी चेष्टा करनी पड़ेगी।

मैं आज सोच रहा था कि आप (दुजारी) कुछ पूछियेगा अवश्य तब क्या कहूँगा। इसे पहलेसे सोच लूँ। बहुत देर सोचनेके बाद मेरे मनमें यही आया कि आपसे प्रार्थना करूँ कि आप सच्चे मनसे आशीर्वाद दीजिये कि भाईजीके चरणोंमें रत्तीभर भी प्रेम हो जाय। यदि प्रेम न भी हो तो, कम-से-कम इतना तो अवश्य बना रहे कि कहीं भी रहूँ (शायद भाईजी रखें कि नहीं, क्या पता) पर मैं सदा भाईजीके चरणोंके रजमें लोटते रहनेकी सच्ची लालसासे तरसता रहूँ। यह ठीक है कि भाईजी क्या करेंगे हमें रखेंगे कि छोड़ देंगे, इसका पता हमें नहीं है। अभी देखनेसे यह मालूम पड़ता है कि जबतक हम चाहेंगे, तबतक नहीं छोड़ेंगे, कभी छोड़ना न चाहेंगे, पर मैं सचमुच एक बहुत ही कमजोर दिलका आदमी हूँ। पता नहीं मेरे मनमें यह माया आ जाय कि कहीं जानेकी इच्छा होने लगे, इसी भयसे आप सब लोगोंसे आशीर्वाद सच्चें मनसे माँग रहा हूँ, कृत्रिम बात, विनोदकी बात नहीं कि जबतक भाईजी जीवित है, मैं जीवित हूँ, तब तक नित्यनिरन्तर उनके चरणोंमें मेरी प्रीति बढ़ती रहे, अभी तो भाईजी मुझे अधिक-से-अधिक सम्मानसे रखते हैं, पर ईश्वरकी साक्षी देकर यह बात कहता हूँ कि आप आशीर्वाद दें, बहुत ही अपमानित करके, ठुकरा करके भी यदि रहनेकी आज्ञा दे दें तो भी मैं रहूँ, वैसे अपमानित जीवनमें भी मेरे मनमें यह बात नहीं आवे कि अब चलो छोड़ दो क्योंकि जीवनमें ऐसा संग, मुझे नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा, ऐसा बिलकुल ठीक दीखता है। मेरे जीवनका दारोमदार पता नहीं मैं नहीं जानता, श्रीराधाकृष्णके ऊपर है, या इनपर क्योंकि स्पष्ट रूपसे ये हमें कुछ भी नहीं बताते। पर आज जो कुछ भी वास्तविक शान्ति, वास्तविक आनन्द मुझे है, या बढ़ रहा हूँ, इन सबका श्रीगणेश भाईजीके दर्शन होनेके बाद ही हुआ है। और यह भी ठीक-ठीक मेरे मनमें आती है कि यदि भाईजीका दर्शन हमें नहीं हुआ होता तो मेरा जीवन कितना नीरस होता। सच मानिये, मेरे हृदयमें भाईजीके प्रति जो भाव होना चाहिये, वह नहीं है, पर तरंग ऐसी उठती है कि मैं आपको समझा नहीं सकता।

इनके वास्तविक स्वरूपका बोध हमें पता नहीं है, बिल्कुल नहीं है,

पर जो मैं सोचता हूँ एवं इन्हींकी कभी–कभी दया जब उमड़ पड़ती है, उस समय जैसा अनुभव करता हूँ, वह बता नहीं सकता, इच्छा रखनेपर भी नहीं बता सकता केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय भाईजीके प्रति इतना अधिक आकर्षण होता है कि उसे वाणीके द्वारा समझा नहीं सकता। कुछ खास–खास बातें, जो इनके विषयमें एक खास विश्वस्त सूत्रसे पता लगा वे बातें याद आ जाती हैं और फिर सोचता हूँ कि पता नहीं वह दिन आयेगा कि नहीं। इनके चरणोंमें न्यौछावर हो जाऊँ। अभी आज ८ बजे करीब सोच रहा था, कि भाईजीसे पूछूँ कि भाईजी पता नहीं मैं पहले मरूँगा कि आप, पर यदि आपका शरीर पहले चला जाय तो हमें आप दर्शन देनेकी कृपा करेंगे क्या ? क्योंकि अभी तो मेरेमें यह योग्यता नहीं आयी कि आप पर न्यौछावर हो जाऊँ और यह भी सोचता हूँ कि ऐसा मौका न जाने हमें किस भाग्यसे मिला है, फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

बस इतना ही सुनकर अब हमें छुट्टी दे दीजिये।

एक महात्माने मुझे खास तौरसे इनके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखी थी, पर उन्होंने यह स्पष्ट लिख दिया था कि ये बातें किसीपर भी प्रकट मत कीजियेगा। वह चिट्ठी पहले भाईजीके हाथमें ही आयी थी, और भाईजीने मुझे करीब १० दिन बाद दिया——उसमें बात कुछ ऐसी मामूली ढंगसे लिखी है, पर विचार करनेके बाद यह मैं कह सकता हूँ, पारमार्थिक इतनी ऊँची स्थितिकी कल्पना भी हमारे मनमें नहीं थी। उस पत्रको पढ़नेके बाद पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। पर अब जैसे–जैसे दिन बीतने लगे हैं, उस बातका रहस्य धीरे–धीरे खुलता जा रहा है, और मैंने अबतक जितने शास्त्रोंमें संतोंके नाम सुने हैं, अबतक वैसी स्थिति किसीके जीवनमें भी मैं नहीं पढ़ पाया हूँ। उन महात्माने यह लिखा था कि आजसे ३०० वर्ष पूर्व या कुछ ज्यादा एक बहुत ऊँचे संतके जो श्रीकृष्ण लीलामें प्रवृष्ट हो चुके हैं, उनका मुझे दर्शन हुआ मैंने उनसे ही श्रीजयदयालजीकी एवं भाईजीकी पारमार्थिक स्थितिके विषयमें प्रश्न किया। उसका जो सार है, वह आपको लिख रहा हूँ।

परसाल गोस्वामीजीको मैंने इशारा जैसे आपको किया है, वैसे ही किया था, उसके दूसरे दिनसे ही गोस्वामीजीका ढंग बदला था, पर उन्हें भी वह बता नहीं सका। इसमें दो हेतु हैं। यद्यपि गोस्वामीजी बहुत ऊँची स्थितिके हों तो हमें सच मानिये पता नहीं, आप क्या हैं, वह क्या हैं,

किसीके विषयमें भी मैं कुछ नहीं जानता पर यह मनमें जब आया कि महात्माजी हमपर नाराज तो होंगे ही नहीं, यह बात दो चार आदमियोंको कह दूँ तो क्या हर्ज है पर फिर यह आया कि इसका वास्तविक लाभ ये लोग नहीं उठा सकेंगे। यह हमारे मनकी मलिनता ही हो सकती है। पर एक तो उनकी मनाही दूसरे मेरे मनमें यह शंका कि जबतक भजनके द्वारा अन्तःकरण पवित्र नहीं होता तबतक इस बातको कोई भी समझ नहीं सकता। तीसरे अभी भी डर लगता है कि भाईजी शायद इन बातोंको सुन पायेंगे तो मुझे धमकानेके लिये कोई कड़ा ढंग अखतियार कर लेंगे क्योंकि उनके विचार मुझे ऐसे ही मालूम पड़ते हैं कि खास श्रीकृष्णकी प्रेरणा उन्हें है। जिससे वे अपने आपको बहुत ही मामूली दिखलाना चाहते हैं। अब यदि मैं उसके विरुद्ध कुछ करता हूँ तो फिर यह स्वाभाविक है कि वे सोचेंगे कि तो जाओ, मौज करो, अबतक छिपे–छिपे हमारी कृपासे ही तुम इतनी बात मेरे विषयमें जान पाये, पर अब इसका दुरुपयोग करने लगे तो जाओ। इतना ही नहीं यह भी भय मालूम हुआ कि यदि ये थोड़ा भी रुखा ढंग अखतियार करेंगे तो फिर मेरी जो उन्नति है, हो रही है, वह सर्वथा बन्द हो जायगी। ये बातें उनके मनमें हों ही नहीं, यह सर्वथा मेरी कल्पना हो सकती है पर मेरे मनमें यह भाव अभी भी काम करता है। और यह ठीक है उस बातको प्रकट करनेमें भाईजीको अत्यधिक संकोच होगा। मैं आपको इस बातकी इतनी ही फीस माँगता हूँ कि अब भाईजीके सामने इन बातोंको बिल्कुल न छेड़ें। और हमें यह डर लग रहा है कि भाईजी मुझे देख गये हैं, वे पता नहीं, क्या सोचेंगे ? आप लोग हमारी अपेक्षा हमारी दृष्टिमें बहुत ऊँची श्रद्धा रखनेवाले हैं, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है अवश्य ही प्रत्येकके भावके प्रकारमें अन्तर होता है।

(३)

१९९८ मार्गशीर्ष शु० ३ प्रातःकाल रास्तेमें
दुजारीजीसे खड़े होकर नीचे लिखी बातें लिखी—

.... क्योंकि जब मैं अधिकारी होऊँगा तो भाईजी तनिक भी कसर नहीं रखेंगे। अभी तो मेरे जीवनको उनकी दया या राधाकृष्णकी दया कहें ऐसे ढंगसे बढ़ा रही है कि किसीसे कुछ भी पूछनेकी जरूरत नहीं, जाननेकी जरूरत नहीं है। अलक्षित रूपसे, अन्य ढंगसे जब किसी प्रश्नको लेकर आगेका पथ बन्द दीखता है, तब अपने आप भाईजीके द्वारा कुछ

ऐसी चेष्टा हो जाती है कि हमें प्रकाश मिल जाता है, फिर चलाकर क्या पूछें।

एक बात यह कहना रात भूल गया कि कहीं कोई यह न समझ लें कि मैं श्रीजयदयालजी एवं भाईजीमें छोटे–बड़ेकी आलोचना कर रहा हूँ। मैं तो श्रीजयदयालजीके चरणोंकी जूती बनकर भी उनका ऋण नहीं चुका सकता क्योंकि तीन साल अपने पास रखकर उन्होंने मुझे इस लायक बनाया कि मैं भाईजीके पास रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ।——पर मैं क्या करूँ, मेरा मन भाईजीके प्रति ही अधिक खिंचता है, इसलिये उनके (सेठजी) चरणोंमें मैं सब प्रकारसे न्यौछावर होनेकी चाहना करनेपर भी किसी खास विशेष पारमार्थिक कारणसे उनकी बात नहीं मान सकता। वे मुझे बहुत ही प्यारे हैं और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि उनके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले घनश्यामजी, रामसुखजी आदिके चरणोंकी रजको मैं हृदयसे आदर करता हूँ। पर, कुछ ऐसी बातें हैं, जिसे मनुष्य मेरी समझमें भगवान्‌के समझानेसे भले समझे नहीं तो मेरी ताकत नहीं है कि मैं उसे समझा दूँ, कि क्यों मैं उनके प्रति इतना ऊँचा भाव रखकर भी, फिर उनकी कोई बात नहीं मानता। लोगोंमें ऐसी गलतफहमी होती है कि लोग श्रीजयदयालजी एवं भाईजीके बड़े छोटेकी कल्पना करके कई तरहकी बात सोचते हैं पर इस सम्बन्धमें कुछ ऐसी बातें हैं कि जिन्हें मनुष्य साधन करके ही समझ सकता है। अटकल पच्चू शास्त्रीय ज्ञानसे यहाँ कुछ भी नहीं होगा। यहाँ केवल भगवान्‌की कृपा ही समझा सकती है। इसलिये मैंने जो भी रातमें कहा है उसमें यह बात भी जोड़ लेनी चाहिये। मेरे लिये, यह ठीक है कि भाईजीसे अधिक बड़ा और कोई नहीं है क्योंकि इनके लिये मैंने श्रीजयदयालजीका जानबूझकर तिरस्कार किया है और उनकी कृपाको भी छोटा माना है।

मैं अहंकार नहीं मानता, सच मानिये, मेरी शक्ति बिल्कुल नहीं है कि मैं किसीको भी कुछ कह सकूँ पर मेरे मनकी अवस्था कुछ ऐसी है कि इच्छा रखनेपर भी कई बातें सामने आकर रुक जाती हैं। मेरे हृदयको आप देख सकें तो ठीक देखिये कि जो भी भाईजीके प्रति थोड़ी भी श्रद्धा रखता है वह मुझे अत्यधिक प्यारा है। मैं उससे कुछ भी छिपाना नहीं चाहता, पर जब बातें रुकती हैं, मनमें यह आता है कि अभी नहीं कहना है। लेकिन मनमें आप सब लोगोंके प्रति इतना अधिक प्रेम बढ़ता है कि मैं आप सभी लोगोंको हृदयसे पूज्य मानकर सिर नवाता हूँ। क्योंकि भाईजी जैसे व्यक्तिके लिये आप लोगोंके मनमें इतना स्थान है। मैं किसीकी बात

भाईजीके सामने नहीं चलाता, आप लोगोंकी चलानेके लिये कभी–कभी बाध्य हो जाता हूँ। मेरा खुद यह स्वभाव है कि भाईजीकी बात यदि कोई पूछ ले तो रात–रात बीत जाय पर हमें कहते–कहते सन्तोष नहीं होता, कई बार ऐसा देखा है कि लोग ऊबसे गये।

बात यह कह रहा था कि मैं यद्यपि भाईजीके विषयमें बिल्कुल कुछ भी नहीं जानता; पर उनकी चर्चा ही मुझे बड़ी प्रिय लगती है। केवल कुछ ऐसी ही बात है, ऐसे ही खास कारण हैं जिसे मैं किसीको नहीं बता सकता। बतानेपर भी कोई समझ नहीं सकता। केवल भाईजी जानते हैं और यदि श्रीजयदयालजी जानते हों तो मुझे पता नहीं। और कहनेकी इच्छा भी होती है, पर पता नहीं कहते–कहते, कहनेके बाद बहुत देरतक विरक्तिसे मन भर जाता है। रात बहुत देरतक यह सोचता रहा कि क्यों! उस कमरेमें गया था ? क्या लाभ था ? मेरा मन बिल्कुल उपराम हो गया था। आप लोगोंके प्रति बहुत अधिक प्रीति रखनेपर भी यह दशा होती है।

यदि भाईजी पूछना चाहें, इन पन्नोंको देखना चाहें तो बिना किसी अटकके दिखा सकते हैं। क्योंकि कोई भी बात उनसे छिपाकर नहीं करनी है। बुरा भला जो भी हो वे तो कृपा ही करेंगे। डर तो अभी भी है पर वह डर भी एक विलक्षण प्रकारका है। वे नाराज होकर भी श्रीराधामाधवके पास ही भेजेंगे। पर मेरे मनमें लालसा रहती है कि उनकी इच्छा जैसी है, वही मैं भी करूँ। मेरे द्वारा उनके प्रतिकूल आचरण न हो। मुख्य यह डर लगता है कि इसे पढ़कर कहेंगे कि भजन छोड़कर बातें बनाता है। डर निकल जायगा, क्या होगा कुछ पता नहीं। यह आप विश्वास करें, मैं आप लोगोंको बहुत ही पूज्य दृष्टिसे देखता हूँ पर फिर भी मनमें पता नहीं कई कारण बरबस मनमें आकर उपरामता हो जाती है।

(४)

पौष कृ ३० सं० १९९८ रात्रिके १०.१५ बजेसे १२.३० बजेतक श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको लिखकर दी

सच मानिये, जिन बातोंको कहने जा रहा हूँ, यदि उसपर मेरा सचमुच पूरा–पूरा विश्वास हो गया होता तो मेरा जीवन इतना विलक्षण होता––भाईजीके प्रति मेरा आकर्षण, मेरा व्यवहार ऐसा होता कि वह जगत्के लिये, श्रद्धाके लिये आदर्श हो जाता, पर वह है नहीं। और

भगवान्‌की लीला ऐसी है कि मनमें यह इच्छा भी नहीं उठती कि यह हो। इच्छा हो तो सच मानिये, **श्रीकृष्ण एवं श्रीभाईजी भक्तवाञ्छा–कल्पतरु हैं,** ये अवश्य पूरी कर दें। मेरे मनमें इच्छा ही नहीं होती कि प्रार्थना करूँ। यही आता है कि जैसे–जैसे पर्दा उठ रहा है, उसी क्रमसे उठने दूँ। नहीं तो निःसन्देह उसी क्षण भाईजी मेरी प्रार्थना पूरी कर दें। पर जिस दिनसे यह बात मैंने सुनी है, उस दिनसे मुझे अत्यधिक पारमार्थिक लाभ हुए हैं, जिन्हें मैं पूरा–पूरा बता भी नहीं सकता।

बात यह है कि डेढ़–दो वर्ष पहले एक महात्माने मुझे एक गुप्त चिट्ठी लिखी थी, जिसका जिक्र मैं कर चुका हूँ। उन्हें श्रीकृष्ण–लीला प्रविष्ट एक बहुत ऊँचे सन्तका साक्षात्कार हुआ और उन्होंने उनसे कई बातें पूछीं। मैं पत्र ही आपको दिखला देता, पर उसमें यह स्पष्ट लिखा हुआ है——यह पत्र आप किसीको भी नहीं दिखाइयेगा। यह भी न दिखानेका कारण है तथा उसमें कई और व्यक्तियोंके जिक्र हैं तथा एक–दो और कारणोंसे भी नहीं दिखला रहा हूँ। मेरे पास पड़ा है, प्राणोंके समान उसे मैंने अपने नित्यकर्मकी पुस्तकोंके साथ रखा है। यदि वे खो न गये, मेरे मरनेतक इसी प्रकार संयोग लगा रहा, आप जिन्दा रहे आपकी इच्छा रही तो मिल भी सकता है, अथवा आगे चलकर मेरा मन बदल जाय तो आप लोगोंको दिखला दूँगा। अस्तु, मेरे ऐतिहासिक ज्ञानके आधारपर मैं यह समझता हूँ कि उन महात्माका प्रादुर्भाव उस समय हुआ होगा जब शाह अकबर दिल्लीके तख्तपर थे। उनसे जब उन्होंने यह पूछा कि आप श्रीजयदयालजी एवं श्रीहनुमानप्रसादजीके विषयमें बतलाइये (बहुतसे प्रश्नोंके बाद) इसके उत्तरमें जो उन्होंने कहा था वह यह है——(वे हँसने लगे और बोले——) आप मेरी परीक्षा ले रहे हो, 'आप तो जानते ही हैं कि **हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है।'**

अब मैं अपनी ओरसे इस बातको समझानेकी दृष्टिसे बहुत ही संक्षेपमें थोड़ा लिख दे रहा हूँ। आप सोचें——सूक्ष्म शरीर क्या है ? भाईजीका पाञ्चभौतिक शरीर (इन्द्रिय–गोलकोंके सहित) अर्थात् इन्द्रिय–गोलकोंके सहित जो पाञ्चभौतिक ढाँचा है, केवल उतना ही बचा हुआ है। बाकी सबका सब, पूराका पूरा राधाजीके रूपमें परिणत हो गया है। **आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें भी नहीं पढा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका**

संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगत्‌के इतिहासमें भाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ विरले महात्मा हुए होंगे पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर मालूम पड़ता है, शास्त्रमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया। और कहीं हुआ हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया। वस्तुतः श्रीकृष्णकी इस गोपीभावकी लीला एवं सब प्रकरण सर्वथा अनिर्वचनीय वस्तु है। ब्रह्मकी प्राप्तिके बाद उस तत्त्वका उन्मेष भाग्यशाली महापुरुषोंमें होता है। वह सर्वथा मन-वाणीके परेकी चीज है, पर शाखाचन्द्रन्यायसे बहुत संक्षेपमें दो-एक बात आपलोगोंको कह दे रहा हूँ। सचमुच यदि अत्यन्त सौभाग्यके उदय होनेपर कोई गोपीभावकी साधनामें लगता है तथा श्रीराधा-कृष्णकी अपार कृपासे उसकी साधना सफल होती है, तब उसे भावदेहकी प्राप्ति होती है। इसका उदाहरण अर्जुनका अर्जुनी बनना है, नारदजीका गोपी बनना। इस भावदेहका तत्त्व भी सर्वथा सच्चिदानन्दमय होता है। और किसी-किसी बिरलेको इस भावदेहकी प्राप्ति होकर लीलामें प्रवेशका अधिकार प्राप्त होता है। इसके बाद, मृत्युके बाद यही भावदेह ही सेवामें नियुक्त होती है। पर भावदेहके द्वारा भी जिस रूपका अभिमान होता है, वह या तो मंजरी देहका होता है या श्रीराधाजीकी सखीका। श्रीराधाकी सखियोंके अनुगत होकर सेवामें, लीलामें यथायोग्य पार्ट करना मंजरियोंका स्वरूप है। सखियाँ नित्य हैं और मंजरी-देहमें प्रवेशकी गुजांइश है। साधनसिद्धा जितनी भी गोपियाँ हैं, वे या तो मंजरीके रूपमें या सखीके कुछ अंश नीचेके स्तरमें अर्थात् साधनसिद्धा सखीके रूपमें सेवाका अधिकार प्राप्त करती हैं पर सूक्ष्मदेह राधाजीके रूपमें परिणत हो जाना इससे कुछ भिन्न है। ऐसी स्थिति होनेपर एक क्षणके लिये भी बाह्य जगत्‌की स्फूर्ति नहीं होती। केवल महाप्रभुके अन्तिम जीवनका उल्लेख ऐसा प्राप्त होता है कि ठीक-ठीक राधाजीसे उनका तादात्म्य हो गया था। पर उनके विषयमें भक्तोंकी तो यह मान्यता है कि वे स्वयं श्रीकृष्ण थे। अतः यह स्थिति उनके लिये कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखती। पर भाईजीके जीवनको देखनेपर यह मालूम होता है कि जीवभावको प्राप्त ये एक दिन अवश्य थे। इसीलिये इस प्रकारकी स्थिति कितनी दुर्लभ है एवं कितने अनिर्वचनीय सौभाग्यका परिणाम है, यह सहज ही में अनुमान हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें भाईजी एक क्षणके लिये भी बाह्य जगत्‌में नहीं आते। फिर प्रश्न उठता है कि व्यवहार कैसे चलता है, इसका तार्किकोंके लिये तो उत्तर

दूसरे ढंगका है, पर श्रद्धालुओंको इस प्रकार समझना चाहिये कि जब स्वयं—स्वयं राधारानी इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके पर्देके भीतर नृत्य कर रही है तो उनकी सर्वसमर्थाशक्ति भी विकसित रहेगी ही। इसीलिये 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' ....की बात भाईजीके लिये सर्वथा लागू पड़ रही है।

भाईजीके इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके अन्दर राधारानी हैं, एक क्षणके लिये भी अपने स्वरूपभूत ज्ञानसे अर्थात् मैं राधा हूँ, इस ज्ञानसे विचलित नहीं होते, पर लोगोंकी जैसी मान्यता उनके सम्बन्धमें होगी, उसके अनुसार उनकी सर्वसमर्थताशक्तिके कारण व्यवहार यंत्रकी तरह हो जायगा। इस सम्बन्धमें इतनी बातें है कि लिखते—लिखते रात बीत जायगी और फिर पूरा—पूरा समझाया नहीं जा सकता। यह साधनसापेक्ष है। अर्थात् भाईजी (राधारानी) जिसे दया कर इसका रहस्य समझा दें, वही यत्किञ्चित अनुमान लगा सकता है कि व्यवहार ऐसे चल रहा होगा। तर्कके लिये कोई स्थान नहीं है। अस्तु, आप निश्चय समझें, भाईजी निरन्तर राधाभावाविष्ट रहते हैं, जिस प्रकार अर्चाविग्रहमें अर्चावतार होकर विलक्षण रूपसे अघटन घटन संभव है उसी प्रकार दूसरे शब्दोंमें यह समझ लें कि भाईजीके नामसे अभिहित इस पाञ्चभौतिक ढाँचेमें राधारानीका अवतरण हो गया है। जबतक यह ढाँचा रहेगा तबतक श्रद्धाकी जरूरत नहीं है, उन्मुख होते ही अधिकारके अनुसार लाभ मिल जायगा। **भाईजीका वस्तुगुण इतना अधिक है कि जो प्राणी इनके संस्पर्शमें आये, आयेंगे सबके सब भगवान्‌को इस जन्ममें या एक और (केवल एक और) जन्म धारण करके अपनी इच्छाके अनुसार भागवती गति प्राप्त करेंगे।** यह होगा वस्तुगुणसे, भावकी जरूरत नहीं है। ऐसा इसलिये कि भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपाशक्ति श्रीका अवतरण हुआ है। महाप्रभुके विषयमें आपने जो—जो बातें सुनी हैं, ठीक—ठीक वही बातें जगत्‌के उद्धारके सम्बन्धमें इनपर लागू है। इतना होते हुए भी 'ये यथा मां ....'के अनुसार जीवनकालमें ये लोगोंकी भावनाके अनुसार ही दीखेंगे। सावित्रीकी माँको पतिके रूपमें, माँजीको हनुमानके रूपमें तथा जो जिस भावनासे जो काम इनसे कराना चाहेगा, यदि उसका अमंगल नहीं होगा तो उसे ही ये करेंगे। आर्तको आर्ततासे मुक्ति, अर्थार्थीको धन अर्थात् जो चाहेगा वही मिलेगा। भक्तोंकी तरह इनकी जगत्—उद्धारकी चेष्टा नहीं रहेगी। कल्याण—सम्पादन जो हो रहा है—उसे भी ऐसा समझिये कि श्रीजयदयालजीकी चाह तथा अनन्त ग्राहकोंकी सच्ची चाहका प्रतिबिम्ब, प्रतिबिम्बित हो रहा है। भाईजी अब उस **standard**

श्रीभाईजीकी अलौकिक छटा

(मानक) से नहीं जाँचे जा सकते। अब इनकी जाँच भागवती standard (मानक) पर होगी। जिस प्रकार दो विरोधी गुण भगवान् श्रीकृष्णमें युगपत् रहते हैं, एककालीन मुग्धता और एककालीन सर्वज्ञता, उसी प्रकार भाईजी एक कालमें ही राधाभाविष्ट रहकर भी जगत्को हनुमानप्रसादका अभिमानी बनकर मोहित कर सकते हैं। इनका बोलना, साधनकी चेष्टा करना, साधना न होनेपर उदास होना, उन्नतिकी चेष्टा करते हुए देखे जाना, सर्वथा जगत्की शिक्षाके लिये लीलामात्र है। वस्तुतः उसी समय इस ज्ञानसे सम्पन्न हैं कि मैं राधा हूँ और जिस समय आप उन्हें कन्यादान करते हुए देखते हैं, किसीसे व्यापारकी बात करते हुए देखते हैं ठीक उसी समय, उसी क्षण उस ढाँचेके भीतर दिव्य देशमें एक ऐसी चिन्मयी लीला चलती रहती है कि जिसकी कल्पना भी हम लोगोंकी मलिन बुद्धि नहीं कर सकती।

बहुत ही संक्षेपमें, सूक्ष्म शरीरका श्रीप्रियाजीके स्वरूपमें परिणत होना क्या है, यह अपनी मानवी बुद्धिके आधारपर आपसे इतनी बातें लिखी है। आप इससे अधिक अच्छा सोच सकते हों तो हमें पता नहीं, पर चर्चा मंगलकारी है, इसलिये ऐसा लिख दिया। और यदि नहीं सोच सकते होंगे तो इससे थोड़ी अवश्य सहायता मिल ही सकती है। इस बातको विचार करें कि मरनेके बाद जो इन्द्रियों, गोलकोंके सहित शरीर मुर्दारूपमें उपलब्ध होता है, उतने ही का नाम स्थूल शरीर है, बाकी १७ तत्त्वोंके शरीरको सूक्ष्म शरीर कहा जाता है और उन महात्माने यह कहा है कि बिल्कुल प्रियाजीका स्वरूप और सूक्ष्म शरीर। मैंने ज्यों का त्यों उनका शब्द ही कल पत्र पढ़कर याद कर लिया है।

इतनी बात तो अवश्य है कि भाईजीका आँखे खोलना, आँखे मींचना, किसीकी ओर देखना—सब चेष्टा श्रीराधारानीकी चेष्टा है। सच मानिये, ऐसा दुर्लभ मौका मिलना बड़ा ही कठिन है। यदि केवल कोई उन्मुख हो जाय, उसे इसकी सत्यताका प्रमाण खोजना नहीं पड़ेगा। और जो उन्मुख होकर इन्हें आत्मसमर्पण कर दे, उसके लिये तो कहना ही क्या है। किसीपर भी कृपाप्रकाश करते समय भी यह समझना चाहिये कि यह ठीक उसी प्रकार होता है कि जिस प्रकार किसीने राधाजीकी उपासना की और राधाजी उससे प्रसन्न होकर उसे फल देनेके लिये आयें तो राधाजीका उस समय यह ज्ञान कि मैं राधा हूँ, अक्षुण्ण बना रहता है। वैसे ही भाईजी दुजारीको इनकी भावनाके अनुसार, मेरी भावनाके अनुसार मुझे, आपको आपकी भावनाके

अनुसार फल देते हुए भी निरन्तर राधाभावाविष्ट रहते हैं। इनके अन्तःकरणमें उसी साधकको विशेष स्फूर्ति होगी, जो इन्हें आत्मसमर्पण कर देगा, उसीको अपनी विशेष कृपा करके साधन मार्गपर बढ़ा ले जायेंगे, नहीं तो जो साधारण वस्तुगुणका नियम है, वही सबके लिये लागू होता होगा। नहीं तो इनमें भगवान्‌की तरह विषमताका दोष आ जायगा। इसीलिये यद्यपि किसी भी भावसे इनके साथ सम्बन्ध हो, परिणाममें तो अनन्त मंगलकारी है, निश्चय है। जिस प्रकार श्रीकृष्णके दर्शनोसे कृतार्थ उनके अवतार–कालमें सभी हुए, पर दुर्योधनको अन्ततक जादूगर ही दीखते रहे और भीष्मको पुरुषोत्तम पुरुष, वैसे ही भाईजीसे सम्बद्ध समस्त प्राणी कृतार्थ हो जायेंगे, निश्चय हो जायेंगे, परन्तु इनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होकर इनके संगका वास्तविक आनन्द तो समर्पण करनेवालेके लिये सम्भव है।

जब मैंने पहले–पहल सुना तो मुझे हठात् विश्वास नहीं हुआ——सोचा, ऐसा कैसे हा सकता है ? कई प्रकारकी सात्त्विक शंकाएँ उपस्थित हुई। पर ये शब्द मुझे बरबस टानते थे। बहुत दिनोंके बाद स्वयं भाईजी एक दिन व्रज–प्रेम, गोपी–प्रेमपर प्रवचन करते हुए कुछ ऐसे–ऐसे मार्मिक कई वाक्य बोल गये, तब इसकी कुंजी मिली। उस दिन समझा कि ऐसी स्थिति तो सम्भव है और खूब संभव है, पर यह अवश्य ही किसी बिरले महात्माके जीवनमें होती है, हुई होगी और होगी।

(५)

१९९८ पौष कृ० ६ गोस्वामीजी, रामेश्वरजी जालान, गोवर्द्धनजी, दुजारीजीको स्वामीजीने लिखकर दिया

सर्वोत्तम बात मेरी समझमें यह है कि भाईजीका कोई भी प्रेमी केवल संग करनेके लिये ही इनका संग करे और कोई भी उद्देश्य न रखे। उसका स्वरूप है, केवल संगकी इच्छा रखनी अपनी शक्तिभर भरपूर चेष्टा भी करनी——मेरा सुधार हो रहा है कि बिगाड़, उन्नति हो रही है कि अवनति, मेरी वृत्तियाँ अभी भी नहीं सुधरी इन बातोंकी ओर बिलकुल ध्यान न देना। फिर निश्चय समझिये उसे भाईजी वह अनुपम दान दे जायँगे जिसकी कल्पना भी कोई कर नहीं सकता। यह सर्वोत्तम बात है जो मैं भाईजीके सम्बन्धमें कह सकता हूँ। सच मानिये, यदि ऐसा कोई अपनेको बना सके, फिर भाईजी उसे अपने साथ श्रीकृष्ण लीलामें ही प्रवेश करायेंगे।

बुरा से बुरा जीवन है, कोई परवाह नहीं, पापकी भयानक स्फुरणायें मनमें उठती हैं पाप होते हैं कोई परवाह नहीं पर भाईजीका संग करना है, ऐसे संग करनेवालेको भाईजी अपने साथ अवश्य, अवश्य अवश्य ले जायँगे। इतना सुगम होनेपर भी शायद मेरी दृष्टिमें ऐसा कोई नहीं है जो संगके लिये संग करता हो, मैं तो हूँ ही नहीं। कोई भी साधन आवश्यक नहीं है। सर्वोत्तम बात मैंने हृदयसें आपसे कही है। अवश्य महापुरुषोंका दर्शन कीजिये, बात कीजिये, सत्संग कीजिये पर मनमें व्यभिचार न हो कि भाईजी डाटेंगे, खीझेंगे, धमकायेंगे। एक शर्त है भूल गया, किसी और महापुरुषका साझीपनाका भाव इसमें नहीं होना चाहिये। जगत्में महापुरुष हैं, उनके चरणोंकी धूलिको मेरा नमस्कार है, पर मुझे भाईजीका संग करना है। सच मानिये भजन न होनेके कारण अत्यन्त नीचेका ही रूप हम लोगोंके सामने है। भजन करके देखिये फिर चारों ओर इनकी कृपा आपको लपेटकर ऐसा प्रकाशमय दिव्य स्वरूपकी झाँकी करायेगी कि अभी तो कल्पना भी सर्वथा असम्भव है। पर भजन भी इनकी कृपासे ही होगा। ऐसे विश्वासीके प्रति इतनी कृपा तो ये प्रारंभमें ही कर देंगे कि उनकी धमकीसे उसका चित्त विचलित नहीं होगा। भाईजीका अनुगत श्रद्धालु देखे तो कोई हर्ज नहीं। तो फिर उस अवसरकी उस क्षणकी प्रतीक्षा करिये जब अपनी लीला संवरण करते समय अहैतुक दानसे कुछ आपको भी दे जायँ। इसका रूप है, अंततक अपने मनमें इनसे आशा रखनी आप छोड़ दें। आपकी मर्जी, मैं आपकी कृपाके बलपर ही, भाईजी मैं अपनी ओरसे नहीं छोड़ूँगा, यह मेरा दृढ़ विचार है। इस प्रकारका भाव रखकर चाहे प्रारब्धवश कहीं भी रहना पड़े, पर मानसिक सम्बन्ध बनाये रखनेपर, शारीरिक सम्बन्ध भी बीच–बीचमें इनकी कृपासे अवश्य मिलेगा। कभी–कभी लड़कपन कर बैठता हूँ—भगवान् और भाईजीके पास किसीकी सिफारिशकी जरूरत नहीं है, बिलकुल नहीं है। पर लड़कपनवश कुछ खूब अच्छी तरह बातें सजाकर जिस किसीकी भी चर्चा हमने चलायी है, मैं देखता हूँ, वे तो कृपा उड़ेलनेके लिये तैयार हैं पर वह ग्रहण करनेको तैयार नहीं इसका क्या उपाय। इनकी कृपाका एक क्षणका करोड़वाँ अंश आप किसी प्रकार ग्रहण कर लें तो फिर नाम छूटे ही नहीं। मैं जो इनके पास हूँ, सर्वथा इनकी कृपा हमें रखे हुए हैं। यहाँ जितने आदमी मेरी दृष्टिमें हैं, उनमें सबसे अधिक मेरी दृष्टि गोस्वामीजीकी ओर आकर्षित होती है और मैं सोचता हूँ कि यदि चाहें तो ये ऐसे बननेकी चेष्टा

कर सकते हैं। कृपामें विषमता नहीं है पर चाहकी कमीके कारण लोगोंको कई ,परिस्थितियोंका प्रतिबंधक लगा हुआ है। पर आपपर चाहे आपकी चाहके कारण अथवा अनिर्वचनीय सौभाग्यवश हो आप इस परिस्थितिमें हैं कि इसकी साधना कर सकते हैं। भाईजीका स्नेह कहीं भी कम–वेशी नहीं है पर आपपर वह किसी अंशमें मुझे प्रकट–सा दीखता है। ....

उस मंडलीका अभाव–सा है और दूसरी बात इनकी कही हुई बातपर बहुत कम ध्यान देना। तीसरी बात है सांसारिक प्रपञ्चका बाहुल्य। यदि दूसरी और तीसरी बात न होकर भी सच्ची लगन रखनेवाली मंडली बन जाय, जिसकी इनमें सचमुच श्रद्धा हो और सुननेकी लगन हो, तो फिर बाध्य होकर भाईजीके मनमें भगवान्‌की ओरसे प्रेरणा हो जाय जिससे वे हँसाते–खिलाते भी स्थिति सर्वथा बदल दें। बात मेरी समझमें ऐसी आती है कि भाईजी अब इस जगत्‌से बहुत ऊँचे उठ गये हैं। और निरन्तर उठते ही जा रहे हैं, अतः अब इनकी ओरसे चलाकर लोगोंकी श्रद्धा–प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा असम्भव–सी है। पर मंडली ऐसी जुट जाय जो भाईजीको तंग करनेका उद्देश्य तो रखे नहीं, पर मन ही मन इनकी बात सुननी चाहे तो फिर अपने आप इनके द्वारा ऐसी चेष्टा हो सकती है, कि सब कोई आकर्षित हो जायँ। ये जो बातें कहते हैं कि ऐसा करो, तो उसके करनेकी सच्ची नियत लेकर बढ़नेकी चेष्टा यदि मनुष्य करे तो कोई बात नहीं, सफल पूरी हो, यह शर्त नहीं है। शर्त यह है कि चलनेकी चेष्टा करनी, यह भी हम लोगोंसे नहीं होता, इसलिये इनकी कृपाका प्रवाह आकर भी निरन्तर स्पर्श करनेपर भी हमारा मन बहुत कम विश्वास कर पाता है। इसका भी उपाय बड़ा सुन्दर है। सच्चे मनसे इनके पास रोना। पर सच मानिये यह चाह भी भीतरसे नहीं है। इसलिये व्यक्तिगत रूपसे ही लाभ उठानेकी चेष्टा होनी चाहिये। और उसकी प्रारंभिक प्रक्रिया है सचमुच अपनी नीयतसे (आवश्यक काम करनेके बाद) भजनकी तत्परतापूर्ण चेष्टा करनी। भजन करके देखिये इनकी कृपाकी धारा बहती हुई दिखायी देगी। और आज जो इनका स्वरूप दीखता है, उससे अत्यन्त विलक्षण रूप दीखेगा। निरन्तर विलक्षणता बढ़ती ही जायगी। पारिवारिक आसक्ति इतनी अधिक है कि इस समय यहाँ हैं इसलिये यह भाव है। यहाँसे जाते ही यह भी भूल जाइयेगा।

तुलसीकी उपासना श्रीराधारानीने की थी श्रीकृष्णके साथ मिलन होनेके लिये। कल्पभेदसे तुलसीकी महिमा मैं देख रहा था, आप लोग सुनेंगे तो बहुतोंको तो विश्वास ही नहीं होगा कि इतनी महिमा सच नहीं है।

यहाँतक भगवान् शंकरने कहा है कि जलती हुई चितामें यदि तुलसी काष्ठका एक तिनका भी प्राणीके भाग्यसे पड़ जाय तो फिर उसी क्षण विष्णु पार्षद उसे वैकुण्ठ ले जाते हैं। त्रिकालज्ञ ऋषियोंपर अविश्वास मनकी मलिनताके कारण ही होता है। सचमुच भजन यदि हो तो प्रत्यक्षकी तरह सब बातें अनुभवमें आने लगती हैं। भजन बिना भगवान् या महापुरुषकी कृपा हो ही नहीं सकती। फिर क्यों नहीं होता ? मैंने अपने जीवनमें यह प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि सब कुछ उनकी कृपासे होता है। अहंकार कुछ भी काम नहीं देता। यह इच्छा हो कि मैं करूँ, तब भजन होता है, यह होता है उनकी दयासे ही। हम करते नहीं जैसा आप कहते हैं, इसका उत्तर हमें नहीं मालूम पर सोचता हूँ कि हम क्यों नहीं करते क्या उत्तर है ? हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि जबतक हम कर लेंगे, ऐसा अभिमान रहता है तबतक नहीं होता।

देखें यदि आज उत्साह नहीं हो तो किसी दूसरे समय। बात यह हुई कि कल हठात् कई प्रकारके भाव मनमें आ गये, फिर आपसे कुछ कहनेकी इच्छा हो गई। बात बहुत दिन बाद शायद भूल भी जाऊँ, इसलिये भी मनमें आ गया। अतः कोई जल्दी नहीं मेरी ओरसे सर्वथा आपकी प्रसन्न्तापर ही सब कुछ निर्भर करता है।

(६)

पौष शु० १/१९९८ श्रीवासुदेव सिंघानियाको स्वामीजीका आदेश

मैं भाईजीकी बात बहुत कम, बहुत कम, बहुत कम जानता हूँ। दुजारीजी बहुत जानते हैं। पर यह आग्रह हो कि आप ही कुछ सुनाइये तो मेरी प्रार्थना मानकर एक महीना एक लाख नाम जप कीजिये। नापजप भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कीजिये। इसलिये नहीं कि स्वामीजीसे बातें सुननी हैं। फिर सचमुच हमें बड़ा सुख मिलेगा और उत्साह भी होगा और भगवान्‌की इच्छा हुई तो कुछ अपनी बुद्धिके अनुसार जरूर सुनानेका विचार है।

एक तुच्छ प्राणी हूँ पर हृदयसे बड़े प्रेमसे यह सलाह देता हूँ कि आप कुछ दिन कम–से–कम एक महीना १ लाख रोज नाम जप करके, यदि एक महीना बाद मुझसे भाईजीके विषयमें कुछ कहनेको कहेंगे, तो हमें बड़ा उत्साह हो सकता है, फिर कुछ कहनेकी इच्छा हो सकती है। आप नाराज मत होंगे। अभी बिलकुल कहनेकी इच्छा नहीं हो रही है। प्रेमकी

भाषामें यह कहता हूँ कि मेरी फीस एक महीना प्रतिदिन एक लाख नाम जप दे दीजिये फिर बात हो।

.... यदि इनमें मन फँस गया तो बहुत संभव है कि श्रद्धा घट जायगी। केवल पारमार्थिक सम्बन्ध रखिये। स्त्री अच्छी हो गई, मान लें नहीं अच्छी होती तो क्या भाईजी महात्मा नहीं होते ! पर आपके मनपर इन तुच्छ संस्कारोंका पड़ना ठीक नहीं है। यदि आप भाईजीको मानें तो यह मानना चाहिये कि ये तो असंभव संभव कर सकते हैं। ये बातें क्यों हैं। समस्त जगत्के शहंशाह बादशाहके पास उसके खजानेमेंसे ५ रुपयेका नोट भीख माँगना जैसा है, और मिल जानेपर बहुत खुश होना है, वैसे ही भाईजीके विषयमें इन तुच्छ चमत्कारोंकी कल्पना करके खुश होना है। यों तो किसी प्रकारसे भी भाईजीका चिंतन मंगलकारी ही है, पर यदि इन बातोंको मन जरा भी पकड़ता है तो मेरी समझमें भाईजीसे असली लाभ उठानेमें बहुत देर लगेगी। बहुत देर लगना क्या हानि नहीं है ? फिर आगे बढ़ना बंद हो जाता है।

मेरी समझमें महात्मा बहुत ऊँचे होते हैं। भविष्यमें लौकिक बातोंसे भाईजीकी सर्वज्ञताकी परीक्षा लेना छोड़ दीजिये, यह बार बार प्रार्थना है! कोई कहे तब भी मत सुनिये। ऊपरी मनसे इन कामोंको सुन लें।

भाईजीकी किसी प्रकारके लौकिक सम्बन्धको लेकर परीक्षा लेना बड़ी भारी भूल है। आपने जितनी बातें मुझसे अभी कहीं उसे सुनकर मैं आपको अत्यन्त प्रेमसे यह सलाह देता हूँ कि आप इन बातोंको भूलकर केवल पारमार्थिक लाभके लिये इनकी बात सोचिये।

पर आपके मनमें इनका, इन बातोंका संस्कार तो पड़ गया है।

ये बातें इतनी मामूली, इतनी तुच्छ, इतने नीचे दर्जेकी हैं कि आगे चलकर इनसे श्रद्धा घट भी सकती है।

आप इन्हें जैसा मानियेगा, ये आपके लिये ठीक वैसे ही बन जायँगे। आप यदि इनके विषयमें यह समझेंगे कि ये मेरी बात जनानेपर जानेंगे, तो फिर जनानेपर ही जाननेकी लीला देखनेको मिलेगी, और यदि सचमुच भीतर हृदयसे आपका पक्का निश्चय है कि भाईजी तो सब जानते ही हैं तो फिर सब जानते हैं। अवश्य ही पूरा–पूरा सम्पूर्ण रूपसे विश्वास होनेपर ही इस बातका अनुभव होगा।

फिर भी आपसे प्राथना करता हूँ कि उन तुच्छ संस्कारोंको मनसे

निकाल दीजिये। वे बातें असलमें सच्चे महात्माकी महिमाको घटाने वाली हैं। आपका हृदय सरल है, आपने मुझसे साफ–साफ कह दिया, इसलिये मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इसीलिये प्रेमसे कहनेका साहस भी कर रहा हूँ कि वस्तुतः महात्माकी महिमा कोई कह ही नहीं सकता। जो महिमा स्वयं भगवान्‌की है वही महिमा सच्चे महात्माकी है। यदि सच्चे हृदयसे, भीतरके हृदयसे आपका पूरा–पूरा विश्वास हो जाय कि भाईजी महात्मा हैं फिर तो उसी क्षण आप स्वयं ऐसे विलक्षण पुरुष बन जायँ कि लोग आपको देखकर चकित रह जायँ। अभी बात सुननेसे, सुनी हुई बातके आधारपर ऊपरी मनसे एक भाव पैदा हो गया है कि भाईजी महात्मा हैं, अभी इसकी नींव बिलकुल नहीं पड़ी है। यह ऊपरका भाव भी बड़े पुण्यसे अत्यन्त सौभाग्यसे हुआ है, बड़ा ही सुन्दर भाव है, पर इसकी नींव दृढ़ करनी चाहिये। बिना नींवके मकान नहीं बनता। भाईजीको यदि आप महात्मा मानने लग जाइयेगा तो फिर आपको कुछ भी करना–कराना नहीं पड़ेगा। क्योंकि महात्मा मिल गये तो फिर भगवान् मिल गये। पर असली मान्यता नहीं है और यह मान्यता जबतक अन्तःकरण मलिन है, तबतक हो ही नहीं सकती। जैसे एक आदमी अंधा है, उसकी रोशनी बंद हो गयी है, उसके सामने किसी विलक्षण वस्तुकी बात आप कहें, पर वह बहुत प्रेमसे सुनकर भी उस वस्तुकी ठीक–ठीक धारणा नहीं कर सकता। जब उसकी आँखकी रोशनी खुलेगी तभी वह समझ सकता है कि ओह ! यह वस्तु तो इतनी विलक्षण है। उसी प्रकार हम लोग अंधे हैं अर्थात् हम लोगोंका अन्तःकरण मलिन है। हम लोग महात्माकी बात सुनकर भी बिलकुल नहीं जान सकते कि असलमें महात्मा क्या वस्तु है, उसकी कितनी महिमा है। जब अन्तःकरण पवित्र होगा तभी समझेंगे कि महात्मा यह है और उसकी ऐसी महिमा है। इसीलिये यदि भाईजीमें श्रद्धा बढ़ाना चाहते हैं, सचमुच भाईजीसे लाभ उठाना चाहते हैं तो सर्वोत्तम बात हृदयसे आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि यथाशक्ति पापसे पूरा–पूरा बचनेकी चेष्टा करते हुए कम–से–कम प्रतिदिन १ लाख नाम लीजिये। लेते हों, इससे भी ज्यादा लेते हों तो बड़े आनन्दकी बात है। जबतक यह न कीजियेगा, तबतक भाईजीकी असली महिमाका ज्ञान असंभव–सा है। भाईजी या भगवान् स्वयं कृपा करके बिना भजन किये हुए ही आपको अपनी महिमाका ज्ञान करा दें; यह दूसरी बात है। वे लोग स्वतंत्र हैं। पर सर्वसाधारण नियम यह है कि भजन करना ही पड़ेगा।

यदि सचमुच आप भजन करेंगे, तो फिर किसीसे पूछने नहीं जाना पड़ेगा। अपने आप सब बातें जान जायँगे।

बिना भजन किये हुए जो बातें हैं सो सब ऊपर–ऊपरकी हैं। मनुष्य समझ ही नहीं सकता वह तो एक लड़कपनका खेल–सा है।

पहले आप यह बताइये कि भाईजीके विषयमें आप क्या सोचते हैं ? आपको जरूरत होगी तो स्वयं भगवान्‌की प्रेरणासे वे बातें अपने आप सुननेको मिल जायगी। पर वह आपके हाथकी बात नहीं कि महिमा सुननेको मिल जाय।

तो फिर कीजिये, प्रयत्न कीजिये। और मेरी शर्त यह है कि कुछ दिन एक लाख नाम लीजिये। फिर मैं जिन्दा रहा और आपकी इच्छा हो तो मेरे पास आइयेगा मैं बड़े प्रेमसे भाईजीकी बातें कहनेके लिये उत्साहित हो सकूँगा।

(७)

रतनगढ़ माघ कृष्ण ७। ६८ रात्रि के १० से ११

श्री शिवकृष्णजी डागाको स्वामीजीने लिखकर दिया

राधा राधा राधा

कायासे, मनसे, वाणीसे उनका संग करना।

जहाँ तक हो, जबतक मौका भगवान्‌की दयासे मिलता रहे, तबतक अधिक–से–अधिक उनके पास रहा जाय।

मनके द्वारा उनके विषयमें जो कुछ बातें मालूम हो, उसका चिंतन करना चाहिये।

वाणीके द्वारा सच्चे श्रद्धालुओंके बीचमें उनकी चर्चा करनी चाहिये।

ये तीन बातें जितनी अधिक तथा जितनी तत्परता एवं लगनसे होगी, उतनी ही शीघ्रतासे महापुरुषोंकी कृपा प्रकाशित होकर उनका असलीरूप दीखने लग जाता है, जहाँ वह दीखा कि फिर तो मन उसीमें रम जायगा, वाणी बंद हो जायगी और शरीर उनके चरणोंमें न्यौछावर हो जायगा।

मनमें लालसा तो पासमें रहकर उनकी सेवा करनेकी अर्थात् उनके कहनेके अनुसार यन्त्रकी तरह नाचनेकी रखनी चाहिये। पर यह मनकी बात है। उनसे खुलकर कुछ नहीं कहें, फिर वे जैसी आज्ञा दें, जहाँ रहनेकी कहें, वहीं रहें। अर्थात् पासमें रहना चाहता हूँ, यह खोलकर उनसे

कभी मत कहें। सच्चे संत सब कुछ जानते हैं, उनसे आपके मनकी कोई बात छिपी नहीं है, ऐसी लालसा होनेपर भी वे अलग रखना चाहें तो उसीमें आपका मंगल है, अलग रहनेसे आपकी श्रद्धा बढ़ेगी इसीलिये अलग रखेंगे। बहुतसे कारण होते हैं, पर उनके सामने तो सब प्रत्यक्ष है, वे वही करेंगे, जिससे आपकी श्रद्धा बढ़े।

आपका मन जिसकी ओर अधिक आकर्षित हो, उन्हींके पास रहना ठीक है। दोनों ही विलक्षण महापुरुष हैं। अर्थात् जिसकी ओर मन ज्यादा करे उसीके पास रहनेकी मन–ही–मन लालसा रखनी चाहिये, पर खोलकर न इनसे कहना न उनसे कहना। दोनों जो आज्ञा करें, उसीको हृदयकी सारी तत्परतासे करना। फिर आपके लिये जो ठीक होगा, वह अपने आप हो जायगा।

भजन ऐसी चीज है कि बिना किसीके पास गये, बिना किसीसे पूछे, अपने आप सब मालूम हो जायगी। स्वयं हृदयमें प्रकाशित हो जायगी। बिना कहे् बतानेवाले गले पड़कर बता जायँगे। न चाहनेपर भी बता ही जायँगे। बिलकुल अनुभवमें बहुत दूरतक यह बात मेरे जीवनमें आ चुकी है। किसीके पास नहीं जाना, किसीसे मुँह खोलकर कुछ नहीं पूछना, केवल जीभसे नाम लेना और मनसे स्मरण करना, बस दो ही काम सर्वोत्तम है जो कर रहे हैं। फिर कुछ भी नहीं चाहिये।

पर मनमें भजनका अहंकार नहीं करना चाहिये। अर्थात् मैं ठीक कर रहा हूँ ये लोग नीचे दर्जेके पुरुष हैं, फालतू समय खोते हैं।

तेरे भावे जो करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कर अपनो भवन बुहार।।
सीयराम मय सब जग जानी।
करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

आप भी पूज्य, वे भी पूज्य—पर हमें तो भजन ही करना है।

(८)

माघ शु० ४ रतनगढ़ वासुदेव सिघांनियाको स्वामीजीने लिखकर दिया, श्रीदुजारीजी पासमें सोते–सोते देख–सुन रहे थे।

राधा राधा राधा

थारी इच्छा है आज कि कल ? कल हमारा मन कैसा होगा। आज

तो बात श्रद्धा–श्रद्धाकी चल रही है ५ बजेसे। वे आपके कामकी विशेष नहीं होगी। आपको मैं बड़े ही प्रेमसे आपके कामकी बात बताऊँगा, आप विश्वास कीजिये। जो सर्वोत्तम बात आपके लिये मेरी समझमें होगी, उसे तुच्छ समझके अनुसार कहनेकी चेष्टा करूँगा। प्रत्येक आदमीकी बात प्रत्येकको लाभदायक नहीं होती। खासकरके आपको यह सावधान रहना चाहिये कि सब बात सुननेसे लाभके बदले हानि भी हो सकती है। एक आदमी है, उसके सामने श्रद्धाकी बहुत ऊँची बात भी ऐसी हो सकती है कि उसकी श्रद्धाको कम कर दे। और यह कोई रोक तो हैं नहीं कि आपको पढ़ाऊँ ही नहीं, पीछे जँच जायगा तो सब पढ़ा सकता हूँ। पर अभी जँचती नहीं है।

४ आदमीके सिवा पाँचवेंको मत पढ़ाइये। दुजारीजी, गोस्वामीजी, गोवर्द्धनजी और बजरंग बजाज। इनके अतिरिक्त किसीको मत पढ़ाइयेगा। यह शर्त है, अपने भाई पुरुषोत्तमको भी नहीं। कोई भी हो उससे झूठ नहीं कहना है। बड़े प्रेमसे प्रार्थना कर देनी है कि स्वामीजीने करार करा लिया है। आज १ घण्टे बातें करें फिर कभी पीछे। कोई यह नियम तो है नहीं कि आज ही खतम कर दें। पर १ लाख नाम जपका नियम छूटेगा तब नहीं।

आपने उस दिन पूछा था कि भाईजी सर्वज्ञ हैं कि नहीं। (मनके भीतरकी बात जानना, सब बातें भगवान्‌की तरह जान लेना।)

एक बात आप सोचिये। आपके सामने जो भाईजीका पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके भीतर क्या है। जैसे हम लोग पैदा हुए थे, जीव जिस प्रकार जन्म लेता है, उसी प्रकार भाईजी पैदा हुए थे। दूसरे शब्दोंमें एक जीवात्मा आजसे ४५–५० वर्ष पहले पैदा हुआ था जिसका नाम हनुमानप्रसाद रखा गया। पर भगवान्‌की कृपासे साधनाके द्वारा वह इतनी ऊँची स्थितिपर पहुँच गया कि जिसकी कल्पना भी हम लोगोंको नहीं हो सकती। अब समझानेके लिये आपसे कहता हूँ कि जैसे आजसे ५–७ वर्ष पहले भगवान् आवें और स्वयं इस पाञ्चभौतिक ढ़ाँचेके अन्दर जो जीव था, उसे सर्वोच्च स्थिति, सर्वोत्तम पारमार्थिक स्थितिका दान करके उसे अपने हृदयमें छिपा लें और स्वयं उसकी जगहपर काम करने लगें, ठीक–ठीक यही हालत यहाँ हुई है। भाईजीके ढ़ाँचेके भीतर जो आत्मा थी, वह तो सर्वोच्च पारमार्थिक स्थिति प्राप्त करके उनके हृदयमें उनकी सच्चिदानन्दमयी लीलामें सम्मिलित हो गई, अब उसकी जगहपर स्वयं भगवान् काम कर रहे हैं और तबतक करेंगे जबतक यह पाञ्चभौतिक ढ़ाँचा रहेगा। अब आप

समझियेगा कि मामाजी भगवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं, आपके सामने ठीक उसी प्रकार बने रहेंगे कि जैसा भानजेके प्रति होना चाहिये। कहेंगे—हाँ भाया, वासुदेव राजी तो है। वासुदेव विचारेको यह पता नहीं कि मेरे मामाजी जो थे, वे तो कबके चले गये, उनकी जगह स्वयं भगवान् मेरी बातका जबाब देते हैं, मेरी बात सुनते हैं, मुझे सलाह देते हैं। वह विचारा तो यही समझेगा—मामाजीने यह कहा है। अधिक-से-अधिक सोचेगा कि मामाजी महात्मा हैं, पर वह यह सोच ही नहीं सकता कि स्वयं भगवान् मेरेसे खेल कर रहे हैं। इसी प्रकार मांजीके लिये बेटा बने रहेंगे, सावित्रीके लिये पिता, सावित्रीकी माँके लिये पति और किसीको रत्तीभर भी यह पता नहीं चलेगा। ठीक-ठीक यही दशा यहाँ समझनी चाहिये। अब आप सहज ही में सोच सकते हैं कि इनके लिये सब कुछ जानना हँसी खेल है। पर यह सर्वज्ञताका प्रकाश उसीके सामने होगा जिसका पूरा-पूरा संशयहीन विश्वास इनपर होगा। **जो बात शास्त्रमें भगवान्‌के विषयमें आपने सुनी है, सुनेंगे वह सबके सब इस ढाँचेके भीतर प्रकट** है, पर भगवान् क्या है, यह तो ठीक-ठीक तभी मालूम होगा जब कि साधन करते-करते वे कृपा करके अपना पर्दा उठाकर आपको अनुभव करा दें। और फिर यदि वे चाहें और आपको यह बात याद रहे कि मामाजीको जो स्थिति आपने दी है, वह हमें दिखाइये। मामाजीकी आत्मा किस रूपमें इस समय है, आप दिखा दें। तभी वस्तुतः भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति आप समझ सकियेगा। अर्थात् पहले भगवत्प्राप्ति होगी इसके बाद उनकी कृपा होनेसे ही भाईजीकी असली स्थितिका पता चलेगा। इसके सिवा कोई भी दूसरा उपाय नहीं है। एक तो मैं जानता ही नहीं, मैं सर्वथा एक तुच्छ प्राणी हूँ, पर जो कुछ भगवान्‌की कृपासे मैं कहूँगा उसे ठीक-ठीक तो समझना दूर रहे, बिलकुल आप नहीं समझ सकियेगा। बड़े प्रेमसे यह बातें आपको लिख रहा हूँ। नाराज मत होइयेगा। बिना साधनाके कोई भी नहीं समझ सकता। इस समय ऊपरकी स्थिति जो है, वह यही है कि स्वयं भगवान् उस ढाँचेके भीतरसे जबाब दे रहे हैं। कन्यादान कर रहे हैं, कल्याणका सम्पादन कर रहे हैं। पर यह बात हम लोग नहीं जानते। इसीलिये कोई तो उन्हें सलाह देता है, कोई उनकी बातका अविश्वास करता है, कोई उन्हें भला-बुरा कहता है, वे सुनकर हँसते हैं। ऐसी अवस्थामें क्या कर्तव्य होता है आप स्वयं सोच सकते हैं। अपनी समस्त चेष्टा लगाकर हृदयसे अपने आपको इनके चरणोंमें समर्पण

करके निश्चिन्त हो जाना। मौका है। जहाँ प्रारब्ध पूरा हुआ कि खेला खतम है। शरीरका ढाँचा तो प्रारब्ध पर ही निर्भर है। भगवान् प्रकट तो तभीतक रहेंगे जबतक प्रारब्ध चलाना है। जिस भगवान्को खोजनेके लिये अनन्त कालतक तपस्या करनी पड़ती है, वे स्वयं इतने सुलभ हैं, पर विश्वास नहीं यही दुर्भाग्य है। मायाका पर्दा डाले हुए हैं, उनकी कृपासे कोई बिरला इस बातपर विश्वास करके निहाल होगा। यो तो भगवान् जब आये हैं तो इसका अनन्त लाभ सबको मिलेगा। जिस पर इनकी दृष्टि पड़ेगी वह बिना जांने पवित्र होकर कृतार्थ होगा ही, पर यह तो अन्तमें होगा, इनके संगका आनन्द तो आत्मसमर्पण करने पर ही मिलेगा। (कई कारणोंसे मैं सब बातें खोलकर नहीं लिख सकता, कुछ ढंककर लिखता हूँ।)

आपका .... है। ठीक उसकी ऐसी दशा है कि मानो पारस पत्थरसे चटनी बटी जाय। मामाजी ए चीजको भाव तेज होसी के ? चीजको भाव मन्दो हुसी ? बस यही पूछकर ही और इसीके उत्तरसे उसे सन्तोष है। वह यह नहीं समझ पाता कि हाय, जिसके लिये करोड़ों वर्ष तक ऋषि मुनि तपस्या करके थक जाते हैं, वे स्वयं इस प्रकार अपनेको छिपाकर हमसे खेल कर रहे हैं। उसकी बुद्धिमें यह बात ही नहीं आ सकती। समझानेपर भी वह समझ नहीं सकता, क्योंकि उसके मनमें धनके प्रति आसक्ति है, उसे धन चाहिये। धन तो क्या, जगत्में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे भाईजी उसे दे नहीं सकें, पर उसका विश्वास भी इनपर नहीं है, निर्भरता नहीं है। अंतमें उसका कल्याण तो निश्चय हो जायगा, क्योंकि किसी भावसे संबंध हो, हुआ है भगवान्से। उसका ही नहीं जगत्के जितने प्राणीको इनका दर्शन होगा, सब-के-सब तर जायँगे। यह हो सकता है कि इनकी बात नहीं माननेके कारण एक जन्म और धारण करना पड़े। वह जन्म किसी भी योनिका हो सकता है। कुत्ता, गदहा, मनुष्य कोई भी योनि मिल सकती है, पर उस योनिका प्रारब्ध ऐसा होगा कि भगवान्का साक्षात्कार निश्चय ही हो जायगा। वे प्राणी अनन्त पुण्यशाली हैं कि जिन्हें एक बार भी इनका दर्शन प्राप्त हो गया है। वे जानते नहीं हैं बस इतनी ही कमी है। आपके लिये कल्याण तो निश्चित है पर यदि आत्मसमर्पण करके इनके कहनेके अनुसार चलनेकी चेष्टा हृदयसे नहीं होगी तो संभवतः एक जन्मका चक्कर और भी लग जाय। होगा ही, यह मैं नहीं कहता, पर जो इनसे जिद करके सासांरिक भोग चाहेगा उसे तो मेरी समझमें एक जन्म धारण करना

ही पड़ेगा। जैसे उदाहरणके लिये आपका .... है। वह चाहता है इनसे धन। अब दोमें एक बात होगी। या तो इसी जीवनमें उसके मनमें धनके प्रति इनकी कृपासे वैराग्य हो जायगा, पर यदि नहीं हुआ तो उसे करोड़पति बनानेके लिये, अरबपति बनानेके लिये उसका फिर एक जन्म होगा, क्योंकि ये तो भक्तवाच्छा कल्पतरु हैं। नहीं तो फिर सकामी भक्तका कोई मूल्य नहीं रह जाता। धन दुःखकी जड़ है, उसे भगवान् उसको दे ही नहीं सकते कि जिसके धन पाकर गिर जानेकी संभावना हो। यदि देंगे तो उसीको देंगे जिसे गिरनेका भय नहीं रह गया हो। .... यदि साधनाके द्वारा इसी जीवनमें वह स्थिति प्राप्त कर ले कि धनसे अनासक्त रहकर वह धनका उपयोग कर सके, पतनके मार्गसे ऊपर उठ जाय, तो इसी जन्ममें उसे वे अरबपति बना दें। पर न तो उसका इनपर विश्वास है, न निर्भरता। अर्थार्थी भक्त तो होना ही पड़ेगा। जो लक्षण होने चाहिये उसमें कहाँ है, वह तो भाईजीसे करार कराना चाहता है, भाईजीको जाँचना चाहता है तो भाईजीको उसके सर्टिफिकेटकी जरूरत थोड़े ही है कि परीक्षा दें। यदि सचमुच वह विश्वास करके धनके लिये ही इनपर निर्भर हो जाय तो इसी जीवनमें या तो उसके मनमें वैराग्य पैदा कर देंगे या बचनेका उपाय करके करोड़पति बना देंगे। इनसे जो चाहेगा वही मिलेगा क्योंकि ये भक्तवाच्छा कल्पतरु हैं। जो चाहो ले लो। भाव पूछता है, तेजी मंदी पूछता है। इन्हें मालूम है कि कौन आदमी इनसे क्या बात किस उद्देश्यसे पूछता है। कभी सच्चा तो बता देंगे। कभी जानबूझकर झूठ बता देंगे कि जिससे श्रद्धा कम हो जाय। कई बात ये ऐसी बता देंगे कि वह ठीक नहीं निकलेगी, इसमें पता नहीं, किस उद्देश्यसे किसकी श्रद्धा कम कर देनेके लिये करते हैं, पर सब ठीक विधि विधानसे करते हैं, तनिक भी गोल नहीं पड़ेगा, क्योंकि अब ढाँचेमें मामाजी नहीं हैं। अब है स्वयं भगवान् जिनके एक इशारेसे जगत बनता बिगड़ता है। पर भैया, इतनी बात सुनकर भी अन्तःकरण जबतक निर्मल नहीं होगा तबतक ये बातें ठीक–ठीक क्रियात्मक रूपसे भीतर उतर ही नहीं सकती। उतरना असंभव है। दो ही उपाय हैं हृदयमें इनके चरणोंमें न्यौछावर होनेकी लालसा लेकर इनकी इच्छाके अनुसार जीवन, इनके हाथमें अपना जीवन सौंप देना और दूसरी बात जीभसे निरन्तर नाम लेना। आप सच मानिये यदि आप एक लाख नाम रोज नहीं लेते तो आप भले ही किसी दूसरेसे जो भी सुन पढ़ लें, पर मैं आपको इतनी ऊँची बात बतानेका

साहस नहीं कर सकता था। इससे भी बहुत ऊँची बातें हैं पर मेरी इच्छा ही नहीं है। आप नाराज न हों। बस आप दो काम करें। जब भगवान् है तब उनकी कृपा भी तो वैसी ही है, फिर कठिन क्या है ? आप चाहें तो उनकी कृपा बिना परिश्रमके आपसे करा ले। कई कारणोंसे बातें मैंने बहुत ढ़क करके लिखी हैं। आपसे मेरा बड़ा ही प्रेम है। एक तो भाईजीकी बात सुननेवाला स्वाभाविक मुझे प्यारा लगता है दूसरे आपने एक लाखका नियम लिया है। पर इससे अधिक सुननेसे लाभ आपको अभी शायद नहीं हो, मेरा मन ऐसा ही कह रहा है। दुजारीजी, गोस्वामीजी, गोवर्द्धनजीके सिवा (और आज फोगलाजी बैठ गये) नहीं तो इन चारोंके सिवा किसीके सामने इस प्रकारकी बातें खोलकर इन लोगोंके सिवा और किसीसे नहीं कहा है। इसलिये प्रेमकी कमीके कारण छिपा रहा हूँ, ऐसी बात बिलकुल नहीं समझिये। इन्हीं बातोंको यदि भाईजी सुनेंगे तो वे बाहरी रूपसे तो मुझपर जरूर नाराज होंगे। उनसे छिपाना नहीं है। आप चाहें, वे चाहें तो एक-एक बात उनसे पढ़ा दे सकते हैं। उनसे छिपानेके लिये नहीं कहता। पर औरोंसे तो छिपानेकी बार-बार प्रार्थना है। मैंने स्वयं बहुत संकोचमें पड़कर इतनी बात आपसे कही। बार-बार मनमें आता था कि भाईजीसे पूछ लूँ, पर पूछनेपर तो शायद वे मना कर देते। यद्यपि उनसे यह छिपा नहीं है। मैं तो एक महान् अधम प्राणी हूँ, मेरेमें स्वयं बहुत त्रुटि है, आपको कोई नीचा समझता हूँ ऐसी बात बिलकुल नहीं है, पर मेरी जबान ही नहीं खुलती। आप नाम लेते रहिये फिर आपके लिये जो आवश्यक होगा स्वयं भगवान्‌की प्रेरणासे कोई सुना देगा, अपने आप सुना देगा। कोई सुनाना चाहे सुन लेना चाहिये, पर मुँह खोलकर किसीको कहना नहीं चाहिये। मनमें लालसा रखनी चाहिये। मनसे चाहे पर भगवान्‌से नहीं कहें। भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। मुझे और कोई भी डर नहीं हैं। यदि आप नाम छोड़ देंगे तो श्रद्धा बढ़नी कठिन है। दोनों बात खूब तत्परतासे होनी चाहिये और लौकिक स्वार्थका सर्वथा त्याग। .... की तरह यदि आप भी इस फेरमें पड़ेंगे तो फिर देरी होगी ही। दोनों कीजिये। एक लाख नाम जपका नियम और फिर नाम लेते हुए अध्ययन कीजिये। २५ अध्याय / ३० अध्याय मन-ही-मन पाठ हो सकता है। अभ्याससे हो सकता है। मन-ही-मन पाठ, विचार और जीभसे नामका उच्चारण। नाम उच्चारण और पाठ एक साथ कैसे होगा ? आपको मैंने बहुत ही अच्छी-से-अच्छी बात बताई है, अवश्य ही कुछ

ढ़ककर। आप नाम लीजिये और हृदयसे भाईजीके हाथमें जीवनकी बागडोर सौंपनेकी सच्ची लालसा कीजिये फिर बतानेवाला गले पड़कर बता जायगा। यों लड़कपन कीजियेगा। सुनाने सुननेका शौक रखियेगा तो यह भी ठीक ही है इसमें भी बहुत लाभ है, परन्तु सच्चा लाभ बहुत देरसे मिलेगा। एक दुजारीजीके सिवा मेरे ध्यानमें और कोई भी नहीं है जो सचमुच हृदयसे साधनाके तौरपर भाईजीकी बात सुनकर पूरा–पूरा लाभ उठा ले।

(६)

माघ शुक्ल ८, सं० १६६८ (२४ जनवरी, १६४२) बाबानें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी उपस्थितिमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको लिखकर दिया—

भाईजीको जिस दिन जसीडीहमें भगवत्प्राप्ति हुई थी, वह प्राप्ति और आजकी प्राप्तिमें आसमान–जमीनका अन्तर है। वह तो त्रिदेवोंमें सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे। इसके बाद जो दर्शन हुए—वह जो उनकी स्थिति थी, वह ऐसी थी, जैसे ध्रुवको भगवद्दर्शन। इसके बाद और भी अवस्था ऊँची हुई, श्रीकृष्ण आये। और फिर भी ऊँची अवस्था हुई, युगल सरकार आये। फिर इसमें भी ऊँची अवस्था यह हुई कि श्रीराधारानीमें सर्वथा इनका अहंकार विलीन हो गया। अर्थात् श्रीराधारानीके नित्य विग्रहमें ये लीन हो गये। यद्यपि यह अवस्था अनिर्वचनीय है, वाणी, बुद्धि, मनसे परेकी है पर जहाँतक विवेचन हो सकता है, वही बात शाखाचन्द्रन्यायसे कही जा रही है। वह अवस्था इतनी विलक्षण है कि जिस दिन हम लोगोंमेंसे कोई सचमुच भाईजीकी कृपासे गोपीभावकी साधना करके गोपी बन जायगा, उसी दिन वह ठीक–ठीक समझ सकेगा और फिर वह भी किसी दूसरेको समझा नहीं सकेगा। यह तो प्राप्तिकी बात हुई, पर साधनाके ऊँचे स्तरकी बात भी समझायी जा ही नहीं सकती, केवल एक ही उपाय है, उसका अनुभव करना साधनाके द्वारा, अस्तु, जो भी विवेचन है वह बाहरी है।

अब आप सोचें, भाईजीके राधारानीमें लीन होते ही स्वयं श्रीकृष्ण इस पाञ्चभौतिकके धर्मी बन गये। दूसरे शब्दोंमें समझानेके लिये कह सकता हूँ कि मान लें, जैसे पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके द्वारा जो व्यवहार होता है, वह तो सर्वथा उसी ढंगसे हो रहा है कि भगवान् स्वयं श्रीकृष्ण उसके अन्दर श्रीराधाकृष्णके रूपमें अभिव्यक्त हैं, और फिर उनकी

सर्वसमर्थताशक्तिके कारण एक ही समय भाईजीके साथ (श्रीराधारानीके साथ) सर्वथा दिव्य सच्चिदानन्दमयी लीला करते हुए भी जड़ जगत्‌के व्यवहारकी भी रक्षा करते हैं। एक ही समयमें जब कि भाईजी रेडियो सुन रहे हैं, लोगोंकी दृष्टिमें यह बात रहेगी, वे रेडियो बड़े चावसे सुन रहे हैं, पर ठीक, उसी क्षण एक सर्वथा सच्चिदानन्दमयी लीला वहाँ प्रकट रूपसे चल रही है। उस लीलामें और आपमें इतना ही व्यवधान है कि पाञ्चभौतिकका पर्दा पड़ा हुआ है। जिस प्रकार समस्त वृन्दावनकी लीलाका एक चित्र खींचकर उसे एक मिट्टीके बर्तनसे ढँक दें, तो मिट्टीके बर्तनके भीतरका रहस्य जिसे मालूम नहीं है, उसको यही दीखेगा कि मिट्टीका पात्र है, भीतर क्या है, वह जान ही नहीं सकता। वैसे ही जिसे भाईजीके इस रहस्यका पता नहीं, वह जान ही नहीं सकता कि इस पाञ्चभौतिक ढाँचेसे जो आवाज आती है——भाया दूलीचन्द, दवाई ला तो। यह आवाज सर्वथा श्रीराधाकृष्णकी अचिन्त्य दिव्य सर्वसमर्थताशक्तिके कारण प्रारब्ध व्यवहारके लिये उनके द्वारा कही गयी है, और ठीक उस समय कही गयी है कि जिस समय एक विलक्षण लीला वहाँ चल रही है। शब्दमें ताकत नहीं कि मैं समझा सकूँ, मेरी बुद्धि जिस बातको ठीक समझ रही है, वह वाणीमें आ ही नहीं सकती। वह तो सर्वथा उनकी कृपासे ही संभव है। आप नीचे हैं, ऊँचे हैं यह प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कि मैं सोचकर भी उसे ठीक–ठीक भाषाबद्ध नहीं कर पाता तो क्या करूँ। अस्तु, ऐसा समझें कि समस्त भूत, भविष्य, वर्तमानकी लीलाके आधारस्वरूप जो श्रीराधाकृष्ण हैं, वे स्वयं इस ढाँचेमें पाँच–सात वर्ष पहलेसे अभिव्यक्त हो गये हैं और तबतक रहेंगे जबतक यह पाञ्चभौतिक ढाँचा चलेगा। उसमें होगा क्या कि जिसकी भावना जैसी है उसीके अनुरूप प्रतीति होगी। वेनीमाधव चाहें तो इन्हें वहाँ श्रीसीतारामके रूपमें दर्शन होगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ही राम हैं और राधारानी ही सीता हैं। ठीक–ठीक साधना पूरी होते ही इस ढाँचेकी जगह वह दिव्यलीला ही दीखेगी। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके अवतारमें और यहाँकी स्थितिमें यह अन्तर है कि अवतार–कालमें जो अवतरण होता है, वह पाञ्चभौतिक ढाँचेका आधार लेकर नहीं होता, वह होता है सर्वथा आत्ममायाकृत, जहाँ पाञ्चभौतिकका सम्बन्ध नहीं है। जो योगमायाका पर्दा है, वह भी पाञ्चभौतिक पर्दा नहीं है। अतः यहाँ जो अवतार है उसे आप प्रकारान्तरसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका अपनी आह्लादिनीशक्ति श्रीराधाके साथ आवेशावतारके रूपमें

अवतरित हुए हैं, ऐसा समझें। आजसे पाँच-सात वर्ष पूर्व अवतरित हुए हैं और पाञ्चभौतिक ढाँचेके प्रारब्धशेषतक यह अवतार रहेगा।

मेरी यह धारणा है, तुच्छ समझ है कि श्रीराधारानीके साथ अभेद बिरले किसी-किसी महापुरुषका ही होता है, जिसका उदाहरण अबतक केवल महाप्रभु हैं, और कोई मेरी दृष्टिमें, शास्त्रमें या आधुनिक सन्तोंमें नहीं है। सारांश यह है कि जिस क्रममें साधना बढ़ी उसी क्रममें ऊपर उठते-उठते भाईजी इतने ऊपर उठ गये कि स्वयं श्रीराधारानीका साक्षात्, जिसके लिये पद्मपुराणमें नारदजीसे स्वयं श्रीगोपीजनोंने कहा है कि इनके इस रूपका दर्शन ब्रह्मा एवं शंकरके लिये भी दुर्लभ है, उस रूपका दर्शन, नारद तुम्हें हुआ है, वह दर्शन भाईजीको हुआ और फिर भाईजी उसीमें लीन हो गये। अर्थात् भक्तका जो निर्गुण अहंकार होता है दासीका, सखी नर्म सहचरीका, सब छूटकर बिल्कुल राधारानीके साथ सायुज्य लाभ करके कृतार्थ हो गये। जो जीव हनुमानप्रसादके कलेवरका आश्रय करके ४०-५० वर्ष पहले पैदा हुआ था, वह मैं हूँ, इस अहंकारको सर्वथा, मैं राधा हूँ इस रूपमें विलीन करके श्रीराधारानीके आश्रित है, वह सर्वथा उस सच्चिदानन्दमय राज्यके द्वारा प्रकाशित होता है। उस वागेन्द्रियमें बोली आती है, उस चिन्मय राज्यकी बोली आती है। प्रत्येक इन्द्रियोंकी प्रत्येक चेष्टा, जिस चेतनके आधारपर हमलोगोंकी चलती है, अर्थात् आत्माके रहनेपर ही लिंगशरीरकी जो चेष्टा होती है, वह न होकर केवल पाञ्चभौतिकमें जो इन्द्रिय-गोलक बच रहे हैं, उनमें उस राज्यका प्रकाश आता है, जो सर्वथा पूर्ण सच्चिदानन्दमय है, जीवकी तरह अणु नहीं है। इसीलिये इनके सम्पर्कमें आनेवाले पुरुषका भी ऊँचे-से-ऊँचा उज्ज्वलतम भविष्य है।

भगवान्‌की सर्वसमर्थताशक्तिके कारण यह किसीको पता भी नहीं चलेगा। सुनकर भी विश्वास उसी मात्रामें होगा, जिस मात्रामें भजनके द्वारा, इनकी कृपा प्रकाशित होकर इस बातको ग्रहण करनेमें अन्तःकरण समर्थ हो सका है। यह मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि उत्तरोत्तर यह अनुभव विलक्षण होता जाता है। मेरी तुच्छ बातका, तुच्छ अनुभवका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि वह सच्चा अनुभव होता तो कह ही चुका हूँ मेरा जीवन, मेरी पारमार्थिक स्थिति, भाईजीके प्रति मेरा व्यवहार जगत्‌के लिये आदर्श हो जाता, पर वह रत्तीभर भी नहीं हुआ तो फिर वे बातें ही बातें हैं, ऐसा ही मानना पड़ता है। अस्तु, कुछ भी हो। इतना लिखकर समझानेकी चेष्टा कर

सका वह यही है, विश्वास कराना हमारे सारे (वशमें) नहीं है, वह श्रीराधाकृष्णके सारे (वशमें) है। जो वहाँ मेरे विश्वासके अनुसार चाहे वह अधूरा विश्वास ही क्यों न हो, वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है। इसीलिये सर्वज्ञता, सर्वसमर्थता, स्वयं भगवान् श्रीराधाकृष्णकी जो–जो बातें शास्त्रोंमें आजतक कही गयी हैं, कही जायँगी सबकी सब वहाँ प्रकट हैं। पर वह प्रकाशित होगा उसीके लिये, जिसका सर्वथा संशयहीन विश्वास होगा। थोड़ा–बहुत परिचय तो निश्चय मिल सकता है, यदि सच्चा श्रद्धालु बननेकी चाह करे। क्योंकि छिपाना तो उन्हें उसीके लिये है, जो अश्रद्धालु है, श्रद्धालुके लिये छिपाना है नहीं। उसकी श्रद्धा प्रकट करनेके लिये बाध्य कर देगी। इस सम्बन्धमें स्वयं भाईजी ऐसी–ऐसी बातें दो–तीन बार कुछ शब्दोंमें कह गये जिससे मेरे ऊपर यही असर पड़ा, असर ही नहीं पड़ा—-बिलकुल समझमें आ गया कि भाईजीने जो स्थिति बतलाई है, उसको स्वयं प्राप्त हो गये हैं। दूसरे शब्दोंमें स्वयं राधारानीने दया करके बतला दिया कि जिसके चरणोंकी खोज कर रहे हो वह मैं स्वयं इस ढाँचेमें आ गयी हूँ। हनुमानप्रसादकी आत्मा तो मुझमें विलीन हो गयी है, उसकी जगह अब मैं अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ हूँ। राधारानीके पास जाना चाहते हो, तो तुम तीन सालसे उनके पास हो, केवल पाञ्चभौतिकका पर्दा है, यह उठेगा समयपर। जिस प्रकार अवतार–कालमें श्रीकृष्णका विग्रह एक स्थानपर दीखकर भी सर्वव्यापक है, दामबन्धन–लीलामें, विश्वरूप–दर्शनमें इसे समझा जा सकता है। वैसे ही एक देशमें सीमित–सा दिखनेपर भी वह सर्वव्यापक है। जिस क्षण आपको या किसीको सचमुच उसका दर्शन होगा, उस समय यह देशका प्रश्न ही नहीं रह जायगा। वहाँका देश बिलकुल चिन्मय हो जायगा, जो सर्वथा अनिर्वचनीय है। भाईजीने एक बार मुझसे कहा था—-दर्शन होते समय यह देश बिलकुल नहीं रहता, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय हो जाता है। आपका प्रश्न तो मैंने समझा है, इसके उत्तरमें यही बात समझें कि पाञ्चभौतिककी सीमामें तभीतक बाँध रहा हूँ, जबतक कि उस लीलाका दर्शन नहीं हो रहा है। क्योंकि वह लीला ही सर्वव्यापकतत्त्व है, वह आपके अन्तःकरणमें भी है, अणु–अणुमें है, पर वहाँ वह अभिव्यक्त है। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे एक सौ पच्चीस वर्षके लिये, समस्त रूपोंमें, सब लीलाओंमें व्यापक भी थे, वैसे ही प्राप्तिके दिनसे लेकर प्रारब्धके शेषतक श्रीयुगल सरकारकी सच्चिदानन्दमयी लीला उस ढाँचेका पर्दा लेकर सबके सामने

अभिव्यक्त है। अभिव्यक्त होते हुए भी वह सर्वव्यापक है। पता नहीं समाधान हुआ कि नहीं। इसमें भी गोलोक है, पर अभिव्यक्त नहीं है।

बड़ी सुन्दर बात बतलाता हूँ। यही तो मैं कराना चाहता हूँ। साध्य–साधन यही है, बार–बार कह चुका हूँ। आज सुबह बतानेकी स्फुरणा हुई थी। सोचा तो कई बार था। यद्यपि मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। महात्माजीके पत्रके अनुसार तो केवल सूक्ष्मशरीरके चिन्मय हो जानेका प्रमाण मिलता है। पर एक बात ध्यानमें आयी—–श्रीवृन्दावनतत्त्वपर विचार करते हुए। शास्त्रोंके प्रमाणसे एवं युक्तियोंसे पहचान मिलती है कि स्वयं जितने दिन अवतार रहता है, उतने दिनतक ही नहीं, वह स्थान सदाके लिये चिन्मय हो जाता है, इसीलिये व्रजवासी महात्माओंकी हजारों वाणियाँ, हजारो पद्य ही नहीं, ऋषिप्रणीत ग्रन्थमें भी अवतारका तिरोभाव होनेपर भी यह प्रमाण मिलता है सच्चिदानन्दमयी भू–रेखा (?)। अतः वह जमीन तो मिट्टीकी है, वह चिन्मय हो गयी, तो फिर यह पाञ्चभौतिक ढाँचा भी तो चिन्मय ही होना चाहिये। क्योंकि पृथ्वीतत्त्वमें तो कोई अन्तर ही नहीं है। इतना तो शास्त्रीय प्रमाण मैं देख चुका हूँ कि भगवत्प्राप्त वैष्णवोंका पाञ्चभौतिक शरीर भी साधारण पाञ्चभौतिक नहीं होता। पर जैसे हरिदासजी, प्रकाशानन्दजी आदिके अतिरिक्त औरोंको तो जड़ ही दीखता है, वैसे ही भाईजीका यह पाञ्चभौतिक ढाँचा हो गया है दिव्य, पर वह अनधिकारीको जड़ ही दीखेगा, ऐसी धारणा कई बार मनमें हुई। इसे प्रमाणित करनेकी सामर्थ्य तो हमारेमें है नहीं, पर थोड़ी देरके लिये मान लें। यद्यपि हमारे विश्वासके अनुसार तो इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके शरीरके मैलका भी उतना ही माहात्म्य है कि जितना भगवान्‌के अवतार–कालके समयके व्रजरजका, इस समयका नहीं, उस समयके व्रजरजका। क्योंकि अवतार तो यहाँ भी है ही, पर न विश्वास हो तो क्या भगवान् विश्वनाथकी जो मूर्ति त्रयोदशीके दिन पीतलसे ढँक दी जाती है और उसपर जल चढ़ता है, तो श्रद्धापूर्वक भावसे जल चढ़ानेके लिये वही फल मिलेगा। मूर्ति ढँकी है तो क्या, है वह मूर्ति भगवान् शंकरकी। उसी प्रकार यदि पाञ्चभौतिकका ही चिन्तन होता रहा तो मेरे संशयहीन विश्वासके अनुसार उसे वही फल मिलना चाहिये जो फल प्रत्यक्ष लीला–चिंतनका है। क्योंकि वह प्रत्यक्ष लीलाका ही आवरण है, उसीका पर्दा है। हम नीच हैं, प्रभो ! हमारी आँखें भीतर नहीं पहुँचतीं, पर्देके भीतर हम तुम्हें नहीं देख पाते। पर पर्देके बाहर तुम्हारे चरणोंमें फूल चढ़ा

रहा हूँ, यदि सचमुच इस भावसे पूजा हुई तो मेरी तो धारणा है कि उसके अन्तःकरणमें निश्चय ही लीलाका उन्मेष हो ही जायगा।

(१०)

भाद्र कृ० ६। ९९ (सन् १९४२) रतनगढ़में दुजारीजीके प्रश्नपर चक्रधरजी महाराजने लिखा

दो ही बातें समझमें आ रही हैं—(१) उत्कट लालसा लेकर मन–ही–मन भगवान्‌से प्रार्थना करें (२) किसी सच्चे संतका यदि समागम प्राप्त हो तो उन्हींके सामने हृदय खोलकर कहें कि कैसे भगवान्‌के प्रति मेरा आकर्षण होगा। ये दोनों ही बातें ऐसी हैं कि प्रत्यक्ष तुरन्त उसी क्षण कुछ–न–कुछ उसकी टाण अवश्य ही बढ़ जायगी।

कभी मिलकर प्रेमसे उनसे बातें करनेसे ही मन इतना अधिक उन्मत हो जायगा कि स्वयं आश्चर्य होने लग जायगा। बात ऐसी समझमें आती है कि वह लगन हमारे मनमें नहीं होती। लगन होनेपर और किसीको पता भी नहीं चलेगा पर मन निरन्तर व्याकुल रहता है, निराशा, दुःख, भोगोंसे घृणा यह हमेशा बनी रहती है। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, इस प्रकार और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। और फिर ऐसी स्थिति होते ही स्वयं भगवान् अन्तर्यामी रूपसे सहायता करने लग जाते हैं अथवा किसी संतको प्रेरणा करके उसके द्वारा उसकी मदद कराने लग जाते हैं क्योंकि ऐसा नहीं हो तब तो भक्त एवं भगवान्‌के प्रेममय संबंधमें ही त्रुटि पड़ जाय। **ये यथा मां प्रपद्यन्ते** ....जितनी व्याकुलता यहाँ होगी, उस अनुपातसे भगवान्‌के अन्तःकरणमें भी व्याकुलता उत्पन्न होगी ही। अभी भी यत्किंचित् हम लोगोंके मनमें जो इस प्रकारकी लालसा उत्पन्न होती है, उसका भी असर भगवान्‌पर पड़ता है। और वे इस मंद लालसाका भी जबाब देते हैं। परन्तु जबतक लालसा तीव्र नहीं होती, तबतक भगवान्‌का वह उत्तर ठीक–ठीक अनुभवमें नहीं आता और इसीलिये बेचैनी बनी रहती है।

आपने कहा था कोई बात करनी है। आपके लिये शायद यही ज्यादे अनुकूल पड़ेगा। असलमें बात तो क्या है, इसे भगवान् ही जानें, मुझे बिलकुल मालूम है नहीं। परन्तु ऐसा शास्त्र कहते हैं कि जो कुछ भी दीखता है, वहाँ पूर्णरूपसे भगवान् हैं। इसीका अनुभव करनेके लिये आवश्यकता होती है कि किसी एकके प्रति अपना भगवद्भाव स्थापित किया

जाय। इसीके लिये शास्त्रमें गुरु परम्परा है, शिष्य अपने गुरुको ही भगवान् मानकर उनके चरणोंमें न्यौछावर होनेकी चेष्टा करता है, अवश्य ही वैसे शिष्य और गुरु दोनोंका ही अभाव–सा आजकल है। परन्तु भगवान्का तो अभाव नहीं ही है और संतका भी अभाव नहीं ही होता, शिष्यका ही अभाव होता है। देखें, केवल लालसा लेकर धैर्यपूर्वक साधकको प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता होती है, फिर उसकी आंतरिक लालसा ही भगवान्में संतमें जो कि सर्वथा अभिन्न तत्त्व है—प्रतिबिम्बित हो जाती है और उसीके अनुरूप क्रिया होने लग जाती है।

संत तो एक चेतन पदार्थ है और वहाँ सर्वथा सब रूपसे पूर्णतया भगवान्की अभिव्यक्ति रहती है। केवल ढ़ाँचा, ढाँचा लौकिक लीलाके अनुरूप चेष्टा करता है, उसके अंतरालमें पूर्ण जो भगवान् है, वे ही काम करते हैं। क्योंकि वस्तुतः संतका अहंकार सर्वथा विलीन हो जाता है अथवा रहता भी है तो वह अहंकार कुछ ऐसी विलक्षण वस्तु है कि उसे अहंकार रखनेवाला साधारण प्राणी समझ ही नहीं सकता। अतः वहाँ भगवान्की पूर्ण शक्ति अभिव्यक्त रहती है। प्रत्येक मनुष्यके अंतःकरणमें भगवान् अपनी पूर्ण शक्तिके साथ हैं तो अवश्य, परन्तु उसके एवं भगवान्के बीचमें अहंकारका एक पर्दा रहता है इसीलिये वहाँ सभी मनुष्योंमें भगवान् मौजूद रहते हुए अप्रकट हैं, पर संतका वह पर्दा हट जाता है तथा वह सर्वथा भगवन्मय बन जाता है, इसीलिये जबतक प्रारब्ध शेष रहता है, तबतक संतके रूपमें स्वयं भगवान् हैं यह समझना चाहिये। नहीं समझनेपर भी वह चीज तो ज्यों–की–त्यों है, पर जैसे दुर्योधन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन कर लेनेपर भी, उनके द्वारा बहुत बार सिखाये–पढ़ाये जानेपर भी श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानता था इसीलिये वह जीवनकालमें उनके सहवासका आनन्दका लाभ नहीं उठा सका, इसी प्रकार जिस दिन मनुष्य भगवान्को प्राप्त कर लेता है, उसीदिनसे उसकी जगह स्वयं भगवान् काम करते हैं, पर न माननेवालोंको (अश्रद्धालुको) उनके जीवनकालके सहवासका आनन्द बहुत बार कम प्राप्त होता है। अवश्य ही कल्याण तो संगमें आनेवाले प्रत्येक प्राणीका निश्चय, निश्चय, निश्चय ही हो जाता है। एकादश स्कंधमें भगवान्ने स्वयं सत्संगकी महिमा बतलाते हुए तीस–चालीस भक्तोंका नाम गिनाया है। टीकाकारोंने सबका जीवन लिखा है कि किनको किनके संगसे कल्याणकी प्राप्ति हुई। उसके देखनेपर यह पता

चलता है कि अधिकांशको तो उसी जीवनमें ही भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी है, कुछको एक और जन्म धारण करना पड़ा है। इसी प्रकार आज भी संतकी महिमा वही है। कालके अनुसार मनुष्यकी श्रद्धा नीचे दर्जेकी हो गयी है परन्तु सत्य वस्तु भगवान् एवं संतकी महिमा थोड़े घट जायगी ? वह तो त्रिकालमें एक–सी रहेगी। इसीलिये जो संत आज हैं, उनकी महिमा वही है, बिलकुल ज्यों–के–त्यों है, परन्तु उसका प्रकाश श्रद्धा नहीं होनेके कारण नहीं होता। पहले जमानेमें लोगोंकी सात्त्विक प्रवृत्ति होनेके कारण संतोंकी महिमाका उनपर प्राकट्य जल्दी हो जाता था, अब कुछ विलम्बसे होता है। इसमें हेतु संतकी शक्तिकी कमी नहीं है, हेतु है साधककी श्रद्धाकी त्रुटि। यह शंका हो जाती है कि फिर महाप्रभु चैतन्य आदि ऐसे संत हो गये हैं कि बिना भावके कारण ही सबको तार गये तो इसका जबाव असलमें तो मुझे मालूम नहीं, पर यह समझमें आता है कि उनके द्वारा भी जो लोगोंको प्रेमदान हुआ है, उसमें भी फर्क है तथा प्रेम प्रकाश भी सबके जीवनमें तुरन्त नहीं हुआ है। किसीको बहुत विलम्बतक साधना करनी पड़ी है, यहाँतक कि रामचन्द्रपुरीको तो उनके द्वारा भी प्रेम प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने अपने गुरुका अपमान किया था तथा एक बात यह भी है कि महाप्रभुके विषयमें तो यह मान्यता हैं कि वे स्वयं भगवान् थे। यह बात नहीं माननेपर भी एक बात तो शास्त्रीय ही है कि समय–समयपर भगवान्‌की विशेष कृपा होती है और उस कृपाके कारण ही संत लोग इस प्रकार बेरोक प्रेमका दान करते हैं। अब वह कृपा क्यों होती है, कब होती है, उसका क्या नियम है, इसे भगवान्‌के सिवा और कोई नहीं जानता। अस्तु संत तो वही है और उनकी सामर्थ्य भी वही है परन्तु (१) न तो भगवान्‌की प्रेरणा है कि वह चमत्कार दीखे और (२) न वैसे श्रद्धालु हैं कि जिनके कारण कम–से–कम उनके लिये तो चमत्कार दीख ही जाये।

आपकी ही डायरीमें शायद देखा है या कहीं दूसरी जगह मुझे याद नहीं पर कहीं देखा जरूर है। भाईजीने भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होनेपर गायोंकी समस्यापर प्रश्न किया था जिसका जवाब उन्हें यह मिला कि अभी गौओंकी दुर्दशा और बढ़ेगी, इनके उद्धारका अभी समय नहीं है। अब आप ही सोचें भगवान्‌को क्या गायें प्यारी नहीं है। गोपाल होकर भी वे गायोंकी दुर्दशा करा रहे हैं कि अभी इनका समय नहीं आया है। उसी प्रकार भक्तोंके बीचमें बेरोक, बिना किसी भाव श्रद्धाके प्रेमदानका भी शायद कोई ऐसा ही

रहस्य हो तो क्या पता कि जिसके कारण बड़े अपूर्व विलक्षण (तथा अतिशय शक्ति सम्पन्न क्या भगवान् ही जब संत हैं तो फिर उनकी शक्ति तो असीम है ही।) संतोंके रहते हुए भी इस प्रकारकी कोई घटना देखनेमें नहीं आती।

सारांश यह है कि संतकी शक्ति वही है और काम भी वही करती है, वही आगेका भी करेगी। पर अपनी ओरसे मनुष्यको यही चेष्टा करनी चाहिये कि हम उनकी कृपाको अनुभव कर सकें। और इसमें योग्यता केवल इतनी ही आवश्यक है कि संतके प्रति भगवद्भाव हो जाय।

मैं लिख रहा था दूसरी बात यह थी कि जड़ पत्थरकी मूर्तिमें भगवान् भावसे प्रकट हो जाते हैं फिर जहाँ पहलेसे प्रकट हैं, वहाँ दीख जाय, अर्थात् संतमें भगवद्भाव हो जानेपर उनमें मनुष्यको भगवान्‌का दर्शन होकर फिर सर्वत्र भगवान्–ही–भगवान् दीखने लग जायँ तो क्या आश्चर्य है।

(११)

दुजारीजीको चक्रधरजी महाराजने लिखकर दिया

रतनगढ़, कार्तिक शुक्ला ८ / ६६

राधा

देखें, एक चीज होती है श्रद्धा और दूसरी चीज होती है उन्मुखता।

श्रद्धाका रूप तो यह है कि भगवान् है, उनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी सार्थकता है, संत है, उनसे प्रेम करनेमें ही एकमात्र जीवनकी सफलता है, इस बातपर संशयहीन विश्वास, अडिग विश्वास हो जाना। कल सूर्योदय होगा इस बातमें जैसे आपको बिलकुल संन्देह नहीं है, किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं है, जो कहे कि कल सूर्योदय नहीं होगा उसे आप पागल बतावेंगे, ठीक इसी प्रकार भगवान् एवं संतमें तथा उनके प्रेमकी प्राप्तिमें विश्वास होना ही श्रद्धा है।

दूसरी वस्तु है उन्मुखता और यह है बड़े महत्वकी चीज। देखें, जब भगवान्‌का अवतार होता है, उस समय उनके श्रीविग्रहमें तथा जिस समय कोई संत धरातलपर हो, उसके प्रति श्रद्धाकी बिलकुल जरूरत ही नहीं है, जरूरत है उन्मुखताकी, क्योंकि वहाँ वस्तुशक्ति बिलकुल अनावृत (प्रकट) रहती है। अब आपका जो प्रश्न है उसका स्पष्ट उत्तर यह है कि भाईजीको यदि आप संत मानें फिर इनमें श्रद्धा करनी ही पड़ेगी, यह प्रश्न

नहीं है, क्योंकि यहाँ वस्तु शक्ति अनावृत है। भगवान् इस घड़ीमें भी है पर यहाँ अनावृत नहीं हैं, यहाँ आवृत हैं (ढ़के हुए हैं) यहाँ इस घड़ीमें आपकी श्रद्धा नहीं होगी तबतक इस घड़ीमें भगवान् प्रकट नहीं होंगे, पर संत जहाँपर आपको दीखता है, वहाँ पर वह भागवती शक्ति बिल्कुल प्रकट रहती है, अतः बिना श्रद्धाके ही वहाँ प्रकट हो सकती है, पर उन्मुखताकी जरूरत वहाँ भी होगी ही। उन्मुखताका अर्थ है, उनकी ओर रूख हो जाना अर्थात् मनसे, बुद्धिसे, आत्मासे, वाणीसे, शरीरसे——अपने समस्त कणोंसे उस वस्तुसे जुड़ जाना। इसमें यह बिलकुल आवश्यकता नहीं होती कि तत्त्वको जाना जाय, उसके रूपको जाना जाय, बस इतनी आवश्यकता होती है कि बिना जाने, बिना समझे ही उससे मन–इन्द्रियोंको जोड़ दिया जाय, फिर सच मानिये वह वस्तु स्वयं उसमें ज्यों–के–त्यों उतर जाती है। आपको विश्वास नहीं होगा, पर एक कोई नौकर मान लीजिये। भाईजीके यहाँ आकर रह जाय, अब वह इस बातको बिलकुल नहीं जानता कि ये क्या हैं, पर यदि वह अपने मन आदि समस्त इन्द्रियोंको इनसे जोड़ देता है तो बिना जाने स्वयं भाईजीकी सारी शक्ति उसके अंदर उतर जायगी। यही है वस्तु शक्तिकी महिमा। आगमें विष्ठा डाल दीजिये, गंदी–से–गंदी बू आनेवाली विष्ठा भी ठीक वही आग बनेगी जैसी चंदनकी लकड़ीकी आग होती है। उसी प्रकार जहाँ वस्तु शक्ति अनावृत रहती है अर्थात् अवतार विग्रह एवं संतके रूपमें जहाँ भागवतीय तेज बिलकुल प्रकट होता है, वहाँ बस जुड़ने भरकी देर है, जुड़ो कि काम हो गया। यही बात आपको भाईजीके संबंधमें भी सोचनी चाहिये। आप उन्मुख नहीं हुए, ज़ुड़े नहीं, नहीं तो आप ठीक उनके समान बन गये होते।

अब आप शरीरसे तो अलग जा ही रहे हैं मन भी अब आपका इनकी ओर उन्मुख नहीं रहकर पैसेकी ओर उन्मुख होनेकी संभावना है ही, उनसे जुड़ेगा ही। इस परिस्थितिमें महाराज, मैं क्या बताऊँ। श्रद्धा नहीं, नहीं सही, पर उन्मुखता तो होनी ही चाहिये। मनसे, वाणीसे, शरीरसे इनसे जुड़े रहने मात्रसे ही बिना किसी श्रद्धाके ये आपको ठीक अपने समान बना लेंगे। यह बिलकुल जरूरतही नहीं पड़ेगी कि भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति जानें, जानकर श्रद्धा करें। जो हो मैं क्या बताऊँ, अत्यन्त प्रेमसे आपने पूछा है, अत्यन्त प्रेमसे ही मैं जवाब दे रहा हूँ। जो उपाय था उसे तो आप जानबूझकर छोड़कर जा रहे हैं अब अंतिम उपाय केवल यही बच जाता है,

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जहाँ हैं वहीं रहकर (१) नियमित रूपसे भाईजीसे जुड़नेका भी एकाध घण्टा समय निकालेंगे, भाईजीके विषयमें जो कुछ सुना है, उसका एक लेख रूपमें आपके पास कुछ होगा ही, उसे पढ़ें। (२) नियमित रूपसे भगवान्‌से या भाईजीसे मन–ही–मन प्रार्थना प्रतिदिन करें, हे भगवान् ! हे भाईजी ! विषयोंके मोहमें पड़कर फँसा हुआ हूँ। आप स्वयं कृपा कीजिये, स्वयं कृपा करके ही आप मेरे अन्तःकरणको अपने प्रेमसे भरिये। (३) जब–जब समय मिले, भाव बढ़े तभी–तभी पत्रके द्वारा इन्हें अपनी याद दिलाते रहें। इनके पावन अंतःकरणमें अपनी स्मृति जगाते रहें चाहे इनका जबाब मिले या नहीं मिले। राधा राधा

यह इतना सुन्दर उपाय है कि यदि ठीक ठीक यह विश्वास हो जाय कि हमें पकड़े हुए हैं, हमारा सब कुछ हो ही गया, तो फिर सच मानिये, कुछ भी किये कराये बिना ही अवश्य अवश्य पकड़े हुए हैं और आपका सब कुछ हो ही गया। अवश्य ही इस विश्वासमें कमी नहीं आने पावे। लाख कोई कहे, पर एक क्षणके लिये भी निराशा नहीं होने पावे, फिर बिलकुल जिम्मेवारी उनपर आ जाती है। वे सब करेंगे ही। असल बात तो यह है कि उनके नचाये ही जगत्‌के समस्त प्राणी नाचते हैं। आपका वहाँ जाना मेरे पास आकर पूछना, मेरा जवाब देना, सब उनकी डोरीकी ही नाच है।

बात यह है, जबतक अहंकार रहता हैं, तबतक सुख–दुःख होता है, जिस दिन कठपुतलीके सामने खिलाड़ी एक बार आ जाता है, फिर कठपुतली सचमुच अपनेको जान लेती है कि मैं डोरीके सहारे नाच रही थी, बस आनन्द–ही–आनन्द उसके लिये बच जाता है।

(१२)

पौष शुक्ला ....१९९६ स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराजने चुरूमें शिवदयालजी गोयन्दकाके कष्टसाध्य बीमारीके समय लिखकर दिया

देखें, अब वह गुरु परम्परा नष्ट हो गयी क्योंकि अधिकारी शिष्य एवं अधिकारी गुरुकी कमी होती जा रही है। पर आप प्रत्येक शास्त्रको देखें एक मार्गप्रदर्शक प्रायः सभी संतोंके जीवनमें रहते हैं। मेरी बात ऐसी है कि मुझे बार–बार दोनों—सेठजी (और) भाईजी ही याद आते हैं जो कि बड़ी सुगमतासे आपकी पूर्ण सहायता कर सकते हैं। यह बिलकुल ठीक है कि भगवान् पूर्ण स्वतंत्र हैं तथा सच्चा संत उनकी इच्छामें अपनी इच्छा मिला

देता है, पर जैसे निवेदन कर चुका हूँ कि संतसे बार–बार हृदयसे कहना खाली नहीं जाता क्योंकि स्वयं भगवान् प्रार्थनाका उत्तर देना शुरू कर देते हैं।

देखें, मैंने जानबूझकर न तो भाईजीपर न सेठजीपर श्रद्धा की है। हममें असली श्रद्धा इन लोगोंके प्रति बिलकुल है ही नहीं पर कुछ अत्यन्त विश्वस्त सूत्रसे मेरे मनमें यह विश्वास जमाये गये है कि ये दो विभूतियाँ बड़ी विलक्षण हैं और मेरा बिलकुल संशयहीन विश्वास है कि आपका प्रेम भरा आग्रह बिलकुल आज इसी क्षण दोमें एक बात करवा दे सकता है।

(१) या तो आपका मन सर्वथा सब प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर बिलकुल भगवान्पर निर्भर हो जाय मनकी ऐसी दशा हो जाय कि संसारकी कोई चिन्ता ही नहीं तथा मुझे दर्शन हो ही जायँगे ऐसा दृढ़ विश्वास, इतना दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाय कि ऐसा प्रतीत होने लगे कि जैसे भाईजी अभी शहरमें गये हैं थोड़ी देरमें आनेके लिये कह गये हैं वैसे ही भगवान् थोड़ी देरमें पधारेंगे।

(२) या बिलकुल साक्षात् दर्शन ही हो जाय क्योंकि सच मानिये मेरा ऊँचे–से–ऊँचा विश्वास जो कि हमारे पास है वह यह है कि सेठजी, भाईजी जो भी कह रहे हैं उस वाक्यका सम्बन्ध खास भगवान्के राज्यसे बिना व्यवधानके हैं। देखें प्रत्येक जीवके मुखसे अच्छा–बुरा जो शब्द निकलता है उसका सम्बन्ध रहता तो है भगवान्के राज्यसे ही पर अहंकारका एक परदा रहता है। मेरी दृष्टिमें ये दोनों ऐसे हैं कि जहाँ यह व्यवधान बिलकुल नहीं रह गया है। यह मैं किसीको विश्वास नहीं करा सकता। मैं स्वयं कुछ भी नहीं जानता यह मेरा भाव ही हो सकता है पर आप जब हमसे पूछेंगे तो फिर मैं वही कहूँगा जो आपके लिये सर्वोत्तम बात मेरे ध्यानमें जँच रही है।

(१३)

चुरूमें चक्रधरजी महाराजने शिवदयालजीको लिखा
पौष शुक्ल १९९९

असलमें हम लोग भगवान्की महिमा बिलकुल नहीं जानते, नहीं तो भगवान्को प्राप्त पुरुष, भगवान्के दर्शनोंका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हो, ऐसे पुरुषका क्या रूतबा, कितनी शक्ति होती है, इस बातकी कल्पना होते ही सारा दुःख मिट जाता, अणु–अणुमें भगवान्के दर्शन होते। मैं क्या कहूँ मेरी कोई स्थिति ऊँची होती तो शायद आपको विश्वास होता।

पर जगत्‌की दो दुर्लभ–से–दुर्लभ विभूति आपके सामने हैं आप चाहें तो अभी इसी क्षण लाभ ले सकते हैं। शास्त्रकी बातपर विश्वास कीजिये।

"सातवँ सम मोहि मय जग देखा, मोतें संत अधिक करि लेखा।

बिलकुल यह बात सच्ची है। वास्तवमें संतकी महिमा भगवान्‌की ही महिमा है, पर भगवान् स्वयं अपना दर्शन करानेका यश संतोंके माथेपर ही लाद दिया करते हैं, यह सदाका नियम चला आया है। संतकी दृष्टिमें भगवान्‌से बड़ा कोई नहीं है, तथा साधककी दृष्टिमें भी भगवान्‌से बड़ा कोई नहीं है। पर जहाँ लीलामय स्वरूप भगवान्‌का है वहाँ भक्तके जिम्मे, भक्तके अधिकारमें सब कुछ है। यह अधिकारका बंधन प्रेमका है। पर यह इतना जबरदस्त है कि इसका नमूना आप स्वयं चाहें तो आज प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

राम त्रिभुवन पति हों तो हो पर वे लक्ष्मणके भाई हैं त्रिभुवनपति नहीं। यही आनन्द संत दर्शनसे होता है, होना चाहिये।

(१४)

पौष शु० २/६८ सायंकाल दुजारीजी, गास्वामीजीसे

श्रीसेठजी स्वयं बहुत ऊँचे महापुरुष हैं और उनका ऋण मैं चुका नहीं सकता, उन्होंने ही मुझे इस लायक बनाया है कि मैं भाईजीका यत्किंचित् कृपाका अनुभव करनेमें समर्थ हो सकूँ। सचमुच तीन साल तक उनके पास रहकर, भाईजीसे अलग रहकर मेरी दशा कैसी रही है, यह एक लम्बा इतिहास है और यह सब भगवत्प्रेरणासे ही हुआ, पर जो उनके साथ हैं, सभी सेठजी नहीं हैं। रामसुखदासजीपर मेरा बड़ा प्रेम है, उन्होंने एक गलती की, जिसका कि उन्हें पता नहीं। एक बार वे पता नहीं कहाँ, किसके सामने कह बैठे, कि सेठजीका ही ध्यान करो। इस बातका बहुत बुरा असर कई व्यक्तियोंपर पड़ा है, जिसे ठीक–ठीक मुझे पता लगा है। बात रामसुखदासजीने बिलकुल ठीक कही है और सर्वथा लाभकी बात, सच बात कही, पर सेठजी पर जिनकी वैसी श्रद्धा नहीं है, उनके सामने तो इसका परिणाम बुरा ही सिद्ध हुआ। बिलकुल सत्य बातका दुरुपयोग हो गया। श्रीसेठजी जैसा महापुरुष भी बिरला ही होता है पर उनके श्रद्धालुओंके सामने भाईजीका स्थान बहुत गौण है। आप सच मानिये सेठजीको मैं बहुत प्यार करता हूँ, उनके सभी सत्संगियोंके ऊपर मेरी श्रद्धा है, पर किसीके

सामने भूलकर भी भाईजीकी कुछ भी आलोचना नहीं करता। मुझे सेठजीसे कोई द्वेष हो, ऐसी कल्पना भी मेरे प्रति अन्याय होगा। पर जहाँ श्रद्धा प्रेमका प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ भाईजीके विषयमें जो मेरा भाव है, उसे मैं क्या करूँ। इतना होनेपर भी यदि मेरे सामने वे लोग भाईजीकी कुछ आलोचना करते हैं, तो मैं या तो चल देना चाहता हूँ अथवा सहन कर लेता हूँ। कभी–कभी सेठजीके प्रति जो मेरा ऊँचा भाव वास्तविक है, उसकी चर्चा करके उन्हें प्रसन्न करने लग जाता हूँ। सारांश यह है कि मैं बिलकुल नहीं चाहता कि उस गोष्ठीमें भी भाईजीकी उत्कर्ष स्थापनाकी चेष्टा किसीके द्वारा भी हो। गोवर्द्धनजीसे मुझे ऐसा भय मालूम पड़ता है कि वे मेरी इस बातका सरलतावश कहीं दुरुपयोग नहीं कर बैठें। उनमें एक ऐब (दोष) यह भी है कि वे ऐसी भूल करके भी उसके लिये पश्चात्ताप नहीं करते। तथा उनका स्वभाव कुछ ऐसा दीखा कि वे बातें मालूम होनेके बाद यह भी कह सकते हैं कि क्या हर्ज है लोगोंको मालूम होगा तो लाभ होगा, उन्हें यह विचार शायद कम होगा कि स्वामीजी बहुत चिढेंगे। उनको पढ़नेके लिये लिख रहा हूँ प्रेमसे––हमसे तर्क भी करेंगे ––पर मेरी बात सुनना चाहते हैं और उससे लाभ उठाना चाहते हैं, तो मैं यह नहीं कहता कि वे मेरे अनुगत हों, पर मेरी शर्त तो उन्हें माननी ही पड़ेगी। आप दोनोंके द्वारा यदि बात किसीपर प्रकट भी होगी, तो या तो भूलसे होगी, अथवा जानबूझकर भी होगी तो मेरा ऐसा विश्वास है कि आपके मनमें यह लज्जा अवश्य होगी कि स्वामीजीने मना किया था। पर उस अवस्थामें मैं समझूँगा कि श्रीकृष्णकी यही इच्छा हो गयी, ठीक है। यद्यपि वे भी जो करेंगे श्रीकृष्णकी इच्छासे ही करेंगे पर, उन्हें यह भी निश्चय समझना चाहिये कि यदि वे ऐसा मानें कि हमने श्रीकृष्णकी इच्छासे, लोगोंको लाभ होगा, इसलिये कहा है, तो यह भी उन्हें मानना चाहिये कि क्या मेरे मना करनेमें श्रीकृष्णकी प्रेरणा नहीं है। मैं बहुत ही हृदयसे चाहता हूँ, पर जबतक वे अपनी इस कमजोरीको दूर करनेके लिये तैयार नहीं है तबतक मेरा मन कुछ झिझकता है। आप या कोई भी निश्चय समझें, जिसे इन बातोंसे लाभ होनेवाला होगा, उसके पास अपने आप पहुँच जानेका ऐसा ही संयोग लग जायगा। क्योंकि सर्वसमर्थ भगवान्‌के नियन्त्रणमें ही सब कुछ हो रहा है। इसलिये उत्साहित होनेपर भी विचार धैर्य साथ रखना चाहिये। उनसे स्पष्ट कह दीजियेगा कि जितना दुजारीजीको, गोस्वामीजीको मैं मानता हूँ, उससे कम मैं उन्हें नहीं मानता!

पर उनकी दो कमजोरी अर्थात् एकान्तिक निष्ठाकी कमी (चाहे मेरी भ्रम धारणा हो) तथा दूसरी बातको बहुत जल्दी दूसरोंपर प्रकट कर देनेकी आदत, इन दो कारणोंसे मेरे मनमें स्वाभाविक संकोच है। यदि वे सच्चे मनसे अपनी जानमें इन दोनों दोषोंको दूर करनेकी सच्ची नियत रखें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं तो उसी दिन दिखला देता। और शायद वे मुझे थोड़ा भी और जोर देते तो मैं उसी दिन कह देता कि देख लीजिये, पर उन्हींके लाभमें कमी पहुँचेगी।

देखिये, राधारानीकी बात है, जगत्में किसीकी शक्ति नहीं है कि उसका दुरुपयोग होते देखा जायगा, वह भी उसके मंगलके लिये ही होगा। अपनी ओरसे हम लोगोंको अवश्य ही सावधानी रखनी चाहिये, फिर कोई पाप थोड़े ही कर रहे हैं, जिसके लिये रोने–पीटनेकी जरूरत।

इतनी बात बार–बार मैं दुहरा देना चाहता हूं कि श्रीसेठजी भी जगत्की दुर्लभ विभूति हैं, पर मेरे लिये तो **महादेव अवगुन भवन** वाली बात है। जो भी उनके अनुगत हैं, उनकी चरणोंकी धूलि सिर माथेपर।

(१५)

स्थान—रतनगढ़ तिथि—पौष शु० १३ समय रात्रि
उपस्थिति—श्रीगोस्वामीजी, दुजारीजी, गोवर्द्धनजी

राधा राधा राधा राधा राधा राधा राधा
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण

देखिये रत्तीभर भी हताश अथवा निराश होनेकी जरूरत नहीं है। जैसा संग अभी बन रहा है यदि यह नहीं छूटे तो फिर कोई दूसरा प्रश्न ही नहीं उठता। और शायद कोई भयानक कुसंग लग जाय तभी यह संग शायद छूटे, नहीं तो भाईजीकी कृपाकी रस्सीमें हमलोग एक बार बँध चुके हैं, अब शक्ति नहीं कि चाहनेपर भी चले जायँ। जायँगे भी तो कुछ दिन घूम–फिरकर वापस आना पड़ेगा, रह ही नहीं सकते, क्योंकि रह रहे हैं, उनकी कृपासे, इसमें आपका रत्तीभर भी पुरुषार्थ नहीं है। वे देखेंगे, दूसरे शब्दोंमें किसीसे खेल करना चाहेंगे, तब कुछ दिनके लिये वह भले ही चले जाय, नहीं तो असंभव है, कोई जा ही नहीं सकता। अस्तु, जितना संग हो रहा है, उतना ही होता जाय तो फिर निश्चित समझिये, बिना किसी संशयके इस बातको मान लीजिये कि कम–से–कम ५–७ आदमी जो मेरी

दृष्टिमें हैं, उनपर अपने आप भाईजीकी कृपा प्रकाशित होकर एक क्षणमें सारी कलुषता मिटाकर वे लोग भाईजीके सच्चे संगके अधिकारी बन जायँगे, तथा यदि भाईजी अपनी लीला पहले भी संवरण कर लें, तो उसके प्रारब्ध शेष रहनेतक उसकी सँभाल करेंगे। यदि थोड़ा भी उन्मुख हुआ तो फिर प्रत्यक्ष दर्शन देकर, सम्हालेंगे नहीं तो अलक्षित रूपमें सम्हालेंगे। सारांश यह है कि कुछ व्यक्ति जो इस प्रकार (जैसा दुजारीजीने अभी भाव प्रकट किया है) भाईजीके प्रति भाव रखनेवालें हैं, वे चाहें कितने भी मलिन क्यों न हों, एक क्षणमें भाईजी अपनी अहैतुकी कृपासे उन्हें अपने साथ ले जानेके अधिकारी बना लेंगे। इनके लिये कुछ भी असंभव नहीं है, कोई परिस्थिति इनकी इच्छामें बाधा नहीं डाल सकती। जिस प्रकार श्रीराधाकृष्णपर कोई नियम लागू नहीं, वे सर्व स्वतंत्र है, वैसे ही इन पर भी कोई नियम लागू नहीं, रत्तीभर भी किसी प्रकारका बंधन नहीं है। ये चाहें सो ही कर सकते हैं। अतः इनके लिये एक क्षणमें किसीको बहुत ऊँचा अधिकारी बना देना हँसी खेल है। आपसे उस दिन कह चुका हूँ, पद्मपुराण वाली बात। एक भक्तके लिये श्रीकृष्णने एक गोपीसे कहा——प्रियतमें ! इसे अपने समान बना लो। उसी क्षण उस गोपीने उसके साथ अभेद चिंतन करके एक क्षणमें उसे गोपी बनाकर उसे श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठा दिया और वीणा देकर कहा——मेरे प्राणनाथको भजन सुनाया कर। इसी प्रकार अथवा इससे भी विलक्षण ढंगसे, भाईजी उन ५–७ व्यक्तियोंको एक क्षणमें, अपने समान बनाकर श्रीकृष्णकी सेवामें अपने साथ रख लेंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। विश्वास इसीलिये कहता हूँ कि मैंने भाईजीसे ये बातें कभी पूछी नहीं, पर हमें संदेह नहीं है, बिलकुल रत्तीभर भी शंका नहीं है। हाँ, यह भय कभी–कभी अवश्य होता है, किसी ऐसे कारणसे, जिनके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता, कि उन चरणोंमें क्या हेतु है, भाईजीको खेल करनेकी इच्छा हो जाय, किसीको कुछ दिन घुमाना–फिराना चाहने लग जाय तो फिर वह बिचारा कुछ देर बाद पहुँचे। यह लीला क्यों होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता,—इनमें विषमता है नहीं कि एकको करें और दूसरेको छोड़ दें। पर शास्त्रोंमें जय–विजय पार्षदोंकी बात आप सुनते हैं वैसे ही इनके द्वारा भी ऐसी लीला कोई हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है। यदि नहीं हुई तो फिर वे ५–७ सबके सब सर्वोत्तम एक प्रकारकी ही गति अर्थात् जहाँतक वाणीकी सामर्थ्य है, मनकी पहुँच है, उसके अनुसार सर्वोत्तम पारमार्थिक

स्थिति—भाईजीके अनुगत रहकर अनन्तकालके लिये, कभी भी समाप्त न होनेवाले समयके लिये, श्रीकृष्णकी सेवामयी लीलामें अधिकार कर लेंगे।

मैं जो बार–बार आप लोगोंसे अनुगत होनेके लिये कहता हूँ, उसका कारण अपनी समझमें मैंने यही सोचा है कि कहीं भाईजीकी कृपा शक्तिका दुरुपयोग होने नहीं लग जाय। कृपाशक्तिका दुरुपयोग होनेपर फिर साथ रखनेमें देरीके दंडके लिये शायद उसे अवश्य तैयार रहना चाहिये। अनुगतके सभी अपराध माफ हैं, उसके सभी अपराध, भाईजी अपना अपराध मानेंगे, अतः उसके लिये सर्वथा संशयहीन, निर्भय, भयहीन भविष्य, अत्यन्त मंगलमय भविष्य निश्चित है, पर उन ५–७ में जो अनुगत होनेकी चेष्टा प्रकाशित नहीं करेंगे, अनुगत हो जाना तो सर्वथा उनकी कृपासे ही होगा, पर चेष्टा, लालसा, हार्दिक उत्कण्ठाका प्रकाश अतःकरणमें ही होना चाहिये। नहीं तो आप ही विचारें, विवेकसे विचारें, जो सर्वथा उनका अनुगत हो गया है, यदि उसे कुछ विशेष पुरस्कार नहीं मिले तो अनुगत होना एक व्यर्थकी चीज हो गयी। फिर तो सब धान बाइस पसेरी। फिर तो सर्वथा सर्वस्व न्यौछावर कर देनेवालेके लिये भाईजीने वही किया जो एक साधारणके लिये किया। यह भागवती नियम नहीं है, यद्यपि वे हैं सर्व स्वतंत्र, कोई बंधन नही है, पर अपनी ही लीलाकी सांगोपांगता ठीक पूरा करनेके लिये, अनुगत एवं जो अनुगत नहीं है उसमें जल्दी एवं देरीका भेद प्रायः हो जाता है। यह ठीक है कि अंतिम क्षणतक अनुगत हो जाय तो फिर कोई बात नहीं क्योंकि वह अनुगतकी श्रेणीमें आ गया, फिर यह विचार नहीं कि वह इतने दिनसे अनुगत है, यह तो अभी हुआ है वहाँ कालका प्रश्न ही नहीं है, वहाँ सब वर्तमान काल है। अतः अनुगत होनेकी लालसा अवश्य जागृत करनी चाहिये। इसमें रत्तीभर भी कोई परिश्रम नहीं है। दुजारीजी एवं गोस्वामीजी मेरी इस बातको कई कारणोंसे कुछ ज्यादा समझ सकेंगे। इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके भीतर इतनी विलक्षण वस्तु है कि जितनी श्रद्धा है, उससे अधिक श्रद्धाकी जरूरत नहीं है, केवल उन्मुख होनेकी जरूरत है। उन्मुख होते ही वह विलक्षण वस्तुगुण जो अत्यन्त स्पष्ट रूपसे वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है, स्वयं उसे अपने ओर चुंबककी तरह खींच लेगी। नहीं खींच रही है इसमें मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार यही कह सकता हूँ कि श्रद्धा काफी है, पर उन्मुखता नहीं है। विषयासक्ति, पारिवारिक आसक्ति, लौकिक स्वार्थ बीचमें पड़ा है,

वह कृपाके प्रवाहको रोक देता है। यद्यपि वस्तुगुण इतना अधिक है, कि जीत उसीकी होगी, ये सब उस कृपाके प्रवाहमें बह जायँगे पर जब अभी तक ये दोष हम लोगोंमें हैं, तो मानना ही चाहिये कि कृपाशक्तिके प्रवाहके संस्पर्शमें ये नहीं आये नहीं तो अबतक बह गये होते अस्तु। घबड़ाना नहीं है। उस दिनकी तरह फिर भी यही बात कहता हूँ कि अधिक–से–अधिक मन, वाणी, शरीरका संग करते चले जाइये। दुजारीजीका भाईजीका मानसिक संग बहुत ठीक होता है। यह एक सर्वोत्तम पद्धति है। दिन–रात उनकी बातका चिंतन करना। इसका बड़ा विलक्षण परिणाम होगा। **कृष्णं विदु परं कान्तं, न तु ब्रह्मतया मुने।** इसी नीतिके अनुसार, भाईजीके असली स्वरूपका ज्ञान नहीं होनेपर भी निश्चय ही बिना संदेहके इनका असली रूप सामने आ जायगा, उसे जानना नहीं पड़ेगा स्वयं वह ढाँचा जो है, जो इसके भीतर है, सब–का–सब स्पष्ट रूपसे दीखने लग जायगा।

दुजारीजीकी पद्धति सर्वोत्तम पद्धतियोंमें एक है, अवश्य ही इससे ऊँची एक पद्धति और है, जो शीघ्र–से–शीघ्र भाईजीके स्वरूपको सामने ला दे, पर वह साधना नये सिरसे करनी पड़ेगी। पर उसकी हम लोगोंको कोई विशेष जरूरत नहीं है। जितना भाईजीके विषयमें सुन चुके है, वही काफी है, उसे बार–बार मनसे चिंतन करना, सर्वथा श्रद्धालुओंके बीचमें उसकी चर्चा करना तथा अपना सारा विवेक, सारा धैर्य बटोरकर जबतक संभव हो, तबतक अधिक–से–अधिक भाईजीके पास रहना यही, कायिक, वाचिक, मानसिक संग है। यह करते–करते भाईजीके प्रति इतनी शीघ्रतासे आकर्षण बढ़ेगा कि मालूम होगा, मानो जादू होता जा रहा है। हठात् ऐसे विलक्षण ढंगसे भाईजी बीचमें प्रेममयी दृष्टि डालेंगे कि आप प्रेम विभोर हो जायँगे।

अभी उनका हँसना देखते है, उनके हाथका स्पर्श भी पाते हैं, आपको बहुत आनन्द मिलता भी है, पर वह आनन्द इतना असीम है तथा इस विलक्षण जातिका है कि अभी उसका दर्शन तो हुआ ही नहीं है। इन तीन कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टासे अंतःकरण उस आनन्दके अनुभवका अधिकारी बनेगा और फिर वह आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा। उनका हँसना जो दृश्य, जो भाव, आज आपके सामने लाता है, उससे अत्यन्त कई गुणा अधिक पीछे लायेगा, उसकी कल्पना भी अभी नहीं हो सकती। पाञ्चभौतिक ढाँचेका महत्त्व अभी हमारे सामने उद्धरित नहीं हुआ है। आपको एक बात बड़े महत्त्वकी बतलाता हूँ। भाईजीके चरण रज, व्रजरजसे

तनिक भी कम नहीं है। भाईजीके पास रहना व्रजवास ही है। बल्कि इससे भी कुछ ऊँचा है, जिसमें कई कारणोंसे लिखना नहीं चाहता। व्रजका महत्त्व, जिन–जिन कारणोंसे हैं, उससे प्रबल कारण इस ढाँचेके अंदर अभिव्यक्त है। दुजारीजी एवं गोस्वामीजी कुछ अनुमान लगा सकते हैं। बिलकुल वह इतनी विलक्षण बात है कि बार–बार कहनेपर भी उसका थोड़ा भी अनुमान होना कठिन है। पर वह इतनी विलक्षण वस्तु है कि बस, कुछ कहना नहीं बनता। आजतक अभीतक लोगोंकी कल्पना भी जहाँ नहीं पहुँची है, वह ऐसी विलक्षण चीज है। और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि उसमें असली स्वरूपका सचमुच ज्ञान, अर्थात् वह असलमें क्या है, इसका ठीक–ठीक ज्ञान होना मेरे बार–बार उस बातके कहनेपर भी नहीं होगा। वह तो केवल भाईजीकी कृपा सापेक्ष है।

भाईजीके विषयमें शास्त्रीय आधारपर चाहे जो भी सुन ले, कह लें, पर भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति इतनी विलक्षण है कि सारे विवेचन वस्तुस्थितिकी छायाको भी स्पर्श नहीं कर सकते।

कहना यही है, जहाँतक आपकी ऊँची–से–ऊँची कल्पना पहुँचे, वहाँतक कल्पना करके भाईजीके चरणोंमें उत्सर्ग हो जाइये।

भाईजी सचमुच ही भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि उनसे सर्वोत्तम माँग पेश कीजिये, उनके चरणोंमें प्रेम।

आर्थिक व्यवस्था

बहुत लोगोंके मनमें एक जिज्ञासा बनी हुई है कि भाईजीका खर्च कैसे चलता था। व्यापार तो उन्होंने ३५ वर्षोकी उम्रमें छोड़ दिया था, बड़ी पूँजी उनके पास थी नहीं, फिर खर्चकी क्या व्यवस्था थी। कई लोगोंको तो यह भ्रम था कि भाईजी अपना खर्च 'कल्याण'से चलाते हैं। एक दिन भाईजीके एक परिचित सज्जन आये और बातें करते हुए पूछने लगे कि 'कल्याण'से कितने रुपये बच जाते हैं। भाईजीने उन्हें समझाया कि 'कल्याण'में प्रायः नुकसान ही रहता है या बराबर–सा हो जाता है। उन्होंने कहा कि यह सब तो ठीक है मैं तो घरकी बात पूछ रहा हूँ। उनके यह समझमें नहीं आ रहा था कि बिना मुनाफेके इतना परिश्रम कोई क्यों करेगा ? भाईजीने फिर समझाया कि मैं 'कल्याण'से एक भी पैसा नहीं लेता हूँ और 'कल्याण' पैसा कमानेकी दृष्टिसे नहीं निकाला जाता है। उनके यह बात समझमें

आयी या नहीं, परन्तु भाईजीका 'कल्याण'से या गीताप्रेससे किञ्चित भी अर्थोपार्जनका सम्बन्ध नहीं था, यह बात निर्विवाद है। यहाँतक कि जिस वाटिकामें वे गोरखपुरमें रहते थे, वह सेठजी और उनके एक सम्बन्धीने खरीदी थी, बादमें उसे उन्होंने उस ट्रस्टको दे दिया जो गीताप्रेसका संचालन करता था। ट्रस्टमें देनेके बाद भाईजी अपने रहनेके हिस्सेका किरायातक गीताप्रेसको देने लग गये थे। जब भाईजी बम्बई छोड़कर गोरखपुर आये थे, उस समय एक स्नेही सज्जनने इनकी माता और पत्नीके नामसे बीस हजार रुपये जमा कर दिये थे, उसीके ब्याजसे परिवारका खर्च चलता था। मितव्ययता भाईजीके जीवनमें बचपनसे ही थी। अपने शरीरपर अन्ततक उन्होंने अनावश्यक खर्च नहीं होने दिया। परिवारके नये सदस्योंपर परिवर्तित समयकी झलक थी। भाईजीने अपने वसीयतनामेमें इस सम्बन्धमें लिखा है—–

"....................पर भगवान्‌की कृपासे किसी भी मित्रसे कभी आर्थिक सम्पर्क नहीं आया। आर्थिक सम्पर्क केवल एक उस परिवार और सहज व्यक्तिसे रहा जो अपनेमें तथा मुझमें 'स्व–पर' का भेद सहज ही नहीं मानता। वरन् ऐसी कल्पनासे भी जिसे दुःख होता है।"

श्रीभगवन्नाम प्रचार–की तृतीय योजना

भगवान्‌के आदेशानुसार भाईजी जहाँ भी अधिक दिन रहते श्रीभगवन्नामके प्रचारके आयोजन प्रारम्भ कर देते। दादरीसे आनेके बाद इस बार रतनगढ़में कुछ दिन रहनेका मन था, अतः यहाँ भी अपने प्रिय कार्यमें लग गये। सर्वप्रथम मार्गशीर्ष शुक्ल १५ सं० १९९६ (२६ दिसम्बर, १९३९) से सात दिनोंका अखण्ड–संकीर्तन एंव कथाका आयोजन बड़ी उमंगसे प्रारम्भ किया। बाहरसे बहुत–से लोग आये, कई संत भी पधारे। दोपहरमें कथाका आयोजन होता एवं रात्रिमें भाईजी सत्संग कराते थे। रतनगढ़में इसी तरह अखण्ड–संकीर्तनके और आयोजन भी भाद्र कृष्ण १० सं० १९९७, (२८ अगस्त, १९४०) कार्तिक शुक्ल १० सं० १९९७ (९ नवम्बर, १९४०) एवं फाल्गुन कृष्ण ५ सं० १९९७ (१६ फरवरी, १९४१) से आरम्भ हुए थे। विस्तार भयसे सबका सबका विस्तृत वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। फाल्गुन कृष्ण १४ सं० १९९७ (२५ फरवरी, १९४१) शिवरात्रिके दिनसे भाईजीके निवास–स्थानपर सत्रह दिनोंके लिये 'अखण्ड–संकीर्तन प्रारम्भ

हुआ। चैतन्य जयन्तीतक यह आयोजन चलनेकी बात थी, परन्तु भगवान्‌की विशेष कृपासे यह अखण्ड–संकीर्तन दो वर्षसे अधिक समयतक दिन–रात चलता रहा। फिर बैसाख सं० २००० (अप्रैल १९४३) से श्रावण सं० २००१ (जुलाई १९४४) तक प्रातः छः बजेसे रात्रिके ग्यारह बजेतक सत्रह घंटे चलता रहा। इसी बीच फाल्गुन कृष्ण पक्ष सं० १९९९ (फरवरी–मार्च १९४३) में श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी एवं श्रीहरिबाबा रतनगढ़ पधारे। भाईजीका उत्साह और बढ़ गया एवं सत्रह दिनोंका विशाल महासंकीर्तन एवं सन्त–समारोह आयोजन करनेका निश्चित हुआ। उस समय दूसरे महायुद्धके कारण बंगाल एवं आसाममें बहुत मारवाड़ी अपने–अपने घर रतनगढ़ आये हुए थे। ऐसा अवसर भगवन्नाम–प्रचारके लिये विशेष उपयुक्त था। इसका थोड़ा–सा वर्णन श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके शब्दोंमें पढ़ें——

"मैं भाईजीसे मिलने उनके पैतृक स्थान रतनगढ़ गया था। मुझसे बोले——कुछ दिन रतनगढ़ रहिये। मैंने कहा——क्या रहें। तुम्हारे यहाँ इतने सेठ लोग हैं, कोई उत्सव नहीं कराते ! वे बड़े ही उत्साहके साथ धीरे–धीरे गम्भीर भावसे बोले——जब चाहें, जैसा चाहें, उत्सव कराइये। मैंने कहा——इस वर्ष नव–संवत्सर उत्सव तो हमें मुजफ्फरनगरमें करना है, फिर कभी देखा जायगा। वे बोले——'शुभस्य शीघ्रम्'। नव–संवत्सर उत्सव यहीं कीजिये। या पन्द्रह दिन यहाँ, पन्द्रह दिन मुजफ्फरनगरमें। तुरंत निश्चय हुआ और उनके संकल्पसे रतनगढ़का उत्सव इतना भारी सफल हुआ कि मारवाड़के सभी लोग कहते थे कि ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति'। बड़े–बड़े धनिकोंके बच्चे, जिनमें कई करोड़पति भी थे, दर्शकोंके जूते उठानेसे लेकर झाड़ू देना, पंखा झलना आदि छोटी–से–छोटी सेवा करनेको सर्वथा प्रस्तुत रहते थे। धनिक समाजपर कितना भारी उनका प्रभाव था, यह दृश्य मैंने पन्द्रह दिन रतनगढ़ रहकर ही देखा। उन दिनों द्वितीय महायुद्धके कारण अधिकांश मारवाड़ी सेठ कलकत्ता छोड़कर अपने प्रान्तोंमें आ गये थे। वे भाईजीको प्राणोंसे अधिक प्यार करते और भाईजी उन सुकुमार किशोर बच्चोंके कंधोंपर हाथ रखकर जैसे अत्यन्त स्नेहशील पिता अपने प्यारे पुत्रोंसे बात करता है वैसे उन्हें छोटी–से–छोटी, नीची–से–नीची सेवाके लिये आज्ञा देते और वे करोड़पति–लखपतियोंके सुकुमार बड़े उल्लासके साथ उन आज्ञाओंका पालन करते। भाईजी जिसे आज्ञा दे दें, वह उसमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता।

हँसमुख इतने थे कि बात–बातपर हँसते रहते। मेरी जिस बातको देखते उसीपर ठहाका मारकर हँस पड़ते। रतनगढ़में शोभायात्रा निकली। वहाँ मरुभूमि होनेसे ऊँट बहुत है। मैं ऊँटपर उल्टा बैठकर नगर–कीर्तनमें निकला। मेरा मुख ऊँटके पूँछकी ओर था। मार्गभर मुझे देखकर खिलखिलाकर हँसते ही गये......................।"

श्रीब्रह्मचारीजी ऊँटपर उल्टा इसलिये बैठे थे कि जिससे वे शोभा–यात्राकी भव्यता और विशालताको देख सकें। उनका ऊँट स्टेशनसे चलकर रेलवे पुलतक आ गया, परन्तु वे जुलूसका दूसरा किनारा नहीं देख सके। जुलूसमें कई कीर्तन मण्डलियाँ, भगवान् रामकी झाँकियाँ, श्रीकृष्णलीलाकी झाँकियाँ, बाजे आदि थे। स्थान–स्थानसे महान् सन्त, भक्त पधारे, भागवत तथा मानसके श्रेष्ठ कथाकार भी पधारे। भाईजीकी हवेलीके पीछेवाले नोहरेमें ही सन्त–सम्मेलनकी व्यवस्थाकी गयी थी। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहता––

प्रातः	५ बजेसे ६ बजेतक	पू० श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन
दिनमें	६ बजेसे ९ बजेतक	श्रीरामचरितमानसका आगे–पीछे बोलकर सामूहिक परायण
	९ बजेसे ११ बजेतक	वृन्दावनसे आयी हुई रासमण्डली द्वारा श्रीकृष्णलीलाका आयोजन
	११ बजेसे १२ बजेतक	पूज्य श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन
	२ बजेसे ६ बजेतक	कथा–प्रवचन आदि
सायं	७ बजेसे ८ बजेतक	पू० श्रीहरिबाबाका सामूहिक संकीर्तन
रात्रि	८ बजेसे ११ बजेतक	वृन्दावनसे आयी हुई रास–मण्डली द्वारा श्रीचैतन्यलीलाका आयोजन

इस सन्त–सम्मेलनके दर्शनके लिये सैकड़ों मील दूरसे लोग आये। बहुतसे लोग पूरे समय तक रहे। श्रीरामानुजसम्प्रदायके श्रीरघुनाथदासजी, जो वृन्दावनके श्रीरंगजीके मन्दिरके प्रधान थे, अपने भावावेशकी स्थितिमें श्रीजयदेव–विरचित श्रीदशावतार–स्तोत्रम्का गायन करते। वे स्वयं तो भाव–सागरमें डूबते ही रहते, भक्त समुदायको भी डुबा देते।

समारोहकी समाप्तिपर भाईजीने सभी संतों–महात्माओंको भाव–भीनी विदाई दी। सभी अपने हृदयपर इस आयोजनकी अमिट छाप लेकर लौटे।

चैत्र शुक्ल ५ सं० २००० (९ अप्रैल, १९४३) मासमें बृहद् विष्णु–यज्ञ

आयोजित हुआ। इसमें भी बाहरसे कई लोग पधारे।

अजमेरमें उपचार

बैसाख कृष्ण ११ सं० २००० को भाईजी अपने मित्र श्रीजयदयालजी डालमियाके बड़े लड़के विष्णुहरिके विवाहमें सम्मिलित होने दिल्ली गये। वहाँसे स्वर्गाश्रम सत्संगके लिये चले गये। फिर श्रीपरमेश्वरजी फोगलाके अस्वस्थताके कारण स्वर्गाश्रमसे बम्बई गये। वहाँ कई बार सत्संग-भवनमें सत्संग कराते थे। रतनगढ़ लौटनेपर भाईजी बीमार हो गये। कई रोगोंके साथ ही बवासीरकी एक नई बीमारी पैदा हो गयी। जन्माष्टमीके अगले दिन उपचारके लिए दिल्ली रवाना हुए पर वहाँ सुधारके स्थानपर मलेरिया बुखार तथा भयंकर सिर-दर्दके कारण स्थिति अधिक बिगड़ गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि शरीर भी रहेगा या नहीं। अतः सभी स्वजनोंको तार देकर दिल्ली बुला लिया। दिल्लीमें विशेष लाभ न देखकर आश्विन शुक्ल ११ सं० २००० (१० अक्टूबर, १९४३) को अजमेर गये। वहाँसे पुष्कर दर्शनार्थ गये। अजमेरमें डा० अम्बालालकी चिकित्सासे एक बार आराम हो गया। वहाँसे काँकरौली, नाथद्वारा, उदयपुरकी यात्रा करते हुए कार्तिक शुक्ल १२ सं० २००० (९ नवम्बर, १९४३) को रतनगढ़ लौट आये। पुनः कष्ट बढ़ जानेसे मार्गशीर्ष शुक्ल १० सं० २००० (६ दिसम्बर, १९४३) को रतनगढ़से रवाना होकर बीकानेर होते हुए अजमेर गये। वहाँ गुदामें फोड़ेका आपरेशन हुआ। वहाँ श्रीप्यारेलालजी डागा, बाबा, रामसनेहीजी एवं डा० अम्बालालने बहुत प्रेम पूर्वक तत्परतासे सेवा की। बादमें ऐसा भी पता लगा कि यह रोग भाईजीने किसी अन्यका अपने शरीरपर ले लिया था। वहाँसे लिखे एक पत्रमें भाईजीने उस समयका हाल लिखा था—

।। श्रीहरिः ।।

मार्गशीर्ष शु० १४ सं० २००० (१० दिसम्बर, १९४३) अजमेर

प्रिय भैया ....,

सप्रेम हरिस्मरण।

शरीरका हाल पूछा सो शरीरका हाल वैसे ही है, घावकी हालत डाक्टर अच्छी बताते हैं। ऑपरेशनके बाद कल कैस्टर आयलसे पट्टी लगायी गयी थी, इससे तकलीफ रही। दर्द कुछ ज्यादा रहा। बेचैनी भी रही। आज कलसे ठीक है। तुम्हारा पत्र पढ़कर गदगद हो गया। भैया सच

है तुम सब मेरे ही हो। मेरे चित्तमें कोई अशान्ति नहीं है। पद–पदपर भगवान्की कृपाका अनुभव होता है। यद्यपि इस बारकी बीमारी बहुत ही पीड़ाजनक रही ....परन्तु इसमें भी समय–समयपर भगवान्की मंगलमयी कृपाकी झाँकी तो होती ही रही है। यह जगत् भगवान्का नाट्य मंच है, सभी रसोंके अभिनयकी आवश्यकता है। परन्तु प्रत्येक अभिनयके अन्तरालमें वही है। असलमें तो खेल और खिलाड़ी, दोनों ही उसीके मंगलमय स्वरूप हैं ....।

तुम्हारा——हनुमान

माघ शु० ५ सं० २००० (३० जनवरी, १९४४) को भाईजी अजमेरसे रतनगढ़ लौटे। कुछ दिन तो बवासीरका कष्ट रहा फिर स्वतः ही ठीक हो गया।

रतनगढ़में भाईजीने एक चक्षुदान–यज्ञका आयोजन किया और भिवानीके प्रसिद्ध नेत्र–चिकित्सकको बुलाकर एक विशाल कैम्प लगवाया, जिसमें हजारोंकी संख्यामें ग्रामीण जनताने आपरेशनका लाभ उठाया और लोग आँखोंकी ज्योति प्राप्त करके लौटे।

चैत्र शु० १ सं० २००१ (२५ मार्च, १९४४) से भाईजीके निवास स्थानपर सोलह ब्राह्मणोंद्वारा श्रीमद्भागवतके १०८ पाठका अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ और उसके पश्चात् सात दिनोंका अखण्ड–संकीर्तन आयोजित हुआ।

स्वामी श्रीशरणानन्दजी रतनगढ़में

श्रावण सं० २००१ (जुलाई १९४४) में भाईजीके निवास–स्थानपर शिवमहिम्न स्तोत्रका अखण्ड–पाठ कई दिनोंतक हुआ। श्रावण शु० २ सं० २००१ (२२ जुलाई, १९४४) को स्वामी शरणानन्दजी महाराज रतनगढ़ पधारे और भाईजीके पास ही कई दिनोंतक रहे। फिर उनके साथ भाईजी बीकानेर गये और वहाँ बीकानेरके महाराजासे रतनगढ़में जनताके लिये पानीके नलका उद्घाटन उनके हाथसे करानेके लिये मिले। भाईजीकी प्रार्थनापर उन्होंने उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया। मार्गशीर्ष ५ सं० २००१ (५ नवम्बर, १९४४) को काशीमें श्रीकरपात्रीजीने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया था, उसमें भाईजी सम्मिलित होने गये। वहाँ 'हिन्दू–कोड–बिल' के विरोधमें भाईजीने प्रभावशाली भाषण दिया। वहाँसे गोरखपुरमें गोविन्द–भवन
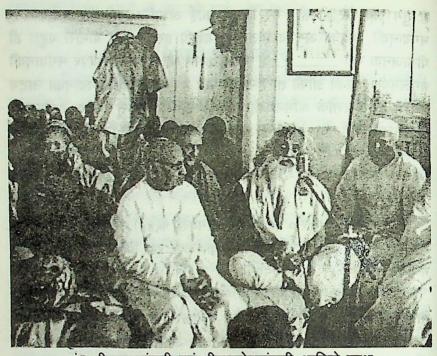
संत श्रीशरणानंदजी एवं श्रीशुकदेवानंदजी आदिके साथ

संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके साथ

ट्रस्टकी मीटिंगमें सम्मिलित होकर रतनगढ़ लौट आये। पौष शु० २ सं० २००१ से माघ कृष्ण ५ (१७ दिसम्बर, १९४४ से ३ जनवरी, १९४५) तक रतनगढ़में विश्व-कल्याणके लिये १०८ रामचरितमानसके सामूहिक पारायण एवं अठारह दिन भागवतके अखण्ड पाठका अनुष्ठान कराया। पुनः प्रथम चैत्र शु० ६ सं० २००१ से द्वितीय चैत्र शु० १ सं० २००२ (२२ मार्च, १९४५ से १३ अप्रैल, १९४५) तक पूरे पुरुषोत्तम मासमें बड़े उत्साहसे अखण्ड-संकीर्तन एवं भागवतके अखण्ड पाठका आयोजन किया। इन्हीं दिनों भाईजीको बीकानेरकी लेजिस्लेटिव-एसेम्बलीका सदस्य चुना गया जो उस समय एक प्रतिष्ठित पद समझा जाता था किन्तु भाईजीने तत्काल त्याग-पत्र लिखकर भेज दिया।

मालवीयजीके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध

श्रीभाईजीके शब्दोंमें प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय लगभग सन् १९०६ से था। उस समय मैं कलकत्तेमें रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उनके साथ कुटुम्बा-सा सम्बन्ध हो गया था। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पिताजीसे भी बढ़कर मानता इस नाते मैं उन्हें "पण्डितजी" न कहकर सदा "बाबूजी" ही कहता। घरकी सारी बातें वे मुझसे कहते। कुछ समय तो मैं उनके बहुत ही निकट-सम्पर्कमें रहा, इसलिये मुझको उन्हें बहुत समीपसे देखने-समझनेका अवसर मिला। उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्य क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनीतिक थे। शिक्षा-विस्तार-प्राचीन सनातनधर्मकी रक्षा करते हुए जनतामें सत्-शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। यहाँ उनके पवित्र जीवनके कुछ संस्मरण संक्षेपमें लिखकर अपनेको पवित्र करता हूँ——

१. वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले——"भैया ! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको

दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी–सी दीखेगी, पर है महान् "वरदानरूप"। इस प्रकार प्रायः आधे घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—"बाबूजी ! जल्दी दीजिये, कोई आ जायेंगे।

तब वे बोले—"लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि "मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ, सफलता प्राप्त करूँ।"

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा—"बच्चा ! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ, तब जानेके समय "नारायण–नारायण" उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।" मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद ! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब–जब चलते समय "नारायण–नारायण" उच्चारण करना भूला हूँ, तब–तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय "नारायण–नारायण" उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—मेरी माताकी दी हुई परम वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना यों कहकर महामना गद्गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरमें भी सभी इसे सीख गये हैं। अब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी "नारायण–नारायण" उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार "नारायण" की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

२. जब मैं बम्बईमें रहता था, अमृतसरमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। लोकमान्य तिलक उसके अध्यक्ष थे। मैं अपने एक तरुण मित्रके साथ बम्बईसे अमृतसर पहुँचा। दिसम्बरका महीना था। उस साल कुछ ही दिनों पहले अमृतसरमें भयानक वर्षा हुई थी। पंजाबकी सर्दी प्रसिद्ध है और इस वर्षाके कारण वहाँ सर्दी बहुत ही बढ़ी हुई थी। हमलोगोंने बम्बईमें सर्दी देखी नहीं थी, इससे साधारण कपड़े ले गये थे। दोनोंके पास ओढ़ने–बिछानेके लिये एक–एक चद्दर और एक–एक हल्का–सा कम्बल था।

अमृतसरमें हमलोग महामना मालवीयजीके डेरेपर जाकर ठहरे।

एक बड़ी धर्मशालामें वे ठहराये गये थे। शायद महात्मा गाँधी भी उसीमें ठहरे थे। रातको हम दोनों चारपाइयोंपर सो गये। शरीर ठिठुर रहा था। छातीपर घुटने किये पड़े थे। कम्बलसे मुँह ढक रक्खा था, पर शरीर काँप रहा था। रातको ६ बजे होंगे। महामना मालवीयजी सबको सँभालते हुए हम लोगोंकी चारपाइयोंके पास आये। मुँह ढके सिकुड़े सोये हुए देखकर उन्होंने पूछा——"कौन हो, कहाँसे आये हो ? खाया कि नहीं ?" मैंने मुँह परसे कपड़ा हटाया। तुरन्त उठकर खड़ा हो गया और चरणस्पर्श किया। मेरे साथीने उठकर चरणस्पर्श किया। हमलोग काँप रहे थे। उन्होंने मुझे पहचानकर पूछा——"कपड़े कहाँ हैं ?" मैंने कहा——"बिछा–ओढ़ रक्खे हैं न ?" वे बोले——"बस, ये कपड़े हैं ? तुम्हें पता नहीं था क्या, यहाँ कितने कड़ाकेका जाड़ा पड़ता है ? अमृतसरको बम्बई समझ लिया ?" यह कहते–कहते ही उन्होंने अपने साथ आये हुए एक पंजाबी सज्जनसे कहा——"जल्दी आठ कम्बल लाइये।" फिर पूछा——"खाया कि नहीं ?" मैंने कहा——"खा लिया"। फिर बोले——"देखो, तुमने बड़ी गलती की, जो मुझसे कहा नहीं। यह तो मैं आ गया, नहीं तो तुमलोगोंको रातको बड़ा कष्ट होता और पता नहीं, इसका क्या नतीजा होता। क्यों इतना संकोच किया ?" मैं क्या उत्तर देता। इतनेमें दो–तीन आदमी आठ मोटे कम्बल ले आये। दो–दो कम्बल हमारी चारपाइयोंपर बिछा दिये गये। और दो–दो हम लोगोंके ओढ़नेके लिये रख दिये गये। गरम चाय मँगवाकर दोनोंको पिलायी। जबतक हमलोग चाय पीकर सो नहीं गये, तबतक वे वहीं एक कुर्सीपर बैठे रहे। हमलोग उनके जानेपर ही सोना चाहते थे, पर उन्होंने कहा——"तुमलोग ओढ़कर सो नहीं जाओगे, तबतक मैं नहीं जाऊँगा।" इसलिये हमें सोना पड़ा। उनकी यह ममता देखकर हमलोगोंका हृदय भर आया।

३. मालवीयजीके चार लड़के थे——रमाकान्त, राधाकान्त, मुकुन्द और गोविन्द। इनमेंसे मुकुन्दको मालवीयजीने मेरे पास बम्बई भेज दिया था——वे वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। पीछे दूसरे लड़के राधाकान्त भी वकालतको छोड़कर इलाहाबादसे बम्बई चले गये——सट्टेका व्यापार करने। राधाकान्तजीको एक ज्योतिषी मित्रने बताया——"आपको सट्टेमें बहुत पैसा मिलेगा।" मित्रकी सलाहपर विश्वास करके राधाकान्तजी सट्टेका व्यापार करने लगे। राधाकान्तजी बरबाद हो गये। इन्हीं दिनों मेरा काशी जाना

हुआ। मैं मालवीयजीसे मिलने गया। वे राधाकान्तकी बरबादीके कारण बहुत दुःखी थे।

मेरे बम्बई पहुँचनेके बाद शीघ्र ही मालवीयजीका एक तार मिला, जिसमें लिखा था—"तुम राधकान्तको कहो, विश्वासपूर्वक आर्तभावसे "गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र" का पाठ करे, ऋण उतर जायेगा।" मैंने मालवीयजीका यह आदेश राधाकान्तको बतला दिया, किन्तु इन्होंने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। पीछे मालवीयजीका एक पत्र भी मिला। उसमें उन्होंने "गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र"–पाठके महत्त्वविषयक अपने अनुभवोंकी चर्चा करते हुए लिखा था—"मैं नाकतक ऋणमें डूब गया था। मैंने गजेन्द्रमोक्षका विश्वासपूर्वक आर्तभावसे पाठ किया और मेरा ऋण उतर गया।"

४. श्रीबालूरामजी "रामनामके आढ़तिया" के साथ हमलोग गाँधीजीके पाससे मालवीयजीके यहाँ गये थे। मालवीयजी राजा गोविन्दलालजी पित्तीके मकानमें ठहरे हुए थे। जाकर हम लोगोंने उन्हें प्रणाम किया। मालवीयजीने पण्डितजीका परिचय पूछा। मैंने उनका पूरा परिचय दिया और उनको साथ लिवा लानेका हेतु बताया। मालवीयजीने बड़े ही प्यारसे पूरा विवरण सुना, बार–बार पूछा और पण्डितजीकी बड़ी प्रशंसा की। पीछे उन्होंने अपने हस्ताक्षर कर दिये, वे बड़े आतुर थे। ठीक उन्हींके शब्द हैं—"जबसे मैंने होश सँभाला तबसे प्रतिदिन नाम–जप करता हूँ और जबतक होश रहेगा, प्रतिदिन करता रहूँगा।"

मालवीयजीके प्यारकी और भी अनेक स्मृतियाँ हैं।

रतनगढ़में जल–समस्याका हल

भाईजीने रतनगढ़की जल समस्याके समाधान हेतु प्रस्तावित वाटर–वर्क्सके निर्माणमें आनेवाली बाधाओंको दूर करनेके लिये तत्कालीन बीकानेर महाराजाके हाथोंसे उसका उद्‌घाटन करवाया, उसकी पूर्व पृष्ठभूमि यह है :—

रतनगढ़में पानीके नल न होनेसे वहाँके निवासी कष्टका अनुभव करते थे। श्रीदुर्गादत्तजी थरड़का कुआँ भी था, जमीन भी थी एवं वे अपने व्ययसे पानीकी टंकी बनाकर जल–संकटको दूर भी करना चाहते थे, पर कुएँके पास इनकी जो खाली जमीन थी–जहाँ ये टंकी बनवाना चाहते थे, वह जमीन मुसलमान अपने ताजिये आदि रखने और अन्य कामोंमें उपयोग

लाते थे। उस जमीनमें जल–व्यवस्थाका कार्य हो जानेसे मुसलमानोंके और अन्य पड़ोसियोंके स्वार्थमें ठेस लगती। अतः उनके विरोधके कारण यह योजना सफल नहीं हो रही थी। सरकारी अधिकारियोंसे मिलकर भी वे सफल नहीं हो पाये। भाईजीसे उन्होंने सारी बातें बतलाई कि एक सार्वजनिक हितका कार्य कुछ स्वार्थी लोगोंके कारण सफल नहीं हो रहा है। भाईजीने इसके बीचमें पड़ना स्वीकार नहीं किया क्योंकि व्यर्थमें दंगा होनेका भय था एवं जब सरकारी अधिकारी भी इसमें सहयोग नहीं दे रहे थे तो सफलता कठिन थी। इससे दुर्गादत्तजी और हताश हो गये। पर जैसे तुलसीदासजीने भगवान् रामचन्द्रजीसे प्रार्थना जानकीजीके माध्यमसे कहलायी—**'कबहुँक अम्ब अवसर पाई'** वैसे भाईजीके जीवनमें भी कई बार उनसे किसी बातको स्वीकार करानेके लिये लोग मैया (भाईजीकी धर्मपत्नी) की शरण लेते थे। इसी तरह दुर्गादत्तजीने मौका देखकर मैयासे कहा कि कुआँ अपना, जमीन अपनी, पैसा अपना और सभीको पानीका आराम हो जाय, ऐसी व्यवस्था नहीं हो पा रही है। भाईजीसे भी कहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। आप मौका देखकर भाईजीसे कहें तो शायद काम हो जाय। मैयाने कहा—इसमें तो सारे नगरको पानीका आराम हो जायगा, चलिये अभी उनसे कहती हूँ। दोनों भाईजीके पास आये और मैयाने कहा—आप इनका यह काम क्यों नहीं करवा देते ? भाईजीने उत्तर दिया—कोई मेरे घरका काम है क्या ? इसमें मुसलमानोंके साथ दंगा होनेका डर है। मैयाने उत्साह दिलाया कि—'आपकी योग्यता और जान–पहचान कब काम आयेगी ? सारे नगरको पानीका आराम हो जायगा।' भाईजीने कहा—सोचूँगा। थोड़ा सोचकर दुर्गादत्तजीसे कहा कि एक तरीका तो सूझा है, काम तो आपका हो जायगा पर उसमें नाम थरड़ोंका नहीं रहेगा। दुर्गादत्तजीको यह बात स्वीकार थी।

भाईजीको बीकानेरकी तत्कालीन महारानीजी अपना धर्म–भाई मानती थीं एवं श्रद्धा रखती थीं। रक्षा–बन्धनपर राखी भी भेजती थीं। भाईजीने उनको पत्र लिखा कि हमारे एक स्वजन रतनगढ़में वाटर–वर्क्स बनवाना चाहते हैं, जिससे सारे नगरको पानीकी सुविधा हो जाय। इस वाटर–वर्क्सका नामकरण श्रीबीकानेर महाराजके नामपर होगा 'श्रीशार्दूल–फ्री–सप्लाई वाटर–वर्क्स।' यहाँके कुछ लोग अड़चन डाल रहे हैं। महाराजाधिराज बीकानेर–नरेशको प्रार्थना पत्र लिखा जा रहा है। आप **व्यक्तिगत रूपसे अनुरोध कर दें कि वे इसके लिये राजाज्ञा प्रदान कर दें।**

बीकानेर–महाराजको प्रार्थना–पत्र लिखा गया। जब श्रावण शुक्ल १०। २००१ (३० जुलाई, १९४४) को भाईजी स्वामी शरणानन्दजीके साथ बीकानेर गये तो बीकानेर महाराज एवं महारानीसे मिले और इस विषयमें बातचीत की भाईजीकी सूझ सही निकली। वाटर–वर्क्स निर्माणके लिये राजाज्ञा हो गयी एवं उद्घाटनके लिये महाराजाधिराजने पधारना स्वीकार कर लिया। जब मुसलमानोंको पता लगा तो एक बार दौड़–धूपकी पर राजाज्ञाके सामने कुछ वश नहीं चला एवं 'श्रीशार्दुल–फ्री–सप्लाई वाटर वर्क्स' का निर्माण हो गया और साथ ही रतनगढ़की सारी जनताका जल संकट दूर हो गया।

महात्मा गाँधीके साथ प्यारका सम्बन्ध

श्रीभाईजीके शब्दोंमें—'बापूके साथ मेरा बहुत अधिक सम्पर्क रहा है और मैंने उनको बहुत निकटसे देखनेके सुअवसर प्राप्त किये हैं। उनसे परिचय तो मेरा बहुत पुराना (सन् १९१५ से) था और निकटका था; पर जब मैं बम्बईमें रहता था, तब महात्माजी साबरमती आश्रम, अहमदाबादमे निवास करते थे। उस समय मैं बीच–बीचमें कई बार आश्रममें भी जाया करता था। वे जब बम्बई पधारते, तब स्वर्गीय भाई जमनालालजी बजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका काम मेरे ही जिम्मे रहता था। महात्माजी बम्बईमें मेरे घरपर भी कई बार पधारे थे। उनका मेरे साथ सम्बन्ध प्रायः वैसा ही कौटुम्बिक था, जैसा उनके पुत्र भाई देवदासके साथ था।'

बापूके सम्बन्धकी अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं। कुछ यहाँ दी जा रही हैं—

१—'गाँधीजी बम्बई पधारे हुए थे और जुहूमें ठहरे थे। उस समय वे कुछ बीमार थे। मैं और शान्तिदेवी बहिन गाँधीजीसे मिलनेके लिये गये। उन दिनों गाँधीजीका एक पत्र 'नवजीवन' गुजरातीमें निकलता था। जब हमलोग जुहू जा रहे थे, तब रास्तेमें हमें 'नवजीवन'की प्रति मिली। उसमें छपा था—'गाँधीजी बीमार हैं, उनसे मिलनेके लिये कोई न जाय।' हमलोग उस समय जुहूके समीप पहुँच गये थे। मनमें आया—'समीप पहुँच गये हैं, बँगलेतक हो आयें; फिर लौट जायेंगे, मिलेंगे नहीं।' गाँधीजीके निवासपर पहुँचनेपर भाई देवदास हमें नीचे मिले। हमलोगोंने उनसे बापूके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा और लौटने लगे। भाई देवदासने कहा—'आप

लोग आये हैं, बापूको खबर तो दे दूँ। उतनी देरतक ठहरिये, लौटते क्यों हैं ?' भाई देवदास ऊपर गये और लौटकर बोले—'आप लोगोंको बापूने ऊपर बुलाया है।' अब तो हमलोग विवश थे। हमलोग ऊपर गये और बापूको प्रणाम किया। वे हँसकर डाँटते हुए बोले—'लौट क्यों रहे थे ?' मैंने कहा—'बापू ! 'नवजीवन' में छपा है, इसलिये लौट रहा था।' बोले—'यह घरवालोंके लिये छपा है क्या ? देवदास यहाँ नहीं रहेगा क्या ?' फिर उन्होंने समझाया—'देखो, यह तो उन लोगोंके लिये है, जो यहाँ आयें और शिष्टाचारके नाते उनसे मुझे बोलना ही पड़े—चाहे मुझे बोलनेमें कष्ट ही हो। मैं यदि उनसे न बोलूँ तो उनको कष्ट हो, दुःख हो। इसलिये उनलोगोंको आनेसे रोक दिया है। तुम आओ, तुमसे मैं एक शब्द भी न बोलूँ। तुम बैठे रहो; तुमसे न बोलूँ तो तुम्हें उसमें तनिक भी विचार नहीं होगा। अतएव तुम्हारे आनेमें मुझे क्या संकोच है ? आये हो, कुछ देर बैठो।' 'हमलोग कुछ देर बैठे, फिर लौट आये।'

२—'बापू बम्बई पधारे थे, लेबरनम रोडपर ठहरे थे। उस समय मेरे साथ बालूरामजी नामके एक सज्जन, जो राजस्थानके थे और 'रामनामके आढ़तिया' कहलाते थे, ठहरे हुए थे। श्रीजमनालालजी बजाज भी बम्बईमें थे। मैं, जमनालालजी बजाज तथा रामनामके अढ़तिया—तीनों गाँधीजीके पास गये। गाँधीजीने पण्डितजीका पूरा परिचय पूछा। बालूरामजीने अपनी बही खोलकर सामने रख दी और बोले—'इसपर सही करो और नाम-जप करो।' वे ऐसे ही बोलते थे। हमलोगोंने गाँधीजीको सब बात बतायी। वे बड़े प्रसन्न हुए। बोले—'देखिये, आप कहें तो मैं सही कर दूँ। पर एक बात है—जब मैं अफ्रीकामें था, तब संख्यासे नाम-जप करता था; पर अब तो मेरा दिनभर नाम जप चलता है। जब उसकी संख्या नहीं है, तब उसको संख्यामें क्यों बाँधते हैं ?' इसपर जमनालालजीने कहा—'बापू ! आपको सही करनेकी आवश्यकता नहीं है।' बापूने सही नहीं की।'

३—'कल्याण' का 'भगवन्नामांक' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर बापूके पास गया, रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा—'जमनालालजीको साथ क्यों लाये हो। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा ? तुम अकेले ही क्यों नहीं आये ?' सेठजी मुस्कराये। मैंने कहा—'बापूजी, बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये लाया था कि आप लिख ही दें।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ

करता हूँ, आइन्दा ऐसा अविश्वास मत करना।' फिर कलम उठायी और तुरंत नीचे संदेश लिख दिया—

'नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासजीने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रक्खा है। द्वादश मन्त्र, अष्टाक्षर मंत्र इत्यादि सब इस मोहजालमें फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद है। इसमें कुछ भी शंका नहीं है। जिससे जिसको शान्ति मिले, उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परंतु जिसको शांतिका अनुभव नहीं है और जो शान्तिकी खोजमें है, उसको तो अवश्य राम–नाम पारसमणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परंतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी रामनामरूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः 'राम' उच्चारणकी दृष्टिसे एकाक्षर ही है और ओंकारमें और राममें कोई फर्क नहीं है। परंतु नाम–महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकी है, श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।'

संदेश लिखकर मुस्कुराते हुए बापू बोले—'तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्‌को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो ? रोज नाम–जपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।' मैंने कहा 'बापू, मैं जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि—'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े ही दी जाती है।'—मुझे संदेश दे दिया। सेठजीको कुछ बातें करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरणस्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके लौट आया।'

४—'गोरखपुर आने (अर्थात् अगस्त, १९२७) के पश्चात् किसी कामसे मैं बम्बई गया था और वहाँसे रतनगढ़ जा रहा था। उस समय अहमदाबाद होकर गाड़ी जाती थी। बम्बईसे चलकर जब गाड़ी बदलनेके लिये मैं अहमदाबाद उतरा, तब गाँधीजीके दर्शनार्थ उनके आश्रमपर गया। अहमदाबादके निकट ही गाँधीजीका आश्रम था। मैं आश्रमपर पहुँचा। मेरे हाथमें 'कल्याण' का अंक था। संयोगकी बात, उस अंकमें 'भगवन्नाम–जप' की प्रार्थना छपी थी। गाँधीजीने 'कल्याण' का अंक अपने हाथमें ले लिया और देखने लगे। 'भगवन्नाम–जपके लिये विनीत प्रार्थना' लेख देखकर पूछने लगे—'यह क्या है ?' मैंने बताया कि किस प्रकार 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' भगवान्‌के इस षोडश

नाम–मन्त्र–जपके लिये प्रतिवर्ष 'कल्याण' में प्रार्थना प्रकाशित की जाती है और किस प्रकार पाठक–पाठिकाएँ बड़े उत्साहसे नाम–जप करती हैं।' इतना सुनते ही पूछने लगे—'कितना जप हो जाता है ?' मैंने कहा—'कई करोड़ हो जाता है।' इसपर वे प्रसन्न हुए और बोले—'तुम बड़ा अच्छा करते हो। इसमें १०–१५ व्यक्ति भी यदि सच्चे भावसे जप करते होंगे तो उनका उद्धार हो जायगा।' फिर बोले—'देखों मैं भी नाम–जप करता हूँ, और उन्होंने गोल तकियेके नीचे तुलसीकी माला निकाली और दिखाते हुए बोले—'इसीके सहारे रात्रिका जप करता हूँ।' संयोगसे उनकी वह माला टूट गयी थी और मेरी जेबमें तुलसीकी एक माला थी। मेरे मनमें आया—इनकी टूटी मालाकी जगह नयी माला बदल दूँ। मैंने बापूसे प्रार्थना की—'बापू! आपकी यह माला तो टूट गयी है, इसे आप मुझे दे दीजिये और आप नयी माला ले लीजिये।' और मैंने अपनी जेबसे नयी माला निकालकर उनकी ओर बढ़ायी। बापू बड़े विनोदी थे; उन्होंने बड़ा प्रेमभरा विनोद किया; बोले—'तुम मुझे माला देने आये हो ? अर्थात् मुझे चेला बनाने आये हो ?' मैं तथा पास बैठे सबलोग हँस पड़े। मैंने कहा—'बापू ! माला टूट गयी है, इससे बदलना चाहता था; आपको माला मैं क्या दूँगा।' मेरे उत्तरसे वह बड़े प्रसन्न हुए, फिर बोले—'मुझे नयी माला दोगे तो तुम्हें साथमें कुछ दक्षिणा भी देनी होगी। दानके साथ दक्षिणा भी होती है।' मैंने कहा—'आपकी कृपा है; बोलिये तो क्या देना पड़ेगा ?' तब उन्होंने गम्भीर होकर कहा—'तुम अभी जितना नाम–जप करते हो, उसके सिवा एक माला जप और अधिक कर लिया करो। तब हम तुम्हारी माला लेंगे।' मैंने कहा—'क्या हर्ज है।' बापूने प्रसन्नतापूर्वक नयी माला रख ली। उस दिनसे मैं अपने जपके अतिरिक्त एक माला जप और करता हूँ आजतक वह नियम अक्षुण्णरूपसे निभता चला आता है।'

५—'सन १९३२ की बात है। भाई देवदास गाँधी गोरखपुर जेलमें कैद थे। जेलमें वे बीमार हो गये—टाइफायड हो गया था उनको। जेल अधिकारी भाई देवदासकी सँभाल ठीकसे न कर सके। बापूको पता चला। उन्होंने मुझे लिखा—'देवदास गोरखपुर जेलमें बीमार हैं। उसकी देखभाल, चिकित्सा आदिका सारा भार तुमपर है।'

बापू उस समय यरवदा जेलमें थे। बापूका आदेश प्राप्त होते ही मैं भाई देवदासकी सेवामें लग गया। कानूनन जेलमें प्रतिदिन जाकर मिलना सम्भव नहीं था, पर मेरे प्रति यहाँके अधिकारियोंकी सदासे ही बड़ी

सद्भावना रही है। उन्होंने मुझे प्रतिदिन भाई देवदाससे मिलनेकी अनुमति दे दी। कुछ दिनोंमें भाई देवदास ठीक हो गये और जेलसे छोड़ दिये गये। मैं उन्हें पहुँचाने वाराणसीतक साथ गया था।

मैं तार-पत्रद्वारा बापूको बराबर भाई देवदासकी स्थितिका परिचय कराता रहता था। बापू मेरी इस तुच्छ सेवासे इतने मुग्ध हो गये कि उन्होंने एक पत्रमें लिखा——

यरवदा मंदिर, २१–७–३२

भाई हनुमानप्रसाद,

आपका पत्र मिला और आज तार भी। देवदासके लिये चिन्ता नहीं करूँगा; क्योंकि आप वहाँ हैं और देवदासने मुझको भी लिखा है कि आपने उससे बड़ा प्रेम किया था। आपके पत्रकी आजकल हमेशा प्रतीक्षा करता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

६–'कल्याण' के साथ बापूकी स्मृति जुडी हुई है। 'कल्याण' में बाहरी विज्ञापन न छापने और पुस्तकोंकी समालोचना न करनेका सिद्धान्त उन्हींकी सम्मतिसे स्वीकार किया गया था, जो अबतक भगवत्कृपासे चल रहा है।'

गीताप्रेसमें हड़ताल

भाईजी रतनगढ़से चलकर ज्येष्ठ शु० १ सं० २००२ (११ जून, १९४५) को गोरखपुर आ गये। गीताप्रेसके कर्मचारियोंमें पर्याप्त असन्तोष था। श्रावण सं० २००२ (अगस्त १९४५) में भाईजीने ट्रस्टियोंको समझाकर कर्मचारियोंको आर्थिक सुविधायें दिलायी। एक बार तो समस्या टल गई पर नेताओंने कर्मचारियोंको भड़का कर थोड़े समय बाद ही हड़तालका नोटिस दे दिया। भाईजीने समस्याको सुलझानेका बहुत प्रयत्न किया, कई बार दिनभर प्रेसमें रहे, किन्तु स्थिति सुलझ नहीं सकी। कर्मचारी अपनी बातपर अडिग रहे। कोई रास्ता न देखकर प्रबन्धकोंने आषाढ़ शुक्ल ८ सं० २००३ (६ जुलाई, १९४६) को अनिश्चित कालके लिये प्रेस बन्द करनेका नोटिस द्वारपर लगा दिया। हड़ताल लगभग डेढ़ मासतक चली। भाईजीके जीवनकालमें प्रेसकी तालाबन्दीका यह सबसे लम्बा अवसर था। अन्तमें भाईजीके कहनेसे बाबा राघवदासजी मध्यस्थताके लिये राजी हो गये और उनके प्रयाससे हड़ताल वापस ले ली गयी।

देश विभाजनके पूर्व व्यथित हृदयके उद्‌गार एवं चेतावनी

श्रीभाईजी जैसे सन्तने अपनी दूरदर्शी दृष्टिसे ५० साल पहले ही उन समस्याओंको देख लिया था जो आज हमारे देशके समक्ष है। यद्यपि सन् १९२१ के बाद भाईजी राजनीतिसे सर्वथा पृथक् हो गये थे क्योंकि उन्होंने उसी समय देख लिया था कि तत्कालीन नेताओंकी दृष्टिमें अध्यात्मका कोई महत्त्व नहीं है। भाईजी मानते थे कि हिन्दुओंकी समाज नीति एवं राजनीति धर्मसे सम्बद्ध है और धर्म अध्यात्मका एक अंग है। देशके स्वतंत्रता संग्राममें सक्रिय भाग लेनेपर भी तथा जेल एवं नजरबन्दीकी यातनाएँ सहनेके बाद भी इसी दृष्टिकोणके कारण उन्होंने अपना सम्बन्ध राजनीतिसे नही रखा। वैसे सभी दलोंके नेता उनसे मित्रता रखते थे।

कल्याण विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र था। उसमें भाईजी अन्य विषयोंकी आलोचना बहुत ही कम करते थे, पर जो कुछ भी कभी करते थे वह केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे ही। देश विभाजनके पूर्व हिन्दुओंपर जो भीषण अत्याचार हो रहे थे उससे भाईजीका हृदय व्यथित हो गया था। फिर भी उस समय उन्होंने 'कल्याण'में लिखा—"भगवान् जैसे हिन्दूके हैं वैसे ही मुसलमानके हैं। यदि हिन्दू भगवान्‌का स्वरूप है तो मुसलमान भी भगवान्‌का स्वरूप है। जो हिन्दू मुसलमानको दुःख देता या मारता है अथवा जो मुसलमान हिन्दूको दुःख देता या मारता है वह अपने भगवान्‌को ही असन्तुष्ट करता है, चाहे उसके भगवान्‌का नाम अल्लाह हो या परमात्मा। असलमें हिन्दू हो या मुसलमान वे पहले मनुष्य हैं उसके बाद हिन्दू या मुसलमान हैं। 'कल्याण' ने न तो अभीतक कभी किसीका बुरा चाहा है न वह चाह ही सकता है। 'कल्याण' केवल सारी मानव जातिका ही नहीं, अखिल विश्वके प्रत्येक जीवका सर्वांगीण कल्याण हृदयसे चाहता है।"

ऐसे विचार होते हुए भी भाईजीने कल्याणके फरवरी १९४७ के अंकमें राजनेताओंको सचेत करते हुए लिखा—राजनैतिक मुसलमानोंका कुचक्र तथा उनके षडयन्त्रका कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है। हिन्दुओंमें अधिकांश प्रभावशाली प्रमुख पुरुष राष्ट्रीयताके मोहमें 'स्व' को खोकर 'स्वराज्य' की साधनामें लगे हैं और संहारकारी नवीन विचारोंके प्रवाहमें बहे जा रहे हैं। शान्तिकी आड़में हिन्दुओंके सब प्रकारके अधिकारोंको छीनकर उन्हें नष्ट करनेके लिये जो शठता, कपटता तथा मिथ्याचारपूर्ण क्रूर आयोजन अत्यन्त कुशलताके साथ बड़ी ही गोपनीय रीतिसे चल रहा है,

उसे रोकने तथा उससे बचनेकी कोई भी सक्रिय चेष्टा हिन्दुओंकी ओरसे अबतक नहीं हो रही है। यह प्रमाद हिन्दू जातिके भविष्यके लिये बड़ा ही भयजनक है। इसे सहिष्णतापूर्ण राष्ट्रीयता कहें या अविचारयुक्त प्रमादपूर्ण आत्मघात कहें, कुछ समझमें नहीं आता। इन सब बातोंके लिखनेका इतना ही तात्पर्य है कि हिन्दू सजग रहें और अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें लग जाये। याद रखें इस समय हिन्दू जातिपर विपत्ति आयी हुई है।

मार्च १९४७ के 'कल्याण' मे भाईजीने लिखा——

"गत सितम्बरके कल्याणमें 'हिन्दू क्या करें' शीर्षकसे एक लेख छपा था जिसमें बंगालमें होनेवाले भीषण अत्याचारोंकी चर्चा करके यह बतलाया गया था कि ऐसी परिस्थितिमें हिन्दुओंको आत्मरक्षा एवं सबके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये। लेखके अन्तमें कहा गया था "याद रखना चाहिये कि हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी एक ही भगवान्‌के स्वरूप हैं। एकके अमंगलमें दूसरेका अमंगल और एकके मंगलमें दूसरेका मंगल निहित है। भगवान् सबका कल्याण करें, सबको सम्मति और सद्‌गति प्रदान करें।'

'कल्याण' भारतवर्षका सर्वमान्य प्रतिष्ठित आध्यात्मिक पत्र है।"

बड़े आश्चर्यकी बात है कि तत्कालीन कांग्रेसी सरकारोंने सचेत होनेके स्थानपर बिहार एवं युक्त प्रान्तीय सरकारोंने कल्याणके ऐसे अंकोंको जब्त करनेके आदेश दे दिये।

मई १९४७ के 'कल्याण' में भाईजीने लिखा——

"सभी जानते हैं इधर कई महीनोंसे भारतवर्षमें अत्याचार और अनाचारका बड़ा विस्तार हो रहा है। जलती हुई आगमें जीवित नर–नारियोंको झोंक दिया जा रहा है। निरपराध स्त्री और बच्चोंकी निर्मम हत्या की जा रही है, धन–सम्पत्ति लूटी जा रही है, नारी अपहरण होता है, उनपर बलात्कार किये जाते हैं। खेद है कि अब भी—इतना अन्याय और अत्याचार देख लेनेपर भी—हमारे नेताओंका रूख नहीं बदला है। वे अब भी उसी प्रकार मुसलमानोंको खुश करने और हिन्दुओंको दबानेकी नीति अख्तियार कर रहे हैं। हमारे नेतागण वही पुराना शान्तिका राग अलापते जाते हैं। परिणाम स्पष्ट ही सामने आते चला जा रहा है। हिन्दुओंपर हर जगह मुसीबतके पहाड़ टूट रहे हैं और मुसलमान जाति महात्माजी आदिके इन व्यवहारोंसे सतत् अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टा कर रही हैं। इससे हिन्दुओंकी तो हानि है ही परिणाममें

मुसलमानोंका और जगत्‌का भी लाभ नहीं है।

सब बातोंपर विचार करनेसे और माननीय श्रीनेहरूजी आदि कांग्रेस नेताओंसे पाकिस्तानके स्वीकारकी भूमिका बाँधने—जैसे स्पष्ट वाक्योंसे यह प्रतीत होता है कि यदि हिन्दुओंने चाहे वे कांग्रेसके अन्दर हों या बाहर हों, अथवा किसी भी मत या वादके माननेवाले हों एक साथ मिलकर एक आवाजसे और एक भावनासे प्रबल सक्रिय विरोध नहीं किया तो देश खंड—खंड हो जायगा। मुसलमानोंके अन्यायपूर्ण शासनका सूत्रपात होगा और हिन्दू जातिकी और हिन्दू—संस्कृतिकी बहुत बड़ी दुर्दशा होगी। ऐसी दशामें हिन्दुओंको चाहिये कि वे बड़ी गम्भीरताके साथ इन सब विषयोंपर विचार करें और महात्माजी, कांग्रेस तथा कांग्रेसके नेताओंके प्रति सम्मान रखते हुए ही निर्भिकतापूर्वक संकोच छोड़कर सच्ची बात कह दें। असलमें मुसलमानोंसे दबे रहकर जबतक कांग्रेस सरकार अन्याय रूपसे हिन्दुओंको दबाती रहेगी तबतक मुसलमान प्रेमके लिये कभी हाथ नहीं बढ़ायेंगे। समय बहुत कम रह गया है। बहुत जल्दी ही इस दिशामें प्रभावोत्पादक काम होना चाहिये। वस्तुतः हम मुसलमान तो क्या किसी भी प्राणिका जरा ही अहित नहीं चाहते। हम तो अन्याय, अत्याचार और आततायीपनका नाश चाहते हैं, फिर वह चाहे मुसलमानमें हों या हिन्दूमें अथवा किसी जातिमें। अंग्रेजोंसे भी हमारा कोई द्वेष नहीं था। इसलिये विरोध था कि वे भारतपर अन्याय करते हैं पर मुसलमानोंका अन्याय तो आज सर्वथा आततायीपनमें परिणित हो गया है। इस आततायीपनका शीघ्र शमन नहीं होगा तो जिनपर अत्याचार होता है, उनको तो एक बार महान् कष्ट होगा ही, पर परिणाममें आततायियोंका भी अत्यन्त अहित होगा। हिन्दू धर्मशास्त्रोंका यही मत है।"

जुलाई सन् १९४७ के 'कल्याण' में भाईजीने पुनः लिखा——

"विभाजन—योजनाकी घोषणाके दो—एक दिन पहले ही महात्मा गाँधीने इस आशयकी बात कही थी कि 'सारा भारत जलकर राख भले ही हो जाय, पर हिंसाके भयसे पाकिस्तान नहीं दिया जायगा। 'वही भारत विभाजन, वही नापाक पाकिस्तान' सहज ही स्वीकार कर लिया गया। आश्चर्य तो यह है कि विभाजन—योजनाकी स्वीकृतिको पागलपन बतानेवाले स्वयं महात्माजी ही उसको मान लेनेके लिये आदेश देने लगे। महात्माजीकी परस्पर विरोधी बातोंको समझना भी आज विकट पहेली हो गया है। पण्डित नेहरूजी एवं सरदार पटेलके भाषणोंसे यह साफ है कि देशवासियोंकी

निर्मम हत्याओं और अत्याचारोंके काण्डोंसे ऊबकर ही यह योजना स्वीकारकी गयी है। साथ ही यह भी ज्वलन्त सत्य है कि उन्होंने स्वीकार किया है लीगियोंके भयंकर उत्पातको मिटानेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ पाकर ही। इसीलिये देशवासियोंका नेताओंसे यह प्रश्न होता है कि जब ऐसी असमर्थता और बल हीनता थी तो दो–एक साल पहले ही पाकिस्तान स्वीकार क्यों नहीं कर लिया गया ? उस समय न इतनी कड़ी शर्तें होती, न इतनी माथापच्ची करनी पड़ती और न लीगियोंका इतना दिमाग ही बढ़ता।

लक्षणोंको देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञान होता है कि यदि राष्ट्रीयताके मोहमें पड़े हुए हमारे नेताओंकी नीति यही बनी रही, यदि कांग्रेसने अपनी खुशामदी नीतिमें आमूल परिवर्तन करके पूरे बल तथा विवेकके साथ न्याय मार्गका ग्रहण नहीं किया तो, पता नहीं, आगे चलकर और कैसी–कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। कांग्रेसकी दब्बू नीतिने अबतक जो कराया है, उसकी वह चाल बन्द नहीं है।

महात्मा गाँधीके प्रति मेरी चिरकालसे श्रद्धा है; पर इधर वे जो कुछ कर रहे हैं और गीताका हवाला देकर उसे सिद्ध कर रहे हैं, उससे हिन्दुओंकी निश्चित हानि हो रही है और गीताका भी दुरुपयोग हो रहा है।

राष्ट्रीयताके मोहने हमारे घरमें ही हमें इतना 'पर' बना दिया है कि आज हम अपनेको हिन्दु समझने और कहनेमें भी उदारताकी हानि समझते हैं। हमारे राष्ट्रीय नेता 'मुसलमान' नामका जरूर आदर करेंगे, परंतु 'हिन्दू' नाम उनको नहीं सुहाता। हिंदू 'गैर मुस्लिम' में गिने जाते हैं। हिन्दू स्थानका 'हिंदुस्तान' नाम रखनेमें लज्जाका बोध होता है। यह सर्वथा सत्य है कि महात्माजीकी नीति मुसलमानोंको खुश करनेकी है और इससे महात्माजीके भक्तोंमें अहिंसाके नामपर कायरता आती है और आतताइयोंमें अपनी विजयसे उद्दण्डता और बर्बरता बढ़ती है। यही हुआ और हो रहा है।"

इससे अधिक एक दूरदर्शी सिद्ध संत क्या लिखेगा। गाँधीजीको भाईजी पिता तुल्य मानते थे और गाँधीजीका भी उनपर पुत्रवत् स्नेह था पर जब उन्होंने सम्पूर्ण देशके लिये अहितकी नीति अपनाई तब भाईजीको उसके कुपरिणामोंको ध्यानमें रखकर लिखन पड़ा। यह हमारा परम दुर्भाग्य ही था कि समयपर एक संतकी सच्ची चेतावनीपर हमारे स्वार्थी नेताओंने कोई ध्यान नहीं दिया और यही कारण है कि आज पचास साल बाद भी राष्ट्र उन्हीं समस्याओंका सामना कर रहा है और उनका कोई सही हल

नहीं निकल पाया है। हमारा जीवन कितना सुखी होता यदि तत्कालीन राष्ट्रीय नेता भाईजीके चेतावनीपर ध्यान देकर तदनुकूल नीति अपनाते।

नोआखाली काण्डसे पीड़ित हिन्दुओंकी सहायता

सं० २००३ (सन् १९४६) में भारत–स्वतंत्रता प्राप्तिके समय देशमें एक हृदयविदारक दृश्य उपस्थित हो गया। हजारों–हजारों व्यक्ति कालके मुँहमें चले गये, असंख्य लोगोंका घरबार सभी कुछ चला गया, बहू–बेटियोंपर हृदय–विदारक अत्याचार हुए। उस समयके दृश्यकी आज भी स्मृति आनेपर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भाईजी जैसे संवेदनशील व्यक्तिके लिये निरपराध जनतापर ऐसे अमानुषिक अत्याचार देखकर चुप रहना संभव ही नहीं था। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तानसे भागकर आये हुए लोगोंकी करुण–कथाएँ सुनकर भाईजीके नेत्रोंसे अश्रु–धारा बहने लगती थी। भाईजी हर संभव प्रयास करनेमें लग गये। नोआखाली इन अत्याचारोंका एक मुख्य स्थान था। महामना मालवीयजी उन दिनों रोगग्रस्त थे एवं इन अत्याचारोंकी गाथायें सुनकर उनके हृदयको बड़ा धक्का लगा और उनका देहान्त हो गया। उनकी स्मृतिमें भाईजीने 'कल्याण' का एक श्रद्धांजलि अंक निकाला जिसमें हिन्दू–धर्मकी रक्षाके लिये अनेक योजनायें प्रस्तुत की गयीं। बादमें उस अंकको सरकारने जब्त कर लिया। पर भाईजी ऐसे अवसरोंपर हमेशा ही निर्भीक रहे।

भाईजीने गीताप्रेससे सहायताके लिये एक स्वयं–सेवक दल नोआखाली भेजा। जिनमें मुख्य थे—श्रीगिरधारी बाबा, श्रीकृष्णदासजी बंगाली एवं श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल। इन्हीं दिनों गोरखपुरके एक बंगाली रेलवे कर्मचारीका परिवार नोआखालीमें रहता था। परिवारको विपत्तिग्रस्त समझकर वह दौड़कर भाईजीके पास आया और बिलख पड़ा। भाईजीका हृदय द्रवित हो गया और तत्काल श्रीगिरधारी बाबाको बुलाकर स्थितिसे अवगत कराया। भाईजीके अशीर्वादसे श्रीगिरधारीबाबा उस परिवारको भीषण विपदासे निकालनेमें सफल हुए और परिवारको सुरक्षित रूपसे गोरखपुर भेज दिया। नोआखाली जाते समय गिरधारी बाबा हिन्दू विश्वविद्यालय, काशीमें महामना श्रीमदनमोहन मालवीयजीसे मिले। वे रोग–शय्यापर पड़े थे। कमरेके बाहर जो सज्जन बैठे थे उन्होंने पूछा—कहाँसे आये हैं ? श्रीगिरधारी बाबाने कहा—गोरखपुरसे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी भाईजीके

पाससे। वे सज्जन तुरन्त अन्दर गये और मालवीयजीसे कहा—'एक सज्जन भाईजीके पाससे आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।' तुरन्त आज्ञा हुई उन्हें बुला लीजिए।

श्रीगिरधारी बाबाने प्रणाम किया तो महामनाने पूछा—भाईजी ठीक है न ? कैसे आये हो ? उत्तर दिया—नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोंके सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।' वे बोले—भाईजी तो हिन्दू धर्मके प्राण हैं। वे ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिससे हमको बहुत बल मिलता है।' गिरधारी बाबाने अनुभव किया कि मालवीयजीके हृदयमें भाईजीके लिये कितना ऊँचा स्थान है। उनसे आशीर्वाद लेकर आगेकी यात्रापर चले गये। इस तरहके सहायता कार्य भाईजी जब भी अवसर आता, करते ही रहते थे।

आसाम यात्रामें एक चमत्कार

कार्तिक कृष्ण पक्ष सं० २००३ (अक्टूबर, १९४६) में भाईजी गोरखपुरसे आसाम यात्रापर गये। वहाँ एक बार गोलाघाटसे तिनसुकिया बस द्वारा जा रहे थे। रात्रिका समय था। एक स्थानपर सँकरे रास्तेसे बस जा रही थी, उसी समय एक यात्री जोरसे चिल्लाया—पानी–पानी। जोरसे अचानक चिल्लानेसे ड्राइवरका हाथ काँप गया और स्टियरिंग हिल गया। बस ढालपर थी, बसका पहिया स्लिप कर गया और बस खाईकी ओर जाने लगी। उस समय ईश्वरके अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं था। भाईजीने दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'नारायण','नारायण, 'नारायण', 'नारायण' का उच्च स्वरसे घोष किया। नारायण नामकी टेर लगाने भरकी देर थी कि बस एक स्थानपर ठहर गयी। पेड़के एक तनेसे टकराकर, उससे अटककर रुक गयी। बस कुछ क्षतिग्रस्त हुई एवं ड्राइवर और कुछ लोगोंको हल्की–सी चोट आयी पर भाईजी और अधिकांश लोग साफ–साफ बच गये। भाईजी यात्रासे सकुशल गोरखपुर लौट आये।

हिन्दू–महासभाका गोरखपुरमें अधिवेशन

देश विभाजनके समय हिन्दू जातिपर जो अमानवीय अत्याचार हुए, उस समस्याके समाधानपर विचारार्थ हिन्दू महासभाका एक अधिवेशन पौष शुक्ल १ और २ सं० २००३ (२४/२५ दिसम्बर, १९४६) को गोरखपुरमें

हुआ। लगभग छः–सात हजार प्रतिनिधियोंने इसमें भाग लिया। सभीके भोजनादिका प्रबन्ध भाईजीके नेतृत्वमें हुआ। दो दिन भाईजी इसीमें पूरे व्यस्त रहे एवं दोनों दिन मंचपर भाईजीने बड़े ओजस्वी भाषण दिये। नोआखाली काण्डके लिये हिन्दूओंको संगठित होकर कार्य करनेकी सलाह दी। अधिवेशन पूर्ण सफलताके साथ समाप्त हुआ। माघ कृष्ण ७ सं० २००३ (१३ जनवरी, १९४७) को श्रीविष्णुमन्दिरमें हिन्दू–राष्ट्र–सेवा–संघके संकीर्तनके प्रेम सम्मेलनमें भाईजी गये एवं सबसे हृदय–से–हृदय लगाकर प्रेमसे मिले। प्रेमी मित्रोंने इस दिन अपने मनकी उमंगे पूर्ण की।

प्रयागकी अर्ध–कुम्भीपर अखण्ड–संकीर्तन

माघ कृष्ण ६ से माघ शुक्ल ६ सं० २००४ (३ फरवरी से १६ फरवरी, १९४८) तक गीताप्रेसकी ओरसे प्रयागकी अर्धकुंभीके अवसरपर अखण्ड–संकीर्तन एवं सत्संग प्रवचनका आयोजन किया गया। भाईजी इसमें सम्मिलित होनेके लिये गोरखपुरसे गये। इस समय प्रयागमें दूर–दूरसे लोग एकत्रित होते हैं, इसी दृष्टिसे भगवन्नाम प्रचारके लिये यह आयोजन किया गया था। संतोंके प्रवचन एवं अखण्ड–संकीर्तनसे बहुत लोगोंने लाभ उठाया।

श्रीसनकादि मुनियोंके दर्शन

एक महानुभाव जिनका जीवन भजन–प्रधान था एवं भाईजीके अन्तरंग प्रेमीजनोंमें थे, एक बार बतलाया कि––एक दिन वे भाईजीसे मिलने गये। कमरा बंद था, इसलिये बाहर ही बैठ गये। उनको ऐसा लगा कि भाईजीके कमरेमें दो–चार आदमी बैठे हुए हैं। भाईजीसे कुछ परामर्श चल रहा है। अचानक सन्नाटा छा गया और थोड़ी देरमें कमरेका दरवाजा खुला। भाईजी अभी भावावेशमें प्रतीत होते थे। उन महानुभावने पूछ ही लिया––'भाईजी किससे बातें हो रही थी ?' उत्तर मिला––'वे ही, सनकादि थे।' दोनों चुप हो गये। भाईजी अभी पूर्णतः प्रकृतिस्थ नहीं हुए थे। वे महानुभाव आश्चर्यचकित थे। कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होनेपर उन्होंने भाईजीसे पूछा––'क्या बातें हो रही थी ?' भाईजीने इस बातको पूर्णतः गुप्त रखनेका आदेश दिया।

संसारमें धर्म–व्यवस्था तथा भक्ति–प्रचारके लिये अन्तर्जगत्में एक

दिव्य संत–मंडल अनादिकालसे चला आ रहा है। भाईजीको भी इस मण्डलमें सम्मिलित कर लिया गया था। इसीलिये इस दिव्य संत–मण्डलके सदस्य भाईजीसे वार्तालाप करने हेतु पधारा करते थे।

श्रीराम–जन्मभूमिके उद्धारके लिये अयोध्या यात्रा

कहते हैं श्रीराम–जन्मभूमि पर जो भव्य मन्दिर महाराज विक्रमादित्यने बनवाया था, उसे बाबरने ध्वस्त करा दिया। तबसे उस पवित्र स्थानके लिये अनेक हिन्दू–मुस्लिम उपद्रव हुए किन्तु आर्य–जाति किसी–न–किसी तरह अपना अधिकार जमाये रही। पौष सं० २००६ (दिसम्बर, १९४९) में अयोध्यामें श्रीराम–जन्मभूमि–मन्दिरमें स्थापित मूर्तिसे एक ऐसी चमात्कारिक किरण छिटकी जिसकी प्रभासे सभी भक्त आनन्द विभोर हो गये। यह शुभ समाचार विद्युत–प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया। मामला कोर्टमें गया। श्रीवीरसिंहजी, सिविल जज, फैजाबादने सरकारको आदेशात्मक सूचना दी––जबतक वादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक जहाँपर मूर्ति विराजमान है, वहीं पर वह सुरक्षित रहे और विधिवत् उसकी पूजा–सेवादि होती रहे।

इस चमत्कारिक घटनाकी सूचना भाईजीको भी प्राप्त हुई। उनसे इस कार्यमें सहायता देनेकी प्रार्थना की गयी। भाईजी इस संवादसे बड़े प्रसन्न हुए। वे पौष शुक्ल सं० २००६ (दिसम्बर, १९४९) में स्वयं अयोध्या गये और अपने प्रवचनों एवं उपदेशों द्वारा उन्होंने सरकारकी गति–विधियोंसे निराश जनता एवं कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित और आशान्वित किया। उस अवसरपर वहाँ लगभग पंद्रह सौ रुपये मासिक व्ययकी आवश्यकता थी। इस समस्त व्ययका भार भाईजीने सानन्द उठा लिया। इस महान् कार्यके लिये भाईजीने देशके धनपतियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया, जिससे इस कार्यके लिये अर्थकी व्यवस्था होनेमें बड़ी सुविधा हुई। मासिक व्ययके अतिरिक्त अभियोग–सम्बन्धी व्यय आदिके लिये कभी–कभी विशेष आवश्यकता पड़ जाती थी, उसके लिये गीतावाटिकाका द्वार प्रबन्धकोंके लिये सर्वदा खुला था।

इतना ही नहीं भाईजीने इस वादके सम्बन्धमें ऐसे शिक्षित तथा इस्लाम–धर्मके ज्ञाता मुसलमानोंकी खोज की, जो तर्कतः श्रीरामजन्मभूमिको

मुस्लिम पूजा–गृह मानना इस्लाम–धर्मके विरुद्ध सिद्ध करते थे। जन्मभूमिके पक्षमें वातावरण–निर्माणके लिये उन मुस्लिम भाइयोंमेंसे दो–एकको अयोध्या भी भेजा। इसके अतिरिक्त भाईजीने देशके प्रधान राज्याधिकारियों, नेताओं एवं विद्वानोंको बार–बार पत्र लिखकर इस पुनीत कार्यमें सहयोग देनेकी प्रेरणा दी। इस तरह भाईजीने इस कार्यमें अपूर्व सेवाएँ की थीं।

आत्महत्यासे बचानेके प्रसंग

भाईजीने कितने व्यक्तियोंको आत्महत्या करनेसे बचाया——इसकी गणना सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसे प्रसंग वे प्रायः गुप्त रखते थे। उनकी भरसक यही चेष्टा रहती थी कि किसीकी व्यक्तिगत बातका अन्य व्यक्तिको पता न लगे। ऐसे कुछ प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं :——श्रीभाईजीसे जिन्होंने एक दिन सेवा ग्रहण की थी, किन्तु आज जो स्वास्थ्य एवं सम्पन्न अवस्थामें हैं, ऐसे एक सम्भ्रान्त व्यक्तिने कुछ ही दिनों पहले——श्रीभाईजीके लीलालीन होनेके पश्चात्——यह घटना रूद्ध–कण्ठसे सुनायी थी। उनके नेत्रोंमें जल था, हिचकियोंके कारण शरीरमें कम्पन तथा अतीतकी स्मृतियाँ उनके हृदयतलको झकझोर रही थीं। 'करीब १२–१३ वर्ष पहलेकी घटना है——रोग तथा अभावने मुझे चारों ओरसे घेर लिया। सफलतापूजक संसार मुझे तिरस्कृत, अपमानित, उपेक्षित मानने लगा था। रोग अभावको बढ़ा रहा था, अभाव रोगका पोषक था। रोग भी साधारण नहीं, दमा——जरा–सी दूर चलनेमें भी साँस फूलने लगती थी; कहीं भी——थोड़ी दूर भी जाना पड़ता तो मार्गमें कई जगह रूक–रूककर। आयके सभी साधन समाप्त हो चुके थे। उद्यम कर नहीं पाता था, सहायता कोई करनेवाला था नहीं। परिवारवाले भी उपेक्षा करते। जीवनसे निराशा हो चुकी थी मुझे। जीना दुःखद था, मृत्युकी कल्पना सुखद थी। मृत्यु कहीं गंगातटपर शान्तिके साथ हो——इस इच्छाने स्वर्गाश्रम जानेके लिये प्रेरित किया। मैंने अपनी इस इच्छाको परिवारवालोंके सामने व्यक्त किया। अविलम्ब प्रसन्नताके साथ स्वीकृति मिल गयी; घरवालोंपर तो बोझ ही था। सर्वथा असहाय, निराश्रित रूग्ण अवस्थामें मैं स्वर्गाश्रम पहुँचा। 'गीताभवन' में स्थान भर चुका था; किसी तरह हाथ–पैर जोड़कर 'परमार्थ निकेतन' में स्थान मिला। तनसे असक्त, मनसे निराश, धनसे रहित, मैंने पतित–पावनी गंगामें जल–समाधि लेनेका

निश्चय–सा कर लिया था। तभी अचानक किसीसे ज्ञात हुआ कि 'भाईजी' आये हैं। 'कल्याण' का पुराना प्रेमी था——भाईजीके प्रति अगाध श्रद्धा थी; सोचा——'क्यों न उनके सामने रोकर अपने मनको हल्का कर लूँ। वे तो सब भाँति समर्थ हैं; सम्भव है मेरे लिये भी कुछ कर दें।' मनके निश्चयको क्रिया रूप भी दे ही दिया मैंने।

'कहाँसे आये हैं ?'——कई व्यक्तियोंके बीचमें बैठे हुए श्रीभाईजीने पूछा

इतनी दूर चलकर आनेके कारण बुरी तरह हाँफ रहा था; मैंने अटकते हुए कहा——'कल.................ही................कल.................कत्तेसे...............आया...........हूँ।'

मेरी स्थिति, बोलनेके ढंगको देखकर भाईजी शायद समझ गये; उन्होंने पुनः पूछा——'आपका स्वास्थ्य तो ठीक है न ? आप इतना हाँफ क्यों रहे हैं ?'

स्नेहसे सना स्वर सुनकर ह्रदय भर आया, नेत्रोंने उत्तर दिया——कण्ठ रूद्ध हो गया।

'आइये, भीतर बैठ जायँ'——यों कहकर वे उठ खड़े हुए, मैंने भी अनुगमन किया।

निःसंकोच कहिये, क्या बात है ? भगवान्के मंगलमय विधानपर विश्वास रखिये'——विश्वासकी गरिमा लिये श्रीभाईजीका स्वर कक्षमें गूँज उठा।

रोते–रोते मैंने अपनी सम्पूर्ण स्थिति श्रीभाईजीके सामने स्पष्ट कर दी। बड़ी ही सहानुभूति तथा धैर्यके साथ उन्होंने पूरी बातको सुना——बीचमें एक–दो बार किसीने कक्षमें आनेका प्रयास भी किया, पर श्रीभाईजीने हाथसे संकेत कर उन्हें रोक दिया।

'आत्महत्या करना पाप ही नहीं महापाप है। इससे दुःखोंसे छुटकारा नहीं मिलता, वरन् एक नवीन भयानक दुःखोंका निमन्त्रण देना है। आत्महत्या करनेसे प्रेत–योनि प्राप्त होती है, उस योनिमें प्राणीको भीषण कष्ट उठाने पड़ते हैं। आप भगवान्की कृपापर विश्वास कीजिये; भगवान् सर्वसुहृद हैं; वे निश्चय ही आपकी प्रार्थना सुनेंगे और आपके कष्टका निवारण होगा। कल मैं गीता भवनके सत्संगके बाद आपके पास आऊँगा; आप उस समय वहीं रहियेगा।'

भाईजीके स्नेह, कृपा, महानतासे ह्रदय अभिभूत हो उठा था। मैं धीरेसे उनके कक्षसे बाहर निकल आया और कलकी प्रतीक्षा करने लगा——वे

मेरेसे मिलनेके लिये 'स्वयं' मेरे कमरेमें आयेंगे।

'क्यों वैद्यजी आये थे क्या ?' दूसरे दिन मेरे कमरेमें प्रवेश करते हुए श्रीभाईजीने मन्दस्मितके साथ पूछा।

हाँ ! आये थे; दवा लिखकर भी गये हैं, पर ....मैंने मँगवायी नहीं।'

'लाइये कागज मुझे दे दीजिये; मैं मँगवा दूँगा। भोजन आप 'गीताभवन'के भोजनालयमें कर लिया करें। और हाँ, दूध भी दोनों समय आपके पास पहुँच जाया करेगा।

मैंने संकोचके साथ कहा—'मुझे आपसे कुछ कहना है।'

'बोलिये, क्या बात है ?'

'नहीं, कोई ऐसी बात नहीं है; वैसे मैं अकेलेमें कहना चाहता था।' मैंने श्रीभाईजीके पीछे खड़े दो–तीन व्यक्तियोंकी ओर देखते हुए कहा—

'ठीक है, ठीक है, मैं कल फिर आऊँगा, तब बात हो जायगी; लाइये, वह कागज दीजिये। आज मैं जरा जल्दीमें हूँ।' श्रीभाईजीने उठते हुए कहा।

मैंने औषध–पत्र श्रीभाईजीके हाथपर रखते हुए अत्यन्त संकोचके साथ कहना चाहा—'बात यह है कि मेरे पास ....,

'आज एक बहुत आवश्यक काम है, कल बात करूँगा।'................ यह कहते हुए श्रीभाईजी कक्षसे बाहर निकल गये।

मेरी बड़ी विचित्र स्थिति थी, कलका प्रेम—आजकी उपरामता;—एक अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ हो गया हृदयमें। कैसे कहूँगा कि मेरे पास दवाके, दूधके यहाँतक कि अपने भोजनके पैसे भी नहीं हैं। वे क्य सोचेंगे, क्या उत्तर देंगे ? आजकी उपरामताने मेरे हृदयमें और भी विचार उत्पन्न कर दिया था। इन्हीं सब विचारोंमें पड़ा मैं अपनेको धिक्कारने लगा;—पर था विवश, निरूपाय; बड़ी करुण स्थिति थी मेरी।

दूसरे दिन उसी समय श्रीभाईजी आये, पर आज उनके साथ अन्य कोई नहीं था। मेरे मनमें भी निश्चिन्तता–सी हुई—'चलो, आज अपनी स्थितिको कहनेमें संकोच कम होगा।'

'दवा मिल गयी थी न—आपने लेनी आरम्भ कर दी होगी।'—श्रीभाईजीने सहज स्नेहिल स्वरमें पूछा।

'हाँ मिल गयी'—छोटा–सा उत्तर दे मैं पुनः ऊहापोहमें डूब गया—कैसे कहूँ ? क्या कहूँ। मैं वह सब सोच ही रहा था कि भाईजीने

मन्द स्वरमें कहा—'आपको जो कुछ भी कहना हो, वह बादमें कह दीजियेगा; पहले मेरी बात सुन लीजिये।'

इतना कहकर उन्होंने लिफाफा निकाला और उसे मेरे हाथोंमें पकड़ाते हुए बोले—'इसे रखिये, इसमें कुछ रुपये हैं। जो कुछ भी व्यय हो, इसमें-से कर दीजियेगा। और देखिये, मैं आपसे अत्यन्त विनयके साथ प्रार्थना करता हूँ—'भगवान्‌के नामपर भीख माँगता हूँ कि आप यह बात किसीसे मत कहियेगा और न इसके लिये मनमें तनिक भी संकोच ही अनुभव कीजियेगा। मैं आपका भाई हूँ आप मेरे हैं, मैं आपका हूँ। मैं वैद्यजीसे भी कह दूँगा कि औषध तथा परीक्षणमें जितना भी खर्च लगा हो, वे आपसे ले लें। अच्छा, अब मैं चलता हूँ; फिर आऊँगा।'—यों कहते हुए वे स्नेहसे मेरे मस्तकपर हाथ फेरकर कक्षसे बाहर निकल गये।

मैं अवाक् बना सोच रहा था—'श्रीभाईजीकी प्यारसे सनी सेवा कितनी गुप्त, कितनी अज्ञात थी। प्रतिदानकी तो कौन कहे, सम्मानकी इच्छासे भी दूर—बहुत दूर।' नेत्र झरते रहे; मैं सोचता रहा, सेवा तथा प्यारका स्वरूप यही है।

दूसरी लगभग ४० वर्ष पहलेकी घटना है। एक दिन ८-९ बजे दो सज्जनोंने अचानक परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके कमरेमें प्रवेश किया—एक पुलिसकी वर्दीमें थे और दूसरे अपने शरीरको सिरसे पैरतक कपड़ेसे ढँके हुए थे। श्रीभाईजी उस समय 'कल्याण' के प्रूफ देखनेमें संलग्न थे। दोनों सज्जनोंने श्रीपोद्दारजीको प्रणाम किया। दोनोंका अभिवादन करते हुए श्रीभाईजीने उनसे बैठनेकी प्रार्थना की। अपना परिचय देते हुए पुलिस वर्दी पहने हुए सज्जनने कहा—'मैं गुप्तचर विभागमें काम करता हूँ और साथ वाले सज्जन मेरे बड़े भाई हैं।' फिर उन्होंने बड़े ही संकोचके साथ कहा—'पोद्दारजी ! मेरे भाई साहबके शरीरमें कुष्ठ-रोग हो गया है। ये एक अच्छे एडवोकेट हैं, परन्तु जबसे रोग हुआ है, इन्होंने अदालत जाना छोड़ दिया है। कुष्ठ रोग समाजमें बहुत घृणित माना जाता है और जिसे यह रोग हो जाता है, समाज उसका बहिष्कार कर देता है। भाई साहब इस रोगकी भीषणताके सम्बन्धमें जानते हैं; अतएव ये अब जीवन रखना नहीं चाहते। ये दिन-रात रोते रहते हैं और किसीसे मिलते-जुलते नहीं। भाईजी आपकी महानताके विषयमें मैंने अपने कई मित्रोंसे सुना था। अतएव आज इन्हें बहुत समझा-बुझाकर अपने साथ लाया हूँ। ये अपना मुँह किसीको दिखाना नहीं

चाहते; इसीसे ये अपना सम्पूर्ण शरीर कपड़ेसे ढंककर आये हैं।' श्रीभाईजी बड़ी ही उत्सुकताके साथ ध्यानपूर्वक सब बातें सुन रहे थे। ऐसा लगता था, मानो वे अपने किसी निकटतम स्वजनके सम्बन्धमें कुछ सुन रहे हों। बातें सुनकर श्रीभाईजी भाई साहबकी ओर बढे और उनके कंधेपर अपना हाथ रखते हुए बोले—'भाई साहब ! आप भी कुछ कहिये। आप मुँहपरसे कपड़ा हटा लीजिये और मुझे जरा देखने दीजिये कि रोगका स्वरूप क्या है ?'

श्रीभाईजीकी इस आत्मीयता, प्यार तथा सबसे बढ़कर उनके शरीरके स्पर्शने भाई साहबके मन और प्राणोंको उद्वेलित कर दिया और वे फफक पड़े तथा उन्होंने श्रीभाईजीकी गोदमें अपना सिर रख दिया। श्रीभाईजीकी भी आँखें गीली हो गयीं और वे अपने कोमल हाथसे उनके मस्तकको सहलाने लगे। कुछ देर पश्चात् व्यथाका आवेग कम होनेपर भाई साहबने कहा—'भाईजी ! अब इस जीवनको रखना नहीं चाहता। अपने छोटे भाईके आग्रहसे आपके पास आया हूँ। यह मेरा प्रथम तथा अन्तिम प्रणाम है..................'— इतना कहते-कहते भाई साहब पुनः सुबक-सुबककर रोने लगे। भाईजी बराबर उनके सिरपर हाथ फेरते रहे। वातावरण बहुत गम्भीर हो गया।

थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी बोले—'भाई साहब ! आप इतने निराश क्यों होते हैं ? सर्व-समर्थ एवं सर्व-सुहृद भगवान्‌के रहते निराश होनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। वह प्रभु **'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम'** समर्थ है। अतएव निराशाको दूर भगाइये।

श्रीभाईजीद्वारा इस प्रकार प्रबोध एवं आश्वासन प्राप्तकर भाई साहबका हृदय कुछ शान्त हुआ। वे बैठ गये और अपने मुँहपर पड़ा कपड़ा उन्होंने उठा लिया। श्रीभाईजीने बड़े ही गौरसे उनके मुखको देखा और बोले—'आप व्यर्थमें इतने भयभीत हो रहे हैं। रोग अभी प्रारम्भिक अवस्थामें है। फिर यह शरीर तो व्याधि मन्दिर है ही। एक व्याधि प्रकट रूपमें आपके सामने आ गयी तो घबराना नहीं चाहिये। हम वैद्यजीको बुलाते हैं, वे आपके लिये दवाकी व्यवस्था करेंगे। भगवान्‌ने चाहा तो कुछ ही दिनोंमें आप पूर्ण स्वस्थ हो जायँगे। आपने अपना शरीर न रखनेकी बात कही, वह उचित नहीं। विष खाकर, अग्निमें जलकर, पानीमें डूबकर या किसी अस्त्र-शस्त्रका अपने ऊपर प्रहार करके जो व्यक्ति अपने शरीर और जीवनको जान-बूझकर नष्ट कर देते हैं, वे बड़े ही अभागे एवं दयाके पात्र हैं। मानव-शरीर

भगवान्‌की प्राप्तिका साधन है और यह बड़े ही पुण्यसे भगवान्‌की विशेष कृपासे प्राप्त होता है। ऐसे दुर्लभ देहको नष्ट कर देना भारी पाप है। आत्महत्यासे कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पड़ेगा। मनुष्य जिस क्षणिक दुःख शोक या मनसंतापसे मुक्त होनेके लिये आत्महत्या करता है, वह अनन्त गुना होकर अनन्त कालतक उसे परलोकमें कष्टदायक होता है। अतः आत्महत्या करनेकी बात मनमें ही नहीं लानी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके चिकित्सा करवानी और साथ–ही–साथ श्रद्धापूर्वक भगवान्‌से करुण प्रार्थना करनी चाहिये।

'आपकी पुकार सच्ची होगी तो भगवान् उसे अवश्य सुनेंगे। ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो भगवान्‌की कृपासे न हो सके। अतएव मेरी बातपर विश्वास करके आप स्वयं अपने मनसे अपनी ही करुण भाषामें सर्वशक्तिमान्, सर्व–सुहृद भगवान्‌से प्रार्थना कीजिए। विश्वासपूर्वक की हुई प्रार्थनासे मानसिक तथा शारीरिक––सभी प्रकारके रोगोंका नाश हो सकता है। 'साइंस आफ थाट रिव्यू' नामक इंग्लैण्डके एक मासिक पत्रमें श्रीगिल्वर्ट हेनरी गेज नामक सज्जनने लिखा था––'जर्मनीके एक आदमीको 'शैशाविक पक्षाघात' का रोग जन्मके पहले ही वर्षमें हो गया था। फलतः उनके दोनों पैर लकवेसे बेकार हो गये। उसके लिये प्रार्थना की गयी। चार महीने बाद समाचार मिला कि उसके पैरमें नवीन शक्ति आ गयी है। ४८ सालसे जो मांसपेशियाँ मरी हुई थीं, वे सक्रिय हो गयीं। उनका जीवन सब चिन्ताओंसे मुक्त, भगवद्–विश्वासपूर्ण और प्रफुल्लित हो गया।'

'पुरानी बात है––कलकत्तामें एक प्रसिद्ध व्यावसायीको प्लेग हो गया। १०४–५ डिग्री बुखार था और दोनों जाँघोंमें बड़ी–बड़ी गिल्टियाँ निकल आयी थीं। कलकत्ताके सबसे बड़े डाक्टरने उन्हें देखकर कह दिया––'बचनेकी आशा बिल्कुल नहीं है; पर भगवान्‌पर उनका विश्वास था। उन्होंने कमरा बन्द करके भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति सामने स्थापित कर ली और श्रीकृष्णमें मन लगाकर **'हरिः शरणम्'** मन्त्रका जप करने लगे। भगवान्‌की कृपासे प्रातः काल होते–होते वे बिल्कुल स्वस्थ हो गये और वर्षों जीवित रहे।

इस प्रकारकी और भी घटनाएँ मैंने अपने जीवनमें तथा दूसरोंके जीवनमें घटते देखी हैं। कैंसर, टी० बी० आदि रोग भी प्रार्थनाद्वारा

चमत्कारिक रूपमें ठीक हुए हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान्‌की प्रार्थनासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अतएव आप मन–ही–मन भगवान्‌से प्रार्थना कीजिए तथा मन–ही–मन 'हरिः शरणम्' मन्त्रका जप कीजिए।

श्रीभाईजीकी बातें भाई साहबने बड़ी उत्सुकता एवं श्रद्धाके साथ सुनी। उनके हृदयमें आशाका संचार हो गया। श्रीभाईजीने जब बोलनेसे विराम लिया, तब उन्होंने कहा––'भाईजी ! आपके प्यार, स्नेह और आत्मीयताने मुझे अभिभूत कर लिया है। आपने भगवान्‌के सौहार्द एवं सामर्थ्यकी जो बातें कही हैं, उनपर मेरा विश्वास जमा है। अब मैं जीवनसे निराश नहीं हूँ, आप जो दवाकी व्यवस्था करेंगे, मैं उसे विश्वासपूर्वक लूँगा और मन–ही–मन आपके अनुसार भगवान्‌से प्रार्थना करूँगा।'

भाई साहबके मुखसे आशाभरे शब्द सुनकर पुलिस अधिकारी प्रफुल्लित हो गये। दोनों भाइयोंने श्रीभाईजीको प्रणाम किया और उनसे विदा ली।

दूसरे दिन श्रीभाईजीने स्थानीय प्रसिद्ध वैद्यराजजीको बुलवाया और उनसे आयुर्वेदिक दवाकी व्यवस्था करवायी। उस समयतक 'सल्फोन' नामक ऐलोपैथिक दवाका, जिससे कुष्ठ रोगका निर्मूलन सम्भव है, प्रचलन नहीं था। भाई साहब यह दवा लेने लगे। असली दवा तो भगवान्‌से विश्वासपूर्वक करुण प्रार्थना एवं उनके नामका जप था; वे दोनों बराबर चलते रहे। कुछ महीनोंमें भाई साहब बिल्कुल स्वस्थ हो गये और अदालतमें कार्य करने लगे।

इस घटनाने श्रीभाईजीके कोमल हृदयको कुष्ठरोगसे पीड़ित भाई–बहिनोंकी सेवाके लिये भी कुछ करनेके लिये प्ररित किया। संयोगसे कुछ ही दिनों पश्चात् प्रसिद्ध समाजसेवी बाबा राघवदासने गोरखपुरमें 'कुष्ठ–सेवाश्रम' की स्थापनाका निश्चय किया और श्रीभाईजी उनके अन्यतम सहयोगीके रूपमें उनके साथ हो गये। आश्रमकी स्थापनाके कुछ मास बाद पूज्य बाबाजी संत श्रीविनोबाजीके भूदान–कार्यमें लग गये और कुष्ठ–सेवाश्रमका पूरा उत्तरदायित्व श्रीभाईजीपर ही आ गया। अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमें–से भी समय निकालकर श्रीभाईजीने इस कार्यको ऐसे सुन्दर ढंगसे आगे बढाया किं आज गोरखपुरका कुष्ठ–सेवाश्रम देशकी महत्वपूर्ण कुष्ठ–सेवा–संस्थाओंमें है और हजारों–हजारों निराश भाई–बहनोंको यह आशा एवं जीवन प्रदान कर रहा है।

श्रीरियाज अहमद अन्सारीको आत्म–हत्या करनेसे बचाया

तीसरी घटना तो अति विचित्र है। एक मुसलमान भाईने परिस्थितिवश आत्म–हत्या करनेका निर्णय कर लिया। उसने किसीको भी इसका पता नहीं लगने दिया। कैसे श्रीभाईजीको इसका पता लगा यह एक गूढ़ रहस्य ही रह गया। पता नहीं और ऐसी कितनी गुप्त घटनाएँ होगीं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस घटनाका पता तो तब लगा जब श्रीअन्सारीने स्वयं इसका रहस्य खोला।

'श्रीराम–जन्मभूमि–मन्दिर' अयोध्याके विषयमें श्रीअन्सारीके विचार समाचार–पत्रमें पढ़कर भाईजीने इन्हें मिलनेके लिये बुलाया था। उसी समयसे इनका परिचय भाईजीसे बढ़ने लगा एवं कई बार भाईजीसे मिले। कुछ कारण–वश ये अत्यन्त आर्थिक कठिनाईका सामना करने लगे। किन्तु भाईजीके समक्ष इन्होंने अपने कष्टको कभी नहीं रखा। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि घरमें खानेके लिये कुछ नहीं बचा। इनके घर लगातार तीन दिनोंतक भोजन नहीं बना। इनका शरीर कमजोर हो गया और बीमार जैसे प्रतीत होने लगे। घरमें दो बच्चोंसे छोटी लड़की शहेदा, जिसकी उम्र चार सालकी थी, भूखसे बहुत रोने लगी। घरका दृश्य देखकर और विशेषतया बच्चीको भूखसे रोता देखकर इनकी सहनशक्ति समाप्त हो गयी। बहुत सोच–विचारकर इन्होंने आने वाली रात्रिमें आत्म–हत्या करनेका निश्चय कर लिया। और कोई उपाय न देखकर अपने निश्चयके पश्चात् बिस्तरपर लेट गये; दिनके लगभग १० बजे थे। अचानक किसीने दरवाजा खटखटाया। वे उठकर बाहर आये तो देखा सड़कपर मोटरके निकट भाईजी खड़े है। इन्होंने भीतर आनेकी प्रार्थना की और भाईजी भीतर एक कुर्सीपर बैठ गये। भाईजीने मुस्कुराते हुए कहा—"भाई साहब, आप तो बीमारसे लगते हैं" अब ये क्या उत्तर देते कि बीमारी तो कुछ और है, तीन दिनोंसे पानीके अलावा कुछ खानेको नहीं मिला उसीके फलस्वरूप यह हालत हो गयी है। अतः केवल इतना ही बोले—'जी'। भाईजीने तत्काल पूछा क्या तकलीफ है आपको ? कौन–सी बीमारी है ? श्रीअन्सारीने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। उन्हें चुप देखकर भाईजी आश्वासन देते हुए बोले—"भाईसाहब ! यह संसार दुःखालय ही है। यहाँ सभीको दुःख सहने पड़ते हैं और सच्चे लोगोंपर तो और भी कष्ट आते हैं, इसलिये कि भगवान् उनकी परीक्षा लेते हैं। भाईजीकी बातोंका उनपर कोई विशेष असर नहीं हुआ, क्योंकि आनेवाली

रातमें वे आत्म–हत्याका निर्णय कर चुके थे और उसके पश्चात् वे सभी दुःखोंसे छूटनेकी कल्पनामें लीन थे। उन्होंने कोई उत्तर न देकर केवल सिर हिला दिये, मानो भाईजीकी बातोंका समर्थन कर रहे हों। बातें करते हुए भाईजीने एक लिफाफा उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा––"आपको इसकी जरूरत है, इसे रख लीजिये। अस्वीकार करनेसे मुझे दुःख होगा। शीघ्र ही मैं आपके व्यवसायके लिये रुपयोंकी व्यवस्था करनेकी चेष्टा करूँगा।" वे बोले––"भाईजी आपके इन एहसानोंका बदला मैं कैसे चुका सकूँगा ?" भाईजीने उत्तर दिया––"कैसा एहसान, कैसा बदला ? मैं यही चाहता हूँ कि आपको आराम हो जाय। एक प्रार्थना और है आपने आनेवाली रातमें अपने जीवनके साथ जो करनेका निश्चय किया है, वह ठीक नहीं है। जीवन भगवान्‌का दिया हुआ है और उसे समाप्त करनेका अधिकार उन्हींको है। आप अपने निश्चयको छोड़ दीजिये।" उन्हें लगा मानो बिजली गिर पड़ी। उन्होंने अपने निश्चयके सम्बन्धमें किसीको भी नहीं कहा था फिर भाईजीको कैसे पता लगा। अवश्य ही उनमें कोई दिव्य शक्ति है। वे उठ खड़े हुए और बोले––"भाईजी ! आप इन्सान नहीं फरिश्ता हैं। आपको मेरे इरादेका कैसे पता चला ?" भाईजीने उत्तर दिया––"आपके मनमें जो बात आई, उसकी स्फुरणा मेरे मनमें हो गयी। मुझे आज्ञा दीजिये, फिर मिलेंगे।" भाईजी हँसने लगे।

भाईजीके जानेके बाद उन्होंने लिफाफा खोलकर देखा तो सौ–सौके बीस नोट। कुछ देर पहले जिसके पास दो रुपये नहीं थे उसके पास दो हजार रुपये आनेसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी इसकी हम लोग कल्पना कर सकते हैं। उस समय वे दो हजार उनके लिये दो करोड़से भी अधिक थे। लगभग बीस दिनों बाद भाईजीने आठ हजार रुपये और उन्हें दिये और कहा कि इन्हें लौटानेकी जरूरत नहीं है। हैंडलूमसे कपड़े बनवाना उनका पैतृक व्यवसाय था और वे उसमें लगकर आनन्द पूर्वक अपने परिवारका भरण–पोषण करते हुए जीवन व्यतीत करने लगे।

साधन–समितिका पुनर्गठन

अयोध्यासे गोरखपुर लौटकर माघ कृष्ण ३ सं० २००६ (७ जनवरी, १९५०) को भाईजीने श्रीशुकदेवजी आदि कई साधकोंका विशेष उत्साह देखकर साधन–समितिका पुनः संगठन किया। पालनके लिये नियम बनाये

गये जिसे सदस्योंने उत्साहपूर्वक पालन करना स्वीकार किया। भाईजीके लिये तो यह प्रिय कार्य था क्योंकि व अपने निकट रहनेवालोंका जीवन सदा ही साधनमें कटिबद्ध देखना चाहते थे। साधकोंके उत्साहवर्धनके लिये रात्रिमें गीताप्रेस जाकर सत्संग कराना स्वीकार किया। रास्तेमें आते-जाते समय 'हरे राम' मन्त्रका कीर्तन उच्च-स्वरसे करते रहते। बहुत दिनोंतक यह क्रम उत्साहपूर्वक चलता रहा। भाईजी साधकोंसे नियमोंके पालनके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करते और उनका उत्साह बढ़ाते रहते।

"कल्याण" के चित्र शास्त्रीय आधारपर

"कल्याण" के जो भी चित्र प्रकाशित होते थे उनका आधार हिन्दू शास्त्रोंसे ही खोजा जाता था। कई बार ऐसे अवसर आते थे कि उपर्युक्त आधार खोजनेमें पर्याप्त समय लग जाता था पर जब तक शास्त्रीय आधार नहीं मिलता उसे प्रकाशित नहीं किया जाता था। ऐसे ही एक प्रसंगका वर्णन पं० मंगलजी उद्धवजी शास्त्रीके शब्दोंमें इस तरह है—

सन् १९४९-५० का समय था, जब श्रीभाईजीके प्रथम दर्शन मुझे हुए। गीतावाटिका मुझे तपोवन-सी प्रतीत हुई। श्रीभाईजीने स्नेहसे गले लगा लिया और मेरा हाथ पकड़कर चारपाईपर बैठा लिया। "कल्याण" के विशेषांक "हिंदू-संस्कृति-अंक" की पूर्व तैयारियाँ हो रही थी। टाइटलके ऊपरवाले चित्रमें श्रीरामसभाका दृश्य ही अंकित करना था। सम्पादकीय विभागके सदस्य उस चित्रके सम्बन्धमें विचार-विमर्श कर रहे थे। एक सदस्यने आकर श्रीपोद्दारजीसे कहा—"वाल्मीकि-रामायणमें कुत्तेके न्याय माँगनेका प्रसंग नहीं मिल रहा है। अब तो उसे किसी अन्य रामायणमें देखना होगा—"

"वह प्रसंग मैंने देखा है।" मैं बीचमें ही बोल पड़ा। "मुझे रामायण दीजिये, अभी निकाल देता हूँ।"

उन महाशयने मुझे रामायणकी पुस्तक लाकर दे दी। ध्यानसे देखने पर भी उक्त प्रसंग उस प्रतिमें नहीं मिला। महाशय बोले—"हम लोग दो-तीन बार देख चुके; वह प्रसंग है तो जाना-माना, पर वाल्मीकि-रामायणमें उसका उल्लेख नहीं है।"

"तो फिर जबतक प्रमाण न मिले, हम इस प्रसंगवाले चित्रको टाइटलके ऊपर कैसे दे सकते हैं ?"—पोद्दारजी बोले।

श्रीभाईजीके ये शब्द सुनकर मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार "कल्याण"में प्रकाशित होनेवाली चीजोंके लिये शास्त्रका आधार लिया जाता है। "कल्याण"की प्रतिष्ठाका यही प्रधान हेतु है।

"मैंने तो उसे वाल्मीकि–रामायणमें ही देखा है; किंतु मेरे पास निर्णय–सागर प्रेसकी प्रति है।"––मैंने कहा।

निर्णयसागरकी प्रति देखी गयी और वह प्रसंग मिल गया। सभी प्रसन्न हुए। श्रीभाईजीने प्रसन्नतामें भरकर मुझे गलेसे लगा लिया।

स्वामी अखण्डानन्दजी द्वारा गोरखपुरमें भागवत–सप्ताह

स्वामीजी पूर्वाश्रममें पं० शान्तनुबिहारी द्विवेदीके नामसे भाईजीके निकट 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागमें बहुत वर्षोंतक कार्य करते रहे। भाईजीके परिवारके सदस्यकी तरह हो गये थे। स्वामीजीके शब्दोंमें––मैंने सन्यास अपनी आनुवंशिक घर–गृहस्थीसे नहीं, भाईजीके परिवारसे ही लिया। स्वामीजी भागवतके प्रकाण्ड पण्डित माने जाते हैं। भाईजीने इनकी भागवत्–सप्ताह–कथाका आयोजन 'श्रीकृष्ण निकेतन' गोरखपुरमें करवाया। आयोजन बहुत विशाल रूपमें हुआ और भाईजीने परिवार एवं प्रेमीजनों सहित कथा–श्रवण की। कथाका आयोजन सं० २००७ फाल्गुन कृष्ण ५ से १३ (२६फरवरीसे ५ मार्च १९५१) तक हुआ।

श्रीसेठजीके पौत्रके विवाहमें बाँकुड़ा–यात्रा

चैत्र शुक्ल १३ सं० २००८ (१९ अप्रैल, १९५१) को भाईजी वायुयानसे कलकत्ता पहुँचे एवं दिनमें प्रेमीजनोंसे मिलकर रात्रिको रेलसे बाँकुड़ाके लिये प्रस्थान किया। चैत्र शुक्ल १५ सं० २००८ (२१ अप्रैल, १९५१) को श्रीसेठजीके छोटे भाई श्रीमोहनलालजी (जिन्हें श्रीसेठजीने अपना पुत्र मान लिया था) के लड़के माधवका विवाह था। संतोंकी उपस्थिति हर अवसरपर आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करती ही है। बाँकुड़ामें भाईजीने भगवान्‌की बाललीला पर बड़ा मनमोहक प्रवचन दिया। बारात रवाना होनेपर श्रीसेठजी एवं भाईजीके आगे–आगे श्रीडूँगरमलजी लोहिया नृत्य करते हुए संकीर्तन करा रहे थे। संकीर्तन करते हुए ही बारात विवाह–स्थल पर पहुँची। विवाहका लग्न अर्धरात्रिके बाद था, अतः भाईजी रातभर वहीं रहे। बैसाख

कृष्ण ४ सं० २००८ (२५ अप्रैल, १९५१) को बाँकुड़ासे रवाना होकर आसनसोल, बनारस होते हुए गोरखपुर पहुँचे।

इसी वर्ष गोरखपुरमें मार्गशीर्षके कृष्णपक्षमें भाईजी अत्यधिक रुग्ण हो गये। कई दिनोंतक व्याधिजनित कष्ट रहा, किन्तु अनुष्ठान करानेसे स्वास्थ्यमें आशातीत लाभ हुआ।

गोरखपुरमें अकाल पीड़ितोंकी सेवा

गोरखपुरमें स० २००६ (सन् १९५२) में भयंकर अकाल पड़ा। भाईजी सदा ही ऐसे अवसरोंपर सहायता कार्यका आयोजन करते थे। इस बार भी श्रीसेठजीके साथ भाईजी स्वयं जीपमें गाँव—गाँवमें भ्रमण करके अकालपीड़ितोंकी अन्न—वस्त्रसे अपने हाथों सेवा की। श्रीसेठजी एवं भाईजीके साथ रहनेसे कार्यकर्ताओंमें बड़ा उत्साह रहता। इसके बाद ही श्रीसेठजीके पेटमें भयंकर दर्द हो गया एवं शारीरिक स्थिति गम्भीर हो गयी। भाईजीने उनके स्वास्थ्य लाभके लिये विश्वासी व्यक्तियोंसे अनुष्ठान करवाया, जिससे श्रीसेठजीके स्वास्थ्यमें शीघ्र लाभ हुआ।

डूबते हुए मोटर बोटकी रक्षा

भाईजी कई बार ऐसी भीषण घटनाओंको इतने साधारण ढंगसे सम्भाल लेते थे कि देखने वाले आश्चर्यचकित रह जाते थे। ऐसी ही एक घटना दि० १३ जुलाई सन् १९५४ को स्वर्गाश्रममें देखनेको मिली। प्रातः लगभग १० बजे २०—२५ व्यक्ति स्वर्गाश्रम गीताभवनसे ऋषिकेश जानेके लिये मोटर बोटपर सवार हुए। साथमें स्त्री—बच्चे भी थे। विधिका विधान ! बोट जब गंगाजीकी बीच धारामें पहुँचा तो अचानक बोटका इंजन बन्द हो गया। बोट चालकने बहुत चेष्टा की कि किसी तरह इंजन चालू हो जाय पर उनके सभी प्रयास असफल हुए। बोट धारामें पड़कर तेजीसे भंवरकी तरफ चलने लगा। यात्रियोंकी मनः स्थितिका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। लगता था बोट डूबने ही वाला है। सभी यात्री भगवान्‌को, श्रीभाईजीको 'बचाओ—बचाओ' के आर्तनादसे पुकारने लगे। कोई और सहारा नजर नहीं आ रहा था।

भगवत्कृपाका चमत्कार कहिये, ठीक उसी समय भाईजी गीताभवन नं० २ से बाहर निकले। उनकी दृष्टि डूबते हुए बोट एवं यात्रियोंके

आर्तनादकी तरफ गयी। बोटकी ओर देखते हुए भाईजी हाथ उठाकर तीन बार जोर–जोरसे 'नारायण, नारायण, नारायण' बोले। नारायण बोलते ही अप्रत्याशित रुपसे बोट वहीं बीच धारामें रुक गया। चालकने पुनः इंजन चलानेकी चेष्टा की, पर सफलता नहीं मिली। एक बहुत मोटी रस्सीका एक छोर मोटे पेड़से बाँधकर दूसरा छोर नावसे बाँधकर नावको भेजा गया। ३–४ घण्टेके अथक प्रयाससे सब यात्री नाव द्वारा गीताभवन घाटपर सकुशल पहुँचे। सभी यात्री अनुभव कर रहे थे कि भाईजीकी कृपासे ही हम लोगोंको नव–जीवनकी प्राप्ति हुई है। सभी यात्री कृतज्ञतापूर्ण ह्रदयसे भाईजीके निवास–स्थान डालमिया कोठी गये एवं उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भाईजी बड़ी आत्मीयतासे सबसे मिले तथा मुस्कुराते हुए बोले—'आप लोगोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, पर भगवान्ने रक्षा की।' सभीका ह्रदय गद्गद् हो गया।

प्रयागके कुम्भमें

वैसे तो भाईजी प्रायः प्रयागमें कुम्भके अवसरपर भगवन्नाम–प्रचारके लिये आयोजन कराते एवं स्वयं भी जाते, किन्तु सं० २०१० (सन् १९५४) में कुम्भके अवसरपर भाईजी पूरे परिवार सहित सवा महीने प्रयागमें रहे। गीताप्रेसकी तरफसे एक बहुत बड़े पण्डालका निर्माण हुआ, जिसमें दो बार १०८ श्रीमद्भागवतके सप्ताह पारायण एवं श्रीरामचरितमानसके नवाह्न–पारायण आयोजित हुए। प्रातःसे रात्रितक सत्संग–प्रवचन–कथा–संकीर्तन आदि होते रहते। भाईजीके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी, श्रीअखण्डानन्दजी, श्रीपथिकजी, श्रीरामकिंकरजी आदि संत–विद्वानोंके प्रवचन नित्यप्रति होते थे। भाईजीको दूसरे अनेक महात्मा अपने–अपने पण्डालमें सत्संगके लिये ले जाते थे। इस अवसरपर प्रयागके 'भारत' पत्रमें भाईजीका संक्षिप्त जीवन–परिचय प्रकाशित हुआ। वहाँ भाईजी अनेक महात्माओं एवं विद्वानोंके प्रतिनिधि मण्डलके साथ भारतके प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरूसे मिले एवं गोवध बन्द करानेके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना की। इस कुम्भके अवसरपर श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन भी प्रयाग पधारे एवं जैसे ही उन्हें भाईजीके वहाँ होनेका समाचार मिला वे अपने परिकरों सहित भाईजीसे मिलनेके लिये आये। जबतक वे रहे प्रायः भाईजीसे मिलने आते और गंगाके किनारे बालूपर बैठकर बातचीत करते थे। पौष शुक्ल ७ सं० २०१० (११ जनवरी,

१९५४) से फाल्गुन कृष्ण १ सं० २०१० (१८ फरवरी, १९५४) तक भाईजी प्रयागमें रहकर गोरखपुर सपरिवार लौट आये।

सरलताकी मूर्ति

बात सन् ५४ की है। स्वामी करपात्रीजी महाराजके सान्निध्यमें गोहत्या निरोध आन्दोलन कलकत्तामें चल रहा था। समाचार मिला कि किसी कार्यवश पूज्य भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार कलकत्ता आ रहे हैं। स्थानीय कार्यकर्ताओंने उनके आगमनका लाभ उठाना चाहा और उक्त अवसरपर एक प्राइवेट मीटिंगका आयोजन किया।

दिनके ३ बजे मीटिंग प्रारम्भ होनेवाली थी। पूज्य भाईजीके अलावा विशिष्ट कार्यकर्तागण आमन्त्रित थे। प्रायः सभी आ गये थे। पर भाईजीका कोई पता नहीं था। तीन बज चुके थे। सभी लोग भाईजीके इन्तजारमें थे। अन्तमें करीब ३।। बजे एक सज्जन बोल उठे—भाईजी न मालूम आये न आयें मीटिंग चालू कर देनी चाहिये।

इतनेमें कमरेके द्वारके पास ही बैठा सीधी-सादी लिवास पहने एक वृद्ध व्यक्ति बोल उठा—'मैं तो आ गया हूँ।'

सुनते ही सब अवाक् हो गये। उनमेंसे कोई भी व्यक्ति पूज्य भाईजीको चेहरेसे नहीं पहचानता था। अतः उस सीधे सादे साधारण व्यक्तिको जूतोंके पास बैठे हुए किसीने न तो कोई आपत्तिकी और न ज्यादा परिचय लेनेकी आवश्यकता समझी।

पर जब मालूम हुआ—ये ही हैं पूज्य भाईजी, तो सभी बड़े शर्मिन्दा हुए और आदरपूर्वक उन्हें निश्चित स्थानपर बैठाया।

स्वर्गाश्रम (गीताभवन) में सत्संग

उत्तराखण्ड हमारे देशका शताब्दियोंसे साधना-स्थल रहा है। इसी उत्तराखण्डकी पवित्र भूमि ऋषिकेशमें श्रीसेठजीने एक सत्संग-सत्र खोल दिया था। यह क्रम सं० १९७८-७९ (सन् १९२१-२२) के लगभग प्रारम्भ होकर अभीतक निर्बाध चल रहा है। प्रतिवर्ष श्रीसेठजी चैत्रसे आषाढ़ तक अधिकांश समय वहीं रहते एवं सत्संगियोंका एक बड़ी ही श्रद्धाके साथ एकत्रित होकर सुरसरिकी कलकल करती पावन धारासे गुंजित पुलिनपर भगवद्रसका आस्वादन करता। कुछ समय बाद यही आयोजन गंगाके

स्वर्गाश्रममें गंगातटपर

तटपर, जिसे स्वर्गाश्रम कहते हैं, आयोजित होने लगा। उस समय वहा सघन जंगल था, रहनेके लिये मात्र कुछ कुटियाएँ थीं। गंगातटपर विशाल वटवृक्षकी छायामें भगवद्रसका प्रवाह बहता रहता।

भाईजी सर्वप्रथम इस आयोजनका लाभ लेनेके लिये बम्बईसे चैत्र शुक्ल पक्ष सं० १९८१ (सन् १९२४) में गये। इससे पूर्व वहाँके सत्संगी श्रीसेठजी द्वारा इनकी साधनाके बारेमें बहुत कुछ बातें जान गये थे। भाईजीने वहाँ श्रीसेठजीके मार्मिक प्रवचनोंका लाभ उठाया ही, साथ ही सत्संगी भाइयोंके आग्रहपर अपनी साधनामें कैसे उन्नति हुई, इसपर भी प्रकाश डाला। यद्यपि भाईजी उस समय केवल तीन दिन ही रह सके, पर इनके अन्तस्तलकी अनुभूत बातें सुनकर सभी प्रभावित हुए। इसके पश्चात् भाईजी 'कल्याण' के कार्यवश तो नहीं जा पाते थे पर प्रायः जाया करते थे। सं० १९८६ (सन् १९२९) के चैत्र मासमें जब भाईजी गये तब स्वामी शिवानन्दजीसे मिले थे, और उसी वर्ष श्रीनारायण स्वामीसे मिलकर उनके साधनमय जीवनके अनुभवकी बातें लिखी थी। श्रीनारायण स्वामी एक अमीर घरानेमें पैदा हुए एक उच्च शिक्षित पुरुष थे। उस समय निरन्तर मौन रहकर 'नारायण' नामका जप करते थे और अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं करते थे। बादमें उनकी अनुभवकी बातें गीताप्रेससे 'एक सन्तका अनुभव' नामक पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुई। उस वर्ष भाईजी गंगातटपर रात्रिके समय उन्मत्त अवस्थामें मधुर नृत्य करते हुए विलक्षण ढंगसे संकीर्तन कराते थे।

श्रीसेठजीका तो हर वर्ष ही भाईजीको बुलानेका मन रहता था, किन्तु भाईजी जा नहीं पाते थे। आगे चलकर यहीं गंगातटपर सत्संगी भाइयोंके निवास हेतु 'गीताभवन' नामक एक विशाल भवनका निर्माण हुआ। एक सत्संग–हॉलका भी निर्माण हुआ एवं स्नानकी सुविधाके लिये विशाल घाट भी बने। भाईजीके प्रवचन बड़े ही हृदयस्पर्शी हुआ करते थे और अध्यात्म–मार्गके पथिक इस सत्संग–सत्रकी उत्सुकता पूर्वक प्रतिक्षा करते रहते। श्रीसेठजीके देहावसानके पश्चात् इस आयोजनका सम्पूर्ण दायित्व भाईजीपर ही आ गया। उसके बाद भाईजी हर वर्ष जाते एवं दो–तीन महीने स्वर्गाश्रम ही रहते थे। 'कल्याण' का सम्पादन कार्य भी वहींसे होता था। श्रीसेठजीके सामने सत्संगका क्रम लगभग बारह–तेरह घण्टे प्रतिदिन चलता था एवं उन दिनों श्रीसेठजीके आग्रहसे भाईजी भी चार–पाँच घण्टे प्रतिदिन प्रवचन देते थे। श्रीसेठजीके पश्चात् भाईजी प्रायः एक–एक घण्टे दो समय

सत्संग कराते थे। सच्चे साधक, जो एक बार इस रसका आस्वादन कर लेते वे प्रायः हर वर्ष ही आनेका प्रयत्न करते। अन्य सन्त–महात्माओंको आमन्त्रित करके उनके प्रवचनोंकी भी व्यवस्था की जाती थी। प्रवचनके अतिरिक्त साधक भाईजीसे एकान्तमें भी अपनी–अपनी व्यक्तिगत समस्याओंका हल पूछने हेतु समयकी माँग करते रहते थे। प्रवचनके समय भी सत्संगी भाई अपने–अपने प्रश्न लिखकर भाईजीको दे देते, जिनका भाईजी समयानुसार समाधान करते थे। रात्रिमें भाईजीके निवास–स्थान (डालमिया कोठी) पर पद गायन एवं संकीर्तनका कार्यक्रम रहता और पूर्णिमा, अमावस्या एवं एकादशीको गीता–भवनमें संकीर्तनका आयोजन होता था। भाईजी सं० २०२६ (सन् १६६६) तक बराबर जाते रहे, केवल एक वर्ष स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे नहीं जा सके।

श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराजका गोरखपुर आगमन

श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज एक विख्यात बंगाली महात्मा थे। जनतामें उनको सिद्ध–पुरुष मानकर आदर किया जाता था। 'कल्याण' पढ़कर इनका आकर्षण भाईजीकी ओर हुआ। इसके पश्चात् वे 'कल्याण' के विशेषांकोंके रुचिपूर्वक अध्ययन करने लगे। सन् १६५३ के लगभग पहली बार भाईजीके दर्शन किये। इनके लेख भी 'कल्याण' में प्रकाशित होने लगे, फिर ये मौन हो गये और उसी अवधिमें गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका बंगानुवाद किया। इसी समय इनकी इच्छा गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत प्रणाम करनेकी हुई। सन् १६५५ में इन्होंने मौन त्याग दिया और भगवन्नाम–प्रचार करते हुए गोरखपुर पधारे। गीताप्रेसके द्वारपर कीचड़में ही दण्डवत प्रणाम किया और भाईजीने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखाया। भाईजीके प्रेम–व्यवहारने चिरकालके लिये इनके हृदयपर अधिकार जमा लिया पुनः मौनकी अवधिमें इन्होंने भाईजीकी भाषा टीकाकी सहायता लेकर श्रीरामचरितमानसका बंगलामें अनुवाद किया एवं उस अनुवादको भाईजी एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग–पत्रमें उन्होंने लिखा—

"अनन्त करुणा–पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान् दो अलौकिक यन्त्रोंको लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म–प्रचार, श्रीनाम–प्रचार और

शास्त्र–प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहास पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म–प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म–प्रचार किया हो—यह नहीं सुना। श्रीभगवान्‌के सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र–परमप्रेमभाजन अशेषश्रद्धास्पद 'कल्याण–सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाशय और श्रीयुत् चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर उनके प्रति अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस' का बंगानुवाद उत्सर्ग किया।"

सन् १९६४ में पुनः गोरखपुर पधारे। उस समय उनके ठहरनेकी व्यवस्था भाईजीने अपने निकट गीतावाटिकामें ही की। ये भाईजीके प्रेम–व्यवहारसे अत्यन्त प्रभावित हुए। इसके बाद इनका भाईजीके साथ बराबर पत्र–व्यवहार होता रहा। अप्रैल १९६६में ये भाईजीके निवास–स्थानपर स्वर्गाश्रम पधारे। भाईजीके स्वर्गाश्रम प्रवासका यह अन्तिम वर्ष था। उस समय भाईजीके पेटमें शूल था पर उसे भूलकर वे उनके सत्कारमें लग गये। आनन्दपूर्वक बातें की, कीर्तन–सत्संग हुआ और उन्हें पहुँचानेके लिये गंगाजीके घाटपर गये। प्रचुर मात्रामें फल देकर उन्हें विदा किया। वे जैसे ही बोटमें बैठकर रवाना हुए कि पेटका भीषण–शूल पुनः प्रकट हो गया और भाईजी बड़ी कठिनाईसे निवास–स्थानतक पहुँच सके।

इन्होंने भाईजीके लिये लिखा है—

"श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र–प्रचार एवं धर्म–प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने–आप नत हो जाता है। .... श्रीभगवान्‌के धर्म–प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान् स्वयं ही कार्य कर रहे थे। उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान् ही विद्यमान थे। श्रीपोद्दार बाबा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र–प्रचार एवं धर्म–प्रचार देहाभिमानी द्वारा नहीं हो सकता। ....सर्वहारी युगमें सनातन धर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवान्‌की इच्छासे श्रीपोद्दार बाबाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रिकाका आविर्भाव हुआ है। दुःख–शोक–रोग–ज्वाला–यन्त्रणासे सतत संतप्त पथभ्रान्त असंख्य नर–नारी 'कल्याण' की शान्त, स्निग्ध, सुशीतल छायामें विश्राम प्राप्त कर कृतार्थ हुए हैं और हो रहे हैं। आश्चर्यकी बात

है कि इस कलि-कलुष-कलुषित, शास्त्र-धर्म विवर्जित समयमें सनातन शास्त्र और धर्मका प्रचार करनेवाले 'कल्याण' की ग्राहक-संख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। ....जैसे सागरकी उपमा सागर, आकाशकी उपमा आकाश है, उसी प्रकार हमारे श्रीपोद्दार बाबाकी उपमा हमारे पोद्दार बाबा थे।"

राष्ट्रपति द्वारा गीताप्रेसके नये द्वारका उद्घाटन

जयदयालजी गोयन्दका और पोद्दारजी बहुत दिनोंसे यह सोच रहे थे कि गीताप्रेस एवं 'कल्याण' के आदर्श तथा गौरवके अनुरूप ही उसके मुख्य द्वारका निर्माण हो। सं० २०१२ में वे इस योजनाको सफल कर सके। गीताद्वारके निर्माणमें देशकी गौरवमयी स्थापत्य कलाके मूल प्रतीक प्राचीन मन्दिरोंसे प्रेरणा ली गयी। प्रवेशद्वारमें सात प्रकारके प्रतीकोंका समावेश किया गया।

(१) उपनिषदों तथा गीताके वाक्यके रूपमें शब्द-प्रतीक।

(२) वृषभ, सिंह तथा नागके रूपमें जन्तु-प्रतीक।

(३) कमलके रूपमें पुष्प-प्रतीक।

(४) स्वस्तिकके रूपमें चिन्ह-प्रतीक।

(५) कलश एवं शंखके रूपमें वस्तु-प्रतीक।

(६) शंख चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूल, डमरू, धनुष, बाण आदिके रूपमें आयुध-प्रतीक।

(७) जपमाला, पुस्तक, दीप, धूपमात्र, आरती आदिके रूपमें उपकरण-प्रतीक यथा स्थान दशार्य गये हैं।

प्रवेश-द्वारके निर्माणमें एलोरा, अजन्ता, दक्षिणेश्वरके काली मन्दिर, काशीके विश्वनाथ-मन्दिर, मथुराके द्वारकाधीश-मन्दिर, पुरीके जगन्नाथ-मन्दिर, भुवनेश्वरके लिंगराज-मन्दिर, कोणार्कके सूर्य-मन्दिर, मदुराके मीनाक्षी-मन्दिर, अमृतसरके स्वर्ण-मन्दिर, खजुराहोके महादेव-मन्दिर, साँची-स्तूप, आबूका जैन-मन्दिर, उज्जैनके महाकाल-मन्दिर, केदरनाथके शिव-मन्दिर, बोधगयाके बुद्ध-मन्दिर तथा ब्रह्मदेशके पैगोडा संज्ञक बौद्ध-मन्दिरके निर्माणमें प्रयुक्त कलाका आश्रय लिया गया है। इसके मुख्य भागके द्वितीय खण्डमें संगमरमरका बना चार घोड़ोंका रथ है जिसपर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिमा अर्जुनको कौरव सेना दिखानेकी मुद्रामें हैं।

रथकी लम्बाई ६ फुट १ इंच है, वजन लगभग ३६ मन है। मूर्ति जयपुरसे बनवाकर मँगवायी गई है।

गीताप्रेसके इस भव्य प्रवेश–द्वारका उद्‌घाटन करनेके लिये पोद्दारजीके विशेष आग्रहसे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी बैशाख शुक्ल ८, सं० २०१२ को गोरखपुर पधारे। गीताप्रेसकी ओरसे पोद्दारजीने उनका हार्दिक स्वागत किया। राष्ट्रपतिने उद्‌घाटन–भाषणमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—

'गीताद्वारके उद्‌घाटनके अवसरपर आमन्त्रितकर आपने मुझे कृतज्ञ किया है। आपने भारतवर्षके विभिन्न मन्दिरों, स्तूपों एवं देवालयोंके अंशोंको लेकर एक भव्यद्वारका निर्माण किया है। हजारों वर्षों और हजारों वर्गमीलमें निर्मित स्थापत्य नमूनोंसे चुन–चुनकर आपने एक द्वार बनाया, जिसका दर्शन करके कोई भी यात्री उन सभी इमारतोंके अंश देख सकता है।

मैं जब कहीं कोई ऐसी संस्था देखता हूँ जो इस प्रकारके विचारोंके प्रचारमें व्यावहारिक रूपमें प्रयत्नशील हो तो स्वभावतः मेरा हृदय भर आता है। इसलिये गीताप्रेसका जो काम आजतक हुआ है और हो रहा है, उसका मैं आदर करता हूँ और चाहता हूँ कि वह दिन–प्रतिदिन अधिक विस्तार पावे।

जीवनकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताकी पूर्ति आप कर रहे हैं। जिसने आपको यह प्रेरणा दी, वही आपके प्रयत्नोंको सफल करेगा, यही मेरी आशा और शुभकामना है।'

सुदर्शन सिंह 'चक्र' की प्राण–रक्षा

'कल्याण' के प्रसिद्ध लेखक श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' की भाईजीपर अपार श्रद्धा थी। एक बार भाईजीने किस प्रकार उनकी जीवन–रक्षाकी, इसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये—

सन् १९५५ की बात है। मैं कैलाश–मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमें उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ, दामोदर–कुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डसे प्रायः सब तीर्थोंकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैंने भाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबर तक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो चुकी थी। सोचा था कि

गोरखपुरसे ऐसी बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय। भैरहवामें रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। तब मैं भाईजीको प्रणाम करने उनके कमरेमें गया।

भाईजी गीतावाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमें चटाईपर बैठे कागज देख रहे थे। मैंने जाकर प्रणाम किया।

"आप जा रहे हैं ?" अचानक भाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया । वे बोले-जाइये, 'कल्याण'के विशेषांक (सत्कथांक)के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नहीं दिये गये। मैं खटूँगा, करूँगा ही किसी प्रकार।

सर्वथा अकल्पित स्थिति थी। मैंने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दे दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र पानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके सम्बन्धमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा दिया करते थे। मैंने बहुत अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष स्थिति यह थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैंने उनको इस स्वरमें बोलते हुए नहीं सुना। मेरे लिये उनका यह स्वर असह्य था। अतः मैंने कह दिया--आप ऐसे क्यों बोलते हैं ? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिए।

इतना सुनते ही उल्लास--भरे स्वरमें पूरे जोरसे भाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक दुलीचन्दजी दुजारीको पुकारकर कहा--"भाया रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।"

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नहीं गया था। मैं चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख हुआ ही।

दूसरे दिन मैं अपने नित्य-कर्मसे निवृत्त हुआ ही था कि भाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ खड़े हुए। बड़े गम्भीर स्वरमें बोले, 'सुदर्शनजी ! बड़ी दुर्घटना हो गयी।'

"क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

वे बोले--"अभी जिलाधीशका फोन था। उन्होंने पूछा था कि आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं। मैंने कह

दिया कि नहीं गये। उन्होंने बतलाया कि कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सभी यात्री मर गये।'

पीछे समाचार पत्रोंमें छपा कि आँधी–तूफान और भयानक ओलावृष्टिसे हवाईं जहाज तो नष्ट हुआ ही मोटर मार्गकी सड़क भी कई मील टूट गई। मार्गके पन्द्रह–बीस दिन पहले खुलनेकी सम्भावना नहीं थी।

सुदूर तीर्थोंकी यात्रा

गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा स्पेशल–ट्रेन श्रीसेठजीकी संरक्षतामें सं० १९९६ (सन् १९३९) में गई। उस समय भाईजीको भी साथ चलनेके लिये आग्रह किया गया था, किन्तु उस समय भाईजीके मनमें एकान्तवासका ज्वार–सा आ रहा था और वे दादरी एकान्तवासके लिये चले गये। उसके पश्चात् प्रेमीजनोंका भाईजीसे तीर्थयात्रामें चलनेका आग्रह चलता ही रहा और भाईजी उसे टालते रहे। बहुतसे लोग श्रीसेठजीसे इसके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते रहे, क्योंकि उनका विश्वास था कि श्रीसेठजीकी बातको भाईजी नहीं टालेंगे। बार–बार अनुरोध करनेपर भाईजीको विवश होकर स्वीकृति देनी पड़ी किन्तु स्वीकृति देते समय भाईजीने स्वयंको प्रबन्ध विभागसे सर्वथा अलग रहनेको कह दिया। अन्तत्वोगत्वा पौष सं० २०१२ (जनवरी, १९५६) में रवाना होनेका कार्यक्रम निश्चित हुआ। यद्यपि इस समाचारका प्रचार नहीं किया गया, अन्यथा यह समस्या हो जाती कि किसको 'हाँ' कहा जाय किसको 'ना', किन्तु फिर भी साथ जानेवालोंकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि सबको साथ ले जाना संभव नहीं था और उनसे कर–बद्ध क्षमा याचना ही करनी पड़ी। इतनेपर भी लगभग छः सौ भाई–बहिन साथमें हो ही गये। इतने लोगोंके लिये लगभग तीन महीनेका खान–पान एवं अन्य यात्राकी पूर्ण व्यवस्था करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य था।

पौष शुक्ल ६ सं० २०१२ (१९ जनवरी, १९५६) को भाईजी लगभग सौ व्यक्तियों सहित गोरखपुरसे काशी पहुँचे। काशीसे ही यात्राका शुभारम्भ होना तय हुआ था। प्रारम्भमें यात्रा पहले पुरीकी तरफसे होनेवाली थी, किन्तु उस समय उड़ीसामें उपद्रव होनेके कारण वह कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। कार्यक्रमको बदलनेके लिये लगभग सात दिन काशीमें रहना पड़ा। बहुत विचार–विमर्शके बाद यह तय हुआ कि यात्रा पहले चित्रकूट, प्रयागकी तरफसे प्रारम्भ करके उत्तरी भारतका भ्रमण पहले कर लिया जाय। उसी

अनुसार स्पशल–ट्रेनके सारे कार्यक्रममें परिवर्तन किया गया। पौष शुक्ल १४ सं० २०१२ (२६ जनवरी, १९५६) को श्रीसेठजी लगभग २२५–२५० तीर्थयात्रा करनेवालोंके साथ कलकत्तासे काशी पधारे।

साथ जानेवाले सभी यात्रियोंको एकत्रित करके श्रीसेठजी, भाईजी एवं स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने यात्रामें ध्यान रखने योग्य महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई। काशीके मुख्य पंडितों द्वारा श्रीगणपति तथा अन्य देवताओंका विधिपूर्वक वेद मन्त्रों द्वारा पूजन कराया गया। तत्पश्चात् इञ्जनकी पूजा तथा श्रीसेठजी द्वारा संचालनका मुहूर्त कराया गया। भगवन्नामके जयघोषके साथ यात्रा दि० २७ जनवरी, १९५६ को प्रारम्भ हुई। दूसरे दिन प्रातः ट्रेन करवी स्टेशनपर पहुँची, वहाँ श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें प्रातःकालकी प्रार्थना एवं संकीर्तन हुए। भाईजीने यात्रियोको पालन करनेके आवश्यक नियम सुनाये। सम्पूर्ण यात्रामें यह क्रम रहा कि प्रातःकाल जिस स्टेशनपर गाड़ी पहुँचती वहीं प्लेटफार्मपर सब यात्री एकत्रित होकर श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें प्रार्थना एवं संकीर्तन करते फिर वहाँ उन्हें आसपासके दर्शनीय स्थानोंकी जानकारी दे दी जाती। करवीसे सब लोग बस द्वारा चित्रकूट पहुँचे एवं वहाँ दो दिन रहे। सम्पूर्ण यात्राका विवरण यहाँ देना सम्भव नहीं है अतः कुछ स्थानोंका संक्षिप्त वर्णन ही दिया जा सकेगा। प्रयागमें श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन एवं श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके नेतृत्वमें विशाल जन–समूहने भाईजीका स्वागत किया तथा ब्रह्मचारीजीने भाईजीको मानपत्र दिया। अयोध्यामें स्टेशनपर प्रार्थना, संकीर्तन एवं प्रवचनके पश्चात् सभी यात्री पैदल ही कीर्तन करते हुए स्टेशनसे सरयूके नये घाटतक स्नान करने गये। फिर सभी प्रमुख मन्दिरोंके दर्शन करके सायंकाल भाईजीके स्वागतार्थ श्रीराम जन्मभूमिमें नगर–निवासियों द्वारा एक बृहत् सभाका आयोजन हुआ जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख सन्त पधारे।

भाईजी जब इन्दौर पहुँचे तो उन्हें बताया गया कि श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज उस समय ओंकारेश्वर तीर्थके आश्रममें रहकर गम्भीर योग और तपमें निरत हैं। भाईजी कुछ लोगोंके साथ उनके आश्रममें गये। वे मौनावस्थामें किसीसे मिलते नहीं थे, परन्तु भाईजीके पहुँचते ही वे तत्काल बाहर आये और तुलसीदल और पुष्पमाला देकर वहीं समाधि मग्न हो गये। बम्बईमें भाईजीका बड़ा भव्य स्वागत हुआ, क्योंकि वहाँके बहुतसे लोग भाईजीके चिरपरिचित थे। तीर्थयात्रा करते हुए भाईजीको अपने बीच
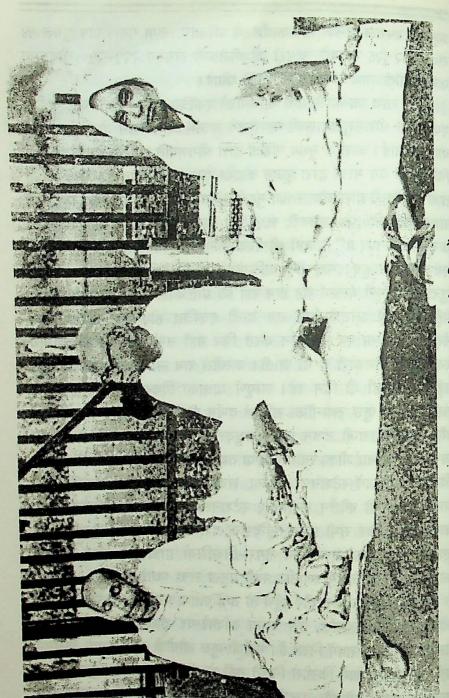
ऋषिकेश स्टेशनपर रेलकी प्रतिक्षामें

देखकर सभीकी प्रसन्नताका पार नहीं था। सत्संगके आयोजनमें भी अपार जन–समूह एकत्रित था।

भाईजी जब दक्षिण–भारत पहुँचे तो 'दक्षिण–भारत हिन्दी–प्रचार सभा' के मुखपत्र 'हिन्दी–प्रचार समाचार' के सह–सम्पादक श्रीशा० रा० शारंगपाणि उनके साथ दुभाषिया बनकर रहे। दक्षिण–भारतके प्रायः सभी प्रमुख तीर्थोंकी यात्रा की। उनमेंसे कुछ नाम हैं––तिरुपति, कालहस्ती, काञ्चीपुरम, निरुवण्णमलै, रमणाश्रम, श्रीरंगम्, मदुरै, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, श्रीविल्लपुत्तूर, तेन्काशी, कुम्भकोनम् तिरुनेल्वली, आलवार तिरुनगरी, तिरुवनतपुरम्, गुरुवयूर आदि।

प्रसंगोंको विश्लेषण करनेका भाईजीका अपना अनोखा ढंग होता था। एक उदाहरण लीजिये––भाईजी तिरुपतिसे तिरुमलै जा रहे थे। समयकी दृष्टिसे यात्रा पैदल न करके बस या कारसे की गयी थी। बसोंमें पहले सभी यात्रियोंके आरामसे बैठानेके बाद भाईजी गाड़ीमें बैठे। जहाँसे पहाड़पर पदयात्रियोंके चढ़नेके लिये सीढ़ियोंका रास्ता निकलता है उस चौककर पहुँचते ही सब गाड़ियोंको रोक लिया एवं सभी यात्री उतर गये। भक्तिमय भावुकताके साथ भाईजीने यात्रियोंको समझाया––यहाँकी विशेषता है कि यहाँ भगवान्‌के अर्चावतारके समान ही उनका विभवावतार भी महत्त्वपूर्ण एवं पूज्य माना जाता है। यह 'शेषशैल' जो वास्तवमें सात पहाड़ियोंका एक समूह है, आदिशेषका स्वरूप माना जाता है। यहाँ भगवान्‌को 'शेषशैल–शिरोमणि' कहते हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने इस पवित्र पर्वतपर पैर रखकर चढ़ना अनुचित समझा और इसलिये अपने घुटनों और हथेलियोंपर कपड़े लपेटकर उन्हींके बल चढ़कर मन्दिर पहुँचे। लेकिन हाय ! आज हम अशक्त हैं, विवश हैं। इतना कहकर थोड़ी देरके लिये भाईजी नेत्र बन्द करके ध्यानस्थ हो गये। फिर उन्होंने शेषाद्रिकी ओर दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि मस्तकपर लगायी। तीर्थोंमें भाईजीके जो प्रवचन होते थे वे साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते थे। मदुरैके मीनाक्षी मन्दिरमें आयोजित स्वागत–सभाका कार्यक्रम भी बहुत रोचक था। स्थानीय भक्त–प्रेमियोंने तमिल, संस्कृत और गुजराती भाषाके भजन सुनाये और भाईजीकी धार्मिक सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए उनको बहुत बड़ी माला पहनायी और सम्मान पत्र पढ़कर समर्पित किया। भाईजीने उत्तरमें गंभीर होकर कहा कि किसी व्यक्तिके नाम–रूपकी पूजा करके, माला

पहिनाकर गुणगान करना ठीक नहीं है। भाईजीकी असाधारण दैन्यताको देखकर वहाँके लोग चकित रह गये। स्थान–स्थानपर वहाँके वेदपाठी पण्डितों, शास्त्रज्ञोंके सामने सविनय नत–मस्तक होकर प्रणाम करते एवं उनका सस्वर वेदपाठ सुनकर अत्यन्त हर्षित होते। उनका दक्षिणा देकर सम्मान करते। वहाँके लोगोंके अनुसार भाईजीकी इस यात्रासे दक्षिण भारतमें भक्ति–प्रचारको ही नहीं, अपितु हिन्दी–प्रचारको भी बहुत बल मिला। कई स्थानोंपर वहाँके भावुक भक्त तीर्थयात्रा–ट्रेनकी परिक्रमा करते थे।

पुरी, भुवनेश्वर होते हुए भाईजी जब कलकत्ता पहुँचे तो हावड़ा स्टेशनपर बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित जन–समूहने भाईजीका स्वागत किया एवं वहाँके सत्संगके कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होकर लाभ उठाया।

सभी तीर्थोंका प्रामाणिक विवरण तैयार किया गया जिसे अगले वर्ष 'कल्याण'के विशेषांक 'तीर्थांक' के रूपमें निकाला गया।

"नहीं चाहती जाने कोई मेरी इस स्थितिकी कुछ बात"

शरीरको कँप–कँपा देनेवाली सर्दी चली गयी, शरीरको झुलसा देनेवाली ग्रीष्मका अभी पदार्पण नहीं हुआ है। प्रातःकालका समय है, मन्द समीर बह रही है। ऐसे ही सुहावने समयमें एक देवी अपने आराध्यके चित्रपटके सामने भावमग्न बैठी है। उसे न सर्दीका पता है, न गर्मीका। भावकी प्रबलतामें अश्रु रुक नहीं सके। भाव आज प्रगाढ़ होनेसे अश्रु टपकनेके स्थानपर, अश्रुधाराने कब उसके आञ्चलको भिगो दिया यह भी वह नहीं जान पायी। प्रातःकालसे बैठे–बैठे कितना समय बीत गया और भगवान् भुवन–भास्कर आकाशके मध्य आने लगे, इसका भी उसे पता नहीं लगा। उसकी स्थितिका शब्दोंमें चित्रण किया जाय तो—

पता नहीं कुछ रात–दिवसका, पता नहीं कब सन्ध्या–भोर।।

(पद–रत्नाकर / प०सं० ५०५)

एक दिनकी बात नहीं है, न जाने कितने वर्षोंसे हृदयके गुप्त–कोनेमें एक ही साध लिये बैठी है—एक बार मेरे आराध्यके दर्शन हो जायँ। आराधना यदि सर्वव्यापी भगवद्विग्रहके रूपमें हों तो यह स्थिति बहुतसे भाग्यवान् साधकोंकी हो सकती है। पर जिसके दर्शन सुलभ होनेपर भी अभीतक न हुए हों उसके हृदयकी स्थिति लिखी नहीं जा सकती। पर अन्तर्यामीसे तो कुछ

भी छिपा नहीं है और अब और प्रतिक्षा कराना उचित न समझकर उसकी व्यवस्था कर दी।

सन् १९५६ में भाईजी भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा करते हुए दक्षिण–भारतमें बेजवाड़ाके आस–पास पहुँचे। एक परिचित प्रतिष्ठित वकीलके घर मिलने गये। बातें करते हुए उन्होंने बताया कि उनके पड़ोसमें ही एक प्रौढ़ महिला दिन–रात एकान्त भजन करती है। दैवी–सम्पदासे युक्त, वे प्रायः पूजा–पाठमें ही लगी रहती है। आप पधारे हैं तो एक बार उससे अवश्य मिलें। उनके आग्रहवश भाईजी उससे मिलने गये। साथके लोगोंको बाहर बैठाकर वे अकेले ही उसके साधना–कक्षमें गये। देखा अत्यन्त सात्विक वातावरणमें एक देवी भाव–विह्वल बैठी है, सामने ठाकुरजीका विग्रह है और पासमें ही है उन्हीं भाईजीका चित्र। देवीने आँखें नहीं खोली सोचा प्रतिदिनकी भाँति प्रसाद ग्रहण करनेका कहनेके लिये कोई आया होगा। देखकर भाईजी भाव–विभोर हो गये। कुछ समय बाद बोले—'देवी ! ये चित्र किसका है ?' सिर झुकाये ही देवीने उत्तर दिया "बहुत वर्षों पूर्व मैंने इनके बारेमें कुछ पढ़ा था, तबसे मेरा इनके प्रति समर्पण भाव हो गया। बहुत प्रयत्न करनेपर बम्बईसे मुझे यह फोटो मिला। तबसे मैं इन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें पूज रही हूँ।" भाईजीने कहा—"क्या आप इन्हें जानती हैं, कभी इनसे मिली, ये कहाँ रहते हैं ?"

देवीने बताया—"मैं इनका नाम जानती हूँ पर कभी इनसे मिली नहीं हूँ। जब मैंने अपना समर्पण इन्हें कर दिया तो पता–ठिकाना जाननेकी आवश्यकता नहीं है।"

भाईजीने बड़े संकोचसे कहा—"एक बार आप ऊपर देखिये।"

बड़े लज्जा भरे नेत्रोंसे देवीने ऊपरकी ओर दृष्टि डाली और अपने आराध्यको सामने देखकर रोमाञ्चित हो गयी और भाईजीके चरणोंमें मस्तक रख दिया। कुछ देर बाद वह उठी और भाईजीके मस्तकपर चन्दनका तिलक किया, चरणोंमें चन्दन चढ़ाकर पुष्प अर्पण किये और धीरेसे बोली—"आप जा सकते हैं।"

भाईजी बोले—"देवी ! आपका परिचय मैं जान लेता।"

उत्तर मिला—"मेरा परिचय जाननेकी आपको आवश्यकता नहीं है। जो परिचय मिला है उसे भी आप कृपा करके अपने व्यक्तियोंको मत दीजियेगा, नहीं तो मेरे यहाँ भीड़ लग जायेगी।"

भाईजीने कहा—"आप मेरा पता नोट कर लें।"

देवीने कहा—"मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरे मनमें तो एक ही साध थी कि एक बार मुझे दर्शन हो जायँ, वह साध अन्तर्यामी प्रभुने बड़े विचित्र ढंगसे पूरी कर दी। अब और कुछ नहीं चाहिये, मनसे तो मैं निकट ही रहती हूँ। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय।"

यह देखकर भाईजी भाव–विह्वल हो गये और मनसे आशीर्वाद देते हुए बाहर चले आये। बहुत वर्षों बाद भाईजीने यह घटना अपने एक अन्तरंगको बतायी। बहुत आग्रह करनेपर नाम तो बता दिया—चिन्मयीदेवी, पर स्थानका नाम–पता अन्ततक नहीं बताया। पूछनेपर कह देते—वह नहीं चाहती कि जगत्का कोई व्यक्ति उसके निष्काम–मूक समर्पणको जान पाये।

एक दिन भाईजी बैठे थे, उसके भावोंकी कुछ स्मृति आ गयी और कलम चल पड़ी—

हुआ समर्पण प्रभु चरणोंमें जो कुछ था सब–मैं–मेरा।
अग–जगसे उठ गया सदाको चिर–संचित सारा डेरा।।
मेरी सारी ममताका अब रहा सिर्फ प्रभुसे सम्बन्ध।
प्रीति, प्रतीति, सगाई सबही मिटी खुल गये सारे बन्ध।।
प्रेम उन्हींमें, भाव उन्हींका, उनमें ही सारा संसार।
उनके सिवा, शेष कोई भी बचा न जिससे हो व्यवहार।।
नहीं चाहती जाने कोई मेरी इस स्थितिकी कुछ बात।
मेरे प्राणप्रियतम प्रभुसे भी यह सदा रहे अज्ञात।।
सुन्दर सुमन सरस सुरभित मृदुसे मैं नित अर्चन करती।
अति गोपन, वे जान न जायें कभी, इसी डरसे डरती।।
मेरी यह शुचि अर्चा चलती रहे सुरक्षित काल अनन्त।
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, पर इसका कभी न आये अन्त।।
इस मेरी पूजासे पाती रहूँ नित्य मैं ही आनन्द।
बढ़े निरन्तर रुचि अर्चामें, बढ़े नित्य ही परमानन्द।।
बढ़ती अर्चा ही, अर्चाका फल हो एकमात्र पावन।
नित्य निरखती रहूँ रूप मैं उनका अतिशय मनभावन।।
वे न देख पायें पर मुझको, मेरी पूजाको न कभी।
देख पायँगे वे यदि, होगा भाव–विपर्यय पूर्ण तभी।।
रह नहि पायेगा फिर मेरा यह एकांगी निर्मल भाव।

फिर तो नये–नये उपजेंगे 'प्रिय' से सुख पानेके चाव।।

(पद–रत्नाकर / पं० सं० ४७२)

ऐसे भावोंका प्रत्यक्ष आदर्श रख दिया चिन्मयीदेवीने। अनन्त वन्दन है उस देवीको और ऐसे गुप्त प्रेमियोंको।

श्रीगिरिराजकी परिक्रमा

तीर्थ–यात्राके बाद भाईजी अस्वस्थ हो गये थे। स्वास्थ्य लाभके लिये भाईजी मार्गशीर्ष कृष्ण ५ सं० २०१३ (२२ नवम्बर, १९५६) को गोरखपुरसे रवाना होकर रतनगढ़ गये। वहाँ अधिक समय एकान्तमें कमरा बन्द किये रहते थे। वहींसे माघ शुक्ल १० एवं ११ सं० २०१४ (१०–११ फरवरी, १९५७) को श्रीगिरिराजकी परिक्रमा करने गये। साथमें परिवारके सदस्योंके अतिरिक्त प्रेमीजन भी गये। दो दिनमें श्रीगिरिराजकी परिक्रमा सानन्द उत्साह पूर्वक सम्पन्न हुई। वहाँसे श्रीराधाजीके दर्शन करने बरसाना भी गये। बैशाख कृष्ण १० सं० २०१५ (१३ अप्रैल, १९५८) को रतनगढ़ लौट आये।

श्रीघनश्यामदासजी जालानका देहावसान

यद्यपि भाईजी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुए थे परन्तु श्रीघनश्यामदासजी जालानके अधिक रुग्ण हो जानेसे, श्रीसेठजीके अत्यधिक आग्रहके कारण ज्येष्ठ शुक्ल २ सं० २०१५ (२० मई, १९५८) को गोरखपुरसे रवाना होकर स्वर्गाश्रम गये। इन्होंने गीताप्रेसके उत्थानके लिये आजीवन अथक परिश्रम किया एवं जीवनपर्यन्त गीताप्रेसके मुद्रक एवं प्रकाशक बने रहे। ज्येष्ठ शुक्ल ६ सं० २०१५ (२४ मई, १९५८) को स्वर्गाश्रममें गीताभवनके गंगाघाटपर श्रीसेठजी एवं भाईजीके सन्निध्यमें संकीर्तनके मध्य इन्होंने अपना देह–त्याग किया। इनके बाद मुद्रक एवं प्रकाशककी जिम्मेवारी भी भाईजीको सौंपी गयी।

आध्यात्मिक स्थितिके संकेत

किसी भी संतके आध्यात्मिक जीवनके बारेमें कुछ भी लिखना अनाधिकार चेष्टा करना है। प्रथम तो आध्यात्मिक स्थिति स्वसंवेद्य होती है, दूसरा कोई उसे जान भी नहीं सकता। ये बातें तभी हृदयंगम हो सकती हैं जब भगवान्‌की कृपासे उस साधनावस्थामें कोई पहुँच सके। फिर भाईजीके

बारेमें कुछ शब्दबद्ध करना और भी कठिन है, क्योंकि उनके माध्यमसे भगवान्‌ने जो लीला प्रस्तुत की, वह एक उच्चकोटिके आचार्य, सन्त और व्रजभावके सर्वोच्च सन्तका एक अद्‌भुत समन्वय था, जो प्रायः देखनेमें नहीं आता। भाईजीने कभी–कभी कतिपय एकनिष्ठ प्रेमीजनोंके समक्ष कुछ संकेत किये थे, उन्हींको शब्दबद्ध करनेकी यह अनाधिकार चेष्टा मात्र है।

भाईजीकी प्रारम्भिक साधना श्रीसेठजीसे अधिक प्रभावित थी। श्रीसेठजी अधिकांश श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यान या निर्गुण–निराकारके स्वरूपका वर्णन करते थे। उसी अनुसार शिमलापालमें भाईजीने साधना प्रारम्भ की तो रवि वर्माके चित्रके आधारपर श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करने लगे और लगभग छः महीनेमें ही चलते–फिरते, उठते–बैठते श्रीविष्णुभगवान्‌का विग्रह सामने रहने लगा। इसे भाईजी कोई सिद्धि नहीं मानते थे, अभ्यासकी प्रगाढ़ता मानते थे। फिर बम्बईमें जब साधना प्रारम्भ हुई तो निर्गुण–निराकारकी उच्च स्थिति प्राप्त की और बीचमें **श्रीरामके दर्शन** हुए। फिर सं० १९८४ (सन् १९२७) में 'भगवन्नामांक' निकलनेके एक–दो महीने पहले अपने आप अव्यक्तके स्थान पर श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान होने लगा। उनकी मान्यता थी जो अव्यक्त है, वही व्यक्त है; जो निर्गुण–निराकार है, वही सगुण–साकार है। इसके पश्चात् भगवान्‌के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा होनेपर आश्विन सं० १९८४ (सितम्बर १९२७) में जसीडीहमें भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन बहुत व्यक्तियोंके सामने हुए, यह एक आध्यात्मिक जगत्‌की सुदुर्लभ घटना थी जो किसी भी तरह गुप्त नहीं रखी जा सकती थी। ये दर्शन त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे, अवतारी महाविष्णुके नहीं थे। कुछ समय बाद अवतारी महाविष्णुके दर्शन हुए। इसका रहस्य श्रीकृष्णने बादमें खोला, तब पता लगा। सं० १९८८ (सन् १९३१) में 'श्रीकृष्णांक' निकालनेकी तैयारीके समय श्रीकृष्णकी लीलाओंका गम्भीर चिन्तन, अनुशीलन हुआ। गौड़ीय सम्प्रदायके कुछ भक्तिपरक ग्रन्थोंका भी अध्ययन हुआ। फलस्वरूप भगवान्‌की लीला देखनेकी लालसाका प्रादुर्भाव हुआ। संस्कार तो बम्बईमें श्रीमद्भागवतके स्वाध्यायके समयसे ही थे। इन्हें ऐसा भान हुआ कि भगवान् कह रहे हैं—'मेरे विष्णुरूपमें तो दो ही प्रकारकी लीला होती है—अवतार लीला या वैकुण्ठकी नित्य लीला। लीला सर्वोच्च रूपमें और पूर्णरूपमें हुई है—श्रीकृष्ण स्वरूपमें। तुमको श्रीकृष्ण स्वरूपका अनुभव होने लगेगा।' उस रातको भाईजीके मनमें बड़ा आनन्द रहा और स्वप्नमें श्रीकृष्णके

दर्शन हुए। पहले गीतावक्ताके दर्शन हुए पीछे वृन्दावन विहारी श्रीकृष्णके। उसी समय ऐसा भान हुआ कि वे कह रहे हैं——जो गीतावक्ता हैं, वे ही वृन्दावन विहारी हैं। इनकी तुमपर बड़ी कृपा है। इन्होंने तुम्हें अपना लिया है। इनकी लीला अब तुम्हें देखनेको मिलेगी। दूसरे दिन भगवान् विष्णुके ध्यानके समय अपने आप वृन्दावन विहारी श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा। ध्यान होते–होते वृन्दावनकी लीलाओंके दर्शन भी होने लगे। एक बार भाईजीने बताया था कि "बाहरसे जीवनको साधारण रखनेकी प्रेरणा तो जसीडीहके बादसे ही हो गई थी किन्तु स्पष्ट आदेश तो श्रीकृष्णने ही दिया। इसीलिये आप याद करके देखेंगे तो सं० १६८४ से सं० १६८८ (सन् १६२७–३१) के मध्य जीवनमें गम्भीरता अधिक थी।" लीलाओंके दर्शन होते–होते लीलामें प्रवेश भी होने लग गया। इस सम्बन्धमें उन्होंने बताया——लीलामें प्रवेश होता है इसमें मेरी इच्छाकी प्रधानतासे नहीं होता। जब वे चाहते हैं, तब सहसा लीलामें मुझे खींचकर सम्मिलित कर लेते हैं। मेरे चाहनेसे न तो मैं ही जा सकता हूँ, न किसी दूसरेको ले जा सकता हूँ। वहाँ इस शरीरसे नहीं जा सकता। चार–चार, पाँच–पाँच घण्टे वहाँकी लीलाओंको देखनेका सुअवसर मिलता है। यह बात लगभग सं० १६६४ (सन् १६३७) की है। 'कल्याण'के सम्पादन और अन्य सेवा कार्योंमें अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी उस दिव्य लीला–राज्यमें रहते थे। फिर दादरी एकान्त सेवनके लिये गये थे, उस समय वे राधा–कृष्णकी मधुर लीलाओंमें प्रवृष्ट रहते थे। लगभग सं० १६६७ (सन् १६४०) में एक महात्माको मीराबाईके साक्षात् दर्शन हुए। उन्होंने उनसे कई प्रश्न किये और भाईजीकी स्थितिके बारेमें प्रश्न किया तो मीराबाईने उत्तर दिया कि हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है। इस बातपर पूरा विश्वास करना या न करना अपने–अपने अन्तःकरणकी स्थितिपर निर्भर है। पर भाईजीने इस स्थितिको बहुत वर्षोतक बाहरके जीवनमें प्रकट नहीं होने दिया। सं० २०१८ (सन् १६६१) के पश्चात् जब भाईजी न चाहनेपर भी घण्टों तक बाह्य–चेतना शून्य रहने लगे, जिसे 'भाव–समाधि' की संज्ञा दी गयी, तब लोगोंको किंचित् आभास होने लगा। इस स्थितिका विवेचन शब्दोंमें संभव नहीं है। नारदजीने प्रेमका स्वरूप बताया है——'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' 'मूकास्वादनवत्'। इस स्थितिका संकेत करनेके लिए 'भाव–समाधि', 'भागवती–स्थिति', 'महाभावमयी–स्थिति', 'स्वरूप–स्थिति',

'दिव्य प्रेम राज्यमें स्थिति' आदि किसी भी शब्दका व्यवहार किया जा सकता है। भाईजीको यह स्थिति संभवतः सं० १९९८ (सन् १९४१) तक प्राप्त हो गयी थी, पर इसके कुछ बाहरी लक्षण सं० २०१८ (सन् १९६१) के बाद प्रकाशमें आने लगे। यह तो भाईजीके अन्तर्राज्यकी बात थी, बाह्यमें तो भगवान्‌को उनके द्वारा अध्यात्म जगत्‌की अभूतपूर्व सेवा करानी थी इसलिये सभी प्रधान–प्रधान स्वरूपोंकी, श्रीराम, श्रीशिव, शक्ति आदिकी अनुभूति भी करायी। सं० १९९० में रतनगढ़में जब भाईजी 'शिवांक' की तैयारी कर रहे थे, तब भगवान् शंकर दिखायी दिये और देखते–देखते विष्णु हो गये और विष्णुसे फिर शिव हो गये तथा हँसते रहे दोनों रूपोंमें। इसी प्रकार जब 'शक्ति–अंक' की तैयारी कर रहे थे उन दिनों भाईजीको शक्ति–तत्त्वकी कृपा प्राप्त हुई थी। यही बात अन्य स्वरूपोंके सम्बन्धमें है। इस तरह देह तो इस लोकमें कालक्षेप करता रहा और वे स्वयं आराध्यके माधुर्य–रसमें लीन रहे।

श्रीकृष्ण–जन्मस्थान, मथुराके मन्दिरका उद्‌घाटन

श्रीराम–जन्मभूमि, अयोध्याकी भाँति मथुरामें श्रीकृष्ण–जन्मस्थानका गौरव भी लुप्तप्राय हो गया था। वहाँके प्राचीन मन्दिरको मुगल सम्राटोंने ध्वस्त कर दिया था। महामना मालवीयजीकी प्रेरणासे इसके पुनरूद्धार करनेका कार्य श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाने अपने हाथमें लिया था। परन्तु श्रीकृष्ण–जन्मस्थानके लुप्त गौरवकी पुनर्स्थापनाके लिये मन्दिर और भागवत–भवनके निर्माणकी योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करानेका श्रेय भाईजीको ही है। इसकी भूमिका बनी थी भाईजीके तीर्थयात्राके समय। जब भाईजी मथुरा पधारे तो उनके स्वागत–समारोहके समय एक सज्जनने कहा—मथुरामें प्रतिवर्ष लाखों यात्री आते हैं। ऐसा कौन है जिसका हृदय श्रीकृष्ण–जन्मभूमिकी वर्तमान दुरावस्थाको देखकर शतधा विदीर्ण न होता हो ? समारोहके अन्तमें कृतज्ञता–ज्ञापनके लिये जब भाईजी खड़े हुए तो अश्रुपूरित नेत्रों सहित बोले जन्मस्थानके प्रति जो कुछ कहा गया, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। इस निमित्त अपने क्षुद्र प्रयास भी अर्पित करनेको प्रस्तुत हूँ। शीघ्र ही दस हजार रुपये आपलोगोंकी सेवामें भेजनेका विचार है। वास्तवमें यह कार्य आपके ही कर्तव्य–पालनकी अपेक्षा करता है। इसे सुनकर उपस्थित लोगोंके हर्षका पार नहीं रहा।

गोरखपुर लौटनेपर दस हजार रुपये भाईजीने तत्काल भेज दिये।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण–जन्मस्थानपर श्रीकेशवदेव मन्दिरके निर्माणके लिये डालमिया बन्धुओंको प्रेरित किया। श्रीरामकृष्ण डालमियाने अपनी मातुश्रीकी पुण्य–स्मृतिमें केशवदेव मन्दिरका निर्माण करवाया। इस मन्दिरका उद्घाटन करनेके लिये भाईजी मथुरा गये एवं श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी सं० २०१५ (६ सितम्बर, १९५८) के दिन भाईजीके कर–कमलोंसे इस मन्दिरका उद्घाटन हुआ। उद्घाटन–महोत्सवके समय भाईजीने अपने भाषणमें कहा––'श्रीकृष्ण–जन्मभूमि उद्धार' के इस महान कार्यसे देशका मुख उज्ज्वल हुआ।

श्रीराधाबाबा द्वारा शक्तिपात

श्रीभाईजीने अपनेको छिपाये रखनेका एक और तरीका अपना रखा था। नये व्यक्तियोंके लिये वे बाबाके आगे करके अपनेको प्रकट होनेसे बचा लेते थे। एक तो हमारे देशमें आस्तिक जनताकी श्रद्धा वैसे ही गृहस्थके बजाय भगवा वस्त्रकी तरफ अधिक रहती है फिर भाईजी अपनी चेष्टा भी वैसी ही रखते थे। पिछले वर्षोंमें तो कलकत्ता आदि शहरोंमें जाते तो बाबाके दर्शनका एक समय तय कर देते। उसी समय जो भी दर्शनके लिये आते वे बाबाके पास बैठ जाते और बाबा मौनके कारण किसीसे कुछ बोलते नहीं, न आँख उठाकर देखते। भाईजी प्रणाम करनेवालेका नाम बताते रहते। नये व्यक्तिका ध्यान महात्माओंके निर्माताकी ओर न जाकर महात्माकी ओर ही जाता और भाईजीके मन चाही बात हो जाती। कई बार तो लोगोंके फोन भाईजीके पास आते कि महात्माजीके दर्शन किस समय होंगे ! प्रायः लोग समझते ये महात्मा संन्यासीके सचिवकी तरह व्यवस्था करते हैं।

इसी तरह भाईजीको किसीको विशेष चीज दिलानी होती तो बाबाके मार्फत दिला देते। प्रसंग सन् १९५९ का है। श्रीराधाष्टमीके कुछ दिन पूर्व बाबाने भाईजीसे कहा कि अमुक ५ व्यक्तियोंको श्रीराधाष्टमीपर बुला दीजिये। मैं उन लोगोंकी परीक्षा करके कुछ दूँगा। उन दिनों बाबाका मौन कड़ाईसे चल रहा था। कोई भी व्यक्ति उनके पास जा नहीं सकता था। भाईजी ही अपने साथ किसीको ले जाकर मिला सकते थे। भाईजीने उन पाँचोंमेंसे एक व्यक्तिको पत्र लिख दिया और बाबाके बताये पाँचों नाम लिखकर लिखा कि बाबाने कहा है राधाष्टमीपर इन व्यक्तियोंकी परीक्षा करके इन्हें कुछ दूँगा सो तुम पाँचोंको राधाष्टमीसे पहले पहुँच जाना

चाहिये। वे पाँचों व्यक्ति बाबाके मौनके नियमोंसे परिचित थे और प्रत्यक्षतः उनका बाबासे सीधा विशेष सम्पर्क था भी नहीं। वे कृपाकी ओर देखकर अपने सौभाग्यपर आनन्दका अनुभव करने लगे। वे लोग लिखे अनुसार कुछ पहले पहुँच गये और नियत दिन और समयपर भाईजी उन पाँचों व्यक्तियोंको लेकर बाबाकी कुटियामें गये। बाबाने क्या परीक्षा ली और क्या दिया ये तो बाबा जानें या उनके प्रियतम। पर लगभग आधा घण्टे बाद पाँचों व्यक्ति बड़ी प्रसन्न मुद्रामें कुटियासे बाहर आये। ऐसे ही एक नहीं अनेक प्रसंग हैं। जब भाईजी कोई विशेषता प्रकट होनेके प्रसंगपर बाबाको आगे करके अपनेको छिपा लेते।

श्रीकृष्णकी बाल—लीलाओंका वर्णन

वैसे तो भाईजी श्रीकृष्णकी बाल—लीलाओंका वर्णन कई बार अपने प्रवचनोंमें करते थे पर कुछ भावुक—जनोंका आग्रह था कि इन लीलाओंका विस्तृत वर्णन हो। यह आग्रह कई वर्षोंतक चलता रहा पर ऐसे सुअवसरकी प्रतीक्षा ही होती रही। अन्तत्वोगत्वा मार्गशीर्ष सं० २०१६ (दिसम्बर १९५९) से लगभग एक महीनेतक नित्य प्रातः दो घण्टे भाईजीने श्रीकृष्णकी बाल—लीलाओंका विस्तृत वर्णन करना स्वीकार किया। दूर—दूर स्थानोंसे भावुक—जन, जो इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, गोरखपुरमें एकत्रित हो गये। विभिन्न टीकाओंके आधारपर श्रीमद्भागवतके दशम—स्कन्धके पहले अध्यायसे कथा प्रारम्भ हुई। यद्यपि उन दिनों भाईजी बहुत देरतक 'भाव—समाधि' में रहने लगे थे, अतः श्रोताओंकी भीड़ देखकर उपराम हो जाते। पर जब कथा प्रारम्भकर देते तब उसीमें तल्लीन होकर सरस वर्णन करने लगते और कथा समाप्त होते ही भाईजी पुनः उपराम हो जाते। जिन लोगोंने उस रस—कथाका पान किया है, वे ही जानते हैं कि कैसी रस—वर्षा हुई उस एक महीनेमें। *

'गोविन्द—भवन' के नये भवनका शिलान्यास

'गोविन्द—भवन कार्यालय' नामसे एक न्यासकी स्थापना बहुत वर्षों पूर्व हुई थी। गोरखपुरका गीताप्रेस और स्वर्गाश्रमका गीताभवन इसी न्यास द्वारा संचालित होते हैं। कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जानेसे कलकत्तेमें 'गोविन्द—भवन'

*** टिप्पणी—इन प्रवचनोंके कैसेट बिक्रीके लिये हमारे पास उपलब्ध हैं।**

का पुराना स्थान पर्याप्त नहीं था। कई वर्षोंसे नये भवनके लिये विचार–विमर्श चल रहा था। व्यवस्थापकोंके निर्णयानुसार महात्मा गाँधी रोडपर नये भवनके निर्माण हेतु जमीन खरीदी गयी। शिलान्यासका कार्य भाईजीके हाथों करानेका निश्चय हुआ।

माघ कृष्ण १३ सं० २०१६ (२६ जनवरी, १९६०) को भाईजी गोरखपुरसे रवाना होकर कलकत्ता गये। हावड़ा स्टेशनपर सैंकड़ों व्यक्तियोंने भाईजीका हार्दिक स्वागत किया। कलकत्ता शहरसे लगभग बारह मील दूर पानीहाटीमें भाईजीके निवासकी व्यवस्था हुई। लगभग पन्द्रह दिन भाईजी वहाँ रहे। इतने दिनोंके लिये भाईजीके सत्संग–लाभका सौभाग्य बहुत वर्षों पश्चात् कलकत्ता–निवासियोंको प्राप्त हुआ था। इसी प्रवासके समय भाईजीके हाथों 'गोविन्द–भवन' के नये भवनके शिलान्यासका कार्य वैदिक विधिसे सुसम्पन्न हुआ।

शिमलापालकी पुनः यात्रा

बहुत–से प्रेमीजन भाईजीसे शिमलापाल चलनेकी प्रार्थना करते थे, जहाँ भाईजीने अपनी साधना प्रारम्भ की थी। कलकत्तासे यह स्थान निकट होनेसे आग्रह बढ़ने लगा। इसी समय एक संयोग और बन गया। बाँकुड़ामें श्रीसेठजीके आँखका ऑपरेशन होनेवाला था अतः भाईजी कलकत्तासे कुछ परिकरों सहित बाँकुड़ा गये। वहाँसे शिमलापाल लगभग चौबीस मील दूर था, अतः परिकरोंके अनुरोधपर मोटरसे सभीके साथ शिमलापालकी यात्रा की। सबसे पहले उस झोंपड़ीके सबने दर्शन किये, जहाँ भाईजी लगभग चव्वालीस वर्ष पहले रहे थे। उसके भीतर छोटेसे कमरेमें भाईजीका उन दिनोंका बंगलामें गेरूसे लिखा, 'नृत्य गोपाल' वर्तमान था। भाईजीने अतीत कालकी स्मृतियाँ सुनायी। फिर सब लोग पासमें बहनेवाली छोटी–सी नदीके दर्शन करने गये, जहाँ भाईजी उन दिनों स्नान करते थे। तत्पश्चात् वहाँके थानेपर गये जहाँ भाईजीके हाथके लिखे कागज देखे। बाँकुड़ा लौटनेसे पूर्व ग्रामवासियोंको वस्त्र, द्रव्य आदि वितरित किया गया।

उपाधियोंसे परे

उपाधियोंको प्राप्त करनेके लिये सभीके मनमें चाव रहता है। आज तो लोग उपाधि प्राप्तिके लिये कितने तरहके प्रयत्न करते हैं, खुशामद करते

हैं, पैसा भी खर्च करते हैं। उन उपाधियोंको बिना किसी प्रयत्नके भी मिलनेपर भाईजी उनसे दूर भागते थे। जीवनमें कितने प्रसंग आये जब विभिन्न संस्थाएँ, व्यक्ति उनका अभिनन्दन करना चाहते थे पर भाईजीने किसीका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

सर्वप्रथम भाईजीको 'राय साहब' की पदवीका प्रस्ताव मिला। इसके प्रस्तावक थे गोरखपुरके तत्कालीन कलेक्टर पेडले साहब और नगर पालिकाके अध्यक्ष बाबू आद्याप्रसादजी। दोनों ही भाईजीकी सेवाओंसे अभिभूत थे। भाईजीने हाथ जोड़कर क्षमा माँग ली—"मैं इसके लायक नहीं हूँ।" दोनोंसे ही भाईजीका बड़ा स्नेहका सम्बन्ध था अतः वे उनके मनोभावोंको समझ गये और मान गये।

इसके बाद सं० १९९१ (सन् १९३५) की वर्षा ऋतुमें गोरखपुरके आसपासके क्षेत्रोंमें भयंकर बाढ़ आई। गाँव–के–गाँव पानीमें डूब गये और चारों तरफ त्राहि–त्राहि हो गई। भाईजी स्वयं गीताप्रेसके कर्मचारियों सहित तन–मनसे सहायता करनेमें लग गये। नावों द्वारा स्वयं जाकर गाँवोंमें अनाज–वस्त्र आदि बाँटते थे। ६५०० व्यक्तियोंको प्रतिदिन भोजन कराया जाता था। इतनी सेवामें खर्चका अनुमान लगाया ही जा सकता है। भाईजीकी कार्य–कुशलता एवं तत्परता देखकर तत्कालीन कमिश्नर आर० सी० होबर्ट साहबने भाईजीको धन्यवादके पत्र तथा तार दिये और 'राय बहादुर' की उपाधि देनी चाही। भाईजीने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया।

थोड़े समय बाद संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के गवर्नर सर हैरी हेगने "सर" (नाइट हुड) का जाल फेंका। भाईजीके अनुरोध करनेपर वे भी मान गये। गवर्नर साहबने उसपर प्रसन्नता प्रकट की। भाईजीसे सर हैरी हेगकी मैत्री थी। वे जब मिले तो खुला सम्बन्ध होनेके कारण बिना किसी झिझकके भाईजीने उनसे पूछा—आप यह उपाधि देकर क्या समझते हैं। उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—"कुत्तेके गलेमें फंदा डालते हैं।" ....वे अपना कथन पूरा कर ही नहीं पाये थे कि भाईजी बीचमें ही बोल उठे—"फिर आप मेरे गलेमें पट्टा डाल रहे थे!" गवर्नर साहब हँसकर बोले—आपने अस्वीकार कर दिया तब यह कहते हैं। स्वीकार कर लेते तो हम सम्मान करते, आपको धन्यवाद देते कि आपने इसे स्वीकार कर लिया।

इसके बाद सबसे बड़ा प्रलोभन आया "भारत–रत्न" की उपाधि ग्रहणके

लिये। सन् १९५५ की बात है। भारतके राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी ध र्म-ग्रन्थों तथा धार्मिक साहित्यके अनन्य प्रचारक तथा देशके स्वाधीनता संग्राम एवं धार्मिक जागरण अभियानके अनूठे योगदानके लिये भाईजीको 'भारत-रत्न'से अलंकृत करना चाहते थे। जो उस समय तक बहुत ही कम व्यक्तियोंको प्रदान की गयी थी। राजेन्द्र बाबूने तत्कालीन भारत सरकारके गृहमन्त्री पं० गोविन्दबल्लभ पंतको भाईजीसे स्वीकृति लेनेका दायित्व सौंपा। वे गोरखपुर पधारे एवं भाईजीसे मिले। वे बड़ी आत्मीयतापूर्वक बातें करते हुए भाईजीकी कलम हाथमें लेकर जेबसे एक पत्र निकाला और उसपर स्वीकृतिका हस्ताक्षर करनेका निवेदन किया। पत्रमें 'भारत रत्न'की उपाधिका प्रस्ताव था। फिर बोले--'यह कलम हम प्रसाद रूपमें ले जायँ।' भाईजीने कहा इसमें पूछनेकी क्या बात है ? पर स्वीकृतिकी असहमति व्यक्त की। भाईजीने कहा--राजेन्द्रबाबूके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदरका भाव है किन्तु उनका यह अनुरोध मैं स्वीकार नहीं कर पाऊँगा। भाईजीके अन्तर्हृदयकी व्यथा देखकर पंतजीने चुपचाप कागज जेबमें डाल लिया। दिल्ली लौटकर पंतजीने सारी बातें राष्ट्रपतिको बताई। राजेन्द्रबाबू इतना ही बोले कि इतनी कठिनाईसे तो मैंने जवाहरलालसे स्वीकृति ली थी। खैर।

भारतके गृहमन्त्री श्रीगोविन्दबल्लभ पंतको दिव्य अनुभूति

इस घटनाके कुछ दिनों बाद गृहमन्त्री श्रीपंतको भाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति हुई। उन्होंने अपने स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कारकी बातें विस्तारसे भाईजीको पत्रमें लिखी। उन्होंने लिखा आप इतने महान् एवं महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या सारी दुनियाको आपपर गर्व होना चाहिये। साथ ही अपने पत्रको जला देनेका अनुरोध किया। भाईजीने उनकी इच्छानुसार पत्रको जला दिया। उस पत्रका भाईजीने उत्तर दिया वह प्रस्तुत किया जा रहा है—

माननीय श्रीपन्तजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपापत्र मिला। आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये, यह आनन्दकी बात है। आपके नये ढंगके पत्रको पढ़कर बड़ा आश्चर्य हो

रहा है। पता नहीं, भगवान्‌के मंगलमय विधानसे क्या होनेवाला है ?

आपने जो स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेकी बात लिखी है, वह मेरी समझमें तो आयी नहीं। हाँ, आपके अज्ञात मनके किन्हीं संस्कारके ये चित्र हो सकते हैं। मेरे बाबत आपने जो-कुछ देखा-लिखा, उसके सम्बन्धमें तो इतना कह सकता हूँ कि—मैं न योगी हूँ, न सिद्ध महापुरुष हूँ, न पहुँचा हुआ महात्मा हूँ, न किसीको दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ करनेकी या वरदान देनेकी ही मुझमें शक्ति है। मैं साधारण मनुष्य हूँ, मुझमें कमजोरियाँ भरी पड़ी हैं। भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मुझपर अनन्त है, इसमें मेरा विश्वास है। मुझे इस पत्रसे पहले आपके स्वप्न तथा जाग्रतमें चमत्कार देखनेका कुछ भी पता नहीं था। अतएव मैं क्या कहूँ ? अवश्य ही आपके निकट भविष्यमें देहावसानकी जो सूचना इसमें मिलती है, उसमें मुझे चिन्ता हो रही है। आप उचित समझें तो स्वयं मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप कीजिये और किसी विश्वासी शिवभक्तके द्वारा सवा लाख जप करा दीजिये। मैं यह जानता हूँ कि आप आस्तिक हैं। भगवान्‌में और शास्त्रमें आपका विश्वास है। आपने लिखा—'जवाहरलाल भी, ऊपरसे कुछ भी कहे, आस्तिक हैं', सो ठीक है, उनके बारेमें मैं भी यही मानता हूँ।

आपने मेरे लिये लिखा कि—आप इतने महान् हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपको, महत्त्वको, न समझकर ही आपको 'भारत-रत्न' की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने इसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे बहुत-बहुत ऊँचे स्तरके हैं, मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ। आपके इन शब्दोंको पढ़कर मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। पता नहीं आपने किस प्रेरणासे यह सब लिखा है। मेरे तो आप सदा ही पूज्य हैं। मैं जैसा पहले था, वैसा ही अब हूँ, जरा भी नहीं बदला हूँ। आप सदा मुझपर स्नेह करते आये हैं और मुझे अपना मानते रहे हैं। मैं चाहता हूँ, वैसा ही स्नेह करते रहें और अपना मानते रहें। मैं आपकी श्रद्धा नहीं चाहता, कृपा और प्रीति चाहता हूँ, स्नेह चाहता हूँ। मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिखें। आपके आदेशानुसार पत्र जला दिया है। आप भी मेरे इस पत्रको गुप्त ही रखियेगा।

शेष भगवत्कृपा।

आपका—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीराधाष्टमी–महामहोत्सव

वैसे तो भाईजीके यहाँ प्रायः सभी अवतारोंके प्राकट्य–उत्सव मनाये जाते थे, जैसे––नृसिंह–चतुर्दशी, वामन–द्वादशी, राम–नवमी, जानकी–नवमी आदि, परन्तु श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीके उत्सव विशेष रूपसे मनाये जाते थे। इनमें भी श्रीराधाष्टमीका स्थान सर्वोपरि रहा। राधाष्टमीको महोत्सव रूपमें मनानेका प्रचार विशेषतया भाईजीके द्वारा ही हुआ। बरसानेमें तो यह उत्सव मनाया ही जाता था पर अन्य स्थानोंमें इसका अधिक प्रचार नहीं था। नित्यलीलालीन होनेके लगभग तीस वर्ष पूर्वसे इसका महोत्सव रूप प्रारम्भ हुआ। धीरे–धीरे विस्तार होने लगा एवं बाहरसे सम्मिलित होनेके लिये प्रेमीजन आने लगे। तीर्थ यात्राके बाद सं० २०१२ से इसका रूप बहुत विशाल हो गया और यह महोत्सव, एक साधनाका अमर बोधिवृक्ष हो गया। इसकी सघन छायामें सहस्रों नर–नारी आश्रय पाकर शान्तिका अनुभव करने लगे। जो व्यक्ति एक बार इसमें सम्मिलित हो गया उसे दुबारा आनेके लिये किसीको कहना नहीं पड़ता।

महोत्सवके लगभग एक मास पूर्वसे इसकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती। चित्रकार, राजमिस्त्री, बढ़ई सब दत्तचित्त होकर कार्यमें जुट पड़ते। दो–तीन दिन पूर्वसे ही बाहरसे महानुभावोंके समूह पधारने लगते। सभीके आवासकी व्यवस्था भाईजी स्वयं सँभालते। सैंकड़ों लोग बाहरसे पधारकर, 'राधा–परिवार'के सदस्य होनेका अनुभव करते। प्रातः एवं सायंकाल पद–गायन, संकीर्तन एवं प्रवचनका संचालन भाईजी स्वयं करते। लोग आनन्दमें डूबे रहते।

भाद्रपद शुक्ल ८ को महोत्सवका प्रारम्भ प्रातः साढ़े चार बजे शहनाईवादनसे होता। उसके पश्चात् साढ़े पाँच बजेसे प्रभात–फेरी प्रारम्भ होती। लोग भाव–विभोर नृत्य करते हुए ऊपर भाईजीके पास जाते एवं भाईजी भी बाहर छतपर आ जाते। लगभग साढ़े आठ बजे विशाल पंडालमें गरिमाके मूर्तिमान रूप भाईजी आकर बैठ जाते। पंडालमें सर्वप्रथम भाईजीका प्रवचन होता। तदुपरान्त भाईजी कुटियासे बाबाको ले आते। दोनों मंचपर विराजमान हो जाते। बाबा भावराज्यमें स्थित रहते। दिनभर पदगायन, संकीर्तन, प्रवचन आदिका क्रम चलता रहता। दिनमें लगभग बारह बजे सभी लोग आँखें बन्द किये पाँच मिनट जन्मकी प्रतीक्षा करते और जन्मके समय शंख, घण्टा, घड़ियालके स्वरसे दिशायें

पू० श्रीभाईजी एवं पू० माँ श्रीराधाष्टमी पूजन करते हुए

श्रीराधाष्टमी पंड़ालमें पू० श्रीभाईजी एवं पू० श्रीराधाबाबा

निनादित हो उठती। लगभग चार बजे कार्यक्रमका समापन होता, फिर प्रसाद–वितरण रात्रिमें विशिष्ट विद्वानों, संत–महात्माओंके प्रवचनोंके उपरान्त श्रीभाईजीका विशेष प्रवचन होता था। रात्रिमें भावुक भक्तों द्वारा जागरण होता, जिसमें संकीर्तन और पद–गायन होते। दूसरे दिन दधिकर्दमोत्सव होता, जिसमें मनों दहीके साथ हरिद्रा, केसर, कपूर, इत्र, गुलाबजल आदि मिलाकर दधिकीच तैयार किया जाता जिसे श्रीराधाकुमारीको अर्पण करनेके पश्चात् उद्दाम–कीर्तनके समय सभीपर उछाला जाता––सभी रसमें सरोबार हो जाते। बादमें बधाईके पदोंके पश्चात् भाईजीका समापन प्रवचन होता, जिसकी प्रतीक्षा उपस्थित समूह करता रहता। वे कहते––अब यह उत्सव सम्पन्न हो रहा है––समाप्त नहीं, समाप्त तो यह कभी होता ही नहीं––यह तो नित्य चलता रहता है। आजके दिन हम कामना करें––हमें भी श्रीराधाजीकी कृपाका एक सीकर प्राप्त हो जाय। आनेवाले सब कष्ट उठाकर आये हैं, उनका स्नेह है, कृपा है, धन्यवाद किसे दूँ ? सभी तो अपने हैं।

इस दो दिनोंके आनन्दका चित्र, शब्दोंके द्वारा प्रस्तुत करना असम्भव है। जो इसमें सम्मिलित हुए हैं, वे ही इसका अनुभव कर सके हैं। किसको भाव राज्यमें क्या मिलता था यह वर्णनका विषय नहीं है। इसका प्रारम्भ एक विशेष उद्देश्यसे हुआ था और उस उद्देश्यकी पूर्ति कहाँतक हुई––इसका निर्णय भी वे ही कर सकते हैं। भाईजीके नित्यलीलालीन हो जानेके पश्चात महोत्सव आज भी उसी रूपमें गीतावाटिकामें मनाया जाता है और भाईजीकी उपस्थितिका अनुभव कतिपय भाग्यशाली भक्तोंको इस अवसरपर होता है। अब यह महोत्सव और भी कई स्थानोंपर मनाया जाने लगा है।

श्रीराधाष्टमी–महोत्सवके उद्दाम नाम–संकीर्तनमें सम्मिलित होनेका अद्भुत–चमत्कार

यह घटना सं० २०१८ (सन् १९६१) की है। हमलोग लगभग ३०–३५ व्यक्ति कलकत्तेसे राधाष्टमी महोत्सवमें सम्मिलित होने जा रहे था। हमारे साथ एक लड़का था जिसे रीढ़की हड्डीमें बोन टी०बी० होनेके कारण एक लोहे और चमड़ेका पट्टा हर समय पीठपर बाँधना पड़ता था। उसके हटानेपर बिना किसी सहारेके वह न बैठ सकता, न खड़ा हो सकता था। रास्तेमें काशीमें सब लोगोंने गंगाजीमें स्नान किया तो उसकी अत्यधिक

इच्छा होनेसे दो व्यक्तियोंने सावधानी पूर्वक उसे पकड़कर गंगाजीमें स्नान करवाया। जिस दिन ये लोग गोरखपुर पहुँचे, रात्रिके प्रवचनमें भाईजीने कहा कि मुझे किसी विश्वस्त व्यक्तिने बताया है कि राधाष्टमीका महोत्सव देखनेके लिये श्रीकृष्ण ७–८ दिनोंसे यहाँ घूम रहे हैं एवं ३–४ दिन और घूमेंगे। किसीकी तीव्र उत्कण्ठा हो तो उसे दर्शन भी दे सकते हैं। इस लड़केकी उत्कंण्ठा कलकत्तेसे ही थी और इसीलिये महोत्सवकी विशेषता सुनकर पहली बार गोरखपुर आया था।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके दूसरे दिन सदाकी भाँति उद्दाम–नाम–संकीर्तन हो रहा था। यह लड़का भी पट्टा बाँधे ही बड़ी मस्तीसे नाचते हुए "राधे–राधे" का संकीर्तन कर रहा था। बीचमें ही वह बेहोश होकर गिर गया। लोगोंने उसके साथियोंसे कहा तो वे लोग उसे उठाकर पंडालके पीछे ले गये और एक स्थानपर लिटा दिया। कुछ लोग डाक्टरको बुलाने गये, कुछ लोग भाईजीको। भाईजीने कहा——कोई बात नहीं। उसे बाह्य–ज्ञान सर्वथा नहीं था पर जीभसे "राधे–राधे" का उच्चारण हो रहा था। थोड़ी देर बाद भाईजी आये और उसके कानमें बोले——देखा, मैं आ गया हूँ। हम लोगोंने उसे बैठा दिया। उसने भाईजीके चरण पकड़ लिये। भाईजीने कहा——उठो, तुम्हें विशेष वस्तु प्राप्त हो गयी है। फिर हमलोगोंको कहा——इसे पंडालसे बाहर नहीं लाना चाहिये था। डाक्टरकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसका हाथ पकड़कर भाईजी उसे पुनः पंडालमें ले आये। उसके निरन्तर अश्रुपात हो रहा था और भाईजीके चरण पकड़कर वह बैठ गया। फिर भाईजीकी गोदमें अपना सिर रख दिया। भाईजीने उसके कानमें एक–दो बार कुछ बात कही और गद्‌गद् होकर अपने गलेकी तुलसीकी माला उसे पहना दी। फिर प्रवचनमें बोले——यह लड़का अभी बेहोश था। इसे मैंने अभी पूछा नहीं है पर मेरा विश्वास है इसे विशेष अनुभूति हुई है। कोई चाहे तो इससे पूछ सकता है। कौन अधिकारी है इसे कौन जानता है ? इतना कहते–कहते भाईजी गद्‌गद् हो गये और चुप हो गये। इसके पश्चात् लगभग ४० घण्टे तक वह लड़का अर्ध–चेतनामें रहा।

उसे विशेष–अनुभूतिकी बात तो वह जाने पर यह तो हम सबने अपनी आँखोंसे देखा कि जो बिना पट्टेके बैठ भी नहीं सकता था, वह इस घटनाके बाद बिना पट्टेके अच्छी तरह घूमने लगा। उसके साथ आनेवालोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था। अन्तमें पट्टा गोरखपुरमें ही छोड़कर वह लौट

गया। पता नहीं उसकी टी०बी० हठात् कहाँ चली गयी ?

संकल्प–शक्तिका चमत्कार

श्रीभाईजी कई बार अपनी संकल्प–शक्तिसे अनहोनी लगने वाली बातें सहज संभव कर देते थे। पर उन्होंने ऐसे प्रसंगोंको सर्वदा गुप्त रखनेका प्रयास किया। कभी–कभी किसी कारणवश कोई प्रसंग प्रकट हो जाता था। एक ऐसा ही प्रसंग यहाँ प्रस्तुत है––

वृन्दावनके श्रीघनश्यामजी शर्मा उस समय कलकत्ता गये हुए थे। पहले ये रासलीलामें ठाकुर बनते थे और उसी समयसे पू० बाबाके अत्यन्त स्नेहपात्र बन गये थे। इसीलिये सब लोग इन्हें ठाकुरजी ही कहते हैं। बाबाने इन्हें राधाष्टमीपर गोरखपुर आनेका नियम दिला रखा था। कलकत्तेमें इनकी माताजी रुग्ण हो गयी इसलिये उन्हें सँभालनेके लिये इनका कलकत्ता रहना जरूरी था। बात सन् १९५९ की है और श्रीराधाष्टमी निकट आ गई थी। इनका मन राधाष्टमीपर गोरखपुर पहुँचनेका था उधर माताजीको सँभालने कलकत्ते रहना जरूरी था। इसी परिस्थितिमें उन्होंने भाईजीको पत्र लिखा कि इस विवशताके कारण मैं राधाष्टमीपर गोरखपुर नहीं पहुँच सकूँगा। पत्र पहुँचा राधाष्टमीसे दो दिन पूर्व ललिताषष्ठीको। भाईजीने सारी बातें राधाबाबाको बताई। उन दिनों बाबा मौन थे एवं केवल श्रीभाईजीसे ही बात करते थे। बाबाने उन्हें कहा––ठाकुरका राधाष्टमीपर आना आवश्यक है। उसके नहीं आनेसे मेरा खेल बिगड़ जायगा। अब समय भी नहीं है कि उसे संदेश भेजा जा सके। अतः आप अपनी संकल्प–शक्तिसे उसे बुलाइये।

भाईजीने बाबाकी बात सुन ली और बिना कुछ उत्तर दिये अपने कमरेमें लौट आये। भाईजीने कैसे संकल्प–शक्तिका प्रयोग किया ये तो भाईजी ही जानें पर उसी दिन बिना रिजर्वेशनकी व्यवस्था हुए वे गोरखपुर पहुँचनेके लिये ट्रेनमें बैठ गये। गोरखपुर पहुँचकर वे सीधे भाईजीके पास गये। प्रणाम करनेपर भाईजी मुसकुराते हुए बोले––तुमने तो लिखा था मैं राधाष्टमीपर पहुँच नहीं सकूँगा, अब कैसे पहुँच गये ? वे इतना ही बोल सके कि परिस्थिति तो आने लायक नहीं थी पर आपने खींच लिया। तब भाईजीने स्नेहवश सारी बातें बताई और कहा स्नानादि पीछे करना, पहले चलो मेरे साथ बाबासे मिल लो। कुटियामें जाकर भाईजीने कहा––बाबा !

आपका ठाकुर आ गया। बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन दिनों भाईजी श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर गानेके लिये प्रतिवर्ष कुछ नये पदोंकी रचना करते थे। उन्हीं पदोंको श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ गानेके लिये बाबाने इन्हें बुलाया था। और श्रीभाईजीने अपनी संकल्प–शक्तिसे क्या–क्या किया इसे वे ही जानें।

पुरी और नवद्वीपकी यात्रा

कुछ प्रेमीजनोंकी भाईजीके साथ पुरी एवं नवद्वीपकी यात्रा करनेकी हार्दिक अभिलाषा थी। कई बार ऐसा कार्यक्रम बना किन्तु किसी–न–किसी कारणवश स्थगित होता रहा। कलकत्तेके कुछ भावुकजन भी इसके लिये बराबर आग्रह करते थे। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि फाल्गुन सं० २०१८ (मार्च १९६२) में श्रीमोहनलालजी गोयन्दकाकी पुत्रीके विवाहमें जब कलकत्ता जानेका कार्यक्रम बने, तब वहींसे नवद्वीप एवं पुरीकी यात्राकी जाय। फाल्गुन कृष्ण १४ सं० २०१८ (५ मार्च, १९६२) को भाईजीने अपने परिकरोंके साथ गोरखपुरसे रात्रिमें बनारसके लिये प्रस्थान किया। अगले दिन वहाँसे वायुयान द्वारा कलकत्ता पहुँचे। कलकत्तेमें शहरसे दूर पानीहाटामें भाईजीके निवासकी व्यवस्था हुई। भाईजी जहाँ जाते वहीं सत्संगके कार्यक्रम अवश्य आयोजित होते। विवाहके कार्य सम्पन्न होनेके पश्चात् फाल्गुन शुक्ल ८ सं० २०१८ (१३ मार्च, १९६२) को रात्रिमें कलकत्तेसे पुरीके लिये प्रस्थान किया। साथमें लगभग दो सौ व्यक्ति हो गये थे। वहाँ भाईजी सपरिवार बाँगड़ोंके स्थानमें ठहरे एवं सभी लोग दूसरी धर्मशालाओंमें। दिनमें भाईजीके साथ सभीने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके दर्शन किये एवं मन्दिरके प्रांगणमें ही सुमधुर संकीर्तन हुआ। संकीर्तनके समय वहीं भाईजीकी बाह्य–चेतना लुप्त हो गयी। संकीर्तन, पद–गायनके पश्चात् बहुत चेष्टा करनेपर भाईजीको बाह्य ज्ञान हुआ। सायंकाल सब लोगोंने भाईजीके साथ समुद्रमें स्नान किया। दूसरे दिन सब लोगोंने साक्षी गोपाल एवं भुवनेश्वरकी यात्रा की। वहाँसे कलकत्ता लौटकर कुछ दिन पश्चात नवद्वीपकी यात्रा सम्पन्न की।

श्रीदूलीचन्दजी दुजारीकी प्राण–रक्षा

श्रीदूलीचन्दजी अपनी शिक्षा समाप्त कर सं० १९९० (सन् १९३३) में भाईजीके पास काम करनेके लिये आ गये थे। श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके ये

रिश्तेमें भतीजे थे एवं उनके कहनेसे ही भाईजीकी सेवामें आये थे। तबसे ये निरन्तर भाईजीकी सेवामें ही रहे। अपनी सेवाकी निष्ठा एवं योग्यताके कारण कुछ ही वर्षोंमें ये भाईजीके अपरिहार्य परिकर हो गये। दो–तीन व्यक्तियोंका कार्य ये अकेले सम्भालते थे। ये भाईजीके परिवारके सदस्यकी तरह हो गये थे।

४ अप्रैल, १९६२ को रात्रिमें चोर इनके घरमें घुस गये और इनको बुरी तरहसे मारा। चोटसे इनका सिर फट गया एवं सारा शरीर रक्तसे लथपथ हो गया। दूलीचन्दजी सर्वथा बेहोश एवं मृतप्राय हो गये। उनको तुरंत अस्पताल ले जाया गया एवं सर्वोत्तम चिकित्साकी व्यवस्था की गयी। भाईजी स्वयं अस्पताल जाते एवं घंटो उनके पास बैठे रहते। सेवाकी पूर्ण व्यवस्थाकी गयी थी। पर्याप्त चिकित्साके पश्चात् भी उन्हें पूरा होश नहीं आया एवं १६ अप्रैल सन् १९६२ को इनकी हालत चिन्ताजनक हो गयी। उपचार करनेवाले डाक्टर भी निराश–से हो गये। प्रतीत होने लगा कि मृत्युके साथ अन्तिम संघर्ष चल रहा है एवं बचनेकी आशा क्षीण हो गयी। भाईजीको इसकी सूचना दी गयी। अब इनको बचानेका और कोई उपाय नहीं देखकर, सबकी दृष्टि भाईजीकी ओर लगी थी। परिवारवाले भाईजीसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना करने लगे। अन्तमें भाईजीने सभीको कमरेसे बाहर जानेको कहा और कमरा बन्द कर लिया। कमरेमें अन्दर भाईजीने क्या किया, इसे तो वे ही जानें, पर इसके पश्चात् ही लोगोंने अस्पतालमें देखा कि दूलीचन्दजीकी हालतमें आशातीत सुधार हो गया। दिन–प्रति–दिन उनकी हालत सुधरने लगी। थोड़े ही दिनों बाद वे स्वस्थ होकर घर लौट आये। यद्यपि चोटके कारण शरीर पूर्ववत् नहीं हो सका फिर भी वे यथा–शक्ति भाईजीकी सेवा करते रहे।

इसी तरह श्रीदिलीपकुमारजी भरतियाकी भी भाईजीने प्राण–रक्षा की, जब उनके दूसरी बार ऑपरेशनके समय डाक्टर सर्वथा निराश हो गये थे।

भागवत–भवनका शिलान्यास

वाराणसीके मानस मन्दिरके आधारपर ही भागवत–भवनके निर्माण कार्यपर कई दिनोंसे विचार हो रहा था, जिसमें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराणके अठारह हजार श्लोकोंको संगमरमरके पत्थरपर खुदवाकर दिवालोंपर लगवाया जाय। कई स्थानोंके सुझाव आये, पर अन्तमें

श्रीकृष्ण–जन्मस्थान, मथुरामें ही भागवत–भवन बनवानेकी विशाल योजना तय की गयी। भागवत–भवनका शिलान्यास माघ शुक्ल १० सं० २०२१ (११ फरवरी, १९६५) को होना निश्चित हुआ। इसी निमित्तसे भाईजी गोरखपुरसे रवाना होकर माघ शुक्ल ७ सं० २०२१ (८ फरवरी, १९६५) को मथुरा पहुँचे। लगभग डेढ़–दो सौकी संख्यामें परिकर मण्डल गोरखपुर, लखनऊ, कानपुर आदि स्थानोंसे साथ हो गया। मथुरा स्टेशनपर संत–समुदाय एवं संभ्रान्त नागरिकोंने भाईजीका भव्य स्वागत किया। पुष्प–मालाओंसे भाईजी लद–से गये।

उत्सवकी जोरोंसे तैयारी की गयी। विभिन्न प्रान्तोंसे संभ्रान्त अतिथि पधारे। विद्युत–प्रकाशसे सारा स्थान जगमगा रहा था। श्रीकृष्ण–चबूतरेके समक्ष विशाल पण्डालमें लगभग २५० विद्वान् श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायण कर रहे थे क्या अनोखा दृश्य रहा होगा जब २५० कंठ एक स्वरसे पाठ कर रहे होंगे। मथुराके वृद्धजनोंने कहा—'न भूतो न भविष्यति'। इसके अतिरिक्त व्रज–विख्यात पूज्यपाद श्रीनित्यानन्दजी भट्ट द्वारा श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथाका आयोजन हुआ।

माघ शुक्ल १० सं० २०२१ (११ फरवरी, १९६५) को भाईजी श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर पधारे। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा देवी–देवताओंका पूजन करवाया गया। इसके पश्चात् शिलान्यासके लिये लगभग बारह–तेरह फीट गड्ढा खोदा गया था। सीढ़ियोंसे नीचे उतरनेकी व्यवस्था थी। भाईजी धर्मपत्नी सहित नीचे उतरे और आसनपर बैठ गये। विधिपूर्वक श्रीगणेशजी, श्रीवास्तुदेवता आदिके पूजनका कार्य लगभग एक घण्टेतक हुआ। पूजनके बाद भाईजीने भागवत–भवनके नींवकी ईंटे रक्खीं एवं उनपर चाँदीकी करनीसे गारा लगाया। भगवन्नामकी जय–जयकार गूँजने लगी। दूसरे दिन उत्तर भारतके प्रमुख दैनिक समाचार–पत्रोंमें इसका विवरण फोटो सहित छपा। इस अवसरपर भाईजीने बड़ा जोशीला भाषण दिया। उसका कुछ अंश यह है—

"लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व अत्याचारी औरंगजेबके द्वारा मन्दिरके ध्वंस किये जानेके बाद यही पहला अवसर है, जब इस पुण्य–भूमिमें व्रजके विद्वानोंद्वारा श्रीमद्भागवतका मंगल–पारायण हो रहा है। ....आज राष्ट्रीयताके नामपर जातिवाद, भाषावाद और प्रान्तवाद चल रहे हैं। अधिकारका भूखा नेतृत्व बुरी तरह झगड़ रहा है एवं निरीह विद्यार्थी एवं जनताको

भड़काकर उनके द्वारा देशको लजानेवाले उपद्रव यत्र–तत्र करवाये जा रहे हैं। हम एक ही ईश्वरको माननेवाले, एक ही भारतमें रहनेवाले एक–दूसरेपर घृणित प्रहार कर रहे हैं। यह हमारे लिये बड़ी ही अशोभनीय और दुर्भाग्यकी बात है। ....आज हमारा देश स्वतंत्र है, गणराज्य है। हिन्दू–मुसलमानका कोई प्रश्न नहीं। इस अवस्थामें बर्बरता पूर्ण आक्रमणों द्वारा जिन मन्दिरोंको, धार्मिक स्थानोंको भ्रष्ट करके छीन लिया गया था; हमारे आजके मुसलमान भाइयोंका यह कर्तव्य है कि वे हिन्दुओंके उन पवित्र स्थानोंको बड़े प्रेमभावसे लौटा दें। ....इसमें उनका कल्याण है, हिन्दुओंका कल्याण है और देशका भी कल्याण है। वे मानेंगे या नहीं, भगवान् जानें पर यदि स्वेच्छासे न मानेंगे तो भगवान् और काल उन्हें मनवा लेगा, आज चाहे न मानें। ....धनिकोंको भी खुले हृदयसे धन देना चाहिये। जीवन किसीका स्थायी रहेगा नहीं, धन किसीका बना रहेगा नहीं और कौन जानता है ऐसा शुभ अवसर फिर कभी आयेगा या नहीं ? अतः पावन कार्यमें जितना सहयोग दिया जा सके देना चाहिये।"

भाईजी जितने दिन वहाँ रहे, मथुरा–वृन्दावनके सैकड़ों ब्राह्मणोंको दक्षिणा भेंट दी, असहाय और आर्त्तजनोंकी वस्त्र–धनसे सहायता की गयी, बहुत–सी संस्थाओंको दान दिया गया। सन्तोंकी सेवा की गयी। बरसाना–गोवर्धन आदि स्थानोंकी परिवार–परिकरों सहित यात्रा की गयी।

वृन्दावन नगरपालिकाकी ओरसे भाईजीका परम रसिक भक्त, भारतीय संस्कृतिके प्रतीक, धर्मके महान् रक्षक, आध्यात्मिक प्रेरणाके केन्द्रके रूपमें अभिनन्दन किया गया। इस प्रकार फाल्गुन कृष्ण ११ सं० २०२१ (२७ फरवरी, १९६५) तक व्रजवास करके भाईजी राजस्थानकी ओर चले गये।

चतुर्धाम–वेद–भवनकी स्थापना

विश्ववाङ्मयकी सर्वप्रथम अभिव्यक्तिके रूपमें वेदोंका सर्वोच्च स्थान है। उत्तर प्रदेशके तत्कालीन राज्यपाल श्रीविश्वनाथदास वैदिक साहित्यके भक्त थे। एक बार उन्होंने बद्रीनाथ–धामकी यात्रा की तो उनके मनमें वैदिक ऋचाओंका नित्य पाठ आदिकी व्यवस्था करनेका विचार आया। उस यात्रामें जगन्नाथपुरीमें वेद–भवनकी स्थापनाका निश्चय हुआ। यात्रासे लौटानेपर वे गोरखपुर आये तो भाईजीसे इस सम्बन्धमें चर्चा की। भाईजीको उनके विचार अच्छे लगे। भाईजीने कहा–-केवल पुरीमे ही क्यों, भारतके

चारों दिशाओंके चारों धामों—बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर और द्वारकामें वेद–भवनकी स्थापना होनी चाहिये। श्रीविश्वनाथजीको भी यह बात प्रिय लगी। भाईजीने गोरखपुरके गोरक्षपीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे इस कार्यमें साथ रहनेकी प्रार्थना की। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फलतः श्रीगोरखनाथ मन्दिरके पवित्र स्थानमें २७ जनवरी सन् १९६५ के दिन सम्मिलित गोष्ठीमें न्यास बनानेकी नींव पड़ी। संस्थाके महासचिवके रूपमें श्रीविश्वनाथजी सक्रिय हो गये एवं संयुक्त मन्त्रीके रूपमें भाईजी। केवल यही देखकर कि भाईजी इस कार्यमें रुचि ले रहे हैं कई व्यक्तियोंने धनका दान दिया। श्रीभाईजीके प्रयाससे जगद्गुरू श्रीशंकराचार्योंने 'संरक्षक–पद' स्वीकार किया। आज अनेक स्थानोंपर वेद–भवनकी शाखाएँ अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें संलग्न हैं। वर्तमान मुख्य केन्द्र हैं—बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, रुद्रप्रयाग, कालड़ी (केरल), श्रीरंगम् एवं प्रयाग।

समाज सुधारक–श्रीभाईजी

समयके प्रवाहके साथ ही हमारे समाजकी बहुत–सी प्रथाओंमें बुराइयाँ आ गई थी। भाईजीका ध्यान इस ओर युवावस्थासे ही था। बम्बई जीवनमें अग्रवाल महासभाके सक्रिय सदस्य रहकर उन्होंने प्रचलित बुराइयोंको हटानेका पूरा प्रयास किया। 'कल्याण' यद्यपि पूर्ण तथा आध्यात्मिक पत्र था पर फिर भी समय–समयपर भाईजीने 'कल्याण'के माध्यमसे एवं सत्संगोंमें अपने प्रवचनोंके माध्यमसे ऐसी कुप्रथाओंको रोकनेके लिये पूरी चेष्टा की। जिस दहेजकी प्रथाने आज हमारे समाजको त्रस्त कर रखा है उसको भाईजीने अपनी दूरदर्शी दृष्टिसे पचास साल पहले ही देखा था। 'कल्याण'के जून १९५५ के अंकमें उन्होंने लिखा—

"......................दहेज लेना बहुता बड़ा पाप है। 'कल्याण' में कई बार अपील की गयी है। पता नहीं हमारी मनोवृत्ति कितनी नीची हो गयी। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, जब कॉलेजोंके सुशिक्षित प्रगतिशील युवक गरीब कन्याके पितासे दहेजके लिये अड़ जाते हैं। ....मैं ईश्वर और मानवताके नामपर देशके लोगोंसे, लडकोंसे और उनके अभिभावकोंसे अपील करता हूँ कि वे दहेज न लेनेकी प्रतिज्ञा करें और अपनेको तथा समाजको इस बढ़ते हुए पाप और दुःखसे बचावें।"

अपने प्रवचनोंमें वे और भी कड़े शब्दोंमें सचेत करते थे। कई

बार लिखने कहने पर भी जब यथेष्ट परिणाम नहीं हुआ तो उन्होंने पुनः 'कल्याण'में अपील की––

मैं पुनः धनी, मध्यवित्तके तथा पढ़े–लिखे नवयुवकों और उनके अभिभावकोंसे विशेष रूपसे अपील करता हूँ कि वे त्याग करके आगे बढ़े, बिना दहेजके विवाह करना स्वीकार करके सबके सामने आदर्श उपस्थित करें। सहृदय लोगोंको चाहिये कि वे स्थान–स्थानपर ऐसी समितियाँ बनाकर दहेजकी बुराइयों और पापोंको नम्रता तथा विनयपूर्वक लड़कों तथा उनके अभिभावकोंको समझाकर उन्हें इस पापसे विरत करें। दहेजके धनसे जीवनका काम नहीं चलता पर यह एक मोह है। ....

मेरी कन्या–पक्षके लोगोंसे भी यह प्रार्थना है कि वे अपनेसे ज्यादा धनी न खोजकर सुयोग्य गरीब लड़के खोजें और उनसे अपनी कन्याका विवाह करें। समान घरमें जानेसे कन्या ज्यादा सुखी रह सकती है।"

वे केवल ऐसा उपदेश करते थे, ऐसी बात नहीं है। अपने जीवनसे भी उन्होंने अनुपम आदर्श रखा। उनके कोई पुत्र तो था नहीं, दो दौहित्र थे। बड़े दौहित्र सूर्यकान्तकी सगाई अक्टूबर १९६७ में हुई। उस समय उन्होंने स्पष्ट कहा––हमें दहेज बिल्कुल नहीं लेना है। शास्त्र सम्मत विधिके अनुसार सारे कृत्य हों और मर्यादानुसार सादगी सहित विवाह हो। इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कहा––दहेजके नामपर कुछ भी नहीं लेना है। पिता अपनी कन्याको जो देना चाहे दे पर वह भी एक सीमाके अन्दर ही। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। अग्रवाल समाजकी प्रथाके अनुसार 'दात', 'आँगी मेवा', 'हरा–भरा', 'बड़ी मिलनी' यह सब कुछ नहीं। इस फिजूलखर्ची और वृथा–आडम्बरको समाजसे दूर रखनेकी बड़ी आवश्यकता है। देशकी ऐसी स्थिति नहीं है कि समाज इस प्रकारके रीति–रिवाजोंको सहन कर सके।

केवल इतना ही नहीं अपने घरमें भी फिजूल खर्ची और आडम्बरको रोका गया। सगाईके समय मिठाई बाँटनेकी और आगन्तुकोंको मिठाई खिलानेकी परम्परा–सी बन गई है। भाईजीने पहले ही निश्चय कर लिया कि सगाईके समय न मिठाई बाँटी जायगी न उस समय खिलाई जायगी। उस समय श्रीघनश्यामदासजी जालानके पुत्र श्रीरामदासजी जालान बैठे थे। ये बचपनसे ही श्रीसेठजी–भाईजीके परिवारके सदस्यकी तरह थे और बोलनेमें थोड़े चपल थे। उन्होंने कहा––"ताऊजी ! यह तो

आपने खर्च बचानेका अच्छा उपाय निकाल लिया। सगाईकी खुशीमें जो लोग आयें उन्हें मिठाई भी नहीं खिलाई जाय।" भाईजीने स्पष्टीकरण किया---"अपने समाजमें पहले यह प्रथा नहीं थी। इधरमें कुछ समयसे यह प्रथा चल पड़ी है कि सगाईके समय आये स्वजनोंको मिठाई खिलाई जाय। शास्त्रकी विधि एवं मर्यादाका तो पूरा पालन होना चाहिये पर व्यर्थके आडम्बर और फिजूल खर्चीसे समाजको बचाना चाहिये। जहाँतक मिठाई खानेका प्रश्न है--घर आपका है, चाहे जब मिठाई खा सकते हैं पर सगाईके समय नहीं। जहाँ तक रुपया बचानेका प्रश्न है--ऐसी बात नहीं समझनी चाहिये। इस बचाये हुए धनका प्रयोग अन्यत्र होगा और रु० १००१) आर्त–जनोंकी सहायतामें व्यय किया जायगा।" समाजमें जो लोग विवाह आदि अवसरोंपर जो फिजूलखर्ची और आडम्बर दिन–पर–दिन बढ़ाते जा रहे हैं उन्हें भाईजीकी इस बातपर जरूर ध्यान देना चाहिये।

इसी तरह विधवा–विवाहका भी भाईजी विरोध करते थे। वे अपने प्रवचनोंमें कई बार कहते थे कि मैंने अच्छी तरह सोचा है, मुझे विधवा–विवाहमें न विधवाका हित लगता है, न समाजका। इसलिये मैं किसीके कहनेसे विधवा–विवाहका समर्थन नहीं कर सकता। इसी तरह बहु विवाहका भी वे विरोधी करते थे। उनका तीसरा विवाह २३–२४ सालकी उम्रमें दादीके आग्रहपर हुआ था। वे कहते थे---यद्यपि मेरे तीन विवाह हुए हैं अतः मुझे कहनेका अधिकार तो नहीं है पर इसे अच्छा नहीं मानता विशेषतया बड़ी उम्रमें और पुत्र होनेकी स्थितिमें। मेरी प्रार्थना है कि जिनके पुत्र हो और उम्र बड़ी हो गयी हो वे पुनः विवाह न करें। उन्होंने 'समाज–सुधार' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी जो वि० सं० १९८५ में प्रकाशित हुई थी। खेद है कि आजकल वह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो पा रही है।

गोरक्षा आन्दोलन

भारतके स्वतंत्र होनेके बाद भी गोहत्याका कलंक न मिटनेसे भाईजी व्यथित थे। इसलिये जब कोई भी गोहत्या निरोधके लिये आन्दोलन करता तो भाईजी उसमें पूर्ण सहयोग देते। किन्तु सभी लोगोंका सामूहिक प्रयास न होनेसे सरकारपर विशेष दबाव नहीं पड़ता था। आषाढ़ सं० २०२३ (सन् १९६६) में जब भाईजी स्वर्गाश्रममें थे, दिल्लीके प्रमुख कार्यकर्ता भाईजीके पास आये एवं गोरक्षाके लिये सभीका एक साथ प्रयास हो इसके

लिये भाईजीको चेष्टा करनेकी प्रार्थना की। सभी धर्माचार्यों, सम्प्रदायों एवं राजनीतिक दलोंका एक मंचसे कार्य करनेके लिये राजी करना एक असाधारण कार्य था। उन्हीं दिनों श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी बद्रीनाथ यात्रासे लौटकर भाईजीसे मिलने आये। भाईजीने सबसे पहले उन्हींसे सारी बातें करके इसके लिये राजी किया। संयोगवश श्रीकरपात्रीजी महाराज भी उस समय ऋषिकेशमें थे। भाईजी श्रीब्रह्मचारीजी एवं अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओंको साथ लेकर श्रीकरपात्रीजीके पास गये और उनसे सारी बातें निवेदन की। भाईजीकी बातोंसे वे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके एवं संयुक्त प्रयासके लिये सहमत हो गये। उसी दिन शपथ–पत्रपर श्रीकरपात्रीजी, श्रीब्रह्मचारीजी एवं भाईजीने हस्ताक्षर कर दिये। यहींसे आन्दोलनके 'सर्वदलीय' रूपका बीजारोपण हुआ। उसी शपथ–पत्रपर बादमें प्रमुख धर्माचार्योंके, राजनीतिक–सामाजिक संस्थाओंके एवं गणमान्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हो गये।

भाद्र कृष्ण १२ सं० २०२३ (१२ सितम्बर, १९६६) को करपात्रीजीके नेतृत्वमें वाराणसीमें एक बैठक हुई, जिसमे भाईजी एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियोंने भाग लिया तथा 'सर्वदलीय गोरक्षा–महाभियान समिति' के गठनका एवं अन्य मुख्य बातोंपर निर्णय हुआ। समय–समयपर गतिरोध आये पर भाईजीकी विनम्रता, बुद्धिमत्ता एवं कार्यकुशलता आदिके फलस्वरूप उनका निवारण होता गया। श्रीकरपात्रीजीने कह दिया––"भाई हनुमान, अर्थकी सारी व्यवस्थाका भार तुम पर है।" भाईजीने लाखों रुपयेका सम्पूर्ण भार वहन करना स्वीकार कर लिया। इसीपर सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबके प्राण स्वामी श्रीगणेशानन्दजीने भाईजीको पत्र लिखा––यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इस महान् यज्ञका यजमान बनना स्वीकार कर लिया। यद्यपि अर्थव्यवस्थाके भारको कई लोगोंने सँभाला पर भाईजीने गुप्तरूपसे अर्थ–संग्रहका जो कार्य किया वह अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसके साथ ही भाईजी 'कल्याण' के प्रत्येक अंकमें गोरक्षा सम्बन्धी सामग्री देने लगे। 'कल्याण' के ग्राहक ही लगभग डेढ़ लाख थे, पाठक कितने लाख होंगे पता नहीं। इससे भी आन्दोलनको बड़ा बल मिला।

कार्तिक कृष्ण ६ सं० २०२३ (७ नवम्बर, १९६६) को दिल्लीमें विराट जुलूसका एक ऐतिहासिक आयोजन किया गया जिसमें भाईजी स्वयं सम्मिलित हुए। ऐसी ही आशंका थी कि शायद भाईजी दिल्लीमें गिरफ्तार

कर लिये जायँ। भाईजीके मनमें इसका किञ्चित् भी भय नहीं था। वे अपने परिकर–मण्डलके साथ दिल्लीके उस जुलूसमें सम्मिलित हुए एवं जब पार्लियामेन्ट स्ट्रीटमें मंचके पास अश्रुगैस–गोलीकाण्ड हुआ तो भाईजी उसी मंचपर उपस्थित थे। भगवान्ने सब रक्षा की। कार्तिक शुक्ल ८ सं० २०२३ (२० नवम्बर, १९६६) से श्रीपुरीके शंकराचार्य एवं श्रीब्रह्मचारीजीने आमरण अनशन प्रारम्भ किये। ज्यों–ज्यों अनशनकी अवधि अधिक होने लगी भाईजी राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, गृहमन्त्री तथा विभिन्न सरकारी अधिकारियोंको प्रतिदिन तार या पत्र भेजते रहे। इसी तरह जगद्गुरु शंकराचार्योंको, श्रीविनोबाजी आदि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंको तार, पत्र भेज–भेजकर प्रोत्साहित करते रहे। आनन्दमयी माँको भी कहलवाया कि वे इन्दिराजीको गोरक्षाके लिये प्रेरणा दें। भाईजीने उस समय अथक और अकथ प्रयास किया। उनके प्रयाससे कोने–कोनेसे जपके, अनुष्ठानके, प्रार्थनाके समाचार आने लगे। लोग उत्साह पूर्वक जेल जाने लगे। भाईजीने आन्दोलनके कार्यको सँभालनेके लिये अपने व्यक्तियोंको भेजा। सरकारी क्षेत्रमें लोगोंको सही ढंगसे सोचनेके लिये अनुरोध किया। यद्यपि आन्दोलन सम्पूर्ण भारवर्षमें गोवंशकी हत्या बंद करानेमें सफल नहीं हो सका क्योंकि विधिका विधान ऐसा ही था, फिर भी भाईजीका गोरक्षाके लिये किया गया प्रयास चिरस्मरणीय रहेगा।

भगवन्नाम–प्रचारकी चतुर्थ योजना

भाईजीने श्रीभगवन्नाम–प्रचारके लिये जो कार्य किया, वह अद्वितीय कहा जा सकता है। ऐसे नास्तिक युगमें सहस्रों–सहस्रों नर–नारी उससे प्रेरणा लेंगे। कालके प्रवाहसे अब लोगोंमें वैसी श्रद्धा नहीं रही, जैसी कि भाईजी पैंतीस–चालीस वर्ष पूर्व देखते थे, अतः अब उन्होंने श्रीभगवन्नाम–प्रचारका एक और तरीका सोचा। गीतावाटिकामें सहस्रोंकी संख्यामें नर–नारी हर वर्ष आते ही थे, उनके कानोंमें अनायास ही संकीर्तन–ध्वनि प्रवेश करती रहे और उनके मुँहसे भी यत्किञ्चित नाम संकीर्तन हो, इस उद्देश्यसे गीतावाटिकामें उन्होंने सं० २०२५ (सन् १९६८) की राधाष्टमीसे अखण्ड–नाम–संकीर्तन प्रारम्भ करवाया। इसके लिये चैतन्य महाप्रभुकी जन्मभूमि नवद्वीप, बंगालसे कीर्तनकार बुलाये गये जो अपने मधुर कंठसे 'हरे राम' महामन्त्रके आकर्षक संकीर्तनका अमृत गीतावाटिकामें रहनेवाले और बाहरसे आनेवाले सभीके कर्ण–पुटोंमें उँड़ेलते रहते हैं।

आजतक यह क्रम निरन्तर चौबीसों घण्टे अखण्ड रूपसे चलता रहता है और न जाने कबतक इसी रूपमें सहस्रों नर–नारियोंपर भाईजीकी कृपा–वर्षा होती रहेगी।

राजस्थानके भीषण अकालमें सेवा

सं० २०२५–२६ (सन् १६६८–६६) में राजस्थानमें भीषण अकाल पड़ा। इस भीषण अकालमें मनुष्यों तथा विशेषतया गोवंशकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी। यद्यपि भाईजी उन दिनों अस्वस्थ थे, पर उनको जब इस स्थितिका पता लगा तो वे चुप नहीं रह सके। अपनी अस्वस्थ अवस्थामें ही कई स्थानोंपर सेवा कार्यके वृहद् आयोजनकी व्यवस्था की। बीकानेरमें गायोंकी सेवा विशेष रूपसे हुई। अपनी धर्मपत्नीसे पाँच हजारकी अल्प पूँजी लेकर भाईजीने सेवा–कार्यका शुभारम्भ किया और भगवान्‌की कृपासे उस सेवा–कार्यमें पन्द्रह लाख रुपये व्यय हुए। भाईजीके जीवन–कालमें जब भी ऐसे अवसर आये, उन्होंने दत्त–चित्तसे सेवाकी व्यवस्था की। सं० २०२६ (सन् १६६६) में आसाममें तूफानग्रस्त क्षेत्रोंमें सेवाकार्य हुआ और सं० २०२७ (सन् १६७०) में पूर्वी पाकिस्तानके (अब बांग्लादेश) तूफान पीड़ितोंकी सहायता की गयी।

सेवा–सिन्धु श्रीभाईजी

जैसे भाईजीने हिन्दी–साहित्यको कितना अभिवृद्ध किया इसकी जानकारी बिना एक स्वतन्त्र–ग्रंथके संभव नहीं है, वैसे ही भाईजीने सेवाका जो आदर्श उपस्थित किया उसका पूरा वर्णन एक स्वतन्त्र विशाल ग्रन्थका विषय है। बचपनसे ही भाईजी सेवाके कार्योंमें तन–मन–धन लगाते थे। अवसर मिलनेपर कभी चूकते नहीं थे। उनके पाससे कभी किसीको निराश लौटते नहीं देखा। बचपनकी वह भावना बढ़ती ही गयी और आगे चलकर उनका जीवन–प्राण ही बन गयी। यद्यपि सहायताके विषयमें उनकी शैली थी––"दाहिना हाथ दे और बायेंको पता न चले।" फिर भी जितनी घटनायें प्रकाशमें आई उनका भी पूरा परिचय देना यहाँ संभव नहीं है। वे स्वयं भी उपयुक्त अवस्थाओंपर शरीरसे भी सेवा करते थे पर उनके द्वारा जो विपुल धन–राशि सेवा–कार्योंमें व्यय हुई उसपर विश्वास होना भी कठिन है। यद्यपि गोरखपुर आनेके बाद न उन्होंने अर्थ अर्जन किया, न गीताप्रेस या

अन्य संस्थासे एक पैसा लिया, न कभी भेंट–उपहारमें पैसा लिया, यहाँ तककि अर्थके लिये की जानेवाली अपीलमें भी उन्होंने अपना नाम नहीं दिया। जो भी सेवा हुई वह स्वजनों द्वारा स्वेच्छा–प्रेरित राशिसे हुई। उनका भी नाम किसीको प्रकट नहीं करते थे।

यहाँ केवल संकेतके लिये कुछ घटनायें प्रस्तुत की जा रही हैं, जिससे पाठक स्वयं उनकी सेवाओंका अनुमान लगा सकें––

(१) "श्रीभाईजी ! लगता है यह शरीर अब अधिक दिन चलेगा नहीं। मेरी यह इच्छा है कि शरीरका अवसान आपके पास हो; किन्तु एक कठिनाई है, जिसके कारण मनमें थोड़ा संकोच हो रहा है। आप जानते ही हैं कि मैं टी०बी०का रोगी हूँ और धीरे–धीरे उसने अपना प्रभाव मेरे शरीरपर जमा लिया है। टी०बी० का रोग भीषणरूपसे संक्रामक होता है। ऐसे रोगीको डॉक्टर–वैद्य पृथक् रहने तथा रखनेकी सलाह देते हैं। इस रोगको लेकर आपके पास क्यों रहूँ ? पर मन मानता नहीं; बार–बार यही इच्छा होती है कि अन्तिम श्वास आपकी संनिधिमें ही जाय।"

प्रसिद्ध श्रीरामसनेही सम्प्रदायके सन्त श्रीच्यवनरामजीने अपने मनकी यह अभिलाषा श्रद्धेय भाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) के समक्ष व्यक्त की थी। उन दिनों श्रीभाईजी अपने पैतृक स्थान रतनगढ़में रहते थे। सन्त श्रीच्यवनरामजीकी राम––नाम–जपपर अनन्य निष्ठा थी। उनका जीवन बड़ा ही सीधा–सादा तथा सन्तोचित सद्‌गुणोंसे भरपूर था। श्रीभाईजीके प्रति उनके मनमें बड़ी आत्मीयता, बड़ा ही स्नेह, बड़ी ही श्रद्धा थी। वे भाईजीको सिद्ध महापुरुष मानते थे और यही हेतु था कि वे जीवनका अवसान श्रीभाईजी संनिधिमें चाहते थे। महापुरुषोंकी संनिधिमें अमोघ शक्ति होती है—इस पर संत श्रीच्यवनरामजीका दृढ़ विश्वास था।

श्रीभाईजी तो स्नेहकी मूर्ति थे, साथ ही उनके हृदयमें संतों–महात्माओंके प्रति बाल्यकालसे ही बड़ी श्रद्धा थी। वे मानते थे कि साधुमात्रकी सेवा करना गृहस्थका धर्म है और वे स्वयं गृहस्थ थे—–आदर्श गृहस्थ थे। अतएव एक सच्चे सन्तके मुखसे जब उन्होंने यह अभिलाषा सुनी कि उनके पाञ्चभौतिक शरीरका अवसान उनके पास ही हो, तब सहज प्रसन्नताके भावसे श्रीभाईजीने निवेदन किया—–'महाराजजी ! यह घर तो आपका ही है। संतोके चरण–रजसे ही घरकी शोभा है। यह मेरा सौभाग्य है, जो आप मुझे अपनी सेवाका अवसर प्रदान कर रहे हैं। जैसी भी

सेवा मुझसे बन पड़ेगी, उसे करनेमें मुझे प्रसन्नता होगी। आप तनिक भी संकोच न करें। टी० बी० का रोग है तो क्या ? मरना तो सभीको है। रोग उसीको होता है, जिसको होना है। भगवान्के विधानके बिना किसीकी सेवा करनेसे किसीको रोग नहीं लगता।'

श्रभाईजीके आत्मीयता एवं सौहार्दपूर्ण शब्द सुनकर सन्त श्रीच्यवनरामजीका हृदय भर आया।

सेवा–धर्म परम गहन है। इसका निर्वाह होना बड़ा कठिन है। अपने व्यक्तिगत सुख एवं स्वार्थ ही नहीं, अपने 'अहं' का विलय करनेके पश्चात् ही मनुष्य सेवाका अधिकारी बनता है। भगवत्कृपासे श्रीभाईजीमें ये चीजें सहज ही विद्यमान थीं। अतएव सन्त श्रीच्यवनरामजीकी सेवा बड़े ही व्यवस्थित एवं सुन्दर रूपमें होने लगी।

श्रीभाईजीने महाराजजीके आवासके लिये अपने ही मकानमें ही व्यवस्था कर दी। अपने नित्य बैठनेके कमरेके ठीक सामनेका बड़ा कमरा उनको दिया, जिससे श्रीभाईजी बराबर उनकी संभाल रख सकें। दिनमें जब–जब श्रीभाईजी अपने कमरेसे बाहर निकलकर भोजनादिके लिये भीतर जाते, तब–तब वे महाराजजीसे पूछते—'कहिये, महाराजजी ! क्या हाल है ?' और महाराजजी उत्तर देते—'ठीक है, भाईजी !' और भाईजी मुस्कुराते हुए भीतर चले जाते। इतना ही नहीं, वे स्वयं प्रतिदिन कुछ समयके लिये श्रीमहाराजजीकी सेवामें उपस्थित होते थे। उस समय उनके शारीरिक कष्टकी बातचीत होती, दवा एवं पथ्य आदिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार–विमर्श होता। साथ ही भगवच्चर्चा भी होती। रोगीके रूपमें सन्त थे और सेवकके रूपमें सन्त थे; उस समयकी चर्चामें सम्मिलित होनेका जिनको सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे आज भी अपनेको धन्य मानते हैं।

अपने भक्तोंका गौरव बढ़ानेके लिये भगवान् उनकी परीक्षा लेते हैं। रोगीके रूपमें मानो भगवान् ही श्रीभाईजीकी परीक्षा लेना चाहते थे। परम तितिक्षु और निस्पृह सन्त श्रीच्यवनरामजीके स्वभावमें एक विचित्र परिवर्तन भगवान्ने उत्पन्न कर दिया। एक दिन जिस पात्रमें वे भोजन करते, दूसरे दिन उन्हीं पात्रोंको अपने सामने देखकर वे कहते—'इन पात्रोंमें तो कल भोजन किया था, आज दूसरे पात्र लाइये।' श्रीभाईजी तत्काल दूसरे पात्रोंकी व्यवस्था करते। इस प्रकार छः सेट बर्तन उनके लिये निर्धारित कर दिये गये थे, जिससे एक पात्रकी बारी छः दिनके बाद आती थी। यही बात

ओढ़नेके कम्बलोंके सम्बन्धमे भी थी। कम्बलोंके भी कई सेटोंकी व्यवस्था श्रीभाईजीने की। और कई प्रकारकी विषम परिस्थितियाँ समय–समयपर उपस्थित हो जाती थीं, किन्तु श्रीभाईजीका सन्तकी सेवामें बड़ा उल्लास था। उनकी परम–साध्वी, सेवापरायण धर्मपत्नी भी उस सेवाकी व्यवस्थामें बड़े ही उल्लास एवं प्रसन्नताके साथ सहयोग करती थीं।

इस प्रकार सेवा चलने लगी। किन्तु श्रीभाईजीके प्रति समाजके सभी व्यक्तियोंका अपनापन था। बहुत व्यक्तियोंको तो उनके शरीरके प्रति मोह था। ऐसे महानुभाव श्रीभाईजीके पास पहुँचने लगे और उनसे प्रार्थना करने लगे––'भाईजी ! आपने महाराजजीको अपने घरपर रखनेका जो निर्णय लिया है, वह औचित्यपूर्ण नहीं है। महाराजजीको आप देखते ही हैं कि कितना–कितना बलगम प्रतिदिन गिरता है। टी० बी० का रोग बड़ा भीषण होता है। यह बहुत जल्दी लगता है। आप स्वयं श्रीमहाराजजीके समीप बैठते हैं। कभी–कभी वे अपना सिर आपकी गोदमें रख लेते हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप महाराजजीको घरसे पृथक् किसी स्वतन्त्र स्थानमें व्यवस्था कर दें।'

श्रीभाईजी हितैषियोंकी आत्मीयताभरी सलाह सुनते और मुस्कुरा देते। उनपर रोगकी भीषणताका तनिक भी प्रभाव नहीं था। संत श्रीच्यवनरामजी भी अपना मन निरन्तर भगवान्‌में लगाये रखते थे। रामनामका जप तथा श्रीभाईजी द्वारा सम्पादित एवं गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित 'ढाई हजार अनमोल बोल' पुस्तक स्वाध्याय करते थे।

रोग–प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा था। श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज भी बीच–बीचमें रतनगढ़ आया करते थे और अपने हाथोंसे श्रीमहाराजजीकी सेवा करते थे। महाराजजी और श्रद्धेय स्वामीजी गुरुभाई थे। दोनोंमे बड़ा सौहार्द था।

प्राण–प्रयाणका समय आया। श्रद्धेय श्रीभाईजी, स्वामीजी महाराज, श्रीगोस्वामीजी आदि उपस्थित थे। भगवन्नाम–कीर्तन हो रहा था। इसी परम सात्त्विक बेलामें संत श्रीच्यवनरामजीके प्राण–पखेरू उड़ गये।

श्रीभाईजीने महाराजजीके सम्प्रदायकी परम्पराके अनुसार निष्प्राण कलेवरका विधिवत् संस्कार किया। संकीर्तनके साथ बड़ा जलूस शव–यात्रामें था। स्वयं श्रीभाईजी कीर्तन करते हुए पैदल चल रहे थे।

जिस कमरेमें महाराजजीका शरीर छूटा, उस कमरेको अच्छी

तरह धुलवाकर श्रीभाईजीने उसमें श्रीभगवन्नामका अखण्ड कीर्तन प्रारम्भ करवाया। श्रद्धालुओं, प्रेमियों एवं स्वजनोंके सहयोगसे अखण्ड संकीर्तन बड़ी धूमधामसे चलने लगा। श्रीभाईजी प्रतिदिन अपने व्यस्त जीवनमें–से कुछ समय निकालकर कीर्तनमें सम्मिलित होते थे। वैसे उनका अपना कमरा उसके ठीक सामने था और इस प्रकार कीर्तनकी सम्भाल भी वे बराबर करते थे। ढाई वर्षतक अखण्ड नामकीर्तन चला।

एक संतद्वारा एक संतकी सेवाका यही स्वरूप होता है।

(२) बात पुरानी है। गीतावाटिकाके श्रीराधाष्टमी पण्डालमें परम श्रद्धेय श्रीभाईजीका प्रवचन हो रहा था। उन दिनों उत्तरप्रदेशके पूर्वी जिलोंमें भीषण अकालकी स्थिति थी। 'गीताप्रेस–सेवादल' के तत्वाधानमें श्रीभाईजीने सेवाकार्य आरम्भ कर दिया था। अन्न, वस्त्र आदिसे अकालपीड़ितोंकी सेवा हो रही थी। स्वास्थ्य ढीला रहनेपर भी श्रीभाईजी स्वयं अकालग्रस्त क्षेत्रोंका निरीक्षण करने जाया करते थे। श्रीभाईजीका हृदय भूखे नर–नारियों एवं पशुओंकी दयनीय दशासे बहुत पीड़ित था। संयोगसे उस दिन कलकत्ता–बम्बईसे कुछ धनी–मानी व्यक्ति श्रीभाईजीसे मिलने तथा अपने परिवार एवं कारबारके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिये आये हुए थे। श्रीभाईजीने प्रवचन आरम्भ किया––

'भक्त नरसी मेहताका एक पद है, जो पूज्य बापू (महात्मा गाँधी) को बहुत प्रिय था––

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे, तेने मन अभिमान न आणे रे।।

सचमुच 'वैष्णव'––भगवान्‌का प्यारा वही है, जो दूसरेके दुःखको अनुभव करता है, उसे दूर करनेके लिये अपनी शक्तिभर प्रयत्न करता है। जगत्‌में किसी भी व्यक्तिके पास जो कुछ है, सब भगवान्‌का है और भगवान्‌की सेवाके लिये ही है। इसी प्रकार सबमें भगवान् हैं––समस्त जीवोंके रूपमें भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है। अतएव भगवान्‌के जिस किसी रूपको, जब भी, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो और वह यदि हमारे पास हो तो 'भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के अर्पण है––इस भावसे बिना अभिमानके नम्रतापूर्वक उसे अर्पण कर देना चाहिये।'

इसी भावको श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमें विस्तारसे समझाया। श्रोतागण बड़े ध्यानसे श्रीभाईजीकी बातें सुन रहे थे। प्रवचनकी समाप्तिपर

शहरसे आये हुए लोग चले गये। कलकत्ते–बम्बईसे आए हुए बन्धुओंने श्रीभाईजीको घेर लिया। इसी बीच फटे–मैले कपड़ोंमें एक युवक श्रीभाईजीके समक्ष आकर खड़ा हो गया। दीन–हीन युवकको देखते ही श्रीभाईजीका ध्यान उन धनी बन्धुओंकी ओरसे हट गया और उन्होंने उस युवकसे पूछा—'भैया ! कहाँ रहते हो ? कैसे आये हो ?' श्रीभाईजीके ये शब्द इतने प्यार भरे थे कि युवक एक शब्द भी बोल न पाया; उसकी आँखें झरने लगीं। बस, भाईजीका परदुःखकातर हृदय द्रवित हो गया। वे तुरन्त उठ खड़े हुए और उस युवकके पास जाकर उन्होंने अपना बायाँ हाथ उसके दाहिने कंधेपर रख दिया और दाहिने हाथसे वे उसके सिरको सहलाने लगे। इस अप्रत्याशित स्नेहको पाकर युवकका हृदय और भी भर आया; अब वह सुबक–सुबककर रोने लगा। श्रीभाईजी उसी प्रकार उसके सिरको सहलाते रहे। कुछ देरमें दुःखका आवेग जब कम हुआ, तब श्रीभाईजीने युवकसे पूछा—'भैया ! इतने रोते क्यों हो ?'

'बाबूजी ! दो दिनसे खानेको नहीं मिला है। घरमें वृद्ध माता–पिता तथा छोटे भाई बहन भूखे हैं। सर्दीका दिन है। शीत निवारणके लिये कोई कपड़ा नहीं है। बहन सयानी हो गयी है, अपनी लाज बचानेके लिये उसके पास लूगा—वस्त्र नहीं है। वर्षा न होनेसे खेतमें कुछ भी अनाज नहीं हुआ। बाप–दादोंकी इज्जत है; किसीसे अपना दुःख कह भी नहीं सकते। आपका नाम सुनकर आपकी शरणमें आया हूँ..................।' किसी प्रकार अपनेको सँभालकर युवकने अपना दुःख श्रीभाईजीके समक्ष रक्खा।

श्रीभाईजी युवकको सान्त्वना देने लगे और उसका हाथ पकड़कर वहीं दरीपर बैठ गये। बाहरसे आये हुए धनी–बन्धु यह सब देखकर विस्मित थे कि उन लोगोंकी ओरसे सर्वथा उपराम होकर किस प्रकार श्रीभाईजीने अपना ध्यान उस दीन–हीन युवकपर केन्द्रित कर दिया।

श्रीभाईजीने अपने सेवकको आदेश दिया—'इस भाईको अपने साथ ले जाओ। इसे धोती–कुर्ता दे दो और कुएँ पर इसे स्नान करवा दो।'

सेवक युवकको लेकर चला गया। श्रीभाईजी वहीं पण्डालमें बैठे रहे। थोड़ी देरमें युवक स्नान करके नये वस्त्र पहनकर श्रीभाईजीके पास आ गया। श्रीभाईजीने अपने घरसे नाश्ता और दूध मँगवाया और अपने समक्ष उस युवकको ग्रहण करवाया, युवक दूध पीता जा रहा था और बार–बार अपनी आँखें पोंछ रहा था। वह देख रहा था—किस प्रकार पाँच–सात

श्रीमन्तोंसे घिरे हुए श्रीभाईजी सबकी ओरसे उपराम होकर केवल उसकी ही सँभाल कर रहे थे।

इसी बीच श्रीभाईजीने अपने एक साथीको अपनी धर्मपत्नीके पास भेजा और युवकके परिवारवालोंके लिये कई साड़ी, धोती तथा कुर्ते एवं लहंगेका कपड़ा और ३–४ कम्बल मँगवाये। युवकको सब सामान सौंपते हुए रिक्शा मँगवाया और उसपर युवकको बैठाकर विदा किया। जब रिक्शा चलने लगा, श्रीभाईजीने कहा––'भैया ! आज तो तुम जाओ, पीछे फिर आना। मैं ऊपर अपने कमरेमें होऊँ तो तुम इस भाईसे (सेवककी ओर संकेत करते हुए) मिल लेना। यह मुझे तुम्हारे आनेकी सूचना कर देगा। रोना मत, घबराना मत, भगवान् सब व्यवस्था करेंगे।'

युवकको विदा करनेके पश्चात् श्रीभाईजी बाहरसे पधारे हुए बन्धुओंसे बोले––'क्षमा कीजियेगा, आप लोगोंका एक घण्टा मैंने बर्बाद कर दिया। परन्तु क्या करूँ, किसी दुःखी प्राणीको देखकर मैं अपनेको सँभाल नहीं पाता। आस–पासके कुछ गाँवोंकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही है। मैं स्वयं वहाँ जाकर देखकर आया हूँ। वहाँकी दशा देखकर मनुष्यको बरबस रो देना पड़ता है। आज देशमें अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो बहुत सुखसे खाते–पीते हैं और वे चाहे तो बहुतोंके पेटकी ज्वाला मिटा सकते हैं। खाने–पहननेके पदार्थ तथा घास–चारा आदि कीमत देनेपर काफी परिमाणमें मिल सकते हैं। ऐसा होते हुए भी आज हजारों–लाखों नर–नारी एवं पशु अन्न और चारे–दानेके बिना परेशान हैं––कुछ मर भी रहे हैं––यह बहुत ही व्यथाकी बात है। मैं तो कमजोर व्यक्ति हूँ, अपनी दशा क्या कहूँ ! जब खाने बैठता हूँ और अपने सामने थालीमें घीसे चुपड़ी हुई रोटियाँ तथा कई तरहकी सब्जियाँ देखता हूँ तो मेरी आँखें गीली हो जाती हैं और भोजन अच्छा नहीं लगता; पर घरवालोंसे मैं इस स्थितिको छिपा लेता हूँ। इसी प्रकार रातको सोनेके समय जब रुईकी गद्दीपर सिरके नीचे तकिया लगाकर रजाई ओढकर सोना चाहता हूँ, तब बहुधा उन–भूखे–कंगालमात्र नर–नारियोंके चित्र आँखोंके सामने आ जाते हैं; नींद गायब हो जाती है और मैं बिस्तरपर पड़ा–पड़ा उनके कष्ट निवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करता रहता हूँ। अपनी इस विवशताको मैं छिपाये रहता हूँ, पर आज, प्रसंग–वश इसकी चर्चा हो गयी।'

यों कहते–कहते श्रीभाईजीका हृदय भर आया, अन्तर्व्यथा मुखपर

झाँकने लगी। धनी–बन्धु श्रीभाईजीके हृदयका वास्तविक परिचय प्राप्तकर आश्चर्यचकित एवं मुग्ध थे। सभीने अपनी–अपनी सामर्थ्यके अनुसार सेवाकार्यमें सहयोग देनेकी बात श्रीपोद्दारजीसे कही।

(३) घटना पुरानी है। गीता–भवन, स्वर्गाश्रम, सत्संग–मण्डप श्रोताओंसे भरा हुआ था। ओजस्वी वक्ता थे परमश्रद्धेय भाईजी। पर्याप्त जनता होनेपर भी उनके प्रवचनमें गम्भीर शान्ति चारों ओर विद्यमान थी। प्रवचन समाप्त होनेपर एक आवश्यक सूचना, जिसमें सेवा अपेक्षित थी, एक सत्संगी भाईकी ओरसे वक्ता द्वारा सुनायी गयी।

'राजस्थानसे एक सम्भ्रान्त, किन्तु अभावग्रस्त ब्राह्मण देवता आये हुए हैं। अचानक भयानक हैजा हो जानेके कारण उनकी स्थिति चिन्ताजनक हो गयी है। इस अशक्त अवस्थामें उन्हें सेवाकी आवश्यकता है। कृपया उत्साही पुरुष अपना नाम लिखवाएँ; रात्रिभरकी सेवाके लिये चार व्यक्तियोंके नाम चाहिये।' प्रथम बार सूचना पढ़े जानेपर केवल दो उत्साही भाइयोंने अपना नाम लिखवाया। वक्ता द्वारा सूचना दोहरायी गयी, इस बार भी संकोचवश एक व्यक्तिने अपना नाम और दिया। सूचना प्रसारित करनेवाले व्यक्तिने धीरेसे भाईजीसे कहा—'केवल एक नाम और चाहिये; कृपया एक बार पुनः सूचना दोहरा दें।'

'इसकी आवश्यकता नहीं—इतना कहकर भाईजी अपने स्थानसे उठ खड़े हुए। सूचना प्रसारित करनेवाला भी उलझनमें फँस गया—तीन व्यक्तिसे कैसे रात्रिभर काम चलेगा—दो व्यक्तियोंके बिना वमन और मलसे सने कपड़े कैसे बदले जायँगे और एक आदमी द्वारा आठ घण्टे एक साथ सेवा कर पाना सम्भव भी नहीं; पर उस भव्य व्यक्तित्वके सम्मुख पुनः कहे भी तो कैसे।

गीता भवनसे बाहर निकलनेपर भाईजीने साथ चलते जन–समूहपर दृष्टिपात करते हुए सूचना प्रसारित करनेवाले बन्धुसे कहा—'एक व्यक्ति सेवाके लिये जिस स्थानपर जितने बजे कहिये, पहुँच जायगा।'

'रात्रिमें ठीक दस बजे स्वर्गाश्रममें बने मन्दिरके पिछवाड़े स्थित झोपड़ीमें पहुँच जाय। दो बजे तक उनको रहना होगा, उसके बाद दूसरा गुट आ जायेगा।'

'अच्छा'—छोटा–सा उत्तर दे भाईजी आगे बढ़ गये।

रातके दस बजनेवाले थे। माँ भागीरथीके अंकमें चन्द्रमा शिशुवत्

मचल–मचलकर खेल रहा था। उसी समय भाईजीने धीरेसे झोंपड़ीका दरवाजा खोलते हुए भीतर प्रवेश किया।

'आ.........प.........आप.........' विचित्र विस्मयकी अनुभूति कर सूचना प्रसारित करनेवाले बन्धुने कहा––'आप रहने दीजिये; हम लोग सब सम्भाल लेंगे।'

'क्यों ? क्या मैं सेवा नहीं कर सकता ?'

'नहीं, यह बात नहीं––इनके कपड़े वमन तथा मलसे बार–बार सन जाते हैं, उनको साफ करना पड़ता है, फिर कपड़े बदलने पड़ते हैं।'

'तो क्या हुआ ?' सहज, स्वाभाविक स्वरमें उत्तर दिया, श्रीभाईजीने।

'नहीं.........................बड़ी भयानक दुर्गन्ध होती है, इसीसे कह रहा हूँ।' ये शब्द भाईजीके कानमें कहनेका प्रयास किया उन्होंने।

'मल–ही–मल तो भरा है इस शरीरमें; दुर्गन्ध नहीं तो सुगन्ध कहाँसे आयेगी।' फीकी हँसीके साथ भाईजीने कहा।

भाईजी द्वारा बिना किसी हिचकके सेवा चलती रही––मलसे सने कपड़ेको बदलना, वमन साफ करना, दवा देना, कुल्ला कराना, जल पिलाना। घृणाकी तो बात क्या, वह तो प्रभुकी अर्चना समझकरकी जा रही थी बड़े ही लगनसे, प्यारसे, स्नेहसे। भाईजीका परिधिहीन 'स्व' की मान्यतामें रूग्ण भाई कोई दूसरा नहीं, अपना था––अपने–से–अपना था, अपना स्वरूप था।

सूचना प्रसारित करनेवाला विस्मयके साथ देख रहा था। वह मुग्ध था कि भाईजी केवल सेवाका उपदेश देनेमें ही पटु नहीं हैं, सेवा करनेमें वे उससे भी अधिक दक्ष हैं, निपुण हैं।

भाईजी जैसे संतके स्पर्शसे, उनकी ममता भरी सेवासे उनकी महिमामयी उपस्थितिसे रोगीको भी बड़ी शान्तिका अनुभव हुआ। भाईजीकी पारीका समय पूरा होते–होते उसकी स्थितिमें पर्याप्त सुधार हो गया और जब भाईजी वहाँसे लौटने लगे, उसने सजल नेत्रोंसे भाईजीका भाव अभिनन्दन किया।

(४) गोरखपुर आनेके पश्चात् न भाईजीके पास अपना एक पैसा था, न कहीं कुछ जमा था। न उन्होंने कुछ कमाया ही। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे उनका कोई आर्थिक सम्बन्ध न था। न उन्होंने भेंट, पूजा, उपहार आदिके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी स्वीकार किया। ऐसी स्थितिमें सेवा–कार्य स्वजनों, मित्रों और श्रद्धालुओंके भगवत्प्रेरित

या स्वेच्छाप्रेरित दानसे चलते थे, और चलते थे प्रचुर परिमाणमें। परन्तु कभी–कभी ऐसे अवसर भी आ जाते थे, जब सेवा–कार्यके लिये प्राप्त राशि समाप्त हो गयी है और सामने उपस्थित भाईके कष्ट–निवारणके लिये उतने रुपयोंकी व्यवस्था करना अनिवार्य होता। ऐसी विवशताकी स्थितिमें भाईजीका हृदय द्रवित हो जाता था और वे किसीसे ऋण लेकर, इतना ही नहीं अपनी पत्नीके गहने बेचकर भी उस आर्त भाईके आँसू पोंछते थे। यहाँ भाईजीके केवल एक पत्रका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है; आप स्वयं अनुभव करें कि उनका हृदय कितना संवेदनशील था !

।। श्रीहरिः ।।

गोरखपुर,ज्येष्ठ बदी सं० २०१०

प्रिय......................जी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका २७–५–५३ का पत्र मिला। एक कार्ड जयपुरसे मिला था।......................की पत्नीको ....रुपये मासिक देकर रसीद लेते रहियेगा।

श्री...................बाबत लिखा, सो ठीक है। मुझे स्वयं उनकी बड़ी चिन्ता है कि उनकी बीमारीकी स्थिति सुनकर मैं कुछ भी कर नहीं सकता। जो कुछ व्यवस्था हो सकी, उनको दे दिया तथा भविष्यमें (छः महीनेके लिये सोचकर) सौ रुपया महीना भेजनेकी बात भी उनसे कह दी है, पर आप जानते हैं, मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ, मेरे पास पैसा नहीं। दुनियाकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गयी है कि पहले लोग अपनी इच्छासे अच्छे काममें पैसा लगानेको कहते थे, अब वह तो सर्वथा बन्द हो गया——कहनेपर भी नहीं होता। श्री......................को कह तो दिया, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं। गीताप्रेसकी रोकड़से उचंत (अर्थात् उधार) लेकर उनको दे दिये, पर अभीतक वे वापस नहीं किये जा सके। पिछले दिनों एक सज्जनको ....रुपये देने थे——सहायतामें। कहीं प्रबन्ध नहीं हुआ सावित्रीकी माँ (धर्मपत्नी) का एक गहना बेचकर दिये। यह स्थिति है, कैसे देता–लेता हूँ, इसीसे आप अनुमान कर सकते हैं। किससे कहूँ ? लाभ भी क्या है ? इसीसे श्री....................को पत्र नहीं दिया उनके दो पत्र आ गये———एक पहले आया था, दूसरा आज आया। आप उन्हें मेरे नाम लिखकर एक सौ रुपया दे दीजियेगा।

उन्होंने ....रुपया अन्दाज ऋणके लिखे हैं, मासिक

खर्च भी १५० रुपये अन्दाज बताया है और ठण्डी जगह जानेकी बात लिखी है। बात तीनों ठीक है; पर मैं उन्हें क्या लिखूँ ? मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं है। एक सौ रुपये महीना तो मैं छः महीनेतक किसी तरह भेजता रहूँगा, पर इससे अधिक कुछ भी करनेकी मेरी परिस्थिति नहीं है..................।

आपका भाई,

हनुमानप्रसाद

(५) जो श्रीभाईजीके जीवनसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि उनकी कथनी और करनीमें कितना साम्य था; वे उतना ही कहते थे, जिसका पालन वे अपने जीवनमें स्वयं करते थे। उनके पास व्यक्तिगत रूपसे कुछ भी नहीं था, पर उन जैसा दानी मिलना कठिन है। वे दिन–रात खुले हाथों बाँटते ही रहते थे; उनके द्वारसे कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। भगवान्‌की कृपासे श्रीभाईजीका भण्डार सदा भरा ही रहता था।

सेवाके नये–नये रूप वे अपनाते रहते थे। सर्दी आरम्भ होते ही उनके यहाँसे ऊनी स्वेटर, चद्दर, कम्बल आदिका वितरण आरम्भ हो जाता था। इतना ही नहीं, पौषकी अँधेरी, ठिठुरती रात्रियोंमें, जब हवा भालेकी नोंककी तरह प्रहार करती थी, हड्डीको कँपा देनेवाली उस ठंडमें आर्त–सेवक श्रीभाईजी अपने विछावनसे उठ खड़े होते। जब सारा शहर अन्धकारमें डूबा हुआ होता, शहरके सभी निवासी अपने–अपने सामर्थ्यके अनुसार पक्के भवन या कुटियामें रेशमी रजाई या चिथड़ोंकी बनी गुदड़ी लपेटकर निद्रामें मग्न होते, तब उन––दुःखकातरको सुन पड़ती, उन निराश्रितोंकी––वृक्षके नीचे पड़े शीतके भीषण प्रहारसे संत्रस्त भाई–बहनोंकी कराह। श्रीभाईजी विस्मृतकर जाते अपने वृद्ध जर्जर शरीरको एवं सम्पूर्ण शारीरिक कष्टोंको और वे निकल पड़ते जीपमें निराश्रितोंके शीत–निवारणकी व्यवस्था करनेके लिये। कुछ विश्वासपात्र साथी भी साथमें हो जाते।

जीपमें पीछे लगा ट्रेलर ऊनी कम्बलोंसे भरा रहता और नगरको रौंदती हुई उनकी जीप बढ़ जाती उस सड़ककी ओर–उस खण्डहरकी ओर, जहाँ शीतसे ठिठुरते हुए वस्त्र–हीन भाई–बहन सिकुड़े हुए पड़े रहते थे। जीप एक ओर खड़ी कर दी जाती और श्रीभाईजी जीपसे उतरकर उन अभागोंके उस कष्टको अपने हाथोंसे आवृत्तकर देते––ऊनी कम्बलोंसे उन्हें ढँकते और तुरन्त उस स्थानसे हट जाते। साथके बालक भी कम्बल ले–लेकर उन ठिठुरते हुए भाई–बहनोंको ओढ़ा देते।

जब वहाँ लेटे हुए सभी व्यक्तियोंको कम्बलसे ढक दिया जाता, तब इस आशंकासे कि कोई व्यक्ति उन्हें इन नवीन आच्छादनोंसे वंचित न कर दे, टोलीका एक व्यक्ति मन्द स्वरमें पुकारकर उन्हें तनिक–सा सावधानकर देता। इस क्रियासे कोई–कोई व्यक्ति उठकर बैठ भी जाता और अपने ऊपर एक गर्म कम्बल देखकर वह आश्चर्यचकित हो उसको देनेवाले दानीके दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठा भरी दृष्टि इधर–उधर डालता, परन्तु इससे पूर्व ही श्रीभाईजीकी जीप वहाँसे चल पड़ती शहरके दूसरे कोनेकी ओर, जहाँ ऐसे ही अन्य भाई–बहन शीतसे ठिठुरते होते।

इस प्रकार निराश्रित भाई बहनोंके शीत–निवारणकी इस गुप्त सेवाका क्रम प्रतिवर्ष ही चलता। जहाँ श्रीभाईजी स्वयं न जा पाते, वहाँ वे अपने स्वजनों, विश्वासी सेवकोंके द्वारा यह सेवा सम्पन्न करवाते।

काश ! श्रीभाईजीके इस सेवा–आदर्शका किंचित् अनुसरण हम कर पाते।

भाईजीकी हिन्दी–साहित्यको देन

आध्यात्मिक जगत्में तो भाईजीका सर्वोच्च स्थान है ही, हिन्दी–साहित्यको उन्होंने जो सामग्री प्रदान की है वह भी अनुपम है। भाईजीने गीताप्रेसके माध्यमसे जब साहित्य प्रकाशन प्रारम्भ किया उसके पूर्व हिन्दी धार्मिक ग्रन्थोंकी उपलब्धि अल्प–मात्रामें थी, यहाँ तक कि गीताका शुद्ध हिन्दी अनुवाद भी कठिनतासे प्राप्त होता था। महाभारत, पुराणोंके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें दुर्लभ थे। जिन ग्रन्थोंकी सत्ताका ही लोगोंको पता नहीं था, वे ही ग्रन्थ आज जो लाखों–लाखोंकी संख्यामें हिन्दीमें उपलब्ध हैं इनका श्रेय भाईजीको ही है। केवल अनुवाद ही नहीं 'कल्याण' के माध्यमसे भाईजीने हिन्दी–साहित्यकी जो अभिवृद्धि की है वह अतुलनीय है। उन्होंने लेखकोंको तैयार किया, होनहार लेखकोंको प्रोत्साहन दिया। 'कल्याण' में लेख प्रकाशित होनेसे लेखक अपनेको गौरवशाली अनुभव करते थे। एक–एक विषयपर जो 'कल्याण' के विशेषांक प्रकाशित हुए उनमें इतनी ठोस सामग्रीका समावेश हुआ कि वे अपने विषयके विश्व–कोष बन गये। इनके अतिरिक्त भाईजी स्वयंकी लेखनीसे अध्यात्म–जगत्के किसी विषयको अछूता ही नहीं छोड़ा वरन् विपुल सामग्री प्रदान की।

जिस प्रकार वेदोंकी गूढ़ भाषाकी व्याख्या महर्षि वेदव्यासने पुराणों द्वारा की, उसी प्रकार भाईजीने सम्पूर्ण संस्कृत–साहित्यके सार भागको वर्तमान देशकी पृष्ठभूमिमें हिन्दीके माध्यमसे पुनर्व्याख्यायित किया। भाईजीके लिखित समस्त ग्रन्थोंकी तो बात ही अलग है, उनके केवल दो विशाल ग्रन्थ 'श्रीराधा–माधव–चिन्तन' तथा 'पद–रत्नाकर' को यदि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें प्रस्तुत किये जायँ तो किसी भी महान् साहित्यकारकी तुलनामें उनकी उपादेयता और महिमा अमोघ होगी।

भाईजीकी दृष्टिमें––"सत्साहित्य ही वास्तविक 'साहित्य' पद वाच्य है। केवल भाषाको साहित्य नहीं कहा जा सकता। भाषा तो साहित्यका माध्यम मात्र है। जो साहित्य विभिन्न क्षेत्रोंमें समान भावसे सभीको कल्याण–मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता है, सभीका कल्याण करता है, वही सत्साहित्य मानवको श्रेयकी ओर ले जानेके लिये विभिन्न रूपोंमें आत्म प्रकाश करता है तथा मानवको सदा श्रेयके मार्गपर ही आगे बढ़ाता रहता है।" भाईजीकी समस्त रचनायें चाहे गद्यमें हो या पद्यमें इसी महान् आदर्शसे ओत–प्रोत है। उनका पहला लेख 'मातृभूमिकी पूजा' जनवरी सन् १६११ के 'मर्यादा' मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। उससे लेकर अन्ततक उन्होंने जो भी लिखा चाहे विषय कुछ भी रहा हो, मानवको कल्याणके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता रहा। आध्यात्मिक साहित्यका सृजन शिमलापालके नजरबन्दीके जीवनसे प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने सर्वप्रथम 'नारद–भक्ति–सूत्रों'की व्याख्या अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें २५ वर्षकी उम्रमें लिखी। कालान्तरमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन–परिवर्द्धनके साथ 'प्रेम–दर्शन' के नामसे गीताप्रेससे प्रकाशित हुई। लक्ष्य इतना उच्च होनेसे ही भाईजी द्वारा निर्मित साहित्यका क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण हो गया। पद्य, निबन्ध, गद्यकाव्य, संस्मरण, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, टीका, पत्र, प्रवचन आदि वर्गोंमें उनकी लेखनीने हिन्दीमें साहित्य–सृजन किया। उनकी रचनाओंका परिचय भी यहाँ सम्भव नहीं है। यदि उनके सम्पूर्ण साहित्यका विवेचन किया जाय तो एक बहुत विशाल ग्रन्थ बन सकता है। लगभग बारह हजार पृष्ठोंका उनका साहित्य प्रकाशित हो चुका है। ये सभी ग्रन्थ हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि हैं। यह हिन्दी साहित्यके लिये और भी गौरवकी बात है कि इनके कई ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृतमें तथा अंग्रेजी, बंगला एवं तमिल आदि अन्य भाषाओंमें हुआ है। तमिल अनुवाद 'दक्षिण भारत हिन्दी–प्रचार सभा' के प्रेसमें छपे हैं। दक्षिण भारतमें जहाँ हिन्दीका प्रचार

बहुत कम है वहाँ इनके हिन्दी ग्रन्थोंका तमिलमें अनुवाद प्रकाशित होना एक विशेष महत्त्वकी बात है 'श्रीराधा–माधव–रस–सुधा' का अनुवाद तो संस्कृत, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, सिंधी, उड़िया, मराठी, उर्दू तथा रशन (रूसी) भाषाओंमें हुआ। इतना ही नहीं दक्षिण भारतके लोगोंने भाईजीके लिखित ग्रन्थ एवं 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिन्दीका अध्ययन किया। हिन्दी प्रचारका इससे अधिक ठोस माध्यम और क्या अपनाया जा सकता है। श्री र० शौरि राजन् लिखते हैं—–

"मेरा उनके (भाईजी) साथ परोक्षतः परिचय सन् १९४६ से है। मैं तत्काल तञ्जौर जिलेके तिरुवैयारुमें स्थित 'महाराजा संस्कृत कालेज' में 'तर्कशिरोमणि' की उच्च कक्षामें पढ़ रहा था। स्वाध्यायमें थोड़ा हिन्दी सीख गया था। हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि मुझ–जैसे शत–शत छात्रोंके मनमें जगायी गीताप्रेसकी छोटी–छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओंने। 'हिन्दू–संस्कृतिका स्वरूप' , 'उपनिषदोंके चौदह रत्न, 'कल्याण' के वार्षिक विशेषांक आदि उपादेय प्रकाशन हमें नूतन दिशा–दर्शन देते रहे।...............मैंने कई विद्वानों एवं सामान्य व्यक्तियोंके मुँहसे सुना—–'ऐसी पुस्तकोंके द्वारा ही हमारी गरिमापूर्ण हिन्दू–संस्कृतिका युगानुकूल प्रचार–प्रसार हो सकता है। गीताप्रेसवाले बड़ी ही श्लाघ्य सेवा कर रहे हैं। यदि श्रीपोद्दारजी–जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामें रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता।'

यह भाईजीके ही अध्यवसायका परिणाम था कि आजके नास्तिक युगमें बिना किसी विज्ञापनके धार्मिक पत्र 'कल्याण' की ग्राहक संख्या भारतवर्षके सभी मासिक पत्रोंसे बढ़कर उनके जीवनकालमें ही डेढ़ लाखके ऊपर पहुँच गयी। हिन्दीके सामान्य विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे इसकी प्रशंसा की है। यहाँ केवल दो सम्मतियाँ दी जा रही हैं—–

काशीके प्रसिद्ध विद्वान् **श्रीबलदेव उपाध्याय**, एम०ए०, पी०एच०डी० लिखते हैं—–

'कल्याण' के विशेषांक एक–से–एक बड़े तथा महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु "तीर्थांक" तो भारतीय तीर्थोंका विश्व–कोष ही है। इतनी प्रामाणिक उपादेय सामग्री हिन्दीमें तो क्या, किसी भी भाषाके ग्रन्थमें नहीं है। इसे आप अर्थवाद न समझें, यह तथ्यवाद है। ऐसे विशेषांक निकालनेके लिये धार्मिक–जगत् आप लोगोंका चिर–ऋणी रहेगा।

भारतके सुप्रसिद्ध ज्ञानवृद्ध विद्वान् **डॉ श्रीभगवान् दासजी,** डी०लिट्० लिखते हैं——

"आपके सदुद्योगोंकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ा है। 'तीर्थांक' देखा——भारतके सब तीर्थोंकी पूरी डायरेक्ट्री है और सैकड़ों अति सुन्दर चित्र भरे पड़े हैं। आपका समस्त हिन्दीभाषी भारत ऋणी है।"

जब भाईजीका गंभीर ग्रन्थ "श्रीराधा–माधव–चिन्तन" प्रकाशित हुआ तो हिन्दी साहित्यके सभी आदरणीय विद्वानोंने उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की।

डा० आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी, डी० लिट्० ने लिखा——

"श्रीराधा–माधव–चिन्तन' पढ़ गया हूँ। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सभी रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रकट होती है, पर यह ग्रन्थ तो भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी–जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता है।"

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्तजीने लिखा——

"श्रीराधा–माधव–चिन्तन' जैसी रचना श्रीहनुमानप्रसादजी–जैसे भक्त और चिन्तकसे ही सम्भव है। उन्होंने भक्तजनोंका अमित उपकार किया है।"

राष्ट्रपति पुरस्कृत **डा० कृष्णदत्तजी भारद्वाज**, एम०ए०, पी०एच०डी० ने लिखा——

"......................................इस सत्साहित्यके सर्जनसे श्रीपोद्दारजीने जहाँ हिन्दी साहित्यमें सत्साहित्यकी श्रीवृद्धिकी है, वहाँ भावुक भक्तोंकी भावनाको भी एक अभिनव संबल प्रदान किया।"

डा० बलदेवप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, एल०एल०बी०, डी०लिट्ने लिखा——

श्रीभाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारकी समर्थ लेखनीसे जो ग्रन्थरत्न निःसृत हैं, उनसे न केवल हिन्दीका साहित्य भण्डार समृद्ध हुआ है, किन्तु मधुर रसके उपासकोंको मनोवाञ्छित प्रसाद बड़ी स्पृहणीय मात्रामें मिल गया है।"

आचार्य श्रीगुलाबरायजी, एम०ए०, डी०लिट्ने लिखा——

'श्रीराधा–माधव–चिन्तन' के कुछ अंश पढ़े। श्रीपोद्दारजीकी साहित्य–सेवापर हम सबको गर्व है। इस पुस्तकका धार्मिक मूल्य तो है ही, साहित्यिक मूल्य भी उल्लेखनीय है।'

शास्त्रार्थमहारथी **पं० श्रीमाधवाचार्यजी**ने लिखा——

"श्रीराधा–माधव–चिन्तन' आदि साहित्य निश्चित ही किसी व्यक्तिकी विशेष अपनी कृति नहीं हो सकती। मुझे तो ऐसा अनुभव होने लगा मानो भाईजीके माध्यमसे श्रीराधारानीने स्वयं ही अपने कुछ मार्मिक उद्गार भक्तोंको वरदोपहारके रूपमें प्रदान किये हैं।"

इसी प्रकार भाईजी विरचित विशाल काव्य–ग्रन्थ "पद–रत्नाकर" हिन्दी साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। भाईजीके गद्य साहित्यसे तो फिर भी साहित्यकार परिचित थे परन्तु भाईजीने इतनी विपुल राशिमें काव्य रचना भी की, इसका ज्ञान साहित्य–जगत्में भी 'पद–रत्नाकर' के प्रकाशनके पूर्व बहुत न्यून मात्रामें था। इसका हिन्दीके सभी विद्वानोंने आदर किया।

व्रज साहित्यके मर्मज्ञ **श्रीप्रभुदयालजी मित्तल**, डी० लिट्० ने लिखा——

"परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन व्यापी शाश्वत साधनाने इस जगत्के जीवोंका कितना कल्याण किया है, यह सर्व विदित है। किन्तु उनकी साधना काव्य–क्षेत्रमें भी इतनी प्रशस्त थी, इसका ज्ञान अधिक व्यक्तियोंको नहीं है। मैंने श्रद्धेय भाईजीकी कुछ काव्य कृतियोंका पहले रसास्वादन किया था, किन्तु उन्होंने इतने विपुल परिमाणमें काव्य–रचनाकी थी, इसका परिज्ञान मुझे इस 'पद–रत्नाकर' ग्रन्थसे ही हुआ है।"

डा० वासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, डी० लिट्० ने लिखा——"पूज्य भाईजीकी सरस सरस्वतीका प्रसाद न केवल हिन्दी साहित्यकी निधिमें समलंकृत होगा अपितु संगीतके क्षेत्रमें भी इसका स्वत्व होगा।"

डा० रामकुमारजी वर्मा, एम०ए०, पी०एच०डी०, भूतपूर्व हिन्दी प्रोफेसर, मास्को (सावियत संघ) ने लिखा——

"इस अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार–बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य–मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है भाईजी कितने बड़े भक्त–कवि थे यह 'पद–रत्नाकर' को पढ़कर आज ही ज्ञात हो सका।"

डा० अवधबिहारी लाल कपूर, एम०ए०, डी०फिल० ने लिखा——

"उनके पदोंमें ऐसा विशाल संग्रह हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। 'कल्याण' के सम्पादन और अनेक पुस्तक–पुस्तिकाओंके लेखनमें निरवधि संलग्न रहते हुए भी वे इतने सारे व्यवहार और परमार्थके आदेश सूचक, तत्त्व–कथा–पूर्ण और भक्ति–भाव–प्रेरक बहुमूल्य पदोंकी रचना कर सके इनसे

जान पड़ता है उनका जीवन कितना समर्पित, कितना सरस और संगीतमय था। ....इन्हें 'तुक बंदिया' न कहकर 'महावाणी' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

डा० रामचन्द्रजी महेन्द्र, एम०ए०, पी०एच०डी० ने लिखा––

"एक ही ग्रन्थमें हिन्दू–संस्कृतिके अध्येता विद्वद्वर पोद्दारजीकी कविताओंके इस प्रकाशनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। यह ज्ञात न था कि भाईजीने काव्यके क्षेत्रमें इतना मौलिक योगदान दिया है। भारतीय संस्कृतिका काव्यके माध्यमसे इतना विशद विवेचन कदाचित् ही अन्यत्र उपलब्ध हो सके।......................भारतके नैतिक उत्थानकी दिशामें अनेकों पुस्तकें लिखी गयी हैं और लिखी जायेंगी, किन्तु 'पद–रत्नाकर' जैसी मौलिक, स्थायी महत्त्वकी काव्यकृति किसी भी देश और कालमें बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तकके प्रणेता कोई साधारण कवि नहीं, वरन् ऐसा काव्यस्रष्टा है जिन्होंने अपनी रचनाओंसे भक्ति साहित्यके एक युगका निर्माण किया है।"

बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' को हिन्दीमें प्रकाशित कराना चाहते थे। उन्होंने बड़े परिश्रम एवं व्ययसे इसका हिन्दीमें अनुवाद कराके 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को प्रकशित करानेके लिये सौंप दिया। कई प्रकारकी असुविधाओंके कारण वह बहुत दिनोंतक प्रकाशित नहीं हो पाया। एक दिन अचानक टण्डनजीने देखा कि 'कल्याण' के विशेषांकके रूपमें 'ब्रह्मवैवर्त–पुराण' हिन्दीमें प्रकाशित हो गया है और वह भी अत्यन्त अल्प मूल्यमें। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने तत्काल भाईजीको बधाईका एक पत्र भेजा जिसमें लिखा––"जो काम हम 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाके माध्यमसे करनेमें असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त हैं।"

हिन्दी साहित्यका इतना विशाल कार्य इतने सहज रूपसे हो जानेका कारण यही है कि भाईजीके माध्यमसे दैवी शक्ति कार्य कर रही थी। एक बार हिन्दुस्थान समाचार–समितिके एक प्रतिनिधिने भाईजीसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने उत्तर दिया––"'कल्याण'का सम्पादन मैं थोड़े ही करता हूँ। मेरी केवल अंगुली चलती है; परन्तु मुझे स्वयं पता नहीं चलता कि वह कौन–सी छिपी शक्ति है, जो मेरी अंगुलियोंको कलमपर ढकेल देती है। कभी–कभी मैं इस कार्यमें इतना लीन हो जाता हूँ कि मेरे सामने अगर कोई व्यक्ति खड़ा हो जाय तो मुझे उसका ध्यान नहीं रहता।"

डा० श्रीजगदीशजी गुप्त लिखते हैं—

"मैंने भारतीय प्रकाशनोंके तुलनात्मक आँकड़ोंको देखा और पाया कि यदि गीताप्रेसके प्रकाशनोंको कम कर दिया जाय तो हिन्दी भाषाका स्थान भारतकी अन्य कई भाषाओंके नीचे आ जायेगा।"

इस तरह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाईजीने चुपचाप हिन्दी साहित्यकी अनुपम सेवा करके उसको कितना समृद्ध बनाया। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें भाईजी नाम सदैव देदीप्यमान रहेगा।

हिन्दी साहित्यके युग निर्माता—श्रीभाईजी

श्रीभाईजीकी साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी थी। उनका अध्ययन बहुत व्यापक था। अच्छी पुस्तकें पढ़ना प्रारम्भसे ही उनका व्यसन-सा था। उन्होंने स्वयं एक बार बताया कि मेरी प्रारम्भिक अवस्थामें कलकत्तेके कॉलेज स्ट्रीटमें जहाँ पुरानी पुस्तकें बिकती हैं वहाँसे सस्ते दामपर अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद कर पढ़ता था। साथ ही उनका दृष्टिकोण बड़ा विशाल था। हिन्दी साहित्यकी जो सेवा और समृद्धि उन्होंने की—यह स्वतन्त्र ग्रन्थका विषय है। उस विराटताकी सीमा उतनी ही नहीं है जितनी अभीतक दृष्टि-पथपर आयी है। जितनी नहीं देखी जा सकी है, वह कहीं अधिक है। हिन्दीके प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार डॉ० किशोर काबराने एक स्थानपर लिखा है कि श्रीपोद्दारजीकी कृतियोंको अभीतक हिन्दीके साहित्यकारोंने 'धार्मिक' का 'लेबल' लगाकर अलग कर दिया है।

जब तक हिन्दीके साहित्यकारों, समालोचकों तथा इतिहास लेखकोंका यथेष्ट ध्यान इधर नहीं जायगा तबतक भाईजीकी साहित्यिक देनका मूल्यांकन संभव नहीं है। यद्यपि श्रीतुलसीदासजी एवं श्रीसूरदासजीने भी जो कुछ लिखा वह सब धार्मिक ही था, अन्य किसी विषयपर उन संतोंकी लेखनी मुखरित नहीं हुई पर उन्हें "सूर सूर तुलसी शशि" के रूपमें स्वीकार कर लिया गया पर भाईजीको उनके समकालीन सभी साहित्य-महारथियोंके भूरि-भूरि प्रशंसा करनेपर भी हिन्दी साहित्यके इतिहासमें उन्हें अभीतक उपयुक्त स्थान नहीं मिला है। हिन्दी साहित्यके युग निर्माता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य गुलाबरायजी, आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयी, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बलदेव उपाध्याय, डॉ बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ० प्रभुदयाल
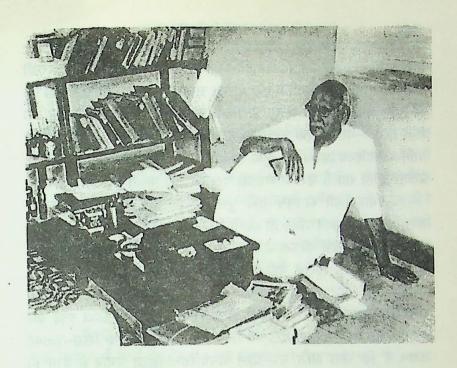
हिन्दी साहित्यके युग निर्माता
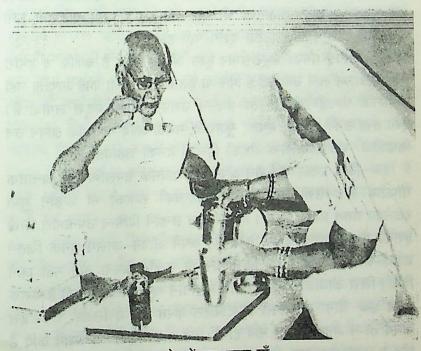
सेवामें रत पूज्या माँ

मित्तल, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक आदि——सभी श्रीभाईजीकी हिन्दी–साहित्यकी सेवासे अभिभूत थे। हिन्दीके एक प्रसिद्ध समालोचक विद्वान्‌ने मुझे कहा कि और विषयोंकी बात ही अलग है, हिन्दी साहित्यको पोद्दारजीने कितने नये शब्द दिये——यह भी एक महत्त्वपूर्ण शोधका विषय है। 'कल्याण' के पूर्व जो धार्मिक साहित्य प्रकाशित हुआ और उसके बाद जो धार्मिक साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसको ध्यानसे देखनेसे मेरा कथन स्पष्ट हो जायगा।

भाईजीकी लगभग नब्बे पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं। उनके सम्पादित साहित्यकी सीमा तो इतनी विशाल है कि बिना देखे–पढ़े उसकी कल्पना भी पूरी नहीं की जा सकती। उनकी लेखनीने सन् १६११ से फरवरी १६७१ तक कभी विराम नहीं लिया। देह त्यागके कुछ दिनों पूर्व तक शय्यापर लेटे–लेटे उनकी लेखनी चलती ही रही। उनकी कितनी रचनायें रामचरितमानसकी तरह कालजयी होंगी इसका निर्णय तो आज कोई कर नहीं सकता और न उसे देखनेके लिये हम रहेंगे। पर एक सिद्ध–संतका कथन है कि जैसे आज घर–घरमें रामचरितमानसका प्रचार है वैसा ही किसी दिन श्रीपोद्दारजीकी रचनाओंका होगा। वास्तवमें इतिहासके पन्नोंपर दूर–दूर तक दृष्टि डालनेपर भी एक भी बहु आयामी प्रतिभाके धनी श्रीभाईजी जैसे साहित्यकारके दर्शन नहीं होते।

ईसाई धर्मका प्रचुर प्रचार हुआ और हो रहा है क्योंकि वे हमारी निर्बलताओंका लाभ उठा रहे हैं फिर भी इतना कहनेमें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि श्रीभाईजीके साहित्य–प्रचारने उसपर पर्याप्त अंकुश लगाया है। इसी तरह उनके अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंके ज्ञानने उन भाषाओंके साहित्यके श्रेष्ठ अंशको हिन्दीमें देनेकी सहायता की।

जिस प्रकार भाईजीने अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियोंको अन्ततक गोपनीय रखा उसी तरह हिन्दी साहित्यकी सेवाको भी उन्होंने गुप्त रखनेका सतत् प्रयास किया। कितने लेख उन्होंने विभिन्न उपनामोंसे लिखे इसकी गणना करना दुष्कर कार्य है। अपने जीवन–कालमें उनके जितने काव्य–संग्रह प्रकाशित हुए किसी पर भी उन्होंने अपना नाम नहीं जाने दिया। जिस काव्यकी अनेक उद्‌भट विद्वानोंने खुलकर प्रशंसा की है उसके बारेमें एक 'दीन' के नामसे स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं——"इस दीनमें तो न अनुभव है, न भाव ही है। यह न तो किसी भी अंशमें कवि है और न काव्य शास्त्रका ही इसे तनिक ज्ञान है। यह तो सफल तथा शुद्ध

तुकबन्दी करनेमें भी असमर्थ है। इसीलिये इसे लज्जा तथा संकोच होता है, अपना परिचय देनेमें।"

जिन विद्वानोंने उनके साहित्यको कुछ गहराईसे परखा उनमें एक थे हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् भगवतीप्रसाद सिंह। उन्होंने एक स्थानपर लिखा है--"यह कहना एक अत्युक्ति नहीं है कि इस युगको हिन्दी साहित्यके इतिहासमें 'पोद्दार–युग' कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि इन लगभग ५० वर्षोंमें हिन्दी–साहित्यकी जितनी अभिवृद्धि श्रीपोद्दारजीने की उतनी किसी अकेले व्यक्तिने नहीं की। शायद हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता हो कि 'कल्याण' के विशेषांकोंका सम्पादक और इतने विशाल साहित्यका निर्माता एक ही व्यक्ति था।"

नये लेखकोंको तैयार किया

हिन्दी साहित्यकी जो उल्लेखनीय सेवा श्रीभाईजीने की उसमें एक महत्त्वपूर्ण कार्य था हिन्दीमें नये लेखकोंको तैयार करना। 'कल्याण' में ठोस आध्यात्मिक एवं सर्वोपयोगी सामग्री प्रकाशित होनेसे उसकी प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। 'कल्याण' के शैशवकालमें बाहरके लेखक अधिक नहीं थे। कुछ भाईजी स्वयं लिखते, कुछ भाव सेठजी मारवाड़ी मिश्रित हिन्दीमें देते। उनको प्राञ्जल हिन्दीमें लेखका रूप स्वयं भाईजी देते, कुछ पुराने संतोंकी संकलित सामग्री रहती। पर शीघ्र ही भाईजीने अच्छे–अच्छे संतोंसे सम्पर्क स्थापित करके उनको लिखनेके लिये प्रेरित किया। गाँधीजीसे भाईजीने लेख लिखवाये। जो महात्मा विरक्तभावसे अपनी साधनामें लगे रहते थे, उनको भी भाईजी प्रेरणा देकर प्रार्थना करके लोकोपकार्थ लेख लिखवाते। कहीं–कहीं वे स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना करते, कहीं अपने स्वजनको भेजकर, तो कहीं पत्र द्वारा।

उदाहरणके लिये श्रीनारायण स्वामी भगवत्प्राप्त संत थे। वे चौबीसों घंटे मौन रहते थे। वैसे एक अमीर घरानेमें उच्च शिक्षित पुरुष थे पर तीव्र वैराग्य हो जानेसे कमरमें डोरी बाँधकर उसीके सहारे टाटकी एक कौपीन लगाये रखते थे। अपने पास संग्रह कुछ नहीं रखते थे। रातको केवल सवा दो घंटे सोते थे। बाकी समय निरन्तर जप करते। सन् १९३० में वे ऋषिकेशमें थे। उनके पास भाईजी स्वयं गये और उनसे अपने अनुभव लिखकर देनेकी

प्रार्थना की। पहले तो अपने सहज विरक्त भावके कारण उन्होंने स्वीकार नहीं किया। भाईजीके पुनः अनुरोध करनेपर रात्रिमें कुछ समय निकालकर लिखना स्वीकार किया। उन्होंने बाताया किं मैंने जो भी लिखा है वह मैंने स्वयं अनुभव करके देखा है। उसीको भाईजीने कल्याण वर्ष ४ के १० वें अंकमें 'एक संतका अनुभव' शीर्षकसे प्रकाशित किया।

जिन बंगाली विद्वानों, संतोंसे भाईजीका परिचय था उनसे बंगलामें लिखवाते एवं स्वयं उसका हिन्दी अनुवाद करते। अयोध्या, वृन्दावनके संतोंसे लिखवाया और उनकी भाषाका परिमार्जन स्वयं करते। प्रारम्भमें पं० गोपीनाथजी कविराजके पास भी गये। उन्होंने कमरा बन्द करके लेख लिखवाया। पं० मदनमोहनजी मालवीयके पास भी गये उनसे लेख लिखानेका अनुरोध किया। वे लिखनेमें कमजोर थे, वक्ता बहुत अच्छे थे। उन्होंने कहा——कमरा बन्द करो। उनको एक लेख लिखानेमें ६ घंटे लगे। वे बोलते गये, भाईजी लिखते गये। फिर उन्होंने लेख पढ़ा और हस्ताक्षर करके दे दिया। ६ घंटेमें बाहर बहुत भीड़ लग गई। बाहर निकलते ही वे बोले——देखो तुमने मेरा कितना समय नष्ट कर दिया। उसके बाद उनके और गोपीनाथजीके पास अपना आदमी भेज देते और वे लिखवा देते। आगे चलकर गोपीनाथजी कविराजके लिये तो बनारसमें ही एक आदमी रख दिया जो उनके पीछे लगकर लिखवाता क्योंकि वे बहुत ही व्यस्त रहते थे। गाँधीजी बादमें पत्र देनेसे लेख भेजने लग गये। नये लेखकोंके जो लेख आते उनकी भाईजी स्वयं काया-कल्प करके उनके नामसे ही 'कल्याण' में प्रकाशित करते। लेखक अपने लेखका परिवर्तित स्वरूप देखता तो मुग्ध हो जाता और आगे लिखनेके लिये उत्साहित होता। इतना ही नहीं ऐसे नये लेखक अपनेको गौरवान्वित अनुभव करते कि 'कल्याण' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकामें हमारा लेख प्रकाशित हो गया। इस तरहसे बहुतसे नये लेखक हिन्दीमें तैयार हुए। साथ ही हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वानों और कवियोंसे भी भाईजी अनुरोध करके लिखवाते। भाईजीके शील, विनय और सम्मानके कारण सभी उनका अनुरोध ा प्रेमसे स्वीकार करते। मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, निराला जैसे कवि भी अपनी रचनायें सहर्ष भेजते। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य गुलाबरायजी, श्रीरामनाथ 'सुमन', श्रीवासुदेव शरण अग्रवाल, पं० किशोरीदास वाजपेयी, श्रीवियोगी हरि आदि बराबर अपनी रचनायें भेजते।

जो लोग आध्यात्मिक विषयोंपर नहीं लिखते उनको भी भाईजी प्रेरणा करके आध्यात्मिक विषयोंपर लिखवाते। अपने समयके उपन्यास–सम्राट श्रीप्रेमचन्दका नाम प्रायः सभी जानते हैं। वे सामाजिक उपन्यास और कहानियाँ लिखनेमें उस समय सर्वोच्च माने जाते थे। भाईजीने उनसे भी आध्यात्मिक लेख लिखवाया। उनका पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

हंस कार्यालय ता० १६। २। १९३१ ई०

लखनऊ

प्रिय हनुमानप्रसादजी,

आपका कृपापत्र मिला। आपका यह कथन सत्य है कि मैंने तीन वर्षोंमें 'कल्याण' के लिये कुछ नहीं लिखा, लेकिन इसके कारण हैं। यह एक धर्म विषयक पत्रिका है और मैं धार्मिक विषयमें कोरा हूँ। मेरे लिये धार्मिक तत्वोंपर कुछ लिखना अनधिकार है। आप अधिकारी होकर मुझ अनधिकारीसे लिखाते हैं। इसलिये अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। "श्रीकृष्ण और भावी जगत्" यह प्रसंग मेरे अनुकूल है और मैं इसी पर कुछ लिखूँगा।

भवदीय —

प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचन्दजीसे भाईजीका बड़ा प्रेमका सम्बन्ध रहा। उन्होंने अपने निधनके पूर्व भाईजीके पास गोरखपुर रहनेकी रुचि भी प्रकटकी थी। परंतु यह संयोग बन नहीं सका।

इसी तरह महावीरप्रसादजीका पत्र पठनीय है—

दौलतपुर (रायबरेली)

श्रीमत्सु सादरं निवेदनमिदम् १६। २। ३१

कृपापत्र मिला। लज्जासे सिर नत हो गया। आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्त्तव्य होना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि आपके लिये कुछ लिखूँ। पर दिमाग पक–सा रहा है। कुछ सूझता नहीं। स्तुति कुसुमांजलिवाला लेख बिना आपके तकाजे हीके लिखा था। इस समय तो मैं और भी कष्टमें हूँ—

(१) मेरे पुत्र स्थानीय भानजेको १५ दिन हुए ६ महीनेका जेल हो गया। कांग्रेसका काम करता था।

(२) उसकी बहूको आज ८ रोजसे सतत ज्वर है।

(३) मेरे पैरमें क्षत हो जानेसे चल फिर नहीं सकता।

"एकस्य दुःखस्य" वाला मसला है। अतएव —

टहल न कहु मों ते बनिआई, छमहु छमा मंदिर तुम भाई।

आपका

म० प्र० द्विवेदी

पुनश्च :

गोपियोंके सम्बन्धवाला लेख आप खुशीसे उद्‌धृत कर सकते हैं। या उसे काट छाँटकर नया कर सकते हैं। मैं उसे अपना ही समझूँगा।

उनके तथा श्रीमैथिलीशरण गुप्तका एक पत्र प्रस्तुत है। जिससे पता लगता है ये विद्वान् भाईजीकी साहित्य सेवाओंसे कितने अभिभूत थे।

दौलतपुर (रायबरेली) ७ । ६ । ३२

भाई हनुमानप्रसाद,

सांसारिक यातनाओंकी ज्वालासे मुझ झुलसे हुए पर आपने घड़ोंका जल क्या पीयूषकी वर्षा कर दी। कलके कल्याणके ईश्वरांक पाठमें आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ। आज ६१२ पृष्ठपर आपका लेख पढ़ा। ६१४ के पहले कालमकी पहली ५ सतरें पढ़कर यह कार्ड लिख रहा हूँ। मेरी आँखोंसे जो आँसू निकले हैं और अबतक निकल रहे हैं उनका कुछ अंश ऊपर कार्डपर भी लग गया है। आप धन्य है — आपकी योजना धन्य है — भगवद्‌भक्ताय ते नमः। कृतार्थ

म० प्र० द्विवेदी

नमः श्रीरामचन्द्राय दौलतपुर (रायबरेली), १३ । ८ । ३७

कल्याणके संत अंककी कापियाँ मिली। कृतार्थ हुआ। अद्‌भुत, अश्रुतपूर्व, अदृष्टपूर्व योजना है। भगवान् आपको अपनी शक्ति दे। आपकी बदौलत सम्भव है, मुझ सांसारिक जीवका भी कुछ भला हो जाय।

कृपापात्र म० प्र० द्विवेदी

प्रिय पोद्दारजी, चिरगाँव (झाँसी)

२७ । ८ । ३५

जय जानकी जीवन। 'कल्याण' के विशेषांक क्या होते हैं, अपने प्रतिपाद्य विषयोंके पूरे–पूरे साहित्य होते हैं। 'योगांक' भी ऐसा ही जान पड़ता है। उसके लिये बधाई क्या दूँ, आप सरीखे परम भागवतको सादर प्रणाम करता हूँ।

विनीत,

मैथिलीशरण गुप्त

एक पत्र श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानन्दन पंतका प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे पता लगता है कि छायावादी कवियोंसे भी भाईजी 'कल्याण' के लिये लिखवाते थे––

प्रिय पोद्दारजी, नमो नमः गढ़कोला, मगरायर (उन्नाव)

१७ । १० । ३१

आपका प्रिय पत्र मिला। मैं कलकत्ता सम्मेलन जाकर बीमार पड़ गया। पश्चात् घर लौटनेपर अनेक गृहप्रबन्धोंमें उलझा रहा। कई बार विचार करनेपर भी आपके प्रतिष्ठित पत्रके लिये कुछ लिख नहीं सका। क्या लिखूँ, आपके सहृदय सज्जनोचित बर्तावके लिये मैं बहुत ही लज्जित हूँ। आपके आगेके अंकोंके लिये कुछ–कुछ अवश्य भेजता रहूँगा। एक प्रबन्ध कुछ ही दिनोंमें भेजूँगा।

आपका

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

अल्मोड़ा, १६ जून

प्रिय पोद्दारजी,

सादर नमस्कार। पत्रके लिये धन्यवाद। हिन्दू संस्कृति अंकके लिये अपनी एक कविता सेवामें भेज रहा हूँ। मैं जुलाईके प्रथम सप्ताह तक प्रयाग पहुँच जाऊँगा। आशा है आप सानन्द हैं। कृपा रखें।

आपका,

सुमित्रानन्दन पंत

श्रीभाईजीकी सजगता और विनयशीलता 'दीदी' पत्रके सम्पादक ठाकुर श्रीनाथ सिंह और डॉ० श्रीलोकेश चन्दको लिखे पत्रोंमें दर्शनीय है—

सम्मान्य श्रीठाकुर साहब, कल्याण, गोरखपुर

आषाढ़, कृ० १०। २००६

सादर प्रणाम। 'कल्याण' का अगला विशेषांक 'बालक अंक' प्रकाशित करनेका निश्चय हुआ है। बालक और युवकोंमें अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, संस्कृति और धर्मके प्रति अनास्था, कर्तव्यविमुखता, विलासता आदि दोष बढ़ रहे हैं—यह आप मुझसे अधिक जानते हैं। हमारे बालक सदाचारी, स्वस्थ, भगवद्भक्त, देशभक्त, सेवापरायण, कर्त्तव्यशील, उदार और महान्—हृदय हों, इसी उद्देश्यसे 'बालक अंक' प्रकाशित करनेका विचार किया गया है। आप हिन्दीके स्तंभ हैं, बाल–मनोविज्ञानके पंड़ित हैं, बाल साहित्यके प्रख्यात निर्माता हैं, संस्कृति और धर्मके प्रेमी हैं, एवं 'कल्याण' को हृदयसे अपना माननेवाले हैं, इसलिये आपकी सेवामें विशेष रूपसे प्रार्थना है कि आप 'बालक अंक' के लिये स्वयं कुछ लिखकर भेजें और अन्यान्य अधिकारी महानुभावोंसे उपयोगी लेख और निबंध लिखवाकर देनेकी कृपा करें। इस अंकमें भारतीय तथा विदेशी बालकों और पुरुषोंके आदर्श संक्षिप्त चरित्र रहेंगे और बालकोंके जीवनका उत्थान करनेमें सहायक कुछ लेख भी रहेंगे। आशा है, आप कृपापूर्वक इस कार्यमें सहायक होंगे।

कृपा तो आपकी है ही।

भवदीय

हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रिय लोकेशजी,

सस्नेह भगवत्स्मरण। २५। ३। १९६६

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अगले वर्ष 'कल्याण' का 'श्रीरामवचनामृत अंक' नामक विशेषांक निकलने जा रहा है। तीन वर्ष पूर्व 'श्रीकृष्णवचनामृत अंक' निकला था, जिसका जनताने पर्याप्त आदर किया था। आपने उसे देखा ही होगा। उसी पद्धतिके अनुसार अबकी 'श्रीरामवचनामृत अंक' निकालनेका विचार है, जिसमें श्रीरामचरितके

अन्तर्गत विविध प्रसंगोंपर एवं विविध विषयोंपर दिये गये श्रीरामवचनोंका वृहत् संग्रह रहेगा। वृहत्तर भारतके श्याम, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बाली आदि देशोंमें जहाँ–जहाँ श्रीरामचरित विषयक साहित्य उपलब्ध है, वहाँसे संकलित करके आप श्रीरामके विविध विषयोंपर किये गये उपयोगी चुने हुए उपदेशोंका एक संग्रह भिजवा सकें तो उस अंककी शोभावृद्धि एवं उपयोगितामें पर्याप्त सहायता मिलेगी। उपदेशोंके साथ ही ग्रंथोंके नाम तथा स्थलादिका निर्देश करते हुए मूल पाठ भी देवनागरी अक्षरोंमें रहना चाहिये। उन प्रसंगोंका भी वर्णन करना चाहिये जिनमें ये उपदेश दिये गये हैं। कृपया लौटती डाकसे उत्तर दें कि आप अपना बहुमूल्य संग्रह कब तक भेज सकेंगे। शेष भगवत्कृपा।

आपका –– सम्पादक

श्रीभाईजीके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर न लिखनेवाले मनीषी भी कैसे लिख देते थे, इस संदर्भमें गुरुजी गोलवरकरजीका पत्र पठनीय है––

सरसंघ चालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ डॉ० हेडगवार भवन,
मा० स० गोलवरकर केन्द्र––नागपुर नागपुर–२, जानपुर
दि० २५–१२–१९४९

श्रद्धेय भाईजी,

मैं लेखक नहीं हूँ। न ही मैंने बहुत अध्ययन किया है। परन्तु आपने 'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति विशेषांकके लिये मुझे कुछ लिखना ही चाहिये, यह आग्रह किया। आपके प्रति मेरे हृदयमें जो सादर श्रद्धा है तथा आपका मुझसे जो प्रेम है, उसीसे बाध्य होकर मैंने कुछ लिखनेका साहस किया है। विषय बहुत विशाल और लेखकी स्वयं निर्धारित मर्यादा बहुत छोटी होनेसे विवेचन त्रुटित हो रहा है। कह नहीं सकता कि आप उसे पसंद करेंगे या नहीं। यदि ठीक न जँचे तो उसे छोड़ दीजिये।

आपका स्नेहाकांक्षी
मा० स० गोलवरकर

स्वामी शिवानन्दजी अपने आप लेख भेजते थे। डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी, श्रीअक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, स्वामी भोले

बाबा, श्रीराजगोपालाचारी आदि लेख भेजते थे। अधिकांश लोग कल्याणको अपना समझकर लिखते थे। पारिश्रमिक देनेपर भी स्वीकार नहीं करते थे वरन् कुछ लोग तो अपमान समझते थे। जो लोग पारिश्रमिकके लिये ही लिखते थे अथवा भाईजी जिनकी कमजोर आर्थिक स्थितिसे परिचित थे, उन्हें भाईजी पारिश्रमिक भेजते थे। ऐसा लगता था कि भाईजीके 'विशेष–कार्य' में सहायता देनेके लिये देशकी समस्त बौद्धिक ऊर्जा, सारा तप–त्याग, सारी साधना अपना योगदान देनेके लिये लालायित हो उठी थी। विशेषांकके लिये लेख माँगते समय कह दिया जाता कि लेख संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू––इनमेंसे किसीभी भाषामें लेख भेज सकते हैं। अंग्रेजीका अनुवाद गोस्वामीजी करते। अनेक भाषाओंके जानकार श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी भाईजीके पास ही रहते थे। वे विदेशी भाषाओंके भी जानकार थे। गुजराती, बंगलाका भाईजी स्वयं करते। अन्य अधिकारी लोगोंसे कराते। श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी गुजरातीमें भेजते थे उसका अनुवाद भाईजी करते थे।

इतना ही नहीं 'कल्याण' के लिये ईसाई, पारसी भी लिखते थे। कई ईसाई, पादरी भाईजीके अच्छे मित्र थे। अनेक मुसलमान भाईजीसे बहुत प्रेम रखते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालयके दर्शनके प्रोफेसर डॉ० मोहम्मद हाफिज़ सैयद भाईजीके पास आते थे, उन्हें एक बार अपने घर भी ले गये––अपने भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन कराने। भाईजी सच्चे सनातन धर्मको माननेवाले थे। उनकी दृष्टिमें सभी धर्मोंके ज़ुपासक एक ही तत्वकी विभिन्न नाम, रूपोंसे पूजा करते हैं। वे बराबर लिखते थे न मंदिर तोड़े जाने चाहिये, न मस्जिद, न गिरजाघर। सभी उपासना स्थल हैं। अपने पदों तकमें वे––

"अर्हत, बुद्ध, ईसा, अहुरमज्द, अल्लाह" सबको एक ही सत्यके स्वरूप कहते थे। वास्तवमें एक सनातन धर्म ही ऐसा है जो सब धर्मोंका आदर करता है। क्या कोई ईसाई या मुसलमान बता सकता है कि उनके धर्माचार्योंने राम, कृष्ण, ब्रह्मको अपने उपास्यके बराबर रक्खा हो। यह तो स्वार्थी राजनीतिक नेताओंकी देन है कि उन्होंने अपने वोट–बैंक बनानेको एक धर्म निरपेक्षका नाम देकर सनातन धर्मका विरोध शुरू कर दिया और जनताको भ्रमित कर दिया। भाईजीने जो सच्चे सनातन धर्मका

स्वरूप अपनी लेखनी, अपने कृतित्व और वाणीसे रखा, उसका कोई सच्चा मानव-हितैषी समर्थन किये बिना नहीं रह सकता। भाईजी अपने कार्यालयके कमरेमें ईसामसीहका चित्र लगाये रखते थे। एक दिन किसी संकीर्ण विचारवालेने कहा--यह चित्र आप क्यों लगाते हैं ? भाईजीने कहा---हमें ईसा अच्छे लगते हैं। यह हम मानते हैं कि उनका धर्म हमारे सनातन धर्मका एक अंश मात्र है पर उनमें जो अच्छी बातें है उन्हें माननेमें हमें आपत्ति क्यों होनी चाहिये। काश ! ऐसे ही आग्रहशून्य विचार अन्य धर्मोंके आचार्य भी जनताके सम्मुख रखते तो हमारा विश्व कितना सुखी हो जाता। यही 'कल्याण' की लोकप्रियताका सच्चा हेतु है जिसके कारण देश-विदेशमें सबने उसे गले लगाया।

गीताप्रेसका विकास

गीताप्रेसकी स्थापना श्रीसेठजीने मई सन् १९२३ में गोरखपुरमें की। उस समय भाईजी बम्बईमें थे। अगस्त १९२७ में सेठजीने जसीडीहसे भाईजीको तार दिया कि 'कल्याण' का स्टाफ लेकर शीघ्र गोरखपुर जाकर दूसरे वर्षका दूसरा अंक वहींसे प्रकाशित करो। उस समय तक लगभग चार वर्षमें कुछ संस्करण गीताके और सेठजीकी लिखी हुई दो छोटी-छोटी पुस्तकें 'प्रेम भक्ति प्रकाश' और 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' ही प्रकाशित हुई थी। पैन-फ्लेट-बेड सिलिंडर मशीन लग जानेसे मुद्रणकी इतनी सामग्री रहती नहीं थी और मशीन पर्याप्त समय खाली रहती थी। श्रीसेठजीका विश्वास था कि भाईजीके गोरखपुर आ जानेसे यह समस्या हल हो जायेगी। तार मिलनेके कुछ ही दिन बाद भाईजी गोरखपुर आ गये। साहित्य प्रकाशनका कार्य भार भाईजीके सम्भालनेपर कार्य तीव्र गतिसे बढ़ने लगा। उनकी कार्यशैलीसे लेखक अनुवादक मिलते गये और गीताप्रेसका कार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। प्रेसके विद्युत-गतिसे विकास होनेका मूल कारण था श्रीभाईजीका दिव्य व्यक्तित्व। जिसके कारण सुयोग्य व्यक्ति आकर्षित होकर कार्यमें सहयोग देने लगे। मुद्रणमें कोई भी अशुद्धि न रहे इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। प्रत्येक प्रूफ तीन बार पढ़ा जाता था जिसमें दो बार

भाईजी स्वयं देखते थे।

जो प्रूफ सायंकाल छः बजे आते वे चाहे कितने ही हों भाईजी प्रातः सात बजेतक उन्हें देखकर लौटा देते थे। इसके साथ ही प्रत्येक सन्दर्भके श्लोकों आदिको मूल ग्रंथसे मिलाया जाता था। जिससे प्रत्येक प्रकाशनकी प्रमाणिकता बढ़ जाती थी। उनके इसी अध्यवसायका परिणाम था कि गीताप्रेसकी प्रतिष्ठा सब वर्गोंमें बढ़ती गयी। साथ ही सुन्दर चित्रोंने इस कार्यको बढ़ानेमें चार चाँद लगाये।

भाईजीके जीवनकालमें लगभग ५७५ पुस्तकें विभिन्न आकारमें मुद्रित होकर देश–विदेशमें दैवी सम्पदाका प्रचार करने लगी थी। बहुत–सी पुस्तकोंके संस्करण लाखोंकी संख्यामें पहुँच गये थे। भाईजीकी एक और विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक कर्मचारीकी सुख–सुविधाका पूरा ध्यान रखते थे और प्रत्येक कर्मचारी भाईजीको अपना संरक्षक मानकर आदर करता था और गीताप्रस कार्य करता था।

मूल्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो इतनी सस्ती पुस्तकें कोई भी अन्य प्रकाशक देनेमें समर्थ नहीं था। केवल कल्याणको ही देखा जाय तो प्रथम वर्षके बारह अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या ३८४ थी तथा वार्षिक मूल्य तीन रुपया था। भाईजीके नित्यलीलालीन होनेके पूर्व सन् १९७० के ४४ वें वर्षका वार्षिक मूल्य ६ रुपया था तथा पृष्ठ संख्या थी १३५६ अर्थात् तीन गुनेसे भी अधिक। प्रकारान्तरसे कल्याणका वार्षिक शुल्क भाईजीने कागजके मूल्यके उसी स्तरपर रखा जो चौवालिस वर्ष पहले था जबकि इन ४४ वर्षोंमें सभी वस्तुओंका मूल्य एक हजार प्रतिशतसे अधिक बढ़े। बिना विज्ञापनके पत्रकारिता जगत्में यह एक आश्चर्यजनक कीर्तिमान है जो किसीके लिये मीलका पत्थर है। यह कीर्तिमान् हमारे देशके सम्पादकोंके लिये स्पृहणीय था ही विदेशके पत्रकारोंने भी इसकी गरिमा स्वीकार की है।

❀

श्रीभाईजीकी रचनाएँ

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन का सम्वत्
१. मनको वशमें करनेके कुछ उपाय	१९८०
२. पत्र पुष्प (पाँचवाभाग)	१९८०
३. स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी	१९८२
४. ब्रह्मचर्य	१९८२
५. समाज–सुधार	१९८५
६. मानव–धर्म	१९८६
७. साधन–पथ	१९८६
८. भक्त बालक	१९८७
९. भक्त नारी	१९८७
१०. आनन्दकी लहरें	१९८८
११. तुलसी दल (भगवच्चर्चा भाग १)	१९८८
१२. भक्त पंचरत्न	१९८८
१३. नैवेद्य (भगवच्चर्चा भाग २)	१९८९
१४. आदर्श भक्त	१९९०
१५. प्रेमी भक्त	१९९०
१६. गोपी प्रेम	१९९१
१७. प्रेम दर्शन	१९९२
१८. कल्याण कुञ्ज (भाग १)	१९९२
१९. दिव्य संदेश	१९९२
२०. उपनिषदके चौदह रत्न	१९९२
२१. मारवाड़ी धार्मिक गीत	१९९२
२२. वर्तमान शिक्षा	१९९३
२३. प्राचीन शिक्षा	१९९९
२४. भवरोगकी रामबाण दवा	२००१
२५. लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग १	२००१
२६. आनन्दका स्वरूप (लोक परलोकका सुधार कामके पत्र भाग २)	२००२
२७. हिन्दू क्या करें ?	२००२
२८. सत्संगके बिखरे मोती	२००७
२९. प्रार्थना	२००७
३०. हिन्दू–संस्कृतिका स्वरूप	२००८
३१. महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर (लोक परलोकका सुधार कामके पत्र) भाग ३)	२००८
३२. भगवान्की पूजाके पुष्प (कल्याण कुञ्ज (भाग २)	२००८
३३. सिनेमा मनोरञ्जन या विनाशका साधन	२००९
३४. नारी शिक्षा	२००९
३५. भगवत्प्राप्ति और हिन्दू–संस्कृति भगवच्चर्चा (भाग ३)	
३६. शान्ति कैसे मिले ? (लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र) भाग ४)	२००९
३७. दुःख क्यों होते हैं ? (लोक परलोकका सुधार कामके पत्र) भाग ५)	२००९
३८. भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (कल्याण कुञ्ज (भाग ३)	२००९
३९. साधकोंका सहारा (भगवच्चर्चा (भाग ४)	२०१०
४०. भगवच्चर्चा (भाग ५)	२०१०

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन का सम्वत्
४१. पूर्ण समर्पण (भगवच्चर्चा (भाग ६)	२०१०
४२. विवाहमें दहेज	२०१०
४३. बलपूर्वक देवमन्दिर प्रवेश और भक्ति	२०१०
४४. दीन–दुखियोंके प्रति कर्तव्य	२०१०
४५. दैनिक कल्याण–सूत्र	२०१०
४६. जीवनमें उतारनेकी सोलह बातें	२०१४
४७. श्रीराधा नाम और राधा उपासना सनातन है	२०१४
४८. पद	२०१४
४६. श्रीराधा–माधव–चिन्तन	२०१८
५०. श्रीराधा–माधव–रस सुधा (षोडश गीत)	२०१८
५१. रास लीला–रहस्य	२०२०
५२. गीतामें विश्वरूप–दर्शन	२०२१
५३. रस और भाव	२०२२
५४. पूर्ण परात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव	२०२३
५५. मानव कल्याणके साधन (कल्याण कुञ्ज भाग ४)	२०२४
५६. दिव्य सुखकी सरिता (कल्याण कुञ्ज भाग ५)	
५७. सफलताके शिखरकीसीढ़ियाँ (कल्याण कुञ्ज भाग ६)	२०२४
५८. श्रीराधा–जन्माष्टमी व्रत महोत्सवकी प्राचीनता–महिमा और पूजा विधि	२०२५
५६. श्रीब्रज रस माधुरी	२०२५
६०. प्रार्थना पीयूष	२०२५

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन का सम्वत्
६१. मधुर (भाग १)	२०२५
६२. मधुर (भाग २)	२०२५
६३. कल्याणकारी आचरण	२०२६
६४. मेरी स्थितिका स्पष्टीकरण	२०२६
६५. श्रीराधा–माधव–चिन्तन परिशिष्ट	२०२६
६६. व्रज रसकी लहरें	२०२७
६७. हरि प्रेरित हृदयकी वाणी	२०२७
६८. श्रीकृष्ण महिमाका वर्णन	२०२७
६६. श्रीराधा–माधवका मधुर रूप–गुण–तत्त्व	२०२७
७०. व्यवहार और परमार्थ	२०३०
७१. सुख और शान्तिका मार्ग	२०३०
७२. दाम्पत्य जीवनका आदर्श	२०३२
७३. परमार्थकी मन्दाकिनी (कल्याणकुञ्ज भाग ७)	२०३३
७४. सत्संग वाटिकाके बिखरे सुमन	२०३४
७५. परमार्थकी पगडंडियाँ	२०३४
७६. आरती माला	२०३४
७७. पद–रत्नाकर	२०३५
७८. शान्तिकी सरिता	२०३६
७६. समाज किस ओर जा रहा है	२०३६
८०. सुखी बनो	२०३६
८१. मानव जीवनका लक्ष्य	२०३७
८२. अमृत कण	२०३९
८३. सुखी बननेके उपाय	२०४१
८४. गीता–चिन्तन	२०४३
८५. श्रीभगवन्नाम–चिन्तन	२०४३
८६. साधकोंके पत्र	२०४८
८७. सरस पत्र	२०५६
८८. व्रजभावकी उपासना	२०५६

Shri H.P.Poddar's Writtings reproduced in English

1. The philosophy of love
2. Way to God realization
3. Gopi's love for Sri Krishna
4. Our present day education
5. The Divine name and its practice
6. Wavelets of Bliss
7. The Divine Message
8. Transcendent bliss and love
9. Neetarean Bliss of Sri Madhav
10. Fountain of Bliss
11. Path of Divinity
12. Turn to God
13. Look Beyond the Veil
14. How to attain Eternal Happiness

आंशिक स्वरचित एवं सम्पादित पुस्तकें

पुस्तकका नाम	प्रथम प्रकाशन का सम्वत्
१. भक्त चन्द्रिका	१९९०
२. भक्त सप्तरत्न	१९९०
३. भक्त कुसुम	१९९०
४. यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ	१९९०
५. भक्तराज हनुमान	१९९५
६. सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	१९९६
७. प्रेमी भक्त उद्धव	१९९६
८. महात्मा विदुर	१९९६
९. भक्तराज ध्रुव	१९९६
१०. भक्त सौरभ	१९९६
११. भक्त सरोज	१९९६
१२. भक्त सुमन	१९९६
१३. ढ़ाई हजार अनमोल (संत वाणी)	१९९६
१४. भक्त सुधाकर	२००८
१५. भक्त महिलारत्न	२००८
१६. भक्त दिवाकर	२००८
१७. भक्त रत्नाकर	२००८
१८. ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२००९
१९. आरती संग्रह	२०१०

श्रीभाईजी द्वारा अनुदित साहित्य (टीका साहित्य)

१. श्रीरामचरित मानस

२. विनय पत्रिका

३. दोहावली

४. रास पञ्चाध्यायी

अमृत–कण

पूज्य भाईजीकी लेखनीने अध्यात्मके प्रत्येक विषयपर विपुल सामग्री प्रदान की है। प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ऊपर दे दी गई है। यहाँ केवल कुछ विषयोंपर उनकी लेखनीसे निसृत कण दिये जा रहे हैं।

(१) **भक्तियोग**—चित्तवृत्तिका निरन्तर अविच्छिन्न रूपसे अपने इष्ट स्वरूप श्रीभगवान्में लगे रहना अथवा भगवान्में परम अनुराग या निष्काम अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। भक्तिके अनेक साधन हैं, अनेकों स्तर हैं और अनेकों विभाग हैं। ऋषियोंने बड़ी सुन्दरताके साथ भक्तिकी व्याख्या की है। वस्तुतः भगवान् जैसे भक्तिके वशमें होते हैं, वैसे और किसी साधनसे नहीं होते। ....भगवान् श्रीकृष्णके लिये अनुकूलतायुक्त अनुशीलन होता है, उसीका नाम भक्ति है। अनुकूलताका तात्पर्य है, जो कार्य श्रीकृष्णको रुचिकर हो, जिससे श्रीकृष्णको सुख हो, शरीर, वाणी और मनसे निरन्तर वही कार्य करना। ....श्रीकृष्णसे यहाँ श्रीराम, नृसिंह, वामन आदि सभी भगवत्स्वरूप लिये जा सकते हैं। ....भक्तिके तीन भेद हैं—साधन–भक्ति, भाव–भक्ति और प्रेम–भक्ति। इन्द्रियोंके द्वारा जिसका साधन हो सकता हो, ऐसे श्रवण—कीर्तनादिका नाम साधन–भक्ति है। ....साधन–भक्ति दो प्रकारकी होती है—(१) वैधी और (२) रागानुगा। ......शुद्ध–सत्व–विशेष स्वरूप प्रेमरूपी सूर्यकी किरणके सदृश रुचिकी अर्थात् भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषाके द्वारा चित्तको स्निग्ध करनेवाली जो एक मनोवृत्ति होती है, उसीका नाम भाव है। ....भावकी परिपक्व–अवस्थाका नाम प्रेम है।

(भगवच्चर्चा भाग ५)

(२) **ज्ञानयोग**—वह परमतत्त्व ऐसा है जो न कभी देखा जा सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है, न उसका कोई गोत्र है, न उसका कोई वर्ग है, न उसके चक्षु–कर्ण और हाथ–पैर आदि है। वह न भीतर प्रज्ञावाला है, न बाहर प्रज्ञावाला है, न दोनों प्रकारकी प्रज्ञावाला है, न प्रधान–धन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, वह न देखनेमें आता है, न उससे कोई व्यवहार किया जा सकता है, न वह पकड़में आता है, न उसका कोई लक्षण (चिन्ह) है; जिसके सम्बन्धमें न चित्तसे कुछ सोचा जा सकता है और न वाणीसे कुछ कहा ही जा सकता है। जो आत्म प्रत्ययका सार है और प्रपंचसे रहित है, शान्त, शिव और अद्वैत है। ....जब वह द्रष्टा उस सबके ईश्वर, ब्रह्माके भी आदिकारण सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, दिव्य प्रकाशस्वरूप

परम पुरुषको देख लेता है, तब वह निर्मल–हृदय महात्मा पाप–पुण्यसे छूटकर परम साम्यको प्राप्त हो जाता है।

(भगवच्चर्चा भाग ५)

(३) **कर्मयोग**––असलमें कर्म करनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, कर्मफलमें अधिकार नहीं है। कोई भी मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि मैं केवल कर्म करके ही अमुक फल प्राप्त कर लूँगा। इसपर यह प्रश्न हो सकता है कि जब फल अपने हाथमें नहीं है, तब कर्म ही क्यों किया जाय ? चुपचाप बैठे रहनेसे भी जो होना होगा सो हो जायगा। इसीलिये भगवान्‌ने पहलेसे सावधान कर दिया कि 'कर्म–त्यागकी ओर तेरा मन नहीं लगना चाहिये।' क्योंकि कर्ममें तेरा अधिकार है। ....अतएव मनुष्यको अपने अधिकारके अनुसार कर्म करना चाहिये, परन्तु फलकी आशासे नहीं। अवश्य ही कर्म बिना उद्देश्यके नहीं होता, इसलिये मनुष्यके कर्ममें भी कोई उद्देश्य या लक्ष्य रहेगा।

(भगवच्चर्चा भाग ६)

फलकी कामना और आसक्ति छोड़कर लाभ–हानि, सिद्धि–असिद्धि, अनुकूलता–प्रतिकूलता तथा जय–पराजय आदिमें समान भाव रखते हुए भगवत्प्रीतिके लिये सत्कर्म करते रहना ही वास्तविक कर्मयोग है।

(लोक–परलोकका सुधार भाग ५)

(४) **अष्टांग योग**––योगीको चाहिये कि वह अपने मनको तत्त्वज्ञानके उपयोगी बनानेके लिये निष्काम भावसे ब्रह्मचर्य, संयतचित्तसे स्वाध्याय, शौच, संतोष तथा तप करते हुए मनको निरन्तर परब्रह्म परमेश्वरके चिन्तनमें लगाये रखें। यही दस प्रकारके यम नियम हैं। इनका समानभावसे पालन करनेवालेको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और निष्काम आचरण करनेवालेको मुक्ति मिलती है। भद्र आदि आसनोंमेंसे किसी एक आसनका अवलम्बन करके सद्‌गुणी पुरुषको यम–नियमसे सम्पन्न होकर वशमें किये हुए चित्तसे योगका अभ्यास करना चाहिये। अभ्याससे प्राण नामक वायुको वशमें करनेवाली क्रियाका नाम प्राणायाम है। प्राणायाम सजीव और निर्जीव भेदसे दो प्रकारका है। ....योगीको चाहिये कि वह क्रमशः प्रत्याहार परायण होकर शब्द स्पर्शादि विषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंका निग्रह करके उन्हें चित्तका अनुसरण करनेवाली बना लें। ....दूसरे विषयोंमें सर्वथा निःस्पृह होकर जब साधक केवल भगवान्‌के रूपमें ही अनन्य भावसे तन्मय हो जाता है, तब

उसीको ध्यान कहते हैं। इसके बाद समाधि होती है। समस्त कल्पनाओंसे सर्वथा रहित होकर केवल स्वरूपमें ही स्थित रहनेको समाधि कहते हैं। यह समाधि ध्यानके द्वारा प्राप्त होती है।

(भगवच्चर्चा भाग ४)

(५) **ध्यान योग**—सबसे पहली बात है मन लगनेकी। जो जिस वस्तुको परम आवश्यक मानकर उसे प्राप्त करना चाहता है, उसके चित्तसे उस वस्तुका चिन्तन स्वाभाविक ही बार-बार होता है। उसके चित्तमें अपने ध्येय पदार्थकी धारणा दृढ़ हो जाती है और आगे चलकर वही धारणा—चित्तवृत्तियोंके सर्वथा ध्येयाकार बन जानेपर 'ध्यान' के रूपमें परिणित हो जाती है। ....ध्यानकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें कहा है कि 'जो पुरुष निरन्तर विषयोंका ध्यान करता है उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा ध्यान करता है, वह मुझमें लीन हो जाता है।' किसी-न-किसी रूपमें सभी योगोंमें ध्यानकी आवश्यकता और उपयोगिता है। ध्यानमें अनेक प्रकार हैं, साधकको अपने-अपने अधिकार, रुचि और अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारसे अभ्यास करना चाहिये। ....ध्यानकी कुछ विधियाँ जाननेके पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ध्यानयोगी साधकके लिये उपयुक्त स्थान, काल और आसन कौन-सा उत्तम है।

(भगवच्चर्चा भाग ३)

(६) **प्रेम योग**—"प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं; जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है, वेद 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रेमका वर्णन भी वाणी द्वारा नहीं हो सकता। जिस प्रेमका वर्णन वाणीके द्वारा हो सकता है, वह तो प्रेमका सर्वथा बाहरी रूप है। प्रेम तो अनुभवकी वस्तु है।

प्रेमका अनुभव होता है मनमें और मन रहता है सदा अपने प्रेमास्पदके पास। फिर भला, मनके अभावमें वाणीको यत्किंचित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले। अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है, वह केवल सांकेतिकमात्र है—बाह्य है। प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नहीं और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है।

प्रेम गुणातीत होता है। प्रेममें कुछ भी कामना नहीं होती तथा वह

बढ़ता ही रहता है। प्रेममें कहीं परिसमाप्ति नहीं है।"

राधाका स्वरूप——"श्रीराधाजी स्वरूपतः श्रीकृष्ण—प्रेमकी एक घनीभूत नित्य चेतन स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधा स्वयं मादनाख्य महाभावस्वरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष मूर्तिमती ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम प्रेमकी एकमात्र आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्द—विधान ही जिनका एकमात्र कार्य है, वे श्रीराधा कृष्ण—कान्तागणमें सर्वश्रेष्ठ तथा सबकी परमाधाररूपिणी हैं।

श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद तथा अभेद दोनों ही माने जाते हैं। अभेदरूपमें श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त नित्य एक हैं और वे ही लीला—रसास्वादनके लिये अनादिकालसे नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों ही परम प्रेमस्वरूप होनेपर भी, लीलारसकी विशेष पुष्टिके लिये श्रीराधामें ही प्रेमकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है।

* * * *

श्रीराधाजी श्रीकृष्णर्द्धांगसम्भूता होनेसे श्रीकृष्ण स्वरूपा ही हैं। लीलारसास्वादनके लिये द्विविध प्रकाश है। दोनों ही सच्चिदानन्दमय एक तत्त्व—वस्तु हैं। उसमें न स्त्री है न पुरुष। केवल लीला—विलास है, दोनों ही काम—गन्ध—शून्य सच्चिदानन्द भगवद्विग्रह हैं। शुक्र—शोणितजनित—कर्मजनित और पञ्चभूत—निर्मित देह इनके नहीं हैं। अतएव इनमें काम—क्रोधादिके लेशकी कल्पना भी नहीं है। सभी कुछ सच्चिद्घन है।"

गोपी प्रेम——"श्रीकृष्णकी असंख्य शक्तियोंमेंसे जो शक्तियाँ ह्लादिनी शक्तिकी पुष्टिकारिणी है, वे ही श्रीराधाकी सहचरी सखियाँ श्रीगोपियाँ हैं। समस्त गोपीजन उन ह्लादिनी शक्तिकी ही अनन्त विभिन्न प्रतिमूर्तियाँ हैं। उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवदर्पित है। उनकी प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक ही भगवत्सेवारूप होती है। उनकी कोई भी चेष्टा ऐसी नहीं होती जिसमें भगवत्प्रीतिसम्पादनके सिवा, श्रीकृष्ण—राधिकाके मिलनसुखकी साधनाके सिवा अन्य कोई उद्देश्य हो। उनके बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, आत्माके सहित सदा श्रीकृष्णके ही अर्पण है। उनके द्वारा निरन्तर श्रीकृष्णकी ही सेवा बनती है।

गोपीभाव 'सर्वसमर्पण' का भाव है। इसमें निज सुखकी इच्छाका

सर्वथा त्याग है। गोपीभावमें न लहँगा, साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथनी हो। गोपी भावकी प्राप्तिके लिये श्रीगोपीजनोंका ही अनुगमन करना होगा। भक्तका हृदय भगवान्को जब सचमुच अपना 'प्राणनाथ' और 'प्रियतम' मान लेता है, तभी वह गोपीभावकी प्राप्तिके योग्य होता है और ठीक पत्नीकी भाँति जब भगवान्को पतिरूपमें वरण कर लिया जाता है, तभी उन्हें 'प्रियतम' और 'प्राणनाथ' कहा जाता है।"

(तुलसीदल)

(७) **नाम महिमा**——जिस प्रकार अग्निमें दाहिका शक्ति स्वाभाविक है, उसी प्रकार भगवन्नाममें पापको विषय–प्रपञ्च जगत्के मोहको जला डालनेकी शक्ति स्वाभाविक है। इसमें भावकी आवश्यकता नहीं है। किसी प्रकार भी नाम जीभपर आना चाहिये, फिर नामका जो स्वाभाविक फल है वह बिना श्रद्धाके भी मिल जायगा। भाव न हो, तब भी नाम–जप तो करना ही है। नाम भगवत्स्वरूप ही है। नाम अपनी शक्तिसे नाम अपने वस्तुगुणसे सारा काम कर देगा। विशेषकर कलियुगमें तो भगवन्नामके सिवा और कोई साधन ही नहीं है। आलस्य और तर्क——ये दो नाम–जपमें बाधक हैं। नाम लेनेकी आदत डाल लो। नामके बलसे बिना ही परिश्रम भवसागरसे तर जाओगे और भगवान्के प्रेमको भी प्राप्त कर लोगे।

(सत्संगके बिखरे मोती)

(८) **समर्पण**——वास्तविक पूर्ण समर्पण करना नहीं पड़ता, अपने आप हो जाता है। जबतक कोई समर्पण करनेवाला धर्मी कर्त्ता रहता है, तबतक अहंकार शेष है और पूर्ण समर्पणमें कमी है। एक ऐसी स्थिति होती है, जब कि देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार——इन सबके समष्टि–यन्त्रपर प्रभुका अपना अधिकार है। इस अवस्थामें उनसे कोई भिन्न कर्त्ता नहीं रह जाता। ....इस स्थितिपर पहुँचनेके लिये पहले शरणागतिका साधन करना पड़ता है। इस शरणागतिके साधनमें अनेक भाव हैं——

(१) नित्य–निरन्तर प्रभुका अनन्य भजन होना।

(२) प्रभुपर पूर्ण विश्वास होना।

(३) सर्वथा–सर्वदा प्रभुके अनुकूल कार्य करना।

(४) सब कुछ प्रभुका समझना और प्रभुसे कभी कुछ भी न चाहना।

(५) प्रभुके यथार्थ शरण प्राप्त या शरणका मर्म समझनेवाले पुरुषोंका संग करना।

(पूर्ण समर्पण——भगवच्चर्चा भाग ६)

(९) **कृपा साधना**––कृपा तो भगवान्‌की सदा सबपर और अनन्त है। हम लोग उस कृपापर जितना ही अपनेको छोड़ सकें, उतना ही लाभ उठा सकते हैं। जो कुछ भी भगवत्कृपाको सौंप दिया गया, वही सुरक्षित हो गया। भगवान्‌की कृपाके लिये कुछ भी असम्भव या असाध्य नहीं है। ....सबसे अधिक कृपाके प्रति समर्पण करके उस कृपासे बननेवाले प्रत्येक विधानमें परम आनन्दका अनुभव करना आता है, सभी मनुष्यको यह अनुभव होता है कि वह जिसे असम्भव मानता था, वही भगवत्कृपासे अनायास ही संभव हो गया। और इस भगवत्कृपाका द्वार सबके लिये खुला है।

(लोक–परलोकका सुधार भाग १)

(१०) **प्रार्थना**––भगवान् सब भाषाएँ समझते हैं, सहज प्रार्थनाके लिये किसी अमुक प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं है। और यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् मेरी निर्दोष प्रार्थनाको अवश्य–अवश्य पूर्ण करेंगे। सांसारिक अभावकी पूर्ति, निर्दोष धन–मान आदिकी प्राप्ति, रोगनाश, स्वास्थ्य–लाभ, विपत्तिनिवारण आदिके लिये भी विश्वासपूर्ण प्रार्थना करनेपर निस्संदेह आश्चर्यजनक फल प्राप्त होता है। पर ये सब प्रार्थनाएँ ऐसी ही हैं जैसे अनन्त वैभवशाली उदार सम्राटसे कौड़ी माँगना।

(प्रार्थना––पियूष)

पर नाथ ! मैं एक बात पूछता हूँ; मैं बारंबार अपराधकी कालिमा लगाता हूँ और बार–बार तुम उसे धोते हो। क्या इससे यह अच्छा नहीं कि मैं अपराध करूँ ही नहीं। तुम कहोगे––मत करो, कौन कहता है करो। पर नाथ ! यह जानते हुए भी कि मेरे दयालु स्वामी मुझ नगण्यको धोया–पोंछा रखनेके लिये कितने सतत् सावधान और प्रयत्नशील रहनेको बाध्य होते हैं, मैं स्वभाववश अपराध करता ही हूँ। दयामय ! अब यह तुम्हारे ही किये दूर होगा। ....मेरी यह प्रार्थना अवश्य पूरी कर दो मेरे दयार्णव।

(प्रार्थना)

(११) **ब्रह्मचर्य**––आयु घटनेका कारण तो ब्रह्मचर्य नाश ही है। जब देशमें ब्रह्मचर्यका पूर्ण प्रचार था, तब यहाँ न तो इतनी व्याधियाँ थीं और न युवावस्थामें प्रायः कोई मरता ही था। परन्तु आजकी दशा उससे सर्वथा विपरीत है। हमने जीवनके मूल ब्रह्मचर्यको छोड़ दिया, इसीसे हमारी ऐसी दुरवस्था हो गई। यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक हमारे देशमें

ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठा नहीं होती, तबतक हमारा उत्थान होना बड़ा ही कठिन है। कच्ची नींवपर इमारत नहीं उठ सकती। यदि उठा दी जाती है तो वह इतनी कमजोर होती है कि जरासे धक्केसे ही गिर पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके बिना जीवन नहीं टिक सकता; यदि कहीं कुछ रहता है, सो भी स्वल्प कालके लिये ही। यही कारण है कि आज हमारी इतनी दुर्दशा है।

(ब्रह्मचर्य)

(१२) **वैराग्य**—इस लोक और परलोकके समस्त दृष्टश्रुत या अदृष्टश्रुत पदार्थोंसे सर्वथा वितृष्ण हो जाना वैराग्य कहलाता है। जबतक विषयोंमें अनुराग रहता है, तबतक परमात्म–प्राप्तिके चरम ध्येयपर मनुष्य दृढ़तासे स्थिर नहीं रह सकता। विषयानुरागकी निवृत्ति विषय–विरागसे होती है। विषयोंमें चित्तका अनुराग प्रधानतया तथा चार कारणोंसे हो रहा है—(१) विषयोंका अस्तित्व–बोध (२) विषयोंमें रमणीयताका बोध (३) विषयोंमें सुख–बोध और (४) विषयोंमें प्रेमका बोध। विवेक द्वारा इन चारोंका बोध करनेपर वैराग्यकी प्राप्ति होती है। इसलिये नित्यानित्य वस्तु–विवेककी आवश्यकता पहले है। विवेकसे वैराग्य जागृत होता है और वैराग्यसे विवेक स्थिर और परिमार्जित होता है। यह दोनों अन्योन्याश्रित साधन हैं।

(साधन–पथ)

(१३) **सत्य**—हमारे जीवनका लक्ष्य सत्य ही रहे। सत्य भगवान्‌का नाम है, अतएव भगवान् ही हमारे एक मात्र ध्येय हों। भगवान्‌के बिना और यदि कुछ है तो वह सर्वथा असत् है, है ही नहीं। 'सत्य' शब्दका प्रयोग आजकल अधिकांशमें 'सत्य भाषण' के अर्थमें ही होता है। इसलिये इस पर विशेष रूपसे ध्यान देना है। जिस विषयको हमने सुना या समझा हो ठीक उसी प्रकार समझानेकी शुद्ध नीयतसे मुखमुद्रा, संकेत आदिके साथ वाणीसे वचन बोलना। ....सत्य बात भी यथासाध्य ऐसे शब्दोंमें कहनी चाहिये जो सुननेवालेको कड़वी न लगे। बड़े मीठे और नम्र शब्दोंमें विनयके साथ बात कहनी चाहिये। ....चालाकीसे किसी बातको छिपाकर कहना असत्य ही है। जितना छिपाव है, उतना ही दोष है। अतएव कपट भरे शब्द नहीं कहने चाहिये।

(भवरोगकी रामबाण दवा)

(१४) **अहिंसा**—'अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा

परम सत्य है, अहिंसासे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है।' उपर्युक्त महाभारतके वचनोंके अनुसार ही प्रायः सभी पुराणों और स्मृतियोंमें अहिंसाकी महिमा और हिंसापूर्ण मांस–भक्षणका निषेध मिलता है, परन्तु मनुष्य इतना स्वार्थी और जिह्वालोलुप है कि वह अपने पापी पेटको भरने और घृणित मांसका स्वाद लेने तथा शिकारका शौक पूरा करनेके लिये निर्दोष प्राणियोंकी हत्या करता है। मांस–भक्षण बहुत बड़ा पाप और अत्यन्त हानिकर कुकर्म है। जो मनुष्य वध करनेके लिये पशुको लाता है, जो उसे मारनेकी अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता और पकाता–खाता है, ये सब–के–सब पशुके हत्यारे और मांसखोर ही समझे जाते हैं। .... समस्त धर्मोका शिरोमणि अहिंसा धर्म है।

(भगवच्चर्चा भाग ४)

(१५) **अक्रोध**––काम ही प्रतिहत होकर क्रोधके रूपमें परिणित हो जाता है। क्रोधके समय मनुष्य अत्यन्त मूढ़ हो जाता है। उसके चित्तकी स्वाभाविक पवित्रता, स्थिरता, सुखानुभूति, शान्ति और विचारशीलता नष्ट हो जाती है। ....क्रोधी आदमी असलमें भगवान्‌का भक्त नहीं हो सकता। ज्ञानके लिये तो उसके अन्तःकरणमें जगह ही नहीं है। .... इसका दमन होता है इन चार उपायोंसे–––
(१) प्रत्येक प्रतिकूल घटनाको भगवान्‌का मंगल–विधान समझकर उसे परिणाममें कल्याणकारी मानना और उसमें अनुकूल बुद्धि करना। (२) भोगोंमें वैराग्यकी भावना करना, (३) सहनशीलताको बढ़ाना, और (४) क्रोधके समय चुप रहना।

(लोक–परलोकका सुधार भाग–२)

(१६) **सेवा**––वस्तुतः यह जीवन है ही सिर्फ सेवाके लिये। ....किसी भी मनुष्यको यह नहीं मानना चाहिये कि मुझमें सेवा करनेकी शक्ति या योग्यता नहीं है। ....प्रत्येक सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यह चाहिये कि वह स्वार्थसे सर्वथा अलग रहे। सेवाको ही 'परम स्वार्थ' समझे। स्वार्थी मनुष्य यथार्थ सेवा कभी नहीं कर सकता। ....जो लोग बदला पानेकी इच्छासे सेवा करते हैं या सेवा करके उसका बदला चाहते हैं, उनकी सेवा भी यथार्थ सेवा नहीं है। वह तो मनोरथसिद्धिका एक साधन है। ....जहाँतक हो सके, सेवाको प्रकट न होने दो। प्रकट करनेकी चेष्टा मत करो। प्रकट हो जाय तो सकुचाओ सकुचो

मनसे उसका श्रेय भगवान्‌की कृपाको दो। सेवा करके अभिमान न करो।
(भवरोगकी रामबाण दवा)

(१७) **संतोष**—संसारमें सर्वोत्तम सुखकी प्राप्तिका परम साधन है—संतोष। असंतोषी मनुष्य सदा ही दुखी रहेगा। चाहे उसको कुछ भी, कैसी भी वस्तु या परिस्थिति प्राप्त हो जाय। परंतु भगवद्भजन, भगवत्प्रेममें संतोष महान विघ्नरूप है। अतः भजन में कभी संतोष कत करो। .... विषयासक्त मनुष्य उससे ठीक विपरीत भोगजगत्‌में सदा असंतोषी रहता है। जितना जो कुछ भी पाता है, उसमें सदा ही कमीका अनुभव करता है, और अधिक मात्रा पाना चाहता है। ....इसी असंतोष वृत्तिको लेकर वह अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाता रहता है, परिणाममें अपने–ही–आप अपनेको सब ओरसे जकड़कर बुरी तरह फँस जाता है तथा रात–दिन चिन्ता, भय, विषादसे घिरा रहता है। कभी किसी भी अवस्थामें वह शान्ति नहीं पाता।
(दिव्य सुखकी सरिता)

(१८) **सदाचार**—जिसके पालन करनेसे मनुष्य सदाचारी साधुहृदय बन सकता है, उसे सदाचार कहते हैं। हमारी सभ्यतामें सदाचार और धर्म अभिन्न हें। पाश्चात्य रिलीजन और एथिक्स अलग–अलग हैं, परन्तु हम तो सदाचारको धर्मका मूल मानते हैं और धर्मको सदाचारका। और इस धर्म एवं सदाचारकी मूल भित्ति है भगवान्। व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन दो नहीं होते। सदाचार ऐसी वस्तु है जो दोनोंको एक करके पवित्रतम बनाये रखता है। ....मनु महाराज कहते हैं ....सदाचारसे मनुष्य आयु, इच्छानुसार प्रजा और अक्षय धनको प्राप्त करता है। इतना ही नहीं सदाचारसे अपमृत्यु आदिका भी नाश होता है। ....विद्यादि सब लक्षणोंसे हीन पुरुष भी यदि सदाचारी होता है और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह सौ वर्षतक जीता है।

(भवरोगकी रामबाण दवा)

(१९) **अस्तेय**—चोरीके अभावको अस्तेय कहते हैं। दूसरेके स्वत्वका अपहरण करना चोरी कहलाता है। चोरी अनेक प्रकारसे होती है, किसीकी वस्तुको उठा लेना, वाणीसे छिपाना, बोलकर चोरी करवाना, मनमें पराई वस्तुको ताकना आदि सब चोरीके रूप ही है। ....सभ्यताकी आड़में, कानूनसे बचकर आजकल कितनी अधिक चोरियाँ होती हैं, यदि उनका हिसाब देखा जाय तो पता लगता है कि शायद समाजकी प्रगति चोरीकी

ओर बड़े वेगसे बढ़ रही है। जितने ही अधिक कानून बनते हैं उतनी ही चोरीकी नयी–नयी क्रियाओंका आविष्कार होता है। ....पहलेके जमानेमें चोरोंका एक भिन्न समुदाय था जो घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था, इस समय संक्रामक बीमारीकी तरह प्रायः सारा समाज इस दोषसे आक्रान्त हो चला है। छोटे–छोटे गाँवोंमें चतुराईकी चोरियाँ प्रारम्भ हो गयी हैं। यह बहुत बुरे लक्षण हैं। ....समाज ऐसे चोरोंको धिक्कार नहीं देता बल्कि जो अधिक आसानीसे दूसरेका हक हड़प कर सकता है वह उतना ही अधिक चतुर और बुद्धिमान समझा जाता है।

(मानव धर्म)

(२०) **आहार**––अन्नके अनुसार ही मन बनता है। अन्न सात्विक है या तामसिक, कैसी कमाईका अन्न है, भोजन बनानेवाला कौन है और भोजन बनाते समय उसकी चित्तवृत्ति कैसी थी, स्थान कैसा है, पंक्तिमें साथ कौन–कौन बैठें हैं तथा भोजन परसनेवाला किस भावका कौन है ? आदि सभी बातें विचारणीय हैं। यह प्रश्न हँसीमें उड़ा देनेका नहीं है। आजकल जैसे खानसामा साहबके लिये लाये हुए किसी भी पदार्थको खाने या पीने योग्य समझकर खा–पी लिया जाता है। न जूठनका परहेज है और न किसी और बातका। यह असलमें बहुत बड़ा प्रमाद है। अन्न जैसे पैसोंका होगा, बनानेवाले जैसे होंगे, स्थान और भोजन सामग्री जैसी होगी, वैसा ही मनपर प्रभाव पड़ेगा। वस्तु–शक्तिका प्रभाव तो होता ही है, बल्कि यहाँतक होता है कि भोजन करानेवालेकी मनोभावना या इच्छा शक्तिका भी भोजन करनेवालोंपर प्रभाव पड़ता है।

(लोक–परलोकका सुधार भाग ३)

(२१) **सत्संग**––संसारमें स्वधर्मपरायण, सदाचारी, साधु स्वभाव, दैवी सम्पत्तिवान् पुरुषकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है; पर खोज करनेपर संसारमें सदाचारी, कर्मकाण्डी और कुछ ज्ञानी पुरुष तो मिल भी सकते हैं। परन्तु ऐसे सच्चे प्रेमी महात्मा बहुत ही कम मिलते हैं, जिनकी कृपामात्रसे परम–दुर्लभ योगी–ज्ञानी–जनवाञ्छित भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये ऐसे महात्माओंका मिलन बहुत दुर्लभ माना जाता है। यदि कहीं ऐसे महापुरुष मिल भी जाते हैं तो उनको पहचानना बहुत कठिन होता है। .... परन्तु सौभाग्यसे यदि कहीं ऐसे महात्मा पुरुष मिल जाते हैं तो उनका बिना जाने भी मिल जाना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। ....भगवत्प्रेमी

महापुरुषके अज्ञात संगसे भी पाप और अज्ञान रूपी अन्धकारका नाश होकर ज्ञानरूप सूर्यका प्रकाश और प्रेमरूप परम निधि तो मिल जाती है, परन्तु जबतक इस बातका पता नहीं लगता तबतक इस लाभसे अपरिचित रहनेके कारण मनुष्य आनन्दको प्राप्त नहीं होता।

(प्रेमदर्शन)

(२२) **हिन्दू–संस्कृति**—जीवनके सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त सनातन परम्परासे चली आती हुई अध्यात्म प्रधान धर्ममय सुसंस्कृति 'विचार और आचार प्रणाली' का नाम ही हिन्दू–संस्कृति है। हिन्दू–संस्कृतिकी यह निर्मल धारा अत्यन्त प्राचीनकालसे अविच्छिन्न रूपमें प्रवाहित है। ....इस संस्कृतिमें मनुष्य जीवनका प्रधान और एकमात्र लक्ष्य है—मोक्ष, ज्ञान या भगवत्प्राप्ति। इसीसे इसमें जीवनकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टा इसी लक्ष्यपर ध्यान रखकर की जाती है। इसीलिये हमारे पुरुषार्थ चतुष्टयमें अंतिम स्थान मोक्षको दिया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

(हिन्दू–संस्कृतिका स्वरूप)

(२३) **तीर्थ–सेवन**—तीर्थोंकी अनन्त महिमा है, वे अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही सबका पाप नाश करके उन्हें मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं और मोक्ष तक दे देते हैं। हिन्दू–शास्त्रोंमें तीर्थोंमें किनको, कब, कैसे, क्या–क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थका कैसे प्रादुर्भाव हुआ—इसका बड़े सुन्दर ढंगसे अतिविशद वर्णन मिलता है। तीर्थोंकी इतनी महिमा इसलिये है कि वहाँ महान् पवित्रात्मा भगवत्प्राप्त महापुरुषों और संतोंने निवास किया है या श्री भगवान्‌ने किसी भी रूपमें कभी प्रकट होकर उन्हें अपना लीलाक्षेत्र बनाकर महान् मंगलमय कर दिया है। ....तीर्थ तीन प्रकारके माने गये हैं। (१) जंगम, (२) मानस और (३) स्थावर।

(कल्याणका विशेषांक—तीर्थांक)

(२४) **मानव धर्म**—सामान्य धर्म उसे कहते हैं जिसका मनुष्यमात्र पालन कर सकते हैं, उसीका दूसरा नाम मानव धर्म है। ....शास्त्रकारोंमेंसे किसीने सामान्य धर्मके लक्षण आठ, किसीने दस, किसीने बारह और किसी–किसीने १५–१६ या इससे भी अधिक बताये हैं। ....मनु महाराज कहते हैं—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना) शौच, इन्द्रियनिग्रह, घी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस लक्षण हैं। ये धर्म ऐसे हैं जिनमें किसी भी जाति या सम्प्रदायको आपत्ति नहीं हो सकती। ....मनुष्यमें मनुष्यत्वका

विकास इन्हीं धर्मोके आचरणसे हो सकता है। ....जब मनुष्य–जातिमें इन धर्मोंकी प्रधानता थी तब जगत्में सुख और शान्तिका साम्राज्य था, ज्यों–ज्यों इन धर्मोंके पालनसे मनुष्य जाति विमुख होने लगी त्यों–ही–त्यों उसमें दुःख और अशान्तिका विस्तार होने लगा और आज जगत्के मनुष्य प्राणी इन्हीं धर्मोके बहुत अंशमें ह्रास हो जानेके कारण अपने–अपने क्षुद्र स्वार्थ साधनके लिये, परस्पर वैर भावको प्रश्रय देते हुए हिंसक पशुओंकी भाँति खूँखार बनकर, एक दूसरेको ग्रास कर जानेके लिये तैयार हो रहे हैं और इसीसे आज अपनेको बुद्धिमान् समझनेवाले मनुष्योंकी बस्तियोंमें प्रायः कहींपर भी सुख–शान्ति देखनेमें नहीं आती।

(मानव धर्म)

(२५) **वर्तमान शिक्षा**––आर्य सम्यताके अनुसार शिक्षाका उद्देश्य है उसके द्वारा इहलोकमें सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक, साम्पत्तिक और नैतिक) अभ्युदय और परलोकमें परम निःश्रेयस–––मोक्षकी प्राप्ति। ऋषियोंकी दृष्टिमें विद्या वही है जो हमें अज्ञानके बन्धनसे विमुक्त कर दे। .... ऐसा मतिभ्रम हुआ है कि विनाशके गहरे गर्तमें गिरना ही आज हमारे मन उन्नतिका निदर्शन हो गया है। जिस चोटी और जनेऊको मुसलमानोंकी तलवार नहीं काट सकी, उसीको आज हम शिक्षाभिमानी हिन्दू स्वयं ही उन्नतिके नामपर कटवा रहे हैं। अग्निकुण्डकी लाल–लाल लपटोंमें पड़कर भी हिन्दू नारीके सतीत्वको जरा–भी आँच नहीं लगी, वरं उससे वह और भी चमक उठा, वही सतीधर्म आज शिक्षाके फलस्वरूप हमारी बहिन–बेटियोंके लिये भार रूप हो चला है और उसको उतार फेंकनेके लिये चारों ओर सुसंगठित रूपसे कमर कसी जा रही है। ....बालकोंको वैसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनमें ईश्वरभक्ति, धर्म, सदाचार, त्याग, संयम आदिका विकास हो।

(वर्तमान शिक्षा)

श्रीभाईजीके दार्शनिक विचार

परम प्राप्तव्य परमात्म–तत्त्व सर्वथा अनिर्वचनीय है। वह सर्वमय, सर्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त, अचिन्त्य, युगपत् परस्पर–विरुद्ध गुणधर्माश्रय स्वरूप है। वह निर्गुण–निराकार, सगुण–निराकार, सगुण–साकार भी हैं तथा इन सबसे परे भी है। इसी तत्त्वको अति प्राचीन कालसे हमारे

ऋषि–महर्षियोंने, आचार्योंने, मनीषियोंने अपने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणसे देखा है। उनके दृष्टिकोणको ही 'दर्शन' या मतकी संज्ञा दी गई है। इनमें प्रधान है——१. श्रीशंकराचार्यका अद्वैतवाद, २. श्रीरामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद, ३. श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवाद ४. श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवाद, ५. श्रीवल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद और ६. श्री चैतन्यमहाप्रभुका अचिन्त्यभेदाभेदवाद।

इन महान् आचार्योंकी परम्परामें रसिक–सिद्ध–संत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी परिगण्य हैं। चैतन्य महाप्रभुने अपने जीवन–कालमें किसी मतका प्रवर्तन नहीं किया था। ऐसा ही हुआ श्रीपोद्दारजीके जीवनमें भी। श्रीपोद्दारजीने किसी मतका प्रवर्तन तो नहीं किया अवश्य ही उनके सिद्धान्तोंका स्पष्ट संकेत उनकी कृतियोंमें परिव्याप्त है।

श्रीपोद्दारजी द्वारा रचित एवं सम्पादित अनेक ग्रन्थ हैं और उन ग्रन्थोंमें उनके दार्शनिक विचार पढ़नेको मिलते हैं, परन्तु उनके तीन मुख्य ग्रन्थ——श्रीराधा–माधव चिन्तन, गीता चिन्तन तथा पद–रत्नाकरमें विशेष रूपसे इनका वर्णन और विवेचन हुआ है। भगवत्प्रेमकी परमोच्चावस्थाको ही वे रसाद्वैतकी स्थिति मानते हैं। वे लिखते हैं——

"अपनेको और भगवान्‌को यथार्थरूपसे जाननेके बाद ही यथार्थ प्रेम होता है परन्तु यथार्थ रूपसे जानना भी प्रेमके बिना सम्भव नहीं। इस ज्ञान और प्रेममें परस्पर साध्य–साधन–सम्बन्ध है। पहले कुछ ज्ञान होनेपर प्रेम होता है, प्रेम होनेपर यथार्थ ज्ञान होता है और यथार्थ ज्ञानके अनन्तरका जो परम प्रेम है वही सर्वोच्च प्रेम है। उसी प्रेमको भक्तोंने रसाद्वैत' कहा है। यहाँ प्रेमी और प्रेमास्पदकी एकता हो जाती है। परस्पर दोनों एक दूसरसे घुल–मिल जाते हैं।"

(गीता चिन्तन, पृष्ठ ५६२)

इसके पश्चात् प्रेमी और प्रेमास्पदकी द्वैतके रूपोंमें जो अवस्थिति रहती है वह मात्र लीला–रसास्वादनके लिये होती है। भक्तिके आचार्य श्रीरामानुजादि सभी महान् लेखक बद्धावस्थामें ही नहीं, अपितु मुक्तावस्थामें भी जीवकी भगवान्‌से अभिन्नता नहीं मानते। ऐसी ही मान्यता श्रीपोद्दारजीकी भी है। वे लिखते हैं——

"जीवन्मुक्त महात्मा परमार्थ दृष्टिसे तत्त्वज्ञानमें ब्रह्मके समान हो सकते हैं, जगत्–प्रपञ्चको लाँघकर आनन्दमय बन सकते हैं परन्तु

मायाधीश कभी नहीं हो सकते। जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेकी शक्ति केवल एक नित्यसिद्ध परमेश्वरमें ही है। इसीसे यहाँ तक कहा जा सकता है कि जीव ब्रह्म हो सकता है, परन्तु परमेश्वर या भगवान् नहीं हो सकता है।"

(गीता चिन्तन, पृष्ठ ४३७)

दूसरे स्थानपर वे कहते हैं—

डूब्यौ प्रेम–पयोधि मैं, भयौ प्रेमकौ रूप।
रसाद्वैत याकौ कहत, रहत न भिन्न सरूप।।
प्रेम हरी, हरि प्रेम है, प्रेमी प्रियतम आप।
जहाँ प्रेमकौ बास, तहँ रहे न जम कौ ताप।।

(पद–रत्नाकर/प्रेमशतक/पदसं० ६६४)

ये दोनों ही परस्पर विरोधी तथ्य नहीं है। यहाँ प्रेमी (जीव) और प्रियतम (भगवान्की) तात्त्विक एकता नहीं, अपितु यह तो लीला–रसास्वादनके लिये एक अनिर्वचनीय अभिन्नता है जो सर्वथा अनुभवकी वस्तु है। श्रीपोद्दारजीके अनुसार प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं। जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है उसी प्रकार वाणी द्वारा प्रेमका वर्णन भी नहीं हो सकता। हृदयमें जिस घनीभूत आनन्दका अनुभव होता है उसका वर्णन वाणी कभी कर ही नहीं सकती। प्रेमका जो वर्णन मिलता है वह केवल सांकेतिक मात्र है। प्रेममें डूबा हुआ प्रेमी सर्वत्र अपने रसमय प्रियतमको ही देखता है। आँखें अहर्निश सम्पूर्ण विश्वको श्याममय देखती हैं। जो महानुभाव इस दिव्य रस–पथके पथिक नहीं हैं उनके लिये यह भावावेश हो सकता है पर जो महाभाग इस मार्गपर अग्रसर हुए हैं और जिन्हें सिद्ध–स्थितिकी उपलब्धि हुई है, उनके लिये यह भावावेश न होकर सतत प्रत्यक्ष परम सत्य है।

श्रीपोद्दारजीने अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें जो वसियतनामा लिखा, उसमें उन्होंने लिखा है 'महान् आचार्य श्रीशंकराचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेवसे मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है।' ऐसा लगता है कि श्रीशंकराचार्यका अद्वैत ही श्रीचैतन्यदेवकी सरसतामें संसिक्त होकर श्रीपोद्दारजीके 'रसाद्वैत' के रूपमें आविर्भूत हो उठा है। जिनसे वे सर्वाधिक प्रभावित हुए, उन्हीं दोनोंके मतसे उन्होंने अपने रसाद्वैतकी परिपुष्टि की। अपने विचारोंको प्रस्तुत करनेके लिये श्रीपोद्दारजीने कभी खण्डन–मण्डनकी

प्रणाली अपनायी ही नहीं। भक्तिके जितने भी आचार्य हुए हैं, प्रायः सभीने अपने मतकी पुष्टिके लिये श्रीशंकराचार्यके अद्वैतवादका खण्डन किया है। परंतु श्रीपोद्दारजीकी प्रतिपादन शैली इन सभी आचार्योंसे सर्वथा भिन्न है। श्रीपोद्दारजीने अपनी मान्यताओंकी स्थापना करते समय किसी भी आचार्यके मतका खण्डन किया ही नहीं, यहाँ तक कि उन्होंने श्रीशंकरके अद्वैतका भी खण्डन नहीं किया अपितु एक अद्‌भुत तथ्य यह है कि उनके अद्वैतको स्वीकृति प्रदान करते हुए अपने रसाद्वैतका मण्डन किया है। अपने मतमें मण्डनकी यह प्रणाली श्रीपोद्दारजीके महान् व्यक्तित्वकी अद्‌भुत विशिष्टता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि 'रसाद्वैत' में श्रीपोद्दारजीने अद्वैतपथ एवं भक्तिपथके आचार्योंके भक्तोंका समन्वय किया है। यह समन्वय पद्धति श्रीपोद्दारजीकी निजी विशेषता थी जिसका दर्शन अन्य मत–परिपोषण–पद्धतिमें प्रायः नहीं मिलता।

श्रीपोद्दारजीने विभिन्न मतोंमें जो समन्वय प्रदर्शित किया उस समन्वयात्मक प्रणालीके पीछे एक प्रयोजन है। वह प्रयोजन है विभिन्न स्तरके जीवोंका हित–चिन्तन। पूर्वाचार्योंने जो कुछ भी कहा, वह अपने अनुभवके आधारपर माया–बद्ध जीवोंके कल्याणके लिये कहा। और विभिन्न स्वभावके जीवोंके लाभके लिये विभिन्न आचार्योंद्वारा उपदिष्ट मत उपादेय भी है। यही कारण है कि श्रीमदभगवद्‌गीताके अगणित भाष्य और टीकायें हुई हैं और अद्यावधि होती ही जा रही हैं। यह रुचिकी भिन्नता ही विभिन्न राधन पद्धतियोंके प्रवर्तन एवं प्रचलनका हेतु है। अनन्त जन्मोंके संस्कारोंके फलस्वरूप जीवकी विषयासक्ति अति सुदृढ़ हो गई है। इसीसे वह जन्म–जन्मान्तरमें दुःख भोगता रहता है। श्रीपोद्दारजीने अनुभव किया कि दुःख दोष देखकर जीवके लिये विषयासक्ति छोड़ना इतना सहज नहीं है जितना उसके लिये किसी सरस वस्तुको पकड़ लेना। यदि वह भगवत्प्रेमकी सरस–साधना–पद्धतिकी ओर अग्रसर हो और उसे कुछ रस उसमें आने लगे तो विषयोंको छोड़ना उसके लिये अति सरल हो जायगा। श्रीपोद्दारजीके रसाद्वैत सिद्धान्तके अनुसार साधक प्रारम्भसे ही रसानुभव करते हुए साधन पथ पर आगे–से–आगे बढ़ता चलता है। ब्रह्मका स्वरूपभूत आनन्द बड़ा रूक्ष रह जाता है यदि उनकी आनन्दमयी आह्लादिनी शक्ति उन्हें आनन्दित करनेमें प्रवृत्त न हो। यह रसाद्वैत सर्वथा श्रुति–पुराण सम्मत है।

'रसब्रह्म' की रहस्यमयी चर्चा करती हुई श्रुति कहती है—

यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति।

(तैत्तिरीय उप० २। ७। २)

'जो स्वयं कर्ता––स्वयंरूप तत्त्व है, वही रस है––पूर्ण रसस्वरूप है। उस रसरूपको प्राप्त करके जीव आनन्दयुक्त होता है।'

यह 'रसब्रह्म' ही लीलापुरुषोत्तम' है। रसरूप भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें घोषणा की––

'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'

'ब्रह्मपुराणमें श्रीकृष्णने कहा है––

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधा वाराध्यते मया।।

"राधाकी आत्मा सदा मैं श्रीकृष्ण हूँ और मेरी (श्रीकृष्णकी) आत्मा निश्चय ही राधा हैं। श्रीराधा वृन्दावनकी ईश्वरी हैं, इस कारण मैं राधाकी आराधना करता हूँ।

अपने ग्रन्थ 'श्रीराधा–माधव–चिन्तन' में श्रीपोद्दारजीने विस्तारसे समझाया है कि वस्तुतः श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपांगनासमूह एवं उनकी मधुरतम लीलाओंमें भेद नहीं है। वे स्वयं ही आस्वादक और आस्वाद बने हैं। उनकी विभिन्न लीलायें रस–समुद्रकी तरंगे हैं। साधक भाव–देहकी साधना द्वारा इस लीला राज्यमें प्रवेश करता है और उस लोकोत्तर लीला–सिन्धुमें अवगाहन करके परमानन्दमें निमग्न हो जाता है। इस लीला–विलासमें सम्पूर्ण रूपसे तन्मय एवं तल्लीन होनेके बाद जो एकात्मकता होती है वह जीव–ब्रह्मके अभेदावस्थावाली स्थितिके समान नहीं है। यहाँ नित्य एक होकर भी नित्य दो बने रहते हैं। दो होते हुए भी 'एक' अनुभव करना और एक होकर भी दो होना, ऐसी अनुभूति केवल साधन–सिद्ध साधककी ही नहीं होती अपितु स्वयं श्रीकृष्णह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके जीवनमें इस अद्‌भुत भाव–छविके दर्शन होते हैं। उनके दो उद्‌गार मननीय हैं। अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे वे कहती हैं––

"मैं अपराधिनी, अघी कलंकिनि हूँ निश्चय ही सभी प्रकार"

(पद–रत्नाकर, पद सं० ६४३)

वे ही पुनः अपने प्राणाराध्यसे कहती हैं––

"प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद–नहीं ज्ञान कुछ, हुए बिभोर।
राधा प्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर।।

(पद–रत्नाकर, पद सं० ६१४)

रसभावाद्वैतकी स्थिति माननीय बुद्धिके लिये गम्य है ही नहीं। इसकी अनुभूति तत्त्वदर्शनके बाद श्रीयुगलसरकारकी कृपासे ही सम्भव हो सकती है।

इसकी उपासना-पद्धतिका 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' में विस्तारसे वर्णन है। स्थानाभावसे यहाँ उसका विवेचन सम्भव नहीं है। एक पदमें सांकेतिक वर्णन है, वह दिया जा रहा है—

प्रथम साधना है इसकी—इन्द्रिय भोगोंका मनसे त्याग।
हरिकी प्रीति बढ़ानेवाले सत्कर्मोंमें अति अनुराग।।
कठिन काम-वासना-पापका करके पूरी तरह विनाश।
दम्भ-दर्प, अभिमान-लोभ-मद, क्रोध-मानका करके नाश।।
परचर्चाका परित्याग कर, विषयोंका तज सब अभिलाष।
मधुमय चिन्तन नाम-रूपका, मनमें प्रभुपर दृढ़ विश्वास।।
हरि-गुण-श्रवण, मनन, लीलाका, लीला-रसमें रति निष्काम।
प्रियतम-भाव सदा मोहनमें, प्रेम-कामना शुचि, अभिराम।।
सर्व-समर्पण करके हरिको, भोग-मोक्षका करके त्याग।
हरिके सुखमें ही सुख सारा, हरिचरणोंमें ही अनुराग।।
भोग-मोक्ष-रुचि-रहित परम जो अन्तरंग हरिप्रेमी संत।
उनका विमल संग, उनकी ही रुचिमें निज रुचिका कर अन्त।।
पावन प्रेमपंथके साधक करते फिर लीला-चिन्तन।
श्यामा-श्याम-कृपासे फिर वे, कर पाते लीला-दर्शन।।
गोपीभाव समझकर फिर वे होते हैं शुचि साधन सिद्ध।
रस-साधनमें सिद्धि प्राप्तकर पाते गोपीरूप विशुद्ध।।
तब लीलामें नित्य सम्मिलित ही बन जाते प्रेमस्वरूप।
परम सिद्धि यह प्रेम-पंथकी, यही प्रेमका निर्मल रूप।।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७३०)

साधन-जगत्में श्रीपोद्दारजीने उत्तरोत्तर विलक्षण चार राज्य माने हैं— १. कर्मराज्य, २. भावराज्य, ३. ज्ञानराज्य, ४. महान् परम भावराज्य। कर्मप्रवण पुरुष कर्मराज्यमें श्रौत-स्मार्त वैध कर्मोंके द्वारा कर्म-साधन करते हैं। वे सर्वथा कामनारहित होनेपर 'नैष्कर्म्यसिद्धि'को प्राप्त होते हैं। इससे आगे 'भावराज्य' है जहाँ भक्तिकी प्रधानता होती है। इसमें भावसाधनाके द्वारा अपने भावानुरूप इष्टदेव और उनके दिव्य लोकोंको

प्राप्त करते हैं। ये भी सर्वथा मायामुक्त होते हैं।

इससे आगे ज्ञानराज्य है। इसमें विचार–प्रधान पुरुष साधन–चतुष्टयादिके द्वारा महावाक्योंका अनुसरण करके विशुद्ध आत्मस्वरूप परिनिष्ठित होते हैं। इनके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता। ये ब्रह्मरूप हो जाते हैं या ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करते हैं। जीवनकालमें भी बोध होते ही जगत्का अत्यन्ताभाव हो जाता है और सम्यक् बोधके कारण अविद्याके अभ्यासका सर्वथा अभाव होनेसे जीव| जीवभावसे मुक्त होकर दूसरोंकी दृष्टिमें शरीर बने रहनेपर भी जीवन्मुक्त हो जाता है। यही ज्ञान है। श्रीशंकराचार्यके अद्वैत मतमें यही सर्वोपरि स्थिति है।

इससे आगे एक महाभावरूप 'भगवद्भाव–राज्य' है। भुक्ति–मुक्ति, कर्म–ज्ञान आदिकी वासनासे शून्य पुरुष ही इस परम 'भावराज्य'के अधिकारी होते हैं। श्रीपोद्दारजीके अनुसार ब्रह्म–तत्त्वका साक्षात्कार होनेपर वह 'ब्रह्मज्ञानी' जीवन्मुक्त तो हो जाता है पर इतनेसे ही वह भगवान्के––'वे जो जैसे जितने हैं––'**यावान् यश्चास्मि**' (गीता १८। ५५) उस स्वरूपको तत्त्वसे ठीक–ठीक नहीं जान पाता। तत्त्वज्ञानी मुक्त पुरुषोंमें भी किन्हीं–किन्हींमें भगवत्प्रेमांकुरका उदय हो जाता है, जिससे वे दिव्य शरीरके द्वारा उपर्युक्त कर्म–भाव–ज्ञान–राज्यसे अतीत भगवद्भाव राज्यमें प्रवेश करके प्रियतम भगवान्के साथ लीलाविहार करते हैं या उनकी लीलामें सहायक–सेवक होकर उनके सुखमें ही अपने भिन्न स्वरूपको विसर्जित कर नित्य सेवा–रत रहते हैं। यह वह राज्य है जहाँ मोक्षका भी संन्यास हो जाता है।

श्रीपोद्दारजीके अनुसार इस विलक्षण महाभावरूप दुर्लभ राज्यमें––भोग–मोक्षकी कामनाके गन्धलेशसे शून्य, सर्वात्मनिवेदनकारी महानुभावोंका ही इसमें प्रवेश होता है, चाहे वे पवित्र त्यागमय प्रेमस्रोतमें बहते हुए सीधे ही यहाँ पहुँच जायँ अथवा उपर्युक्त ज्ञानराज्यमें ज्ञान प्राप्त होनेके अनन्तर किसी महान् कारणसे। इस राज्यमें नित्य–निरन्तर सच्चिदानन्दघन दिव्य प्रेमरस–स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य लीला–विहार होता रहता है।

श्रीराधाकृष्णकी उपासनाके क्षेत्रमें अब तक अनेक मतोंकी प्रतिष्ठा हुई है। मधुरभावकी उपासना प्रणालियोंमें युग–प्रभावसे अथवा अन्य कारणोंसे मधुरोपासनाके नामपर अनेक प्रकारकी अभद्रताओंका प्रवेश हो गया। इन

अभद्रताओंसे बड़ी हानि हुई, वह हानि चाहे व्यक्तिगत जीवनमें हुई हो अथवा सामुदायिक जीवनमें। रसशास्त्र एवं दर्शनशास्त्रकी दृष्टिसे सम्मत श्रीपोद्दारजीके 'रसाद्वैत' के सिद्धान्तोंने केवल मति–भ्रम ही दूर नहीं किया अपितु श्रीराधाकृष्णके उज्ज्वलतम प्रेमका दर्शन कराया—जिसकी वर्तमान युगमें अत्यन्त आवश्यकता थी। इसीसे व्रज–साहित्यके मर्मज्ञ डॉ० प्रभुदयाल मीतलने लिखा कि श्रीपोद्दारजीकी रचनाओंमें इस विषयका जैसा मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, उससे व्रजके बड़े–से–बड़े विद्वान् को भी अब नूतन प्रकाश मिलेगा।

साधन–सम्पन्न आश्रम जीवनकी योजना

श्रीभाईजी जबसे साधनमें प्रवृत्त हुए थे तभीसे उनके मनमें एक भाव था कि मेरे साथ रहनेवाले साधन–युक्त जीवन व्यतीत करें। यहाँतक कि जब बम्बईमें व्यवसायकी दृष्टिसे रहते हुए वे साघनमें तत्परतासे लगे तब वहाँ भी अपने व्यापारी मित्रोंकी एक साधन–कमेटी बनाई। इस कमेटीमें लगभग ५० सदस्य थे। उन साधनरत व्यक्तियोंकी सँभाल भाईजी स्वयं करते थे। बम्बई छोड़नेके बाद थोड़े ही समयमें भगवान्के साक्षात् दर्शन होनेपर तो गोरखपुरमें एक प्रकारसे श्रद्धाकी बाढ़–सी आ गई थी। उस समय तो पास रहनेवाले और गीताप्रेसके मुख्य कार्यकर्ता साधकोंने आग्रह करके भाईजीके निर्देशनमें साधक–कमेटी बनाकर पूर्ण तत्परतासे साधन आरम्भ कर दिया। उनमेंसे कुछ साधकोंको—जैसे श्रीशुकदेवजी, श्रीगंगाप्रसादजी, श्रीगम्भीरचन्दजी आदिको विशेष अनुभूतियाँ भी हुई। साधकोंका उत्साह कभी तेज, कभी ढ़ीला चलता ही है। तदनुरूप साधक–कमेटीमें भी उतार–चढ़ाव आते रहे। तथापि किसी–न–किसी रूपमें चलती रही फिर उसीने साधक संघका रूप ले लिया जो आज भी गीताप्रेसके अन्तर्गत चल ही रहा है। पर इन सबसे भाईजीको संतोष नहीं था। वे बार–बार प्रयत्न करते रहे कि मेरे पास रहनेवाले और विशेष सम्पर्कमें आनेवाले त्यागपूर्ण साधकोचित जीवन व्यतीत करें। इतना ही नहीं वे गीता–भवन, स्वर्गाश्रम सत्संग करनेके लिये जाते तो वहाँ भी सभी समवेत भाई–बहिनोंको नियम पालन पूर्वक साधना करनेके लिये प्रोत्साहन देते एवं निर्धारित नियम छपवाकर जो पालन करना चाहते उन्हें देते। फिर अपने कुछ विशेष जुड़े लोगोंके लिये तो वे अधिक प्रयत्नशील रहते। पर हाय रे हमारे मलिन अन्तःकरण ! जैसे चिकने घड़ेपर वर्षाकी बूँदें नहीं

ठहरती वैसे ही उस रस–वर्षीमेघकी सरस–बूँदें हमें सरस बनाना तो दूर रहा उस उदारमनाको संतोष भी नहीं दिला सकी। यद्यपि कुछ श्रद्धालुओंका कहना है कि उस रस–वर्षी मेघकी बूँदोंमें इतनी ताकत थी कि घड़ा चाहे जितना चिकना हो वे उसपर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं लुढ़क सकती और मुझे पता भी नहीं कि आज भी अपने घरोंमें कितने भाई–बहिन चुपचाप उनके नियमोंका पालन करते होंगे। उन सभीके चरणोंमें हृदयसे प्रणाम करता हूँ पर मेरी तर्कशील दृष्टिमें ऐसी कोई टोली नहीं दिखती जो इन नियमोंका अक्षरशः पालन कर रही हो, वैसे कुछ नियम तो बहुतसे साधक पालन करते ही हैं। अक्षय तृतीया सं० २०१६ (सन् १९५९) को उन्होंने फिर आश्रम–जीवनके नियम बनाकर स्वजनोंको प्रेरणा दी।

अपने जीवनके उत्तर कालमें जब भाईजीकी वृत्तियाँ जागतिक धरातलपर अधिक नहीं ठहर पाती थी, उस समय भी उनके हृदयमें इस बातकी एक टीस–सी थी कि मेरे अपने लोग साधन सम्पन्न जीवन नहीं बिता रहे हैं। यद्यपि वे संत–हृदय इसकी सारी जिम्मेदारी अपने पर ही लेते थे। ८ जून सन् १९६४ को अपने प्रियजन श्रीमोहनलालजी गोयन्दका, बाँकुड़ाको एक पत्र लिखा जिसे नीचे उद्धरित किया जा रहा है जिससे उनके हृदयके भावोंका पता लगता है। इसके बाद भी उन्हें सन्तोषजनक प्रगति नहीं लगी। ९ अप्रैल १९६७ में अर्थात् बिदा लेनेके ४ वर्ष पूर्व फिर उनके मनमें यही बात जोरसे उभरी। उन्होंने निर्णय लिया कि मैं स्वयं नियमोंका पालन करूँ तो फिर मेरे स्वजन भी जरूर पालन करेंगे। उन्होंने पालन करना प्रारम्भ कर दिया। निकटस्थ लोगोंको तो पता लगना ही था दूरस्थ स्वजनोंको पुनः १४ अप्रैल सन् १९६७ को अपने निजी सेवकसे पत्र दिलवाया उसे भी आगे उद्धरित किया जा रहा है।

गीताप्रेस, गोरखपुर ८–६–६४

प्रिय भैया मोहन,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। उत्तर समयपर नहीं दे पाया सो कोई विचार न करना। संसारकी बड़ी विचित्र स्थिति है। कोई चाहे कुछ भी समझता हो, पर जहाँतक मैं अपनेको समझता हूँ, मेरी समझसे सर्वथा सत्य है कि मुझमें बहुत प्रकारकी कमजोरियाँ हैं और इधर तो वर्षोंसे मेरे मनमें बड़ा दुःख रहता है और वह दुःख क्रमशः बढ़ रहा है। बहुत पुरानी

बात है देशको स्वतन्त्र देखनेकी बड़ी इच्छा थी। लड़कपनका बड़ा पवित्र त्याग–भाव था। उन्हीं भावोंसे राजनीतिक क्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ और शिमलापाल रहा। उसके बाद भी बम्बईमें बड़े अच्छे भाव रहे। भगवत्प्राप्तिकी इच्छा वास्तविक रूपसे बढ़ती रही और व्यापार छोड़कर साधक–-जीवन बितानेके उद्देश्यसे मैं बम्बईसे चला आया। सावित्रीकी माँसे भी स्पष्ट बात हो गई थी कि कहीं गंगातटपर एकान्तमें बड़ी गरीबीके साथ रहकर आदर्श जीवन बिताना है। उसके बाद भी करोड़ों रुपयोंकी कमाईके, वही ऊँची सरकारी उपाधिके प्रलोभन आये। उधर महात्माजीने भी बड़े प्रेमसे खींचना चाहा, पर भगवान्ने सब ओरसे बचाया। पर अब यहाँका जीवन बहुत ही निकृष्ट हो रहा है। 'कल्याण' में साधनपर बड़ा बल दिया जाता है। मैंने पुस्तकमें लिखा है। सत्संगमें भी लोगोंसे कहता हूँ। यहाँ एक साधक–संघकी स्थापना भी की है, जिसके बाहरके बहुत मेम्बर भी हैं। बाहरके लोग समझते हैं कि हमलोग पहुँचे हुए संत हैं और यहाँ सब संत ही रहते हैं। तीर्थ यात्रा ट्रेनमें इसी भ्रमयुक्त श्रद्धाके अनुसार लोग ट्रेनकी परिक्रमा करते थे, पर सच्ची बात यह है कि न मेरे जीवनमें साधन है और न यहाँ मेरे साथ रहनेवालोंका जीवन ही जहाँतक मेरा अनुमान है शायद ही साधनाकी ओर लगा हो। मैं आश्रमका जीवन चाहता था। यहाँ रहनेवाले तन, मन, वचनसे साधक होते। भगवान्में लगे रहते, पर यहाँ तो सिवा भोग–सेवाके और कोई भी कार्य मेरी समझमें नहीं हो पा रहा है। मरनेसे पहले मैं चाहता था कि कम–से–कम मेरे जीवनमें तो, मेरी बड़ी पुरानी इच्छाके अनुसार विरक्त सन्यासी नहीं तो, कम–से–कम त्यागी, सादा, साधु–जीवन कुछ दिन भी बीत सकता, पर वह भी नहीं हो पा रहा है।

इधर हमलोगोंका जीवन बेहद खर्चीला, अनावश्यक, नयी–नयी आवश्यकताओं और अभावोंको बढ़ानेवाला, आदतें बिगाड़नेवाला, अपने तथा दूसरोंके लिये भी बुरा आदर्श उपस्थित करनेवाला हो गया है। जहाँ करोड़ों हम जैसे ही मनुष्य पूरा पेट भोजन नहीं पाते, जहाँ लाखों बहिनोंको दो साड़ी उपलब्ध नहीं है, वहाँ ऐसा खर्चीला जीवन प्रमाद और पाप नहीं तो क्या है ? कभी–कभी मैं इससे बहुत घबराता हूँ। अपनी इन चीजोंको देखकर उन अभावग्रस्त भाई–बहनोंकी तस्वीरें मेरे सामने आ जाती हैं, तब आँसू बहने लगते हैं। सब चीजें जलानेवाली लगती हैं। फिर भी मैं छोड़ता नहीं, यह बड़ी कमजोरी है। सम्भव है, यह असत् कमाईके पैसेका परिणाम

हो। यद्यपि मेरी अपनी आवश्यकता ज्यादा नहीं है। मैं प्रति मास दो लेख लिखकर उससे पचास—चालीस प्राप्त करके बड़ी आसानीसे सत्कमाईसे अपना सब काम कर सकता हूँ——सात्विक भावके साथ, पर इसका भी अवसर मिले तब !

दूसरोंको दोष क्या दिया जाय, सब अपनी ही कमजोरी है। न यहाँ लोगोंमें आपसमें प्रेम है, न त्याग है, न सेवाका भाव है। यही हालत प्रेस और प्रेसके कार्यकर्ताओंका है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि कम—से—कम मैं अपने जीवनके द्वारा जनताको धोखा ही दे रहा हूँ। एक पाप कर रहा हूँ। जब मैं ही ठीक नहीं, साधनहीन खर्चीला जीवन शौकसे बिता रहा हूँ, तब मैं अपने साथियोंसे कैसे आशा रखूँ कि वे ठीक हों। ये सब बातें बहुत दिनोंसे तुम्हें लिखनेकी इच्छा थी, बड़े संक्षेपमें लिखी हैं। इस कार्यमें तुम और .... मेरी कुछ सहायता कर सको तो चेष्टा करना।

मैंने पाँच—सात वर्ष पहले आश्रमकी बात सोची थी, कुछ नियम लिखे थे। यहाँ एक साधारण जीवनवाले लोगोंकी व्यवस्था हो, और एक आश्रम——जीवनवालोंका। आश्रम—जीवनवालोंके लिये मैंने बहुत ही सहज कुछ नियम लिखे थे, परन्तु वे भी यहाँ नहीं चालू हो सके। इन नियमोंकी एक प्रतिलिपि मैं तुमको इसके साथ भेज रहा हूँ। तुम देखना।

पूज्य श्रीसेठजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। मेरा भी अच्छा नहीं रहता। श्रीसेठजी अगर उचित समझते तो पीछेसे किसके जिम्मे क्या रहेगा, कलकत्ता, गोरखपुर और ऋषिकेशकी क्या व्यवस्था होगी, इस सम्बन्धमें कुछ निश्चय कर देते तो अच्छा था। नहीं तो अहंकार परस्पर लड़ते रहेंगे और परिणाम तो जैसा होना है, सब जानते ही हैं। वैसे भगवान्‌की मुझपर बड़ी कृपा है। समय—समयपर (यह दुःख होते हुए भी) अनुभव होता है कि यह भी भगवान्‌का मंगलमय विधान ही है, मैं क्यों चिन्ता करूँ ? पर अहंकार—वासना चिन्ता करवा ही देती है।

मेरा स्वास्थ्य पहलेसे कुछ ठीक है, पर कमजोरी बहुत है। सावित्रीकी माँके अभी ठीक नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा अपना—— हनुमान

पूज्य सेठजीके चरणोंमें सादर प्रणाम। सब बच्चे प्रसन्न होंगे। जयदयालके पत्रानुसार उनका स्वास्थ्य बहुत ढीला तथा कमजोरी बढ़ी

मालूम होती है। यह चिन्ताका विषय है।

आश्रमके नियम :—

सूर्योदयसे पहले उठना।

छः घंटेसे अधिक न सोना।

दिनमें न सोना।

अपना काम अपने हाथसे करना।

(क) धोती–कपड़े धोना।

(ख) थाली–गिलास माँजना।

(ग) झाडू लगाना, सफाई रखना आदि।

भोजन—

बढ़िया चीज न खाना, चारसे अधिक बनी हुई न हो; छः से अधिक चीज नहीं; दिनमें दो बारसे अधिक न खाना। दूध, चाय, जल, नीबू आदि ले सकते हैं, जहाँ तक बने पत्तेमें भोजन करना।

बढ़िया कपड़े न पहनना, दो कपड़ेसे अधिक न पहनना, साफ कपड़े पहनना। विशेष आवश्यक होनेपर या जाड़ेमें चार तक सीधे–सादे कपड़े, कीमती कपड़े न पहनना। कपड़ोंका अधिक संग्रह न रखना। मिलके कपड़े न पहनना, स्त्रियाँ बढ़िया साड़ी, नाइलोनके कपड़े, बहुत महीन कपड़े न पहनें। साड़ीके अन्दर लहंगा अवश्य पहनें।

कम–से–कम पचास हजार नाम–जप नियमित करना तथा सुबह उठनेसे सोने तक जीभसे यथासम्भव नाम–जप बिना संख्या करते रहना।

अपने–अपने नियमानुसार संध्या, उपासना, पाठ, जप–पूजन आदि नियमित करना।

दो घंटे मौन रहना, यथासाध्य व्यर्थ–चर्चा न करना। किसीकी निन्दा न करना, न सुनना।

पुरुषका किसी भी स्त्रीसे (अपनी पत्नीके सिवा) अकेलेमें कभी न मिलना।

आश्रममें प्रत्येक स्त्री–पुरुषका कड़ाईसे ब्रह्मचर्य–व्रतका पालन करना।

कम–से–कम एकादशीका नियमित व्रत रखना, फलाहारमें बढ़िया फल, मेवा, हलवा आदि न लेना।

प्रतिदिन नियमित सत्संग–कीर्तनमें उपस्थित होना।

चारपाईपर न सोना।

चाँदी, लोहे, काँच और चीनी मिट्टीके बर्तनका व्यवहार कतई न करना।

साबुनका व्यवहार न करना।

चमड़ेका व्यवहार न करना।

अपना समय जप, स्वाध्याय, सेवा तथा प्रबन्ध सम्बन्धी या अन्य जिम्मेवारीके काममें ही लगाना।

काकुल न रखना।

सुगन्धित बाज़ारू तेल न लगाना।

गहने न पहनना।

परस्पर प्रेम तथा नम्रताका व्यवहार करना तथा असत्य, चोरी, सिनेमा आदि तो निषिद्ध हैं ही। इनके लिये नियम क्या ?

आश्रमकी व्यवस्था होनेपर आश्रममें बाहरसे आनेवाले अस्थायी लोग भी रह सकेंगे। पर जबतक वे आश्रममें रहेंगे, कड़ाईसे आश्रमके नियमोंका पालन उन्हें करना होगा। एक भी रातको रहनेवालेपर भी आश्रमके नियम लागू होंगे। आश्रममें पानी भरनेवाले तथा चौके बर्तन माँजनेवालेके सिवा नौकर नहीं होगा।

आश्रमकी व्यवस्था न होनेतक जिनकी इच्छा हो, व्यक्तिगत रूपसे इन नियमोंका पालन कर सकेंगे। आश्रमकी व्यवस्था होनेके बाद भी स्थानीय या बाहरके कोई, बाहर रहकर भी आश्रमके नियमोंका पालन करना चाहेंगे तो अवश्य कर सकेंगे। घरमें आश्रमके नियमके पालनमें आश्रमको आपत्ति नहीं, आश्रममें आश्रमके ही नियम अनिवार्य रूपसे पालनीय होंगे।

इन नियमोंका कोई भी कहीं भी रहे, इच्छा होनेपर पालन करें।

गीताप्रेस, गोरखपुर, दिनांक १७–४–६७

सम्मान्य महोदय

सादर प्रणाम। पू० भाईजी आगामी २१ अप्रैलको यहाँसे चलकर २३ तारीख रविवारको स्वार्गाश्रम पहुँचनेका विचार करते हैं। उनके मनमें बहुत दिनोंसे आश्रम–जीवन बितानेकी थी, पर आश्रमका रूप तो नहीं बना पर आश्रम–वासियोंके लिये उन्होंने पहले कुछ नियम बनाये थे। उनका पालन उन्होंने आरम्भ कर दिया है और दो–तीन नियमोंको छोड़कर शेष

सबका कड़ाईके साथ पालन कर रहे हैं। वे किसीको बाध्य तो नहीं करना चाहते पर दूसरे कोई भी पुरुष या स्त्री इन नियमोंका पूरा या यथासाध्य पालन करेंगे तो उनको प्रसन्त्ता होगी। उन्हींकी सम्मतिसे इस पत्रके साथ नियमका पत्रक भेज रहा हूँ।

जो नियम पालन करें उसकी सूचना भी आप पू० भाईजीको अथवा मुझे भेज सकते हैं।

इतना करनेके बाद भी श्रीभाईजीको सन्तोष नहीं हुआ। अपनी चिर विदाईके लगभग एक वर्ष पूर्व उन्होंने गीता–वाटिका निवासियों एवं आगन्तुक महानुभावोंके लिये पुनः एक योजना बनाई जिसका पूर्ण विवरण उनके निम्नलिखित शब्दोंसे मिल जायेगा––

"बहुत पुरानी बात है—जब मैंने बम्बई छोड़ी तो उस समय इच्छा थी कि कहीं गंगातटपर एकान्तमें रहा जाय; पर वह इच्छा पूर्ण नहीं हुई। यहाँ 'कल्याण'का काम समझाने आया था, पर यहीं रुकना हो गया। लगता है, इच्छा ही प्रबल नहीं थी, नहीं तो इच्छा प्रबल होती तो भगवान् सहायता करते ही।

इसके बाद यहाँ जिस ढंगसे, जिस प्रकारसे मेरा मन था कि ऐसी स्थिति बने, वह बनी नहीं। इसमें किसीका दोष नहीं, अपनी साधनाकी, अपने मनकी दृढ़ताकी कमी रही। प्रवाह चला, बीच–बीचमें बहुत बार यह बात मनमें आयी कि यहाँ अलग आश्रमका ढंग हो जाय। यहाँ आश्रमके नियम पालन करनेवाले रहें। जो लोग साधनाकी दृष्टिसे रहें, वे आश्रमके नियमोंका पालन करें; गृहस्थ लोग अलग रहें। बाहरसे आनेवाले लोग भी––चाहे वे पाँच दिन रहें––जबतक यहाँ रहें, वे आश्रमके नियमोंका पालन करें। वह भी नहीं हो सका। आश्रमके बहुत–से नियम बनाये थे, वे रक्खे हैं।

शरीर रुग्ण रहता है और पता नहीं कब क्या हो। जिस तरहका वातावरण यहाँ अपेक्षित था और जैसा बाहरके लोग समझते हैं, वास्तवमें वैसा यहाँ नहीं है। आध्यात्मिकताका जितना अधिक विस्तार यहाँ होना चाहिये था, उतना अधिक तो है ही नहीं, बहुत कम मात्रामें है और वह भी बहुत थोड़े लोगोंके मनमें। कुछ लोग बाहरसे आये—सब कुछ छोड़कर वे यहाँ रहते हैं। उनका बड़ा अच्छा भाव था, पर यहाँ हमलोगोंके दोषसे उन लोगोंको जितना आगे बढ़ना आवश्यक था, जितना वे बढ़ सकते थे, उतना नहीं बढ़ सके, क्योंकि संगदोष होता है।

२०–२५ दिन पहले रातमें एक दिन इस प्रकार मनमें बात आयी कि 'यहाँ कुछ करें'। प्रश्न हुआ––क्या करें ? सोचा कि भगवान्‌के साथ यहाँवालोंका कुछ सम्पर्क बन जाय और वह सम्पर्क बढ़ता रहे तो अच्छा है। बहुत जगह ऐसे आश्रम हैं, मन्दिर हैं, जहाँ रामायणके पाठ होते हैं, भागवतके पाठ होते हैं, नाम–संकीर्तन होते हैं। इसी प्रकार यहाँ भी होता रहे। यहाँ सर्वोत्तम चीज एक है––नाम–संकीर्तन, जो चल रहा है। इसके अतिरिक्त थोड़ा–सा हमलोग भी रोज कर लें। भगवान् एक हैं, अनेक नहीं, पर विभिन्न रूपोंमें लोगोंकी रुचि होती है, विभिन्न प्रकारकी स्तुतियोंमें रुचि होती है। विभिन्न प्रकारके मनोरथ होते हैं––सकाम भी और निष्काम भी। निष्कामके अन्तर्गत ज्ञान–प्राप्ति, प्रेम–प्राप्ति तथा सर्वथा अहैतुक––कई भाव हैं। अतएव जिनका जैसा मन हो, भगवान्‌के जिस किसी रूपमें जिनकी रुचि हो, जिस मंत्रमें रुचि हो, यहाँके जितने रहनेवाले हैं––बीमार न हों तो प्रतिदिन यहाँ आकर कम–से–कम पाँच मिनट उसका पाठ करें। मैं तो चाहता हूँ कि आठों पहर यहाँ कुछ–न–कुछ चलता ही रहे। ऐसे लोग तैयार हो जायँ; शहरके लोग कहते हैं कि हम भी साथ देंगे। बाहरसे आनेवाले लोग निकम्मे बैठे रहते हैं। वे कुछ करते नहीं, गप–शप करते रहते हैं। वे रामायणका पारायण शुरू कर दें। नौ दिन रहें, नौ दिनमें एक नवाह्न पारायण कर लें। भागवतका मासिक पारायण कर लें। वाल्मीकि रामायणका पाठ कर लें। जिसकी जो इच्छा हो, कर लें। हनुमान चालीसाके १०० पाठ रोज कर लें, क्या लगता है ?

इस प्रकार सोच–विचारकर भगवान्‌के आठ चित्र रखे हैं। इनकी मूर्ति प्रतिष्ठा नहीं हुई है, पर मनमें सब इन्हें भगवान् मानें। एक व्यक्तिके जिम्मे रहे कि वह रोज प्रातःकाल आकर धूप कर दे और एक–एक पुष्प चढ़ा दे। प्रत्येक भगवत्‌विग्रहके दो–दो श्लोक हैं, कुल १६–१७ श्लोक हैं। उन श्लोकोंका पाठ कर दे। किसी कारणवश किसी दिन वह न आ सकें तो दूसरेके जिम्मे कर दे। कुछ मन्त्र लिख दिये गये हैं, स्तवनके श्लोक लिख दिये गये हैं। सबसे यह प्रार्थना है––यहाँ रहनेवाले सभी लोगोंसे––पुरुषों, महिलाओंसे निवेदन है कि वे प्रतिदिन नियमपूर्वक जितनी देर भी सुभीता हो, पण्डालमें आकर जिनकी जिस मन्त्रमें रुचि हो, उसका जप–पाठ बिना लाँघा अवश्य करें। कम–से–कम पाँच मिनट, अधिक जितनी इच्छा हो। बीमारी या अनिवार्य स्थितिमें किसी दिन न आ सकें तो

कोई आपत्ति नहीं, पर आलस्य, प्रमाद या इस कार्यको गौण मानकर कभी अवहेलना न करें।

इन मन्त्रोंके अतिरिक्त किसीकी किसी अन्य मन्त्रके जपनेकी इच्छा हो तो वह उसका जप करे। पाठके लिये ये पुस्तकें रक्खी हैं——श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, विष्णुसहस्रनाम, दुर्गासप्तशती, रामरक्षास्तोत्र, गणेशस्तोत्र, श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवराज, रासपञ्चाध्यायी, श्रीयुगलसहस्रनाम, श्रीरामचरितमानस, श्रीहनुमान चालीसा आदि। जिनकी जिसका पाठ करनेकी इच्छा हो वे उसका पाठ करें। इस प्रकार जप–पाठमें जितना अधिक समय दे सकें उतना अच्छा, नहीं तो कम–से–कम पाँच मिनट तो अवश्य दें। यहाँकी बेगार समझकर दें——'यहाँ रहते हैं, यहाँकी यह बेगार है'——पहले लोग बेगार करते थे, वैसे ही दें। और नहीं तो हमपर कृपा करके दें, भीख दें, यहाँ रहनेवाले, यहाँ आनेवाले सब भिक्षा दें। यदि निष्काम–भावसे भगवान्‌के लिये करें तो बढ़ते–बढ़ते यह चीज बहुत बड़ी——भगवत्प्राप्ति करानेवाली हो सकती है। भागवतका पाठ अलग, रामायणका पाठ अलग, विष्णुसहस्रनामका पाठ अलग, रामरक्षास्तोत्रका पाठ अलग——इस प्रकार मनमें उत्साह हो तो सब पाठ चल सकते हैं। यह एक योजना है और आज ही इसकी स्थापना है। मैं अभी गीताके पन्द्रहवे अध्यायका पाठ कर लेता हूँ। आपलोग जिनकी इच्छा हो, आजसे पाठ आरम्भ कर दें; नहीं इच्छा हो तो कलसे आरम्भ करें।'

——इससे अधिक आशीर्वादात्मक आग्रह और क्या हो सकता है !

तदनुसार उन्होंने निम्न विज्ञप्ति लिखकर सबसे स्वीकृतिके हस्ताक्षर करवाये——

"यहाँ रहनेवाले तथा पधारनेवाले सभी लोगोंसे——पुरुषों, महिलाओंसे निवेदन है कि वे प्रतिदिन नियमपूर्वक जितने देर सुभीता हो, पण्डालमें आकर, जिनकी जिस मन्त्र, पाठमें रुचि हो, उसीका जप, पाठ, बिना बाधा अवश्य करें, कम–से–कम पाँच–मिनट, अधिक जितनी इच्छा हो। बीमारी या अनिवार्य स्थितिमें किसी दिन न आ सकें तो कोई आपत्ति नहीं, पर आलस्य–प्रमाद या इस कार्यको गौण मानकर कभी अवहेलना न करें।

फाल्गुन शुक्ल १२, गुरुवार　　　　विनीत,
सं० २०२६　　　　हनुमानप्रसाद पोद्दार

नियम–पालनकी दृढ़ता

बहुत वर्षोंसे भाईजीकी इच्छा थी कि उनके निकट रहनेवाले आश्रम–वासियोंकी तरह सादगी–संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करें। कई बार इसके लिये चेष्टा भी की किन्तु आश्रमका रूप नहीं बन सका। अन्तमें भाईजीने यह विचार किया कि मैं स्वयं नियमोंका दृढ़तासे पालन करूँगा। इसी आशयसे उन्होंने नियम बनाये एवं लगभग सं० २०२४ (सन् १९६७) के प्रारम्भसे वे दृढ़तासे पालन करने लगे। दिनमें दो बार भोजन; भोजनमें भी केवल चार वस्तुएँ, सबेरे चाय और अपराह्नमें कभी–कभी थोड़ा–सा फल––यही भाईजीका उस समयका आहार था। इसके अतिरिक्त और भी बहुत–से नियम थे, जिनका वे दृढ़तासे पालन करना आरम्भ किये। दूर स्थानमें भी रहनेवाले अपने प्रियजनोंको भाईजीने पत्र लिखवाये एवं नियमोंका विवरण भेजा, जिससे अपने–अपने घरोंमें रहते हुए भी बहुत–से लोग नियम पालन करने लगे।

भाईजी अन्य नियमोंका पालन करें इसमें तो कोई आपत्ति नहीं किन्तु नियम पालनकी दृष्टिसे ठीकसे न खायें––इसके लिये मैया (उनकी धर्मपत्नी)के मनमें व्यथा होनी स्वाभाविक थी। उन्होंने कई बार भाईजीसे प्रार्थना की, किन्तु भाईजी नियम पालनमें दृढ़ रहे। एक बार एक बहिन आयी हुई थी। भाईजीका उनपर विशेष स्नेह था एवं उनका भाईजीके प्रति भाव भी विशेष था। मैयाने उनको कहा––जितने दिन तुम रहो, उनको रस पिला दिया करो। उनकी आज्ञा पालनके लिये अपराह्नमें वह बहिन मौसमीका रस लेकर भाईजीके पास गयी। भाईजीने समझा कि जल लायी है, अतः कहा––अभी तो जल पिया है। बहिनने कहा––गर्मीमें चाहे कितना भी पी लीजिये। कई बार टालते रहे फिर भी भाईजी बोले––अच्छा, आधा गिलास जल दे दो। बहिनने गिलास भाईजीको दे दिया। ज्यों ही भाईजीने देखा कि रस है, उनके चेहरेका रंग बदल गया और बोले––इसे नहीं पीऊँगा। बहिनने बहुत आग्रह किया, बोली––इसके पीनेमें क्या बात है ? भाईजी दृढ़तासे बोले––बात क्यों नहीं है, आखिर नियम पालन भी तो कोई चीज है। नियम एक बार टूटा तो बार–बार टूटता ही जाता है। इतनेपर भी अब उसने अनुरोध किया तो कड़ाईसे बोले––आज तो मैं पी लूगाँ, पर इसके बदलेमें मैं दो दिन उपवास करूँगा। तब मत कहना, उपवास क्यों कर रहे हो ? बहिनके पास कोई उत्तर नहीं था, गिलास वापिस ले लिया।

यह थी भाईजीके नियम पालनकी दृढ़ता, यद्यपि वे नियम

पालनकी स्थितिसे बहुत वर्षों पहले ही ऊँचे उठ गये थे। वे तो 'वेदानऽपि सन्न्यस्यति' से भी आगे बढ़ गये थे, पर निकट रहनेवाले नियमोंका दृढ़तासे पालन करें; इसीलिये ऐसा करते थे।

भगवत्प्रेमका खुला वितरण

तीर्थयात्राके बाद भाईजीके बाह्य जीवनमें कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। तीर्थयात्रासे लौटनेके पश्चात् भाईजी अस्वस्थ हो गये। स्वास्थ्य लाभके लिये भाईजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये। अब वे 'श्रीराधा–माधवकी मधुर लीलाओंमें अधिक तल्लीन रहने लगे। अस्वस्थताकी दृष्टिसे कमरेमें अकेले रहनेसे इस (लीला–प्रवेश) में और अधिक सुविधा हो गयी। वे दृश्य, काव्य रूपसे लिपिबद्ध होने लगे व्रज–भावके अधिकांश पदोंकी रचना इसके बाद ही हुई। भाईजी अपनी काव्य–रचनाकी पृष्ठभूमिमें लिखते हैं—

"मंगलमय भगवान् अनन्त कृपा सिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मंगलमय रोग भेजा। महीनों बिछौनेपर पड़े रहना पड़ा। डाक्टर–वैद्योंने सम्मति दी—'पूर्ण एकान्तमें पूरे आरामसे रहना चाहिये, लोग मिलने–जुलने न पायें, कोई काम न करने दिया जाय।' लोगोंका मिलना–जुलना प्रायः बन्द हो गया। सहज अकेले रहनेका सुअवसर मिला। चिकित्सा–औषध–पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेला ही बन्द कमरेमें रहता। अकेलेमें रोगका चिन्तन न करके मन दूसरे काममें लगाता। वह काम था आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण। जीवनके सभी तरहके चित्र आते—लोग बड़ा संत, भक्त या महात्मा मानते हैं। ओह, कितना बड़ा धोखा है। जीवनमें कितनी अपार दुर्बलताएँ हैं, कितनी मलिनताएँ हैं और कितने दोष–कलुष भरे हैं। यह सब देखकर हृदय भर जाता आता, सहज दैन्यभाव उदय होता। आँखोंमें आँसू छलक आते, मन दयासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद् पतितपावनके पवित्र पाद–पद्मोंमें लोट जाता एवं बार–बार करुणापूर्ण भावसे अपने दोष बता–बताकर अपनी अत्यन्त दीन दशाकी ओर दीनबन्धुकी दयादृष्टिको आकर्षित करता। कभी स्वयं ही अपनेको प्रबोध देने लगता।

इसी बीच मन्द–मन्द मुसकराते हुए विश्व–जन–मन–मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते—हँसकर सिरपर वरद हस्त रखकर कहते—'मूर्ख, क्यों रो रहा है ? क्यों दीन–हीन बनकर दुःखी हो रहा है ?

चल मेरे साथ व्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द–सागरमें निमग्न हो जा।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द–कंदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मन्त्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे–पीछे। वे उसे परम रम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीला विहारमें।

मन स्वच्छन्द विचरण करता––कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्रांगणमें, कभी गोष्ठमें, कभी सखाओंके हास्य–विनोदमें, कभी वनसे लौटकर आवनीमें, कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रासमण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपांगनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, कभी किसी अकेली सखीके मनमें, कभी सखियोंकी मधुर प्रेमचर्चामें, कभी वंशीवटपर, कभी श्रावणके झूलों, कभी शारदीय झूलोंमें, कभी होलीके रंगमें, कभी नव–प्रफुल्लित कुसुम–सौरभित वृन्दा–काननमें, कभी श्रीमतीके पास, कभी श्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें, कभी किशोर–किशोरीकी लीला–विहार–स्थलीमें, कभी उनके परस्पर होनेवाले मधुरतम उच्च प्रेमालापोंमें, कभी उद्धव–गोपी–मिलनमें, कभी मथुरामें होनेवाले श्रीकृष्ण–उद्धव–मिलनमें, कभी मथुरा जानेके पश्चात् राधा तथा गोपांगनाओंकी प्रेम–विरह–दशामें––इस प्रकार प्रति–दिन दिन–रात महीनोंतक यह दैन्य और लीलाका प्रवाह चलता रहा। मनमें शत–शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप–माधुरी देखी, समझी और किसी–किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी–कभी सौन्दर्य–सुधा--सागरमें जाकर अपने–आपको खो दिया। वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन–वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था। उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं है। परन्तु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशको तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े–से उद्‌गारोंका चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।"

समझनेके लिये ऐसा कहा गया है कि इसके पहले तक भाईजीके बाह्य–जीवनमें आचार्य–कोटिके संतकी प्रधानता रही और इसके पश्चात् व्रज भावके मधुर–रस निमग्न संत की। भाईजीके सत्संगके प्रवचनोंमें भी इसके पश्चात् भगवत्प्रेमके भावोंका अधिक विश्लेषण हुआ। श्रीराधाष्टमी महोत्सवने पहलेकी अपेक्षा अधिक दिव्य और विशाल रूप धारण कर लिया। ऐसा प्रतीत

होने लगा मानो लीला–संवरणके पूर्व भगवत्प्रेमको खुले रूपसे वितरण करनेका अध्याय प्रारम्भ किया गया हो, जिससे जिन साधकोंके मनमें यत्किञ्चित् भी प्रेम–प्राप्तिकी अभिलाषा हो उनमें प्रेमका बीजारोपण हो जाय। भाईजी पत्रोंके माध्यमसे जो साधकोंका पथ–निर्देष करते थे उसमें भी प्रेमके भावोंका अधिक निरूपण होने लगा। इस सभीका प्रभाव भी होने लगा एवं कुछ साधकोंमें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कुछ भगवत्प्रेमका यत्किञ्चित् बीजारोपण हुआ हो। इसका संकेत कुछ साधकोंके पत्रोंसे प्राप्त होता है जिनके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

"........................तुमपर जो श्यामसुन्दरकी प्रेमामृतधारा बहने लगी है, वह अनवरत बहती ही रहेगी। उसमें न विराम हुआ है, न होगा ....वह स्वयं ही बहकर, स्वयं ही तुम्हें अपने अन्दर मिला लेने योग्य बना रही है। बना ही लेगी। जब वह एक बार तुम्हारी ओर बह चली है तब तुम्हारा उसमें आत्मसात् हो ही गया।"

"तुम्हारे एक पत्रमें भगवान्‌के प्रति तुम्हारे मनमें उदय होनेवाले मधुरतम भावोंका बडा ही मधुर, हृदय स्पर्शी मनकी मधुमयी स्थितिका दिग्दर्शन करानेवाले वर्णनको पढ़कर बड़ा ही सुख मिला। तुम्हारे इन पवित्र सुधा–रस तरंगोंमें मन तरंगित होने लगा और फिर उन्हीं तरंगोंके समुद्रमें डूब गया। बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। यह भी तुम पर श्रीभगवान्‌की अत्यन्त अनुकम्पा तथा परम प्रीतिका ही निदर्शन है।"

"तुम पर भगवान्‌की सचमुच ही बड़ी कृपा है जो तुम्हें उनकी पवित्रतम, दिव्यतम मधुर लीलाओंके चिन्तन दर्शनका सौभाग्य प्राप्त है। भगवान्‌की इस महान् कृपाके लिये सदा उनके कृतज्ञ रहो और उनके चरणोंमें न्यौछावर करके धन्य हो जाओ।"

"तुमलोग जिस भाव जगत्‌में विचरण कर रहे हो, उसमें तो सुख–ही–सुख, माधुर्य–ही–माधुर्य, हँसी–ही–हँसी, उन्माद–ही–उन्माद है और यदि जीवनका स्वरूप बन जाय तो वह मधुरतम श्यामसुन्दरका लीला धाम ही बन जाता है।"

"........................के विस्मय पूर्ण परिवर्तन सभी भगवत्कृपाके प्रत्यक्ष चमत्कार हैं। तुम लोगोंका यह भाव प्रवाह नित्य निरन्तर अनन्तकी ओर उत्तरोत्तर अधिक वेगसे प्रवाहित होता रहेगा तो बड़ी ही अनुपम वस्तु प्राप्त होगी। पर यह सब तुम लोग अपनेमें ही रखना। इन भाव सुधामय

महामूल्यवान रसमय रत्नोंको कुँजड़ोंके बाजारमें कभी नहीं रखना है। तभी इनका सौन्दर्य परम पवित्रताको बढ़ाता हुआ उत्तरोत्तर निखरता रहेगा।"

"भगवत्प्रेमका स्वरूप है---जगत्‌के विषयोंसे सहज विरक्ति, उनमें सुख–भावनाका नाश। सर्वत्र सर्वदा भगवत्सुखकी अनुभूति, भगवान्‌का मधुर चिन्तन, भगवान्‌के मानस चक्षुओंसे नित्य दर्शन। दैवी सम्पत्तिका बढ़ना। सो यह तुम लोगोंमें सहज हो रहा है, इससे पता लगता है तुम लोगोंपर भगवान्‌की अत्यन्त कृपा है और उनकी विशुद्ध प्रीति तुम्हारे जीवनमें आ रही है।"

"......................की 'केवट–लीला' और ....की 'अश्वारोही–लीला'––दोनो ही बड़ी मधुर थी। केवटके कन्धे पर श्रीराधाजीके द्वारा हाथ रखकर प्रियतमकी रूप–माधुरीका नेत्रों द्वारा पान करना तो अत्यन्त मधुर था ही, पर एक ही झटकेसे जकड़कर श्यामसुन्दरका रस–पान करना उससे भी मधुर था। 'यही उस दिनका जलपान हुआ।' ठीक है। वे ऐसे ही जलपानकी तो ताकमें रहा करते हैं। सदा ही प्यास बढ़ती रहती है उनकी––इस रस–पानकी। जय हो––इस दिव्य रस–पानकी। पर उधर रस–दानमें भी यही हाल है। इस रस–पान और रस–दानकी इच्छा कभी न पूरी होती है, न होगी ही।"

"तुम लोगोंके प्रति मेरा मन भी खिंचा जा रहा है। बड़ी मधुर स्मृति होती है। जिसके स्मरणसे भगवान्‌का स्मरण हो, जिसके संगसे भगवान्‌का संग प्राप्त हो, वह निश्चय ही परमादरणीय तथा परमहितैषी है। तुम लोगोंका स्मरण मुझे भगवान्‌की बड़ी प्यारी याद दिलाता है, इससे तुम्हारा स्मरण भी मुझे परम प्रिय लगता है। ....तुम तथा ऐसे ही अन्यान्य प्रेमी व्यक्तियोंको मैं सदा मन ही मन पत्र लिखता, एवं उनसे मिलकर बात–चीत करता रहता हूँ। बातचीतका विषय एक ही होता है। "प्रियतम श्रीमाधवकी लीला माधुरी।" पत्र नहीं लिख पाता उसके लिये समय आदिकी सुविधा चाहिये, परन्तु मानसिक तो सब कुछ किसी भी समय हो सकता है और वही होता है। ऋषिकेश तुम लोग आ सके तो बड़ा आनन्द होगा, परन्तु वहाँ मैं 'सार्वजनिक' पञ्चायतका वर्तन रहूँगा। तुम लोगोंके साथ कितना कैसे मिल सकूँगा, पता नहीं। परन्तु वैसे तो नित्य मिलता ही रहूँगा––जो असली है।"

इन कतिपय व्यक्तिगत पत्रोंके उद्गारोंसे, पत्रोंके अतिरिक्त व्यक्तिगत

वार्तालापसे भी इस बीजारोपणका कुछ संकेत मिलता है। ऐसे साधकोंके साथ जनवरी सन् १९६६ के वार्तालापको प्रस्तुत किया जा रहा है——

प्रश्न——हमारा जीवन आपके सर्वथा अनुकूल बन जाय, इसके लिये हमलोगोंको अपनी तरफसे क्या करना चाहिये ?

उत्तर——तुम लोग तो अनुकूल हो ही। मेरे प्रतिकूल क्या करते हो ? मैं तो अपने अनुकूल ही समझता हूँ।

प्रश्न——मैंने वस्तु-स्थिति बतलाते हुए निवेदन किया——हमलोग संसारमें जो रस लेते हैं, वह आपके अनुकूल थोड़े ही है ?

उत्तर——हाँ, ऐसा होना उचित नहीं। यह तो अनन्त जन्मोंके पड़े हुए संस्कारके फलस्वरूप होता है। इसे सहन नहीं करना चाहिये और मनमें विश्वास रखना चाहिये कि उनकी कृपा सब ठीक कर देगी। अपनी तरफसे चेष्टामें कमी रखे नहीं और उनकी कृपाका आश्रय कभी छोड़े नहीं। जो हो रहा है, उसमें उनकी कृपा माने। अपना अभिमान कभी न करें। भगवान्को अभिमान नहीं सुहाता। जो भी काम सामने आये, उसमें निषिद्ध क्रिया तो करे नहीं। बाकी सब काम करते हुए तीन बातोंपर ध्यान रखे। **'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर'**। जो भी काम करे, उसे सुन्दर रीतिसे करे, पर करे आसक्ति छोड़कर और उनके प्रीत्यर्थ। सफलता-असफलतामें हर्ष-शोक न हो। वे ही इस काम द्वारा सेवा करवा रहे हैं, यह भाव रखे। फिर उनकी सेवा स्वतः होने लगेगी और बादमें वह किस रूपसे सेवा करवाना चाहते हैं, यह पता भी लगने लगेगा।

प्रश्न——हमलोगोंकी चाल बहुत ही धीमी है। ऐसी चालसे तो जिन्दगी ही पूरी हो जायेगी ?

उत्तर——जिन्दगी पूरी हो जायगी, ऐसा नहीं मानना चाहिये। अपनी चालकी तरफ देखनेसे तो यही बात है, पर उसकी चिन्ता तुम्हें करनेकी जरूरत नहीं है। जब वे चिन्ता करने लगेंगे, तब समय थोड़े ही लगेगा। उनका तो संकल्प और उस संकल्पकी पूर्ति एक साथ ही होती है। जब उन्होंने अपना लिया है, तब वे कृपा करके सारी व्यवस्था स्वयं ही कर देंगे। हाँ, अपने लोगोंकी धीमी चाल सहन नहीं होनी चाहिये और अपनी चाल हमेशा धीमी ही मानना चाहिये। वास्तवमें बात भी यही है कि अपनी चाल जैसी होनी चाहिये, उससे तो धीमी है ही। यह जो धीमी चाल दिखलायी देती है, इसका मतलब ही है कि इस चालमें सन्तोष नहीं

है। ऐसा होना सतर्कताका सूचक है और यह सतर्कता हर समय रखें।

प्रश्न——साधनामें आगे बढ़े हुए लोग भी गिर जाते हैं, इसे देखकर-सुनकर मनमें कमजोरी आ जाती है।

उत्तर——जो लोग साधनामें वास्तवमें आगे बढ़े हुए नहीं थे और केवल दम्भ ही करते थे, उनकी बात तो अलग है, पर जो वास्तवमें आगे बढ़े हुए थे, उनके च्युत होनेके तीन कारण हैं। एक तो मनमें कुछ-न-कुछ साधनाका अभिमान आ जाता है और दूसरा यह कि कुछ दिखावापन आ जाता है। भगवान्‌को अपने जनका अभिमान नहीं सुहाता। यह बात भली प्रकारसे जान लेनी चाहिये कि यदि वह साधक सच्चाईसे लगा हुआ था तो वह गिरना भी उसके दुबारा उठनेकी भूमिका ही है। वह फिरसे जरूर उठ जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। च्युत होनेका तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि उसके विश्वासमें कमी आ जाय।

प्रश्न——मनमें अभिमान आवे तो उसके लिये क्या करें ?

उत्तर——हमेशा अपनेसे ऊँचे वालेको देखें और भगवान्‌से सुरक्षाके लिये प्रार्थना करें।

प्रश्न——साधन-पथपर कुछ दिन चलनेपर जो सफलता मिलती है, उसको बतला दिया जाता है तो प्रगति बन्द हो जाती है। यह कैसे हो जाता है?

उत्तर——यह तो सत्त्व, रज और तम गुणोंके बढ़ने-घटनेपर होता है। दूसरोंको बतलाते समय यदि अपनेको ऊँचा दिखलानेका भाव हो, तब तो रुकावट आ ही जाती है। हाँ, परस्पर सच्चर्चाके रूपमें बतलाया जाय तो उससे रुकावट नहीं आती।

प्रश्न——बताते समय यह भाव तो मनमें आ ही जाता है कि मेरा ठीक चल रहा है और दूसरोंका भली प्रकारसे नहीं चलता।

उत्तर——ऐसी बात मनमें आवे, तब भी यह माने कि मेरे जीवनमें साधन-भजन उनकी कृपासे ही ठीक चल रहा है और दूसरोंके जीवनमें भी उनकी कृपासे चलेगा। अपने भीतर यदि अभिमानकी वृत्ति जग जाय तो रास्ता रुक जाता है।

प्रश्न——समर्पणकी बात सुननेमें बहुत अच्छी लगती है, पर पूरा समर्पण कैसे हो ?

उत्तर——समर्पणकी बात सर्वोत्तम है ही, पर समर्पण सरल भी है

और कठिन भी। सरल तो इसलिये है कि इसमें कुछ करनेकी जरूरत नहीं और कठिन इसलिये है कि इसमें सब विश्वासोंको छोड़ना पड़ता है। असली समर्पण तो विश्वासका ही होता है।

यह बिनती रघुबीर गुँसाई।
और आस, विश्वास भरोसो, हरो जीव जड़ताई।।

फिर तो वे सारा भार स्वयं वहन करनेके लिये तैयार हैं। **'तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।'** पर वे किसका भार वहन करते हैं ? जो नित्य–अभियुक्त रहते हैं, जो नित्य निरन्तर उन्हींसे जुड़े रहते हैं। जैसे बच्चा माँकी अँगुली पकड़े रखे, फिर चाहे जैसे चले। यदि ऐसा नहीं है, तब तो भगवान्‌के आश्रयके प्रभावमें ऊपर चढ़े हुए लोग भी गिर जाते हैं। वेद–स्तुतिमें कहा गया है कि भगवदाश्रयसे रहित ऊपर चढ़े हुए लोग भी गिरते देखे गये हैं—

'ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।'

असली समर्पण किया नहीं जाता, वह तो होता है। अपनी तरफसे पूरी तैयारी रखे, फिर वे अपने आप ही स्वीकार कर लेते हैं। असली समर्पणकी इच्छा रखनी चाहिये। वे तो जितनी इच्छा देखते हैं, उतने अंशमें स्वीकार करनेके लिए खड़े ही हैं, परंतु जबरदस्ती नहीं करते। जितनी–जितनी तैयारी देखते हैं, उतना–उतना स्वीकार कर लेते हैं।

प्रश्न—समर्पण चौथाई–तिहाई रूपमें भी होता है क्या ?

उत्तर—पूर्ण समर्पण होनेसे पहले चौथाई–तिहाई भी होता है। जैसे उनकी शक्तिपर तो विश्वास कर लिया, अर्थात् होगा वही जो वे करेंगे, पर मनमें बात आ जाती है कि ऐसा हो जाता तो अच्छा रहता। यह अधूरा समर्पण है। समर्पणमें तो अलग इच्छा ही नहीं होनी चाहिये।

(इन सब बातोंको बतलाते हुए श्रीभाईजी अति मन्द–मन्द मधुर रीतिसे मुसकुरा रहे थे। उस मधुर मुखाकृतिकी याद आते ही मन किसी और ही दिव्य धरातलपर विहरण करने लग जाता है।)

प्रश्न—मेरे मनमें तो ऐसी बात बार–बार आती है कि आपके सामने रहते हुए हम अपने बारेमें चिन्ता करे ही क्यों ?

उत्तर—देखो, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि ये सब भाव भगवान्‌के प्रति ही होना चाहिये।

प्रश्न—हमने भगवान्‌को तो देखा नहीं है, तब कैसे विश्वास करें

उनपर ? हमने तो आपको देखा है और जो कुछ मिला है, वह आपसे मिला है। इसलिये हम तो आपको ही जानते हैं।

उत्तर––बाबाकी कही हुई एक बात मैं आज तुम लोगोंसे कह रहा हूँ। बाबाने जो बात कई लोगोंको एकान्तमें कही थी, उनके उस कथनके अनुसार जिनको इस ढाँचेमें नीलसुन्दर नहीं दीखते, उनकी आँखोंमें 'दृष्टि' नहीं। इस ढाँचेमें भगवद्भाव तो किया जा सकता है और इसमें न कोई आपत्ति है और न कोई आपत्ति उठाई जा सकती है, पर इस ढाँचेको श्रीकृष्ण मानना ठीक नहीं। ऐसी मान्यता सर्वथा हानिकारक है। ऐसा माननेसे इस ढाँचेके गिरनेके बाद तुम लोग अपनेको निराश्रित मानने लग जाओगे। ढाँचा तो एक दिन गिरेगा ही। भगवद्भाव यदि सच्चा और सही स्तरका होगा तो ढाँचा गिरनेके बादमें भी भगवान् इस रूपमें आकर सँभालते रहेंगे। बाबा तो कहा करते हैं कि हनुमानप्रसाद तो कभी मर चुका। इस ढाँचेके अन्दर तो भगवान् श्रीकृष्ण क्रियाशील हैं और यह ढाँचा श्रीकृष्णके संकल्पसे ठहरा हुआ है। जिस क्षण उन्होंने संकल्प संवरण किया कि उसी क्षण यह ढाँचा गिर जायगा। एक उदाहरणसे यह बात समझमें आ सकती है। अर्जुनका रथ तो भीष्म पितामहके बाणोंसे न जाने कबका जल चुका था। भीष्म पितामहके आहत होनेके बाद कई दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णके संकल्पसे वह रथ टिका रहा। युद्धकी समाप्तिके बाद शिविरमें पहुँचनेपर पहले अर्जुनको उतारकर जब भगवान् श्रीकृष्ण उतरे, उनके उतरते ही वह रथ भस्म हो गया।

भगवान्की संकल्पशक्तिसे सब कुछ सम्भव है। भगवान्की संकल्पशक्तिसे क्रियाशील वपु और पर–काया–प्रवेशकी प्रक्रियासे क्रियाशील–वपु, इन दोनोंमें महान् अन्तर है। देखनेमें यही दिखलायी देगा कि ये दोनों वपु हमारी–तुम्हारी तरह चलते–फिरते–उठते–बैठते हैं, पर वस्तुतः दोनों एक नहीं हैं। श्रीआदिशंकराचार्यको एक मृत राजाके शरीरमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता पड़ गयी थी। शास्त्रार्थमें विजय पानेके लिये गृहस्थाश्रमी जीवनकी कुछ बातोंकी जानकारी चाहिये थी, जो संन्यासी जीवनमें सम्भव नहीं थी। इसके लिये उन्होंने राजाके मृत शरीरमें प्रवेश किया। यह पर–काया–प्रवेश था और यह एक यौगिक प्रक्रिया है। यौगिक प्रक्रियाके माध्यमसे पर–काया–प्रवेश द्वारा क्रियाशील वपुकी तुलना उस वपुसे नहीं की जा सकती, जो भगवान्की संकल्पशक्तिके कारण क्रियाशील

है। पर–काया–प्रवेशकी प्रक्रिया तो किसी विशेष देश–काल–पात्रकी सीमासे आबद्ध है पूर्णतः सीमित है, पर ऐसी कोई सीमा भगवान्‌की संकल्प–शक्तिपर लागू नहीं होती। भगवान्‌के लिये सब सम्भव है। किसी रूपमें कभी भी और कहीं भी आना–जाना उनकी संकल्पशक्तिके लिये सर्वथा सहज है।

वाराणसीमें श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे रहते थे। उनके मनमें कोई पापकी वृत्ति आयी और वे घरसे रवाना हो गये। सीढ़ीसे नीचे उतरनेपर रास्तेमें मैं उन्हें प्रकट रूपमें, भावसे नहीं, प्रत्यक्ष दिखायी दिया और फिर उन्हें वापस ले गया। उसके बाद मैं उन्हें नहीं दिखलायी दिया। और वापस ऊपर जानेकी घटनाकी जानकारी मुझे तनिक भी नहीं। उन्होंने मेरे पास एक पत्र लिखा, तब मुझे मालूम हुआ। इसी तरहसे बम्बईके एक सज्जनका प्रसंग है। उन्हें भी मैं इसी तरह रात्रिमें मिला, पर मुझे कुछ भी जानकारी नहीं। उन्होंने मुझे पत्र लिखा, तब मुझे ज्ञात हुआ। मैं तो यही मानता हूँ कि उनकी श्रद्धाके अनुसार उनके सामने भगवान्‌ने प्रकट होनेकी लीला की। नन्दगाँवका भी एक प्रसंग है। जब हमलोग ऊपर गये तो वहाँ मन्दिरमें बाबाको गर्भ–गृहमें विराजित श्रीविग्रहके स्थानपर यह ढाँचा दिखायी दिया और जब वे मन्दिरसे बाहर आये तो इस ढाँचेकी जगह वह श्रीविग्रह बाबाको दिखायी दिया। यह बात भी बाबाके बतलानेसे ही मुझे मालूम हुई। बाबाके तो इस विषयमें बहुत अनुभव हैं, जिनमेंसे कुछ प्रसंग लिखकर उन्होंने शिवकुमारजी केडियाको दिये थे। कुछ बाबाने लिखकर रखे थे। वह सब मैंने जला दिया। श्रीविजयकृष्णजी गोस्वामीका प्रसंग तो विशेषरूपसे मननीय है। वे देहावसानके बाद भी याद करनेपर अपने शिष्य श्रीसतीश मुखर्जीके सामने उसी रूपमें प्रकट हुए थे और उन्होंने अपने शिष्यको साधनकी कई बातें बतलायी। यदि विश्वासका स्तर सही बिन्दुपर हो तो इस ढाँचेके गिरनेके बाद भी विश्वासके अनुसार इसी रूपमें यह ढाँचा आता रहेगा और तुम्हारे भीतर हतोत्साह नहीं आवेगा।

आज श्रीभाईजीके वात्सल्यका सागर बात–बातमें उमड़ रहा था। कलकत्तेमें हमलोगोंकी साप्ताहिक बैठकका क्रम चला करता था, जिसमें सत्संग–चर्चा हुआ करती थी। उस सत्संग–चर्चाको ध्यानमें रखकर एकने कहा—पिछली बार आपने आश्वासन दिया था कि तुम लोगोंकी सत्संग–चर्चामें मैं यहाँसे अपने भाव लिखकर भेजता रहूँगा।

श्रीभाईजीने कहा—तुमलोगोंको पत्र लिखनेके लिये तो मुझे समय

ही नहीं मिलता, तब उसके लिये मैं क्या कहूँ ? मैं बड़ा विवश हूँ, पर मनसे तो मैं भेजता ही रहता हूँ। तुम लोगोंके लिये मैं अपनी तरफसे क्या-क्या करता हूँ, यह कहनेकी बात थोड़े ही है। मुझे अपनी तरफसे जो करना है, वह मैं करता हूँ। तुमलोगोंको अपनी तरफसे जो करना है, वह करते रहो।

प्रश्न--मुझे तो कुछ मालूम नहीं है। मेरी जिम्मेदारी आपपर ही है।

उत्तर--जब हम लिफ्टमें चढ़ जाते हैं, तब फिर सीढ़ी चढ़नी पड़ती है क्या ?

इतनी सारी बातें २० जनवरी १९६६ को श्रीभाईजीसे उनके कमरेमें हुई। श्रीभाईजीके पाससे आकर हम सब एक स्थानपर बैठ गये तथा याद करके इन बातोंको लिख लिया। २१ जनवरीको श्रीभाईजी दिनभर भाव-समाधिमें निमग्न रहे, अतः बात नहीं हो सकी। २२ जनवरीको हमलोगोंको वापस लौटना था, इस कारण पूरी आशा थी कि समय तो आज अवश्य मिलेगा।

बहुत प्रतीक्षाके बाद लगभग आठ बजे उन्होंने हम चारों लोगोंसे बात करनी आरम्भ की। वे बड़ी ही प्रसन्न मुद्रामें बैठे थे और मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। जब हमलोगोंमेंसे कोई बोलता तो वे आँखें बन्द करके मधुर-मधुर मुस्कराते रहते। जब बोलनेका अवसर आता तो वे आँखें खोल लेते थे।

प्रश्न--परसों वाली बातें बड़ी मधुर लगी। आपके पाससे जानेके बाद हमलोगोंने वे बातें संक्षेपमें लिख ली थी और रातमें बहुत देरीतक परस्परमें सरस चर्चा भी करते रहे।

उत्तर--हाँ, वे बातें तो सरस थीं ही।

प्रश्न--अब तो जीवनमें रसका प्रवाह बहना चाहिये ?

उत्तर--रसका प्रवाह बहे। बीचमें रुके नहीं। मनमें ऐसा निश्चय करें कि जीवनमें रसका प्रवाह बहेगा ही। मनके निश्चयसे भी आत्माका निश्चय अधिक प्रबल होता है। थोड़ा-बहुत प्रयास करके यदि अपने मनमें यह मान लें कि हमने चेष्टा कर ली, इससे कुछ होता-हवाता नहीं है। इसका मतलब यह है कि हमारा निश्चय और हम मनके वशीभूत हो गये। यह आत्म-स्वरूपकी विस्मृतिसे होता है।

प्रश्न--हमलोग अपनी तरफसे क्या करें ?

उत्तर--स्वयंको भगवान्‌के आश्रित माननेमें और अपनी ओरसे होनेवाली चेष्टामें कमी है। अपनी जानमें अपने प्रयासमें कमी रखें नहीं और

कभी अभिमान करें नहीं। अभिमान साधकको गिरा देता है। माला आदि साधन तो सहायक हैं। वस्तुतः होता है उनकी कृपासे। वास्तवमें सत्यकी उपलब्धि सहज है। वह चीज तो सत्य है ही, फिर मिलनेमें कठिनता क्या है ? भगवदाश्रय और आत्म–प्रयास, इन दोनोंमें ही थोड़ी–थोड़ी कमी है।

प्रश्न——जीवनमें रस कैसे आये ?

उत्तर——इसके लिये इच्छा होनी चाहिये। सच्ची लालसा ही मुख्य हेतु है। फिर रस अपने आप आ जायेगा। सच्ची इच्छाका मतलब यह है कि इसके मिले बिना मनमें बेचैनी रहे। इच्छाके लिये भी यह विश्वास रखे कि ऐसी तीव्र इच्छा भी वे करवा देंगे। मनमें विश्वास रखनेपर वैसी इच्छा भी वे अवश्य करवा देंगे।

प्रश्न——भगवान्‌में विश्वास और रसकी इच्छाके बारेमें बात ऐसी है कि जगत्‌के प्रपञ्चमें रहते हुए यह होना कठिन दिखलायी देता है। गृहस्थ जीवनमें एक–से–एक बढ़कर बाधा सामने आती रहती है।

उत्तर——बाधा तो आती है, पर बाधाको हरनेवाला अपने आप बाधाको हरेगा। बाधाओंका चिन्तन न करें। अपनी साधनामें लगे रहनेके बारेमें चिन्ता करें तथा साधक साधनाको अधिकाधिक बढ़ाता रहे। भगवान्‌ने गीताजीमें कहा है——

'तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता ९/२२।।
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। गीता ९/२९।।

वैसे तो उनके लिये प्राणीमात्र सब समान है। उनके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय, परंतु जो उन्हें प्रेमसे भजता है, उसके लिये विशेष बात कही है। इसलिये अपने मनमें थोड़ी इच्छा रखे, फिर वे अपने आप पूर्ण कर देंगे। इसलिये इच्छा करो, उत्तरोत्तर तीव्र इच्छा करो।

प्रश्न——उस दिन आपने 'और आस विश्वास भरोसो' वाली बात कही थी। अन्य सभीकी आशा और विश्वासको छोड़ देना, यह बात तो बड़ी कठिन लगती है।

उत्तर——यह तो अति सरल है। बहुत ही सरल है। इसमें कठिनता क्या है। भगवान्‌में तो सब बातें पूर्ण हैं, उनसे चाहे जो ले लो। यदि उनमें किसी बातकी कमी हो तो दूसरोंसे आशा–भरोसा भी करे, पर जब सब वस्तुएँ मिल सकती हैं, तब दूसरोंका अधूरा संदेहभरा भरोसा रखे ही क्यों ?

इसमें तो केवल मान लेनेकी आवश्यकता है। मानते ही काम बन जायेगा।

प्रश्न——इसके लिये मनमें दृढ़ता कैसे आवे ?

उत्तर——मनमें दृढ़ता भी वे ही कर देंगे।

प्रश्न——जब काम–काजका झंझट–झमेला बढ़ा रहता है, तब बड़ी दिक्कत आती है।

उत्तर——मनसे यह भाव रखना चाहिये कि मै काम उन्हींके लिये कर रहा हूँ। मनमें समर्पणका भाव रखते हुए कर्म करो। मनमें यह समझ रखे कि इस मालिकके ऊपर असली मालिक तो वह है। फिर उनका काम करनेमें अपने सामने दिक्कत क्या है ? बच्चेमें बुराई होती है तो माँ उस बुराईको दूर करनेकी चेष्टा करती है, उस बच्चेसे नाराज थोड़े ही होती है। उसके स्नेहका प्रवाह तो वैसे ही बहता है। बच्चेकी बुराई माँके स्नेह–प्रवाहको बन्द या कम नहीं करती। तुम लोग अपनी चेष्टामें कमी मत रखो। जब जगत्में तुम्हारी माँ तुम्हारी शक्तिसे अधिककी आशा नहीं रखती, तब वह माँ, जो अनन्त माताओंके स्नेहका मूल स्रोत है, वह माँ तुम्हारी शक्तिसे अधिककी आशा तुमसे थोड़े ही करेगी।

प्रश्न——बहुत दिन पहले एक पत्रमें लिखा था कि उनको रिझानेके लिये कुछ नहीं चाहिये, बस अपनेको उनका मानना भर पर्याप्त है।

उत्तर——हाँ, यह तो बिल्कुल ठीक है। उनका होनेका अर्थ है दूसरोंका मेरेपर अधिकार न रहे। कामका, क्रोधका, परिवारका, किसीका भी अपनेपर अधिकार न रहे। अभी तो अपनेपर बहुतोंका अधिकार है। वस्तुतः कुछ नहीं करना है। अपनी सारी ममता केवल उनमें केन्द्रित कर दें और केवल–केवल वे ही मेरे रह जायें। अपनी तरफसे तुमलोग चूक मत करो। सदा यह ध्यान रखो कि सेवामें प्रमाद न आ जावे। जितना काम हम लोग कर सकते हैं, उतना कर लें। उसमें कमी न रखें और वह करना भी उनकी शक्तिसे ही, अपनी शक्ति मानकर नहीं। अपनी जिम्मेवारी तो इतनी ही है कि हम हाथ–पैर जितना हिला सकते हैं, उतनी सक्रियता हममें अवश्य रहे। शेष तो वे स्वयं करनेके लिये तैयार ही खड़े हैं। चीटीं कितना चल सकती है ?

प्रश्न——साधनकी दृष्टिसे आपसमें मेल–जोल कितना बढ़ाना चाहिये ?

उत्तर——पारमार्थिक सम्बन्ध रखनेमें कोई हर्ज नहीं है। सम्बन्धमें

सांसारिकताका अंश खराबी उत्पन्न कर सकता है। साधकोंको आपसमें लौकिक सम्बन्ध कम रखना चाहिये। केवल आपसमें पारमार्थिक सम्बन्ध रखे। मौका पड़नेपर सेवा करनेमें हर्ज नहीं, पर सेवाकी आशा न रखे।

अनुमान होता है कि कुछ साधकोंके जीवनमें भाईजीने प्रेमका भावांकुर पैदा किया था या वैसी चेष्टा की थी। प्रेम–वितरणका यह क्रम कई वर्षोंतक चलता रहा।

भगवन्नाम जपमें लगानेकी एक और अनोखी योजना

भगवान्‌से भाईजीको स्पष्ट आदेश मिला था कि जगत्‌का भला करना चाहते हो तो भगवन्नामका प्रचार करो। इसका पूरा विवरण पिछले पृष्ठोंमें आ चुका है। इसके पश्चात् भाईजीने भगवन्नाम प्रचारके लिये कितनी तरहकी योजनाएँ बनाई। इसका भी कुछ विवरण दिया जा चुका है। भाईजीकी अडिग आस्था थी कि भगवान्‌का नाम उनका अभिन्न स्वरूप तो है ही साथ ही भगवान्‌की ही शक्तिसे वह भगवान्‌से भी अधिक शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् है। ऐसे अनेक संत हुए हैं, जिन्होंने भगवन्नामकी महिमाको हृदयसे स्वीकार किया है और अपनी कृतियोंमें उन्मुक्त प्रतिपादन किया है। परन्तु मुझे स्मरण नहीं आता कि किसी संतने भगवन्नाम–प्रचारके लिये कभी और कहीं इतना अधिक प्रयास किया हो। बस, ध्यानमें आते हैं एकमात्र श्रीचैतन्य महाप्रभु। श्रीभाईजीके जीवनमें नाम–निष्ठा श्रीचैतन्य महाप्रभुकी तरह ही थी और उन्हींकी भाँति श्रीभाईजीने नगरकीर्तन, सामुदायिक कीर्तन, ऐकान्तिक कीर्तन, नाम–प्रचार–यात्राएँ, प्रवचनोंमें अथवा एकान्तवार्तामें जपकी प्रबल प्रेरणा आदिका आश्रय तो लिया ही पर इन सबके अतिरिक्त कुछ बातें और हैं जो श्रीभाईजीकी विशिष्टताको उद्‌भासित करती हैं। युगधर्मके अनुसार आधुनिक सुविधाओंका सहारा लेकर भाईजीने प्रचार प्रणालीकी परिधिको बहुत अधिक विस्तृत कर दिया। इनमेंसे एक थी 'कल्याण' पत्रिकाके द्वारा जन–जनसे नाम–जपके लिये निवेदन। सन् १९२९ से ही भाईजी प्रतिवर्ष 'कल्याण' में नामजपकी सूचना निकालकर लोगोंको अपने–अपने घरोंमें नामजप करनेकी प्रार्थना करते। यह जप–यज्ञ प्रतिवर्ष लगभग ढ़ाई महीने चला करता। सब लोग 'हरे राम' महामन्त्रका जप करते और निश्चित अवधिके बाद उसकी सूचना कल्याण–कार्यालयको भेजते। उसे जोड़कर सब स्थानोंके नाम एवं कुल जपकी संख्या प्रतिवर्ष

'कल्याण' में प्रकाशित की जाती। प्रकाशित सूचनाओंके अनुसार सन् १९२९ में ४५५ करोड़ नामजप हुआ। यह संख्या बढ़ते-बढ़ते सन् १९६९-७० में ७७९ करोड़ नामजप तक पहुँच गई। सन् १९२९ की संख्याको ही औसत मानकर देखें तो भाईजीके जीवनकालमें इसी एक माध्यमसे १६,३८० करोड़से अधिक जप हुआ। भाईजीको गये ३० साल हो गये यह पद्धति अद्यावधि चल रही है। इसके अतिरिक्त दैनिक प्रवचनोंसे एवं व्यक्तिगत पत्रों या वार्तालापसे कितने लोगोंने कितना जप किया इसकी गणना असंभव है। कई साधक उनकी प्रेरणासे अभीतक प्रतिदिन एक लाख नामजप करते हैं। इतना ही नहीं मैंने स्वयं देखा भाईजी वृन्दावनसे सैकड़ोंकी संख्यामें तुलसीमाला मँगाकर अपने पास रखते और जो भी जरा-भी रुचि दिखाता उसे माला देकर प्रतिदिन जप करनेकी प्रेरणा देते। इन सभी उपायोंसे अनुमानातीत नाम जपका प्रचार हुआ। कितने व्यक्ति आज तक जप कर रहे हैं, इसकी कल्पना करना भी असंभव है।

उपरामताकी चरम सीमा

भाईजी जिस महाभावमयी स्थितिमें थे, उनके द्वारा बाह्य-व्यवहारका सुचारु रूपसे सम्पन्न होना सम्भव ही नहीं था। वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्णको इनके माध्यमसे जगत्‌के समक्ष एक नया आदर्श, उदाहरण रखना था। इसीका परिणाम था कि उस अनिर्वचनीय स्थितिमें रहते हुए भी विभिन्न क्षेत्रोंमें सेवाके नये-नये आदर्शोंका प्रस्तुतीकरण भाईजीके जीवन द्वारा हो सका। लगभग सं० २०१५-१६ के पश्चात् वृत्ति बार-बार जगत्‌को छोड़ने लगी। ऐसी अवस्थामें बाह्य-जगत्‌के कार्योंको सम्पन्न करनेमें बाधा उपस्थित होने लगी। नीचे भाईजीके पत्रोंके कुछ अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे उनकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सके—

दि० १२-६-६० के पत्रमें वे लिखते हैं—

प्रिय.............................

सप्रेम हरिस्मरण। .... मेरा स्वास्थ्य तो प्रायः ठीक ही है। पर मनकी उपरति, एकान्त-प्रियता तथा अन्यमनस्कता बढ़ रही है। कभी-कभी जगत्‌को भूल जाता हूँ। बोलते-बोलते भूल जाता हूँ। कहना कुछ और चाहिये—सोचना कुछ और चाहिये, कर तथा सोच जाता हूँ कुछ और ही। यह दशा है।................

श्रीभाईजीके जीवनमें ऐसा इसलिये हो रहा था कि अब उन्हें श्रीश्यामसुन्दर निरन्तर अपनी लीला–माधुरीका रसास्वादन करा रहे थे।

श्रीभाईजीके तत्कालीन भावमयी स्थितिके संकेत कई पत्रोंमें मिलते हैं। दि० १६–११–६१ के पत्रमें वे लिखते हैं——

प्रिय भैया ....

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे कई पत्र आये। मैंने इधर किसीको पत्र नहीं लिखा। रात–दिन कुल मिलाकर पाँच–छः घण्टे बाह्य चेतना पूरी रहती है। उस समय जितना बन पड़ता है, प्रेसका काम देखता हूँ। पत्रादि लिख ही नहीं पाता, बड़ी विवशता है। कमरा अधिक समय बन्द ही रहता है। सत्संगमें भी कभी दो–चार दिनों बाद जा पाता हूँ। भाई जयदयाल, विष्णुकी माँ आये हुए हैं, पर मैं तो उनसे नहीं मिल पाता। यह हालत है। ....आज–कल मेरा न भूलना ही आश्चर्य है। पत्रोंमें कुछका कुछ लिख देता हूँ। लिफाफों पर नाम गड़बड़ कर देता हूँ। ....

* * *

उन्हीं स्वजनको दि० २४–४–६२ के पत्रमें भाईजीने लिखा——

प्रिय भैया ....,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। मैं पत्र नहीं लिख सका, सो भैया मेरी परिस्थिति पर विचार करके क्षमा करना। तुम लोगों जैसे सुहृदोंको पत्र लिखनेका मन बहुत रहता है और यह उचित भी है। अतः मैंने पत्र देना एकदम बन्द ही नहीं कर दिया——परिस्थितिने बाध्य कर रखा है। मेरी परिस्थितिका पूरा अनुमान करना भी कठिन है। प्रतिक्षण संसारको सर्वथा विस्मृत करा देनेवाली चित्तवृत्तिका प्रवाह, बलात्कारसे इस वृत्ति प्रवाहकी सहज गतिको रोककर संसारको पकड़ाये रखनेवाली परिस्थितियाँ, मस्तिष्कका विद्रोह तथा द्वन्द्व–युद्ध, मेरी स्थितिका अनुमान न कर सकनेके कारण सभीका अपने–अपने मनके महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये मेरी सम्मति, सहयोग तथा सहायताका आग्रह, भाँति–भाँतिकी संसारकी परिवर्तनशीलताके कारण प्रादुर्भूत स्थितियाँ आदि; तथा काममें अनिच्छा, अरुचि, समय–समयपर कामकी आवश्यकता तथा पद्धतिकी भी विस्मृति होनेपर भी बलात्कारसे कामकी स्मृति तथा काममें लगकर यथायोग्य कार्य सम्पादन करना। यह मेरी हालतका एक सांकेतिक रूप है। अब बताओ कैसे क्या सोचूँ, क्या लिखूँ। आज इस समय किसी प्रकार मनको

बटोरकर पाँच–चार पत्र लिखनेका विचार किया है। तुम्हारा यह पत्र पहला ही है। लिख सकूँगा या नहीं पता नहीं। मेरी यह स्थिति किसीको न समझायी जा सकती है, न कोई समझ पायेगा, ऐसी आशा ही है। ....
....

* * *

भाईजी केवल पत्रोंमें लिखते थे, यह बात नहीं थी, वस्तुतः उनकी स्थिति ऐसी हो गयी थी। वे परम दिव्य भावराज्यमें निरन्तर अवस्थित रहते थे। ऐसी ही स्थितिमें उनके द्वारा एक पत्र लिखा गया, जिसमें पत्रके अन्तमें तुम्हारा–हनुमानके स्थानपर लिख दिया गया––राधामाधव। दि० २२–७–६१ का वह पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है––

प्यारे ....सभी प्यारे, सभी प्यारी–सभीमें सदा राधामाधव, सभीमें सदा राधामाधवकी मधुर मनोहर लीला।

राधा माधव माधव–राधा छाये देश काल सब ओर।
नाच रही राधा मतवाली, मुरली टेर रहे मनचोर।।
देखो–सुनो, सदा सबमें, सर्वत्र भरे दोनों रसधाम।
मधुर मनोहर मूरति, मुरली–ध्वनि बरसाती सुधा ललाम।।
लीला–लीलामय ही हैं सब, लीला–लीलामय सर्वत्र।
लीला–लीलामय ही रहते, करते लीला विविध विचित्र।।
नित्य मधुर दर्शन सम्भाषण, स्पर्श मधुर नित नूतन भाव।
नित नव मिलन, नित्य मिलनेच्छा, नित नव रस–आस्वादन चाव।।

राधा–माधव

(पद–रत्नाकर / प० सं० १६७)

भाईजीकी वृत्ति प्रायः जागतिक और शारीरिक धरातलको छोड़ दिया करती थी, पर अब तो और भी अधिक इस पाश्चभौतिक धरातलसे अतीत रहने लगी। जिन प्रेमीजनोंको वे प्रति सप्ताह तीन–चार या प्रतिदिन पत्र देते थे, उन्हें महीनोंसे पत्र दिये जाने लगे। आवश्यक कार्य होनेपर भी अन्यत्र जाना स्थगित करने लगे। धीरे–धीरे कल्याणके अतिरिक्त सभी जिम्मेवारीके कार्योंसे सम्बन्ध समेट लिया। जो लोग दूर–दूरके स्थानोंसे मिलने, सहयोग प्राप्त करने एवं आवश्यक परामर्श करने आते, उनसे भी बात–चीत नहीं कर पाते थे।

दिव्य अनुभूतियाँ

यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि पूज्य भाईजीने अपनी लेखनीसे अपनी दिव्य आध्यात्मिक अनुभूतियों और उपलब्धियोंका जितना स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन अपने स्वरचित काव्यमें किया है उतना गद्यमें नहीं लिखा। किंचित् गहराईमें उतरकर दृष्टिपात करें तो 'पद-रत्नाकर'के पद उनकी दिव्य स्थितिके यथार्थ चित्र हैं। उनमें कई चित्र तो इतने विलक्षण हैं कि जिन श्रीराधाजीके भावोंका विवेचन-वर्णन उन्होंने 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' ग्रन्थमें किया है वे ही दिव्य भाव उनके स्वयं अनुभूतिमें ही नहीं थे बल्कि वे उन्हींमें विहरण करते थे।

भाईजीकी गम्भीर साधनाका श्रीगणेश तो सन् १९१६ में शिमलापालके नजरबन्दीके जीवनमें हुआ था। वहाँ पौने दो साल रहकर वे साधनाके कई सोपानोंपर आरूढ़ हो गये थे पर बम्बई जानेके बाद कुछ वर्ष व्यवसाय प्रधान जीवनमें वे दबसे गये। सन् १९२० से पुनः श्रीसेठजीके सम्पर्कसे साधनाके भावोंका पुनरुद्रेक हुआ एवं जनवरी १९२२ से भाईजी पुनः विशेष तत्परतासे साधन-संलग्न हो गये। इसी समय काव्य रचना भी प्रारम्भ हुई। वे अपने मनको प्रबोध देते हुए लिखते हैं—

इधर-उधर क्यों भटक रहा मन-भ्रमर, भ्रान्त उद्देश्य विहीन।
क्यों अमूल्य अवसर जीवनका व्यर्थ खो रहा तू मतिहीन।।

* * * *

भय-भ्रम-भेद त्यागकर, सुखमय सतत सुधारस कर तू पान।
शांत-अमर हो, शरणद चरण-युगलका कर नितगुण-गण-गान।।

(पद-रत्नाकर १०४८)

साधन-संलग्न होनेपर तो वे इतने तत्परता और तेजीसे आगे बढ़े कि कुछ ही समयमें वे गाने लगे—

एक लालसा मनमहँ धारौं।
बंसीबट, कालिन्दितट, नटनागर नित्य निहारौं।।
मुरली-तान मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौं।
पल-पल निरखि झलक अँग-अँगनि पुलकित तन-मन बारौं।।

(पद-रत्नाकर १०५२)

लगता है जैसे उनके पूर्व-जन्मोंकी साधनाके सारे संस्कार जागृत हो गये और जो नाम-मात्र अवशेष था उसे पूर्ण करनेके लिये भगवान्

उनको तीव्रतासे अपनी ओर खींचने लगे। जब स्वयं भगवान् खींचना चाहें तो विलम्ब कहाँ ? उनका मन तीव्र वैराग्यसे भर गया और वे संसारके प्रपंचको छोड़नेके लिये आकुल हो गये। यद्यपि 'कल्याण' का शुभारम्भ होनेसे एक नई जिम्मेवारी अध्यात्मके नामपर आ गई थी पर फिर भी बहुत विचार करनेपर सारे बन्धनोंको छोड़कर संन्यास ग्रहणका निर्णय ले लिया और उसके लिये कमण्डलु भी खरीद लिया। श्रीसेठजीसे श्रीगंगातटपर किसी एकान्त स्थलमें रहनेकी अनुमति भी सन् १९२७ में ही प्राप्त कर ली। अब उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन यह शुभ घड़ी सामने आ जाय। हृदयकी यही आकुलता मुखरित हो उठी——

होगा कब वह सुदिन, समयशुभ मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो, हो जायेगा पावन प्रभु–चरणोंमें लीन।।

* * * *

पुण्य भूमि ऋषि–सेवितमें कब होगा इसका निर्जन–वास।
गंगा की पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नास।।

* * * *

कब साधन के प्रखर तेज से सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय–विमुख हो हरि की विमल भक्ति को पायेगा।।

(पद–रत्नाकर १४१)

(रचनाकाल आषाढ़ वि० सं० १९८४, सन् १९२७)

* * * *

इस स्थितिमें बम्बई छूट गई, काम संभलानेके लिये गोरखपुर आ गये। गोरखपुर आते ही मन भगवान्‌के दर्शनोंके लिये छटपटाने लगा। अब न और कुछ सुहाता था न अन्य कोई इच्छा थी। मन हर समय व्याकुल रहता जिसका हम कोई अनुमान नहीं लगा सकते। हृदयकी सच्ची उत्कण्ठा काव्यमयी भाषामें मुखरित हो गई——

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तू ही मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो हिवड़ो उझल्यौ आवै है।।
तड़फ रह्यो ज्यूँ मछली जल विन, अब तूँ क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणैमैं देरी कर क्यूँ अब और सतावै है ?।।
पण, जो इसी बातमैं तेरौ चित राजी होतो होवैं।
तौ कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणौ दुख होवै।।

तेरै सुखसैं सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातिर प्रियतम ! अपणै सुखमैं मत काँटा बोवै।।
पण या निश्चै समझ, तनें मिलणैकी खातर मेरा प्राण।
छिण–छिणमें व्याकुल होवै है, दरसणकी है भारी टाण।।
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानैनहीं किसीकी काण।
आठों पहर उड्या–सा डोलै, पलक–पलककी समझै हाण।।
पण प्यारा ! तेरी राजीमैं है नित मेरौ मन।
प्राणधिक, दोनूँ लोकाँकौ तूँ ही मेरौ जीवन–धन।।
नहीं मिलै तो तेरी मरजी, पण तन–मन तेरै अरपन।
लोक–वेदहै तूँही मेरौ, तूँ ही मेरौ परम रतन।।
चातककी ज्यूँ सदा उड़ीकूँ कदे नहीं मुहनैं मोड़ूँ।
दुख देवै, मारै, तड़पावै तो भी नेह नहीं तोड़ूँ।।
तरसा–तरसाकर जी लेवै तो भी तनैं नहीं छोड़ूँ।
झाँकूँ नहीं दूसरी कानी तेरैमैं ही जी जोड़ूँ।।

(पद–रत्नाकर ४१८)

(रचनाकाल आश्विन कृ० १ वि०सं० १९८४)

(साक्षात् दर्शनोंके ५ दिन पूर्व)

जैसे जलके बिना मछली तड़फड़ाने लगती है वैसे ही भगवान्के न मिलनेसे मन तड़प रहा है, प्राण व्याकुल हो रहे हैं——इस स्थितिका तो सच्चा चित्र इस पदमें है ही पर इसका अनुभव तो उन्हीं भाग्यवानोंको है जिन्हें ऐसी स्थिति कभी प्राप्त हुई है। इसके साथ ही यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात है इस व्याकुलतामें भी तत्सुख सुखिया भाव। प्रेमका जो बहुत ऊँचा भाव 'तत्सुख सुखित्वम्' नारदजीने बताया है उसका यहाँ स्पष्ट दर्शन हो रहा है। भगवान्के अभी दर्शन हुए नहीं है, उसके लिये तरस रहे हैं पर फिर भी **"तेरै सुखसैं सुखिया हूँ मैं" और "मेरे खातिर प्रियतम ! अपणै सुखमैं मत काँटा बोवै।"** दर्शनोंकी उत्कट इच्छासे मेरे प्राण क्षण–क्षणमें व्याकुल हो रहे हैं पर प्यारे ! फिर भी तुम्हारी प्रसन्नतामें मेरी प्रसन्नता है। तुम तरसा–तरसाकर प्राण ले लो तो भी मैं दूसरी तरफ नहीं देखूँगा। इन प्रेमके भावोंका निदर्शन है साक्षात् दर्शनोंके पूर्व सन् १९२७ में।

ऐसे भाव होनेपर भगवान् दूर थोड़े ही हैं। वे तो प्रतीक्षा करते हैं

ऐसे भावोंकी जिससे दर्शनका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सके। इसके थोड़े ही दिनों बाद जसीडीहमें १६ सितम्बर सन् १९२७ (आश्विन कृ० ६, वि० स० १९८४) को भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन हुए। प्रथम साक्षात्कारके उपरान्त हृदयका वह दर्शनोल्लास एक पदके रूपमें प्रकट हो गया---

जन्म जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप–सुधा वारिधि–अवगाहनकी, जिसके थी अभिलाषा।।
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें ।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें।।

* * *

यह साधन–विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा–पारावार।।
उनकी प्रेम–रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल।।
कोमल कर–स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण–स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना।।
उस छवि–राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार।।
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप–छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकतीं हैं, वर्णनमें अक्षम।।
वाणी कुछ प्रयास करती हैं, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर।।
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता।।
रुकी लेखनी बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे।।
पूर्ण प्रेमसे मिल करके सब, करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान्।।

(पद–रत्नाकर ८५६)

इससे स्पष्ट दर्शनोंका वर्णन एवं स्वीकारोक्ति और क्या होगी ? कुछ समयतक भगवान्‌के विष्णुरूपके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप आदि होते रहे फिर श्रीश्यामसुन्दर मनमोहन रूपमें दिखाई देने लगे। अब अनुभूतियोंके

वर्णन भी उसी रूपके होने लगे। बाहरकी अत्यन्त क्रियाशीलतामें भी सर्वत्र सब समय श्रीकृष्णकी मुख–कान्तिके ही दर्शन होने लगे—

हटा मोह का पर्दा गहरा, मिटी सभी मनकी भ्रम–भ्रॉन्ति।
नहीं सताती अब मनकी कल्पित वह घोर अपार अशान्ति।।
क्रियाशीलता अति विशालमें भी रहती सुखदायिनी शान्ति।
क्योंकि दीख पड़ती मुझको सर्वत्र श्यामकी ही मुख–कान्ति।।

(पद–रत्नाकर १२२८)

इसके बाद श्रीकृष्ण उन्हें प्रियतमरूपसे मिल गये। प्रियतम हो जानेपर जीवनकी सारी साध पूरी हो गई। इसे भाईजीने स्पष्ट स्वीकार किया है—

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान्।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान।।
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप–सुधा–रसका मधु–पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान।
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम–अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मन–मोहन अब सर्वत्र समान।

(पद रत्नाकर १२१८)

बिना किसी शब्द जालके उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि मेरे जीवनके सब आरमान पूरे हो गये और सर्वत्र मुझे श्रीश्यामसुन्दर दिखाई देने लगे। इसके थोड़े समय बाद अकेले श्यामसुन्दरके स्थानपर प्रिया–प्रियतम दोनों आ गये। इसका भी स्पष्ट वर्णन निम्न पदमें है—

कर दिया प्रभुने मुझे निहाल। हटा आवरण, कटा जंजाल।।
दीखते अनावरण नँदलाल। बजाते मुरली मधुर रसाल।।
सदा–सर्वत्र सभीमें श्याम। विविध लीला करते अभिराम।।
खेलते अपनेमें अविराम। भरे होठों मुसकान ललाम।।
बनाकर विविध वेष औ साज। साथ ले तत्–अनुकूल समाज।।
गान गाते ही उठते गाज। रचाते कभी मिटाते राज।।
नित्य रसरूप रसिक–सिरमौर। एक ही तत्त्व, न कोई और।।
बहाते रस–धारा सब ठौर। युगल मनमोहन श्यामल–गौर।।
सर्वपर, सर्व सर्व–अधिराज। एक ही, दो बन, रहे विराज।।
देख मैं महाभाव–रसराज। हो गया सफल, मिटे सब काज।।

(पद–रत्नाकर ११२६)

यह भी स्पष्ट लिख दिया कि प्रिया–प्रियतमके दर्शनसे केवल जीवन ही सफल नहीं हुआ बल्कि अब कोई कर्तव्य भी शेष नहीं बचा। न कोई प्राप्तव्य शेष रहा न कर्तव्य। यह स्थिति केवल एकान्त कमरेमें बन्द होनेपर रहती है, सो बात भी नहीं। देखिये––

रहूँ भले यात्रामें, चाहे करूँ कहीं भी घर–बन वास।
नहीं अकेला मैं हूँ रहता, प्रभु नित रहते मेरे पास।।

(पद–रत्नाकर १२२७)

केवल प्रिया–प्रियतमके दर्शन होते हों या वे साथ रहते हों इतनी बात ही नहीं थी। हर समय उनकी लीलायें भी दृष्टिपथपर रहती थीं। इसीलिये मन बाहर नहीं आ सकता––

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण ।
बाहर कैसे दीखो वह निश्शब्द, अलक्षण।।
कौन बताये ? किसे ? वहाँके कैसे अनुभव।
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव।।
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला।।
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव।।
चलती लीला ललित अपरिमित नित नव नूतन।
कुसुम–सरोवर ही क्यों, अगणित सर–निकुञ्ज–वन।।
मधुर, मनोहर, सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसीमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती।।
मन–इन्द्रिय, सब अंग, बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय।।

(पद–रत्नाकर ११२८)

इसका तो भाईजीने अपने पदोंकी पृष्ठभूमि बताते हुए सन् १९५८ में गद्यमें भी साफ–साफ लिखा कि "मनमें शत–शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप माधुरी देखी, समझी और किसी–किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया।" (द्रष्टव्य––भाईजीका 'पद रत्नाकर' में निवेदन) आगे चलकर तो यह स्थिति निरन्तर रहने लगी। एक क्षणके लिये भी मन बाहर आनेको तैयार नहीं था। ऐसे एक नहीं अनेक

पद हैं—

"क्षणभर नहीं छोड़ते मोहन, नित्य बने रहते है संग।
देश—कालका भेद नहीं कुछ, पल—पल उठती अमित उमंग।।
घरमें—वनमें, बाहर—भीतर बहुत काममें, या बेकाम।
शयन—जागरण, खान—पानमें—संग सदा ही रहते श्याम।।
भोग—वासना मिटी सभी, मिट गया मोक्षका भी व्यामोह।
रहे एक वे नागर नटवर नित्य निरंतर बिना बिछोह।।
नहीं लोक—परलोक किसीका रहा कहीं कोई भी अर्थ।
सभी समय सर्वत्र स्वयं वे नाच रहे विशुद्ध परमार्थ।।
इन्द्रिय—मन—मति—सभी हो गये श्यामरूप बनकर अति धन्य।
रहा न प्राणि—पदार्थ दूसरा, श्याम एक रह गये अनन्य।।
(पद—रत्नाकर ११२१)

बहुत बार तो रात—दिन, प्रातः या सन्ध्याका कुछ भी पता नहीं लगता। क्योंकि चाहे जाग्रत अवस्था हो या स्वप्न, दिखायी देते हैं केवल श्रीश्यामसुन्दर। फिर अपने नामकी भी सुध—बुध कहाँ रहे। देखिये—

पता नहीं कुछ रात दिवसका, पता नहीं कब सन्ध्या भोर।
जाग्रत्—स्वप्न दिखायी देता श्याम सदा मेरा चितचोर।।
भूल गयी मैं नाम—धाम निज, भूल गयी सुधि—हूँ मैं कौन।
नयन नचाकर, प्राण हरण कर, खड़ा हँस रहा धरकर मौन।।
कैसी मधुर मूर्ति, वह कैसा था विचित्र मनहारी रूप !
आँखें झूर रहीं, झरतीं नित, करतीं स्मृति सौन्दर्य अनूप।।
मर्म बेधकर धर्म मिटाया, किया चूर सारा अभिमान।
लोक—लाज, कुल—कान मिटी सब, रहा न कुछ निज—परका भान।।
हा ! कैसा बिधु—वदन सुधामय, विचर रहा कालिन्दी—कूल।
हर सर्वस्व बाँध सब तोड़े, मिटे सभी मर्यादा—कूल।।
मनसा मिल रहते मेरे सब अंग नित्य प्रियतम के अंग।
नहीं छूटता कभी, सभी विधि रहता सदा श्यामका संग।।
रसमय हुई नित्य रस पाकर रसिक—रसार्णवका सब ओर।
बही रस—सुधा—सरिता—धारा प्लावित कर सब, रहा न छोर।।
श्याम रहे या रही मैं—कहीं, कुछ भी नहीं रहा संधान।

श्याम बने मैं, श्याम बनी मैं, एकमेक हो रहे महान।।

(पद–रत्नाकर ५०५)

हटते नहीं एक पल भी वे मुझे छोड़कर प्रियतम श्याम।
सोते–जगते, खाते–पीते, हरदम रहते पास ललाम।।
नित्य दिखाते रहते अपनी अति पवित्र लीला सुख–धाम।
बाहर–भीतर, तनमें–मनमें देते रहते सुख अविराम।।

(पद–रत्नाकर ११२५)

रहूँ कहीं कैसे भी, रहते नित्य साथ मेरे भगवान्।
जाऊँ कहीं, वहीं दिखती मुझको उनकी मधु मूर्ति महान।।
बसे सदा मेरे अंदर, वे बाहर भी नित रहते पास।
ममता–मोह मरे सब जगके, प्रभुमें हुआ पूर्ण विश्वास।।
पाप–ताप, भय–शोक मिटे सब, नष्ट हो गया मोह समूल।
मिटे मोहके कार्य भयानक, सभी जातिके सारे शूल।।
मधुर–भयानक जगका कुछ भी, कैसा भी परिवर्तन आज।
दिखता मुझे मधुर लीलामय प्रभुका ही सब लीला–साज।।
प्रभुके दर्शन–स्पर्श–मिलनसे नित्य मिटे जगके सब द्वन्द।
परम शान्तिसे पूर्ण विलक्षण छाया नित्य परम आनन्द।।

(पद–रत्नाकर ११८६)

रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमें जगते–सोते।।
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।
रहते नित भीतर–बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे।।
वे मेरे कैसे अपने हैं, इसे बताऊँ मैं कैसे।
अनुभव होता है, पर नहीं बता सकता गूँगा जैसे।।

(पद–रत्नाकर ११७२)

उपरोक्त कुछ पद ध्यान दिलानेकी दृष्टिसे ही दिये गये हैं। ऐसे पद तो 'पद रत्नाकर' में और भी बहुत हैं। 'अनुभूति' शीर्षकके अन्तर्गत सवा सौसे ऊपर पद प्रायः ऐसे ही हैं। जीवनके अन्तिम दस–बारह वर्षोंमें तो भाईजीको वृत्तियोंको जागतिक धरातलपर रखनेके लिये संघर्ष करना पड़ता था। पर इस संघर्षके बाद भी वृत्तियाँ बलात् उसी लीला राज्यमें चली जाती थीं। यह एक अद्भुत विवशता थी। यह एक ऐसी अनोखी बात थी जिसका

वर्णन शब्दों द्वारा संभव है ही नहीं। उनके अन्दर तो रूप–रसका सागर लहराता रहता था––

भीतर कोटि–कोटि रबि राजत, बाहर घोर अँधेरी रात।
भीतर खुले द्वार रसगृहके, बाहर लगे कठोर कपाट।
बाहर निर्जनता–नीरवता, भीतर लगी रूपकी हाट।।

जो वस्तु मन–बुद्धिसे भी परे है, जिसे अनिर्वचनीय ही नहीं, अचिन्त्य कहा गया है, वह न वाणीमें आ सकती है, न उसे समझानेके लिये शब्द ही है। जितना शब्दोंके माध्यमसे प्रकट हो सकता है उसमें भाईजीने कोई कसर नहीं रक्खी।

मेरे मंगलमय रसमय प्रभु रहते नित ही मेरे पास।
देते नव–नव नित्य मधुर आनन्द, विविध कर दिव्य विलास।।
डूबे रहते स्वयं, डुबाये रखते मुझको पारावार।
परम दिव्य रसके, स्वाभाविक करते विशद विशुद्ध विहार।।
नहीं अन्यको मुझे देखने देते, नहीं देखते आप।
करते रहते सदा मधुरतम दिव्य मुझीसे रस–आलाप।।
रखा नहीं मुझमें–अपनेमें किंचित् भेद–भिन्नता–भाव।
हुआ पूर्ण ऐकात्म्य, मिट गया मिथ्या सब अलगाव–दुराव।।

(पद रत्नाकर १२२०)

इन पिछले १०–१२ वर्षोमें भावुकजनोंके रसमय पत्रोंका उत्तर बहुत कम देते थे पर बहुतसे उत्तर पदके माध्यमसे ही देते थे। ऐसे पदोंकी रचना विपुल परिमाणमें हुई है जो केवल पत्रोंमें ही लिखे गये हैं। उन पदोंको भाईजी अपनी डायरीमें भी नोट कर लेते थे। 'पद रत्नाकर' प्रकाशित होनेसे तो सभी ऐसे पद सर्वसुलभ हो गये हैं अन्यथा बहुत से पत्रोंमें यह लिखा रहता है कि इस पदको कोई दूसरा व्यक्ति न पढ़े अथवा आदेश रहता था कि इस पदको केवल अमुक–अमुक व्यक्ति ही पढ़ सकते हैं। इसका प्रधान कारण संभवतः यही था कि उन पदोंमें स्वयंकी स्थिति, अनुभूतियोंका स्पष्ट वर्णन होता था। ऐसे पद यद्यपि समय–समयपर 'कल्याण'में प्रकाशित होते थे पर उनमें रचयिताका नाम न होनेसे कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि ये भाईजीकी स्वयंकी अनुभूति अथवा रचना है। इतना ही नहीं उनके जीवनकालमें उनके रचित काव्य संग्रह प्रकाशित हुए पर किसीमें भी उनका नाम नहीं था। इसीलिये 'पद–रत्नाकर'के प्रकाशनने

हिन्दीके बड़े–बड़े विद्वानोंको आश्चर्यमें डाल दिया कि श्रद्धेय पोद्दारजीने इतने विपुल परिमाणमें काव्य–रचना भी की है। ऐसा एक पत्र उदाहरणके लिये प्रस्तुत किया जा रहा है––

श्रीहरिः

प्रिय.......................... गोरखपुर, २१–११–५६

सप्रेम हरिस्मरण ! इधरमें तुम्हें डाकसे पत्र नहीं लिख सका। मनमें तो कई पत्र लिखे। लम्बे–लम्बे पत्र लिखे, क्या–क्या लिखा सो स्मरण नहीं है। ....को भी लिखा। पर काम बहुत अधिक रहा, फुर्सत मिली ही नहीं। इससे कागज कलमसे लिख नहीं पाया। ....सुना है तुम भी सत्संगके लिये जा रहे हो। बहुत अच्छी बात है भैया। सत्संगका परम लाभ उठाओगे। मैं तो कामसे फुर्सत ही नहीं पाता इसलिये सत्संगसे वंचित रहता हूँ। दूसरी बात एक और है––सत्संग भी कब और कैसे करूँ। एक हटे तब न दूसरेसे बात की जाय।

हटे वह सामनेसे तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ ?
उसीसे बोलनेसे ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती ?
सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम ?
समय मिलता नहीं मुझको टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी ?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था उसीके सब।।

(पद–रत्नाकर ४८२)

चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदयसे वह श्याम मूरति पल न इत उत जात।।

पर यहाँ तो केवल हृदयकी बात नहीं है। हृदयमें भी और बाहर भी––तब क्या किया जाय। किवाड़ बन्द किये पड़ा रहता हूँ। तुम लोग भाग्यवान् हो भैया सत्संग कर पाते हो। यहाँ तो––

लुट गया डेरा, नहीं कुछ बच रहा, हर तरफ हर वक्त ऊधम मच रहा।
कर रहा वह है शरारत दिन और रात, हो गई मेरी वह सारी किश्तें मात।।

इस श्याम सागरमें डूबनेपर किसीको निकलते नहीं देखा। उस नशेमें चूर होनेपर कोई सयाना नहीं हुआ। सयाना हो गया तो उसने प्रेम मदिराका पान किया ही नहीं।

तुम लोगोंकी याद अब यादके रूपमें नहीं रह गई। वह वृत्ति नहीं स्वभाव सा बन गया है। क्या किया जाय, यह भी विलक्षण है।

तुम्हारा —— हनुमान

इस पत्रसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि इस पदकी रचना भाईजीने अपनी स्थितिका वर्णन करनेके लिये की है। इस पदका वर्गीकरण 'पद–रत्नाकर' में "प्रेम–समुद्रकी मधुर तरंगे" के अन्तर्गत किया गया है। यही बात उनके अधिकांश पदोंके लिये है। इसी तरह श्रीराधा–माधवकी लीलाओंके वर्णन तथा श्रीकृष्ण एवं श्रीराधारानीके प्रेमोद्गार भाईजीके स्वयं देखी हुई लीलाओं एवं सुने हुए संवादोंके चित्र हैं जिसका संकेत उनके 'पद–रत्नाकर' के निवेदनमें स्पष्ट है। इतना हीं नहीं कुछ पदोंके लिये तो उन्होंने स्पष्ट बताया था कि इस पदके एक–एक शब्द ज्यों–के–त्यों श्रीकृष्ण अथवा श्रीराधारानीके हैं। इसीलिये ये पद व्रजभावके उपासकोंके लिये केवल सम्बल ही नहीं उनके प्राण हैं जिनके आधारपर वे आँखें बन्द करके दौड़ सकते हैं।

महाभावमयी श्रीराधाके दिव्य प्रेमके अत्युच्च भावोंकी स्फूर्ति–अनुभूति स्वयं भाईजीको होती थी। उनके एकभावको 'प्रेम वैचित्त्य' का नाम दिया गया है। वैष्णवाचार्योंने इसकी परिभाषा बताते हुए लिखा है——

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्य मुच्यते।।

(उज्ज्वल नीलमणि)

'प्रियतमके पास रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षके कारण उनके न रहनेकी——विरहकी स्फूर्ति होती है और उससे भाँति–भाँतिके विरह विकारोंका विकास होता है तो उसे 'प्रेमवैचित्त्य' कहते हैं।'

इसमें निकुंजमें व्यवधान शून्य श्रीकृष्णके मिलनकी स्थितिमें श्रीराधाजीको अमिलनकी अनुभूति होने लगती है। उस समयके श्रीराध ाजीके उद्‌गारोंके नामसे तो 'पद–रत्नाकर' में विशद वर्णन है ही, कहीं–कहीं भाईजीने अपनी अनुभूतिके भी ऐसे वर्णन किये हैं——

प्रियके अमिलन–जनित दुःख–चिन्तनमें रात–दिवस कटते।

प्रियकी मोहन मूर्ति, मधुर वे भाव नहीं मनसे हटते।।

* * * *

नित्य मिलनमें अमिलनकी यह पावन प्रेममयी अनुभूति।
प्रेम–राज्यकी परम मधुर आदर्श विलक्षण विमल विभूति।।
इससे होनेवाले दुख–सुखका मैं ही अनुभव करता।
एक पलक भी कभी तुम्हारे बिना नहीं मुझको सरता।।

* * * *

रोते कभी, हृदयमें जलती विषम विरहकी अति ज्वाला।
कभी मिलनमें हँसते बनते तुरत परस्पर गल–माला।।
बने परस्पर प्रेमास्पद–प्रेमी हम करते नित नव खेल।
छिपते, कभी प्रकट होते, पर रहता नित स्वरूपगत मेल।।

(पद–रत्नाकर ११३४)

ऐसे वर्णनोंके कारण ही कुछ महानुभावोंका कहना है कि भाईजीकी यथार्थ जीवनी तो 'पद–रत्नाकर' ही है।

श्रीमद्‌भागवतमें एक ही श्लोक दो बार आया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। (१–१७–१३)
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।। (४–३०–३४)

भगवत्संगीका संग यदि लवमात्रके लिये भी मिल जाय तो उसकी तुलना यहाँके भोगोंकी तो बात ही नहीं स्वर्गसे भी नहीं होती; वरं अपुनर्भव—मोक्षसे भी नहीं होती। साधारण बुद्धिसे समझमें नहीं आता कि भागवतकारने किसके लवमात्रके संगको मोक्षसे भी बढ़कर बता दिया। परमात्म तत्वके साधकोंका सबसे बड़ा प्राप्तव्य पुरुषार्थ मोक्ष ही है। उपरोक्त अनुभूतियोंको गहराईसे देखनेपर बुद्धि कुछ प्रवेश कर सकती है कि भाईजी जैसे भगवतसंगीके संगको ही मोक्षसे बढ़कर बताया जा सकता है क्योंकि उनके लवमात्रका संग उस लीलाराज्यमें प्रवेश करा देगा जिसकी अनुभूति सब ब्रह्म–निष्ठोंको भी होनी आवश्यक नहीं है।

भाईजीके जीवनकालमें ही उनकी प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता एक सच्चे पथ–प्रदर्शक संतके रूपमें हो गई थी। जन–जनके मानस पटलपर उनके मधुर अलौकिक व्यक्तित्वका इतना अधिकार हो गया था कि वे अपनी गुप्त–से–गुप्त समस्याका भी समाधान पत्रके माध्यमसे अथवा स्वयं मिलकर भाईजीसे करवाना चाहते। भाईजी भी यथासाध्य पत्रोत्तर द्वारा अथवा

पूछनेपर उसका पूर्ण संतोषजनक समाधान कर देते थे। पर पिछले वर्षोमें पत्र लेखनका कार्य प्रायः बन्द–सा हो गया था। भाव–समाधिमें अधिक समय रहनेपर मिलनेवाले महानुभावोंकी समस्याओंका समाधान भाईजी जागतिक धरातलपर रहते तब तो कर देते थे अन्यथा लोगोंको समाधान प्राप्त करनेमें निराश होना पड़ता था। अपनी विवशता तथा उसकी अभिव्यक्ति इस पदमें देखिये—

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन–ज्ञान।।
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि–विवेक।।
आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात।।
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत् सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार।।

(पद रत्नाकर १२४६)

सच्ची बात तो यह है कि भाईजीका जीवन इतना दिव्य एवं अलौकिक हो गया था कि प्राकृतिक शब्दोंके द्वारा तथा प्राकृतिक मन–बुद्धिके द्वारा वह न समझा जा सकता है न समझानेका प्रयास ही किया जा सकता है। अन्तमें तो भाईजी लिखने लगे—

नहीं कामका रहा, छोड़ दो इसकी आशा।
रक्खोगे, तो तुम्हें मिलेगी नित्य निराशा।।
भस्म हो गयी बुद्धि जागतिक जल–भुनकर सब।
रही न कोई इसमें भोग–विचार–भूमि अब।।
क्या करना, क्या नहीं—सोच सकता न तनिक यह।
सदा सहज ही उदासीन रहता, सब कुछ सह।।
होता, जो होना है, उसके ही करनेसे।
नहीं इसे कोई मतलब जीने–मरनेसे।।
नहीं रहा अब किसी द्वन्द्वसे भी परिचय है।
हुआ करे कुछ भी, यह तो अब नित निर्भय है।।
लिखता–लिखवाता वहीं, करता–करवाता वही।
पता नहीं क्या गलत है, पता नहीं क्या है सही।।

(पद–रत्नाकर ११५०)

और भी स्पष्ट लिखा--

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान्।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मरुलीकी तान।।
मेरे जीवनमें है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र–महान।।

(पद–रत्नाकर ११२४)

तुमने जो कहलाया मुझसे, वही कहा मैंने अविकल।
तुमने जो करवाया मुझसे, वही किया मैंने निश्छल।।
तुमने जो सिखलाया मुझको, सीखा मैंने वही सकल।
तुमने जो दिखलाया मुझको, देखा मैंने वही अकल।।
यह जो कुछ भी कहा, किया, सीखा, देखा मैंने प्रियतम !
सो सब तुमने ही अपनेमें, अपनी की लीला उत्तम।।
मन–मति कैसे होते मुझमें, जब मैं ही हूँ नहीं स्वयम्।
बना तुम्हारा ही सुख–सदन, तुम्हीं इसमें रहते हरदम।।

(पद–रत्नाकर ११४६)

एक विश्वस्त सूत्रसे भी पता लगा कि भाईजी जब भाव–समाधिकी बाह्यचेतना शून्य स्थितिसे चेतनामें आते तो कई बार उनके सामने कई पद लिखे हुए मिलते। उन्होंने बताया कि ऐसे पद मैंने कभी भी होशमें नहीं लिखे। कौन–सी शक्ति चेतनाशून्य स्थितिमें उनकी कलमको सक्रिय करती थी यह भाव–राज्यकी बात है। उनमेंसे अधिकांश पद वे फाड़कर फेंक देते थे क्योंकि वे रखने लायक नहीं होते थे। कुछ पद रख लेते थे। इस तथ्यकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि भाईजीकी शैली यह थी ही नहीं कि लिखनेकी बात तो दूर रही कि अन्तरंग अनुगतको एकान्तमें भी वे यह कहें कि अब मेरे द्वारा केवल मेरे भगवान् बोल रहे हैं। यह उनके स्वभावके विरुद्ध था। पर यहाँ तो स्पष्ट लिखते हैं कि **"लिखता लिखवाता वही करता–करवाता वही।"** और तो क्या यह जो कुछ भी मैंने कहा, किया, देखा वह सब प्रियतम तुमने ही अपनेमें अपनी लीलाकी। बस मेरे तो अब अन्तरकी वृत्ति एक ही रसके आस्वादनमें सदा सर्वदा मत्त रहती है।

दिनकर उगता, रजनी आती, कालचक्र चलता अविराम।
जीवमात्र सब निज–निज रुचिके करते भले–बुरे सब काम।।

पर जाती न वृत्ति अन्तरकी काल–कर्म–कर्त्ताकी ओर।
रहती नित्य एक ही रसके आस्वादनमें मत्त—विभोर।।
सोते–जगते होते रहते सहज प्रकृतिवश सारे काम।
किंतु बसा रहता मनमें कुछ 'अन्य–विलक्षण' आठों याम।।
नहीं हटाता हटता पलभर, नहीं छूटता किसी प्रकार।
दुःख परम शुचि नित्य परम सुख देता रहता वह अविकार।।

(पद–रत्नाकर ११६६)

यह उनकी दिव्य अनुभूतियोंका बहुत ही संक्षिप्त बाह्य चित्रण है।

महाभावमयी स्थिति 'भाव–समाधि'

प्रेमका मर्म सदैव अनगाया रहा है। कोई भी उसका पूर्ण वर्णन कर ही नहीं पाया। यही कारण है कि देवर्षि नारदने भगवदीय प्रेमके स्वरूपको सर्वथा अनिर्वचनीय बताया है। उस परम सूक्ष्म और मात्र अनुभव–गम्य प्रेमकी टेढ़ी–मेढ़ी, पर सरसीली गलियोंकी रजकणिकाको अपने मस्तकपर धारण करनेका यत्किञ्चित् सौभाग्य जिन रसिक मर्मज्ञोंको कभी हुआ हो, उनकी मान्यताके अनुसार प्रेममें ज्यों–ज्यों प्रगाढ़ता आती है, त्यों–त्यों उसके नवीन–नवीन प्रगाढ़तरसे प्रगाढ़ाति–प्रगाढ़तर रूपोंका आविर्भाव होता चला जाता है, उन्हीं रसिक रस मर्मज्ञों द्वारा प्रणीत रस–शास्त्रोंमें प्रेमके विभिन्न प्रगाढ़तर रूपोंका विवेचन और निरूपण विस्तारसे किया गया है। परम श्रेष्ठ भगवान्के श्रीचरणोंके प्रति हृदयमें रतिका उद्भव होना ही प्रेम है। यह प्रेम धीरे–धीरे प्रगाढ़ होता है और प्रगाढ़ होते–होते क्रमशः—स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भावके स्तरोंको पार करके 'महाभाव' के स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। 'रस–शास्त्र' में 'महाभाव' को प्रेमकी सर्वोच्च स्थितिके रूपमें निरूपित किया गया है।

प्रेमके इस सर्वोच्च स्तर 'महाभाव' में भाईजीको अवस्थिति बहुत पहले हो ही गयी थी। गिरधर गोपालकी मतवाली भक्तिमता मीराबाईने सं० १९९७ (सन् १९४०) के आस–पास एक परम सौभाग्यशाली सन्तको दर्शन देकर बतलाया था कि हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है। लगभग बीस वर्षोंतक भाईजी अपनी दिव्य लोकोत्तर स्थितिको छिपाये रहे। वे तो स्वयंको सदाके लिये छिपाये ही रखना चाहते थे, परन्तु अपने प्राणधन प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी अचिन्त्य योजनाके समक्ष ये विवश

थे। प्रेम राज्यकी यह दिव्य स्थिति अभिव्यक्त करनेकी वस्तु है ही नहीं और उसे छिपाये रखनेका भाईजीने भरपूर प्रयत्न किया, परन्तु प्राणधन प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी इच्छा कुछ और ही थी। भाईजीने उस स्थितिको प्रकट किया ही नहीं अपितु भाईजीके द्वारा न चाहे जानेके बाद भी ईश्वरीय इच्छाके अनुसार वह दिव्य स्थिति जगत्के सामने प्रकाशमें आ गयी।

जीवनके अन्तिम दस–बारह वर्षोमें भाईजीकी स्थिति बड़ी विचित्र रही। भाईजीकी अभिलाषा थी और अभिलाषाके अनुरूप प्रयास था कि मेरी वृत्तियाँ जगत्की सेवा–कार्यमें लगी रहें, परन्तु उनकी वृत्तियाँ बलात् पहुँच जाती थी उस लीला–राज्यमें। भाईजीकी अभिलाषाके विपरीत भाईजीकी वृत्तियाँ श्रीराधा–माधवकी मधुर लीलाओंके गहन सिन्धुमें विलीन हो जाती थीं। यह कैसी अद्भुत विवशता थी। लीला–सिन्धुमें उनकी वृत्तियोंके विलीन हो जानेके बाद जागतिक सेवाके सभी कार्य ज्यों–के–त्यों धरे रह जाते थे। जगत्की सेवा करनेकी भाईजीकी चाह थी और एतदर्थ सच्चाईसे प्रयास भी था, फिर भी अनोखी विवशता थी। ऐसी विवशता कि सेवा–कार्य चाहकर भी नहीं हो पाता, जब देखों तब यहीं दिखलायी देता था कि भाईजीका शरीर निश्चेष्ट है, निस्पन्द है, श्वास–प्रश्वासके अतिरिक्त कोई स्पन्दन, कोई क्रिया नहीं। यह निश्चेष्ट स्थिति घण्टों–घण्टों रहा करती थी। इस निश्चेष्ट निस्पन्द स्थितिको निकटवर्ती आत्मीय जनोंने 'भाव–समाधि' कहना आरम्भ कर दिया।

एक ओर ऐसी भाव–समाधि लग जाया करती थी तो उसीके साथ–साथ लोक–सेवाके कार्य भी भाईजीके द्वारा होते ही रहते थे।

भाईजीका जीवन विरुद्ध गुण–धर्मके आश्रयत्वका एक अद्भुत उदाहरण है। श्रीनारायण स्वामीका एक पद है उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—–

जाहि लगन लगी घनश्यामकी।
धरत कितै पग परत कितै हू भूलि जात सुधि धाम की।
छबि निहार नहीं रहत सार कछु निसि दिन घरिपल जामकी।
नारायण बौरी भई डोलै, रही न काहू कामकी।।

जिसकी घनश्यामसे सच्ची प्रीति हो जाती है, उसे न तो शरीरकी स्मृति रहती है, न उसे घरकी सुधि होती है, न उसे जगत्का कोई सार दिखता है, न समयका भान रहता है। वह प्रीति–बावली किसीके लिये

किसी कामकी नहीं रह जाती——'**रही न काहू काम की**'। पर भाईजीके जीवनमें दोनों पक्षोंके निर्वाहका स्वरूप दिखलायी देता है। सामाजिक संस्थाओंकी संभाल, आर्तजनोंको सहायता, जनसेवाव्रती कार्यकर्ताओंको सहयोग, पारिवारिक व्यक्तियोंका पोषण, धार्मिक अनुष्ठानोंका निष्पादन, गोरक्षा–आन्दोलनका सञ्चालन, साधकोंको प्रोत्साहन, प्रवचन एवं 'कल्याण' सम्पादन, धार्मिक पुस्तक प्रकाशन द्वारा समाजको प्रबोधन——इस प्रकारके अनेक लोकोपकारी कार्य भाईजी द्वारा होते रहते थे। लीलाराज्यमें लीन रहते हुए एक ओर लोकसे अतीत लीला–सिन्धुमें तल्लीनता और दूसरी ओर लोकसे सम्बन्धित विविध कार्य–क्षेत्रीय कर्तव्य–पालनकी तत्परता ऐसी दो विरोधी धाराओंका प्रवाह भाईजीके जीवनका एक सर्वथा अद्भुत तथ्य है। इस अद्भुत तथ्यने भाईजीके जीवनको एक लोकोत्तर विशिष्टतासे समन्वित कर दिया है। ऐसे आदर्श संतका उदाहरण अन्यत्र भला कहाँ मिलता है? बस गृहस्थ संत भाईजीके समान, एक मात्र भाईजी ही हैं।

भाईजीकी इस दिव्य स्थितिसे सम्बन्धित एक तथ्यकी ओर संकेत करना अति आवश्यक है। भाव–समाधिकी स्थितिमें भाईजीकी वृंत्तियाँ श्रीराधा–माधवके लीला–सिन्धुमें लीन रहती, इतनी तल्लीन रहती कि जगत्‌के कार्य छूट जाते और शरीरकी सुधि भी नहीं रहती। भाव–समाधिकी ऐसी स्थितिमें भाईजी घण्टो–घण्टों रहा करते पर जब भाव–समाधिकी स्थिति नहीं रहती थी, तब हम लोगोंके देखनेमें यही आता था कि वे 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादनका कार्य कर रहे हैं। उसे देखकर यही लगता था कि भाईजी सामान्य स्थितिमें हैं। भाईजी द्वारा सम्पन्न होनेवाले विविध और विभिन्न कार्य–व्यापारोंको देखकर भले ही यह कह लिया जाय कि उनकी स्थिति सामान्य है, पर वास्तविकता यह है कि साधारण–सी लगनेवाली उस स्थितिमें भी भाईजीका मन श्रीराधा–माधवके लीला राज्यमें विहरण करता रहता था। उस सामान्य स्थितिमें यदि उनके शरीरके द्वारा लोकके अनेक कार्य सम्पन्न होते रहते थे तो उसीके साथ–साथ उनका मन लीला–सिन्धुकी लहरोंपर सन्तरण करता रहता था। लहरोंपर सन्तरण करते–करते जब मन श्रीराधा–माधवके लीला–सिन्धुमें गहरे उतरकर अतल–तलमें निमग्न हो जाता, तब बाह्य कार्य व्यापारको सम्पन्न कर सकनेकी भी स्थिति नहीं रहती और उनका शरीर निश्चेष्ट, निःस्पन्द हो जाता। इस भाव–समाधिमें, समयकी कोई अवधि नहीं रहती। जीवनके

परवर्ती वर्षोंमें भाईजी श्रीराधा–माधवके लीला–राज्यसे कभी विलग हुए ही नहीं, केवल होता यह कि लीला–राज्यमें उनकी तल्लीनता कभी घनीभूत हो जाती और कभी सामान्य–सी रहती।

भाईजी चाहते थे कि मेरी वृत्तियाँ लीला–सिन्धुमें गहरी न उतरें, परन्तु यह उनके बसकी बात तो रह नहीं गयी थी, वे विवश थे। कभी–कभी स्वयंका स्वयंसे संघर्ष हो जाता था और वर्जन करते–करते भी भाव–समाधिकी स्थितिका प्रायः अवतरण हो जाया करता था। किसी सन्तके जीवनके सम्बन्धमें ऐसी बात क्वचित् ही किसीको देखने–सुनने या पढ़नेको मिली होगी, जब वे स्वयं ही अपनी वृत्तिको 'इधर' (अर्थात् जागतिकतासे) लगाये रखनेका प्रयत्न कर रहे हों फिर भी भाव–समाधि लग जाये। भाईजी किसी रूग्ण व्यक्तिसे मिलनेके लिये शहरमें गये हैं और वापस लौटते समय कारमें ही वृत्तिने शारीरिक धरातल छोड़ दिया, भाईजी कमरेके एकान्तसे निकल करके गीतावाटिकामें श्रद्धालु भक्तोंके सामने इसलिये प्रवचन दे रहे हैं कि वृत्ति जागतिक धरातलपर टिकी रहे पर प्रवचन देते–देते ही शारीरिक इन्द्रियोंने अपना कार्य–व्यापार समेट लिया और श्रोता–समूह निश्चेष्ट निस्पन्द पोद्दारजीको निहार रहे हैं। भाईजी शौचालयसे आकर मिट्टीसे हाथ धो रहे हैं, पर हाथ धोते–धोते ही शरीरकी विस्मृति हो गयी और वृत्तियाँ लीला–राज्यमें विहरण करने लग गयीं। भाईजी छतपर टहल रहे हैं, पर टहलते–टहलते पाषाणवत् खड़े हो गये और फिर निकटवर्ती जनोंको उनके निश्चेष्ट–निस्पन्द शरीरकी सम्भालके लिये तत्पर होना पड़ा। भाईजी आसनपर बैठे–बैठे 'कल्याण' का सम्पादन कर रहे हैं, उनकी लेखनी कागजपर चल रही है, चलते–चलते लेखनी अँगुलियोंसे छूटकर कागजपर गिर पड़ी और भाईजी एक लम्बी अवधिके लिये भाव–समाधिमें लीन हो गये। वास्तवमें भाईजीकी यह स्थिति लोक चक्षुसे सर्वथा अतीत है तथा मन, बुद्धि, चित्तसे परेके स्तरकी है। यह पूर्णतः यथार्थ है कि प्राकृतिक शब्दोंके माध्यमसे और प्राकृतिक मन, बुद्धि द्वारा उस अप्राकृतिक स्थितिका स्वरूप समझा ही नहीं जा सकता।

श्रीविश्वनाथदास उत्तर–प्रदेशके राज्यपाल रह चुके थे, तथा उड़ीसाके प्रसिद्ध राजनीतिक नेता थे। भाईजीके समर्थ सहयोगसे वैदिक–ज्ञानके प्रसारके लिये उन्होंने 'भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यास' की स्थापना की थी। उनका आग्रह था कि पोद्दारजी संयुक्त मन्त्री पदपर रहकर न्यासके

कार्यका संचालन करें। अपनी विवशता व्यक्त करते हुए ५ मई १९६७ को भाईजीने उन्हें एक पत्र लिखा था। उस पत्रमें भाईजीने स्वयं ही अपनी उस अनिर्वचनीय स्थितिकी ओर संकेत किया है। पत्रका अंश इस प्रकार है।

'इधर बहुत वर्षोंसे मेरा अन्तर्मन निवृत्तिप्रिय हो रहा है। इसीसे मैं प्रायः प्रतिदिन ही अधिक समय एकान्त बन्द कमरेमें रहता हूँ। लोगोंसे मिलने–जुलनेकी वृत्ति नहीं होती। साथ ही इधर कुछ वर्षोंसे भगवत्प्रेरित ही एक विचित्र परिस्थिति और आ गयी। उसे मैं प्रकाश नहीं करना चाहता और इसीलिये मैंने उसको 'मस्तिष्क ठीक न रहना' की संज्ञा दे रखी है। बात यह है कि अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोंकी, मनकी सारी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। जगत्का सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते रहते हैं। शरीर जिस अवस्थामें इस प्रकारकी स्थिति होनेके आरम्भमें था, वैसे ही बैठा या पड़ा रहता हूँ। आँखें खुली हों तो भी दिखता नहीं, क्योंकि कोई देखनेवाला ही नहीं रहता। इसे समाधि कहिये या और कुछ। पहले तो किसी समय ऐसी स्थितिकी मैं चाह करता था––उसके लिये प्रयत्न करता था; अब कोई प्रयत्न न करनेपर भी, वरन् कभी–कभी तो वृत्तियोंको बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो जाता है। और यह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर पन्द्रह–बीस घण्टोंतक भी रह जाती है। उस समय शरीर, मन, बुद्धि सर्वथा अक्रिय रहते हैं। पहले यह स्थिति कई दिनों बाद हुआ करती थी, अब तो बहुत जल्दी–जल्दी हो जाती है। इससे बहुत सँभलकर रहना पड़ता है। वस्तुतः इस स्थितिमें प्रवृत्तिके कार्योंका सर्वथा त्याग ही सुविधाजनक तथा वाञ्छनीय है। पर मैं प्रवृत्तिके कार्योंमें रहता हूँ, इससे कई बार वृत्तियोंको बलात् संसारमें बनाये रखनेका प्रयत्न करना पड़ता है।'

भाईजीके जीवनका यह स्वरूप कितना विलक्षण है। शास्त्र–मर्मज्ञ एक सन्तने एक बार कहा था कि ऐसा उदाहरण ग्रन्थोंके पृष्ठोंपर कभी पढ़नेको नहीं मिलता। डालमिया कोठी, स्वर्गाश्रममें एक बार भाईजी भाव–समाधिमें लीन थे। कुछ अन्तरंग स्वजन पासमें बैठे हुए समाधिस्थ भाईजीका दर्शन कर रहे थे। तभी उनकी समाधि शिथिल हुई। एक श्रद्धालुने भाईजीसे भाव–समाधिकी स्थितिके बारेमें कुछ जिज्ञासा व्यक्त की। उस श्रद्धालुकी जिज्ञासाके आग्रहको देखकर भाईजीने बड़े संकोचके साथ कहा—

मैं इस स्थितिके विषयमें विस्तारसे बतलानेमें लाचार हूँ। भगवत्कृपासे कैसा क्या होता है---भगवान् जानें। मैं अपनेको एक अनिर्वचनीय आनन्दकी स्थितिमें पाता हूँ, पर कभी-कभी हठात् सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक बन्द हो जाता है और जहाँ, जिस अवस्थामें होता हूँ, उसी अवस्थामें रह जाता हूँ। उस अवस्थामें आँखें खुली रहनेपर भी दिखायी नहीं पड़ता, कानोंसे सुनता नहीं, त्वक्के स्पर्शका अनुभव नहीं होता। इस प्रकार जब इन्द्रियोंका कार्य होना बन्द हो जाता है; तब मन निष्क्रिय हो जाता है और मनके निष्क्रिय होनेसे बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। कभी सब इन्द्रियोंका कार्य बन्द होते-होते सब इन्द्रियोंके कार्य बन्द हो जाते हैं। कार्य बन्द होनेमें क्रम नहीं है। वृत्ति इन्द्रियोंसे हटकर 'उधर' में केन्द्रित हो जाती है। 'उधर' का अर्थ या स्वरूप समझाया नहीं जा सकता। जब बाह्य ज्ञान पूरा हो जाता है, तब 'उधर' की स्मृति नहीं रहती है, और जब अधूरा बाह्य ज्ञान होता है, 'उधर' की कुछ स्मृति तो रहती है, पर वाणीमें आ नहीं सकती है, उसको भी बताना सहज नहीं है। वृत्ति लौटानेमें भी कभी थोड़ी-थोड़ी वृत्ति आती है, कभी एक साथ ही सारी वृत्ति आ जाती है।

जब वृत्ति जाती है, तब यह भी स्मरण नहीं रहता कि कहाँ हूँ। सामने कौन है, पर यह भी उस समयकी वास्तविक स्थिति नहीं है; क्योंकि इन्द्रियोंके कार्योंका रुक जाना, मन-बुद्धिकी वृत्तियोंसे जगत्का सर्वथा त्याग हो जाना और पूर्णतया वृत्तिका 'उधर' लग जाना ही 'भागवती स्थिति' नहीं है। जबतक वृत्तिजन्य 'इधर' का त्याग और वृत्तिजन्य 'उधर' का ग्रहण है, तबतक प्रकृतिराज्यमें ही स्थिति है। 'भागवती स्थिति' में मन-बुद्धि-अहंकी सत्ता नहीं रहती; उनके स्थानपर भगवत्सत्ता आ जाती है, जिसका ज्ञान भी भगवत्सत्तामें ही होता है, अन्य किसीको नहीं। आजकल वृत्ति जगत्को कम पकड़ती है, 'उधर' अधिक हो जाती है और 'भागवती स्थिति' हो जाती है।

जब भाईजीकी स्थिति सामान्य धरातलपर होती तो लोग अपनी समस्याओंका समाधान प्राप्त करनेके लिये उनके पास आया करते थे। जिनसे स्नेहका सम्बन्ध था उनकी आशा लेकर भाईजीके पास आना स्वाभाविक था। किन्तु अब भाईजीका मन ऐसे धरातलपर नहीं था कि वे उन सांसारिक समस्याओंका समाधान बतला सकें।

दैनन्दिन कार्योंको करते-करते ही भाईजी भाव-समाधिमें लीन हो जाते थे, परन्तु कई बार संघर्ष-पूर्ण परिस्थितिके मध्य भी उनको

भाव–समाधिमें निमग्न होते हुए देखा गया है। सन् १६६७ में अखिल भारतीय स्तरपर गोरक्षा आन्दोलन चल रहा था। उसके प्रमुख सात सूत्रधारोंमेंसे भाईजी भी एक थे। आन्दोलन जब चरम सीमापर था तो भाईजीकी व्यस्तता बहुत बढ़ गयी। उन दिनों 'कल्याण'का सम्पादन कार्य भी गौण पड़ गया था। इतना ही नहीं, भोजन एवं विश्राम भी अल्प हो गया था। पत्र लिखना, वक्तव्य देना, संदेश भेजना, उत्साहित करना आदि सम्पूर्ण कार्य सारे दिन तत्परता पूर्वक चलते रहते थे। टाइप किये हुए कागजोंको देखकर उनपर हस्ताक्षर करके देशके विभिन्न स्थानोंपर भेजना पड़ता था। एक दिनकी बात है, ऐसी व्यस्तता प्रातःकालसे रात्रिके दस बजेतक बनी रही। ज्यों ही अन्तिम लिफाफा भाईजीने भिजवाया उसके तुरन्त बाद ही देखा गया कि भाईजी समाधिस्थ हैं। निकटस्थ लोगोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। ऐसा लगा मानों संघर्षपूर्ण परिस्थिति और शान्तिपूर्ण परिस्थिति, इन दोनोंमें भाईजीकी भेद–बुद्धि सर्वथा समाप्त हो गयी है और उनकी मान्यताके अनुसार इन दोनों परिस्थितियोंमें प्राणधन श्रीश्यामसुन्दरका लीला–विलास चल रहा है। यह एक अनहोनी बात थी। सचमुच भाईजी सर्वत्र और सर्वथा अपने प्रियतमकी मधुर–लीलाओंमें ही तल्लीन रहा करते थे। भाईजीके जीवनके अन्तिम दस–बारह वर्ष इसी प्रकारकी लीला–तल्लीनतामें ही व्यतीत हुए।

'विशेष कार्य' सम्पादन

जिस 'विशेष कार्य' के लिये भाईजीको पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे भेजा गया था उसका संकेत सन् १६६६ से पहले भाईजीने कभी नहीं किया। इसके बाद भी वह 'विशेष कार्य' क्या था ? इस सम्बन्धमें भाईजी सर्वथा मौन रहे। ऐसी स्थितिमें 'विशेष कार्य' के बारेमें अपनी कल्पनासे कुछ भी लिखना अपनी अनधिकार चेष्टा ही है। भाईजीके अन्तर्जगत्की बात तो कल्पनासे भी परे है। उनके बहिरंग जीवनमें जो कार्य सम्पादन हुए उनपर ही कुछ लिखा जा सकता है।

एक महत्त्वपूर्ण कार्य था उनके द्वारा श्रीराधाकृष्णके मधुर प्रेमके उज्जवलतम स्वरूपका प्रकाश एवं उसकी प्राप्तिकी सुलभताको प्रकट करना। व्रजके एक रसिक विद्वान्ने तो यहाँ तक कहा कि 'हमारा श्रीराधा स्वरूप तो ऐसा हो गया था कि उसे शिक्षित वर्ग एवं जनसाधारणके समक्ष

रखनेमें कई बार संकोच होता। पर श्रीभाईजीने श्रीराधाका ऐसा स्वरूप रखा कि स्वदेशमें तो किसीके भी समक्ष रखनेकी तो बात ही क्या विदेशमें भी उस स्वसुखवांक्षारहित स्वरूपको प्रकट करनेमें गौरवका बोध होता है।'

इसके साथ ही गोपी प्रेमकी प्राप्तिको अत्यन्त दुरूह बताते हुए पद्मपुराणके पातालखण्डमें वर्णन आया है कि इसके लिये ब्रह्म विद्याने लम्बे समयतक तपस्या की थी। भगवान्‌के परम सखा अर्जुनने जब भगवान्‌के सामने इसके दर्शनकी इच्छा प्रकट की तो भगवान्‌ने यही उत्तर दिया कि यह मेरे हाथकी बात नहीं है इसके लिये तो तुम्हें गोपी भावकी उपासना करनी पड़ेगी और उन्होंने अर्जुनसे अर्जुनी बनकर जब उपासना की तब इसके दर्शन मात्र हुए। ऐसे ही अनेक उदाहरणोंसे हमारे जैसे साधारण लोगोंकी यह हिम्मत ही नहीं हो सकती कि ऐसी उपासना की जाय। परन्तु भाईजीने जिस सहजतासे अपने ग्रंथों एवं अपने प्रवचनोंमें इस उपासनाका जो विवेचन किया उसे पढ़ सुनकर जन साधारणका मन भी ललचाने लगता है। केवल वर्णन ही नहीं पात्रता होनेपर उन्होंने राधाबाबाको प्रणाम करनेके निमित्तसे उनके चरण छूकर उस भावकी प्रतिष्ठा कर दी जिन्हें राधाबाबा स्वयं उस समयतक माया राज्यकी चीज मानते थे। कट्टर वेदान्ती होते हुए भी कुछ समय बाद वे अपनी उपासना पद्धतिमें सदाके लिये परिवर्तन करके श्रीराधाकृष्णकी मधुर भावकी उपासनामें लग गये। यह एक ऐसा 'विशेष कार्य' था जो किसी और सन्तके द्वारा इस रूपमें सम्पादित नहीं हुआ।

दूसरा विशेष कार्य जो भाईजी द्वारा सम्पादित हुआ वह था हमारे धर्मशास्त्रोंकी रक्षा और उन्हें जनसाधारणके लिये सुलभ करना। हमारे सारे धर्मशास्त्र संस्कृतमें होनेसे वे जनसाधारणके लिये बोधगम्य नहीं थे और इसीलिये लोगोंकी उनकी रक्षा करनेमें कोई रुचि नहीं रह गयी थी। इसके साथ ही संस्कृत पढ़े–लिखे लोगोंके लिये भी वे सहज सुलभ नहीं थे। स्थिति यहाँतक पहुँच गयी थी कि उन ग्रन्थोंके नाम भी साधारण लोगोंके स्मृतिमें नहीं रह गये थे। ऐसे समयमें भाईजीने अपनी दूरदर्शी दृष्टिसे उन ग्रंथोंकी प्रामाणिक प्रतियोंकी खोज की, अधिकारी विद्वानों द्वारा उनके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें करवाये। इन ग्रन्थोंके प्रकाशनमें भाईजीने तीन बातोंपर विशेष ध्यान दिया। पाठ शुद्ध और प्रामाणिक हों, अर्थ व्याकरण संगत एवं शास्त्र सम्मत हो तथा व्याख्यामें मर्यादाका पूरा ध्यान रखा जाय।

श्रृंगारादि–प्रसंगोंके अनुवादमें भी मर्यादाका पूरा ध्यान रखा गया। प्रामाणिकताकी रक्षाके लिये उन्होंने कहीं भी परम्परासे स्वीकृत मूल पाठमें परिवर्तन नहीं किया। अधिकांश ग्रन्थोंको 'कल्याण' के विशेषांकके रूपमें प्रकाशित कर उन्हें लाखों घरोंमें पहुँचाया। ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंको पुस्तकाकार भी प्रदर्शित कर दिया जिससे जो लोग 'कल्याण' के ग्राहक नहीं हैं वे भी अपनी रुचिके अनुसार प्राप्त कर सकें।

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी जैसे विद्वान्से अंग्रेजीमें अनुवाद करवाकर भी प्रकाशित किया जिससे विदेशी लोग भी सहज प्राप्त कर सकें। श्रीरामचरितमानस जैसे ग्रन्थको तो उन्होंने पचास पैसेमें सुलभ करके घर–घर पहुँचा दिया। ऐसे प्रचारको देखकर ही बंगालके सिद्ध संत श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराजने लिखा, 'इस दारुण कलयुगमें सर्वत्र जो धर्म–प्रचार और शास्त्र–प्रचारका जैसा कार्य श्रीभाईजीने किया इस प्रकारकी बात मैंने किसी इतिहास पुराणमें नहीं देखी अथवा किसी धर्म–प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म प्रचार किया ऐसा सुना भी नहीं।' आज स्थिति यह है कि चाहे पूरे देशको परमाणु बमसे कोई भले ही नष्ट कर दे परन्तु हमारे धर्मशास्त्र पृथ्वीके प्रलयकालतक सुरक्षित रहेंगे। इस अपूर्व और विशाल कार्यको देखकर ऐसा लगता है कि यह भाईजी द्वारा सम्पादित एक विशेष कार्य हो सकता है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य जो भाईजी द्वारा सम्पादित हुआ वह था गाँव–गाँव और घर–घरमें भगवन्नाम और भक्तिका प्रचार। वैसे तो यह कार्य सभी संतों द्वारा किसी–न–किसी रूपमें सम्पादित हुआ है परन्तु जिस व्यापक रूपसे यह भाईजी द्वारा हुआ वैसा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। भगवन्नाम प्रचारके लिये तो स्वयं भगवान्ने ही प्रत्यक्ष मिलकर कहा था कि—'जगत्का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचार कर। लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायेगा।' इसके बाद नाम प्रचारके लिये भाईजीने जितनी तरहकी योजनायें बनायी और उन्हें कार्यान्वित किया वह अद्भुत कार्य था जिसका कुछ विवरण आप पिछले पृष्ठोंमें पढ़ चुके हैं। विशेष तौरसे श्रीनारदजीसे साक्षात् मिलन और वार्तालापके बाद भक्ति और नाम–प्रचारका कार्य और भी अनोखे रूपसे हुआ। श्रीनारदजीमें और श्रीभाईजीमें क्या वार्तालाप हुआ इसका प्रामाणिक वर्णन कहीं भी उपलब्ध नहीं है। परन्तु इसके बाद जो कार्य हुआ उससे यह अनुमान किया

जा सकता है कि श्री नारदजीने भक्तिदेवीसे जो यह कहा था—

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने।।
अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान्।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये।।

(श्रीमद्भागवतमहापुराण / माहात्म्य / २। १३–१४)

इसकी चर्चा भाईजीके साथ हुई हो और उन्होंने भाईजीको इसके लिये प्रेरणा दी हो। इस प्रेरणाका फल हो अथवा और कोई अन्तर्जगत्‌की बात हो इस दिशामें जो कार्य भाईजीके द्वारा हुआ वह अपने आपमें एक अद्वितीय कार्य था।

यह तीनों ही विशेष कार्य थे अथवा इनमेंसे कोई एक या दो था यह कहना कठिन है। इतना भाईजीने अपने वसीयतनामेंमें स्वीकार किया है "उनकी कृपा एवं शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया। यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसा चाहा था, वैसा नहीं हो पाया ....यद्यपि जगत्‌के मंगलके लिये जो कुछ हुआ है वह बहुत दूर–दूर तक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक तथा दीर्घकाल तक रहेगा।'

भाईजीके द्वारा कोई स्पष्ट संकेत न मिलनेसे इससे अधिक लिखना युक्तिसंगत नहीं लगता।

महाप्रयाणकी भूमिका

जगत्‌के बड़े–बड़े सन्तोंने शरीर छोड़नेके पूर्व भयंकर व्याधि एवं कृष्टका भोग किया है। भाईजी भी इस संत–परम्परामें रहे। भगवान्‌की इच्छा थी कि विदा होनेके पूर्व भाईजीका पार्थिव शरीर भी ऐसी व्याधिसे ग्रस्त हो जिससे सभी देख लें कि वे इससे सर्वथा अप्रभावित थे। सभीने देखा कि वे व्याधिके केवल द्रष्टामात्र थे।

जिस भीषण व्याधिको निमित्त बनाकर भाईजीने अपनी लीला–संवरण की, उसके सर्वप्रथम दर्शन २२ अप्रैल १९६९ को ऋषिकेशमें हुए थे। पीछे उसके दौरे बराबर आते रहे। ४ नवम्बर १९७० को जो भीषण दौरा आया था, उसके बाद भाईजी सामान्य शारीरिक स्थितिमें नहीं देखे गये। डाक्टरोंका अनुमान था—पेटमें कैंसर होनेका। जनवरी १९७१ के अन्तिम सप्ताहमें जब डाक्टर महोदयकी आँखें सजल हो गयी तब भाईजीने कहा—आप लोग

मुझे प्रेमसे देखने आते हैं तो मैं भी प्रेमसे दिखा देता हूँ। ....मेरा दृढ़ विश्वास है जो होना है, वह होगा ही। ....भीषण कष्ट है पर अन्दर–ही–अन्दर मुझे बड़ा आनन्द है, पीड़ाके रूपमें भगवान्‌के सम्पर्ककी अनुभूति हो रही है।

उस समय भी भाईजी डाक्टरोंको उनके अनुरूप साधन बताते रहते थे—आप लोगोंके पास जो रोगी आते हैं, उनकी सेवा भगवान्‌की सेवा है। वास्तवमें रोगीके रूपमें भगवान् ही आपसे सेवा चाहते हैं। आपकी यह सेवा भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाली हो जायगी।

फरवरीके प्रथम सप्ताहमें डाक्टरोंको चिन्तित देखकर भाईजीने कहा—आप लोग जब देखने आते हैं, उस समय मुझे रोग याद आता है; अन्यथा जब मैं दिनमें कमरा बन्द किये अकेला रहता हूँ, तब रोगकी स्मृति प्रायः मुझे नहीं रहती। मैं अपने 'काम'में—भगवत–स्मरणमें लगा रहता हूँ।'

यह स्पष्ट होने लग गया था कि भगवान्‌की इच्छानुसार भाईजीके भौतिक कलेवरका अब अवसान होना था। शरीर उसी ओर अग्रसर हो रहा था। कोई भी उपचार सफल नहीं हो पा रहा था। घरवाले, मित्र, स्वजन, परिकर डाक्टर—सभी चिन्तित थे, पर इस भीषण स्थितिमें भी कोई निश्चिन्त थे तो केवल भाईजी। उनपर व्याधिका कोई प्रभाव नहीं था। यहाँतक कि जब बाहरसे डाक्टरको बुलानेकी बात होती तो भाईजी कहते—बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेमें जो रुपये खर्च कर रहे हो, वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करने चाहिये।

रोग बढ़ता जा रहा था तथा पोषण–तत्व किसी भी रूपमें शरीरमें नहीं पहुँच पा रहा था। इससे भाईजीको बोलनेमें भी कष्ट होने लगा। ८ मार्चको अचानक उनके मनमें आया—अपनी इस समयकी अनुभूतिको लिखित रूपमें जगत्‌को दे जाऊँ। उन्होंने सर्वथा अशक्तिकी अवस्थामें काँपते हुए हाथोंसे कलम पकड़ी और लेटे–लेटे दो पद लिखे, जो उनकी मनः स्थितिके सजीव चित्र हैं। जगत्‌के लिये उनके वे अन्तिम उपदेश हैं। पर दुःखकी बात है कि हाथ काँपनेके कारण लिखावट अस्पष्ट होनेसे तथा लिपि बंगला होनेसे वे पूरे पढ़नेमें नहीं आये। उनका जितना अंश स्पष्ट हो पाया है, वह नीचे दिया जा रहा है—

अबकी बार व्याधि ....पीड़ा सज प्रिय तुम आये।
बीच–बीचमें स्वाँग बदलते रहते तुम मन भाये।।
देख तुम्हारी इस आकृतिको घरवाले थर्राये।
.... ।।
छोड़ शरीर तुम्हें पा नित मैं सानँद मौन समाऊँ।
....मैं सुख–संग सिधाऊँ।।
पर कैसे बच्चों, मित्रों, घरवालोको समझाऊँ।
कैसे आश्वासन दूँ कैसे उन्हें रहस्य बताऊँ।।

* * *

मेरी करुण प्रार्थना सुनकर इन्हें तुम्हीं समझा दो।
.... सबको कुछ अपना मर्म जता दो।।
हो जायें ये निहाल जानकर गूढ़ रहस्य तुम्हारा।
मिट जायें तुरन्त इतना भ्रम–शोक मोह–दुख सारा।।
पा जायें ये तुमसे, प्यारे! ज्ञान–प्रेम सुख–आलय।
सदा–सर्वदाको मिट जाये मायामय दुःखालय।।
तुमसे होता नहीं अमंगल कभी किसीका, प्यारे।
करते नित मंगल ....।।
भोक्ता–भोग्य–भोग–सब कुछ ही यहाँ बने हो तुम ही।
खेल–खिलौना बने .... खेलते तुम ही।।
कभी .... सब बन स्वयं नाचते–गाते।
कभी व्याधि .... दुख–शोक–मोह सज पड़े सिसकते।।
लीलामय! तुम नित मनमानी, लीला करते रहते।
....।।
क्यों वैसी रचना करते हो, मजा तुम्हें क्या आता।
होता कोई .... तो इसे समझ कुछ पाता।।

नित्यलीलालीन

प्रायः सभी स्वजन, श्रद्धालुओंको समाचार मिल गया था कि अब पोद्दारजीका पार्थिव शरीर अवसानके पथपर है। लोग दूर–दूरसे दर्शनोंके

लिये आ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो पोद्दारजी भीषण व्याधि-कष्ट सहकर भी सबको अन्तिम दर्शनोंका अवसर प्रदान कर रहे हैं। १३ मार्चकी रात्रिमें पोद्दारजी उपस्थित स्वजनोंको बोले––"जिन-जिनको मैंने भगवद्धाम-प्राप्तिका आश्वासन दिया है, उन्हें निश्चितरूपसे उसकी प्राप्ति हो जायेगी, उन्हें विश्वास रखना चाहिये।" सबको ऐसे लगा कि जैसे वे विदाई ले रहे हों। सभीके नेत्र बरस पड़े। १४ मार्चकी रात्रिमें साढ़े बारह बजे जब डा० चक्रवर्ती उनकी नाड़ी अनुभव करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, पोद्दारजी मन्द स्वरमें बोले––"विचार शक्ति बिल्कुल ठीक है; स्मरण शक्ति कभी ठीक रहती है; कभी नहीं। मुँहसे बोला नहीं जाता।" इतना कहकर उन्होंने अपने काँपते हुए दाहिने हाथसे डाक्टर साहबसे इशारेमें पूछा––"आपने भोजन किया कि नहीं ?" जहाँ घड़ी-पल गिने जा रहे थे, वहाँ पोद्दारजीको डाक्टर साहबके भोजनकी चिन्ता बनी थी। यह है उनकी एक स्थितिकी झलक।

भगवन्नामकी निष्ठाका पोद्दारजी अन्तिम श्वासतक निर्वाह करते रहे। २० मार्चकी रात्रिकी बात है। पोद्दारजीके होंठ हिल रहे थे, मानों काँप रहे हों। डा० चक्रवर्ती महोदयके मनमें आया कि मुँहमें दाँत न रहनेसे होंठ काँप रहे हैं। वे पोद्दारजीसे बोले––"आपके होंठ काँप रहे हैं, दाँत लगा दिये जायँ। कम्पन दुबर्लता बढ़ायेगा।" पोद्दारजीने वास्तविक बात बता दी––"जप कर रहा हूँ।" यह उस समयकी बात है जब इनके शरीरकी प्रत्येक कोशिका पानीकी एक-एक बूँदके लिये तरस रही थी। मुँहमे ड्रापरसे बूँद-बूँद करके पानी जीभपर डाला जा रहा था।

२१ मार्चको दोपहरमें कलाईके समीपसे नाड़ी लुप्त हो गयी, रक्त-चाप बहुत कम हो गया। धीरे-धीरे नाड़ीने कोहनीका स्थान भी छोड़ दिया, पर पोद्दारजीकी विचार-शक्ति वैसी ही बनी हुई थी। सभी डाक्टर-वैद्य आश्चर्यचकित थे। रात्रिमें लगभग ११ बजे (अर्थात् शरीर छूटनेके ६ घण्टे पूर्व) जब डा० चक्रवर्ती एवं डा० शर्मा उन्हें देख रहे थे, तब दाहिने हाथसे इशारेसे पूछा––"आप लोगोंने भोजन किया है या नहीं ?" पोद्दारजीकी इस प्यार भरी सँभालने डाक्टरोंके हृदयको मथ दिया, उनके नेत्र बरस पड़े।

२२ मार्चका प्रातःकाल हुआ। श्वासकी गति बढ़ गयी थी। सब लोगोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय दूर नहीं है। लगभग साढ़े सात बजे पूज्य बाबा भी आ गये। अन्तमें पोद्दारजीने अपने काँपते हुए

दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया,—सबसे विदाई ली,। लगभग सात बजकर पचपन मिनटपर वे नेत्र जिनसे अनवरत स्नेह–वर्षा होती थी, सदाके लिये मूँद गये——अपने प्रियतमकी नित्यलीलामें लीन हो गये।

हजारोंकी संख्यामें जन समूह गीतावाटिकामें एकत्रित था। सभीके नेत्र बरस रहे थे। लगभग दो बजे स्नानादि कृत्योंका समापन करके पोद्दारजीका पार्थिव देह अर्थीपर विराजित किया गया। अर्थी नीचे बरामदेमें लायी गयी जहाँ सभीने परिक्रमा, प्रणाम, श्रद्धा–सुमन अर्पित किये। वहाँसे अर्थी श्रीराधाष्टमी पण्डालमें लायी गयी, तत्पश्चात् अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् गीतावाटिका गिरिराज–परिसरमें सम्पन्न हुई करुण नाम–कीर्तन चल ही रहा था। विधिका विधान, पोद्दारजीकी मुख्य साधना–स्थली गीतावाटिकाको ही उनके शरीरके अणु–परमाणु समर्पित हो गये। उसी स्थानपर समाधिके रूपमें एक भव्य स्मारकका निर्माण हुआ, जहाँ आज भी सहस्त्रों श्रद्धालु अपने–अपने भावानुसार प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।

लीलालीनके उपरान्तकी विलक्षण अनुभूतियाँ

दैवी प्रेरणासे जो महान् आत्मा अपनी कर्मराशिके अतिरिक्त कोई विशेष कार्य सम्पादनके हेतु भेजी गयी थी उसे ७८ वर्ष ६ मास ५ दिनमें सम्पादन करके नित्यलीलालीन हो गई। उसके पश्चात् एक ओर जहाँ गीतावाटिकामें कोई क्रन्दन कर रहा था, कोई सुबकियाँ भर रहा था, किसीकी अश्रुधारा रुक नहीं रही थी, कोई जड़वत् निश्चेष्ट बैठा हुआ था, कोई एक–दो महानुभाव जिन्हें भाईजी विदा होते समय कुछ कार्य सम्भला गये थे वे उसीमें ऐसे लीन थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं वहीं दूसरी ओर दूरस्थ कुछ संतोंको विलक्षण अनुभूतियाँ हुई।

राधा माधव संकीर्तन मंडलके प्रमुख गाजियाबाद निवासी श्रीमुरलीधरजी मलहोत्रा मेरे परम मित्र है। वे हर माह गिरिराजकी संकीर्तनमय परिक्रमा साथियोंसहित गोवर्धनसे प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भ करनेके पूर्व वहाँके वयोवृद्ध सर्वमान्य संत श्रीगयाप्रसादजीको प्रणाम करते थे। उन्होंने मुझे बताया कि एक बार परिक्रमा प्रारम्भ करनेके पूर्व पूज्य गयाप्रसादजी महाराजके पास बैठे थे। वहीं पूज्य श्रीभाईजीके बारेमें बातें चल पड़ीं। बातचीतके बीच श्रीभाईजीके स्वरूपकी चर्चा करते हुए पंडितजीने बताया कि भाईजीको तुम लोग साधारण संत नहीं मानना। वे तो दिव्य

व्रजकी एक गोपी थे। गोपीभावसे ही उन्होंने सारे कार्य किये। जिस दिन उन्होंने पार्थिव कलेवरका परित्याग किया उस दिन सबेरे स्वयं मैंने उनको गोपीरूपमें बरसानेकी ओर आकाश मार्गसे जाते हुए देखा था। बातचीतके समय पंडितजीकी आयु ६० वर्षसे अधिक ही थी। ऐसे परमसिद्ध संत जिन्हें हमलोग श्रीगोवर्धन गिरिका सचल रूप मानते हैं, उनके अधरोंसे कभी अन्यथा शब्द नहीं निकलते। ऐसी उनकी मान्यता थी।

दूसरा विलक्षण अनुभव हुआ वृन्दावनके संत श्रीबालकृष्णदासजी महाराजको। उन्होंने अपने प्रियजन ठाकुर श्रीघनश्यामजीको बताया कि २२ मार्चको प्रातः ५ बजे उन्हें अनुभव हुआ कि श्रीप्रियाजी ४ सखियों सहित यमुनाजीकी तरफ जा रही हैं। श्रीप्रियाजीके पीछे एक और प्रिय सखीको ४ अन्य सखियाँ ले जा रही हैं। उनके मनमें उत्सुकता हुई कि यह सखी कौन है ? ज्यों ही उनके मनमें यह जिज्ञासा जाग्रत् हुई त्यों ही उस सखीके दिव्य स्वरूपसे चलते हुए भाईजीने उनकी ओर देखा और इस देखनेसे ही अपने दिव्य स्वरूपकी झलक दिखला दी। इस दिव्यानुभूतिकी परिपुष्टि तब हो गयी, जब भगवान् भजनाश्रमसे यह समाचार मिला कि आज प्रातः लगभग ८ बजे भाईजीने अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दिया।

तीसरा अनुभव हुआ एक उच्च कोटिके साधकको। ये अपना अधिकांश समय साधनामें ही लगाते थे। सालमें ६ महीने लगभग तो राधाकुंडपर या किसी अन्य व्रजभूमिके एकान्त स्थलमें रहकर साधना करते थे। इन्होंने मुझे बताया कि "२२ मार्च १९७१ को प्रातः मैं अपने कक्षमें बैठा जप कर रहा था। अचानक एक दृश्य दिखाई दिया। एक जूलूस आता दिखाई दिया। जिसमें सब स्त्रियाँ थीं, पुरुष एक भी नहीं। सबके हाथोंमें घंटा, घड़ियाल, शंख, तुरही आदि तरह-तरहकी सामग्री है। धीरे-धीरे जूलूस पास आता गया। सब स्त्रियाँ नृत्य करती हुई आनन्दसे जा रही हैं। उनके बीच एक पालकीमें बैठे हुए एक पुरुषको देखा जो हाथ जोड़े हुए सबका अभिनन्दन स्वीकार कर रहे हैं। उस पुरुषकी एक महिला आरती उतारती हुई उनके सम्मुख मुँह किये पीठकी तरफ पीछे चल रही है। मुझे देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वह पुरुष परम पूज्य श्रीभाईजी थे और आरती उतारनेवाली स्वयं श्रीराधारानी। उस चिन्मय शरीरका दर्शन मैं आजतक भूल नहीं सका हूँ। मैं अपने सौभाग्यपर आश्चर्य चकित था।"

पू० भाईजी एवं पू० श्रीसेठजीका पत्र–व्यवहार

महापुरुषोंकी जैसे प्रत्येक चेष्टा विलक्षण होती है वैसे ही पत्र भी बड़े विलक्षण होते हैं। ये दोनों ही महापुरुष वर्तमान युगके अद्वितीय संत थे अतः इनका आपसका पत्र–व्यवहार सभीके लिये विशेष उपादेय है। ये पत्र उन साधकोंका विशेष मार्ग दर्शन करेंगे जो शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति करना चाहते हैं। उपलब्ध पत्र दिये जा रहे हैं—

(१)

पौष वदी ६ सं० १९७६ वि०

भाई हनुमान प्रसाद सेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम बचना।

और भजन, ध्यान, सत्संग तथा गीताजीके अर्थके प्रचारकी विशेष कोशिश करनी चाहिये। श्रीगीताजीके प्रचार करनेके सुमान कुछ भी काम नहीं है। हमारे तो जो कुछ लाभ अपने मालूम हुवे उसे श्रीगीताजीकी कृपा समझनी चाहिये। श्रीगीताजीकी कृपाके पीछे श्रीभगवान्‌की कृपा तो है ही। और श्रीसच्चिदानन्दघनके ध्यानमें मग्न रहना चाहिये। एक श्रीसच्चिदानन्दघनके बिना और कुछ नहीं है। जो कुछ कार्य कोटिके समय भासे वह अज्ञानसे भासता है जिस प्रकार निद्रा दोषसे स्वप्नका संसार। यदि कुछ मानो तो श्रीभगवान्‌का ही स्वरूप है उसके बिना और कुछ नहीं।

जयदयाल गोयन्दका

(२)

बम्बई वैशाख सं० १९८०

परम पूज्यवर,

सादर प्रणाम। मेरे ध्यानकी स्थिति ठीक मालूम होती है। कार्य करते समय समष्टि चेतनमें स्थिति निरन्तर बनी रहती है। यों भी शायद कहा जा सकता है कि कार्य कालमें क्रिया सहित और जो कुछ भी भान होता है सो स्वप्नकी सृष्टिवत् होता है। साथ–ही–साथ यह प्रत्यक्ष–सा भास होने लगता है कि स्वप्नवत् भी नहीं है। वास्तवमें परमात्मा–ही–परमात्मा है। वैसी स्थितिमें किसी–किसी समय बिल्कुल अचिन्त्य अवस्था हो जाती है, तब कार्यमें रुकावट भी आती है। ध्यान करते समय तो अब प्रायः बाहरके शब्दोंका भी ख्याल नहीं रहता है। सारे आकारोंका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमें विलीन हो जाती है। केवल बोधस्वरूप आनन्दघन

ही रह जाता है। ध्यानके बाद और समय जो स्थिति रहती है, वह ऊपर लिखी गयी। शरीरको या जगत्को साथ मानकर तो शरीरकी स्थिति कभी होती ही नहीं; पर न मालूम क्यों जगत्की क्रियाओंमें जो शरीरद्वारा होती है और जो समय–समयपर केवल स्वप्नकी सृष्टि या आकाशके तिरमिरोंके समान ही अपना अस्तित्व रखती हैं, उनसे भी उपराम होनेकी स्फुरणा होती है। ऐसी स्फुरणा होती है कि ये क्रियाएँ भी न हों तो अच्छा है। आपके साथ या किसी तीर्थस्थ देशमें रहा जाय तो ठीक है। ऐसी स्फुरणा हुआ करती है। संभवतः यह सब अपनी कमजोरियाँ होंगी, पर ऐसी स्फुरणा होते समय भी जगत्का अस्तित्व भी स्वप्नवत् ही रहता है। यह अच्छी बात है और जो कुछ मेरे लिये ठीक समझें, लिखना चाहिये। ध्यानकी स्थिति निरन्तर गाढ़ बनी रहे, जगत्की स्वप्नवत् स्फुरणा भी न हो।

आपका——हनुमान

(३)

द्वि० ज्येष्ठ शु० २। ८०

भाई हनुमानप्रसाद सेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम बचना।

और हमारे मुंबई गये पीछे तुम्हारी साधन स्थिति अच्छी लिखी सो ठीक है। और भी बहुत तेज शीघ्र हो उसके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। निरन्तर श्रीपरमात्मदेवका ध्यान करना चाहिये। श्रीपरमात्मदेवकी प्राप्तिमें जितनी ढ़ील हो रही है उतनी साधनकी त्रुटि समझनी चाहिये। श्रीपरमात्मदेवकी प्राप्तिमें एक पलक भी ढ़ील किस लिये हो रही है। मृत्युका क्या विश्वास है। कालका एक पलक भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हर समय निष्काम भावसे ध्यान सहित जिसका निरन्तर जप होता है वही धन्यवाद देनेके लायक है और उसको मृत्युसे कोई भय नहीं है याने उसने कालका विश्वास नहीं किया इसलिये उसकी परमगति हो सकती है।

जयदयाल गोयन्दका

(४)

बम्बई, श्रावण सुदी ७ सं० १९८०

परम पूज्यवर,

सादर प्रणाम। और आपने लिखा कि तुम्हारे प्रेमकी माफक मेरी

तरफसे बर्ताव होनेमें आता नहीं सो इसके उत्तरमें क्या लिखूँ। कहाँ तो मेरा प्रेम और कहाँ आपका प्रयत्न तथा असीम दया कोई भी प्रकारसे तुलना हो सकती नहीं आपकी असीम दयाका पद-पदपर अनुभव करना चाहिये वह तो पूरा किया जाता नहीं फिर प्रेम तो कहाँ हैं ? बाकी आपके शब्दोंसे एक बातका तो विश्वास हो गया कि मेरे कठिन हृदयमें भी कुछ प्रेमका संचार हुआ है परन्तु मैं कुछ लिख सकता नहीं। और साधनके सम्बन्धमें जो कुछ उपदेश लिखा सो बहुत अमोलक है।

ध्यान बोध स्वरूप आनन्दघन, परमात्मदेवका ही होता है। साकार निराकार एक ही समझा जाता है समष्टि चेतनमें एकभावसे स्थितिकी भावना की जाती है। जिसकी कई बार तो प्रत्यक्ष होता है। रातको सोनेके अतिरिक्त अन्य समयमें अधिकांश कालमें प्रायः इसी प्रकारकी भावना होती रहती है।

स्वप्नके जागनेके बाद जिस प्रकार स्वप्नके पदार्थोंका सर्वथा अभाव हो जावे उसी प्रकार भासनेवाले सारे पदार्थोंकी सत्ताका अत्यन्त अभाव-सा मालूम होता है। काम करते भी बार-बार इस प्रकारकी भावना होती रहती है। कोई समय भूल जाय तो फिर तत्क्षण थोड़ेसे मिनट बाद भावना जाग्रत हो जाती है। भूलकी स्थिति अधिक कालतक रहती नहीं। जगत् स्वप्नवत् मृगतृष्णाके जलवत प्रतीत होता है इस प्रकारकी-सी स्थिति है। हर्ष-शोकका विचार बहुत ही कम होता है सो निगह रहे। अब मेरे लिये जो कुछ ठीक समझा जाय उस तरह करना चाहिये। कुछ लिखनेकी जँचै तो लिखना चाहिये।

आपका--हनुमान

(५)

कार्तिक वदी सं० १९८०

परम पूज्यवर,

सादर प्रणाम। ध्यानके सम्बन्धमें बहुत ही चेष्टा है। अभ्यास दिन-दिन तेज होनेका अनुमान होता है। बम्बईमें ध्यान सम्बन्धी बातें सुनी थी उसके बाद उत्तरोत्तर ध्यानकी स्थिति उत्पन्न हो रही है। यो तो समष्टि चेतनमें स्थिति, एक रसबोध आनन्दकी स्थिति, प्रायः हर समय बनी रहती है। बाकी एकान्तमें बैठकर ध्यान करते समय तो केवल एक

सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्तःकरण या अन्तःकरणकी कोई वृत्ति भी प्रायः नहीं रहती है। ध्यानकें समय तो कई बार शब्द भी नहीं सुनते है। बाकी समय सुनते हैं। उत्तर देनेकी स्फुरण होती है। किन्तु फिर भी उस समय परमात्माके भावके अतिरिक्त और कोई चीजका भाव नहीं रहता।

पत्र लिखते समय आनन्दमय बोध स्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है। कलमसे अक्षर लिखे जा रहे हैं। लिखनेकी जो स्फुरण हो रही है, वह सच्चिदानन्दके अन्तर्गत कल्पित रूपसे भास रही है। कभी–कभी यह भी नहीं भासती। एक परमात्माके अतिरिक्त किसी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता—मानों अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बरफ पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी, वह भी मिट गयी, केवल जल ही जल रह गया ....फिर भी कलम चल रही है, लिखी जा रही है। हाँ बोध स्वरूप आनन्द, भूमानन्दमें स्थितिमें कोई अन्तर आता हुआ नहीं दीखता। स्थिति क्या है, वह लिखी नहीं जा सकती ....बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा–सी अनुमान होती है, पर भाव उसी तरह है ....इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा ऐसी नहीं रहती। बीच–बीचमें कुछ परिवर्तित–सी दीखती है, पर परिवर्तनकालमें भी अधिक–से–अधिक इतना ही परिवर्तन होता है—अचिन्त्यकी स्थितिसे एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिसे द्रष्टाकी स्थिति होती है, काम करते समय जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है, उस समय उस शरीरके सहित और सारे विषय अपने समष्टि, सर्वव्यापी चेतन स्वरूपमें कल्पित भ्रमवत ही प्रतीत होते हैं, पर प्रतीत अवश्य होते हैं। हाँ कभी–कभी इस तरह होते–होते विषयोंके अस्तित्व भी सर्वथा नष्ट हो जाते है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम, अनिर्वचनीय, अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं रहती, विस्मृति भी नहीं होती, शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं कर पाता......।

आपका—हनुमान

(६)

पूज्य श्रीसेठजीका उत्तर कार्तिक सुदी २। सं० १९८०

भाई हनुमानप्रसाद सेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम बचना।

तुम्हारी स्थितिके बारेमें पूछा सो निगह किया।

(१) ध्यानके समय तुम्हारा नाम लेकर कोई पुकारे उस समय यदि शब्द सुन पड़े तो कुछ हर्ज नहीं। हाँ, नहीं सुने और स्फुरणा भी नहीं हो तो और भी उत्तम है और ध्यानमें जो शब्द सुनाई देता है वह सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघनके अन्तर्गत कल्पित–सा दिखायी देता है सो कोई हर्ज नहीं परन्तु उसमें (अस्तित्व) जो होने पने का भाव है सो परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये उसके सिवाय और किसीका भी होना पना नहीं मानना चाहिये। वह स्थिति उत्तम है, और इससे भी उत्तम उच्च श्रेणीकी स्थिति और है वही लिखनेका विचार है।

(२) पत्र लिखनेके समय जो अचिन्त्य अवस्थाका ज्ञान है। सो साधन अवस्थामें रहता है क्योंकि अचिन्त्य अवस्थामें भी जीवात्मा परमात्माकी एकता नहीं है, एकताकी तरह है, एकता होनेके बाद तो फिर जीवात्माकी वापिस शरीरमें स्थिति कभी हो ही नहीं सकती वह पूर्ण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है उस अवस्थाको कोई कह भी नहीं सकता, वह अनिर्वचनीय पद है।

(३) एक सच्चिदानन्दघन ही हैं, मैं कुछ नहीं, अपनेको भूलकर एक सच्चिदानन्दका ही होना मानना चाहिये। मैं तथा मेरा कुछ है नहीं ऐसा अभ्यास करनेसे अपने मनमें अभाव और सच्चिदानन्दमें भाव हो सकता है। फिर एकान्तमें आँख मीचकर बैठनेके बाद अन्तःकरणमें जो कुछ संसारका चित्र चिन्तनमें आवे पर सर्व अन्तःकरण सहित मिथ्या समझे, याने उसका अभाव समझे सबका लोप हो जानेके बाद जो चित्तके अभाव करनेवाली शक्तियाँ हैं सो अचिन्त्य परमात्मामें एकीभाव हो जावे, वही परमात्माका साक्षात् स्वरूप है। तथा सर्व आकारका भाव करते–करते अभाव करनेवाली वृत्तिके शान्त हो जानेसे जो बचता है वही अचिन्त्य परमात्मा है, बोध स्वरूप आनन्दघन है, वही अमृत है।

(४) नित्य सत्य बोध आनन्दमें गाढ़ स्थिति कब होगी, इसका उत्तर कोई मनुष्य नहीं दे सकता, क्योंकि यह सब बात भविष्यरत है और साधनके आधीन है। साधन तेज होनेसे शीघ्रता हो सकती है।

(योग–दर्शन १–२१)

(५) तथा नित्य बोध आनन्दघनकी प्राप्ति चाहे जब हो कुछ चिन्ता नहीं, उसका ध्यान निरन्तर रहना चाहिये इसके लिये तीव्र अभ्यास

ही इसका उपाय है।

(६) ध्यानका विषय गहन है सो यदि रूपकार मिलना होय तो अच्छी तरह पूछना चाहिये।

(७) अचिन्त्यकी स्थितिका स्मरण कार्यकोटिके समय साधक पुरुष (जीवात्मा) को रहता है, वह एक प्रकारका ध्यान है। वह अवस्था जीवकी है और यह अवस्था अच्छी है परन्तु बहुत ऊँची नहीं, इसके बाद एक अवस्था और होती है वह होनेसे नित्यानन्दघनमें ज्ञानकी निरन्तर गाढ़ स्थिति, वह स्थिति सदा एक–सी रहती है, कम–ज्यादा नहीं होती। फिर इसके बाद परमात्माकी प्राप्तिकी अवस्था होती है वह कहनेमें नहीं आ सकती।

(७)

वैशाख वदी ५। १९८१

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार सेती जयदेवका फेरूँ प्रेम सहित राम राम बंचना। तुम्हारे प्रेम माफिक मैं चिट्ठी भी पूरी तौरसे समयपर देने सकूँ नहीं तो भी तुम्हारों प्रेम दिन–दिन ज्यादा देखनेमें आवे छै। और बम्बई मांय सत्संग तथा श्रीगीताजीके अभ्यासको काम बहुत जोरसे चलानो चाहिये। लोगोंको इस काम मांय बहुत सुगमता और लाभ दिखाकर श्रीभगवान्‌के प्रेमकी तरफ आकर्षित करना चाहिये।

तुम्हारे नामके जप सहित निरन्तर ध्यान रेव हुसी। दिन–दिन उन्नति हुवै जिकै विशेष चेष्टा करनी चाहिये। बहुत जल्दी श्रीनारायणदेवके प्रेमको प्रवाह संसारमाय बहुत जोर सूँ फैलाणो चाहिये। जिकै सूँ बहुत जल्दी संसारमाय बहुतसे लोगोंको उद्धार होने सकै है। और कई तरह सूँ ध्यानकी युक्तियाँ, लोगोंने बतानी चाहिये।

(१) जहां मन जावे तहां ही श्रीभगवान्‌को चिन्तन करनो चाहिये।

(२) जहां–जहां मन जावे तहां सेती लायकर श्रीभगवान् मांय लगानो चाहिये। (गीता अ० ६ श्लोक २६)

(३) मनकी सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर संसार सेती इन्द्रियोंको हटाकर संसार सेती उपराम होकर श्रीनारायणदेवको चिन्तन करनो चाहिये और किसीका चिन्तन नहीं करनो चाहिये।

(८)

भादवां वदी ७। सं० १९८१

भाई हनुमान सेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम बंचना।

ध्यानकी स्थितिके बारेमें लिखा सो निगह किया। बहुत जल्दी उन्नति करनी चाहिये। बहुत तेज साधनको करना चाहिये। जिकेसे जल्दी ही श्रीपरमात्मदेवकी प्राप्ति हो जावे। यद्यपि प्राप्ति हुईड़ी है। तो भी लोक दृष्टिसे लिख्यो है और संसारमें जिस प्रकार होवे प्रेमका प्रवाह बहुत जोरसे चलना चाहिये। आगे कई दफे समय–समयपर बहुत भारी प्रेमका स्रोत बहा सुना छे। श्रीनारायणदेवकी पूर्ण कृपा है। जो कुछ ढील है जिकी आपनी छे। संसारमें भगवत्‌का भाव प्रचार करनेवाले बहुतसे मनुष्य होवे तो बहुत जल्दी श्रीभगवत् भक्तिका प्रचार हो सकता है। विद्वान्, त्यागी, सदाचारी पुरुषोंकी विशेष जरूरत है। ऐसा पुरुष होवे और बहुत भारी प्रेममें मग्न होकर संसारमें प्रेम भक्तिका प्रचार करे तो बहुत ही प्रेमका प्रवाह बह सकता है और निष्काम प्रेम भावसे जो ...... सबकी सेवा है उसके समान कुछ भी नहीं है और असलमें सेवा तो वही है जिसके करनेसे फिर कुछ बाकी रहे नहीं। याने संसारके मनुष्योंको श्रीभगवान्‌के प्रेममें लगाकर उनके परम धाम पहुँचानेके समान और कोई सेवा नहीं है। इसलिये निष्काम प्रेमभावसे सगलाकी परम सेवा करनी चाहिये थोड़ा–बहुत तुम्हारेसे होवे जैसा तुमा करो ही छो। और भी विशेष रूपसे करनी चाहिये। अपना तन–मन–धन जो सब कुछ है सो संसारके जीवोंके उद्धारके लिये है। उनकी सेवामें जो जिनसे लग गयी जिकी तो रही और जो नहीं लगी जिकी गयी। इस माफिक समझकर उनकी सेवा करनी चाहिये। इस माफिक करनेसे सगलाके साथ बहुत प्रेम होने सके छे। और सगलाके साथ जो प्रेम है जिको भगवान्‌के साथ ही प्रेम है। कारण भगवान् ही सगला का आत्मा है।

(९)

यह पत्र श्रीभाईजीके स्वयंके हस्ताक्षरोंमें दिया जा रहा है––

करता रहता था तो अब वह क्यों नहीं करता। परन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रभुने ऐसा करके इतना 'योग' प्रदान किया और अबतक उसका क्षेम भी बराबर हो रहा है, फिर क्या कारण है कि बचा हुआ "योग" प्राप्त होनेमें विलम्ब हो रहा है। अतएव इसमें यदि कहीं पर दोष है तो वह मेरी अनन्यतामें ही है। 'नित्याभियुक्त' हुए बिना 'योगक्षेम' का वहन परमात्मा क्यों करें। परन्तु फिर नहीं समझमें आता है कि अनन्यता तो पहले भी नहीं थी नित्याभियुक्त तो पहले भी नहीं था फिर क्या कारण कि उस समय तो इतना हुआ और अब नहीं होता। क्या प्रभुके अनुग्रहमें विषमता है! पर यह तो असंभव बात है, वहां अगर विषमता होती तो पहले ही इतनी दया क्यों होती।

२

कहीं न कहीं मेरामें कोई महान् दोष है
जो प्रभुकी पद पद पर प्रकट होनेवाली
अपार कृपाका अनुभव नहीं करने देता।
पर इस दोषको दूर करना भी तो प्रभु
के ही अधिकारमें हैं। यदि मैं ही
दोष हटा सकता तो अबतक हटा
क्यों नहीं देता? अतएव सब तरहसे
दोषी निर्दोष, साधक, असाधक जो
कुछ भी क्यों न समझा जाऊं वा
होऊं, पर अब तो बेड़ा पार ही होना
चाहिए। प्रेम नहीं है परन्तु प्रेमदान
जबरदस्ती देनेमें क्या आपत्ति है?
अधिक क्या लिखूं "अब तो निबाहे
ही लाभ" ____________

मैं चूक गया था, इच्छा थी कि कुछ
लिखूं, कहीं उस इच्छामें ढूंढने पर भी

धोखा नहीं मालूम हुआ, पर भूख नहीं छोड़ सका, और ८ और गाँवोंमें घूमा प्रभुने चाहा जैसा प्रेरणा की। पर पुजारियोंमें बधाईके तार आते ही वहीं से वापस लौट गया, मनको देखके पर इच्छा तो अत्यन्त भी भूखके लिए प्रबल ही मालूम होती थी फिर क्यों नहीं चरणोंमें स्थान मिला?

पता नहीं क्या लीला है। माना कि प्रेमकी परीक्षा होती है पर मैं कहां कहता हूं कि मुझमें प्रेम है, प्रेम होता तो बिना मर्जी के ही प्रभुको बंधना पड़ता। फिर तो इतनी गरज और अनुनय विनयकी आवश्यकता ही क्यों होती। गरज होती, प्रेमकी

भाव होती, तब सूरदासके कृष्णकी भांति पीछे पीछे फिरना पड़ता। परन्तु यहां तो प्रेम हीनको अपनाकर जबरदस्ती प्रेमी बनाना है। फिर प्रेमकी परीक्षा क्यों होती है। प्रेम हो तो परीक्षा हो। फिर पता नहीं इसका क्या अर्थ है। मुझे तो कभी आश्चर्य होता है तो कभी हर्ष,—आनन्द है!

बहुतसी बातें सोचता जाता लिखता गया इन बातोंमें न दुःख है न कोई विनय ही है। हैं केवल लिखनेके उद्गार- जो बीच बीचमें किये बिना - इसलिये बिना रहा नहीं जाता — चाहता था कि अभी आपका स्वास्थ्य लोग ठीक नहीं बताते हैं। मेरी समझसे तो सदा ही ठीक था बिगड़ा हो तब न सुधरे)

परन्तु[2] लोगोंकी बात मान कर पुनः या
स्वप्न नहीं होगया, मनमें आया
सो लिख डाला, मुझे इसका
हिसाब किताबकी जरूरत न चाहिये।
प्रेम नहीं है, साधन नहीं है
भक्ति नहीं है जो कुछ है सो
है पर हूं तो प्रभुका न!
इसमें तो शङ्का है ही नहीं!
बस, फिर मुझे भय क्या है!
संभालिये, जैसे जैसे। लीजिये
जैसे सो, कराइये जैसे जिसका

मैं पत्र बहुत कम लिखा करता हूं
कारण मुझसे केवल इसीप्रकारके
उद्गार लिखे जाते हैं जब तब स्वप्नमें।

पत्र लिखने बैठता हूं तब तब ऐसी ही
भावनाएं उत्पन्न हो जाती है। बारबार
ऐसे पत्रों से न मालूम लोग क्या
समझें इसलिये पत्र ही नहीं लिखता
पत्र जब रहा नहीं जाता तब
अगत्या लिखना पड़ता है।
पता नहीं, इसमें भी लीलामय का
कितना हाथ है।

(१०)

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पत्र

तुम्हारा पत्र मिला, तुमने लिखा कि "समष्टि (द्रष्टा) का ध्यान प्रायः निरन्तर रहता है, सोना तथा उठना भी इसी स्थितिमें होनेका अनुमान है; किन्तु अचिन्त्यके ध्यानकी स्थिति बराबर एक–सी नहीं रहती। ध्यानकालमें तो अचिन्त्यका ध्यान विलक्षण होता है परन्तु इस विलक्षणताको जाननेवाली वृत्तिका अभाव ध्यानकालके बाद नहीं होता। इससे जाना जाता है कि ध्यान कालमें भी विलक्षणताका अनुभव करनेवाली वृत्ति अप्रत्यक्ष रूपसे थी" सो ठीक है। तुमने लिखा कि मेरी यह साधनकी स्थिति आगे मुजब है, गत वर्षके समान तेजीसे नहीं बढ़ी, ठहरी हुईसी मालूम होती है" सो ठीक है तुम्हारी स्थितिका बढ़ना रुका नहीं है। स्थिति ठहरी हुईसी केवल तुम्हें प्रतीत होती है। गत वर्षसे इस वर्ष साधन बढ़ा है परन्तु ठहरा हुआसा प्रतीत होनेका कारण एक तो यह है कि साधन बहुत जोरसे बढ़े बिना साधकको थोड़ी वृद्धिमें उसकी वृद्धि प्रतीत नहीं होती।

दूसरे गतवर्ष तो जैसे किसी विद्यार्थीने पहले कभी कौमुदीका पूर्वार्द्ध पढ़ा हो, बीचमें उसकी विस्मृतिसी हो गई हो और कुछ काल उपरान्त फिरसे पढ़ना आरम्भ करनेपर जैसे वह पूर्वार्द्ध पूर्वमें अध्ययन किया हुआ होनेके कारण बहुत ही शीघ्र हो जाय, परन्तु उतरार्द्धके पढ़नेमें विलम्ब प्रतीत हो ऐसे ही तुम्हारा पूर्वकृत साधन, थोड़े ही अभ्याससे प्रकट हो गया था। गड़े हुए अज्ञात धनके मिल जानेके समान तुम्हारे पूर्वप्राप्त परन्तु अज्ञात साधनके अकस्मात प्रकट हो जानेसे तुम्हें साधन तथा स्थिति बहुत बढ़ती हुई मालूम हुई थी। यही गतवर्ष और इस वर्षकी स्थितिमें अन्तर प्रतीत होनेका कारण है। साधन न तो रुका है और न गत वर्षकी अपेक्षा, जितनी तुम समझते हो उतनी चाल ही कम हुई है। जो कुछ चाल कम हुई है उसका कारण यह है कि गत वर्ष अधिक लाभ मालूम होनेसे हर्षके कारण उत्साह बढ़ गया था। जिससे साधनमें विशेष तेजी हुई थी, इस वर्ष लाभ कम समझनेसे उतने उत्साहसे चेष्टा नहीं हुई तथापि साधन तो बढा ही है। परन्तु जैसे किसी सन्निपातके रोगीका सन्निपात दोष मिट जानेपर यदि उसके पेटमें किञ्चित दर्द रह जाता है तो वह वैद्यसे कहता है कि मेरा पेट दुखता है मैं अच्छा नहीं हुआ। इसपर वैद्य कहता है कि भाई ! तुम्हारा प्रधान रोग तो मिट गया मामूली पेट दुखता है इसके लिये क्या चिन्ता है ? तुम्हारी भी ऐसी ही अवस्था समझनी चाहिये।

तुमने लिखा कि "अब देर क्यों हो रही है"——सो देर इसलिये होती है कि साधक देरको सह रहा है। यदि उसके प्राण, निकलने लगें तो फिर मिलनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं होता। जबतक साधक परमात्माका न मिलना बरदाश्त कर रहा है, जबतक भगवान्‌के बिना उसका काम चल रहा है तबतक भगवान् भी देखते हैं कि इसका काम तो मेरे बिना चल ही रहा है, फिर मुझे ही इतनी क्या शीघ्रता है। जिस दिन भगवान्‌के बिना साधक नहीं रह सकेगा उस दिन भगवान् भी भक्तके बिना नहीं रह सकेगे। क्योंकि भगवान् तो परम दयालु हैं। विलम्ब भगवान्‌को चाहनेमें है पानेमें नहीं।

तुमने लिखा कि "मेरा साधन, प्रेम तथा बल पहले भी ऐसा ही था" सो यह बात ठीक नहीं है। साधन प्रेम और बल पहले भी बढ़ा था और अब तक वह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। तुम्हें प्रतीत नहीं होता। जो कुछ बल प्राप्त हो जाता है, निस्वार्थ और निष्कामभावकी जो कुछ पूँजी होती है वह कभी कम तो होती ही नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ती है। साधक चाहे तो उसे बहुत बढ़ा

सकता है। जैसे घुटाली (सोना गलानेकी घड़िया) का जितना स्थान सोनेसे भर जाता है उतना तो कभी नाश नहीं होता, बाकी खाली स्थानको सोनेसे भर देनेकी आवश्यकता है। (दृष्टान्त) सोना तपानेवाले लोग गलाकर सोना शुद्ध करनेके लिये असली सोना, इधर उधर बिखरा हुआ सोना तथा दूसरी धातुओंमें और कूड़े करकटमें मिला हुआ सोना उन सब चीजोंके साथ ही घुटालीमें डालकर उसके साथ सुहागा मिलाकर आगपर चढ़ा देते हैं और आगको फूँकनीसे लगातार फूँकते रहते हैं कि जिससे वह आग कभी बुझती नहीं प्रत्युत उत्तरोत्तर अधिकतासे प्रज्वलित होती रहती है। अग्निके तापसे घुटालीके अन्दर पड़ा हुआ सोना सुहागेकी पुटसे तपकर अपनी स्वाभाविक शुद्धताको प्राप्त होता हुआ अपने भारीपनके कारण घुटालीके निचले भागमें जमा होता रहता है। उसके ऊपर सोनेमें मिली हुई अन्यान्य धातुएँ छँटकर जमा हो जाती है और अत्यन्त हल्का होनेके कारण कूडा कर्कट सबसे ऊपर आ जाता है। इसके बाद अग्निके विशेष तापसे अन्य धातु और कूड़ा कर्कट तो जल जाते हैं और केवल तपा हुआ शुद्ध स्वर्ण उस घुटालीके निचले भागको रोककर स्थित रह जाता है। घुटालीके खाली स्थानमें बारम्बार ऊपरसे दूसरा सोना डलता रहता है जिससे धीरे-धीरे सारी घुटाली तपे हुए शुद्ध सोनेसे भर जाती है। कूड़ा कर्कट और अन्य धातुओंका समूह या तो अन्दर ही जल जाता है या सोनेकी अधिकतासे घुटालीमें कहीं स्थान न पाकर ऊपरसे तरकर नीचे अग्निमें पड़कर भस्म हो जाता है। सोनेको अन्य धातुओं और कूड़ेसे अलग करनेवाला सुहागा भी अपना काम करके भस्म हो जाता है। अन्तमें उस ऊपर तक भरी हुई घुटालीमें जो रह जाता है वही असली सोना है। उसीसे दरिद्रताका सदाके लिये नाश हो जाता है। यह एक दृष्टान्त है। इसका दृष्टान्त इस प्रकार समझना चाहिये, कि घुटाली साधकका हृदय है। निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादि असली सोना है और काम, क्रोध, अज्ञान, संशय, विषयासक्ति, प्रमाद, अभिमान और आलस्य ये आठ प्रकारके दोष दूसरी धातु है। संसारके चित्रोंका चिन्तन कूड़ा कर्कट है। तत्त्वज्ञान अग्नि है, सत्संग उस अग्निको बढ़ानेवाली वायुकी फूँकनी है, शास्त्रोंका विचार सुहागा है और परमात्माके अभावका ज्ञान ही उस घुटालीका खाली स्थान है। साधकके हृदय रूपी घुटालीमें निष्काम—भजन, सेवा और सदाचारादि स्वर्णके साथ काम क्रोधादि दोषरूपी अन्य धातु और संसारके चित्ररूपी कूड़ा कर्कट भी पड़ते जाते हैं

परन्तु सत्संग रूपी वायुकी फूँकनीसे बढ़े हुए तत्त्वज्ञानरूपी अग्निके तापसे और शास्त्रोंके विचाररूपी सुहागेकी सहायतासे हृदय रूपी घुटालीका निचला भाग निष्कामभजन, ध्यान, सेवा और सदाचारदिरूपी शुद्ध तपे हुए स्वर्णसे भर जाता है। काम क्रोधादि दोषरूपी अन्यान्य धातु और संसारके चित्र चिन्तनरूपी कूड़ा करकट जल जाते हैं। शास्त्रविचाररूपी सुहागा भी स्वर्णको शुद्ध करके स्वयं लुप्त हो जाता है। तब केवल निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिरूपी शुद्ध सोना ही अवशेष रह जाता है। इस तरह साधकके हृदयका जितना जितना स्थान निष्काम भजनादिसे भर जाता है उसका तो कभी नाश नहीं होता। परन्तु उस हृदय रूपी घुटालीका जितना स्थान परमात्माके अभावज्ञान रूपी शून्यतासे खाली पड़ा है वह जबतक नहीं भर जाता तबतक अज्ञानरूपी दरिद्रताका सर्वथा नाश नहीं होता। जैसे कलकत्ता जानेवाले किसी यात्रीके पास यदि किरायेके रुपयोंमेंसे कुछ भी कम हो तो उसे खास कलकत्तेका टिकट नहीं मिलता। जितने पैसे कम होंगे उतना ही इधरका टिकट मिलेगा। अपने गन्तव्य स्थानतकके टिकटके लिये तो भाड़ेके पूरे पैसे चाहिये। इसी प्रकार साधकका हृदय भी जहाँतक पूरा नहीं भर जाता वहाँतक उसे भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। जितना स्थान खाली रहता है उतना ही वह परमात्मासे इधर रह जाता है। हृदयरूपी घुटालीको ऊपरतक भर देनेके लिये बारम्बार स्वर्ण डालना चाहिये और उसे तपाकर शुद्ध करनेके लिये तत्त्वज्ञानरूपी अग्नि और उस अग्निको प्रज्ज्वलित रखनेके लिये सत्संग रूपी वायुकी फूँकनी तथा काम क्रोधादिरूपी धातुओं और संसारके चित्र रूपी कूड़े करकटको अलग करनेके लिये शास्त्र–विचाररूपी सुहागा डालते रहना चाहिये। ये सभी काम बराबर होते रहने चाहिये। इन सबमें निष्कामभजन, ध्यान, सेवा और सदाचाररूपी स्वर्ण और सत्संगरूपी वायुकी फूँकनीको प्रधान समझना चाहिये। केवल स्वर्ण ही न हो और सब बातें हों तो उससे दारिद्र्य दूर हो नहीं सकता। स्वर्णके हुए बिना तो वायुकी फूँकनीरूपी सत्संग भी क्या कर सकता है ? औषध लिये बिना वैद्यकी सलाहसे क्या हो सकता है ? इसलिये निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिकी तो नितान्त आवश्यकता है परन्तु सत्संगरूपी वायुकी फूँकनी न हो तो तत्त्वज्ञानरूपी अग्निके शान्त होनेका भय रहता है। इसलिये सत्संग भी प्रधान ही है, यद्यपि, यह अग्नि एक बार

जलनेपर सहजमें बुझती नहीं, कभी बुझती है तो सारी दूसरी चीजोंको जलाकर केवल शुद्ध स्वर्णके रह जानेपर ही बुझती है और न सहजमें यह सत्संगरूपी वायुकी फूँकनी ही रुकती है। साधारण अग्नि तो केवल सोनेको तपाकर शुद्ध ही करती है; परन्तु यह तत्त्वज्ञानाग्नि तो स्वर्णकी उत्तरोत्तर वृद्धिमें सहायक होती है। इस प्रकार वह हृदयरूपी घुटाली तपे हुए शुद्ध स्वर्णसे परिपूर्ण हो जाती है। निष्कामभजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिसे हृदयका भर जाना ही भगवत्-प्राप्ति है। जैसे ग्रासोंके भरनेसे पेट भर जाता है इसी प्रकार इस स्वर्णके भर जानेमें ही भगवत्-प्राप्ति है; फिर खाली स्थान किञ्चित भी नहीं रह जाता। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही परिपूर्ण हो जाता है। अतएव उपर्युक्त दृष्टान्तके अनुसार निरन्तर पूर्णरूपसे तत्पर रहकर भगवत्प्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये।

तुमने लिखा कि "साधनकी उन्नतिमें मेरा बल और प्रेम कुछ भी नहीं था। जो कुछ हुआ सो प्रभुके अद्भुत अनुग्रहसे ही हुआ" सो यों ही मानना उत्तम है विशेष अंशमें बात भी यही है। भगवत् प्राप्तिमें पुरूषार्थ प्रधान है। पुरूषार्थके होनेमें भगवान्‌की कृपा प्रधान है और भगवानकी कृपा सब जीवों पर निरन्तर है, लाभ उसीको होता है जो उसको मानता है। जैसे किसीके पास पारस पत्थर है एवं पारसके स्पर्शसे चाहे जितना लोहा सोना बनाया जा सकता है और दरिद्रता दूर की जा सकती है परन्तु यदि कोई पारसको पारस ही न माने तो इसमें पारसका क्या दोष है ! पारसको पारस समझनेसे ही लाभ है, यही दशा भगवत्-कृपाकी है। इसलिये भगवत्-कृपा माननेमें ही परम लाभ है। सत्संगसे भगवान्‌का प्रभाव जाना जाता है। भगवान्‌का प्रभाव जाननेसे भगवत्-कृपाका अनुभव होता है, भगवत्कृपासे भगवत्प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ बढ़ता है और पुरुषार्थसे भगवत्प्राप्ति होती है।

तुमने लिखा कि "नित्याभियुक्त हुए बिना योगक्षेमका वहन परमात्मा करें क्यों ? सो ठीक है। नित्याभियुक्त तो होना ही चाहिये परन्तु योगक्षेम न चाहना उत्तम है। यद्यपि योगक्षेम चाहना कोई दोषकी बात नहीं, पर निर्योगी उससे भी उत्तम है। निर्योगक्षेमी होनेसे मुझको जल्दी प्राप्ति होगी ऐसी भावनासे निर्योगक्षेमी होना उत्तम ही है। पर सबसे उत्तम तो यह बात है कि जिसमें प्राप्तिकी भी इच्छा न रहे। मिले वा न मिले। इस भावसे परमात्मामें अनन्य प्रेम करना चाहिये। ऐसा करनेसे परमात्मा ऋणी हो जाते हैं। जैसे एक

मजदूर मालिकसे चार आने मजदूरी पानेके लिये उसकी सेवा करता है, इससे तो वह उत्तम है जो अपने मुँहसे मजदूरी माँगता नहीं, वह कहता है कि मैं कुछ नहीं कहता। ऐसा कहनेसे उसके मनमें यह भाव रहता है कि मुँहसे नहीं माँगनेसे मालिक कुछ अधिक पैसा देंगे। होता भी यही है। उदार मालिक समझता है कि यह अपने मुँहसे कुछ कहता ही नहीं तब इसे कुछ पैसे अधिक देने चाहिये। यों विचारकर चतुर मालिक उसे चार आनेकी जगह छै आना दे देता है। इस प्रकार अपने मुँहसे न कहनेसे लाभ इससे अधिक होता है। इस हिसाबसे योगक्षेम चाहनेकी अपेक्षा जल्दी प्राप्ति होनेकी भावनासे भी निर्योगक्षेमी होना उत्तम है। परन्तु वह मजदूर यदि बिल्कुल ही न ले, देनेपर भी स्वीकार न करे तब मालिकको बड़ा संकोच होता है और पहिलेसे भी अधिक देना चाहता है, पर जब वह किसी प्रकारसे भी नहीं लेता, तो मालिक उसका ऋणी बन जाता है। इसी प्रकार जब साधक परमात्मासे कुछ भी नहीं लेना चाहता, केवल प्रेमके लिये ही उससे प्रेम करता है, वह तो यही कहता है कि बस, मुझे तो प्रेममें ही सुख मिलता है, मुझे तो केवल प्रेम ही चाहिये। तब परमात्मा उसके ऋणी बन जाते हैं। इसके बाद यदि परमात्मासे उस प्रेमीके पास आये बिना नहीं रहा जाय तो उनकी मर्जी। वह तो केवल प्रेममें ही प्रमत्त रहता है। तुमने परमात्माके अनुग्रहमें विषमताका होना असम्भव समझा सो ठीक है। वास्तवमें परमात्माकी कृपामें कोई विषमता नहीं है।

तुमने लिखा "कि प्रभुकी पद–पदपर प्रकट होनेवाली अपार कृपाका अनुभव क्यों नहीं होता ?" इसमें पूर्व संचित पाप बाधक है। संचितका नाश पुरुषार्थसे होता है। पापरूपी तमका नाश होते ही, हमारी दृष्टिको आच्छादित करनेवाले बादलोंके हट जानेसे सूर्यके प्रकट हो जानेके समान भगवत्–कृपारूपी सूर्य प्रकट हो जाता है। भगवत् कृपा सूर्य तो है ही, पापरूपी तमसे हमारी अन्तःकरणरूपी दृष्टि ढकी हुई है। इसीसे वह कृपा—सूर्य हमें दीखता नहीं। इसलिये निरन्तर ही भगवान्‌की पूर्णकृपा मानते रहना चाहिये। मानते रहनेसे भी कभी साधनके तेज होते ही तम नष्ट होनेपर भगवत्–कृपा प्रकट हो जायेगी।

तुमने लिखा कि 'प्रेम नहीं है, परन्तु प्रेम–दान जबरदस्ती देनेमें क्या आपत्ति है ?" परमात्मा तो प्रेम दान देनेके लिये सदा प्रस्तुत है। परन्तु प्रेम लेनेवालेकी तत्परता असली होनी चाहिये। जब परमात्माके लिये लज्जा,

भय धर्म, नीति, योग्यता, अयोग्यता, संकोच, धन, मान, अपमान, परिवार और पुत्रादि सबको भूलकर केवल उसे ही पानेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठा होती है तब उसके प्राप्त होनेमें विलम्ब नहीं होता। उपर्युक्त प्रायः सारी ही बातोंका त्याग ज्ञानकर नहीं करना चाहिये। जानकर त्यागनेसे तो उलटा दोष आता है। ऐसा करना तो प्रमाद और दंभ है। परन्तु प्रेमकी विह्वलतामें किसी प्रकारका ध्यान ही न रहनेसे जब इनका स्वतः ही त्याग हो जाता है तभी वह प्रेमका त्याग कहलाता है। जैसे श्रीविदुरजीकी स्त्री प्रेमकी प्रगाढ़तामें योग्यता अयोग्यताको भूल गयी थी। जैसे परम भक्तिमती गोपियाँ भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होकर घर, द्वार, पति, पुत्र, लोक, लज्जा, मान, अपमान, धर्म और भय आदि सबको त्यागकर परमात्मा कृष्णके परायण हो गई थीं। गोपियोंने ज्ञानबूझकर ऐसा नहीं किया था। भगवान्‌में उनका आत्यन्तिक प्रेम ही इसमें एक कारण था। इसलिये भगवान्‌ने कहा कि मेरा प्रभाव केवल गोपियाँ ही जानती हैं। इस भावके जितने अंशमें त्रुटि है उतने ही अंशमें प्रेमदानमें विलम्ब समझना चाहिये। प्रेम जो चाहता है उसे ही मिलता है। बिना चाहे जबरदस्ती प्रेमदान देनेका भगवान्‌का नियम नहीं है। यदि ऐसा होता तो अबतक सभी जीव मुक्त हो गये होते। भगवान्‌के अवतार भी ऐसा नहीं करते। यदि करते तो उनके सामने ही उनके समयके सभी लोगोंको प्राप्ति हो गई होती। क्योंकि वे यों तो कह ही नही सकते कि मुझमें जबरदस्ती प्रेमदान करनेका सामर्थ्य नहीं है, परन्तु ऐसे गले पकड़कर मुक्त करनेका उनका काम नहीं है। भक्तोंमें अवश्य ऐसी विशेषता होती है और भक्तलोग अपने सामर्थ्यके अनुसार चेष्टा करते ही हैं। यह कानून तो उन लोगों पर लागू होता है जो या तो जीवोंके उद्धारके लिये भगवान्‌से खुली परवानगी (पूरा अधिकार) पा चुके हों या जिनके केवल दर्शन, स्पर्श, चिन्तन और भाषणसे ही जीवोंका कल्याण होता हो। जैसे भक्त प्रह्लादजी और बंगालके श्रीचैतन्यमहाप्रभु आदि हुए। इसीलिये भगवान्‌से भी भक्तोंकी विशेषता है। तुलसीदासजीने रामायणमें कहा है :—

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। रामते अधिक राम कर दासा।।
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा।।

अथवा कारक पुरुषोंपर यह कानून लागू होता है। कारक पुरुष उनको कहते हैं जो क्रममुक्तिद्वारा भगवान्‌के परम धाममें पहुँच जानेके बाद

भगवान्‌की आज्ञासे केवल जीवोंके उद्धारार्थ ही परमधामसे जगत्‌में आते हैं जैसे व्यास, वशिष्ठादि। अतएव भगवान्‌का जबरदस्ती प्रेमदान करनेका कानून नहीं है।

तुमने लिखा कि "मैं चुरू आया था, इच्छा भी थी कि वहाँ ठहरूँ, कहीं उस इच्छामें ढूँढने पर भी धोखा नहीं मालूम हुआ था; पर चुरू ठहर न सका।" सो ठीक है। इसके उत्तरमें मैं यही लिखता हूँ कि हृदयको और भी ढूँढना चाहिये था।

कुछ दिनों पहले तुम्हारे और श्रीज्वालाप्रसादजीके सम्बन्धमें पं० श्रीहरिबक्सजीने मुझसे पूछा था कि इनमें क्या अन्तर है ! मैंने कहा था, कई बातोंमें हनुमान अधिक है और कई बातोंमें श्रीज्वालाप्रसादजीकी अधिकता है। स्पष्ट पूछने पर मैंने कहा था कि दया, सेवा और विद्यामें हनुमान अधिक है और श्रद्धा, प्रेम और निष्कामतामें, ज्वालाप्रसादजी अधिक हैं और इस अन्तरका पता मुझे तो अपने मनसे यों लगता है कि मुझे हनुमानका दोष बतलानेमें और उसके सामने मनका भाव प्रकट करनेमें ज्वालाप्रसादजीकी अपेक्षा अधिक संकोच होता है। इसपर पूछा गया था, कि क्या हनुमानमें प्रेम नहीं है ? तब मैंने कहा था—है परन्तु ज्वालाप्रसादजीकी तुलनामें कम है।

कुछ दिनों पहले एक सज्जनने मुझसे पूछा था कि आपमें किसका प्रेम अधिक है ? मैं श्रीहीरालालजीकी बात छोड़कर दूसरोंके सम्बन्धमें पूछता हूँ। इसपर मैंने उत्तर दिया था कि मुझमें सबसे अधिक प्रेम घनश्यामका है। दूसरा नाम पूछने पर मैंने ज्वालाप्रसादजीका नाम बतलाया था। कुछ और बातें होनेके बाद मुझसे प्रेमकी पहचानके लक्षण पूछे गये थे, तब मैंने यों कहा था, प्रेमकी परीक्षा श्रवण, दर्शन, भाषण और चिन्तनसे होती है। कानों द्वारा प्रेमीके सम्बन्धके शब्द सुनते ही मन विह्वल हो जाता है, आँखोंसे अश्रुपात होने लगता है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इसी प्रकार आँखोंके सामने उसका शरीर आते ही और मनमें उस प्रेमीकी बातका स्मरण होते ही वैसी दशा हो जाती है। वाणीसे तो पूरे शब्द उच्चारण ही नहीं कर सकता। प्रेमीका नाम या उसके सम्बन्धकी बात आते ही हृदय गद्‌गद हो जाता है, वाणी रुक जाती है, आँखोंसे आँसुओंकी अजस्रधारा–सी बहने लगती है। ये प्रेमकी पहचानके लक्षण हैं। यद्यपि ज्वालाप्रसादजीमें ये सब लक्षण पूरे तो

नहीं घटते, परन्तु उनकी आँखें प्रेमजलसे डबडबा जाती हैं। इसलिये वर्तमानमें ज्वालाप्रसादजीका प्रेम विशेष बतलाया गया है।

तुमने लिखा कि 'प्रेम होता तो बिना मर्जी ही भगवान्‌को बँधना पड़ता, सो ठीक है। गरज और खुशामद करना तो नीचा ही भाव है। तुमने लिखा कि 'क्या प्रेमकी परीक्षा होती है ?' सो ठीक है। कई अंशोंमें ऐसा भी हो सकता है।

जयदयाल गोयन्दका

(११)

परम पूज्यवर, बम्बई, ज्येष्ठ सं० १९८३

सादर प्रणाम। आपका कृपा पत्र मिला। ....

मेरा साधन और तेज होना चाहिये। श्रीपरमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों हो रहा है ? उसमें क्या प्रतिबन्धक है ? और उस प्रतिबन्धकका नाश किस उपायसे शीघ्र हो सकता है ? सारे संसारमें जीव बहुत दुःखी हो रहे हैं। किसी भी देशमें शान्ति नहीं है। देश-देशमें, घर-घरमें कलह हो रही है। जगह-जगह एक दूसरेका अनष्टि कर रहे हैं। इस तरहकी स्थितिमें जीवोंका उद्धार अवश्य होना चाहिये। इस समय तो जगत् मानो दुःख दावानलमें दग्ध-सा हो रहा है। इस प्रकारकी स्थिति बढ़ती गई तो शायद कुछ दिनों बाद घर-घरमें भाई-भाईमें परस्पर मार-काट होनी सम्भव है। लोगोंमें भगवान्‌के प्रति विश्वास उठता चला जा रहा है। दिन-पर-दिन जगत्‌का भविष्य कम-से-कम एक बार तो बहुत ही भयानक रूप धारण करता चला जा रहा है। इस स्थितिमें जीव कबतक पड़े रहेंगे ? जीवोंकी इस दशापर परमात्माकी करुणा तो है ही परन्तु अब तो करुणासागरकी भी मर्यादा टूट जानी चाहिये। श्रीपरमात्माकी नित्य कृपाका अनुभव जीवोंको सरलतासे होने लगे तो जीव परमात्माकी कृपा प्राप्तकर कृतार्थ हो सकते हैं। न मालूम मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है कि परमात्माकी असीम कृपाका पद-पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत जीव बार-बार भूल जाता है। घरका वह प्यारा अपनी मनोहर छटा दिखलाकर बार-बार आता है, यदि जीव उसे पकड़ ले तो शायद वह पकड़वानेको भी तैयार ही मालूम होता है। पर आश्चर्य तो यह है कि जीव

उसे पकड़ता नहीं। हाथमें आये हुएको छोड़ देता है। जिस समय वह किसी रूपमें अपना रूप दिखलाता है उस समय तो कुछ आनन्द–सा होता है पर आनन्दमें आनन्दरूपको न जानकर जीव उसे छोड़ देता है, फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नहीं वह पश्चात्ताप असली होता है या बनावटी। असली होता है तो क्यों नहीं उसे पकड़ लेता। वह तो बारम्बार पकड़वानेका मौका देता है। ऐसी स्थितिसे जीवका मोह कैसे नाश हो ! किस जादूकेसे उपायसे जीव मोहसे छूट सके। किस उपायसे जीवके अन्तरमें तत्काल बिजली–सी दौड़ जाय—उसे चैतन्य हो जाय और वह उस चेतनाको पाते ही अपने प्रियतमको पकड़ ले। किसी तरह छोड़ें ही नहीं। किसी भी भुलावेमें न भूले।

ऐसी कोई सरल उपाय सारे जीवोंके कल्याणादिके लिये बतलाना चाहिये और उस उपायको जगत्में हेला मारकर (जोरसे पुकारकर) कह देना चाहिये कि जिससे सारे जीव मोहकी बेड़ी को तोड़कर प्रियतमको पकड़ पावें। ऐसी घोषणाकी बड़ी ही आवश्कयता है। अब तो परमात्माको आवश्यकतासे भी अधिक उदार, बने बिना जीवोंका उद्धार कैसे होगा ? ज़बरदस्ती खैंच–खैंच कर पावन करनेका मौका है। तभी तो पतितपावन नामकी सार्थकता है।

(१२)

श्रीसेठजीका उत्तर आषाढ़ सं० १९८२

श्रीहनुमानप्रसाद सेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम बंचना। तुम्हारा पत्र मिला। तुमने लिखी कि परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों हो रहा है ? क्या प्रतिबन्धक है ? और उस प्रतिबन्धकका नाश किस उपायसे शीघ्र हो सकता है ?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर प्रायः पहले पत्रमें दिया जा चुका है।

तुमने लिखा कि संसारमें जीव बहुत दुःखी हो रहे हैं। किसी भी देशमें शान्ति नहीं, देश–देशमें, घर–घरमें कलह हो रही है। जगह–जगह एक दूसरेका अनष्टि कर रहे हैं। इस स्थितिसे ज़ीवोंका उद्धार अवश्य होना चाहिये।

उत्तर—ठीक ही है, उद्धार तो होना ही चाहिये तुम्हारे दूसरे प्रश्नोंके उत्तर आगे लिखे जायँगे।

तुमने लिखा कि इस समय जगत् मानों दुःख दावानलमें दग्ध-सा हो रहा है। इस प्रकारकी स्थिति रही तो शायद कुछ दिनों बाद घर-घरमें भाई-भाईमें परस्पर मार-काट होना सम्भव है। लोगोंमें भगवान्‌के प्रति विश्वास उठा चला जा रहा है। दिन पर दिन जगत्‌का भविष्य कम-से-कम एक बार तो बहुत ही भयानक रूप धारण करता चला जा रहा है।

उत्तर--यह बात कई अंशोंमें ठीक है। परन्तु ऐसा होनेका कारण भक्तिपूर्वक भगवान् सम्बन्धी आलोचनाका अभाव है। प्रायः सारा जगत् केवल भौतिक सुखको ही परमसाध्य मानकर उसकी ओर दौड़ रहा है। इस समय जगत्‌की दृष्टि प्रायः संसारके विषयोंकी ओर लगी हुई है। भोग योग्य वस्तुओंके संचयको ही प्रायः लोगोंने परम पुरुषार्थ-सा मान रक्खा है। इसीसे सब प्रकारकी बुराइयाँ प्रकट हो रही हैं। और रुपयोंके लोभसे व्यवहार बिगड़ जाता है, उसी प्रकार विषय लालसासे सारे धर्माचरण प्रायः बिगड़ जाते हैं। और ऐसी ही स्थिति यदि बनी रही तो सम्भव भी है कि शायद कलह और बढ़े। कारण, भौतिक सुखकी प्रबलाकांक्षा मनुष्यको पशुकी संज्ञामें परिणत कर देती है। सभी भोगोंकी ओर दौड़ते हैं और जहाँ भोग पदार्थ होते हैं वहीं एक साथ झपटते हैं। जैसे किसी कुत्तेके मुँहमें रोटी हो या कोई चील माँसका टुकड़ा लिये हुए हो, तो प्रायः बहुत-से कुत्ते और चीलें उनके पीछे पड़ जाती हैं। और उनका परस्परमें बड़ा द्वन्द्व युद्ध होता है। जड़वादको आदर्श माननेका परिणाम भी प्रायः इस प्रकार हुआ करता है। इसलिये ऐश, आराम, मौज, शौक आदि विलासिता संसारकी सारी भोगासक्तिका मनके द्वारा त्याग होना चाहिये। ऐसा होनेसे ही सुख सम्भव है।

तुमने लिखा कि जीव इस स्थितिमें कबतक पड़े रहेंगे ? याने उनका उद्धार कब होगा ?

उत्तर--इस बातका उत्तर नहीं दिया जा सकता। योगी चाहे तो मालूम कर सकते हैं। पुरुषार्थ अनियत है। इस बातका निर्णय नहीं हो सकता कि पुरुषार्थका फल कब कैसा होगा। किसके साधनका फल कब और कैसे होगा। इसका पता भगवान्‌को भी है या नहीं, इस सम्बन्धमें भी कुछ नहीं कहा जा सकता। यह बात यदि पूर्व निश्चित मान ली जाय कि अमुकजीव अमुक समय परम पदको प्राप्त होगा तो साधनसे श्रद्धा घट जाती है। लोग कह सकते हैं कि उद्धारका समय पूर्व निश्चित ही है फिर

साधनकी क्या आवश्यकता है। और यदि यह माना जाय कि परमात्मा इस भविष्यको नहीं जानते तो उनकी त्रिकालज्ञतामें बाधा आती है। इसलिये यही कहा जा सकता है कि इस बातको भगवान् ही जानें। परन्तु इस पूरी दशासे उद्धार पानेके कुछ उपाय हैं। यदि हिन्दू जातिकी दृष्टिसे कहा जाय तो इस जातिके कष्टको दूर करनेके लिये चार उपाय* काममें लाये जा सकते हैं :—

ॐ

(१) धार्मिक विद्याका प्रचार।

(२) त्यागी—अनुभवी और विद्वान् सज्जनों द्वारा देशमें धार्मिक व्याख्यानोंका प्रचार।

(३) अल्प मूल्यमें धार्मिक ग्रन्थोंका प्रचार।

(४) अनाथ बालकोंकी धर्मरक्षाके लिये अनाथालयोंकी स्थापना। *

ऐसा किया जाय तो इस जातिमें नीति, त्याग, भक्ति बढ़ सकते हैं और सम्भवतः यह जाति दुःख दावानलमें दग्ध होनेसे बच सकती है। यदि सारे जगत्की दृष्टिसे कहा जाय तो भी प्रायः ऐसी ही बात है। समष्टिके उद्धारार्थ भी त्याग, विद्या, भक्ति और सदाचारके प्रचारकी ही विशेष आवश्यकता है। और ये कार्य स्वार्थ-त्यागी, सेवा परायण सत्पुरुषोंकी तत्परतासे ही हो सकते हैं। निष्काम बुद्धिसे सबकी सेवा करनेवाला पुरुष लोगोंके भावोंको बदल सकता है। निष्काम सेवा ही एक ऐसी विद्या है कि उससे संसार जीता जा सकता है। जबतक ऐसे परहित व्रती, स्वार्थ त्यागी पुरुषों द्वारा जगत्में उपर्युक्त भावोंका प्रचार न हो तबतक जगत्के दुःखोंका नाश होना कठिन है। ऐसे पुरुष जगत्में बहुत थोड़े हैं। इसी कारणसे जगत् दुःखी है। सम्भव हो तो ऐसे निस्वार्थी पुरुष तैयार करने चाहिये। यह काम महापुरुष कर सकते हैं। गी० अ० १२ के श्लोक ३-४ और १३-१४ के अनुसार स्वाभाविक ही सभी भूतोंके हितमें रत, सर्वभूतोंमें अद्वेष्टा, मैत्री और करूणादि गुणोंसे सम्पन्न पुरुष यदि चाहे तो जगत्के जितने भागमें वे परिश्रम करें उतने भागमें जीवोंका दुःख बहुत अंशमें दूर कर सकते हैं।

तुमने लिखा कि जीवोंकी इस दशापर परमात्माकी करूणा तो है

*** टिप्पणी :—पूज्य श्रीभाईजीने इन चारों उपायोंके लिये अपना भौतिक जीवन समर्पित कर दिया था।**

ही परन्तु अब तो करूणाके सागरकी भी मर्यादा टूट जानी चाहिये।

उत्तर--इसका अर्थ शायद यह है कि भगवान्‌को अवतार लेकर जीवोंका उद्धार करना चाहिये। सो करूणामें ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु वास्तवमें ऐसा समय अभी आया है या नहीं, इस बातको भगवान् ही जानें। अनुमानसे इतना कहा जा सकता है कि सम्भवतः भगवान्‌के लिये स्वयं अवतीर्ण होनेका समय अभीतक नहीं आया, यदि आया होता तो वे अबतक अवतार ले लेते। जीवोंकी दशा उनसे छिपी हुई है नहीं। परन्तु मालूम होता है वैसा समय ही अभीतक नहीं आया है। कलियुगमें जिस प्रकारकी स्थितियाँ होनी चाहिये उससे भी अधिक बुरी स्थिति हो जाय तब भगवान् अवतार ले सकते हैं। परन्तु ऐसी दशा अभीतक नहीं हुई है। मनुष्य अबतक प्रायः अपनी मौत ही मरते हैं। पेट भरनेको अन्न भी मिलता ही है। बलात्कारसे प्रायः प्राण हरण नहीं होते। इस प्रकारका संकट या तो पशु-पक्षियोंपर है जो किसी-न-किसी अंशमें प्रायः सदासे था या भारतवर्षमें गो जातिपर है कि बलात्कारसे मारी जाती हैं। तुम्हें जो संसारकी वर्तमान दशा इतनी असहनीय प्रतीत होती है यह तुम्हारी कमजोरी और करूणाका परिणाम है। परन्तु यदि अनवरत गतिसे ऐसा ही घोरमघार चलता रहा, तो सम्भव है कि भगवान्‌के अवतीर्ण होनेका समय भी आ जाय या उनके अधिकार प्राप्त कोई कारक पुरुष आ जाय, अथवा भगवान्‌की कृपासे भक्त, महात्माओंको ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाय कि जिससे वे लोग ही इस कामको थाम लेवें, जैसे पार्लियामेंट। यदि यहींके किसी सज्जनको वाइसरायका अधिकार सौंप देवें तो वह सब काम चला सकता है।

तुमने लिखा कि श्रीपरमात्माकी नित्य कृपाका अनुभव जीवोंको सरलतासे होने लगे तो जीव परमात्माकी कृपा-लाभकर कृतार्थ हो सकते हैं।

उत्तर--ठीक है, यदि जीव ऐसा चाहें तो ऐसा हो सकता है। तुमने लिखा कि न मालूम मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है कि परमात्माकी असीम कृपाका पद-पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत जीव बार-बार भूल जाता है।

उत्तर--ठीक है। परन्तु भगवान्‌की प्रबल शक्तिके सामने मायाकी कोई बल, शक्ति नहीं है। जो मायाके वशमें है। उन्हींके लिये माया प्रबल है। परमात्मा और उसके प्रभावको जाननेवालोंके सामने मायाकी शक्ति कुछ भी

नहीं है। क्योंकि वास्तवमें माया ऐसी शक्ति है नहीं। मायाके वशमें पड़े हुए जीवोंने ही उसकी ऐसी शक्ति मान रक्खी है। जैसे तन्द्राकी वृद्धि स्वप्नावस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य छातीपर अपना हाथ पड़ जानेसे चोटकी कल्पना कर छातीपर बड़ा भारी बोझ-सा समझ लेता है और वह इतना दब जाता है कि जबान हिलानेमें भी उसे भय-सा मालूम होता है। परन्तु वास्तवमें वहाँ चोट या कोई बोझ उसकी छातीपर नहीं है। यही दशा मायाकी है। जीव जहाँतक नहीं चेत करता वहींतक मायाकी प्रबल शक्ति मानकर वह उससे दबा रहता है। यदि चेतकर परमात्माकी शरण ले ले और उसका स्वरूप जान ले तो फिर मायाकी शक्ति कुछ भी न रहे (गीता० अ० ७-१४ अ० १३-२५ देखो) जीव तो परमात्माका सनातन अंश है। अपनी शक्तिको भूल रहा है। इसलिये उसको माया प्रबल प्रतीत होती है। यदि अपनी शक्ति जागृत कर ली जाय तो मायाकी शक्ति सहज हीमें परास्त हो जाय। मायामें अज्ञान ही हेतु है। अज्ञानके नाशसे मायाका नाश होता है।

तुमने लिखा कि जिस समय यह परमात्मा किसी रूपमें अपना रूप दिखलाता है उस समय कुछ आनन्द-सा होता है। पर उस आनन्दमें आनन्दको न पहचानकर जीव उसे छोड़ देता है फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नहीं वह पश्चात्ताप असली है या बनावटी। असली होता तो क्यों नहीं उसे पकड़ लेता।

उत्तर—ठीक ही है। पश्चात्ताप असली होता तो उसे छोड़ता ही क्यों। तुमने लिखा कि ऐसी स्थितिसे जीवका मोह नाश कैसे हो ?

उत्तर—संसारासक्ति ही इस मोहका कारण है। उसका नाश वैराग्यसे हो सकता है। वैराग्यमें पूर्व संचित पाप बाधा देते हैं। परन्तु परमात्माकी शरणसे उनका भी नाश हो सकता है।

तुमने लिखा कि किस उपायसे जीवके अंतरमें तत्काल बिजली-सी दौड़ जाय, उसे चैतन्य हो जाय और वह उस चेतनताको पाते ही अपने प्रियतमको पकड़ ले, किसी तरह छोड़े ही नहीं। किसी भी भुलावेमें न भूले। ऐसा कोई सरल उपाय सारे जीवोंके कल्याणार्थ बतलाना चाहिये। और उस उपायको जगत्में हेला मारकर कह देना चाहिये कि जिससे सारे जीव मोहकी बेड़ीको तोड़कर प्रियतमको पकड़ पावे।

उत्तर—ठीक है। जप और सत्संगसे, परमात्माके प्रभावको जानकर

शरीर और संसारको अनित्य समझकर परमात्माके ध्यानमें स्थिति होनेसे यह कार्य हो सकता है। यही हेला मारकर करना है।

तुमने लिखा कि जबरदस्ती खैंच-खैंचकर पावन करनेका मौका है। तभी तो पतित पावन नामकी सार्थकता है।

उत्तर---पतितपावन तो भले कोई न कहे, यह तो कहनेवालेकी मर्जीकी बात है, वे तो अपने कानूनके अनुसारसे सब कुछ करते हैं। परमात्माको पतित पावन, दीनदयालु आदि नामोंसे पुकारकर उनसे प्रार्थना करना उत्तम है। इसमें कोई दोष नहीं है। इसमें भी प्रेम और करूणाभाव है परन्तु इसमें भी उत्तम तो यह है कि उससे कुछ भी न कहे किसी प्रकारकी खुशामद न करे, उनकी गर्ज हो तो आवें, नहीं तो उनकी मर्जी।

(१३)

रतनगढ़ श्रावण कृ० ४। १९८२

परम पूज्यवर,

सादर प्रणाम। .... मैं चुरूसे रतनगढ़ जा रहा था। रास्तेंमें अचानक देपालसर स्टेशनपर उतरनेका विचार हो गया। वहाँसे थेलासर गया। थेलासरमें मेरी मौसी रहती हैं। राँचीसे आयी हैं, एक बार चुरू भी हो आई है ऐसा कहती थीं। बड़ी श्रद्धालु और अनुरागिणी हैं उनकी आज्ञासे मुझे थेलासरमें ठहरना पड़ा, वहाँ मामूली तौरपर सत्संग भी हुआ। मौसीने, बड़ी ही विनयके साथ आपको प्रणाम लिखवाया है। उसकी चुरू आनेकी बड़ी इच्छा मालूम होती है। परन्तु घरवालोंकी आज्ञा नहीं मिलती। उनकी इच्छा है कि आपका स्वास्थ्य ठीक होनेपर यदि संभव हो तो एक दिनके लिये थेलासर पधारना चाहिये। वह स्थान अभी सत्संगका प्रेमी नहीं है। वहाँपर भी भगवत प्रेमका विशाल वृक्ष तैयार होना चाहिये। उनके अनुरोधके अनुसार मैंने निवेदन कर दिया है। जैसा जँचे वैसा किया जाना चाहिये।

मेरे पत्रके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें तो हुई परन्तु पूरी बातें न हो सकीं। बहुत-सी बातें पूछने और जाननेकी कल्पना हुई थी। बहुतसे प्रश्नोत्तर करनेका विचार था परन्तु सन्मुख होनेपर सारी बातें भूल-सा गया। यह तो सुना है कि प्रेमास्पदसे दूर रहनेपर अनेक बातें प्रेमी पूछना

चाहता है। अनेक प्रकारकी भावनाएँ आती हैं परन्तु सामने आनेपर, मिलजानेपर उसे इतना सुख मिलता है कि वह आत्म–विस्मृत–सा हो जाता है। अपने आपके विस्मरणमें प्रश्नोंका स्मरण कैसे हो सकता है। गहरे सुखसागरमें डूबा हुआ ऊपरकी बातोंका क्यों ख्याल करें। परन्तु यह बातें तो 'प्रेमीकी' हैं। सच्चा प्रेमी ही, प्रेमास्पदके मिलनमें इस प्रकारके मनोमुग्धकारी आनन्दके श्रोतमें बह जाता है। मैं तो 'अप्रेमी' होकर, प्रेमीके इन पवित्र भावोंकी तुलना अपने भावोंके साथ कैसे कर सकूँ। पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भले किसी भी कारणसे क्यों न हो मैं उस समय पूछनेकी बहुत–सी बातोंको भूल गया था। इसमें सन्देह नहीं कि बहुतसे मूक प्रश्नोंका उत्तर बिना पूछे ही मिल गया। हो सका—प्रभुकी प्रेरणा हुई तो कुछ समयके बाद फिर चुरूकी तरफ आनेका विचार है। इस बारके थोड़ेसे संगसे विलक्षण लाभ हुआ है। कई प्रकारकी कमजोरियाँ मिट गयी हैं। प्रेमका वास्तविक स्वरूप प्रतीत हुआ है। विश्वास, भरोसा और निश्चय मानों अटल हो गया है। पहले पत्रके समय भी इन वस्तुओंका अभाव नहीं था। उक्त पत्रोंमें भी प्रेम भावको ओछा करनेवाली स्वार्थ भरी खुशामद नहीं की गयी थी परन्तु प्रेमकी अधीरताने—जो स्वाभाविक होती है—उस प्रकारके शब्द लिखनेके लिये बाध्य कर दिया था। प्रेममें कहीं विनय होती है तो कहीं शुद्ध अभिमान। कहीं खुशामद की–सी बातें की जाती हैं तो कहीं रूखा–सूखा–सा कठोरपन और अवहेलना–सी होती है। पर इन सारे भावोंके अन्तरमें व्यापक भाव एक ही रहता है। उसका नाम है 'अनिर्वचनीय'। नहीं समझता कि इस भावसे मैं किसी भी अंशको अन्तःकरणसे स्पर्श कर सका हूँ या नहीं। इसकी परीक्षा प्रेमास्पद कर सकता है। रोगीको अस्वथतामें स्वस्थता और स्वस्थतामें अस्वस्थताका भ्रम हो सकता है। परन्तु निपुण चिकित्सक उसकी प्रत्येक अवस्थासे पूर्ण परिचित रहता है। साधकके अन्तरकी प्रत्येक भावना और चित्त तरंगकी प्रत्येक क्षुद्र–से–क्षुद्र लहरीको अन्तर्यामी प्रभु जानता है। साधक तो बस प्रभुके इंगित अनुसार चलता रहे। यह उपदेश अबकी बार प्राप्त हुआ। तबसे अब न आशा है, न निराशा। न इच्छा है, न अनिच्छा। न बन्धका पता है, न मोक्षकी अभिलाषा; बस !

"अब तो बन्ध मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है, मुक्ति चरणसे झरती है।।

पहले पत्रोंका उत्तर विस्तारपूर्वक मिलना चाहिये। मेरे साथ–साथ अन्य साधकोंको भी इससे लाभ हो सकता है।

निरन्तर ध्यानकी स्थितिमें बड़ी उन्नति हुई है। अधिक विस्तारसे लिखनेकी क्या आवश्यकता है।

हनुमान

(१४)

आसोज सुदी १२ सं० १९८२

श्रीहनुमान प्रसाद सेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम बंचना।

पूज्य व्यासजी महाराज सेती इस बार बहुत बात हुई। स्त्री स्वतन्त्रताके ऊपर चर्चा हुई। शेषमें इस तरह, स्थिर, समझा गया कि यूरोपकी तरफकी स्त्रियों और बालकोंकी अधिक स्वतंन्त्रतासे भी हानि है। और अपने समाजकी तरहसे स्त्रियाँ और बालकोंको मूर्ख और परतन्त्र रखनेसे भी हानि है।

स्त्रियोंकी स्वतंन्त्रतासे यूरोपमें दिन–पर–दिन तलाक मामला बढ़ रहा है। स्त्रीसे पतिको, पतिसे स्त्रीको सुख नहीं, पुत्रसे पिताको तथा पितासे पुत्रको सुख नहीं। केवल स्वार्थका–सा सम्बन्ध है। अपनी स्त्रियोंमें इतनी मूर्खता है कि बहुत–सी स्त्रियोंको १०० तक गिनना भी नहीं आवे। एक हजार तक बहुत कम लुगायां (स्त्रियाँ) गिन सकती हैं। लाख कितना हुवै जाय जाणै ही नहीं। विशेष करके अपने गहनोंका ही पता रहता है। लुगायांने हिन्दी तथा महाजनी पढ़नी चाहिये, जिस सेती शास्त्रको तथा घरको ज्ञान होय जावे। जिस अंशमें परतन्त्रता रहनी चाहिये उस अंशमे तो उनकी स्वतंन्त्रता है। यानी पतिसेवा, घरके कार्य आदिमें तो उनकी स्वतंत्रता है। करै तो खुशी नहीं करै तो खुशी। जिसमें स्वतंन्त्रता रहनी चाहिये, उसमें परतन्त्रता है यानी पढ़ना, धर्मशिक्षा और व्यवहारमें।

गोरक्षाको उपाय तो है। बाकी लोग हरामी हो गया जणै गोरक्षा किस तरह हुवै, गौशाला सेती होवै या बात तो कही जावै नहीं। बाकी जितने लाभ होनी चाहिये उतनी होवै नहीं। गोरक्षामें खेतीकी जरूरत है। खेती बिना गोरक्षा होवै नहीं। आदमी राख्यां खर्चो पोसावै नहीं, खैती करै, कम खर्च मांय काम चलावै। दूध भी बेचे। गोचर भूमि छोड़े तो गोरक्षा होणे सकै छै।

जयदयाल गोयन्दका

(१५)

ज्येष्ठ वदी १५। सं० १९८३

श्रीहनुमान प्रसाद सेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम बंचना।

मासिक पत्र 'कल्याण'के बारेमें समाचार निगह किये। गोरखपुरवालोंसे जगह तथा टाइपके लिये कहा गया है। इस कामकी चेष्टा हो रही है। आज दिन मकान लेनेकी निगह करनेके लिये श्रीलक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया और श्रीघनश्यामदासजी नूवाला गोरखपुर गये हैं। सो तुम्हारे निगह रेवे गोरखपुरमें प्रबन्ध नहीं होवे उतने दिन बम्बईमें ही छपानेकी चेष्टा करनी चाहिये और मासिक पुस्तकके रूपमें नहीं निकालकर मासिक पत्रके रूपमें निकालनेमें सुभीता लिखा। सो ठीक है। मासिक पत्रके रूपमें ही निकालना चाहिये। और सरकारकी आज्ञा मिल गयी होगी। बैरो माँड़ना चाहिये। और तुम्हारा शरीर ठीक लिखा सो ठीक है। और सत्संगकी कमेटीको [illegible]लती माँडी तो बहुत आनन्दकी बात है और जसीडीहमें मेरे पास सत्संगवालोंके नाम लिखनेकी माँडी सो ठीक छै। निगह करनी चाहिये। (१) ज्वाला प्रसादजी कानोड़िया (२) महादेव लालजी लोहिया (३) जीतमलजी सराफ (४) बिहारी लालजी झुनझुनवाला (५) मदनलालजी चूड़ीवाले (६) महादेवलालजी पोद्दार (७) पं० लाधूरामजी (८) लक्ष्मीनारायणजी गोरखपुर (९) हरकिशनदासजी नूवाला (१०) रामदासजी बाजोरिया। ऊपर लिखे मुजब सत्संगवालोंका नाम याद है जिका लिख्या छे। भाई हनुमान प्रसादसे जयदेवका फेरूँ प्रेम सहित राम राम बंचना। और बहुतसे आदमी सत्संगवाले कलकत्ते पीछे चले गये। और बम्बईमें भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग और श्रीगीताजीके प्रचारकी विशेष कोशिश करनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की भक्तिको तथा धर्मको और विद्याको प्रचार जिस प्रकार संसारमें फैले उसके लिये अपना तन, मन, धन अर्पण कर देना चाहिये। और सगली बात नहीं होवे तो केवल श्रीनारायणदेवकी भक्ति निष्काम प्रेमभावते संसारमें बहुत जल्दी फैल जावे तो सब कुछ फिर आप ही हो सकता है। भक्तिका भी पूर्ण अंगमें प्रचार नहीं होवे तो केवल अर्थ और भावसहित श्रीगीताजीका प्रचार भी काफी है। इसीलिये संसारमें अपना जन्म हुआ है। इस माफिक माननेसे श्रीगीताजीका प्रचार ज्यादा हो सकता है और मरैको भी कोई निगह होवे तो युक्ति लिखनी चाहिये। ऊपर लिखे मुजब संसारमें प्रचार करनेके लिये किस रूपमें चेष्टा की जावे भक्ति और धर्मका

बहुत जोरसे प्रचार किस प्रकारकी चेष्टा करनेसे होवे।

जयदयाल गोयन्दका

(१६)

गोरखपुर आ० शु० १ सं० १९८४

परम पूज्यवर,

हृदयसे प्रणाम। जसीडीहकी अभूतपूर्व घटनाके सम्बन्धमें हमलोगोंके पहुँचनेसे पहले ही कलकत्तेसे ही समाचार आ गये। यहाँके लोगोंने उक्त घटना जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता दिखलायी। कल प्रातः काल तो विशेष कुछ न कहकर केवल साधन पर जोर दिया गया। रातको संकोच रहनेपर भी विवश होकर कितनी ही बातें कहनी पड़ी। कलकत्तेमें बड़ा आन्दोलन हो गया दीखता है। सुननेमें आया है कि वहाँ श्रीहीरालालजीने भवनमें व्याख्यान देते हुए इस बातको कह दिया है।

भगवान जैसा कुछ करना कराना चाहते हैं वही सर्वथा न्यायसंगत है।

यहाँ लोगोंने कहा कि हमें भी दर्शन होंने चाहिये, इसपर कहा गया कि जिनके बल और प्रेमके प्रतापसे दर्शन हुए हैं उनसे ही आपलोग भी दर्शनके लिये प्रार्थना कर सकते हैं।

शेषमें उनसे यह कहा गया कि यदि आप लोग जसीडीहकी आज्ञानुसार साधन करनेके लिये तैयार हों तो वहाँ लिखकर साधनका क्रम पूछा जा सकता है परन्तु आप लोगोंको बड़े-से-बड़े साधनके लिये तैयार रहना चाहिये, जो साधन वे बता दें वही करना पड़ेगा, ऐसी धारणा कर लेनी चाहिये। इस बातको लोगोंने प्रायः स्वीकार किया, स्त्रियोंकी ओरसे भी कहा गया कि हम भी तैयार हैं, हमारी बात पीछे न रह जाय। इसीके अनुसार उन सबकी ओरसे यह पत्र आपकी सेवामें लिखा जाता है अब आपके जचे जैसी बात लिखनी चाहिये जिसमें उन सबको बहुत शीघ्र परमात्माके दर्शन हों ऐसा तीव्र साधन बतलाना चाहिये। फिर पत्र लिखनेका विचार है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार बराबर मिलने चाहिये।

अनुगत--हनुमान

(१७)

गोरखपुर, आश्वि० शु० २। १९८४

परम पूज्यवर,

हृदयसे प्रणाम। पत्र दिया सो पहुँचा होगा। लोगोंका संतोष हो

तथा उनका शीघ्र भला भी हो ऐसा उपाय मैं तो उन्हें केवल यही बतला सका हूँ कि वे आपकी बात मानकर साधन करें। इसीके अनुसार उन लोगोंके कहनेसे कल एक पत्र आपकी सेवामें भेजा गया है, उस पर उचित समझा जाय वैसा ही लिखना चाहिये। सर्वसाधारणके सामने ऐसी अलौकिक घटना हो जानेसे बड़ा हल्ला–सा मच गया है। सम्भव है कि कुछ लोग इसमें मेरा कोई प्रभाव समझें या बड़ाई करें, जैसे कि लक्षण दिख रहे हैं। वास्तवमें मुझे इसमें कोई भी अपनी बड़ाईकी बात नहीं दिखती। इससे मैं तो जो कुछ उचित समझता हूँ सो लोगोंसे कहता ही हूँ पर यदि लोग किसी तरहसे इस बातका यथार्थ तत्त्व जान जायँ कि इस घटनामें मेरा कोई बल, सामर्थ्य या प्रेमकारण नहीं है, इसमें केवल भगवत्कृपा ही प्रधान कारण है तो संभवतः बड़ाईका कलंक दूर हो सकता है। यदि लोगोंके पूछने पर मैं कोई बात नहीं कहता तो वे दुखित होते हैं और समझते हैं कि यह बात छिपाता है। इधर कहनेमें अन्तःकरण और वाणीमें संकोच होता है तथा उन लोगोंको या मुझको कोई लाभ नहीं दिखता। इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये ? यदि इतना जोरका आन्दोलन न होता तो इतनी बात नहीं होती। परन्तु प्रभुकी सदिच्छानुसार जो हुआ सो बड़े ही मंगलके लिये हुआ है, इसमें कोई भी शंका नहीं है। इस सम्बन्धमें अन्तःकरणमें जो भाव उठते हैं सिर्फ वह आपकी सेवाके लिखे गये हैं।

दोनों समय संध्या करने और गायत्रीकी एक–एक माला जप करनेके लिये यहाँ लोगोंसे कहा है, बहुतसे लोग करने लगे हैं। कल्याणमें भी स्लिप लगा दी गई है।

आपके स्वास्थ्यके समाचार लिखना चाहिये और जचे सो लिखना चाहिये। श्रीज्वालाप्रसादजी, हनुमानदासजी और हाजरवालोंसे सप्रेम यथायोग्य। पूज्य श्रीमाजीसे सादर प्रणाम। आनन्दमय ! आनन्दमय ! आनन्दमय !

अनुगत—हनुमान

(१८)

यह पत्र श्रीभाईजीके हस्ताक्षरोंमें दिया जा रहा है—

संख्या—६

ॐ ॥श्रीपरमात्मने नमः आश्विन सुदी ७।२४ सोमवार

पूज्य चरणोंमें हार्दिक प्रणाम।

कार्ड मिला था, स्वास्थ्य अभी तक ढीला ही चल रहा है, क्या औषधसे कोई लाभ प्रतीत नहीं हुआ? फिर वजन लिया गया हो और लिखवाना न हो तो किसीसे कहकर लिखवाना चाहिये।

भाई श्री ज्वालाप्रसादजीका पत्र मिला, श्रीगीताजीके छन्दोबद्ध अनुवादकी प्रेरणा मालूम हुई, मेरी तो इस काममें सामर्थ्य नहीं प्रतीत होती। परन्तु आज्ञानुसार एकबार कुछ श्लोकोंका अनुवाद पद्योंमें लिखकर भेजनेका विचार है यदि पसन्द आया तो आगे चेष्टा की जा सकती है। आज्ञाके बलसे शायद काम हो जाय।

गौसीडीमें होनेवाली अनोखी और अलौकिक प्रेमलीलाओंका कुछ कुछ दिग्दर्शन आपके पत्रोंसे हुआ, श्रीराधाकृष्णजीकी अद्भुत और उनका तत्त्व एक तरहसे सराहनीय है। इस समय जिस प्रेमरसमें साथ काम कराया जा रहा है उसमें ऐसा होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। सर्वसमर्थ सब कुछ कर सकते हैं।

२ यहां प्रतिदिन प्रातःकाल ध्यान की बातें होती हैं।
आज प्रातःकाल ध्यान के समय करीब ६।७
मिनट आंखें खुले हुए मोसीजी की तरह से ही श्री
भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। कोई बुलाने
या दर्शन करने की भावना भी जागृत नहीं हुई थी
परन्तु बड़ा ही विलक्षण आनन्द रहा। बुलाने की
इच्छा तो नहीं होती परन्तु अब ऐसा विश्वास हो जाता है
कि गुरुचरणकृपा से जब इच्छा हो तभी
भगवान् के दर्शन और उनसे वार्तालाप हो सकते हैं।
कल दिन में एक बार आपके चरणोंमें
आने की फुरणा हुई थी कारण कुछ पता नहीं।
मुझे कभी कोई स्वप्न नहीं आते। सालभर में
शायद एक दो स्वप्न आते हों। परन्तु
पहलों रात को स्वप्न में आपके दर्शन हुए
मानों हैं तथा सम्बन्धी लोग आपके
साथ कहीं पर गये हुए हैं पूरी बातें स्मरण
नहीं है।

(१६)

गोरखपुर, आश्वि० शु० ११। १९८४ वि०

परम पूज्य !

सादर प्रणाम। श्रीरामनरसिंहजी जिस पद्धतिसे बैठे और

तप किया, यह बड़ी ही मार्केकी बात है। परन्तु इस सम्बन्धमें मेरे अन्तःकरणमें कुछ स्फुरणायें हुई हैं उन्हें सरल भावसे आपके चरणोंमें निवेदन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। ये स्फुरणाकी बातें मैं कोई सलाह या सम्मतिके रूपमें नहीं लिख रहा हूँ। केवल प्रार्थनाके रूपमें अन्तःकरणकी स्फुरणा जना रहा हूँ। श्रीरामनरसिंहजी बड़े श्रद्धालु और सच्चे मनुष्य हैं, उनपर भगवत्कृपा है। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं है। स्फुरणा आगेके लिये हुई है। यदि देशमें यह बात फैल गई कि तीन दिनोंतक उपवास तथा मल-मूत्र त्यागका निरोध करनेसे भगवान् मिल सकते हैं तो इसपर बहुतसे लोग स्त्री-पुरूष तैयार हो सकते हैं। इस प्रकारका भगवान्‌का कानून बन जाय तो बड़े ही आनन्दकी बात है। जीवोंका जितनी बड़ी संख्यामें और जितना जल्दी उद्धार हो उतनी ही आनन्दकी बात है। परन्तु यदि सबके लिये ऐसे कानूनमें कुछ देरी हो और इस मार्गका अनुकरण करते रहे तो उसमें कहीं-कहीं पर कुछ प्रमाद और कुछ मार्गमें रुकावट आनेकी संभावना है। इस तरह बैठनेवाले लोगोंके नहीं सफल होनेसे तीन बातें हो सकती हैं-

(१) विश्वास कम हो जाना।

(२) जिन लोगोंको इस तरहका अभ्यास नहीं है, उनके भूख-प्यास परित्याग करनेसे संभवतः कुछ बीमार हो जाना और इसके परिणाममें उनके घरवालोंका तथा फलतः पब्लिकका बिगड़ना, द्वेषादि होना। अखबारोंमें आन्दोलन होना।

(३) कुछ मिथ्यावादियोंका ढोंग रचकर कह देना कि हमको दर्शन हो गये और ऐसा कहकर लोगोंसे पुजवाना और ऐसा होनेसे इस कामका महत्त्व लोकदृष्टिमें कम हो जाना।

एक बात और भी है, लोगोंको, विरोधियोंको निन्दा करनेका मौका मिलना, उनके उद्वेग होना जिससे उनके संभवतः नुकसान होना। मेरे अनुमानसे बहुतसे स्त्री-पुरुष इस कामके लिये तैयार हो सकते हैं। ऐसी अवस्थामें किस तरहसे क्या करना चाहिये ? लोगोंको क्या कहना चाहिये ? यह बात जैसे विचारे हुए हैं वैसी तो मेरे कल्पना भी होनी कठिन है। अतएव मैं कुछ भी लिख नहीं सकता। मेरा यह लिखना कोई सलाह, परामर्श, अनुरोध या ऐसा करनेके लिये प्रार्थनाके रूपमें नहीं है। केवल प्रार्थनापूर्वक अन्तःकरणकी स्फुरणाओंको जता देना है। न तो मुझे किसी कार्यपर शंका है और न अविश्वासका ही कहीं अंश है, जो होता है, जो होगा सो आपके द्वारा परम पुनीत और जीवोंका कल्याणका ही कार्य होगा।

इस विषयमें तनिक–सा भी सन्देह कल्पनामें भी नहीं है। मैंने तो केवल हृदयकी यह स्फुरणा मात्र लिख दी। स्वास्थ्य ठीक न हो तो इस पत्रका उत्तर लिखवानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।

यहाँ वाले बहुत कहा–सुनी कर रहे हैं। मैं तो उन्हें सीधी–सी बात जो मेरे जची हुई है सो बता देता हूँ। **'एक भरोसो एक बल एक आश विश्वास'**——और क्या कहूँ ? **'मोहि तो सावनके अंधहि ज्यों सूझत हरो हरो'**——इसी बातपर अर्जुनदासजी आपके पास आए हैं। यदि वे सच्चे मनसे शरण हैं तो उनके काम होनेमें क्या सन्देह है। सन्मुख हो जानेपर स्वाभाविक ही भला होता है क्योंकि यह संग ही अमोघ है।

अनुगत——हनुमान

(२०)

बहुतसे पाठक पूज्य श्रीसेठजीके हस्ताक्षर देखनेके लिये उत्सुक होंगे। इसलिये एक पत्र उन्हींके हस्ताक्षरोंमें दिया जा रहा है——

उमेद लिखी सो भगवान्की दया छे तुमारे प्रसन्नताका, आनन्दका समाचार निगे कर्‌या भोत आनन्दकी बात छे। और मेरे पास आनेकी एक दिन फुरना हुई सो अच्छी छे तुमारे प्रेमको कारन छे। स्वप्नमें मेरे सेती मुलाकात हुई। कई आदमी एक सागे दूसरी जागा गया सो भी तुम्हारे प्रेमको कारन समजनो चाये।

श्रीरामनरसिंहजीके तपके विषय माँय तुम लिख्यो सो ठीक छे बाकी तीन दन तक मलमूत्रको अवरोध और नींद, भूख, प्यासके त्यागसे भगवान मिलनेकी कोई बात किसीके लिये भी नहीं हुई और होनेकी उम्मेद भी नहीं। इसलिये तुम्हारे मन मांय फुरना हुई तथा शंका हुई जेंको विशेष जवाब देनेकी जरूरत नहीं है। यदि ३ दिन मांय तुमारी समझके अनुसार बात हुवे ही, जणे तो तुमारी शंका बहुत ठीक थी। ३ दिन एक तार तेल धारावत् श्रीभगवान्को ध्यान होनेसे श्रीभगवान्का दर्शन होने सके छे या बात थी जिकी अब भी छे। विक्षेप नहीं हुवणो चाइजै। अन्न–जलपान करनेकी मनाई नहीं है और भी कोई क्रियाके लिये मनाई नहीं है। ध्यानकी गाढ़ स्थिति रेते हुए करने सके तो करतो रेवो भूख पिपासा, नींद आवे ही नहीं ध्यानकी तृप्तिके कारन जिकी उत्तम छे। बलसे इनको त्याग उत्तम नहीं है। श्रीरामनरसिंहजीके तपके विषयकी बात तथा उसके फलकी बात बनाय कर ज्वालाप्रसादजी लिखी हुसी उससे पूरी बात समज मांय आई हुवे तो कल्याण मांय छापने सको छो बाकी छापनेके पूर्व मेरेको तथा श्रीज्वालाप्रसादजीको उसके प्रूफकी नकल भेजकर सुधार करा लेनी चाये। कारन तुमों रूपकार था नहीं इसलिये कोई भूल नहीं छप जाणी चाये।

अर्जुनदासकी बात निगे करी उनको जसीडीह आनो बोत आनन्दकी बात छे तथा उनके प्रेमकी बात छे। शरण होनेके योग्य तो श्रीनारायणदेव ही है और साधनके लिये उनकी सगली बात बताई गई छे बाकी साधन मांय फायदो मालूम देवे छे और उसको लड़को रतनगढ़ ऋषिकुल सेती निकालनो नहीं चाये। इस माफक मैं राय देई बाकी उनके जची नहीं। इतने मांय तुमो समज सको छो। मेरी बात वे कठे तांई काम मांय लाणे सके छे।

श्रीरामेश्वरलालने भी हमां तो साफ लिखी हुई थी लड़कांने ऋषिकुल मांय राखनेके लिये तुमां निज मांय जाय कर समजा कर आवो बाकी उनके भी जची नहीं। साधारण बात भी लोगोंके जचणी मुश्किल छे। व्योहार सुधारनेकी बात भी बहुत दफे आगे कही बाकी अच्छी तरह जचे नहीं।

थोड़ी जची जिके मांय सुधार भी हुयो, लाभ भी हुयो, व्योपार भी सुधरयो, रूजगार भी ठीक हुयो, भगवत् विषय मांय भी फायदो हुयो। आगीने सगले समाचार गोरखपुर वालोंने साफ समझाकर केया गया छे।

(१) हृदयमें मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ है वे तुम्हारे साथ जावेगी। उनको सुधार करनो चाये याही तुमारी दुकान छे। इसके सुधर्‌यो तुम्हारो सुधार छे। इसको उपाय भी बतायो गयो छे---३ घंटा ध्यान सहित एक तार जप, १ घंटा सत्संग, १ घंटा सत्शास्त्रोंका अभ्यास, प्राप्त होने पर लोक सेवा।

(२) बाहर सब जगत् या व्यौपार भगवान्‌की दुकान समझकर अपनेको नौकर समझकर बहुत कमती खर्च मांय आपणो काम चलाणे माफक प्रसाद ग्रहण कर काम करनी चाये। व्यौपारमें झूठ, कपटको एकदम त्याग करनो चाये फेरूँ सब आपेई ठीक होने सके छे। लोभ त्यागसे सब काम होने सके छे। जितने लोभ नहीं छूटे ऊपर वाली बात छोड़नी चाये, सभी कुछ भगवान्‌को समजनो चाये।

जयदयाल गोयन्दका

(२२)

गोरखपुर, कार्तिक १४। १९८४ ई०

श्रीपूज्यचरण,

हृदयसे प्रणाम।

गत शुक्रवार (कार्तिक कृष्ण ११। ८४) को मैं यहाँ पहुँच गया था। आपकी आज्ञानुसार प्रश्नोंकी उत्तर जाननेकी भावना मनमें थी। कार्तिक कृष्ण १२। ८४, शनिवारको प्रातःकाल करीब साढे पाँच बजे, स्नान, सन्ध्याके उपरान्त मैं एकान्तमें बैठा था। बैठे-बैठे नींद या बेहोशी-सी हो गयी। उसमें श्रीभगवान् दीख पड़े। उन्होंने मानो इस भावके शब्द कहे---

(१) जिन सात विषयोंके प्रचारकी बात तुम लोगोंने तय की है, उनका प्रचार जितने अधिक देशों और अधिक लोगोंमें हो, वैसी चेष्टा करो। लोगोंको समझा दो कि इसके माननेसे ही कल्याण हो सकता है।

(२) धर्मग्रन्थोंमें दूसरा धर्म माननेवालोंके लिये किसी धर्मग्रन्थका नाम न लेकर गीतोक्त भक्तियुक्त निष्काम कर्मका भाव माननेके लिये कहो।

(३) एक बार जिसने मेरा नाम ले लिया, उसका भला होनेमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये।

(४) मेरी प्रेरणाके अनुसार कितना प्रचार हुआ है और हो रहा है,

उसका पता पीछे लगेगा।

(५) मेरे मिलनेकी इन बातोंको प्रकाश करनेसे हानि है। इतनी बातें सुननेके बाद मुझे चेत हो गया। ऊपर जो बातें लिखी हैं, शब्द तो कुछ दूसरे भी थे, पर भाव वही है।

इसके पश्चात् रविवारको प्रातःकाल श्रीरामनरसिंहजी और श्रीघनश्यामदासजी आ गये। इन लोगोंसे मेरे आनेके बाद जसीडीहमें जो बातें हुई, उनकी चर्चा हुई। रविवार था, अतः दिनमें शहर जाना हुआ और वहाँ पर उन्हीं सात बातोंको उपस्थित स्त्री–पुरुषोंको समझाकर कुछ कहा गया। वहींपर श्रीरामनरसिंहजीने भी थोड़े शब्दोंमें बहुत भावकी बातें कहीं। शहरमें ही प्रायः शाम हो गयी।

आज सोमवार, प्रातःकाल करीब साढ़े छः बजे ध्यानके लिये (बीचवाले बड़े कमरेमें) बैठे थे। आपकी आज्ञानुसार एक बार भगवान्‌का स्मरण करनेका विचार एकान्तमें था, परन्तु न मालूम क्यों पहलेसे ही ऐसी प्रेरणा होने लगी थी——इसी समय स्मरण किया जाय। तदनुसार प्रश्नोंका उत्तर जानने और आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये श्रीभगवान्‌का स्मरण और आह्वान (गीता ४–७, ८) किया गया। थोड़ी ही देरमें भगवान् वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। लोगोंको ध्यानमें आज विशेष शान्ति मिली। श्रीहरिकृष्णदासजी और चेतरामजीके अच्छा ध्यान हुआ। श्रीदुजारीजी, जो ध्यानके लिये आपसे उस दिन प्रार्थना कर रहे थे, आज ध्यानमें उनको बड़ा आनन्द रहा। उन्होंने कहा कि मुझे आज ऐसा ध्यान होनेकी आशा नहीं थी।

श्रीघनश्यामदासजीको आँख खोले हुए और मूँदे हुए प्रकाश अत्यधिक मालूम हुआ। उनकी आँखें डबडबा आयीं और उन्हें रोमाञ्च भी हुआ श्रीरामनरसिंहजीको जसीडीहकी भाँति ही आँख मूँदे हुए उनसे कहा गया कि प्रत्यक्षकेसे भावको छोड़कर प्रत्यक्ष मानो और चरणस्पर्श करनेकी चेष्टा करो। परन्तु उन्होंने कहा——मुझे तो मनकी दृढ़ कल्पना ही मालूम होती है। आँखें अधिक देर खुली नहीं रहती, आपसे आप मूँद जाती हैं, पीछे उनसे बात करनेपर मालूम हुआ कि उस समय उनके समझनेमें कुछ भूल रह गयी थी। लोगोंके उठ जानेके बाद श्रीरामनरसिंहजी और श्रीदुजारीजी बहुत देरतक ध्यानमें बैठे रहे।

भगवान्‌से जिन चार बातोंके पूछनेकी मनमें भावना हुई थी वे

इस प्रकार है—

(१) आपका स्वरूप ही जयदयालजीका स्वरूप है, इसमें क्या भाव है ?

(२) बीस वर्ष पूर्व प्रेरणा करनेपर भी सन्तोषजनक कार्य क्यों नहीं हुआ ?

(३) नामका प्रचार किस तरह किया जाय ? क्या सन्यास लेनेसे अधिक प्रचार हो सकता है ?

(४) किस नामका प्रचार किस तरह किया जाय ?

इन प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित मिला—

(१) इस सम्बन्धमें जयदयालसे ही पूछो, वही बता सकता है।

(२) कल ही कहा था—कार्यका पता पीछे लगेगा। डाले हुए बीजोंका विस्तार फल लगनेपर मालूम होगा। असन्तोष मत करो, कार्य करो।

(३) कलके कहे अनुसार जितना अधिक लोगोंमें प्रचार कर सको, उतना करो। स्थान–स्थानपर कीर्तन होना बहुत अच्छा है। संन्यासकी अभी आवश्यकता नहीं, आगे चलकर विशेष लाभ हो सकता है।

(४) कोई खास नाम नहीं है, मेरे भावसे कोई–सा भी नाम मनुष्य ले सकता है।

इसके बाद घनश्यामदासजीके सम्बन्धमें तो मेरे मनमे कोई भावना नहीं हुई। रामनरसिंहजीके सम्बन्धमें भी मेरे मनमें कोई प्रार्थना करेनकी भावना तो नही हुई। केवल आपके प्रेरणानुसार साधारण भावना मनमें हुई, जिसका उत्तर तुरन्त यह मिला कि इससे दृढ़ निश्चय होनेसे हो सकता है।

इसके बाद इतना और कहा कि कलके संकेतसे प्रश्नका उत्तर दे दिया गया था। आज फिर स्मरण किया, इसलिये आना हुआ। परन्तु मुझे बुलानेके भावसे ऐसे स्मरण नही करना चाहिये। यह नीचा भाव है। उस दिनका संकेत तूँ समझा नहीं। उचित समझनेपर हम स्वयं आ सकते हैं। इन सब बातोंका प्रकाश करनेमें हानि है। इतना कहते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। कोई आध घंटेतक दर्शन होते रहे। यही आजकी घटना है।

पहले प्रश्नको प्रेरणा और उसका उत्तर दोनो ही अद्भुत है। इस सम्बन्धमें मेरे विश्वासके अनुसार जो बात मेरी समझमें आयी, उसका खुलासा कभी रूबरू मिलनेपर हो सकता है। इस समय आपसे कुछ पूछनेका मेरा आग्रह नहीं है। एक बार तो इस घटनाको लेकर स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित होनेका विचार हुआ था, परन्तु पीछेसे यही ठीक समझा कि

रजिस्ट्री चिट्ठीके द्वारा ही यह विषय लिखकर भेज दिया जाय। भगवान्‌की प्रेरणा और आपकी इच्छाके अनुसार इस विषयको आप जितना गुप्त रखना या प्रकाशित करना ठीक समझें, वैसा कर सकते हैं। मेरी समझसे तो अभी इसका प्रकाश न होना ही भगवान्‌की प्रेरणा है।

सात बातोंके सम्बन्धमें मेरे ऐसी स्फुरणा हुई कि इनके सम्बन्धमें तीन–चार पृष्ठोंका एक लेख लिखा जाय, जिनमें सात बातोंका खुलासा हो और उस लेखकका बंगला, मराठी, गुरुमुखी, गुजराती, तमिल, उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद करवाके लाखोंकी संख्यामें ट्रेक्ट (पैंमफ्लेट) छपाये जायँ और वे बहुत कम मूल्य या बिना मूल्य भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें और इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशोंमें भी प्रचारित किया जाय।

भारतके और विलायतके प्रायः बहुत–सी भाषाओंके पत्रोंमें भी प्रकाशित करवानेकी चेष्टा की जाय तो बहुत लोगोंके पास इस सन्देशके पहुँचनेमें सुगमता हो सकती है।

सम्भवतः इस काममें आरम्भमें दो हजार रुपये अन्दाज खर्च करने उचित है। इस सम्बन्धमें आपकी जो आज्ञा हो सो लिखनी चाहिये। आपकी आज्ञानुसार कार्य आरम्भ करनेका विचार है और कोई बात इस सम्बन्धमें जचे सो लिखनी चाहिये। स्वास्थ्यके सम्बन्धमें और यहाँ आनेके सम्बन्धमें जैसा जचै सो लिखना चाहिये।

अनुगत——हनुमान

(२३)

भाई हनुमान प्रसादसे जयदेवका प्रेमपूर्वक राम राम। तुम्हारे भेजे हुए लेख और पत्रादि मिल गए हैं। गौरीशंकरजीके लेखका जबाब लिखकर साथ ही वापिस भेजनेका विचार है।

महावीरप्रसादजी यहाँ आये हुए थे। उनसे दो रोजतक सब बातें हुईं। कलकत्तेमें घनश्यामदासजी बिड़लासे भी सब बातें हुईं। उन्होंने जो कुछ पूछा उसका जबाब स्पष्ट और सच्चा दिया गया। पर सुधारक उसका दुरुपयोग कर रहे हैं, इन लोगोंकी क्या नीति है कुछ समझमें नहीं आती।

ईश्वर दर्शनकी बात इन लोगोंको बेढ़ब अखरती है। न्यायका परिणाम बुरा नहीं होना चाहिये। लोग उसका चाहे जितना दुरुपयोग करें आखिर सत्य सत्य ही रहेगा और झूठ झूठ ही रहेगा।

मशीन वगैरह महावीरप्रसादजी खरीदकर ले गये होंगे। भक्तांकका

कार्य शुरू हुआ होगा। मेरी समझमें तो भक्तांक १०,००० ही छापा जाता तो अच्छा होता १२,००० यदि शीघ्र नहीं बिका तो रुपया अटक जायगा। मेरा स्वास्थ्य उसी तरह चल रहा है, किसी तरहकी नई शिकायत नहीं है।

घनश्यामके घरवाले अब प्रसन्न हो गये हैं। उनको सदा ही आपसमें प्रेम रखना चाहिये। .... इस विषयमें मेरे पहले पत्रका अर्थ जो तुमने समझा वह ठीक ही था।

जयदयाल गोयन्दका

(२४)

भाई हनुमान प्रसादसे जयदेवका प्रेमपूर्वक राम राम।

तुमने लिखा गोरखपुरमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है। तथा कल्याणमें सम्पादनका कार्य करनेकी इच्छा भी नहीं है सो ठीक है। इस विषयमें कई वर्षोंसे तुम बहुत दफे कहते आ रहे हो किन्तु दूसरा कोई मन माफक सम्पादक न मिलनेके कारण तथा हम लोगोंके आग्रहके कारण यह काम तुमको करना पड़ता है। तुमने लिखा पूज्य बद्रीप्रसादजी आचार्य यह काम कर सकते हैं किन्तु वे चुरू ऋषिकुलमें कार्य कर रहे हैं वहाँ पर उनकी जरूरत भी है सो ठीक है। किन्तु पूज्य ज्येष्ठारामजी वहाँ आ गये हैं उनके चुरू जानेके बाद पूज्य बद्रीप्रसादजी तुम्हारे पास रहकर संपादनका कार्य उनके जिम्मे लगाकर संपादकमें नाम तुम्हारा रहे और तुम्हारी सलाहसे कार्य वे करते रहें तब तो काम चलनेकी उम्मीद है। संपादकमें तुम्हारा नाम निकालनेसे मेरी समझमें कल्याणके प्रचारमें रुकावट आ सकती है। शायद बंद भी हो सकता है। कल्याणसे संसारमें बहुत लाभ मालूम देता है। व्याख्यानोंकी अपेक्षा लेखोंके स्थाई रहनेसे बहुत अधिक लाभ अनुमान किया जाता है इसलिये कल्याणसे तुम्हारी उपरामता किसलिये होती है कुछ समझमें नहीं आता।

तुमने लिखा आज्ञा देना चाहिये विनयके साथ हाथ जोड़कर आज्ञा चाहता हूँ। इस माफक समाचार तुम्हारे पहले कभी नहीं आये। इस विषयमें तुमने घरसे परामर्श भी नहीं किया, प्रश्न भी नहीं किया किन्तु फिर भी तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हें बिना प्रश्न किये ही अपनी राय देनी पड़ती है। तुम्हारे बिना मुलाकात किये मैं तुम्हें हठात् अपनी जिम्मेवारीका कार्य छोड़नेके लिये तथा अपना नाम कल्याणसे हटानेके लिये कैसे लिख सकता हूँ। विचारने योग्य बात है सो रूबरू मिलनेपर विचार किया जा सकता है।

..............चौथे वर्षका विशेषांक गीतांक निकलनेके बाद आगेके लिये सम्पादकका विचार पीछे किया जा सकता है। .... तुमने व्याख्यान देनेकी अरुचि प्रकट की सो तुम्हारी इस विषयमें बहुत दिनोंसे अरुचि है यह बात हमारे जानकारीमें है किन्तु कल्याणसे संसारमें बहुत लाभ मालूम देता है ऐसा कोई भी दूसरा पत्र नहीं आता है। गीताप्रेससे भी तुम्हारे द्वारा बहुत लाभ है। इन उत्तम कार्योंको छोड़कर तुम्हारे द्वारा संसारमें दूसरे मार्गसे लाभ होना अभी समझमें नहीं आता है इसलिये अभी तुम्हें इन कामोंको छोड़नेके लिये नहीं कहा जा सकता, विचारने योग्य बात है। लाभ समझमें आनेसे इन कामोंको छोड़नेकी राय भी दी जा सकती है।

जयदयाल गोयन्दका

(२५)

गोरखपुर का० कृ० ८, १९८६

परम पूज्यवर (२५ अक्टूबर १९२९)

सादर प्रणाम। .... शारदा बिलके बाबत लिखा सो ठीक है। इस कानूनका मैं बड़ा विरोधी हूँ। केवल कन्याकी आयुकी बातें ही नहीं, वरन् धार्मिक विषयमें कानूनके द्वारा हस्तक्षेपके कारण भी। इस कानूनको रद्द करवाने और आइन्दे इस तरहका कानून न बने इसके लिये जरूरत है, सरकारके मनमें यह जमा देनेकी कि यदि कहीं सरकार किसीको खुश करनेके लिये ऐसा करेगी तो उसकी दशा भी काबुलके अमानुतल्लाकी-सी हो सकती है। कानून तोड़कर जेल जाना और सरकारके विरुद्ध लोकमत जागृत करना ही इसका इलाज है। सुधारक तो चाहते हैं कि ऐसी बातें किसी तरह प्रचलित हो जायँ। इस कानूनके बननेमें यदि सबसे अधिक कोई २–१ कोई दोषी हैं तो मेरी समझमें भारत सरकार है। उसने अपने सब मेम्बरोंसे वोट न दिलवाये होते तथा अपना पक्ष खुले तौरपर इसके पक्षमें जाहिर न किया होता तो यह कानून न बनता। सरकारके दबावसे ही सनातन प्रतिनिधि सभाके सभापति लाहौर-निवासी लाला रामशरणदासजीने एक सनातनधर्मीकी हैसियतसे कौंसिलमें इस कानूनका जोरसे समर्थन किया। अनेक प्रकारके कारण दिखाने और प्रार्थना करनेपर भी वाइसरायने एक-दो सालके लिये इसे स्थगित करना भी स्वीकार नहीं किया। और भी कई ऐसी बातें हैं जो पत्रमें लिखना उचित नहीं है। पर जिनको मैं जानता हूँ ऐसी अवस्थामें इस कानूनका विरोध केवल सामाजिक या धार्मिक दृष्टिसे

करनेपर कोई फल नजर नहीं आता। राजनैतिक दृष्टिसे इसका विरोध जोरदार शब्दोंमें किया जा सकता है और उसीका कुछ फल भी होना सम्भव है। 'कल्याण' इन सब बातोंमें न पड़कर केवल मानवधर्म, सदाचार और भगवद्भक्तिके क्षेत्रमें काम कर रहा है। इसको दूसरे क्षेत्रमें उतारना मेरी समझमें उचित नहीं प्रतीत होता। आज हजारों सरकारी नौकरोंमें इसके द्वारा सदाचार और भक्तिका प्रचार होता है। इसके राजनैतिक क्षेत्रमें आते ही उन सबको अलग होना पड़ेगा। सनातनी भी डरके मारे ग्राहक रहना पसन्द नहीं करेंगे। सुधारक तो प्रायः बहुत ही कम ग्राहक हैं। धार्मिक दृष्टिसे ग्राहक छूटनेका डर नहीं है और ग्राहक छूटनेसे विरोध करनेकी मेरे मनमें कल्पनातक नहीं हुई। ग्राहक घटने-बढ़नेका प्रश्न इसमें नहीं है, प्रश्न है नीतिका। 'कल्याण' की जगह दूसरी नीतिका पत्र होता तो मुझे इसका जोरदार सच्चा विरोध करनेमें कोई आपत्ति न होती। सम्भव है, उसके फलसे राजद्रोहका मामला चल जाता। मैं तो इस राज्यतन्त्रसे भारत और धर्मकी हानि ही समझता हूँ। परन्तु इस समय मैं इस आन्दोलनसे अलग हूँ। मेरी धारणा है कि यह परिवर्तन होते आये हैं, होते रहेंगे। लोगोंमें ईश्वरकी भक्ति-श्रद्धा बनी रहेगी तो उनका लोक-परलोक सुधर सकता है। जिन अंग्रेजोंमें १८-२१ सालकी उम्रमें कन्याओंका विवाह होता है उनमें भी भगवद्भक्तिसे लोगोंका उद्धार हो सकता है। 'कल्याण' उसी क्षेत्रमें कुछ काम कर रहा है। मेरी समझमें इसकी इस नीतिसे जगत्‌के मंगल कार्यमें कुछ सेवा हो रही है। विवाह, जाति-पाँति आदिके काम और आन्दोलन मेरी समझसे इससे बहुत कम दर्जेके हैं। उसमें राग-द्वेष और वैर-विरोधकी बहुत गुंजाइश है। भावोंका विरोध आगे चलकर व्यक्तियोंके विरोध रूपमें परिणत हो जाता है। ऐसी स्थितिमें अशान्तिसे भरे हुए विश्वमें अशान्ति बढ़ानेके काममें कुछ भी समय लगानेकी अपेक्षा सार्वजनिक शान्तिके काममें (जो एकमात्र ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-परायणता और मानवधर्म है) लगना-लगाना वर्तमान युगमें बहुत ही आवश्यक और लाभप्रद प्रतीत होता है। इन्हीं सब कारणोंसे किसी भी सामाजिक या ऐसे आन्दोलनके सम्बन्धमें 'कल्याण' के द्वारा कुछ भी कार्य करना उचित नहीं प्रतीत होता, जिससे विश्वधर्म-ईश्वरधर्ममें बाधा होती हो।

अनाप-शनाप बहुत ही लिखा गया। आपकी स्वाभाविक दयालुता

और क्षमाके भरोसेपर माँ–बापके सामने हठी बच्चेकी भाँति चाहे सो बके जाता हूँ।

केवल आपका ही—हनुमान

(२६)

फाल्गुन कृ० १ सं० १९८६

भाई हनुमान प्रसादसे जयदेवका प्रेमसहित राम राम। ....

फाल्गुन शुक्लमें तुम्हारा चित्रकूट जानेका मन लिखा तथा मेरेसे सलाह पूछी सो प्रेसका काम देखनेके लिये तुमको गोरखपुरमें रखनेका विचार नहीं है। प्रयागमें अपने एकान्तमें पूरी बातें नहीं हो सकी थी। ....विशेष हर्ज न हो तो होलीके बाद चित्रकूट जा सकते हो। फाल्गुन सुदीमें ऋषिकेश जाते समय तुमसे इस सम्बन्धमें पुनः निश्चय करनेका विचार है।

जयदयाल गोयन्दका

(२७)

बैसाख कृष्णा ७। ८७ को भिवानीसे इन्हें पत्र लिखा—

तुमने लिखा हमारे बहुतसे मित्र गिरफ्तार हुए हैं मैं सत्याग्रहमें सम्मिलित होना चाहता हूँ और आपकी राय चाहता हूँ। दया करके मेरेको आज्ञा दीजिये। उसका जबाब कल इस प्रकारसे दिया है कि देखो; चिट्ठी सत्याग्रहमें सम्मिलित मत होवो ; वह तार तुम्हें मिला होगा।

नमकके आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके विषयमें तुमसे रूबरू ऋषिकेशमें बात हो गयी थी कि तुम्हारे सम्मिलित होनेसे इस आन्दोलनमें हमें कोई लाभ प्रतीत नहीं होता। राजनैतिक कामोंमें पड़नेसे भक्तिके प्रचारमें रुकावट होनेकी संभावना है। कल्याणका कार्य भी चलना मुश्किल है। सैकड़ों मनुष्य जेलमें जा रहे हैं। उनके साथ तुम भी यदि जेलमें चले गये तो उससे कुछ भी लाभ होनेकी संभावना नहीं है। प्रथम तो इस सत्याग्रहका क्या परिणाम होगा इसका पता नहीं यदि उत्तम परिणाम हो तो भी तुम्हारे इसमें सम्मिलित न होनेसे कोई हानि नहीं है। तुम्हारे न सम्मिलित होनेसे यह कार्य रुकेगा नहीं। जो कुछ होने वाला है वही होगा। भक्ति और ज्ञानका प्रचार है वह तो केवल पुरुषार्थ पर ही निर्भर है, इसलिये सत्याग्रहमें सम्मिलित होना किसी प्रकारसे उत्तम नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे उन मनुष्योंकी सहायता दे सको तो उत्तम बात है।

नमक या वस्त्रके लिये सत्याग्रह करना तुम्हारे तथा हमारे लिये उत्तम

कार्य मालूम नहीं देता .... विशेष बात तुम चुरू आओ तब रूबरू कर सकते सो बैसाख कृष्ण १२ तक चुरू पहुँचनेकी चेष्टा रहनी चाहिये और भी भाई लोग आवें तो अच्छी बात है।

जयदयाल गोयन्दका

(२८)

भाई हनुमान प्रसादसे जयदेवका प्रेम सहित राम राम।

तुम्हारे पास बाहरका आदमी आनेसे काम बढ़ जाता है यह बात तो ठीक है किन्तु लोग अपनी इच्छासे जावें—उसका क्या उपाय किया जाय! तुमने लिखी कि हमारे पास आनेसे क्या लाभ होगा सो ठीक है। तब भी कई भाई जावे तो लाभ समझकर जा सकते हैं—काम छोड़कर भजनमें लगाना तो ठीक है परन्तु घर छोड़कर भजनके बहाने सारा समय बितानेसे बहुत हानि है। निठल्लापन बढ़ता है। इसके लिये तुमने लिखा कि इसके लिये बहुत उदाहरण हैं सो ठीक है मेरी भी यही राय है। इसलिये काम छोड़नेकी सम्मति मैं किसीको भी देना नहीं चाहता। कल्याणसे लोगोंको लाभ बहुत मालूम देता है। अबकी साल कल्याणका ग्राहक बाकी रह जावें तो बहुत उत्तम है। पहिली समितिका कार्य ठीक लिखा सो बहुत आनन्दकी बात है। दूसरीका ठीक हो जिसके लिये कोशिश तुम्हारे बने सो तो तुम करते ही हो किन्तु समितिवाले भाई लोगोंको निगह रखनी चाहिये—वह काम ढीला पड़ने पावे नहीं। शहरमें प्लेगकी बीमारीका कुछ हाल मिला था सो अब क्या हाल है ? गई सालमें शुभकरणने अच्छी सेवा की थी। लोगोंको खराब हवासे हट जाना ही उत्तम है।

कल्याणमें नाम तुम्हारा रहे बिना लोगोंपर असर प्रभाव पड़ना बहुत कठिन है तुम्हारी जगह दूसरेका नाम देनेमें और कोई आपत्ति नहीं यदि कोई और सब बातोंमें जानकार प्रेमी मिल जावे तो तुम्हारे निगाहमें अगर कोई आवे तो संकेत करना चाहिये। सम्पादककी तो मुझमें योग्यता नहीं है और जिस स्थानपर तुम चाहो तो मेरा नाम दे सकते हो। मेरी इच्छा नहीं हो तब भी और बाहर जानेके लिये कोई विशेष अड़चन नहीं है।

पूज्य माँजीकी राजीके मुताबिक तुम्हारे मन और शरीरके अनुकूल स्थान होना चाहिये। कल्याण प्रेसके काममें विशेष अड़चन नहीं पड़े। इसका ध्यान रखना चाहिये। बाकी तुम जहाँ जाओगे वहाँ लोगोंका अधिक आना-जाना होना मामूली बात है। हाँ, गोरखपुरकी अपेक्षा शायद कम हो

सकती है। गोरखपुरमें नहीं रहनेसे पहली कमेटीवालोंके साधनमें ढिलाई आ जाय तो आने देना किन्तु तुम्हारी बहुत दिनकी इच्छा है इसलिये हठ करनेकी मुझ जैसे साधारण मनुष्यके लिये युक्तियुक्त नहीं है। पहले तो स्थानकी निगाह करना चाहिये पीछे रूपकार मुलाकात हो जावे तो सब बात तय कर लेना चाहिये। चैत्र नजदीक है विशेषांकका काम शुरू करनेसे जानेमें कई आपत्तियाँ सो भी तुम्हारा लिखना ठीक है, यदि ऐसी ही आपत्ति होगी तो पहले ही मिलनेकी कोशिश करनेका विचार हैं। मिलना तो अन्न–जलके अधीन है। चेष्टा करना मनुष्यका काम है। तुम्हारा इस साल गोरखपुर रहना हुआ इसीसे लोगोंको बहुत लाभ मालूम होता है। कल्याण और प्रेसके काममें बहुत लाभ तो प्रत्यक्ष ही है। एकान्तमें जानेसे कमती या अधिक किस प्रकार लाभ हो, सो कुछ मालूम नहीं। कुछ अनुमान नहीं किया जा सकता।

गोरखपुर रहनेसे बहुत अधिक लाभ प्रत्यक्ष ही समझमें देखनेमें आता है। दूसरी जगह जानेकी चेष्टा करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पता नहीं तुम्हारी बुद्धिमें क्या बात है बाहर जानेकी तुम्हारी विशेष स्फुरणा होती है इसका कुछ कारण यदि कुछ समझमें आवे तो लिखना चाहिये।

जयदयाल गोयन्दका

(२६)

गोरखपुर, ज्येष्ठ शु० १४ सं० १९८७

सादर प्रणाम। कृपापत्र अभी मिला। गीताप्रेसका तलपट उतार लिया गया है। ठीक करके आज या कलकी डाकसे भेजनेका विचार है। श्रीघनश्यामदासजी परसोंसे लगातार इसी काममें लग रहे हैं। श्रीमोहनलालजीके रुपयोंके सम्बन्धमें आपने लिखा सो ठीक ही है। सीताबाई तो यहाँसे चली गयीं। दुजारी भी साथ ही गये हैं। उनकी नाबालिग अवस्थामें उनसे कुछ लिखवाया भी नहीं जा सकता था। रुपये लगानेके सम्बन्धमें आपने जैसा लिखा वैसा ठीक है। मैं क्या राय दूँ। मेरी सम्मतिमें तो ऐसे कामोंमें पड़नेसे कोई विशेष लाभ नहीं है। यदि उनके भाई कुएँ आदि बनवानेमें लगाना चाहते हैं तो जहाँ जलकष्ट हो वहाँ उसी कार्यमें लगावें। इसमें क्या आपत्ति है ? प्रेससे नारायणदासजीको दस्तूर मुजब एक पत्र लिखा गया कि 'आपकी भेजी हुई हुंडी आयी। रुपयोंके सम्बन्धमें क्या करना चाहिये लिखिये।' प्रेसके नाम उनका कुछ लिखित तो ठीक है। रुपये सब जमा हैं, तय हुए बिना कुछ भी खर्च करनेका विचार नहीं है।

भजन, भक्ति, सदाचारका प्रचार मैं क्या कर सकता हूँ। भगवान् किसीके द्वारा जो कुछ करवा लेते हैं उसका उन्हींको श्रेय है। मुझमें तो न तो कुछ सामर्थ्य है और न प्रचारके लिये उत्साह ही प्रतीत होता है। मैं तो किसीका प्रेरित हुआ-सा कुछ इधर-उधर कर रहा हूँ।

भाई बजरंगलाल यहाँ नहीं आये। यह पत्र बम्बईसे आया था। आपको उसका उत्तर बम्बई ही लिखना चाहिये।

समय बहुतसे तेज काममें बीतना चाहिये। यह आपका लिखना बहुत श्रेष्ठ चेतावनी है। ध्यान रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

इस समय कलकत्ते जानेका विचार नहीं है। यहाँ रामायणांकका काम बहुत ज्यादा है। इसलिये भाई हरिकृष्णदासजीको बुलानेके लिये नहीं लिखा। कलकत्तेकी बाबत फिर कभी देखा जायगा। कलकत्तेवालोंकी तो मुझपर बड़ी कृपा है। मुझे तो उन लोगोंका बड़ा ही कृतज्ञ होना चाहिये।

सबसे सादर सप्रेम यथायोग्य।

आपका — हनुमान

(३०)

रतनगढ़, कार्तिक कृ० ६/सं० १९८९

परम पूज्यवर,

सादर प्रणाम। .... मैं तो नहीं समझता इतने काम ही क्यों बढ़ाये जा रहे हैं। परन्तु इस सम्बन्धमें मैं विशेष अनुभव नहीं रखता। इससे कहना अनाधिकार समझता हूँ परन्तु अधिक व्यवहार बढ़ जानेसे परमार्थका लक्ष्य कैसे बढ़ता रहेगा ? तथा पहलेका अभ्यास स्थिर भी रहना मुश्किल होता है या नहीं इस बातपर मैं क्या लिखूँ। आप लोग बहुत अधिक सोच सकते हैं।

आपका — हनुमान

(३१)

श्रावण शु० १०/सं० १९९०

परम पूज्यवर।

सादर प्रणाम। आपका कृपा पत्र मिला। आपका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो गया लिखा सो आनन्दकी बात है। भाई शिवदयालका ज्वर उतर गया, मामूली कमजोरी है। लिखा सो कमजोरी अब कम हुई होगी। पूज्य माँजीके चरणोंमें प्रणाम कहना चाहिये। श्रीचैतन्य चरितावली संबंधी समाचार पढ़े। फर्मे छपनेके पहले मैं देख लिया करता हूँ। कहींपर कुछ आपत्ति मालूम

होती है तो उसे ठीक कर देता हूँ। लेखकको पूछने लायक समझता हूँ तो उनको पूछकर सुधारनेकी चेष्टा करता हूँ। श्रीचैतन्य महाप्रभुको लेखकने भगवान्‌का अवतार न मानकर महान् प्रेमी भक्त माना है। पहले और दूसरे खण्डकी भूमिकामें यह बात स्पष्ट कर दी गयी है। उदाहरणार्थ :—

"महाप्रभु अपने समयके प्रेमी और भावुक महापुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ महापुरुष समझे जाते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन विरहमय है। उनका श्रीविग्रह कृष्णवियोगका साकार स्वरूप ही बन गया था।" ....

"वे भक्तिके मूर्तिमान् अवतार थे, प्रेमकी सजीव मूर्ति थे। उनके जीवनमें परम वैराग्य, महान् त्याग, अलौकिक प्रेम, अभूतपूर्व उत्कंठा और भगवान्‌के लिये विलक्षण छटपटाहट थी।" ....

"हमारी बातको सुनकर कुछ गौड़ीय सम्प्रदायके महानुभाव हमपर रोष प्रकट करते हुए पूछेंगे—"क्या महाप्रभु गौरांगदेव साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा नहीं थे ? क्या राधाभावका रसास्वादन करनेके निमित्त स्वयं साक्षात् श्रीकृष्ण ही गौर रूपसे अवतीर्ण नहीं हुए थे ? उन महानुभावोंके श्रीचरणोंमें मैं अन्यन्त विनम्र भावसे प्रार्थना करूँगा कि श्रीमहाप्रभु श्रीगौरांगदेव साक्षात् श्रीकृष्णके अवतार थे या नहीं, इस बातका मुझे पता नहीं, किन्तु वे महान् प्रेमी अवश्य थे। प्रेमकी प्राप्तिके लिये त्याग वैराग्यकी, चित्तकी आवश्यकता होती है वह पूर्णतया महाप्रभु श्रीगौरांगदेवके जीवनमें पाया जाता है।"....

उपर्युक्त तीन अवतरणोंके सिवा और भी बहुत-सी बातें आयी हैं जिनसे लेखकका महाप्रभुको अवतार न मानकर परम प्रेमी भक्त मानना सर्वथा सुस्पष्ट है। और गौड़ीय वैष्णव लोग इसके लिये बहुत नाराज भी हुए थे। उनके नाराजीके पत्र भी मेरे पास आये थे, जिनका समाधानीका जबाब दिया गया था। रही घटनाओंकी बात, सो चरितामृत, आदि बंगलाके प्रसिद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थोंके आधारपर लिखी गयी हैं। अपनी कल्पनासे नहीं। इससे उन घटनाओंमें अवतारीपन सिद्ध होता है और उसे बदलनेका अधिकार भी नहीं है, न होना ही चाहिये। उपन्यास नहीं लिखा गया है। वर्णन शैली तो अपनी अपनी अलग हुआ करती है। आपने जो दोष दिखलाये हैं ये दोष तो उनकी लीलाके लेखकों द्वारा अवतारी पुरुषकी लीला रूपमें माने गये हैं। भगवान् श्रीकृष्णके जीवनमें भी ऐसी बहुत-सी बातें लिखी पायी जाती हैं, जिन्हें झूठी कहनेका भी हर एकका साहस नहीं हो सकता और मर्यादी लोग उन्हें मानते भी नहीं। भगवान्‌की लीला

समझकर या समझमें नहीं आयी कहकर चुप होना पड़ता है। इसी प्रकार अवतार माननेवाले लेखकोंने लीला लिखी है और जब उन्हींके आधारपर जीवनी लिखनी है तब किसी बातको छोड़ा कैसे जा सकता है। रही विनोदकी भाषा, सो जहाँ जैसा रस होता है वहाँ वैसी ही भाषा लिखनी पड़ती है। प्राचीन ग्रन्थोंमें भी ऐसे उदाहरण बहुत मिलते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुके जीवनमें विनोदकी बहुतसी बातें मिलती हैं। वे खान-पानके बारेमें बहुत विनोद किया करते थे। इसीलिये वहाँ वैसी विनोदी भाषा काममें ली गयी है। जीवनकी घटनाओंको, चाहे उनसे कमजोरी ही जाहिर होती हो, जीवन चरित्र लेखक कैसे बदले या उन्हें रूपान्तरित करे। उनका जीवन कैसा था, यह तो किसीको पता नहीं। अपर्युक्त तीन ग्रन्थ ही आधार रूप है और सभी लेखक प्रायः घटनाओंको लिखनेमें उन्हींका सहारा लेते हैं।

श्रीप्रभुदत्तजीसे प्रति फार्म पन्द्रह रुपयेकी बात तै हुई थी। अबतक उन्हें १५००) रुपये भेजे जा चुके हैं। दो खण्ड छप चुके हैं जिनमें लगभग ५० फार्म हैं। तीन खण्ड छपने बाकी हैं। और प्रेसकी पुस्तकें देख रहे हैं सो बड़े आनन्दकी बात है। यों आप देख दिया करें तो सब बखेड़ा ही मिट जाय। मेरे तथा अन्य सभीके मनमें सन्देह न रहे तथा पुस्तकें भी निकलें। स्तोत्रावलीके अर्थमें कहीं भूले रह सकती है। वे छपनेके समय सुधारी जा सकती हैं। प्रेससे अर्थमें कुछ भी भूल न रहनेका आदर्श बहुत ही ठीक है।

भक्तगाथाएँ देखकर सब जल्दी भेजनी चाहिये। कारण शिवांक छपते ही जरूरत पड़ेगी। सर्ववेदान्तसार संग्रह भी देखनी चाहिये। उसके तीन पन्ने पीछेसे भेजे गये हैं। पुस्तकमें शामिल करने चाहिये।

श्रीजमनाधरजी चुरूवालेके लिये बेतियाको फिर लिखा गया है उनका समाचार मिलनेसे देखा जायगा। श्रीहेमराजजीको पहले श्रीघनश्यामजीका पत्र आया था तभी जवाब दे दिया गया था। एक दो रोजमें वे चले जायगें। आजतक हिसाब चुकता करनेके लिये कह दिया गया है। शिवांकका लेख पहुँच गया था। भूल सुधार कर छापनेका विचार है। मधुसूदनी टीका प्रकाशन करनेकी नहीं जची सो ठीक है। श्रीमुनिलालको लिख दिया गया है। वहाँसे पुस्तक लौटकर आते ही लेखकको वापस भेजनेका विचार है।

मशीन बैठ रही है, जल्दी ही बैठनेकी आशा है। छतपर रुपये ज्यादा लगे सो ठीक है। आगे कैसी छत किस प्रकार बनायी जाय सो सब

श्रीघनश्यामजी समझकर वैसे ही बनावेंगे तो ठीक रहेगा। पैन मशीनका पुर्जा बन गया। मशीन चल रही है। कल्याणमें लगभग ३१ हजार रुपय आ गया है। रोज आ रहे हैं। अबकी बार शिवांक निकलनेमें देर होनेकी संभावना है। लम्बा फार्मा है, बीचमें मशीन टूट गयी थी। क्या किया जाय।

कल्याणके हिसाबके संबंधमे आपको खुलासा लिखा नहीं गया था इसीसे समझनेमें अड़चन रही। कोई भूल नहीं है। समाचार पत्रोंका परस्परमें परिवर्तनका रिवाज है और उसको पालन करना ही पड़ता है। यह तो इस दूकानदारीकी प्रथा है। बहुतसे अंक इसमें जाते हैं। पत्रोंवाले समालोचना करते हैं जिनसे प्रचार बढ़ता है। इसमें कमी नहीं हो सकती। बहुतसे अंक लेखकोंको जाते हैं। हमलोग प्रायः लेखकोंको लिखाई नहीं देते। अन्य पत्रोंमें लिखवाई देनेका रिवाज है। परन्तु उन्हें कल्याण भेजना तो अत्यावश्यक और उचित ही है। इस वर्ष नये लेखक बहुत बढ़े हैं, उन्हें भेजना होगा। कुछ विशिष्ट विद्वानोंके पास जाते हैं। और थोड़ेसे बिना मूल्य या कम मूल्यमें। सर्वथा बिना मूल्य और कम मूल्यमें बहुत ही थोड़े जाते हैं। अधिकांशका मूल्य तो समाचार पत्रों या लेखोंके रूपमें आ ही जाता है। आता ज्यादा है, लगता कम है। इसमें बचत नहीं की जा सकती। इस साल तो यह रकम नहीं बढ़ेगी। अपनी तरफसे सहायताके लिये रुपये किसीसे नहीं माँगे जाते हैं। न प्रेरणा ही की जाती है।

रामचरितमानसके संबंधमें यह तो कौन कह सकता है कि श्रीतुलसीदासजीने क्या लिखा था और कैसे लिखा था। क्योंकि उनके हाथकी प्रतियाँ नहीं मिल रही है। परन्तु १६६१ के सालतककी जितनी प्रतियाँ मिली हैं उनके अनुसार यही निश्चित होता है कि उसमें 'श' का प्रयोग 'श्री' को छोड़कर प्रायः नहीं है। यदि गुसाईजी 'श' न जानते होते तो श्लोकोंमें ऐसा होता परन्तु श्लोकोंमें 'श' आया है। प्राचीन भाषामें भी यह 'श' नहीं था। इसके लिये पण्डित जेष्ठारामजीने उस दिन एक दोहा बताया था—"भाषामें ऋ लृ नहीं और तालव्यशकार" प्राचीन प्राकृत भाषाके व्याकरणके अनुसार यही शुद्ध है। इन सब बातोंको देखने से भी तुच्छ बुद्धिके अनुसार तो 'स' को 'श' बनाना सर्वथा अनुचित है। परन्तु मैं केवल अपनी सम्मतिके अनुसार कुछ भी करना नहीं चाहता। आप अपनी रुचिको छोड़कर मेरे मनमें मन देते हैं, यह आपकी दया, वत्सलता और उदारता तथा विशाल आशयता है परन्तु मैं आपकी रुचिके विरुद्ध कुछ करनेमें बहुत सकुचाता

हूँ। सकुचाता ही हूँ; करता तो रुचिके विरूद्ध बहुत कुछ हूँ। क्या करूँ। मेरे मनका पाप और कलुष है। आपकी रुचिके अनुसार मन नहीं बनता। उसमें विरोध आ जाता है। अपनी नीचताके लिये क्या करूँ ? पं० श्रीरामवल्लभाशरणजीकी पहले की दो प्रतियोंमें पुराना पाठ ही छपा है। वर्तमान प्रतिमें बदला गया है। प्रति भिजवानेका विचार है।

रामायणके विषयमें भाई श्रीहरिकृष्णदासजीने जो कुछ लिखा है। वह अवश्य ही तर्कयुक्त और विचारणीय है परन्तु मेरा मन उससे सर्वथा भिन्न है। भाषामें संस्कृत को लानेकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। बल्कि उसे अनुचित मानता हूँ।

श्रीमुनिलालजीको आपका पत्र मिलनेके पहले ही गत २७ तारीख तकका वेतन पूर्वके अनुसार भेज दिया गया था। अबसे ठेकेका काम है। ३) प्रति सौ श्लोककी बात है। इससे कम अनुचित है। अभी तो उन्हे एक छोटी-सी पुस्तक भेजी गई है। श्रीपंडित ज्येष्ठारामजीने नारदपुराण, ब्रह्मपुराण आदिके सार श्लोक चुने हैं। आपकी आज्ञा हो तो वे भेज दिये जायँ। पुराणोंके सार श्लोकोंको चुनकर उनका केवल हिन्दी अनुवाद निकालनेका विचार है। बीच-बीचमें चुने हुए श्लोक भी रखनेका विचार है।

बगीचेका दस्तावेज आपका पत्र आनेके पहले ही आपके और श्रीबद्रीदासजीके नामका बन गया था। वह श्रीराधाकृष्णजीके हस्ताक्षर के लिये बिलासपुर भेजा गया है। आनेपर रजिस्ट्री होगी। आप दोनों ही उसके ट्रस्टी हैं। चाहेंगे तो प्रेसका समझा जा सकता है।

भाई श्रीहरिकृष्णदासजी तथा शिवदयालसे सप्रेम हरिस्मरण। मेरा स्वास्थ्य प्रायः ठीक है। बीच-बीचमें सिर दुःखा करता है। सब आनन्द है।

आपका ही — हनुमान

(३२)

गोरखपुर, द्वितीय बैसाख शु० १४ / स० १९९१

परम पूज्यवर,

श्रीचरणोंमें सादर प्रणाम। मेरी प्रार्थनापर ध्यान देकर उसका भी निर्णय जल्दी हो जाय तो अच्छा है। आपकी आज्ञा मिल जाय तो मैं श्रावणके बाद कहीं चला जाना चाहता हूँ। अभी कोई भी निश्चय नहीं कर सकता हूँ। ....वस्तुतः मैंने जो प्रार्थनाएँ की हैं, उन सबकी स्वीकृति देनेके लिये करबद्ध प्रार्थना करता हूँ। पत्र न पहुँचा हो या याद न हो,

इसलिये पुनः लिख देता हूँ।

१. गोरखपुरसे बाहर कहीं रहना। २. 'कल्याण'के सम्पादनमें अपना नाम न रखना। ३. व्याख्यान न देना। ४. कमेटीका संचालन न करना। ५. प्रबन्ध–संबंधी किसी काममें राय न देना।

आपका ही — हनुमान

(३३)

बाँकुड़ा

भाई हनुमान प्रसादसे जयदयालका प्रेमसहित राम राम।

पत्र मिला जबाब देनेमें प्रायः विलम्ब मेरे स्वभाव और समयके कारण हो जाता है। सो तुम जानते ही हो भाई हनुमानप्रसादसे जयदयालका फिर प्रेमसहित राम राम बंचना। भाई मोहनलाल पहुँच गया है सब समाचार तुमने लिखा उसी प्रकार समक्षमें कहता था।

नीचता, अभिमान आदि शब्दोंका तुमको तुम्हारे प्रति प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्यों कि इस प्रकारके शब्दोंको पढ़कर समझदार मनुष्यको पत्रमें भी विचार हो सकता है। और उसको मतलब भी समझमें पूरा–पूरा आ सकता नहीं। जबाब भी कुछ लिखा जाता नहीं। तुमने लिखा कि मैं बम्बईसे रवाना हुआ तब दो बातकी प्रतिज्ञा की थी सो ठीक है। अब उसके विषयमें तुमने तुम्हारा निश्चय लिखा वह भी बहुत उत्तम और प्रशंसा करने लायक है। इतने पर भी राय पूछी सो तुम्हारे प्रेम और श्रद्धाकी बात है। किन्तु मैं भी सलाह कर–कर कभी तुम्हारेसे मिलकर विचार कर ही जबाब देना चाहता हूँ। तुमने लिखा कि रुपये ७०० (सात सौ) अनुमान गरीब भाईयोंको सहायतामें दिये गये सो बहुत उत्तम बात है। गरीब भाईयोंको सहायता दी जाय उसके लिये तुमको गीताप्रेससे खर्च करनेकी अनुमति दी हुई है, किन्तु गीताप्रेसमें तुमने लिखाये नहीं इससे अनुमान होता है प्रेसमें लिखनेकी तुम्हारी राय नहीं हुई इसलिये तुमने तुम्हारे नाम लिखा लिये, सो ठीक है। तुम्हारे विचार अति उत्तम है।

और शक्ति अंकके लिये एक लेख तो अनुमान ७–८ दिन पहिले ही भिजवा दिया है। पत्र भी एक भेजा था उसकी जगह नहीं हो तो अभी स्टाकके लिये। तो भी एक लेख आज दिन भिजवा दिया है। पत्र भी एक भेजा है वह तो जगह नहीं होवे तो आसोजके (आश्विनके) कल्याणमें छाप सकते हो। निगह कर लेना अगर ठीक मालूम नहीं दे तो फिर देखी

जावेगी। पूज्य गंगाधर शर्माजीके पत्रका जबाब देनेके लिये आगे दिया था। बहुत विनयके साथ उनको लिख दिया होगा। इस समय अपनेको अवकाश भी कमती ही है। और गोरखपुरके आस–पास बहुत ज़ोरसे बाढ़ आई। १८ फुट पानी चढ़ गया, अब कुछ कमती हुआ सो विचार वाली बात है। इस विषयकी चिट्ठी तार तुम्हारे लोगोंकी मिली तथा छापे (अखबार) में भी खबर पढ़ी थी। इस कामके लिये श्रीहरिकिसनदासजी, द्वारकादास, मोतीलाल, वैजनाथ सब सेवा करनेके लिये गये हैं, प्रेसके आदमी गये सो बहुत अच्छी बात है। अब कुछ पानी और भी कमती हुआ होगा। लोगोंको आराम देनेकी चेष्टा करनी चाहिये सहायताके लिये कोई भाई बिना माँगे रुपये देवे तो ले सकते हो अपने प्रेससे रुपया लगानेके लिये भी श्रीज्वालाप्रसादजी, जैदयालजी कसेराको दो हजार तथा तीन हजार तकका समाचार दिया है। अनुमान होता है उनकी अनुमति आ सकती है हमलोगोंकी कोशिश है और भी भाई लोगोंसे साधारण संकेत किया जा सकता है। मामूली रुपयोंके लिये तो किसीको संकेत भी करनेकी आवश्यकता है नहीं और आप लोग सब बहुत समझ कर काम करनेवाले समझकर मदद देनेवाले हो। इससे रुपये लगेंगे यह बहुत ठीक लग सकते है। आशा है कि भूकंप पीड़ितोंकी सेवामें भी अपनी तरफसे काम हुआ। वह ठोस ही हुआ सुना जाता है और बेतियाकी तरफ भाई हरदत्तराय भी अपने गीताप्रेसकी तरफसे काम कर रहे हैं। काम ठोस ही होनेकी आशा है। गोरखपुरकी तरफ दो तीन हजार रुपया लगे वहाँतक तो किसीको लिखनेकी आवश्यकता हैं नहीं अधिकका अनुमान हो तो हमको समाचार देना चाहिये और लिखना चाहिये। अनुमानसे अपनी तरफसे कितने रुपये लगनेकी आशा की जाती है। और पन्द्रह नावोंसे जो लोगोंको बाहर निकालनेके काम किया जाता है, वह बहुत ही उत्तम है। गरीब आदमीको अन्नका भी प्रबन्ध होना बहुत जरूरी है। और विशेष समाचार इस विषयमें फिर लिखनेकी लिखी सो लिखी होगी। गोरखपुरमें पानी आनेका सारा समाचार श्रीघनश्यामदासजीसे समझ लिया गया है। बिचारे गरीबोंको हर प्रकारसे आठ महीनेसे कष्ट हो रहा है। बाकी कुछ उपाय है नहीं।

(१) गीता लिखनेका काम रुका हुआ है। इधर–उधरका काम बहुत आ जाता है। चेष्टा तो रुक ही जाती है। बाकी उपाय कमती चलता है। भाई हर किसनको भी अब आगे फुरसत होनेकी आशा है, क्योंकि भाई

मोहनलाल आया। भाई हरिकिसनसे पूरी मदद मिलनेकी आशा है।

(२) भाई वैनीमाधवजीको छः आने ब्याजपर रुपये प्रेसमें जमा कर देनेकी कह दी है सो ठीक है।

(३) श्रीहरिश्चन्द्रजी बुलन्दशहर चले गये। हमारे लिखे माफिक काम कर दिया गया है। सो ठीक है।

(४) बाबा राघवदासजीके .... उड़िया गीता बाबत समझकर कह दिया होगा। अपने प्रेसमें छपनेसे बिकनेकी आशा कम है।

(५) भेरियावालोंको पुस्तक भेजनेकी लिखी सो ठीक है।

(६) श्रीकन्हैयालालजीकी भेजी हुई पुस्तक आनेपर हमको समाचार देना चाहिये। उनको सुन्दरदासजीकी पुस्तकको छापनेके विषयमें—समाचार सब श्रीधनश्यामके लिखे माफिक लिखनेकी लिखी सो ठीक है। लिखा गई होगी।

(७) श्रीमुनिलालजीको कार्ड दे दिया है। गोरखपुर भजनेको लिखी थी वह भेजी होगी तथा पहिले उनको काम देनेकी आप लोगोंके पास प्रेसमें कोई काम समझमें आवे तो भेज सकते हो नहीं तो गोरखपुर आनेसे उनको काम दिया जा सकता है।

(८) श्रीश्यामाधरजी रामसमुझजीके विषयका समाचार निगह किया। तुम्हारी राय भी समझ गया तथा उन लोगोंके श्रावणमें—-जबाब देनेकी सब प्रेस अधिकारियोंकी राय हुई सो ठीक है। इस प्रकार तुम्हारी राय होकर निश्चय किया गया सो ठीक है। इसी प्रकार काम हुआ होगा। अपने प्रेसके तरफसे कोई भी भाईकी शिकायत हो तो आपको निगह कर लेना चाहिये जो दूसरेकी शिकायत करनेका मौका मिले नहीं। उचित माँगकी पूर्ति करनी चाहिये और अनुचित माँग खड़ी ही नहीं होवे और आप लोग तथा प्रेसके भाई लोग पहिले ही ठीक कर लो तो और भी अच्छी बात है। इसमें सबकी शोभा है और उचित है। 'शिव' के नामसे लेख छापनेके लिये प्रेसमें भेजा सो छप गया हो तो कापी बाँकुड़ा भेजनी चाहिये और कल्याणके ग्राहक कमती होनेकी आशा नहीं सो अच्छी बात है। शक्ति अंक में बहुतसे लेख रुचिकर नहीं है इससे अभीसे कमतीका अनुमान किस अंशमें किया गया था। बाकी कुछ चाह है नहीं।

तुमने लिखा शक्ति अंकमें छापनेके लिये बहुतसे लेख आये बहुत अच्छे-अच्छे लोगोंके लेख रह गये। छपने नहीं पाये सो ठीक है, इसका

कुछ भी उपाय है नहीं और तुम्हारे स्वाभाव और बर्तावके कारण बहुतसे लेख असंगति भी, छप जाते हैं उसके लिये कुछ विचार नहीं करना।

तुमने लिखा कि मेरी कमजोरी है और भी लोगोंके बहुतसे लेख पड़े रह गये उनके लिये बहुत संक्रोच होता है। जबाब भी हाजिरका दिया जाता नहीं सो ठीक है। निरउपाय बात है। सब लेख किसी प्रकार छप सकते नहीं और सिद्धान्तसे जो विरुद्ध हो जिससे संसारमें नुकसान पहुँचनेकी शंका हो उन लेखोंको छोड़कर छापनेका ही तुम्हारा स्वाभाव है तो भी कभी–कभी संकोचमें पड़कर फालतू लेख भी छप जाते हैं। हमारे लोगोंकी निगाहमें कोई पड़ जावे तो तुम्हारी निगाहके लिये जनाया जाता है इसके लिये तुम कोई संकोच मत करना। तुम्हारा प्रेम और भाव तो है ही इसलिये तुम्हारे रुष्ट होनेकी तो ठहरती नहीं। इससे चाहे सो लिखा जाता है। तुम भी प्रेमसे सुनते हो और बदलेमें अपना कसूर मान लेते हो सो तुम कसूर मानते हो वह ठीक मालूम देता नहीं। कसूर माननेसे आगेके लिये लिखनेमें संकोच होता है इसलिये जो कुछ बनतीमें आवे तो जहाँतक हो आगेके लिये इन लेखोंको और भी बचाव करनेकी चेष्टा रहनी चाहिये।

और तार एक गीताप्रेसके नामका कल रातको मिला उसमें इस प्रकार समाचार था बाढ़से तो लोगोंको प्रायः मुक्ति मिली यानी छुटकारा हुआ। साढ़े चार हजार आदमी तो नौका द्वारा लाये गये और चार हजार आदमियोंको रोज भोजन दिया जाता है। अपने तरफसे और मित्रोंको उचित समझो तो सहायताके वास्ते कहो।

और लेख भेजो, सो लेख तो कल भेज दिया है तथा तार भी दिया गया है तार मिला। हुंडी चार हजार नारमल शिववकस पर करी इसके लिये और भी कोशिश करनेका विचार है वह तार पहुँचा होगा। भाई रामेश्वरकी आज दिन चिट्ठी आई उसमें लिखा था वितियेमें जोरकी बाढ़ आई है। इसलिये वितियावाले भी गीताप्रेससे आदमी बुलाते हैं बाकी इस समय भेज सकते नहीं। इससे मनाई कर दी है सो ठीक है। बहुत अच्छा काम किया उनको भी एक हजार रुपयेकी हुंडी करनेके लिये समाचार दे दिया है। वितियाका काम भी गीताप्रेसके नीचे शुरू हो गया है।

२५००) पच्चीस सौ रुपया पूज्य नारमल सिववकस, बाढ़ फंडमें बाकी बाढ़ पीड़ितोंकी सेवाके लिये देनेको कहा है।

२५००) पच्चीच सौ हमारी दुकानके यानी जैदयाल हरिकिशनके

बाढ़ पीड़ितोंकी सेवाके लिये देनेकी बात है।

इसलिये कल तार दिया गया। ४०००) चार हजार रुपयेकी हुंड़ी करो तथा एक हजार हुंड़ीका समाचार बितियेमें दिया गया और कलकत्तेके भाई लोगोंको भी दर्शाया गया। तुम भी और भाई लोगोंको तुम्हारे प्रेमवालोंको साधारणतः दर्शाया होगा। विशेष दबाव देनेकी रुपया माँगनेकी कोई जरूरत है नहीं और बिना माँगे भेजे तो तथा कोई भाईने पहिले कह रक्खा हो उनको दर्शानेकी जचें तो भले ही दर्शा सकते हो। और तुमने लिखा आपकी रुचिके माफिक मैं करता नहीं तथा तुम्हारी रुचि जानकर भी फिर दूसरी प्रकार करनेकी चेष्टा करता हूँ सो मेरी नीचता है सो इस प्रकार लिखना चाहिये नहीं कारण तुम्हारे हृदयमें स्फुरणा होती है वही तुम लिखते हो फिर हमारी राय माफिक ही करते हो यह कितना त्याग है। और बहुत ही प्रेम तथा भावकी बात है। तथा तुम्हारे प्रेम बर्ताव और कृतका मैं बदला नहीं चुका सकता। हमारा लिखना भूल कैसे है और तुमने मेरे प्रति दयालुता, वत्सलता, महानता, उदारता आदि-आदि शब्दोंका प्रयोग किया और अपने प्रति नीचता-प्रशुता आदि-आदि। सो ठीक नहीं जचता।

बहुत जरूरी कामके लिये आज दिन मेरा पुरुलिया जानेका विचार है। भाई शिवबक्स, घनश्यामदास तथा पं० ज्येष्ठारामजी मेरे साथ जानेवाले हैं—दिन-२ तथा ३ लग सकते हैं और गोरखपुरमें बाढ़ आनेके कारण पू० ज्येष्ठारामजीको भी श्रीघनश्यामकी विशेष जरूरत समझो तो तार दे सकते हो। पन्ना दो तो कल लिख दिया था भेजने पाया नहीं। इसलिये आज दिन इसके साथ जाता है और हनुमान अपनी तरफसे अपनी गलती मन्जूर करके तुम्हारी इच्छाकी प्रधानता दी थी उसके कारण यह मिथ्या सवाल भगवान्‌की प्रेरणा ही हो तो भाई हनुमानको उनके साथ उसको मौका देना उचित है। समझकर लिखा था। उसके लिये तुमको इस विषयमें अपनी काली करतूतोंका कारण आदि शब्द नहीं लिखना चाहिये और तुमने लिखा कि मैं कल्याणसे नाम न निकालना आदि बहुतसी बातें आपने कहीं थी। जानकर भी आपके विरुद्ध मैं चेष्टा करता हूँ। रुख और प्रेरणाकी तो बात ही क्या—आज्ञा तक नहीं मानता सो यह मेरा अभिमान और अज्ञान है। सो निगाह किया—किन्तु ऐसे समाचार भी तुमको नहीं लिखना चाहिये कारण तुम जिस प्रकार हमारी बात काममें लाते हो उस प्रकार दूसरे कौन काममें लाते हैं। सो लिखना चाहिये और तुमने लिखा कि मुझसे कोई विशेष काम

क्रोधका काम बननेमें आसान ही किन्तु पहिले मैं अपनेको इनसे मुक्त समझने लग गया था अब वह मेरी भूल मिट गयी––सो ठीक है। भगवान्‌का भक्त तुलसीदास सूरदास आदि वे भी इस प्रकार उससे बढ़कर ही लिखते हैं किन्तु कुछ समझमें आता नहीं और तुमने लिखा कि मैं पत्र लिखकर गीताजीके काममें विघ्नकर्ता हूँ––नया नया पचड़ा लगाता हूँ तो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये। क्योंकि तुम्हारी चिट्ठीका आना विघ्न नहीं है। तुम्हारी चिट्ठीका समयपर उत्तर नहीं दिया गया वह मेरे स्वभावका दोष है––तुम्हारी चिट्ठी या तो जिसका अच्छा भाग्य होता है उसको या जहाँ प्रेम होता है उसको मिलती है। हाँ, नीतिके कारण भी तुमको पत्र देना पड़ता है। तुम हमको पत्र दो उसमें तो तुम्हारा प्रेम और नीति ही कारण है। मेरी तरफसे पत्र बिना गये पत्र आने युक्तिसंगत नहीं है और गीताकी सेवा तुम नहीं तो कौन करता है ? तुमने लिखा कि मैं आपको तथा ईश्वरको बदनाम करता हूँ––सो विचारनेकी बात है––ईश्वरका नाम तो बदनाम हो ही नहीं सकता—हमारा नाम तुम बदनाम करते हो तो सद्‌नाम कौन करता है—असलमें तो तुम जो कुछ करते हो उस माफिक करनेवाले लोगोंकी बहुत आवश्यकता है और तुमने लिखा कि मेरे अक्षम्य अपराधोंको क्षमा कीजिए सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये क्योंकि तुम्हारा कोई अपराध समझमें आता नहीं। है तो फिर माफ किस बातकी ? मेरी समझमें तो तुम्हारा अपराध समझना भी एक प्रकारका अपराध है और तुमने लिखा कि आपने मेरा आग्रह देखकर जो सम्मतियाँ दी हैं उनके अनुसार काम नहीं करके—जैसे हूँ–वैसे हूँ—बना रहनेकी कोशिश करता हूँ सो तुम्हारी यह सुहृदता है और तुमने लिखा कि मैं जान बूझकर बदनामी नहीं करता तो ठीक है—इसमें बदनामीकी बात ही कौन थी। और तुमने लिखा कि किसी किसी समय मुझे बुलात्कार ऐसा करना पड़ता है सो ठीक है—न मालूम यह भगवान्‌की ही मर्जी है। उसको भी अच्छी ही माननी चाहिये। तुमने लिखा कि मैं लिखते लिखते भूल जाता हूँ—बोलते बोलते अन्यमनस्क हो जाता हूँ। कोई बातचीत करनेके लिये आ जाता है तो पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ—सो ठीक है—इस प्रकार होना स्वाभावसिद्ध है तो होने दो तुम ठीक समझो उस प्रकार चेष्टा करते रहो। फिर जो कुछ बनता रहे उसमें आनन्द मानते रहो—सारी बात भगवान्‌की दयासे ही होती है। ऐसा समझना चाहिये। उसको अपनेपर नहीं लेना चाहिये। जितनी बात उठी थी—अब कोई बात नहीं रहे। इसके लिये तुमने लिखा कि बल दीजिए सो यह लिखना भी

युक्तिसंगत नहीं। प्रथम तो बल देनेवाला ही कौन है मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ—है एक भगवान् फिर उससे हमको माँगनेकी जरूरत नहीं—चाहे न दे—हमारा सर्वस्व नष्ट कर दे। उसकी इच्छा जो कुछ करे। हमको तो चुपचाप उसकी मर्जीकी माफिक ही करते रहना चाहिये।

पुस्तक प्रकाशन बाबत कल्याणमें सूचना निकालनेमें कृष्ण चन्द्रिका हेतु नहीं—पत्र बहुत आने लग गये इसलिये सूचना कल्याणमें निकालनी पड़ी सो ठीक है और तुमने लिखा कि खास-खास पत्र आपके जबाब देनेके लिये बाँकुड़े भेजे जाते हैं। बाकी यहाँसे जबाब दिये जाते हैं सो ठीक है। उस माफिक ही होना चाहिये—तुमने लिखा कि लोग गोरखपुर आकर तंग करने लग गये—अभी एक साधु आया था—सूचना दिखाकर पिण्ड छुड़ाया। तो भी पुस्तक देखनेके लिये भेजनेकी बात मन्जूर करनी पड़ी सो ठीक है। तुम्हारा स्वभाव बहुत कोमल है—इस कारण बिना इच्छा आगलेकी राजीकी माफिक सको जहाँ तक मन्जूर कर लेते हो। सूचना निकालनेका हेतु कृष्णचन्द्रिका समझकर हमारी भूल स्वीकार नहीं की। समझनी चाहिये तुमने कृष्णचन्द्रिका छापनी मन्जूर कर दी। इसलिये हमने हमारी भूल समझी आई। हनुमानको अपनी बात छोड़नी पड़ी। मामूली बातके लिये भाई हनुमानके स्वीकार कर लेनेपर हमको छापनेका आर्डर देना चाहिये—आर्डर नहीं दिया वह हमने हमारी बहुत भूल समझी—किन्तु तुमने तो अपनी बातको छोड़कर हमारी बात रखनी अच्छी जानी। हमने भूल मन्जूर की और वह तुमको भारी लगी। हमारा लिखना तो ठीक था।

.... और तुमने लिखा कि पूज्य गौरीशंकरजी और मोहनके विषयकी बात कोई गीताप्रेसके विरुद्धमें नहीं थी सो ठीक है। भाई मोहनलालके विषयमें तुमने लिखा कि गीताप्रेसके हितके विरुद्ध भाई मोहनलालने कुछ भी किया हो—ऐसा मुझको तो मालूम नहीं है तथा मुझको विश्वास भी नहीं है सो ठीक है। भाई मोहनलाल द्वारा इस माफिक हो भी सकता नहीं। भाई मोहनलाल गीता प्रेसके हितके विरुद्ध करे यह बात हमलोग भी मनमें विश्वास कर सकते नहीं और तुम्हारे जिनके विषयमें एक दफे गोरखपुरमें दुजारीजीने कुछ बात हमको कही भी—हमने भी तुमको कहा था उसी बातका पत्रमें उल्लेख किया सो ठीक है। श्रीदूजारीजीकी उसमें भूल नहीं थी उन्होंने अच्छे भावसे कही थी। वे तुम्हारे आशयको पूरा-पूरा समझते नहीं। श्रीघनश्यामने अपनी भूल समझकर तुम्हारेसे भूलके लिये नरमाईका भाव दर्शाया था। उसकी भी भूल बहुत बार हो जाया करती है। स्वभावका

दोष है कुछ रुखापन—कठोरपन है किन्तु नीयत अच्छी होनेके कारण वशेष दोष समझा जाता नहीं। इसके लिये इस समय तुम्हारे मनमें संकोच हुआ वह भी ठीक था तुमने रूष्ट होकर माननेवालोंका व्यवहार ठीक नहीं होनेके कारण तुम्हारे जानेकी कोई बात नहीं थी सो बहुत ठीक है। इस प्रकार होनेका कोई कारण भी नहीं। होना चाहिये किसी समय शरीरकी आरोग्यताके लिये तुम्हारा थोड़ा दिनके लिये दो या चार महीनोंके लिये बाहरमें जानेका काम पड़े तो पू० चिम्मनलालजीको प्रेस और कल्याणका काम बहुत राजीसे चलाना चाहिये। तुम्हारी रायमुजब। इसमें वे आनाकानी करें तो उनके प्रेमकी कमजोरी है। तुम्हारे रायमुजब ही उनको करना उचित है। इससे बढ़कर दूसरी बात करें तो उनके प्रेमके स्थानमें स्नेही समझना चाहिये। तुम्हारी राजीसे जहाँ रहना है वहाँ तुम भेज दो। तुम्हारी बिना इच्छा तुम्हारे पास रहना भी दूर ही रहना है। और तुमने लिखा कि अच्छा बुरा जो कुछ हूँ आपका हूँ। तो बुरे की तो बात ही कौन है तुम्हारे माफिक तो सब बन जायें तो बहुत ही आनन्द हो जाय किन्तु ऐसा होना मनुष्यके अधिकारकी बात नहीं है और तुमने 'भंगभोगी भगवान' नामवाले लेखके विषयमें समाचार लिखा सो निगाह किया और तुमने लिखा कि मुझे हजारों लेख वापस करने पड़ते हैं लोग दबावमें डालते हैं। यह भी एक कारण था। कल्याणमें नाम नहीं देनेसे ही ठीक है किन्तु दूसरोंके नामसे इतना लाभ भी मालूम नहीं पड़ता तथा उचित भी नहीं है। इसलिये आग्रह करता आया हूँ और अंग्रेजी कल्याणके ८०० ग्राहक हैं और बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। आगे एकदम बन्द करनेसे दो हजार प्रतियोंके रूपमें अटकनेकी उमेद दिखायी सो ठीक है। इसके लिये आगे दो हजार छापनेके लिये राय दिखायी सो ठीक है। अभी चार महीने हाथमें हैं। छापनेकी तो जरूरी है समय पर देखी जावेगी १५०० छापना चाहिये या आगे अंग्रेजीका विशेषांक दो हजार छापना चाहिये। इतनेमें मिलना भी शायद हो सके तो कुछ बड़ी बात नहीं क्योंकि तुम विशेषांकका काम होनेके बाद भाद्रपदतक एक दफे बाँकुडे आनेका विचार भी कर रहे हो सो बहुत उत्तम बांत है। आनन्दकी बात है। तुम्हारा प्रेम ही इसमें कारण है। श्रीगौरीशंकरजी दूबेके बारेका सारा समाचार मोहनलालसे सुनकर यही बात जची है। अभी उसको जबाब नहीं देना चाहिये। उसका स्वभाव ठीक होनेकी उमेद भाव दर्शाता था तथा दिन-दिन सुधार होना भी कोई बड़ी बात नहीं है। भूल सबकी होती आयी है और गोपालमण्डलवाली जमीनके लिए तथा गीताप्रेसके पीछेवाली जमीनके लिये मोतीलालको कहनेकी लिखी सो कहा

होगा नहीं तो फिर तकादा कर देना गोपाल मण्डलवाले कामकी उसकी विशेष चेष्टा है। उसकी बहुत जरूरत है। प्रेसके पिछाड़ी वाली तो कुछ ढीलसे भी तो कोई हर्ज नहीं है। श्रीजयनारायणजीका मुकद्दमा अभी मिटा नहीं सो ठीक है। पू० शुक्लजीको भेजनेके लिये लिखा सो ठीक है। समयपर तुमको भी समय लगाना ही पड़ता होगा। किन्तु काम आ जाय वह करना पड़ता है। श्रीबिहारीलालजी इधरमें ठीक काम करते लिखा सो ठीक है उनका व्यवहार चेष्टा करनेसे सुधर सकता है और श्रीरामदासजी बाजोरियाका समाचार लिखा सो नीगह किया। उनके कामके लिये चेष्टा की जाती है। करनेका विचार है। अभी तजबीज लगी नहीं और स्वर्गाश्रमके बड़के नीचे वाली जमीनके लिये चेष्टा करनेका विचार लिखा सो ठीक है। श्रीमुनिलालजीने भाद्रपदके बाद गोरखपुर आनेकी दर्शायी सो ठीक है। वे आवें तो बहुत अच्छा और दोहावलीका अनुवाद करके रुपये देनेसे पोसानेकी उम्मेद कम है। इसलिये जची नहीं फिर तुम्हारी क्या राय है लिखनी चाहिये। सलाह की तौरपर पूछ गया है और कोई काम तुम्हारे ध्यानमें हो तो मुनिलालजीको लिखना चाहिये फिर विचारकर जबाब दे सकते हैं भाई रामेश्वरके वेतनके बाबत तुमने लिखा कि हमारी कुछ भी राय नहीं है सो ठीक है तथा राधाकुंज आना होगा तो रूपकार बात हो सकती है नहीं तो समाचार लिखनेका विचार है। पूज्य पण्डितजी, घनश्यामदास, भाई हरिकिशन तथा शिवदयाल पूज्य माँजी होर सबकी हाजिरवालोंका यथायोग्य समझना चाहिये। सबको मेरा यथायोग्य कहना चाहिये। माँजीको प्रणाम कहना चाहिये। सावित्रीकी माँजीके बीमारी मिट गयी होगी। तुम्हारे पैरमें किस तरह है। सावित्रीका शरीर ठीक रहता होगा। माँजीका शरीर ठीक होगा। जचे तो लिखना। मेरे प्रति ऊँचे और अपने प्रति नीचे शब्द मुझसे भी तुम अधिक लिख गये और मुझे मनाही कर रहे हो किन्तु तुमको भी तो सावधान रहना चाहिये।

जयदयाल गोयन्दका

(३४)

गोरखपुर, आषाढ़ कृष्ण ४ सं० १९९१ वि०

परम पूज्य,

चरणोंमें सादर प्रणाम। कृपा पत्र मिला मैंने कई बार ध्यानसे पढ़ा व आपकी कृपा, इतनी अपार कृपा देखकर एक बार हृदय गद्‌गद हो गया।

बुद्धिसे यही जचाँ कि आप जो कुछ लिखते हैं वही ठीक है और मुझको वही करना चाहिये, इसमें मेरा लाभ है। पहिले भी कई बार ऐसा सोचा था। परन्तु क्या करूँ, मेरा मन काममें नहीं लग रहा है। मेरी बड़ी ही नीचता और पशुता है कि आपके स्नेहमय वाक्योंको पढ़कर और सुनकर भी मैं फिर उनपर लिखता और सोचता हूँ, परन्तु यह नीचता तो प्रत्यक्ष और अनेक बारके व्यवहारसे सिद्ध है।

कभी कुछ लिखने बैठता हूँ, दो-चार लाइनसे ज्यादा नहीं लिख पाता। जेठके अंकमें प्रायः कुछ भी नहीं लिख सका। बुलन्दशहरके एक व्याख्यानका अंश 'संकीर्तन' वालोंने छाप दिया था, उसीसे काम चला। वही हाल आषाढ़में हो रहा है।

बोलनेकी भी यही दशा है। बहुत साहस करके कुछ बोलना चाहता हूँ, शुरू करता हूँ परन्तु कुछ मिनटोंमें चुप हो जाना पड़ता है। मैंने लोगोंसे बहुत कहा है कि——ईश्वरकी इच्छानुसार यंत्रवत् हमें रहना चाहिये परन्तु क्या करूँ अज्ञान और अभिमानसे भरा मन इस बातको नहीं काममें लाता।

'ऊपरसे अभिमानका कार्य भले ही दीखे, मनमें नहीं रहना चाहिये' आपका यह लिखना बहुत उचित है। परन्तु मेरे तो मनमें प्रत्यक्ष दिखता है। आपने लिखा कि जिसपर भगवान्‌की आसाधारण कृपा है, उसको अपने लिये कुछ भी विचार करनेकी जरूरत नहीं है। याने जो कुछ होवे उसीमें आनन्द मानना चाहिये। यह आपका लिखना सर्वथा सत्य है। मैं भी आपसे कई बात सुनी होनेके कारण यही बात लोगोंसे कहा करता हूँ। पर मैं देखता हूँ मेरे ही भगवत्प्रेरणासे होने चाहिये। नहीं तो भगवत्कृपा असाधारण है यह माननेमें भूल नहीं करनी चाहिए। तो यह तो मैं नहीं समझता कि मेरे मनके विचार भगवत् प्रेरित हैं। मैं तो यह समझता हूँ, मेरी ही नीचता है। सचमुच मुझे आजकल ऐसा ही दिखता है कि जगत्‌में सभी मुझसे अच्छे हैं। मैं तो दोषोंसे भरा हूँ। इसीसे यह भावना होती है और सत्य ही होती है कि मैं श्रीभगवान्‌का और आपका नाम वस्तुतः बदनाम ही कर रहा हूँ। आपकी समझमें नहीं आता सो भी ठीक है क्योंकि भगवान्‌का और आपका नाम आपकी दृष्टिमें वस्तुतः बदनाम हो ही नहीं सकता। मेरी यह सारे बातें बेसमझी की हैं। परन्तु क्या करूँ। अब तो चरणोंमें यही प्रार्थना है कि या तो मेरे मनमें उठने वाले इन विचारोंका नाश हो जाना चाहिए। नहीं तो मुझे लिखने, बोलने, नाम देने आदि कार्योंसे छुट्टी मिल जानी चाहिए। मैं यहाँ

रहता हूँ परन्तु काममें दिल नहीं है। अपनी धृष्टताके लिये मुझे शर्म भी नहीं आती यह नीचताकी पराकाष्ठा है।

अनुगत — हनुमान

(३५)

श्रीसेठजीका उत्तर बाँकुड़ा, आषाढ़ शुक्ल ६/१९९१ वि०

भाई हनुमानप्रसादसे जयदयालका पुनः प्रेमसहित राम राम बाँचना। तुम्हारे प्रेम और बर्तावके विषयमें कुछ लिखा नहीं जा सकता। मैं तो बदला चुका नहीं सकता। तुम हमारी जितनी बात काममें लाते हो, हम तो बदलेमें कुछ भी काम आ नहीं सकते। कोई–कोई समय तो उसके विपरीत उल्टा आर्डर दे देते हैं, वह भी तुम सहन कर लेते हो। इसलिये भी मैं (तुम्हारा) कृतज्ञ हूँ।

तुमने लिखा मुझे लिखने, बोलने, नाम देने आदि कार्योंसे छुट्टी मिलनी चाहिये सो ठीक है। तुम बहुत दिनसे कह रहे हो किन्तु मेरी रुचि देखकर तुम सब कार्य कर रहे हो यह तुम्हारे प्रेमकी बात है।

और तुमो लिख्यो मेरे मन माँय बारबार इस माफक फुरना क्यों हुवे छे सो ही ठीक छे भगवान् जाने तथा तुमों लिख्यो इस माफक फुरना मेर मन माँय नहीं होनी चाये। इन विचारोंका एकदम नाश हो जाना चाये सो ही ठीक छे। इन विचारोंका नाश करने या नहीं करनेकी शक्ति तो उस भगवान्‌की ही छे। हमाने हमारे माँय तो ऐसी कोई शक्ति मालूम देवैछ नहीं जिके द्वारा तुमारे मनके विचारोंको परिवर्तन कियो जा सके तथा तुमारो चित माँय विचार हुवे छे जिको ठीक छे या गैर ठीक जिको भी भगवान् जाने। हमां कुछ निर्णय कर सका नहीं और तुमों लिख्यो हमारे चितमाँय विचार हुवे छे जिको या तो भगवान्‌की प्रेरणासे होनो चाये या भगवान्‌की साधारण कृपा नहीं समझनी चाये सो ही ठीक छे। हमां लोगोंको तो भगवान्‌की कृपा अपने पर पूर्ण ही समझनी चाये। चित माँय विचार हुवे छे जिकेके विषय माँय कुछ समझ माँय आवे नहीं और तुम्हारो बार–बार लिखनो छे फुरना भी बहुत दिन सेती हुय रई छे इसलिये तुम्हारे जचे तो उसी माफक करने सको छो—

(१) तुमां लिख्यो लिखनेकी इच्छा नहीं होती, लिखने लगता हूँ तब विशेष नहीं लिख सकता ज्येष्ठके–आषाढ़के अंकमें इसी कारन विशेष लेख नहीं दिया गया सो ही ठीक छे यथाशक्ति लिखनेको काम तो

रखनो ही चायें और कुछ नहीं लिख सको तो कल्याणमें लेख तो जरूर ही देनो चाये। **बिना तुम्हारे लेखके कल्याण फीको मालूम देवे छे। आगे जाय कर कल्याणके ग्राहक भी सायत कमती हुये जावे तो कोई बड़ी बात नहीं।** शक्ति अंकमें अभीतक तुम्हारो लेख आयो नहीं इससे विशेषांक सुन्दर मालूम देवे नहीं। तुम्हारा लेख नहीं देवे तो संसार माँय साहित्यक दृष्टिसे लोगोंके लेखोंके विशेष प्रचारकी भी विशेष आवश्यकता मालूम देवे नहीं। कोई-कोई लेख तो ऐसे भी निकल जावे शायद बहुतसे भायोंके उलटो प्रभाव पड़ने सके छे जैसे आषाढ़में 'भंग भोगी भगवान्की भ्रांति' इसलिये तुम्हारे जचे तो लेख यथाशक्ति तुम्हारा ही जास्ती रेवे तो भोत ठीक रेवे इसलिये कोशिश पूरी करनी चाये। पीछे जो हुवे उसमें भगवान्की मरजी समझनी चाये।

(२) तुमां लिख्यो बोलने मांय भी यही बात है सो ही ठीक छे। कमती बोल्यो जावे तो भी विशेष अडांस (अड़चन) छे नहीं। यद्यपि अडांस तो छे। बाकी भीतरकी इच्छा और फुरना कमती हुवे जने जोर देयकर लिख्यो भी जावे नहीं यो काम कमती करने सको छो।

(३) कल्याणमें नाम नहीं देनेकी बात लिखी सो ही ठीक छे बाकी **तुम्हारो नाम दियो बिना कल्याणको प्रचार कमती पड़नेकी उमेद छे** तथा दूसरो तुम्हारी इच्छा हुवे उसी मुजब करने सको छो। तुम्हारी राय माँय ही मेरी राय है। स्वतंत्र हमारी इच्छा नहीं थी तथा है भी नहीं तो भी हमारेको उचित यही मालूम देवे छे। तुम्हारी इच्छाको ही प्रधानता देनी चाये कारन तुम्हारे फुरना हुवे जिकी भगवान्की इच्छा सेती हीं हुवती हो तो उस माँय रूकावट डालनी ठीक मालूम देवे नहीं। इसलिये अब तुम्हारी इच्छा माँय ही हमारी इच्छा समझी जाये और चेष्टा भी इसके लिये यथाशक्ति करनेको विचार छे जहाँतक हुवे तुम्हारी इच्छा माफक सम्मति देनेके लिये कोशिश करनी जिसपर भी मन नहीं मानेगो तो हमारी इच्छा भी जनावनेको विचार छे और उपाय ही क्या है। मन माँय कोई प्रकार नहीं जचे उसके आगे मनुष्य लाचार है।

(४) सत्संग कमेटीके विषय माँय आगे तुमों लिख्यो थो उसको **संचालक रहनेकी भी मेरी इच्छा नहीं है सो ही ठीक छे इसके लिये तुमो ठीक समझो जिस माफक करने सको छो। न चलानेकी अपेक्षा तो कुछ चलाने माँय ठीक मालूम देवे छे और दूसरो संचालक कोई रेवे तो अच्छी बात छे बाकी**

दूसरेको आध्यिपत्य लोग कमती मानता दीखे छे बाकी जिस तरे तुमारे चित माँय जचे उसी मुजब करने सको छो हमारी भी उस माँय राय है।

(५) गीताप्रेसके कामको संचालनके लिये आगे तुमो लिख्यो थो मेरी इच्छा संचालक रहने की छे नहीं सोई ठीक छे। प्रायः लोगोंने काम बाँट दियो छे और भी निगह राखने सेती कुछ ठीक होणे सके छे। जहाँतक हो तुमारे पर भार कमती देवे जिकी चेष्टा छे। बाकी कोई बहुत जरूरी काम आय जाय सो तो तुमांने करनो पड़े। लोग दूसरेकी बात माने भी नहीं दूसरा लोग कंट्रोल भी करने सके नहीं। मनुष्यने अपनी बुद्धिके अनुसार उचित कार्यवाही करनी चाये फिर उसके परिणाममें ईश्वर इच्छा मानकर संतोष करनो चाये।

(६) गोरखपुरके बाहर जानेकी तुमा इच्छा लिखी सो ठीक छे तुमा बाहर मांहे जावोगा जने तुम्हारे साथे भोतसा भाई लोग जाने सके छे तुमां गुप्त रेवो जणे तो कल्याणको काम होने सके नहीं प्रगट रहनेसे लोग तुम्हारे साथे जाने सके छे। इस हालत माँय वहाँ भी एकान्त विशेष मिलनी कठिन मालूम देवे है इसलिये हमां श्रीशुकदेवजीने बगीचे माँय मकान बनानेका समाचार दिया है तुम्हारो शरीर भी सुन्यो ठीक रेवे नहीं जिको शायद उस बगीचे माँय जानेसे ठीक रेने सके छे कारन उस तरफकी जल, हवा इसकी अपेक्षा अच्छी सुनी जावे छे। पीछे उसके लिये भी निश्चय होने सके नहीं तथा शरीरके लिये तो चावो जदही (जब ही) जाणेको विचार करने सकोछो फिर २ या ४ महीनों बाद वापस आनो संभव छे। तुम्हारे जचे तो सगले कामको भार श्रीगोस्वामीजी पर देकर २ या ४ महीनेके लिये तुमां बाहर माँय याने झूसी आदि स्थान माँय जहाँ तुम्हारी इच्छा हुवे जायकर तकमीनो करनो चाये पीछे जिस तरे तुमारे जचे उस माफक करने सको छो। तुमारी राय मुजब हमारी राय समझनी चाये। हमारे मन मांय आई जिकी बात भी सगली लिख देई छे राय भी देरा देई छे। तुमो ठीक समझो जिके ही मुजब करने सको हो। तुमो करोगा जिको भी तो विचार कर ही करोगा जिस माय तुमों सुभीतो समझो तथा लोगोंके भी फायदो समजो उस मुजब ही तो करोगा फिर हमारो विशेष आग्रह करनो भी हमारी भूल ही है।

और तुम्हारे भोत दफे चित्त मांय उपरामता हुवे तथा तुमारो विशेष आग्रह मालूम देवे छे और तुमारे हृदयमें फुरना भी प्रायः ऐसी होती रेवे है सोई तुम्हारे (फुरना) भगवान्‌की इच्छासे ही हुवे तो कुन जाने इसलिये हमारी कमती मनसा होनेपर भी तुम्हारी इच्छाको बलवान् समझकर प्रायः तुम्हारी

रायमें बहुत आनंदसे रायकर कर सम्मति देई छे इसलिये एक दफे तुम्हारी राय मुजब ही कामकर देखनो चाये सायद उससे विशेष फायदो हुय जावे तो कौन–सी बड़ी बात है। यदि विशेष फायदो नहीं हुवेगो तो फिर पहलेके मुजब ही काम मांय लग जानो उचित मालूम देवे है। इसलिये एक दफे थोड़ा दिनके लिये देखनो चाये फिर सुभीतो हुव फायदो विशेष मालूम देवे तो म्याद बढ़ाने मांय भी कुछ हर्ज नहीं है।

और कल्याणका सम्पादन करना उसमें लेख देना यह काम तो तुम्हारा ही है। कल्याणमें नाम नहीं देना इस बातको छोड़कर करीब–करीब तुम्हारी सगली बात ही कमती इच्छा होने पर भी हमां मान ली।

संसार मांय अपने नामरूपको प्रचार करनो मनुष्यके लिये कुछ भी लाभदायक नहीं है इसलिये इससे सर्व प्रकारसे मनुष्यको हटना चाये यह न्याय है बाकी लेख पुस्तक अखबारोंमें लोगोंके आग्रहसे कहीं यदि देणा पड़े और उससे संसारके मांय फायदो हुवनेकी उमेद हुवे तो आग्रह नहीं करनो भी उत्तम है ऐसी समजकर ही लेखमें पुस्तकमें अच्छा पुरुष नाम देते हैं और कोई दूसरा कारन नहीं है।

और तुमा अपने प्रति नीचता पशुताके शब्द लिखे सो नहीं लिखना चाये तुम्हारा बर्ताव भोत ही सुन्दर है और तुमों लिख्यो संसार मांय सगले मुझसे अच्छे हैं। यह बात समझ मांय आवे नहीं तथा तुमा अपनेको अभिमान और अज्ञानसे भरा लिख्या और भोत सी बातें लिखी जिको भी साफ समझ मांय आवें नहीं। इस माफक लिखनेको तुम्हारो स्वभाव पड़ गयो या के बात छे कुछ भी अर्थ समज मांय बैठे नही।

और तुमा लिख्यो मैं जो भगवान्‌को तथा आपको नाम बदनाम करता हूँ सोई इस माफक नहीं लिखना चाहिये तुमने कौन सा ऐसा नीच काम किया जो तुम इस माफक लिखते हो। श्रीभगवान्‌को नाम तो कोई बदनाम कर ही नहीं सकता। भगवान् तो भगवान् ही रहते हैं। चाहे हम लोग कैसे ही क्यों न हों ? मेरो नाम तो मामूली छे जैसो हूँ उसमें तुमांने कुछ विख्यात ही किया है। प्रतिष्ठा बढ़ाई है। या प्रतिष्ठा वास्तवमें मेरे लिये लाभदायक नहीं है इस कारन तुमा मेरो नाम बदनाम समजो तो समज सको छो।

आज मैं भोत सी बात लिख गयो तुम्हारे समय विशेष लागेगो बाकी कुछ हरज नहीं भोत चिठी भेली हुयोड़ी (इकट्ठी) पड़ी थी एक साथ लिखनेके कारन लेख जास्ती हुय गयो समाचार बढ़ाकर लिखनेकी मेरी

अनुचित आदत है।

श्रीदुजारीजीकी इच्छा ऐसी छे—भाईजी तथा आप दोनों जना मिलकर एक स्थानमें श्रीगीताजीकी टीका करो तो ठीक छे तथा आप लिखावो और भाईजी इसे ठीक करे उनको कहनो भोत ठीक मालूम देवे छे। बाकी मेरो तुम्हारे पास रहनो होने से यो काम होने सके छे। सो ही तुमाने समय मिले जने पीछे यो विचार उचित मालूम देवे तो कियो जाने सके छे।

भजन ध्यान सत्संग तो तुमारे लोगोंके हुवे ही छे तुम्हारी चेष्टा इस विषय मांय विशेष रेवे छे: मैं के लिखूँ: भाई लोग भोत दिनसे इस काम मांय लाग रेया छे तुमारे बताये हुए मार्गकी तरफ ख्याल विशेष नहीं करनेके कारन विशेष लाभ उठाने पावे नहीं शायद इस कारन तो तुमारे उपरामता नहीं हुवे हैं ?

जयदयाल गोयन्दका

(३६)

भाई हनुमानप्रसादसे जयदयालका राम राम बंचना।

लोगोंको निष्काम प्रेम भावका तत्त्व समझाना चाहिये इससे विशेष लाभ हो सकता है। बहुतसे भाई लोग अपना सब कुछ छोडकर जीवन दे रखा है। स्वार्थ भी छोड़ रखा है उन लोगोंको विशेष लाभ नहीं होता उसका क्या कारण है। मान बड़ाई इसमें हानिकर है इसलिये उन लोगोंको सावधान करना चाहिये। प्रेसका, ऐजेन्सीका, कल्याणका काम है वह भगवान्‌का काम है, भगवान्‌की आज्ञानुसार भगवान्‌के लिये भगवान्‌को प्रतिक्षण याद रखते हुए निष्काम प्रेम भावसे काम करनेकी युक्ति समझानी चाहिये। जिससे उन लोगोंको अधिक लाभ पहुँचे। और भगवान्‌की भक्ति, सदाचारका रहस्य विशेष रूपसे समझाना चाहिये तथा भगवान्‌का भजन करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार काम करना भी भगवान्‌की उत्तम भक्ति है। संसारके विषय भोगोंको क्षणभंगुर समझाना चाहिये जिससे लोगोंका समय वृथा नहीं जाय।

(३७)

आषाढ़ शु० ८३

भाई हनुमानसे जयदयालका राम राम।

तुम्हारे संगके कारण गोरखपुर गीताप्रेसके भाई लोगोंके बहुत फायदा हो रहा है। दिन–दिन उन्नति मालूम देती है। भगवान्‌की दया तो

है ही किन्तु निमित्त भी होना चाहिये। भगवान् जिसको निमित्त बना दें वही बन सकता है। श्रीभगवान्‌की अपने लोगोंपर पूर्ण कृपा है।

(३८)

डालमिया दादरी, आश्वि० कृ० १३, ९६

परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका,

श्रीचरणोंमें सादर प्रणाम। कृपा पत्र मिला। तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन कलकत्तेसे कार्तिक कृष्ण ६ को छूटनेका अनुमान लिखा सो आनन्दकी बात है। तीर्थयात्राकी इच्छा रखनेवाले भाइयोंके लिये यह स्वर्ण संयोग है। सत्संग, सत्-दर्शन और तीर्थाटनका पूरा लाभ है सो भी २।। महीने तक। वे भाग्यवान् पुरुष और स्त्रियाँ होंगी जो इस स्पेशलमें जायँगे। मेरी समझसे बहुत अधिक संख्या यात्रियोंकी हो जायगी तो कुछ कठिनाई अधिक होगी। साथमें कम-से-कम एक सुयोग्य वैद्य तथा एक उनके सहकारी आवश्यक औषधादिसहित अवश्य रखने चाहिये। यात्रियोंके खान-पान-शयनादिके और साधनके नियम भी हों तो अच्छा है यात्रियोंकी जितनी कम आवश्यकताएँ होगी, उतनी ही सुविधा ज्यादा होगी और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। डाक्टरी पद्धतिके अनुसार आकस्मिक घटनाओंके समयपर काममें आनेवाली सामग्री भी यथायोग्य साथमें रहनी चाहिये। गाड़ियोंमें डिब्बोंमें लाउडस्पीकर लग जाय और नियमित व्याख्यान सुननेका प्रबन्ध रहे तो उत्तम है। मेरे साथ चलनेका आपका संकेत तो बहुत ही कृपापूर्ण है। परन्तु मैं बड़ा मन्दभागी हूँ। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी इतना घूमना शायद उचित नहीं है और बहुत भीड़भाड़से मन भी घबराता है। पूज्य माँजी तथा सावित्रीकी माँ जाय तो उत्तम है। माँजीकी तो इच्छा भी है। मैंने लिख भी दिया है।

पत्रमें मैं आपकी बड़ाई और अपनी लघुता नहीं लिखता, मुझमें तो इतने दोष भरे हैं कि उन सबको तो मैं लिख ही नहीं सकता। आपके बाबत कभी कुछ लिखता हूँ, वह भी एक प्रकारसे स्तुतिमें आपकी निन्दा ही होती है और अपने लिये जो कुछ लिखता हूँ वह तो एक प्रकारसे प्रशंसा या प्रशंसा पानके लिये होती ही है।

स्वामीकी सेवक हितता सब, कुछ निज साँइ दुहाई।
निज मति बुला तीलि देखि भई अपनी ही दिसि गरुआई।।

आपने मेरे जिन आदर्श गुणोंके नाम गिनाये, सो ये तो आपकी शुभ

दृष्टिके फलस्वरूप आपको दीखते हैं। मैं क्या लिखूँ——

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नि त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु।। अस्तु।

मैं अभी तो यही हूँ परन्तु यहाँ स्थायी रूपसे रहनेका विचार नहीं है। हाँ, पूज्य माँजी तथा सावित्रीकी माँ दोनों ही तीर्थ–स्पेशल ट्रेनमें चली गईं तो वैसी हालतमें शायद तबतक यहाँ रह भी जाऊँ। अभी कोई निश्चय नहीं है। स्वामी चक्रधरजी महाराज प्रसन्न हैं। वे यहाँ कुछ नहीं कहते। गोरखपुर थे, तब कहा करते थे गोरखपुर ही रह जाओ। आपने लिखा——"हमलोगोंका आग्रह और प्रेम होगा तो शायद थोड़े दिनों बाद तुम वापस आ भी सकते हो, कुछ भी असंभव नहीं है।" सो आपका लिखना तो ठीक ही है। मुझे तो जहाँ आपकी रुचिपर न्योछावर हो जाना चाहिये था, वहाँ आपको ऐसा लिखना पड़ रहा है। क्या करूँ, मन अभी जरा भी पलटा नहीं है, वरन् उत्तरोत्तर और भी एकान्त–सेवनकी वासना बढ़ती हुई–सी प्रतीत होती है। स्पष्ट तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें कोई दैवी प्रेरणा है अवश्य। न मालूम, भगवान्‌का क्या विधान है ? उनकी कहाँके लिए कैसी रचना है ? शरीर जबतक है, कहीं रहेगा ही, फिर गोरखपुर रहनेमें क्या आपत्ति है ? पता नहीं, प्रभुकी लीला कब किस रूपमें अपना आत्मप्रकाश करती है। अभी कर तो नहीं सका——परन्तु अच्छा यही समझता हूँ कि "भगवान्‌का जो कुछ विधान हो, वे जो दें उसीको सच्चे आनन्दसे ग्रहण करना चाहिये। **भगवान्‌के चरणोंमें एकान्तिक आत्मोत्सर्ग ही सर्वोत्कृष्ट साधना है।** उनकी इच्छाके सामने अपनी इच्छा रहे ही नहीं। वे इच्छा रहित होकर जो इच्छा करें, उसीमें अपना महाकल्याण समाया हुआ है। न गोरखपुर रहनेसे इन्कार है, न कहीं जानेसे इन्कार चल भी कब सकता है ? वे जहाँ रखेंगे, जिस योनिमें रखेंगे, जैसा नाच नचायेंगे, वही नाचना होगा और वही हमारे लिये महामंगलकी खान है। जन्म–मृत्यु जो कुछ भी, जब कभी वे प्रदान करें, उसीमें उनका मंगल कर स्पर्श पाकर कृतार्थ होना है।" ऐसी कल्पना मनमें आती है, परन्तु पता नहीं, मन और शरीर इन कल्पनाओंका कहाँतक अनुसरण करते हैं। मेरे मनकी टान हो या दैवी–प्रेरणा——भगवान्‌का विधान अवश्य है। आपके प्रेम तथा बर्तावकी निन्दा नहीं है, आप ऐसा मानते हैं यह आपकी महानता है। आप मुझे त्याग नहीं सकते, यह तो विरद ही है। २३ घंटे मौन रहनेका विचार किया था,

तदनुसार ही लिखा था। परन्तु वैसा चल नहीं सका। सब मिलाकर लगभग दो घंटे बातचीत आदिके लिए हैं। शेष समय मौन रहता हूँ। उसमें सबेरे ७।। बजेसे १०।। और मध्याह्नोत्तर २।। बजेसे ४।। बजेतक तो बन्द कमरेमें सर्वथा एकान्तमें रहता हूँ। लगभग १।। घंटा मिलता है, जो पत्रादि लिखनेमें बीत जाता है। और अवकाश ही नहीं है। पता नहीं यह क्रम कबतक निभेगा।

विशेषांककी तैयारीके लिये भी श्रीगोस्वामीजीको लिख तो दिया है, आप गोरखपुर पधारते ही हैं, आप भी कह देनेकी कृपा करें। छपाई पौषसे आरंभ हो जाय तभी ठीक है, नहीं तो बड़ी कठिनता होगी। अभीसे भरपूर उद्योग करना चाहिये। मैं कुछ काम कर सकूँगा या नहीं कुछ कह नहीं सकता।

पं० विद्याधरजी वैद्य बाबत आपने जो कुछ लिखा सो पढ़ा। उन्होंने मुझसे शिकायत नहीं की, मैंने उनसे बात ही बातमें पूछा। इसपर उनसे जो कुछ बातें मालूम हुई उसीका सार आपको लिखा था। उन्होंने कमीशनके रुपये पानेके लिये भी मुझसे आग्रह नहीं किया। यह सत्य है कि उन्होंने ५०) रुपयेमें काम करना स्वीकार किया था। साधारण मनुष्य परिस्थितिका दास है। स्वार्थ, संकोच आदि कई कारणोंसे मनके अनुकूल न होनेपर भी मनुष्य स्वीकार कर लेता है। हमलोगोंको भी जब दूसरेपर विचार करना हो तो, केवल उसके शब्दोंपर नहीं, उसकी परिस्थितिमें अपनेको ले जाकर विचार करना चाहिये। मेरी समझसे, मैंने उनका हृदय टटोलकर जो कुछ देखा उसमें लोभ नहीं, परन्तु दुःख दिखायी दिया। मेरी तुच्छ समझके अनुसार सब दवा उनसे वापस ले लेनी चाहिये। जितनी दवा उन्होंने बरती हों उनके बदलेमें या तो उचित दाम दे दें या दवा दे दें। मेरी समझमें दवा देना ही वे पसन्द करेंगे और यही उचित भी है। मकानसे उनको नहीं निकालना चाहिये। थोड़ी देरके लिये मान भी लें, इसमें अपने औषधालयके स्वार्थमें हानि पहुँचेगी तो इस हानिको, एक ब्राह्मणके संतोषके लिये संतोष और आनन्दके साथ उनपर कुछ भी नाराज हुए बिना और कुछ भी अहसान जताये बिना सहना चाहिये। रही प्रेस और साहेबगंज़वालोंके सन्तोषकी बात। सो इस सम्बन्धमें मैं यदि स्पष्ट कहूँ वह बात कुछ कड़वी होगी। हमलोग वेतनभोगी कर्मचारीको क्रीतदास (खरीदा हुआ गुलाम) समझना पसन्द करते हैं। पचास रुपयेमें उनका खर्च नहीं चलता, उन्हें और भी उद्योग करना पड़ता है। हमारे यहाँका बुलावा

गया। उनके पास दो–चार रोगी बैठे हैं। कुछ दीन हैं और कुछ ऐसे हैं, जिनसे उन्हें पैसा मिलनेकी उम्मीद है। वे दोनोंको ही न्यायतः छोड़ नहीं सकते और न छोड़ना ही चाहिये। उन रोगियोंकी जगह हम हों और वैद्यजी हमें छोड़कर चले जायँ तो हमें दुःख होगा या नहीं ? **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'** इसलिये वैद्यजीको हमारे यहाँ आनेमें देर हो गयी। उनके अपने बाल–बच्चे भी हैं, घर–परिवारका काम भी है, उसमें कुछ देर हो सकती है। डाक्टरोंको बुलाते हैं। वे तीन–तीन घंटे बाद आते हैं, फीस देते हैं पर हम उनपर नाराज नहीं होते, लेकिन हमारे वैद्यजीने यदि कुछ देर कर दी तो हमारा पारा गरम हो जाता है। हाँ, सांघातिक बीमारी हो तो दूसरी बात है। अबकी बार ही वैद्यजीने—अपने पंडित लाधूरामजीकी पत्नीकी बीमारीमें जितना परिश्रम किया है, उसके लिये वे पुरस्कारके पात्र हैं। रोगीका अच्छा होना न होना तो उसके भाग्यपर निर्भर करता है। मौत आनेपर धन्वन्तरि भी नहीं बचा सकते। परन्तु चूँकि पंडितजी (वैद्यजी) हमारे वेतनभोगी हैं, इसलिये हमें मानो उनकी परिस्थिति पर कुछ भी विचार न करके नाराज होनेका पूरा हक है। यह है साहेबगंजवाले और प्रेसवालोंके असन्तोषका सच्चा चित्र। चाहे वे इस बातको स्वीकार न करें, बात यही है। नहीं तो आप विश्वास करें, पक्षपात नहीं करता, दावेसे कहता हूँ कि वैद्यजी अच्छे वैद्य हैं, उनका व्यवहार यथासम्भव दूसरोंकी अपेक्षा बहुत अच्छा है। मेरे साथ नहीं, गरीबोंके साथ भी जिनका मुझे परिचय है और मेरे पास प्रमाण है। बहुत अधिक लिख गया और वह भी बहुत तीव्र शब्दोंमें। साहेबगंजवाले और प्रेसवाले भाई मुझे बहुत प्यारे हैं। उनकी निन्दा करना नहीं चाहता। प्रसंगवश मनोवृत्तिका जो कुछ मैंने अध्ययन किया है, वह लिखा है। आप जो कुछ करेंगे वह वैद्यजीकी तथा सबकी भलाईके लिये ही होगा। मैं अपनी बालसुलभ धृष्टताके लिये क्षमा चाहता हूँ। लोभके सम्बन्धमें यह बात है कि महापुरुषोंको छोड़कर न्यूनाधिक रूपमें लोभ किसमें नहीं है ? वैद्यजीको तो पचास रुपये मिलते हैं जो मकान भाड़े और नौकरोंके वेतनमें ही चले जाते हैं। उनको तो आवश्यकता भी है। जिनके पास लाखों रुपये हैं और घरमें खानेवाले भी नहीं हैं, वे भी दिन–रात धन बढ़ानेमें ही लगे रहते हैं। ऐसी अवस्थामें बाल–बच्चेवाले वैद्यजीका लोभ तो क्षम्य ही होना चाहिये।

हनुमान

(३९)

गोरखपुर, २१. ७. ६०

श्रीचरणोंमें सादर प्रणाम,

पूज्य श्रीभाभीजीके देहावसानका तार कलकत्तेसे १३ तारीखका दिया हुआ कल मिला। समाचार तो मुझे दूसरे दिन ही मिल गया था। कलकत्ते श्रीपरमेश्वरजीसे फोनमें बातकी थी, तब उन लोगोंने बताया था। पर बाँकुड़ासे कोई समाचार नहीं मिला। हड़तालके कारण यह सब गड़बड़ी रही। पहले तो माननेको ही जी नहीं चाहा क्योंकि बीमारी कोई खास थी नहीं, कलकत्तेसे शायद शुक्रवार रातको ही गये थे। अकस्मात् कैसे क्या हो गया फिर परसों शामको कलकत्ते नारायणप्रसादसे फोनपर बात हुई तब सारी बातोंका पता लगा। भगवान्‌का विधान जैसा होता है वैसी ही बात बन जाती है।

आपके आँखकी तकलीफ तो अभी थी। यह एक और शोचनीय बात बन गयी। पर श्रीभाभीजीका तो अत्यन्त सौभाग्य था वे जीवनभर आपकी सेवा करती रहीं। सबके साथ अत्यन्त स्नेहका मधुर बर्ताव किया और अन्तमें बिना किसीसे सेवा कराये आपकी सान्निध्यमें दिव्यलोकको प्रयाण कर गयीं।

योगवाशिष्ठका काम रुका है। पुस्तक जो आप देख रहे थे, यहाँ भेज दी होगी, नहीं तो तुरन्त कृपया भेज देनी चाहिये, जिससे आगे छँटाईका तथा अनुवादका काम चले। प्रूफ कल मिले। पर लेख तो पहले ही छप गया था। हड़तालके कारण डाककी अनिश्चितता थी, इसलिये प्रतीक्षा नहीं की गई।

भाईजी हरिकृष्णदासजीके पहुँचनेका तार परसों ही मिला।

बाँकुड़ाका उपद्रव बहुत ही बुरी चीज हुई, अब शान्ति होगी। शेष भगवत्कृपा।

हनुमान

(४०)

गीताप्रेस, गोरखपुर १६। ५। ६२

परम पूज्यवर

सादर प्रणाम। आपके पत्र मिले। मैं उत्तर नहीं लिख पाया, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ। महीनोंसे बहुत ही कम पत्र लिख पाता हूँ। आपकी

सेवामें पत्र लखकर कुछ बातें निवेदन करनेका विचार बहुत दिनोंसे था. पर पत्र नहीं लिखा जा सका। कुछ निरुपाय–सी स्थिति है।

कलकत्ते जानेसे पूर्वतक मस्तिष्ककी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई एक धारामें चल रही थी। अधिक समय बाहरी ज्ञान नहीं रहता था और शरीर बेसुध बैठा रहता था। इस धारामें यहाँ कोई बाधा नहीं थी। कलकत्ते जानेपर बाधा आयी। दिनभर लोगोंसे मिलना, बातचीत करना, जाना–आना आदि करना पड़ता। मस्तिष्क चाहता कि किसी भी परिस्थितिका स्पर्श न हो, संसार सर्वथा विस्मृत हो जाय और परिस्थिति संसारमें बँधे रहनेको बाध्य करना चाहती। बड़ा द्वन्द्व–युद्ध चलता। दिनमें बात करते–करते गड़बड़ी होती। वृत्तिको जबरदस्ती संसारमें लगानेकी चेष्टा करनी पड़ती, भूलें होतीं, उन्हें सँभालनेकी चेष्टा होती। लोगोंके सामने कोई ऐसी चीज आकर एक तमाशा न बन जाय——इस भावनासे वृत्तियोंको संसारमें रहनेके लिये जबर्दस्ती करनी पड़ती। इसका परिणाम यह हुआ कि उस सहज धारामें बाधा आ गयी, साथ ही चित्तमें एक विचित्र अशान्ति पैदा हुई। रातको १२–१ बजे जब सोने जाता, तब दिनभरका आघात पायी हुई वृत्ति जबर्दस्ती संसारको त्याग देती। संसार नहीं रहता, तब संसारकी नींद भी नहीं रहती। लोग समझते, सो रहा है। इस प्रकार रातें बीततीं। कलकत्तेमें शायद दो–तीन रातें बीती होंगी, जिनमें मैं २–३ घंटे सोया हूँ। वहाँसे लौटनेपर काम बढ़ा मिला। फिर दुलीचंदके चोट लग गयी। वही परिस्थितिका पचड़ा यहाँ भी आ गया। अतएव यहाँ भी अब तक गड़बड़ी चल रही है। अब फिर कलकत्ते जाना है। काम होता ही नहीं। पत्र–व्यवहार प्रायः बन्द है। लोगोंकी शिकायतें आती हैं, पर जैसे मुर्देपर कोई कितना ही मारे, वैसी ही दशा है। यहाँ रहना भी बाधक ही प्रतीत होता है। लोग मिलने आते हैं, पत्र लिखते हैं। अपने–अपने काममें सभी लोग सहायता–सहयोग चाहते हैं और अपनी–अपनी दृष्टिसे सभीके कार्य महत्त्वके होते हैं। वे अपना मानते हैं——इससे सहायता–सहयोग चाहना भी दोषकी बात नहीं, स्वाभाविक है। 'कल्याण'वाले लेख चाहते हैं, प्रेसवाले कभी–कभी कुछ सलाह चाहते हैं, यह सभी उचित है, पर मैं क्या करूँ ? विवशता बढ़ी जा रही है। कहीं भी जाने–आने, मिलने–जुलने, लिखने–पढ़नेकी वृत्ति एकदम नहीं होती। विशेषांकका काम है। मैं जानता हूँ मुझे करना चाहिए। आप प्रेरणा भी उचित करते हैं। पर मैं न तो निर्णय कर पाता हूँ

न काम ही। आपके इच्छानुसार करना चाहता हूँ, आपके कार्यको बढ़ा देना, आपके सामने एक नयी परिस्थिति या उलझन पैदा कर देना मैं नहीं चाहता। पर मैं क्या करूँ——यह नहीं सोच सकता, न कर ही सकता हूँ।

मैं जानता हूँ कि विशेषांकका निर्णय तथा कार्य–आरम्भ शीघ्र हो जाना चाहिए, पर मैं कर नहीं पाता। कई प्रस्ताव हैं——

१. अग्निपुराणांक, २. वेदांक, ३. विविध देवोंकी शास्त्रीय उपासनाकी विधिका अंक, ४. सर्वधर्म–संग्रहांक, ५. कर्त्तव्यांक, ६. ब्रह्मवैवर्तपुराणांक आदि। इनमें मुझे 'ब्रह्मवैवर्तपुराणांक' जँचा। पुस्तकें मँगवायीं। छाँटकर जल्दी देनेकी बात सोची। पंडित श्रीरामनारायणदत्तजीसे भी कह दिया। यह सब हुआ, पर किया कुछ भी नहीं, न करनेकी जरा भी वृत्ति ही है और सचमुच अब मुझसे होगा भी नहीं। अतः श्रीगोस्वामीजीके साथ श्रीरामनारायणदत्तजीको यहाँ दे देना चाहिए। वे 'कल्याण' का सम्पादन ठीक कर सकेंगे। अतएव मेरी हाथ जोड़कर आपसे निम्नलिखित प्रार्थना है——

१. 'कल्याण' 'गीताप्रेस' सबके सब क्षेत्रोंसे मुझे शीघ्र ही निश्चय ही अलग कर दिया जाय। कहीं भी न नाम रहे, न जिम्मेदारी रहे, न हस्ताक्षर रहे, न सलाह आदि ली जाय। मरा समझकर भुला दिया जाय।

२. कहीं भी जाने–आनेकी परिस्थिति न रहे। कहीं एकान्त–स्थानमें रहा जाय। गोरखपुरमें भी रहा जाय, तो सर्वथा सब प्रकारकी इस क्रियाशीलतासे बिल्कुल पृथक् होकर।

३. पत्र–व्यवहार सर्वथा बन्द कर दिया जाय।

मेरी आपसे, मित्र–बान्धवोंसे, घरवालोंसे——सभीसे यह प्रार्थना है। होगा तो वही जो भगवान्‌ने रच रखा है।

ऋषिकेश आनेका मेरा मन उपर्युक्त कारणोंसे बिल्कुल नहीं है। प्रारब्धवश या भगवत्–विधानसे आना पड़े, तो ठीक ही है। मस्तिष्ककी गड़बड़ीका असर शरीरपर हुआ। शरीर शिथिल है। कामसे सर्वथा इन्कार करता है।

आपका —— हनुमान

विदेशी बन्धुओंकी दृष्टिमें श्रीभाईजी

श्रीभाईजीके सम्पर्कमें जो भी जैसे भी आया बिना प्रभावित हुए नहीं रहा। उनके जीवनकी भाषा और वाणीकी भाषामें एकल स्पष्ट दृष्टिगोचर

होता है। उनकी वाणीसे प्रस्फुटित शब्द लोगोंपर जादू–सा प्रभाव डालते थे। इसी प्रकार जिनका उनसे कभी व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं हुआ वे भी उनके लेखोंको पढ़कर इतने प्रभावित हुए कि अधिकांशके जीवनकी धारा ही बदल गई। ऐसा चमत्कारिक परिवर्तन भाईजीके विचारोंकी ओजस्विता, सारगर्भिता एवं बोधगम्यताके कारण हुआ। ऐसा परिवर्तन सिर्फ स्वदेशी एवं सनातन ध र्मावलम्बियोंके साथ ही नहीं अपितु विदेशी और अन्य पंथानुयायियोंके साथ भी हुआ। विदेशी बन्धुओंके कुछ प्रसंगोंका उल्लेख नीचे दिया जा रहा है।

डॉ० हरमन हिल (सन् १९३३ से १९३८ के बीच)

शिकागो नगरमें डॉ० हरमन हिल नामके एक जर्मन महापुरुष रहते थे वे उस समय वहाँ मेडिकल एसोशियेशनके अध्यक्ष थे। वे जैसे विद्वान् थे वैसे ही धनी और सहृदय भी थे। वे रविवारको गिरिजाघर नहीं जाते थे इसका कारण था उनके पिताका उनके साथ सद्व्यवहारका न होना। इसी कारण उनकी धारणा थी कि वे भगवान्‌को 'आवर फादर इन हेवेन'—'हे स्वर्गीय पिता' कदापि नहीं कह सकते हैं। उनका मन कहता कि भगवान् यदि उनके पिताके समान हैं तो उनको न पुकरना ही ठीक है।

इस बीच डॉ० हिलका सम्पर्क शिकागो विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध भारतीय विद्वान् डॉ० महानामव्रतजी ब्रह्मचारीके साथ हुआ। डॉ० ब्रह्मचारीजी उनके उपरोक्त भावोंको समझकर सलाह दी कि आप भगवान्‌को पिता न कहकर माता कह सकते हैं अथवा बन्धु कह सकते हैं या परम प्रिय संतानके रूपमें उनकी भावना कर सकते हैं। श्रीभगवान्‌के साथ इस प्रकारके सम्बन्ध भी हो सकते हैं—यह जानकर वे मुग्ध हो उठे। इस विषयमें और जानकारी प्राप्त करनेके लिये उन्होंने ग्रन्थ देखना चाहा तो ब्रह्मचारीजीने उन्हें 'कल्याण–कल्पतरु' पढ़नेके लिये दिया।

वे 'कल्याण–कल्पतरु'के लेखोंको मनोयोगपूर्वक पढ़ते और अविरल धारामें अश्रुपात करते। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लेखोंको पढ़कर वे कहते कि—'ऐसे मधुर लेख मैंने जीवनमें नहीं पढ़े थे।' भाईजीके लेखोंसे उनको ऐसा रसास्वादन मिलने लगा कि उससे उनका अटूट सम्बन्ध हो गया और उन्हें महसूस हुआ कि जो उनका गन्तव्य था उसका पथ–प्रदर्शक मिल गया। क्रमशः वे परम वैष्णव हो गये। हरिनामकी माला उनके कण्ठमें और करमें सुशोभित होने लगी। उनके जीवनकी दिशा और दशा परिवर्तित हो गयी।

अब श्रीभाईजीके सम्बन्धमें निम्नलिखित महानुभावोंके अनुभव उन्हींकी लेखनीसे——

श्रीकार्ल जी० गैस, लार्ष (जर्मनी)

'पंद्रह वर्ष पूर्व सन् १९५६ में मुझे उस महान् आत्माके दर्शनका सौभाग्य मिला था। एक व्यक्तिके जीवनकालमें १५ वर्षकी अवधि लंबी है। इस अवधिमें मेरा सम्पर्क अनेक व्यक्तियों एवं महापुरुषोंसे हुआ। अब अपने जीवनके उत्तरार्द्धकालमें मैं यह कह सकता हूँ कि श्रीभाईजीसे मेरी भेंट अत्यन्त आवश्यक थी। भारतदेशके मेरे प्रवासके प्रारम्भिक दिनोंमें बम्बईमें एक भारतीयने मुझसे कहा था——'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार एक विलक्षण पुरुष हैं'——और मैंने अपने सम्पर्कमें उन्हें ऐसा ही पाया। मैंने उनके रूपमें एक विलक्षण पुरुषके ही दर्शन किये, मुझे उनके रूपमें एक संतकी प्राप्ति हुई। जो लोग उनसे एक बार भी मिले हैं, वे उस उदार आत्माको कभी भूल नहीं सकते। मेरे प्रति उनके ये शब्द——'आप हमारे परिवारके एक सदस्य हैं', कोरे शब्द नहीं हैं। उनके आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य–सत्कारके कारण भारतमें मैंने अपनेको कभी विदेशी–अजनबी अनुभव नहीं किया। इसके अतिरिक्त उनके आतिथ्य–सत्कारसे मुझे ऐसे देशका वास्तविक दर्शन हुआ, जिसका शताब्दियोंसे संतो, महात्माओं एवं दार्शनिकोंने मानवीय अध्यात्मके एक विलक्षण मन्दिरके रूपमें निर्माण किया है। श्रीभाईजी द्वारा की गई निर्धन तथा आर्त्तजनोंकी सेवाके कार्योंका महत्त्व वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें उनकी सेवा सहायता प्राप्त हुई है। मुझे उन प्रेरणा–स्रोतोंकी तलाश थी, जिनसे भाईजी इस महान् सेवाकार्यमें प्रेरणाशक्ति प्राप्त करते थे। मैंने उनकी शिक्षाओंका भली–भाँति अध्ययन करनेका यत्न किया और मुझे उनकी——'आनन्दकी लहरें' नामक लघु पुस्तिकामें अपनी खोजका उत्तर प्राप्त हो गया——

"कोढ़ी, अपाहिज, दुःखी–दरिद्रको देखकर, यह समझकर कि 'यह अपने बुरे कर्मोंका फल भोग रहा है, जैसा किया था वैसा ही पाता है'——उसकी उपेक्षा न करो, उससे घृणा न करो और रूखा व्यवहार करके उसे कभी कष्ट न पहुँचाओ। वह चाहे पूर्वका कितना ही पापी क्यों न हो, तुम्हारा काम उसके पापको देखनेका नहीं है; तुम्हारा कर्त्तव्य तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी भलाई करना तथा उसकी सेवा करना ही है।"

ऐसे श्रेष्ठतम विचारोंका उत्स कहाँ पाया जाता है ? श्रीभाईजीने

गीताके इस ज्ञानको कि 'सभी प्राणियोंमें स्वयं भगवान्‌का निवास है' अपने जीवनद्वारा प्रमाणित कर दिया।

उनके परलोकगमनसे हुए रिक्त स्थानकी पूर्ति कौन करेगा ? इस नश्वर संसारसे उनके प्रयाणसे उन लोगोंकी महती क्षति हुई है, जिनका उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क था। मैं जीवंत हिंदू–धर्मकी श्रेष्ठतम विशेषताओंके प्रतीकके रूपमें श्रीभाईजीका सम्मान करता हूँ। लेकिन वे मात्र भारतके ही नहीं, सम्पूर्ण मानवताके हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि उनके उपदेशोंको सद्भावनामें विश्वास रखनेवाले सभी लोग सुनें और पालन करें। उन्होंने अपना सर्वोत्तम अंशदान मानव–मुक्तिके लिये अर्पण किया।

मेरा विचार श्रीभाईजीकी पुस्तकोंको जर्मन भाषामें अनुवाद करके प्रकाशित करनेका है, परंतु मैं अच्छा अनुवाद नहीं कर पाता, इसलिये यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी है। श्रीभाईजीकी पुस्तकें जर्मन लोगोंके लिये भी बहुत लाभदायक होंगी। श्रीभाईजी—जैसे संतोंको जर्मन भाषा आनी चाहिये थी। मैं उन्हें भारतीय संस्कृतिका सबसे उत्तम संदेशवाहक समझता हूँ।

श्रीभाईजीकी पुस्तकोंको और अपने हाथसे मुझे लिखे गये उनके अनेक पत्रोंको मैं उन महान् आत्माकी व्यक्तिगत धरोहरके रूपमें सुरक्षित रखूँगा।

श्री रुडोल्फ स्वेस, लूजर्न (स्विट्‌जरलैंड)

श्रीपोद्दारजी सदा–सर्वदा मेरी स्मृतिमें बने रहेंगे और उनके साथ रहनेका जो सौभाग्य मुझे मिला था, वह मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। उनके साथ बिताये गये थोड़ेसे समयमें ही मैंने उनका स्नेह, उनका प्रेम, उनके विचार, बल्कि उनकी जीवन–पद्धतिका परिचय प्राप्त कर लिया था।

भारत जाते हुए येरुशलममें मुझे कैमरान नामके एक भारतीय सज्जन मिले थे। उन्होंने ही मुझे गीताप्रेसका पता दिया था। अयोध्यासे चलकर मैं १७–३–६३ ई० रविवारको गोरखपुर पहुँचा। मुझे पूरा गीताप्रेस देखनेका सुअवसर मिला। गीताप्रेस मुझे एक संग्रहालय–सा प्रतीत हुआ। मुझे आज भी संगमरमरके उन पत्थरोंकी स्मृति है, जिनपर पूरी गीता खुदी हुई है। संध्यासमय जब मैंने गीताप्रेसमें ही रात बितानेकी इच्छा प्रकट की, तब मुझे बताया गया कि मेरे ठहरनेकी व्यवस्था गीतावाटिकाके सामने स्थित श्रीभाईजीके अतिथि–गृहमें की गयी है।

उस आनन्ददायक बगीचे (गीतावाटिका) में जब अँधेरा फैलने

लगा था। वहाँ बरामदेमें कुछ अन्य सम्मान्य व्यक्तियोंके साथ बैठे हुए श्रीपोद्दारजीका मैनें सर्वप्रथम दर्शन किया। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। रात्रि बिताकर जब प्रातःकाल उन्हें प्रणाम करके चला, तब मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरी कारमें खाने–पीनेका बहुत–सा सामान और ढेर सारे ताजे फल रखे हुए थे।

नेपालकी यात्रा पूरी करके मैं वापस गोरखपुर ८ नवम्बर १९६३ को (सम्भवतः दुर्गा नवमी) पहुँचा। वहाँ गीतावाटिकामें मेरा ऐसा स्वागत हुआ मानो कोई स्वजन परदेशसे लौटा हो। वहाँ मेरी भेंट बाबा श्रीचक्रधरजी महाराजसे भी हुई। श्रीपोद्दारजीके साथ मैं दुर्गानवमीकी पूजामें भी सम्मिलित हुआ। उस दिन भी मैं अतिथि–गृहमें ठहराया गया और दूसरे दिन पूरा दिन वहाँ बिताकर सायंकालकी ट्रेनसे मैं वहाँसे बिदा हुआ।

मुझे आज भी श्रीपोद्दारजी और उनके परिवारका स्मरण बार–बार होता है, मैं प्रायः उनकी तथा उनके सहकर्मियोंकी प्रशंसा करता रहता हूँ। मुझे विश्वास है कि उनके विचार तथा उनके कार्य उनके सम्मानित मित्रों और सहकर्मियोंके द्वारा आगे भी विश्वमें फैलते रहेंगे।

महज्जनोंकी दृष्टिमें श्रीभाईजी

श्रीभाईजीके सम्बन्धमें जितने विभिन्न वर्गोंके महारथियोंने लिखा है उतना किसी अन्यके लिये मिलना दुर्लभ है। लगता है जैसे उन्होंने सभी समकालीन महत्त्वपूर्ण मनीषियोंको मोहित कर रखा था। ऐसे उद्गारोंमेंसे थोड़ा अंश दिया जा रहा है—

(१)

श्रीमान् धर्मशील हनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम न जाननेवाले धार्मिक जगत्में विरले ही होंगे। इन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे सारे भारतमें और बाहर भी भक्ति, धर्म–श्रद्धा और अध्यात्मचिन्तनको पनपाया। इनके लेखोंसे लाखों लोग आस्तिक और नीतिमान् हुए। ये जैसे कहते, वैसे ही करते थे। इनकी करनी और कथनीमें भेद नहीं था। इनका आचरण दूसरोंके लिये आदर्श था और है भी।

—श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीविद्यातीर्थजी महाराज
शारदापीठ, श्रृंगेरी

(२)

आधुनिक भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अवश्य उल्लेखनीय है। धार्मिक साहित्य–क्षेत्रमें तो उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। वे भारतीय सनातन संस्कृतिके वास्तविक रूपसे उन्नायक थे।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्द तीर्थजी महाराज

शारदापीठ, द्वारकापुरी

(३)

श्रीहनुमानप्रसादजीकी प्रशंसामें जो कुछ कहा, सुना, लिखा जाय, वह अधिकाधिक भी अत्यल्प है। वे ईश्वर धर्म, राष्ट्र, सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, परम्परा आदि भारतीय विभूतियोंके अनन्य उपासक थे। उनकी श्रद्धा, भक्तिभावना और निष्ठा असाधारण थीं। हिन्दूधर्म, हिन्दूसभ्यता तथा हिन्दूसंस्कृतिकी सेवाके लिये सर्वश्रेष्ठ, 'कल्याण' मासिक पत्रिका एवं अंग्रेजी 'कल्याण–कल्पतरु' के माध्यमसे राष्ट्रकी जो सेवा उन्होंने अपने जीवनमें की, वह दूसरा कभी नहीं कर सकता।

पोद्दारजीका निश्छल, निष्कपट, छल–छिद्र–पाखण्डरहित स्वभाव उनकी सौम्यमूर्तिके प्रथम दर्शनमें ही सब लोगोंके समक्ष प्रकट हो जाता था।

—श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी निरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज

गोवर्धनपीठ, जगन्नाथपुरी

(४)

अनासक्त कर्मयोगी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीय चिन्तन–परम्पराकी अमूल्य निधि थे। वे सहज वैष्णव–वृत्ति एवं मधुरा–भक्तिके जीवन्त प्रतीक थे।

—जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज

ज्योतिष्पीठ, बदरिकाश्रम (उतराखण्ड)

(५)

'कल्याण' के ओजस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके असामयिक परलोकगमनसे सनातन–धर्मका एक स्तम्भ टूट गया। वे उच्चकोटिके विद्वान् होनेके साथ धर्म तथा देशके कर्मठ सेवक थे। उनके जैसे योग्य और निर्भीक व्यक्तिकी आज बड़ी आवश्यकता थी, पर कुटिल कालने हमसे उन्हें छीन लिया। उनका शरीर भले ही न रहा, क्योंकि शरीरका नाश अवश्यम्भावी है; पर उनके विचार चिरकालतक लोगोंको

प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे।

—स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज

(६)

हमारे बीचसे प्रभु–विश्वासी, उदार तथा परम स्नेही प्रिय भाईजी चले गये। वे क्या थे ? कहाँसे आये ? –इसे तो वे ही जानें; पर प्रेमीजनोंके वे सर्वस्व थे। उनके जीवनसे प्रभु–प्रेमकी अविचल निष्ठाकी प्रेरणा भक्तजनोंको प्रेरित करती रहती थी।

—स्वामी श्रीशरणानन्दजी

(७)

उन्होंने मेरे अन्तस्तलके सूक्ष्मतम प्रदेशमें ऐसा प्रवेश कर लिया है, स्थान पा लिया है—उनकी मानसी मूर्ति ऐसी प्रतिष्ठित हो गयी है कि मुझे यह विश्वास ही नहीं होता कि आपलोगोंके कथनानुसार वे कहीं नित्यलीलालोकमें चले गये हैं।

—स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

(८)

वे आध्यात्मिक पुरुष थे। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों संघर्षोंमें मैंने उनकी आध्यात्मिकताको यथार्थ रूपमें पाया। वे समन्वयवादी थे। सभी भारतीय धर्मोंके प्रति उनके मनमें आदरका भाव था। उन्होंने जीवनभर वैदिक धर्म और साहित्यकी अमूल्य सेवाएँ की, फिर भी उनका धर्म उदार और व्यापक दृष्टिकोणसे पुष्ट था।

—जैनमुनि आचार्य श्रीतुलसी

(९)

श्रीपोद्दारजीने संस्कृति एवं धर्मके प्रचार तथा प्रसारमें जो योगदान किया है, वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

—जैनमुनि श्रीसुशीलकुमारजी महाराज
नयी दिल्ली

(१०)

श्रीभाईजी 'सत्य' एवं 'धर्म' के सच्चे तथा विशुद्ध प्रतिनिधि थे। आजके अनीश्वरवादी भौतिकताके युगमें उन–जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है। निश्चय ही उनके कलेवरमें भगवदीय रश्मि विद्यमान थी।

—स्वामी कृष्णानन्द
डिवाइन लाइफ सोसाइटी, ऋषिकेश

(११)

श्रीपोद्दारजी रसोपासनाके एक सरस स्रोत थे। वे भक्तोंकी रहनीके आदर्श थे। उनके सरल एवं सरस जीवनको देखने मात्रसे भावजगत्‌में लोग प्रवेश कर जाते थे। श्रीराधाष्टमीका ऐतिहासिक महोत्सव जिसने देखा होगा, उसको ज्ञात होगा कि वे कितने उच्चकोटिके महापुरुष थे। श्रीराधाष्टमीके महोत्सवके दर्शन मैंने भी गोरखपुर स्थिति गीतावाटिकामें किया है। उस दिन वहाँ साधारण जीव भी आनन्द–राज्यमें प्रवेश कर श्रीराधाभावका दर्शन कर लेता था। धार्मिक जगत्‌में सरस भक्ति—श्रीराधाभावका वितरण उन्होंने जिस उदारतासे किया, उसका दूसरा उदाहरण अब दुर्लभ है।

—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज

लक्ष्मण–किला, अयोध्या

(१२)

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तो भगवद्धामसे आये थे और वहीं चले गये। श्रीभाईजीके प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए, परंतु उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा है। हिन्दू धर्म एवं जातिके लिये वे जो कर गये हैं उसके लिये वे सदा स्मरण किये जायेंगे।

—पूज्य श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज

(१३)

दास तो उन्हें देवताका ही अवतार मानता है, जो लोक–कल्याणार्थ भगवत्कार्यके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे।

—वीणा महाराज श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर

(१४)

श्रद्धेय श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कोई लिख सकनेवाला लिखे और दीर्घकालतक लिखता ही रहे, तो भी उसे यही कहना पड़ेगा कि 'तदपि तव गुणानां .... पारं न याति'।

—श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

(१५)

Shri Hanumanprasad Poddar has done memorable services to the cause of Hinduism and it is but right that his services should be suitably recognised.

C. RAJGOPALACHRI

FIRST GOVERNOR GENERAL OF INDEPENDENT INDIA

(१६)

आजकल धर्मनिरपेक्षताके नामपर धर्म–ग्रन्थोंकी उपेक्षा करनेका रिवाज–सा अपने देशमें चल पड़ा है। सर्व–धर्म–समभावके विकासके लिये आवश्यक यह है कि हम अपने धर्मके साथ–साथ अन्य धर्मोंके साहित्यका भी सम्यक्‌रूपसे अध्ययन–मनन करें। गीताप्रेसने अपने धर्मग्रन्थोंको वृहत् पैमानेपर प्रकाशित और प्रचारित करके एक महत्त्वपूर्ण सेवा–कार्य किया है और इसका मुख्य श्रेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साधनापूर्ण समर्पित जीवन एवं व्यक्तित्वको है।

——जयप्रकाश नारायण

(१७)

सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण' के संस्थापक–संपादकके रूपमें श्रीपोद्दारजीकी हमारी संस्कृतिके पुनरुत्थानके निमित्त की गयी सेवाएँ दीर्घकालतक स्मरण की जायेंगी। नाम–मात्रके मूल्यपर लाखों लोगोंके लिये धार्मिक ग्रन्थोंको व्याख्यासहित उपलब्ध कराकर उन्होंने हिन्दीके माध्यमसे हमारे धर्म–ग्रन्थोंको लोकप्रिय बनानेमें अद्वितीय सेवा की है।

——वराह व्यंकट गिरि, भारतके राष्ट्रपति

(१८)

श्रीपोद्दारजी आदर्श मानव थे। अपने जीवनकालमें उन्होंने सर्वथा परोपकार किया और दूसरोंकी भलाई चाही। चन्दनकी भाँति वे स्वयंको घिसकर दूसरोंको सुगन्ध देते रहे। हमारी संस्कृति जो आज भी जीवित है और फलती–फूलती है, निस्संदेह उसका श्रेय श्रीपोद्दारजी–जैसे महापुरुषोंको है।

—गोपाल स्वरूप पाठक
उपराष्ट्रपति, भारत

(१९)

श्रीपोद्दारजीने धार्मिक चेतना एवं समाज–सेवाके क्षेत्रमें मूल्यवान् कार्य किया। उन्होंने भारतीय जनताकी जो सेवाएँ की हैं, उनके लिये वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

—मोहनलाल सुखाड़िया
मुख्य मन्त्री, राजस्थान

(२०)

श्रीहनुमानप्रसादजी हमारे देशकी एक अमूल्य निधि थे। मातृभूमिके

प्रति उनकी सेवाओंको सदा स्मरण किया जायगा। हमलोगोंको गर्व है कि वे बीकानेर अंचलके थे।

—बीकानेर महाराजा श्रीकर्णीसिंहजी एवं महारानी

(२१)

मैं कह सकता हूँ कि श्रीपोद्दारजीका जीवन एक उत्थानकारी और महान् उद्देश्यके प्रति पूर्ण समर्पित था—एक सच्चा हिन्दू जो कुछ बननेकी आकांक्षा कर सकता है, उसका सुन्दर उदाहरण था।

—महाराजाधिराज श्रीनेपालनरेश

(२३)

श्रीपोद्दारजीके निधनसे हिंदू–धर्म और हिंदू–संस्कृतिका एक महान् अध्वर्यु उठ गया। विश्वमें हिंदू–धर्मके प्रचार तथा प्रसारके लिये श्रीपोद्दारजीने आजीवन प्रयत्न किया, जो हमारे राष्ट्रीय इतिहासमें सदैव सुरक्षित रहेगा। श्रीपोद्दारजी सादा जीवन और उच्च विचारकी जीती–जागती प्रतिमा थे।

——अटलबिहारी बाजपेयी

अध्यक्ष—भारतीय जनसंघ

(२४)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'कल्याण' के संस्थापक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी पुण्य स्मृतिमें एक श्रद्धाञ्जलि–ग्रन्थ प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया है।

श्रीपोद्दारजी धार्मिक विचारोंके व्यक्ति थे, जिन्होंने जीवनभर समाज–सेवा एवं देश सेवाका महान् कार्य सहज एवं शान्त मनसे किया। आपने 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोंके माध्यमसे भारतीय संस्कृति, देश एवं समाजकी उल्लेखनीय सेवाएँ की हैं।

मैं श्रद्धाञ्जलि–ग्रन्थकी सफलताकी कामना करता हूँ।

—बंसीलाल

मुख्यमंत्री, हरियाणा

(२५)

श्रीभाईजीने जिस प्रकार अपने जीवनको जाति, धर्म, समाज, देश और साहित्यकी सेवामें खपा दिया था, वह अनुकरणीय है।

—राजबहादुर

मन्त्री, भारत सरकार

(२६)

His contribution to the revival of Indian glory is so great that he could truly be called another personality like Hanuman of Ramayan fame.

K. HANUMANTHAIYA

(२७)

I am quite familiar with his work. He was greatly responsible for popularizing religious literature among the younger men, and the Gita Press and the KALYAN magazine are the legacy left to us by him--the eloquent monuments of his vision and devotion to our ancient DHARMA.

B. GOPALA REDDI

GOVERNOR, U.P

(२८)

पूज्य हनुमानप्रसाद पोद्दारका पार्थिव देह पंचतत्वोंमें विलीन हुआ है। उनका सुयश अजर–अमर है। भारतीय संस्कृतिके वे महान् दीप–स्तम्भ थे। आध्यात्मिक विचार और संस्कारके प्रचार–प्रसारमें उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

श्रीमन्नारायण

राज्यपाल, गुजरात

(२९)

अपने सुदीर्घ जीवनकालमें भाईजीने मानव–मात्रकी अनेक प्रकारसे सेवा की और भारतीय संत–परम्पराका सर्वोत्कृष्ट प्रसाद सर्वजनके लिये उपलब्ध किया। उनका लोकसंग्रही व्यक्तित्व हम सभीको निरन्तर प्रेरणा देता रहता है।

सत्यनारायणसिंह

राज्यपाल, मध्यप्रदेश

(३०)

Shri Hanumanprasad Poddar was one of the truly great men of Bharat. He believed in doing his

duties without the least desire for material reward or fame. He was a true Karamyogi.

----SHANTI S. DHAVAN
Governor, West Bengal

(३१)

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका नाम उन महापुरुषोंमें लिया जायगा, जो भारतीय संस्कृति और सभ्यताके पोषक और प्रचारक रहे हैं।

—देवकान्त बरुवा
राज्यपाल, बिहार

(३२)

गीताप्रेसके संचालन और 'कल्याण' के प्रस्थापन तथा प्रकाशनने पोद्दारजीको अमर बना दिया है। राष्ट्रभाषाकी जो समृद्धि उनके द्वारा हुई, उसके लिये सारा देश युग–युगतक उनका अभारी रहेगा। हिन्दीके साहित्य–भण्डारको जो अनमोल रत्न उन्होंने 'कल्याण' के द्वारा प्रदान किये हैं, वे समस्त देश और जगत्‌के लिये चिर–कल्याणरूप तथा उसके वर्तमान तथा भावी जीवनके लिये मंगलमय हो गये हैं।

—कमलापति त्रिपाठी
मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश

(३३)

Sri Hanuman Prasad Poddar is one of the greatest sons of India in recent times.

Sri poddar practised what he preached. I found in him a highly religious and pious personality.

M. ANANTHASAYANAM AYYANGAR.
Ex.--Governor.

(३४)

The name of Sri Hanumanprasad Poddar will remain ever fresh in the memory of his countrymen through the valuable services which he has rendered to the country.

-----S. K. PATIL
Bombay

(३५)

उनके जैसे सरल सहृदय, परदुःखकातर, निरभिमानी विरले ही होते हैं। हिंदू–धर्मका उनका अध्ययन गहरा था। वे जो कुछ लिखते, उसपर भगवान्‌के प्रति निष्ठाका रंग चढ़ा रहता।

—हरिभाऊ उपाध्याय
गांधी–आश्रम, हटुंडी (अजमेर)

(३६)

वे एक निःस्पृह समाजसेवी व्यक्ति थे। गोरखपुर, देवरिया, बस्तीके बाढ़–पीड़ित क्षेत्रोंकी निर्धन जनताको निःशुल्क कम्बल–भोजन–वितरण तथा आवाससे बराबर सहायता किया करते थे। उन्होंने कुष्ठ–आश्रम तथा अनेक सामाजिक संस्थाओंकी स्थापना तथा संचालन कार्य किया। इतना सब करते हुए भी उनमें अभिमान तथा ख्याति–प्राप्तिकी कोई लालसा नहीं थी।

—चौधरी चरण सिंह
लखनऊ

(३७)

एक असामान्य भगवद्भक्त, कर्मयोगकी साकार मूर्ति, करुणाके सागर, विनम्रताकी विभूति, निःस्वार्थ प्रेमके प्रतीक, ज्ञानके गणेश और सेवाके आदर्श उठ गये।

—नानाजी देशमुख
मन्त्री, भारतीय जनसंघ

(३८)

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मेरे एक पुराने मित्र थे। उन्होंने धार्मिक साहित्यके प्रचारके क्षेत्रमें अद्वितीय सेवाएँ की हैं।

—घनश्यामदास बिरला

(३९)

मैं उनके सम्पर्कमें लगभग ३० साल पहले आया तभीसे उनका मेरे ऊपर अगाध प्रेम और स्नेह रहा। वैसे हमारे पूरे बिरला–परिवारका उनसे निकटका सम्बन्ध रहा है।

श्रीहनुमानप्रसादजी सदैव इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि सामनेवालेको किस बातसे प्रसन्नता होगी। मिलनेवालेके मनमें कोई कष्ट या

व्यथाकी अनुभूति न हो, वे यही सोचते थे। सारे धर्मोको प्रभुका स्वरूप मानकर——उन्हें एक ही सत्यको उपलब्ध करानेवाले विभिन्न मार्ग समझकर वे उनके प्रति समान आदरभाव रखते थे।

——बसंत कुमार बिरला

(४०)

वे हमारे बीच पारसमणिकी भाँति ज्योति थे। उनके परम मृदुल स्वभाव और करुणाविगलित व्यक्तित्वका आकर्षण सभीको सम्मोहित कर लेता था।

पद्मभूषण सेठ श्रीमुगतूरामजी जैपुरिया

(४१)

श्रीभाईजी मानवताकी साक्षात् मूर्ति थे। उनके माध्यमसे धार्मिक, सांस्कृतिक और लोककल्याणकारी साहित्यकी जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई, उससे कोटि-कोटि मानवोंको प्रेरणा और आन्तरिक शान्ति मिली।

——पद्मपति सिंहानिया

कानपुर

(४२)

श्रीभाईजीके बारेमें जितना कुछ कहा जाय, थोड़ा है। वे एक महापुरुष थे एवं अपना समय भगवान्‌की आराधना एवं उनकी चर्चामें लगाते थे। प्रेम सादगी, सरलता एवं सद्भावनासे रहकर ईश्वरमें आस्था रखनेवाले ऐसे व्यक्ति कम ही मिलते हैं।

——नरसिंहदास बाँगड़

कलकत्ता

(४३)

उनके रूपमें श्रीमद्भगवद्गीताका स्थितप्रज्ञ, भगवत्प्रियभक्त मानो सशरीर दिशाओंको आलोकित कर रहा था। 'कल्याण' के रूपमें उनका कृतीत्व समस्त हिंदू-धर्मानुयायियोंको किंवा मानवमात्रको कल्याण-मार्गका शाश्वत प्रदर्शन करता रहेगा।

——गिरधारीलाल मेहता

कलकत्ता

(४४)

श्रद्धेय भाईजीका अनेक व्यक्तियोंसे सम्पर्क था और वे सभीसे प्रेम करते थे; परंतु हम जब भी उनका दर्शन करने जाते थे, तब ऐसा लगता था कि वे हमसे ही सर्वापेक्षा अधिक स्नेह करते थे। यह उनकी महानता

थी। उनके दर्शन और साधन–सम्बन्धी उपदेशका श्रवण करके हमारे–जैसे संसारलिप्त जीवोंके मनमें भी एक बार शान्ति जरूर आ जाती थी।

वे इतने उदार और दयालु थे कि लोग उनके पास जो भी इच्छा लेकर जाते थे, उसकी पूर्ति हो जाया करती थी।

मेरी समझमें ऐसे दुर्लभ महापुरुष जीवोंका कल्याण करने हेतु कभी–कभी ही भगवदिच्छासे संसारमें आते हैं और भगवदिच्छानुसार कार्य सम्पन्न करके परमधाम चले जाते हैं।

——हनुमानप्रसाद धानुका
कलकत्ता

(४५)

श्रद्धेय भाईजीसे मेरा व्यक्तिगत परिचय करीब ३५–४० वर्षोसे रहा है। 'कल्याण' मासिक पत्रद्वारा उन्होंने हमारी प्राचीन संस्कृतिकी जो सेवा की है, वह इतिहासमें सदा स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायगी। 'कल्याण'–जैसे विशुद्ध उत्कृष्ट धार्मिक पत्रके लगभग पौने दो लाख ग्राहकका होना एक ऐसी महान् उपलब्धि है, जो उनकी सतत साधनाका सुपरिणाम है।

——श्रीगजाधरजी सोमानी

(४६)

श्रीभाईजीका जीवन सरल, स्वच्छ और स्पष्ट था। आडम्बर, बनावट, दिखावट, सूक्ष्मतम भी छल–कपट और असत्याचरण उन्हें छूतक न गया था। जिस भावना, भक्ति और श्रद्धासे बाल–बच्चे, स्त्री–पुरुष, छोटे–बड़े——सभी उनके पास आते थे और जिस शान्ति और संतोषको लेकर कइयोंको मैंने जाते देखा है, उससे यह समझना मुश्किल नहीं था कि भाईजीके व्यक्तित्व और विचारोंका कितना मार्मिक असर लोगोंपर होता था।

——कमल नयन बजाज

(४७)

भारतीय संस्कृतिके सनातन प्रवाहमें जो निःस्पृह संत और जीवन्मुक्त मनीषी हुए हैं, उन्हींकी श्रृंखलामें मैं भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनको देखता हूँ। वे गृहस्थ थे, संसारमें रहे, किंतु उनका सारा जीवन, उनके विचार कर्तव्य और आदर्श एक ऐसे जीवन्मुक्त संतके रहे हैं, जिसने अपने सर्वस्वको——अपने–आपको इस भगवत्–सृष्टिरूपी भगवान्में सर्वथा लीन और विलीन कर दिया था और जिसका निजका कोई कर्तव्य और व्यक्तित्व

नहीं रहा। वे मनुष्य मात्रकी सर्वांगीण सेवामें अपने जीवनको होमकर मृत्युंजयी बन गये हैं।

——सेठ गोविन्ददासजी

(४८)

'कल्याण' और गीताप्रेसको इस स्थितिपर पहुँचानेका अधिकतर श्रेय पूज्य श्रीभाईजीको ही है। उन्होंने इसके लिये अपना जीवन अर्पण कर रखा था। रात्रिके ११–१२ बजेतक काम करते–करते सोकर प्रातः ३–४ बजे सिरहाने रखे कागजोंको उठाकर काम करने लगना उनका नित्यका व्यापार था। भोजन करनेके बाद थोड़ी देर लेटकर विश्राम करते समय भी कागज हाथमें उठाये 'कल्याण' का कार्य ही करते रहते। आये हुए लेखोंका सम्पादन, स्वतन्त्र लेख लिखना, चित्रोंका चयन, चित्रकारको चित्र तैयार करनेमें पग–पगपर मार्गदर्शन, गैली प्रूफ तथा पेज प्रूफोंका अवलोकन आदि सारे काम वे स्वयं करते थे।

——श्रीजयदयालजी डालमिया

(४९)

मैंने मन्त्र–तन्त्रके प्रति अपनी शंका उनके समक्ष रखी। मेरी इस उत्कण्ठाको उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे केवल शान्त ही नहीं किया, अपितु जो कुछ मुझे समझाया, उससे मुझे विश्वास हो गया है कि ये दोनों ही सत्य हैं।

वे आध्यात्मिकता और ज्ञानकी मूर्ति होनेके साथ–साथ एक सच्चे साधु थे और जिस साधुताका प्रकाश बालकोंके जीवनमें दिखायी देता है, वह उनमें भरपूर थी।

——श्रीशान्तिप्रसादजी जैन

(५०)

एक बार श्रीभाईजीके नामका एक झूठा पत्र दिखाकर एक आदमीने मुझसे कुछ सहायता ले ली। जब पता लग गया कि वह गलत आदमी है, तब उसपर कोई केस किया गया। श्रीभाईजीको यह बात ज्ञात हो गयी। उन्होंने मुझे कोर्टसे उस केसको वापस लेनेके लिये कहा। उन्होंने लिखा——'भाई, इससे गलती हो गयी है, इसे माफ कर दिया जाय।' ऐसी थी उनमें दयालुता। समय–समयपर अनुभव किये गये उनके गुणों एवं व्यवहारके संस्मरण मेरे मानस–पटलपर अंकित हैं।

——पद्मभूषण श्रीगूजरमलजी मोदी

(५१)

मैं मानता हूँ कि हमारे जमानेमें सनातनधर्मको हनुमानप्रसादजीसे बढ़कर दूसरा कोई 'मिशनरी' प्राप्त नहीं हुआ।

—आचार्य काकासाहेब कालेलकर

(५२)

श्रीपोद्दारजीको मैं आधुनिक युगका 'महाप्रभु चैतन्य' मानता हूँ। चैतन्यके समान ही वे स्वयं सच्चे महाभागवत होनेके अतिरिक्त जनतामें भगवन्नामके वितरणमें सतत जागरूक थे।

—डॉ बलदेव उपाध्याय

(५३)

उनके चरित्रगत महत्त्वपर मैं बहुत ही मुग्ध हूँ, यद्यपि यह बात जगत्को कहनेकी वस्तु नहीं है। आजके युगमें जो लोग जगत्का कल्याण करनेमें लगे हैं, वे साधारणतया बहिर्मुख होते हैं; किंतु भाईजी अन्तर्मुख थे और अपनी ऊर्ध्व दृष्टिकी रक्षा करते हुए, प्राचीन आदर्शको शिरोधार्यकर तथा व्यक्तिगत एवं समष्टिगत सामाजिक कर्तव्यका पालन कर उन्होंने उच्च आदर्शकी स्थापना की।

—पद्मभूषण महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज

(५४)

श्रीभाईजी इस युगकी एक महान् विभूति थे। भारतीय संत-परम्परामें उनका बहुत ऊँचा स्थान था। वे ज्ञानोत्तर भाव-राज्यमें प्रतिष्ठित थे।

—चिम्मनलाल गोस्वामी

(५५)

सहस्रों लोग श्रीभाईजीद्वारा लाभान्वित हुए हैं और उनके सम्पर्कमें रहे हैं। सबको वे अपने लगे हैं।

—श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'

(५६)

पोद्दारजीने अकेले चुपचाप जितना किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने सर्वोत्तम सहित्यको सरल-ललित भाषामें और वह भी यथासम्भव अवितथ और शुद्ध रूपमें लिखकर, लिखाकर प्रकाशित कराया। हिन्दी भाषा इन ग्रन्थ-रत्नोंसे बहुत समृद्ध हुई और उसके पाठकोंका मन पवित्र हुआ है, विचार उद्‌बद्ध हुआ है और ज्ञान-परिसर विस्तीर्ण हुआ है।

पोद्दारजी अब मर्त्यकायामें नहीं हैं। परंतु उन्होंने उत्तम साहित्य और उत्तम विचारोंके प्रेमीमात्रके हृदयमें सदा-सर्वदाके लिये अपने आपको प्रतिष्ठित कर दिया है! वे सही अर्थोंमें अमर हो गये हैं।

—आचार्य श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी

(५७)

भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके लिये मेरे हृदयमें सदा विशेष सम्मान रहा है और यह इससे समझा जा सकता है कि सन् १९४३ में प्रकाशित मेरा ग्रन्थ 'ब्रज भाषाका व्याकरण' उन्हींको समर्पित हुआ है। महर्षि मालवीय, राजर्षि टण्डन तथा पोद्दारजीको ही मैंने ग्रन्थ समर्पित किये हैं। इसीसे समझिये कि इन्हें मैं किस कोटिमें रखता था।

—आचार्य श्रीकिशोरीदासजी बाजपेयी

(५८)

भारतीय संस्कृतिके पुनरुत्थानमें श्रीपोद्दारजीका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'कल्याण'के सम्पादन द्वारा उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थों, पुराणों आदिमें जो कुछ सनातन मूल्यवान् श्रेष्ठ तथा वरेण्य था——उसका सहस्रों नर-नारियोंमें प्रचार-प्रसार कर उन्हें नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा भारतीय जीवन-आदर्शोंके प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा प्रदान की। गीताप्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे हैं, वह श्रीपोद्दारजीकी सूझ-बूझ तथा उनके परीक्षण-निरीक्षणका परिणाम था।

—श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

(५९)

श्रीपोद्दारजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतके ज्ञानको प्राचीन (संस्कृत) अथवा आधुनिक भारतकी भाषा (हिंदी) में फैलाते थे। श्रीपोद्दारजीने भारतकी सारी परम्पराको हिंदीमें लाकर इसे विशाल जन-समूहके लिये सुलभ कर दिया। जिन प्राचीन पुराणों और ग्रन्थोंका जनता पहले केवल नामभर सुना करती थी, वे ग्रन्थ अब उसके हाथमें है और हिंदीमें हैं, जिस भाषापर जनताका स्वाभाविक अधिकार है। यह एक ऐसी सेवा है, जिसका मूल्य आसानीसे आँका नहीं जा सकता। वे भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार थे।

—श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'

(६०)

गीताप्रेसके द्वारा श्रीपोद्दारजीने बड़े महत्त्वका काम किया——प्राचीन ग्रन्थोंको शुद्ध रूपमें सुलभ मूल्यमें प्रकाशित–प्रसारित करके। 'कल्याण'का सम्पादन करते–करते वे स्वयं 'कल्याण मूर्ति' बन गये थे।

——श्रीवियोगी हरि

(६१)

श्रीपोद्दारजीके कार्यसे, विशेषतया प्राचीन हिंदू धार्मिक साहित्यके अनवरत प्रकाशनसे कौन नहीं परिचित है ? पोद्दारजीकी प्रबन्ध–कुशलताके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'से लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित और वितरित धार्मिक साहित्यने हिंदू–संस्कृतिका संदेश घर–घर पहुँचाया।

——श्रीधीरेन्द्र वर्मा

(६२)

जब मैं लेनिनग्राडमें था तब मुझे आपकी पत्रिकाके सम्बन्धमें परिचय मिला था। प्राचीन भारतकी पौराणिक सामग्रीको धामिक दृष्टिकोणसे जनताके समक्ष उपस्थित करनेका बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य आपकी पत्रिका द्वारा सम्पादित हुआ है। हिन्दीका एक तुच्छ विद्यार्थी होनेके नाते इस महत्त्वका मुझे भली–भाँति अनुभव है।

——बारान्निकोव

Embassy of the Union Of Soviet
& Scocialist Republics, New Delhi

(६३)

मैं यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भाईजी तीन भाषाओंपर समान अधिकार रखते हुए इतना उच्च भाव–पूर्ण साहित्य सृजन कर सकते थे। यह 'पद–रत्नाकर' एक श्रेष्ठ भक्त कविकी पूर्ण संवेदनशील अभिव्यक्तिकी द्योतक है। मैंने हिन्दी साहित्यके भक्तिकालीन कवियोंकी रचनाएँ पढ़ी हैं, उनका विवेचन–विश्लेषण भी किया है, कुछ अनुसंधान भी किया है। मैं अल्प ज्ञानके आधारपर कह सकता हूँ कि भाईजीका यह पद–साहित्य इस श्रेणीके कवियोंसे किसी भाँति कम नहीं है। वरन् इसकी विशेषता तो भाषा–त्रयका एकत्र समाहार है। खड़ी बोलीमें इतना सरस, भाव–पूर्ण भक्ति–साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आया।

——डा० विजयेन्द्र स्नातक

(६४)

यह ग्रन्थ काव्य और संगीत दोनों ही कलाओंकी एक ललित, मधुर उपलब्धि है और इसका 'पद–रत्नाकर' नाम सर्वथा सार्थक है। 'सूर–सागर'के पश्चात् 'पद–रत्नाकर' हिन्दीकी दूसरी अमूल्य गीति–निधि है। 'सूर–सागर' कृष्णाश्रयी है, 'पद–रत्नाकर' राधा–माधव उभयाश्रयी। यह ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंका गौरव–ग्रन्थ है।

भाईजीने राधा–कृष्णके दिव्य–प्रेमको पूर्णतया मर्यादानिष्ठ मधुर–रूपमें चित्रित किया है। सीताराम–प्रेमको जिस महिमा–मंडित आदर्श–रूपमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने प्रस्तुत किया था, वैसे ही भाईजीने राधा–कृष्ण–प्रेमको सम्पूर्ण गरिमाके साथ अंकित किया है। 'पद–रत्नाकर' भगवद्भक्तोंका ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी–प्रेमियोंका गल–हार बनेगा—यह निश्चित ही है।

—डा० सियाराम सक्सेना 'प्रवर'

(६५)

व्रजभाषा और खड़ी बोलीके उनके सैकड़ों पद हैं, जो उनके अन्तर्मार्दसे ओत–प्रोत और उल्लसित हैं। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमें शायद ही दो–एक नाम उसके साथ रखे जा सकें। लेखकके रूपमें कठिन विषयको सुबोध शैलीमें समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देश–भक्तिमें वे बहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ–दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। ऐसे व्यक्तिके विषयमें, जिसका अधिकांश अतल सागर–गर्भमें बहते हुए 'आइस–बर्ग'की भाँति संसारकी दृष्टिसे ओझल है, लेखनी क्या लिखेगी ? वाणी क्या प्रकट करेगी ?

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

श्रीभाईजीपर शोध–प्रबन्ध

श्रभाईजीने हिन्दी साहित्यकी जो अभिवृद्धि की है उसका अभीतक साहित्यिक दृष्टिसे आंकलन नहीं हो सका है। इधर कुछ वर्षोंसे हिन्दीके शोधार्थीयोंका ध्यान इधर गया है। अभीतक भाईजीपर सात शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं। उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

(१)

शोधका विषय—'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०—४५४

शोधार्थी---श्रीसदानन्द गुप्त

निर्देशक--डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह,
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

उपाधि वर्ष--१६७६

संस्थान--गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

शोध प्रबन्धमें कुल सात अध्याय हैं। (१) हिन्दी पत्रकारिता :उद्भव और विकास (२) श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार : संक्षिप्त परिचय (३) धार्मिक आध्यात्मिक पत्रकारिता और 'कल्याण' का प्रवर्तन एवं गीताप्रेसकी स्थापना (४) श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके सम्पादन सिद्धान्त (५) श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार द्वारा सम्पादित 'कल्याण' का ऐतिहासिक विकास (६) 'कल्याण'के कुछ विशिष्ट स्तम्भ, और (७) कल्याणकी लोकप्रियताके रहस्य।

इस शोध प्रबन्धमें 'कल्याण'के माध्यमसे हिन्दी साहित्य, संस्कृति एवं पत्रकारिताको पोद्दारजीकी देनके बारेमें निष्कर्ष निकाला है कि 'कल्याण'के प्रकाशनसे धार्मिक पत्रकारिताके क्षेत्रमें एक नया आयाम जुड़ा। उसने तत्कालीन जनजीवनको एक नया मोड़ दिया। भाईजी, ने अपने जीवनकालमें चौवालिस विशेषांक प्रकाशित किये जो विभिन्न विषयोंसे सम्बद्ध थे। उन विशेषांकों और साधारण अंकोंके माध्यमसे भारतीय साहित्य एवं संस्कृतिकी उन्होंने अद्भुत सेवा की। वे भारत ही नहीं विश्वमें भारतीय आध्यात्मिक साहित्यको पहुँचानेमें सफल रहे। उन्होंने सांस्कृतिक नवचेतना जाग्रत की और आध्यात्मिक दृष्टिसे मूल्यवान् तथ्योंको आधुनिक शब्दावलीमें व्यक्त किया। पोद्दारजीके सदाचारपूर्ण, आध्यात्मिक, निर्भीक, दृढ़कर्तव्यनिष्ठ, सेवापरायण, विनयशील, नम्र, निष्ठावान् व्यक्तित्वने सम्पादकोंके लिये नया रास्ता दिखाया। हिन्दी-साहित्य भण्डारको जो अनमोल रत्न उन्होंने दिये हैं, वे समस्त देश और जगत्के लिये चिरकल्याणरूप तथा उसके वर्तमान तथा भावी जीवनके लिये मंगलमय हो गये हैं। भोगवादपर आधारित पाश्चात्य संस्कृतिके अभिशापसे देशवासियोंकी रक्षाके लिये प्रचुर उपयोगी साहित्य जो उपलब्ध है इसका एक मात्र श्रेय श्रीपोद्दारजीको है।

(२)

शोधका विषय---श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका भक्ति साहित्य : समीक्षात्मक अध्ययन

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०---४६१

शोधार्थी——सुश्री पुष्पा भरतिया

निर्देशक——डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह,

भू० आचार्य एवं अध्यक्ष, (हिन्दी विभाग),

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

उपाधि वर्ष——१९८४

संस्थान——गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

शोध प्रबन्धमें कुल सात अध्याय हैं। (१) पृष्ठभूमि (२) जीवनवृत्त (३) पोद्दारजीका भक्ति साहित्य (४) पोद्दारजीकी भक्ति भावनाका विकासात्मक अध्ययन (५) पोद्दारजीके भक्ति साहित्यका शास्त्रीय अनुशीलन (६) पोद्दारजीके भक्ति साहित्यका मूल्याकंन (७) उपसंहारमें साहित्य और समाजको पोद्दारजीकी देन विषय हैं।

सुश्री पुष्पा भरतियाने निष्कर्ष लिखा कि पोद्दारजी इस युगके एक महान् विभूति थे। उनका व्यक्तित्व सर्वांगीण था। उनका क्रिया कलाप इतना बहुमुखी था कि उसके क्षेत्र, विस्तारको देखकर आश्चर्य होता है। वे उच्चकोटिके प्रेमी–भक्त होनेके साथ–साथ आदर्शकर्मी, ज्ञानी एवं योगी थे। वे अनेक भाषाविद् थे। वे गो–सेवक थे, परम नीतिज्ञ थे, विद्वान् थे, सम्पादक थे। उनमें प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका अद्भुत समन्वय था। वे गृहस्थ होते हुए भी विदेह थे। उनका जीवन धर्मकी व्याख्या था। सबको मान देनेवाले किन्तु स्वयं अमानी थे। उनका जीवन सभी आदर्शोंका समन्वित रूप था।

पोद्दारजीने अपने प्रौढ़ विचारों, अपनी ओजस्विनी वाणी तथा शक्तिशालिनी लेखनीसे असंख्य पथभ्रष्टोंको पथ दिखाया। जिज्ञासुओंकी ज्ञान–पिपासा शांत की। भक्तोंको भक्तिका मर्म समझाया, ज्ञानमार्गियोंको ज्ञानका रहस्य बताया। उन्होंने पत्रकारितामें सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया तथा सस्ते उच्च कोटिके लोक कल्याणकारी साहित्यको अत्यन्त अल्प मूल्यमें जनसाधारणको उपलब्ध कराया। पोद्दारजीने सांस्कृतिक मूल्यों एवं सनातन धर्मका पुनरुद्धार किया। उन्होंने ह्रासोन्मुखी समाजमें नैतिक मूल्योंकी पुनर्स्थापना की। यह भारतीय समाजके लिये निःसन्देह एक महत्वपूर्ण योगदान है।

पोद्दारजीने धर्मकी परिभाषा करते हुए कहा कि धर्म वही है जो सर्वभूत–हित–साधनमें लगा रहता है। वे धर्मको मानव संस्कृतिका प्राण एवं

मूलाधार मानते थे। वे समाज एवं मनुष्यकी सर्वांगीण उन्नतिके लिये सनातन धर्मको अत्यन्त उपयोगी एवं परमावश्यक मानते थे।

पोद्दारजीके भक्तिकाव्यकी विशेषता शास्त्रीयता और अनुभूतियोंका अद्भुत सामंजस्य है। उनकी कृतियोंमें अनिर्वचनीय प्रेमका निदर्शन हिन्दी साहित्यको विशेष अवदान कहा जा सकता है। उन्होंने प्रेमकी इयत्ताको उसके मूल शास्त्रीय मर्यादाओंमें प्रतिष्ठित किया। प्रेमाभक्तिके सूक्ष्म–से–सूक्ष्म, उज्जवल–से–उज्जवल, आदर्श–से–आदर्श स्वरूपका निरूपण अपने काव्य संसारमें किया है। प्रेमकी विशदता उसकी आत्यन्तिक विलक्षणता और इस पथके पथिकोंकी गूढ़–से–गूढ़ अवस्थाओंका परिचय उनके साहित्यकी सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने उस परमोज्जवल लीला रसका तत्व निरूपण किया है जो भारतीय साहित्यमे दुर्लभ है। उन्होंने अपने साहित्यमें विभिन्न देवी–देवताओंके बीच अद्‌भुत तात्त्विक शास्त्रानुमोदित एकरूपता दिखानेका जो महतीय प्रयत्न किया उससे सभी सम्प्रदायोंकी तात्त्विक एकताका निदर्शन करके पोद्दारजीने समन्वय और एकताका अमोघ मंत्र भारतीय समाजको दिया।

(३)

शोधका विषय––श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०––४६७

शोधार्थी––श्रीसद्‌गुरुशरण विद्यार्थी

निर्देशक––डॉ० बी० बी० लाल

भू०पू० कुलपति, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

उपाधि वर्ष––१६८७

संस्थान––बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

इस शोघ प्रबन्धमें कुल दो खण्ड, व्यक्तित्व एवं कृतित्वके है एवं ११ प्रकरण हैं यथा (१) व्यक्तित्त्व : भागवत एवं सन्त व्यक्तित्त्व (२) वाह्य साक्ष्य एवं अन्तः साक्ष्यके आधारपर श्रीपोद्दारजीका व्यक्तित्त्व (३) हनुमानप्रसादजीका व्यक्तित्त्व (४) मानव व्यक्तित्त्व (५) साधक व्यक्तित्त्व (६) भक्त एवं संत व्यक्तित्त्व (७) कृतित्त्वगत विधा विकास (८) कृतित्त्व किंवा प्रकाशित व्यक्तित्त्व (६) रचना प्रक्रिया (१०) शब्दानुशीलन (११) सांख्यिकीय अध्ययन।

अपने शोध–प्रबन्धमें श्रीविद्यार्थीने लिखा है कि पोद्दारजी अपनी कथनी और करनीमें पूर्णतया एक थे और यह उनके व्यक्तित्वकी सबसे

महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। जो मानक उन्होंने निर्धारित किये थे वे उनके आचरणके साधारण अंग थे। उनके मानवीय व्यक्तित्वकी ऐसी कोई दुर्बलतायें कहीं संदर्भित नहीं हैं जो उन्हें परिताप एवं प्रायश्चित्तकी वेदना देती तथा उनके अग्रगामी व्यक्तियोंपर कालिमा बन सकती है। अपने जीवनमें उन्होंने सावधानी पूर्वक अपनी प्रशंसा, अभिनन्दन आदिके अवसर नहीं आने दिये। भाईजीने किसी सम्प्रदाय या मतको अपनी ओरसे नहीं चलाया। अनासक्ति भावसे प्रभुकी आज्ञा एवं प्रेरणाका पालन ही उनका अभीष्ट था जिसमें उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं अस्मिताकी किसी छापके न आने देनेका सतर्कतासे ध्यान रखा और मनमें कभी ऐसा भाव भी नहीं आने दिया।

श्रीपोद्दारजी भगवान्के 'खास पार्षद एवं आधिकारिक पुरुष' थे तथा 'जीवोंके हृदयोंमें परमात्मास्वरूपको जाननेकी जिज्ञासा और परमात्माको प्राप्त करनेकी शुभाकांक्षा उत्पन्न करते थे।' वे उस उच्च स्थितिको प्राप्त थे जहाँ संत और भगवान्में कोई अन्तर नहीं रहता, दोनों एक तार एव तान हो जाते हैं। भगवान् ही सन्तके रूपमें क्रियाशील बनते हैं तथा मानवमात्रका उद्धार करते हैं।

पोद्दारजीके कृतित्वकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि उसमेंसे वह झाँकते हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। 'रसाद्वैत'—राधाकृष्णके प्रति नई दिशा एवं मौलिक चिंतन इस युगको उनकी महान् देन है।

श्रीविद्यार्थीने अपने सांख्यिकीय आँकड़ोंसे यह निष्कर्ष निकाला है कि—पोद्दारजीका प्रमुख काव्य 'पद–रत्नाकर'की कुल पंक्तियाँ १६,६७० हैं जो गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित उनके प्रमुख काव्य रत्न श्रीरामचरितमानस, विनय पत्रिका और गीतावलीकी कुल पंक्तियों क्रमशः १२,५८२, ३,२२६ और ३,४०२ के योग १६,२०५ से अधिक हैं। इसके अतिरिक्त पोद्दारजीके गद्य–साहित्यका विपुल भण्डार है।

श्रीपोद्दारजीके समृद्ध साहित्यसे निश्चित रूपसे राष्ट्र भाषाका सम्मान बढ़ा है तथा धार्मिक साहित्यके शीर्षमें उल्लेखनीय समृद्धि हुई है जो अनुगामी साहित्य जगत्के लिये आदर्श है।

(४)

शोध–प्रबन्धका विषय—श्रीभाईजीकी पद्यात्मक रचनाओंका आलोचनात्मक अध्ययन—पद–रत्नाकरके विशेष संदर्भमें

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०—३५६

शोधार्थी——कु० वी० कमलम्मा

निर्देशक——डा० एन० एस० दक्षिणामूर्ति, रीडर (हिन्दी विभाग) मानस गंगोत्री, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

उपाधि वर्ष——१९८६

संस्थान——मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

इस शोध प्रबन्धमें निम्नलिखित सात अध्याय हैं। (१) भाइजीकी जीवनीकी विशेषताएँ (२) श्रीभाईजीकी रचनायें (३) 'पद–रत्नाकर'का काव्य–स्वरूप और वस्तु–विवेचन (४) 'पद–रत्नाकर'के पात्र (५) 'पद–रत्नाकर'के रस और अलंकार (६) 'पद–रत्नाकर'की भाषा शैली और (७) 'पद–रत्नाकर'का प्रभाव और स्थान

'पद–रत्नाकर'में कुल १५५७ पद हैं। इसमें किसी एक ही नायककी सम्पूर्ण जीवन गाथाका चित्रण नहीं है। 'पद रत्नाकर'का तुलनात्मक अध्ययन श्रीमद्भागवत और सूरसागरसे किया गया है। 'पद–रत्नाकर'में मुक्तक काव्यके लक्षण दीखते हैं क्योंकि पोद्दारजीने इस महाकाव्यकी रचना करनेके उद्देश्यसे नहीं रची है वे राधा–माधवके लीलाका वर्णन आत्मानन्दके लिये आनन्दविभोर होकर करते थे और उनका उद्देश्य था मानव–कल्याण।

'पद–रत्नाकर'की भाषा शैलीमें खड़ी बोली, व्रज और राजस्थानीका संगम है। उनके प्रौढ़ स्वरूपसे कविके भाषा ज्ञानका परिचय मिलता है। तीनों भाषाओंका प्रयोग व्यावहारिक और स्वाभाविक है। सूरदासकी तरह पात्रानुकूल भाषामें परिवर्तन लाना भाईजीका हस्तगत कला नैपुण्य है। 'पद–रत्नाकर'के कवि श्रीभाईजीके आराध्य देव श्रीराधा–कृष्ण होनेपर भी उन्होंने इसमें अन्य देवी देवताओंका वर्णन भी बड़े आदरसे किया है। जैसे भागवतमें समन्वयकी दृष्टिका प्रतिपादन हुआ है वैसे ही उनके पदोंमें भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है। समन्वयकी दृष्टिसे श्रीभाईजी भागवताकारसे भी ऊँचे स्तरपर पहुँच गये हैं क्योंकि अर्हत, बुद्ध, ईसा, अहुरमज्द, अल्लाह, सबको एक ही सत्यके विविध स्वरूप कहकर केवल हिन्दू धर्मको ही नहीं, सब धर्मोंका समन्वय उन्होंने कर दिया है।

श्रीमद्भागवत, सूरसागर और पद–रत्नाकर ग्रन्थके बाह्य पक्ष अलग–अलग दीखनेपर भी अंतः सत्त्व एक ही है वह है भक्तिका प्रतिपादन। सूरदास और भाईजी द्वारा चित्रित वात्सल्यके चित्र हिन्दी साहित्यके अमूल्य रत्न हैं।

'पद–रत्नाकर' भक्ति जगानेवाला धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं बल्कि काव्यमें कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों दृष्टियोंसे समृद्ध महान कृति है। वेदोपनिषद, नानापुराण, नारदभक्ति सूत्र आदि महान् ग्रन्थोंके आधारपर रचित यह ग्रन्थ किसीका अनुवाद या अनुकरण नहीं है। कविने अपने साहित्यिक ज्ञान तथा लौकिक अनुभवके पाकसे पदोंको रचा है। भक्ति–रस इस ग्रन्थके अंगीरस होते हुये भी अन्य रसोंका सुन्दर–पाक भी है। यह विविध अलंकारोंसे भूषित हैं।

भक्ताग्रगण्य महात्मा श्रीपोद्दारजीका 'पद–रत्नाकर' आधुनिक हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि है।

(५)

शोधका विषय——रस भावाद्वैत और उसमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका योगदान

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०——३१६

शोधार्थी——सुश्री रंजना गुप्ता

निर्देशक——डा० श्रीमती सरला शुक्ला, भू० पू० प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा–विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

उपाधि वर्ष——१९९२

संस्थान——लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत शोध प्रबन्धमें कुल सात अध्याय हैं। (१) हनुमानप्रसाद पोद्दारका युग एवं कृतित्व (२) भक्ति रस एवं रस भावाद्वैत (३) रस–ब्रह्म और राधा महाभाव (४) रस भावाद्वैत और युगल तत्त्व (५) रस भावाद्वैतपर तन्त्र–दर्शनादिका प्रभाव (६) पोद्दारजीका रस भावाद्वैत (७) उपसंहार

शोध प्रबन्धमें निष्कर्ष निकाला गया है कि सोलहवीं शताब्दीमें जिस भक्ति रस परम्पराका प्रणयन रूप और जीव गोस्वामी द्वारा हुआ। पोद्दारजी उसी महान् परम्पराके नूतन उद्धारकर्ता थे। उनके राधामाधव रससे निरन्तर भावित हृदयमें रसभावाद्वैतका पल्लवन हुआ। पोद्दारजीने अपनी सकल्पवान् मेधा द्वारा आजन्म राधाकृष्ण स्वरूपका उदात्तीकरण किया। हिन्दी साहित्यका अधिकांश भाग राधाकृष्ण भक्तिसे सम्बन्ध रखता है और पोद्दारजीका यह निर्मल परिष्कार भाव इस सन्दर्भमें हिन्दी साहित्यको एक प्रमुख देन है।

श्रीपोद्दारजी महाप्रभु चैतन्यके बाद आधुनिक युगमें भावावेश सिन्धुमें निमग्न रहनेवाले दूसरे महासन्त हैं। महाभावमयी दिव्य भागवती स्थितिमें नित्यलीन रहनेवाले रससिद्ध सन्त श्रीपोद्दारजी जिनका हृदय पटल ही रासमण्डलके रूपमें परिणत हो गया था और जहाँ रासेश्वरी–रसशेखर श्रीराधा–माधवका नित नव ललित लीला विहार चलता ही रहता था। इस प्रकार पोद्दारजीका हृदय दिव्य रस भावाद्वैतके साक्षात् मंचनका रंगमंच बन गया था। वे प्रतिपल इस महा अलौकिक रस लीलाके साक्षी थे। रसाद्वैत पोद्दारजीके जीवनमें साकार था।

वास्तवमें शंकराचार्यका अद्वैतवाद पोद्दारजीका प्रिय सिद्धान्त था, लेकिन उस स्थिति तक पहुँचनेका मार्ग उन्होंने ज्ञान नहीं भक्ति व प्रेमको माना। उनके अनुसार प्रेम सूर्यका उदय होनेपर उसके तापसे चित्त नवनीत द्रवित होकर उत्कर्षको प्राप्त होता हुआ महाभावरूपतक पहुँच जाता है। पोद्दारजी मानते थे कि ईश्वर मात्र लीला हेतु नर–नारी दो रूपोंमें स्वयंको व्यक्त करता है। इनकी समरसता ही रसभावाद्वैतका हेतु है। उनकी इस अद्भुत स्थापनाके कारण वे पूरी वैदिक परम्पराके साथ भी हैं और उससे अलग भी। भावाद्वैत पोद्दारजीकी वह दिव्य सृष्टि है जहाँसे सम्पूर्ण विश्वका प्रेम एक बिन्दु मात्रमें दिखाई देता है।

श्रीपोद्दारजीने अपने महनीय सिद्धान्त रसाद्वैत दर्शनके माध्यमसे भक्तिकी एक नूतन, सर्वथा अनूठी व्याख्या प्रस्तुत की कि भगवत प्रेमीका अस्तित्व सिन्धुमें विन्दुवत समाप्त न होकर भक्त और प्रेमास्पदके रूपमें द्वैत भाव नित्य बना रहता है।

एकाकीके द्वारा रमण सम्भव है ही नहीं; आनन्दके प्रदायक और विधायक लीला विहारमें दो कि स्थिति नित्य अनिवार्य है। लीला विहारमें प्रेमी प्रेमास्पदको और प्रेमास्पद प्रेमीको सुखदान करते रहते हैं। सर्वथा, सर्वदा तत्सुखी भावसे प्रेरित और भावित होकर इस सुखदानमें प्रतिदान प्राप्तिकी कल्पनाका भी लेश नहीं रहता।

श्रीपोद्दारजीने रसभावाद्वैतके माध्यमसे विश्व मानवताको विश्वप्रेमका संदेश दिया है। वैदिक धर्मोद्धारक लोकोद्धारक भक्तोंकी श्रृंखलामें श्रीपोद्दारजीका नाम अग्रणी है। उन्होंने अपनी भक्ति स्थापनाओंके द्वारा लोकार्पित व्यक्तित्वके द्वारा सर्वनाशके मुखमें जाती हुई एक पूरी जातिको बचाया।

(६)

शोधका विषय---श्रीभाईजीकी गद्यात्मक रचनाओंका आलोचनात्मक अध्ययन---निबन्ध संग्रहोंके विशेष सन्दर्भमें

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०---४१८

शोधार्थी---श्रीमती विजय कुमारी

निर्देशक---डा० एन०एस० दक्षिणामूर्ति, कृतकार्य अध्यक्ष (हिन्दी अध्ययन विभाग)

मानस गंगोत्री, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

उपाधि वर्ष---१९९४

संस्थान---मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

इस शोध प्रबन्धमें कुल छः अध्याय हैं (१) श्रीभाईजी हनुमानप्रसाद पोद्दारजीकी संक्षिप्त जीवनी तथा व्यक्तित्व (२) श्रीभाईजीका साहित्य (३) श्रीभाईजीके साहित्यिक निबंध (४) श्रीभाईजीकी रचनओंका साहित्यिक स्वरूप (५) श्रीभाईजीके प्रकीर्ण निबंधोंका स्वरूप और प्रतिपाद्य (६) श्रीभाईजीकी हिन्दी साहित्यको देन।

प्रस्तुत शोध प्रबन्धमें कहा गया है कि साहित्यकारोंके लिये भाषा ही एक ऐसा प्रमुख साधन है जिसके द्वारा वे अपने विचारों व भावोंको पाठकों तक पहुँचाते हैं। भाषाकी विशिष्टता ही उनकी पहचान होती है। भाषामें निहित गतिशीलता तथा आकर्षण पाठकोंको अपनेमें बाँधे रखनेकी शक्ति रखता है, और उनके विचारोंको, उनकी गतिविधिगोंको नियन्त्रित तथा प्रभावित करता है। भाईजीकी भाषामें ऐसे ही कई विशिष्ट आकर्षक गुण हम पाते हैं। भाईजीकी भाषा सरल स्पष्ट तथा शुद्ध है।

भाईजीके अधिकांश निबंध विचार प्रधान ही हैं। वे अपने विचारों, तर्कों तथा सिद्धान्तोंको स्पष्ट रूपसे क्रमबद्धतासे रखते चले जाते हैं। पाठकको अपने साथ-साथ चलनेको बाध्य करते हुए अपने विचारों द्वारा प्रभावित भी करते हैं। उनके लेखनमें व्याकरणकी दृष्टिसे बड़ी सतर्कता बरती गई है और अलंकारोंका, शब्दशक्तिका ध्यान रखा गया है। कहीं भी साहित्यिक नियमोंका उल्लंघन नहीं हुआ है। साहित्यकी विविध विधाओंको उन्होंने बड़ी ही सहजतासे अपनाया है और साहित्यिक मर्यादाओंका पालन करते हुए उन्होंने उच्चतम कोटिपर ला खड़ा किया है।

भाईजीने गहन चिन्तन तथा मनन द्वारा जो गंभीर आध्यात्मिक

साहित्यका सृजन किया है उसकी कोई सानी नहीं। भाइजीके साहित्यसे औरोंने गहन चिन्तन, मनन, परिश्रम तथा पाठ शुद्धताकी प्रेरणा प्राप्त की। सभीने एकमतसे उनकी विशाल साहित्य रचनाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतारके रूपमें उन्हें स्वीकार किया।

श्रीपोद्दारजीकी भाषा सरल, सरस एवं सुबोध है। कहीं भी क्लिष्ट या आडम्बरको स्थान नहीं है। विषयको गहनताके अनुसार इसके स्वरूपमें बदलाव पाया जाता है। आध्यात्मिक विषयका निरूपण करते समय संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग करके उसकी गांभीर्यताको प्रकट किया गया है तो सामाजिक विषयका वर्णन करते समय अंग्रेजी, अरबी आदि शब्दोंका प्रयोग करके उसके आधुनिक स्वरूपको प्रकट किया है। पाठकगणको एक बात अवश्य प्रतीत होती है कि भाईजीके वाक्यमेंसे एक शब्दको दूसरे शब्दसे बदलनेका प्रयत्न विफल सिद्ध होता है। इससे भाषापर उनके प्रभुताका परिचय मिलता है।

(७)

शोधका विषय---श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार और उनका कृष्ण काव्य

शोध प्रबन्धकी पृष्ठ सं०---३६३

शोधकर्ता---श्रीशैलेश कुमार उपाध्याय

निर्देशक---डॉ० त्रिभुवन ओझा, अध्यक्ष एवं रीडर (हिन्दी विभाग) करीम सिटी कालेज

उपाधि वर्ष---१९६७

संस्थान---राँची विश्वविद्यालय

प्रस्तुत शोध प्रबन्धमें कुल पाँच अध्याय हैं (१) श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका जीवन और जीवन दर्शन (२) हनुमानप्रसाद पोद्दारके साहित्यिक व्यक्तित्वका विकास (३) हनुमानप्रसाद पोद्दारके कृष्ण काव्यका अनुशीलन (४) हनुमानप्रसाद पोद्दारके कृष्ण काव्यका अतरंग-बहिरंग परीक्षण (५) हिन्दी कृष्ण काव्य और पोद्दारजीकी कृष्ण भक्ति काव्य रचनाएँ:---

इस शोध प्रबन्धके निष्कर्षमें कहा गया है कि पोद्दारजीने कृष्ण भक्तिको मनुष्य जीवनका परम और चरम लक्ष्य माना है। गीति काव्यके लक्षणोंसे युक्त पोद्दारजीका सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य मुख्यतः मुक्तक पद शैलीमें है। पदोंमें शब्द चयन अति कुशलतासे किया गया है जो पदोंको प्राणवान बनाते हैं। उनके काव्यमें कोमल भावको व्यक्त करनेके लिये

कोमल एवं सरस भाषाका और गम्भीर भावोंके लिये गुरुतर एवं गम्भीर भाषाका प्रयोग किया गया है। इनके काव्यमें काव्य–बिम्बोंका उचित एवं यथार्थपरक सन्निवेश है। भाषाकी गहन विनियोगशीलताने उनके काव्यको एक विशिष्ट स्थान दिया है। यह सब भी तब जब उनका उद्देश्य साहित्य सृजन नहीं वरन् अपने आराध्य श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाके प्रति अपने हृदयोच्छ्वासको प्रकट करना मात्र है। उनके काव्यमें यत्र–तत्र शब्दालंकार विद्यमान है।

प्रसंगकी समानताके बावजूद पोद्दारजी द्वारा श्रीराधाके प्रेम–वैचित्य प्रसंगको प्रस्तुत करना एक उल्लेखनीय प्रयास है। जो उन्हें अन्य समकालीन कवियोंसे अलग रखता है।

आधुनिक कालमें भक्ति काव्यको अपनी समस्त गरिमा और प्रभावके साथ स्थापित करके उन्होंने एक स्तुत्य कार्य सम्पन्न किया है। उनका 'पद–रत्नाकर' गीति काव्य भक्तिकालमें रचित सूर–सागरके पश्चात् हिन्दीकी एक अमूल्य निधि है। जिसके कारण आनेवाली पीढ़ी इस धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रसंगके स्रोतको सूर और तुलसीके समकक्ष आत्मसात करेगी।

पोद्दारजी बींसवी सदीके भक्त कवि हैं पर उनके काव्यकी मौलिकता एवं उच्च भक्तिभावना उन्हें कहीं–न–कहीं भक्ति काव्यके श्रेष्ठ भक्त कवियों सूरदास, तुलसीदास, हितहरिवंश, रसखान और मीराके समकक्ष रखता है।

(८)

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारपर आठवाँ शोध प्रबन्ध कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। जो रूपरेखा बनी है उसका विवरण निम्नलिखित है।

शोधका विषय—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके काव्यमें भक्ति दर्शन और सांस्कृतिक चेतना

शोधार्थी—श्रीमती कमलेश गगगड़, व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय स्नातकोत्तर बांगड़ कालेज, डीड़वाना (राजस्थान)

निर्देशक—डॉ० उमाकान्त

राजकीय स्नातकोत्तर डूँगर कालेज, बीकानेर, राजस्थान

इनमें कुल छः अध्याय हैं (१) हनुमानप्रसाद पोद्दार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (२) पोद्दार साहित्यकी सृजन प्रेरणाके विविध आयाम (३) पोद्दारजीके साहित्यमें भक्ति तत्त्व विवेचन (४) पोद्दारजीके साहित्यमें जीवन–दर्शनका

स्वरूप (५) पोद्दारजीके साहित्यमें सांस्कृतिक चेतना (६) अध्ययनके निष्कर्ष, उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ।

पूज्या माँ——रामदेई पोद्दार

जैसे अग्नि और उसकी दाहिका–शक्ति, सूर्य और उसकी किरणें, चन्द्रमा और उसकी चाँदनी, जल और उसकी शीतलता एवं दूध और उसकी धवलता सदा एक है, इनमें कभी कोई भेद नहीं है, उसी तरह भाईजी एवं माँमें कोई भेद नहीं था। स्वरूपतः दो होकर भी वे एक थे——शक्ति और शक्तिमान्।

भाईजीने जहाँ विशाल हिन्दू–धर्मकी पताकाको अपने अनवरत एवं निष्ठारत कार्यकलापोंसे विश्व–क्षितिजपर हिमालयकी–सी ऊँचाइयोंपर लाकर स्थापित किया वहाँ पूज्या माँने अपने समर्पित जीवनसे भारतीय हिन्दू नारीकी विशिष्टताओंके मुखर कीर्तिमान् प्रस्थापित किये। जहाँ भाईजीने ऋषि–मुनियों द्वारा प्रणीत भारतीय शास्त्रों, शास्त्र सम्मत उच्च आदर्शों और निरूपित आचार संहिताको गीताप्रेस एवं 'कल्याण' के माध्यमसे विश्व–जनमानसतक पहुँचाया, मार्ग प्रशस्त किया, वहाँ पूज्या माँने शास्त्रोंमें वर्णित आदर्श भारतीय नारीके समन्वित स्वरूपका यथेष्ट निरूपण अपने आचरणोंमें अभिव्यक्त किया——जैसे परमहंस रामकृष्ण एवं माँ शारदा, दोनोंके पक्ष पूर्णरुपेण श्रेष्ठ थे। उसी तरह भाईजी एवं माँ, दोनोंके सभी पक्ष श्रेष्ठताओंसे ओत–प्रोत थे।

विवाहके ढाई महीने बाद क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें हिस्सा लेनेके कारण भाईजीको जेल एवं नजरबन्दीका जीवन व्यतीत करना पड़ा। उस भीषण संकटके समय पूज्या माँ पूर्णरूपसे सहिष्णु थी, उन्हें अपने लिये कोई भय, विषाद अथवा चिन्ता नहीं थी, भाईजीके प्रति पूर्ण समर्पित थी।

नजरबन्दीके पन्द्रह महीनेकी अवधिके बाद अंग्रेजी सरकारने भाईजीके व्यवहारसे प्रसन्न होकर माँको उनके साथ शिमलापालमें रहनेकी अनुमति दे दी थी। वहाँ वे भाईजीके साथ एक छोटी–सी झोंपड़ीमें रही। भाईजीकी सेवाके साथ–साथ रोगियोंकी सेवामें भी भाईजीका हाथ बँटाती थी। नजरबन्दीके पौने दो साल बाद अंग्रेजी सरकारने भाईजीको बंगालसे निष्कासित कर दिया। शिमलापालसे विदाईके समय सभी ग्रामवासियोंके नेत्रोंमें आँसू थे, उन्हें पीड़ा थी कि भाईजी–माँ जैसी निधिको वे खो रहे हैं।

पूज्या माँ रामदेई पोद्दार

बंगालसे निष्कासित किये जानेपर भाईजी अपनी दादी, माँ, दो बहनों एवं पत्नीके साथ रतनगढ़ (राजस्थान) पहुँचे। वहाँ कोई व्यापार एवं पूँजी तो थी नहीं। सरकारका नजरबन्दी भत्ता भी बन्द हो गया था। उन अभावके दिनोंमें माँके सहयोगसे दुःखके दिन भाईजीको दुःखके नहीं लगे। माँके चेहरेपर अभावकी कोई सिकन, तड़फन नहीं थी——प्रत्येक स्थितिमें वे प्रसन्न थीं भाईजीके साथ।

भाईजीने गाँधीजीसे करीब डेढ़ साल पहले ही खादी पहननी शुरू कर दी थी। उस समय खादी बहुत कम मिलती थी और जो मिलती थी, वह टाटकी तरह मोटी होती थी। उस वक्त माँ अपने पीहर गयी हुई थी। भाईजीने खादीकी दो साड़ियाँ, माँको भी पारसलसे भेजी। साड़ियोंको देखकर माँके माता–पिताको बहुत दुःख हुआ——हमारी बेटी इतनी मोटी साड़ियाँ कैसे पहनेगी ? परन्तु उन साड़ियोंको देखकर माँके मनमें कोई क्षोभ नहीं था, उन्होंने वे साड़ियाँ शिरोधार्य की। अपने माता–पिताको नम्रतासे समझाया कि उन्हें पहननेमें कोई दिक्कत नहीं है।

गाँधीजीकी प्रेरणासे विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारके समय माँ भाईजीसे पीछे नहीं रही। माँने घरकी सभी विदेशी वस्तुओंको प्रसन्नतासे अग्निमें समर्पित किया। भाईजीकी नजर एक बची हुई विदेशी वस्तु–माँके पहनी हुई साड़ीपर गयी। माँ उनका संकेत समझ गयी। साड़ी बदलकर उस विदेशी साड़ीको भी हँसते–हँसते अग्निमें डाल दिया। भाईजीकी रुचि ही उनका जीवन था।

बम्बई छोड़नेके समय भाईजीका जीवन वैभवमय था। सुन्दर मकान, नौकर–चाकर सभी उपयोगी वस्तुएँ थी। माँने सुखके ये दिन भी देखे। परंतु वैराग्यमय एकान्त जीवनकी लालसासे भाईजी गोरखपुरमें असुरन पोखराके पास कीचड़मय तंग गलीमें कान्ति बाबूके बगीचेमें रहने लगे। माँ वहाँ भी सुखी थी——भाईजीकी सेवामें। अतिथियोंकी सेवा, भाईजीकी सेवा आदि सभी कार्य माँ अपने हाथों करती थी। कहीं कष्टका नाम नहीं था। एकान्त सेवनके समय कई बार भाईजी माँको अपनी माताजीकी सेवाके लिये रतनगढ़ छोड़ देते थे——माँ अपनी सासकी सेवा निष्ठासे करती थी।

'कल्याण'का सम्पादन तो भाईजी करते थे। माँका सहयोग इस काममें अद्भुत प्रगति करा देता था। सम्पादकीय–विभागके वरिष्ठ सदस्य श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी (स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी) श्रीमाधवजी, श्रीदेवधरजी, श्रीमुन्नीलालजी (स्वामी श्रीसनातनदेवजी), श्रीगिरिधारी बाबा

आदि सबकी सुख–सुविधाका ध्यान माँ रखती थी। इतना ही नहीं गीताप्रेसके वरिष्ठ संचालक श्रीशुकदेवजी, श्रीगंगाबाबू भी माँके व्यवहारसे आप्यायित रहते थे। उन सबकी प्रसन्नता—उन सबसे कई गुना काम कराती थी। वे लोग तन–मनसे 'कल्याण' गीताप्रेसकी सेवामें जुटे रहते थे।

गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी–महोत्सवका विशाल आयोजन प्रत्येक वर्ष होता है। उन दिनों सैकड़ों अतिथियोंका भारतके सुदूर प्रान्तोंसे आना—एक अनोखा दृश्य होता था। सबकी सम्भालमें भाईजीके साथ माँका पूरा सहयोग रहता था। भोजनकी व्यवस्था माँके इशारेपर होती थी, अतिथियोंकी सेवाके लिये कई बार माँ स्वयं अपने हाथों भोजन बनाकर, उन्हें खिलाकर सुलाती थी।

माँ एवं भाईजीका दाम्पत्य–जीवन मधुर सौरभ बिखेरे हुए था। गृहस्थाश्रमके प्रत्येक पहलूपर श्रेष्ठता लिये हुए था। छल–कपटसे शून्य माँका जीवन तपस्यामय था। सदा खुले हाथों दान करती थी—अपने पास बचाकर रखना नहीं चाहती थी।

श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज कहते थे कि देखो ! माँके ललाटपर एक पतिव्रतका तेज छाया हुआ है। वे उनके पास रहनेवालेको माँकी सेवाके लिये प्रोत्साहन देते थे। उनकी सेवा करनेवालेको सौभाग्यशाली मानते थे।

श्रद्धेय स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज कई बार अपने प्रवचनोंके बीच माँके मधुर–उदार स्वभावको याद किया करते थे।

भाईजीके नित्यलीलालीन होनेपर श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज माँसे मिलने आये। उन्होंने कहा कि इतने दिन तो पूज्या माँ पूज्य श्रीभाईजीकी अर्धांगिनी थी, परंतु भाईजीके जानेके बाद भाईजीका समावेश माँमें हो गया, अब वे पूर्णांगी हो गयी हैं। अब वे पूज्य भाईजीका स्वरूप हैं।

सनातन धर्म, हिन्दू संस्कृतिमें शक्ति–नारीका सदैव विशिष्ट स्थान रहा है। नारी सदैव पूज्या रही है। भगवान् श्रीरामने अपनी सेवासे ज्यादा जगज्जननी भगदती सीताकी सेवाको महत्त्व दिया। हनुमानजी माता सीताजीको खोजकर लंकासे लौटे हैं, तब भगवान् श्रीरामने उनसे कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।

प्रति उपकार करोंका तोरा।
सनमुख होई न सकत मन मोरा।।

भाईजीने अपनी वसीयतमें माँके लिये लिखा है——

कदाचित मेरा शरीर पहले छूट जाय और सावित्रीकी माताका बना रहे तो मैं चाहूँगा कि जिनकी मेरे प्रति श्रद्धा, प्रीति, सद्भावना, सहानुभूति या कृपा है, वे सब घरवाले तथा बाहरवाले भी तन–मन–वचनसे ऐसी चेष्टा करें, जिससे सावित्रीकी माँको सुख पहुँचे। सावित्रीकी माँ बड़ी ही सात्विक स्वभावकी, छल कपट शून्य, सरल हृदयकी साध्वी है। सावित्रीकी माँने मेरी जितनी सेवाकी है——जिस परम निष्काम भावसे——उसकी कहीं तुलना नहीं है। उसमें कई ऐसे आदर्श गुण हैं——जो मेरेमें नहीं हैं। अतएव उसकी सेवा मेरी सेवासे बढ़कर मुझे सुख देनेवाली है। वास्तवमें जो ऐसा कर सकेंगे, उनका बड़ा ही सौभाग्य होगा।

बाबा माँको जगज्जननी श्रीललिताम्बाका स्वरूप ही मानते थे। माँ स्वयं बाबाको प्रतिदिन भिक्षा करवाया करती थी। जब माँ अस्वस्थ होती थी, तब कभी बाई (श्रीमती सावित्रीबाई फोगला) और कभी भाईजी जाकर भिक्षा करवाया करते थे। बाबाने भाईजीको माँकी सँभाल करनेका बचन दे रखा था। गीतावाटिकामें भाईजीकी चितास्थलीके नित्य समीप रहते हुए बाबा दिनमें कम–से–कम एक बार माँको सँभालने आया ही करते थे। यदि अस्वस्थताके कारण बाबा नहीं आ पाते थे तो माँ स्वयं बाबाके पास चली जाया करती थी। बाबाने भाईजीको वचन दिया था, उसके निर्वाहका अद्भुत और अद्वितीय उदाहरण मिलता है। माँने अपनी इहलीलाका संवरण २६ सितम्बर, १६६२ को ‍िया और इसके १७ दिन बाद १३ अक्टूबर, १६६२ के दिन बाबा सदाके लिये तिरोहित हो गये। पूज्य बाबाने अपने महान 'जय जय प्रियतम' काव्यके प्रारम्भमें माँकी वन्दना करते हुए कहा है——

ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम्।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देहं धर्ममातरम्।।

पूज्य श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका

श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका संक्षिप्त जीवन–परिचय

सन्त प्रवर श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका एक ऐसे मारवाड़ी गृहस्थ सन्त थे, जिन्हें लोग जानकर भी नहीं जानते। सबकी अपनी–अपनी दृष्टि होती है। कोई समझता, बड़े कुशल व्यापारी हैं, इनकी सलाहसे व्यापार करनेसे बड़ा लाभ होगा। कोई सोचता, ये बड़े चतुर, ईमानदार एवं निष्पक्ष हैं, अपने झगड़ेमें इन्हें पंच बना लें तो ये सुलझा देंगे। कोई सोचता, ये बड़े सदाचारी हैं, इनके संगसे लाभ होगा। एक वर्ग ऐसा था, जो इन्हें पहुँचे हुए सन्त मानकर आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहता था। उनका रहन–सहन, वेष, मारवाड़ी मिश्रित हिन्दी भाषा इतने साधारण थे कि अधिकांश लोग निकटसे देखकर भी नहीं पहचान पाते थे कि ये आध्यात्मिक जगत्‌की एक विशेष विभूति हैं।

एक सन्तने एक बारकी घटना सुनाई कि ये चुरू आ रहे थे, गाड़ी भिवानी स्टेशनपर खड़ी थी। थर्ड क्लासके डिब्बेमें ये दोनों यात्रा कर रहे थे, पर उन दिनों भीड़ नहीं होती थी। एक सज्जन उस डिब्बेमें सवार हुए एवं सन्तके पास बैठकर कुछ आध्यात्मिक प्रश्न किये। श्रीसेठजी उस समय खिड़कीके पास बैठे बाहर स्टेशनपर खड़े लोगोंसे बात कर रहे थे। सन्तने कुछ उत्तर देकर इनकी ओर इशारा किया कि इनसे पूछ लीजिये। सज्जनने कहा—ये कौन हैं ? उत्तर मिला कि ये श्रीजयदयालजी गोयन्दका हैं। इतना सुनते ही सज्जन आश्चर्यमें डूब गये। नीचे उतरकर उनके मुँहकी ओर देखा, फिर ऊपर चढ़े, फिर नीचे उतरकर गौरसे देखने लगे। पुनः ऊपर चढ़कर सन्तसे पूछा कि ये श्रीजयदयालजी ही हैं न ? सन्तको हँसी आ गई तथा बोले—आप इन्हींसे क्यों नहीं पूछ लेते। सज्जन सोच–विचारमें पड़ गये, इतनेमें गाड़ी चल पड़ी। सज्जनने संकोचसे इनसे पूछा—आपका शुभ नाम ? उत्तरमें नम्रताभरे शब्द सुननेको मिले—लोग मुझे जयदयाल गोयन्दका कहते हैं। अब उस सज्जनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

उसने इनके मर्मस्पर्शी लेख 'कल्याण' में बहुत पढ़े थे और लेखकके बारेमें बहुत ऊँची धारणा कर रखी थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसे गूढ़ आध्यात्मिक लेख लिखनेवाला इतना साधारण व्यक्ति हो सकता है। इनसे बातें करके उसके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अस्तु !

जन्म तथा वंश–परिचय

श्रीजयदयालजीका जन्म सं० १९४२ की ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी बुद्धवारको रात्रिके लगभग नौ बजे राजस्थानके एक छोटे शहर चुरूमें हुआ था। श्रीखूबचन्दजी गोयन्दकाको इनके पिता होनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीजयदयालजीके परदादाजी श्रीसालगरामजी गोयन्दका बड़े उच्चकोटिके भक्त थे। वे नित्यप्रति १०८ 'हरे राम' मंत्रकी मालका जप करते तथा हस्तलिखित पञ्चरत्न गीताजीका पाठ करते। यह दर्शनीय ग्रन्थ श्रीसेठजी बड़े सँभालकर रखे थे तथा जो दर्शन करना चाहता उसे दर्शन कराते थे। वे स्वयं अपने हाथसे कुएँसे पानी निकालकर स्नान करते तथा वहाँ कोई अन्य व्यक्ति होता तो उसे भी स्नान करा देते। रात्रिमें प्रतिदिन मन्दिरमें शयन–आरती कराने जाते। वहाँसे लौटते समय श्मशान–भूमिमें जाते तथा देखते कि पशु–पक्षियोंके लिये पानी भरा हुआ है या नहीं, यदि नहीं होता तो उसी समय पानी डलवाते। बड़े निर्भीक पुरुष थे। एक दिन उनके भाई श्रीहरकचन्दजीको भयसे बुखार हो गया, पूछनेपर बोले––भूत देखा है। पूछा गया––कहाँ देखा ? तो बोले––सामनेकी हवेलीपर। श्रीसालगरामजी उसी समय सामनेकी हवेलीपर गये और देखा एक घाघरा लटकाया हुआ है तथा सिरपर एक काली हँडिया रखी हुई है। उन्हें ले जाकर दिखाया तो उनका बुखार ठीक हो गया। श्रीसालगरामजी एक दिन जप कर रहे थे, उनके पिताजीने जल लानेको कहा, तो उन्होंने सुना नहीं। इसी बातसे उनके पिताजीने उनसे बोलना छोड़ दिया। रात्रिमें पैर दबाने गये तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया तथा बोले––पैर दबानेकी जरूरत नहीं है, जप किया करो। इन्होंने निवेदन किया कि मैंने सुना नहीं, अन्यथा जल ला देता। पर वे जन्मभर बोले ही नहीं। श्रीसालगरामजीका देहान्त सं० १९३२ में लगभग साठ वर्षकी उम्रमें हुआ।

पिताजीका परिचय

श्रीसालगरामजीके एक ही पुत्र था––श्रीलक्ष्मीचन्दजी। इनका देहान्त छोटी उम्रमें ही हो गया सं० १९३४ में, जब लगभग तीस–बत्तीस वर्षके थे। इनके दो पुत्र श्रीखूबचन्दजी तथा श्रीलालचन्दजी और एक पुत्री लक्ष्मीबाई थी। पिताके देहान्तके समय श्रीखूबचन्दजीकी उम्र लगभग बारह वर्षकी थी। एक वर्ष बाद माताजीका भी देहान्त हो गया तो वृद्धा दादीजीने घर और बच्चोंको सँभाला। सोलह वर्षकी उम्रमें श्रीखूबचन्दजीने व्यापारका काम

देखना शुरू किया। उस समय नकद पूँजी डूब गई, थोड़ी ही हाथ लगी। ये आढ़तका काम करने लगे। कुछ वर्षों बाद छोटे भाई लालचन्दको कलकत्ते नौकरी करने भेज दिया। वह कलकत्तेसे हाथ–करघेपर बुना कपड़ा भेजने लगा और ये उसे चुरूमें बेचने लगे। इन्हें संस्कृतका ज्ञान नहीं था, हिन्दी पढ़ना–लिखना जानते थे। श्राद्ध–तर्पण किया करते। सत्य बोलनेकी निष्ठा बड़ी अच्छी थी। दृढ़प्रतिज्ञ थे। शौचाचारका बहुत अधिक ध्यान रखते थे। एक बार एक बारातमें गये थे, वहाँ चमड़ेके नलसे जल छू गया तो इन्होंने वहाँ भोजन नहीं किया। कई भाईयोंने जातिसे बाहर करनेका भय दिखाया, पर ये अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे। नीतिके बर्तावमें बड़े कुशल थे। शासन करना अच्छी तरह जानते थे। उनके शासनमें किसीका दुराचारी बनना सम्भव नहीं था। पराये धनसे बड़ी घृणा थी। किसीसे तकरार हो जाती तो उससे असहयोग कर देते, परन्तु उनकी विपत्तिके समय सेवा करनेसे कभी नहीं चूकते थे। परिग्रह नहीं करते थे। भोगोंकी सामग्रीका त्याग करते थे। धैर्य अच्छा था। किसीके मरने या नुकसान लगनेपर घबराते नहीं थे। सं० १९७३ के वैशाखमें इन्होंने बद्रिकाश्रमकी यात्रा की और उसी साल फाल्गुनमें इनका देहान्त हो गया।

बचपन

श्रीसेठजी कभी–कभी अपने बचपनकी बातें सुनाया करते कि कैसे वे अपने पिताजीके सामने बहाना बनाकर बाहर खेलने चले जाते। इनके नानाजी रतनगढ़के बाजोरिया थे। लगभग छः वर्षकी उम्रमें ये ननिहाल रतनगढ़ गये हुए थे। इनकी नानीजीने कुछ पैसे एक स्थानपर एकत्रित कर रखे थे। इन्होंने उसमेंसे कुछ उठा लिये। नानी ढूँढ़ रही थी और पास बैठे हुए ये हँस रहे थे। नानीसे बोले––तुम मारो नहीं तो सच बता दूँ। नानीने वचन दिया, तब कहा––मैं ले गया था। नानीने पूछा––क्या किया ? बोले––बच्चोंमें बाँट दिये। यह बाँटनेकी प्रवृत्ति अन्ततक रही। इनके मित्र कहा करते थे कि सत्यकी ओर इनकी रुचि बचपनसे ही थी। खेलमें भी अन्याय करना पसन्द न करते तथा सत्यका पक्ष ग्रहण करते। पितृ–भक्ति इनकी बचपनसे ही थी। एक बार इनके पिताजी अस्वस्थ थे, उन्होंने पंखेसे हवा करनेको कहा। ये हवा करने लगे और पिताजीको गहरी नींद आ गई। ये सारी रात हवा करते रहे। प्रातःकाल नींद खुलनेपर पिताजीने देखा ये उसी तत्परतासे हवा कर रहे हैं। पूछनेपर सारा रहस्य खुला। तबसे

पिताजीने कहा कि मैं आज्ञा देता हूँ कि आगेसे मुझे नींद आ जाय तो तुन चले जाया करो।

इनकी शिक्षा अत्यन्त साधारण ढंगसे हुई थी। संस्कृतका अभ्यास इन्होंने बादमें अपने अध्यवसायसे किया। उन दिनों मारवाड़ी समाजमें बाल विवाहकी प्रथा थी। तदनुसार इनका विवाह भी बारह वर्षकी उम्रमें कर दिया गया। विवाहके बादसे ही ये दिनमें महाभारत पढ़ा करते। विवाहके कई वर्ष बादतक इनके पिताजीको विश्वास था कि यह अपनी स्त्रीसे सहवास नहीं करता। उन्होंने इनके मित्र हनुमानदास गोयनकाको कहा कि तुम इसे इत्र लाकर दो। हनुमानने इन्हें इत्रका डिब्बा दिया। लगभग साठ वर्षकी उम्रमें श्रीसेठजीने बताया कि वह डिब्बा अभी भी चुरूमें वैसे ही पड़ा है।

साधना और साक्षात्कार

वैसे तो इनकी आध्यात्मिक साधना बचपनसे ही प्रारम्भ हो गयी थी पर चौदह–पन्द्रह वर्षकी उम्रमें पूर्वजन्मके संस्कारोंके फलस्वरूप साधनामें दृढ़ता आने लगी। प्रारम्भमें इन्होंने हनुमानजीकी उपासना की थी। एक दिन स्वप्नमें श्रीहनुमानजीके बन्दरके रूपमें दर्शन हुए थे। ये डरने लगे। वे बोले––तुमने प्रसाद बाँटनेका संकल्प किया था, बाँटा क्यों नहीं ? इन्होंने कहा––अब बाँट दूँगा। इतना कहते ही वे अन्तर्धान हो गये।

इसके पश्चात् श्रीशिवजीकी उपासना की। फिर इन्होंने महाभारतमें सूर्य–उपासनाकी कथा पढ़ी तो सं० १९५६ से सं० १९६६ तक सूर्य भगवान्‌की उपासना की। दस वर्षतक इनका कड़ा नियम था कि सूर्यके दर्शन करनेके पश्चात् ही भोजन करते। इस अवधिमें कई बार इन्हें भूखा रहना पड़ा। ये सूर्यसे प्रार्थना करते कि हे भगवान् ! यदि परस्त्रीसे मेरा किसी प्रकार भी सम्वन्ध हो जाय तो मेरा शरीर भस्म हो जाय। जब ये नेत्र बन्द करके सूर्यकी ओर देखते तो एक प्रकाशमय आनन्दका पुंज दिखाई देता। इससे उन्हें प्रकाशमय निराकार ब्रह्मके ध्यानमें सहायता मिली। महाभारतका स्वाध्याय बहुत श्रद्धा–प्रेमसे करते थे। शिवजीके मन्दिर प्रतिदिन जाया करते थे। शिव–विष्णुमें भेद नही मानते थे। शिवजीने भी स्वप्नमें दर्शन दिये।

जब रामायण पढ़ने लगे तो उसमें यह बात मिलती कि शिवजी एवं हनुमानजी भगवान् रामके सेवक हैं तो रामज्रीके प्रति विशेष श्रद्धा होने लगी। रामजी साक्षात् परमेश्वर हैं––ऐसा मानकर राम–नामका जप एवं

उन्हींका ध्यान करने लगे। उनके ध्यानकी स्थिति सत्रह–अठारह वर्षकी आयुमें बहुत अच्छी हो गई थी। उस समय वृत्तियाँ इतनी एकाग्र हो गई थीं कि ध्यान तोड़ना चाहते तब भी नहीं टूटता। एक दिन घरमें छतपर बैठे भगवान् रामका ध्यान कर रहे थे। ऐसा दृढ़ विश्वास था कि भगवान् राम सामने खड़े हैं। मनकी आँखोंसे वे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। सायंकालका समय था। माताजीने भोजनके लिये आवाज दी। पहले तो ये बोले नहीं पर माताजीने कई बार आवाज दी तो ये बैठे–बैठे ही नीचे धीरे–धीरे जाने लगे कि ध्यानकी वृत्ति टूट न जाय। फिर जब भोजन करने लगे तो ध्यानकी गाढ़ता कम हो गई। उसके बाद तो रास्ता चलते हुए नामका जप और भगवान्के स्वरूपका ध्यान करने लगे। लोग उन्हें पागल हो जानेका भय दिखाते, पर ये उनकी बातकी ओर ध्यान नहीं देते। रामचन्द्रजीके भी स्वप्नमें दर्शन हुए तथा काफी देरतक बातें हुईं।

उसके बाद योगवाशिष्ठका स्वाध्याय करने लगे। उसमें निराकार ब्रह्मकी अधिक महिमा मिलती तो मन निराकारकी उपासनाकी ओर अग्रसर होने लगा। वेदान्तकी पुस्तकका अधिक स्वाध्याय होने लगा। उस समय भी निराकार–साकारमें भेद नहीं मानते थे। फिर किसी कारणविशेषसे भगवान् विष्णुके स्वरूपका ध्यान करने लगे।

अब जीवनमें परिवर्तनका समय आया। नाथ–सम्प्रदायके बड़े ऊँचे सन्त श्रीमंगलनाथजी महाराज उस समय चुरू आये हुए थे। ये त्याग, वैराग्य एवं ज्ञानकी ज्वलन्तमूर्ति ही थे। सच्चे सन्तके एक क्षणका संग भी अमोघ होता है। श्रीजयदयालजीकी इनसे बहुत बातें हुईं, सत्संग हुआ। इनके मनपर मंगलानाथजी महाराजके त्याग, वैराग्यकी गहरी छाप पड़ी और उसी समय मनमें निश्चय किया कि मैं भी ऐसा ही बनूँ। यह घटना सं० १९५६ की है। उसके पश्चात् साधनमें तत्परता बढ़ गई। कुछ समय बाद इनकी निराकार साधनाकी स्थिति बहुत अच्छी हो गई। एक बार इन्हें ऐसा भान हुआ कि मुझे ब्रह्मकी प्राप्ति हो गई। यह विचार आते ही मनमें तुरन्त स्फुरणा हुई कि जिसे ब्रह्मकी प्राप्ति हुई है उसे तो यह अनुभूति हो ही नहीं सकती कि "मैं ब्रह्म–प्राप्त हूँ।" अतः यह मेरा भ्रम ही है। सं० १९६४ (सन् १९०७) में ये चुरूमें अपने घरके चौबारेमें थे, उस समय सर्वथा जाग्रत अवस्थामें इन्हें प्रथम बार भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शनोंका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय इनका मुँह चद्दरसे ढँका हुआ था। आनन्दातिरेकसे ऐसी मुग्धावस्था हुई जिसका वर्णन

करना संभव नहीं है। उनके मनमें आया कि मैंने तो भगवान्‌को बुलाया नहीं था, कैसे पधारना हुआ। मनमें स्फुरणा हुई निष्काम भक्तिके प्रचारके लिये।

अन्तरंग मित्र

जब इनकी उम्र बारह वर्षकी थी तभी इनकी मित्रता श्रीहनुमानदास गोयन्दकासे हुई, जिनकी उम्र चौदह वर्षकी थी। इनका जन्म चुरूमें चैत्र शुक्ल १, सं० १९४० को हुआ था। बचपनकी मित्रता धीरे-धीरे गाढ़ मैत्रीमें परिवर्तित हो गई तथा साधनाकी प्रगतिके साथ-साथ अन्तरंग होती गई। दो-चार वर्षो बाद ही आपसमें आध्यात्मिक चर्चा ही प्रधान हो गई। दूर भी रहते तो बीच-बीचमें परस्पर मिलकर गहरी आध्यात्मिक चर्चा करते थे। सं० १९६३ में हनुमानदासजीकी भी साधनामें तत्परता आ गई एवं उन्हें जगत् स्वप्नवत प्रतीत होने लगा। उन्होंने सारी बातें श्रीजयदयालजीको पत्रमें लिखीं। उत्तरमें जयदयालजीने लिखा कि एक बार तुमसे मिलना है। या तो तुम आ जाओ या मैं आ जाऊँ। इस समय तुमसे जितना प्रेम है, उतना घरमें या बाहर किसीसे भी नहीं है। श्रीहनुमानदासजी उस समय कलकत्तामें थे। वे पत्र मिलते ही बहुत प्रभावित हुए तथा मिलने चुरू आ गये। मिलनेपर उन्होंने पूछा—मुझे क्यों बुलाया है ? इन्होंने कहा—देखो, संसारमें जिस कामके लिये आना हुआ है, वह काम पहले कर लेना चाहिये। वह काम है—श्रीभगवान्‌के दर्शन कर लेना। उन दिनों इन दोनों मित्रोंमें भगवान्‌के प्रेम-प्रभावकी बहुत बातें होती थीं। दिन-रात दोनों मित्र अधिक-से-अधिक एकान्तमें रहते। आध्यात्मिक विषयकी परम मार्मिक बातें होतीं। भगवान्‌के दर्शनोंके सम्बन्धमें भी बहुत रहस्यमय बातें होती थीं, किन्तु श्रीजयदयालजीने इन्हें वे सभी बातें गुप्त रखनेका कड़ाईसे आदेश दे रखा था। वेदान्तकी चर्चा भी होती। ज्ञानकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भूमिकामें ज्ञानीके क्या लक्षण होते—ये बातें भी जयदयालजीने इन्हें बताई। इन बातोंको तथा भगवान्‌के दर्शनोंकी बातें सुननेसे श्रीहनुमानदासजीके मनमें एकान्तमें रहनेकी प्रबल इच्छा जाग्रत हुई। वे बार-बार घर छोड़कर सन्यास लेनेके लिये इनसे आग्रह करने लगे। इनका प्रबल आग्रह देखकर श्रीजयदयालजीने कहा कि चार-छः महीने यहीं रहकर निरन्तर भजन-स्मरण करके अपनी स्थिति दृढ़ कर लेनी चाहिये, इससे संन्यास लेनेमें बडी सहायता मिलेगी। चार महीने तीव्र साधनाके साथ भगवच्चर्चा होती रही। चार महीने पूरे होते

ही ये फिर संन्यासके लिये आग्रह करने लगे। श्रीजयदयालजी थोड़ी देर सोचते रहे, फिर बोले--तुम्हारे भविष्यकी बातोंकी स्फुरणा मेरे मनमें हो रही है। तुम्हारे लिये सन्यास लेना ठीक नहीं है। तुम इसे निभा नहीं सकोगे, क्योंकि तुम्हारा वैराग्य स्थायी नहीं है परन्तु उनका आग्रह चालू रहा। आग्रहके उत्तरमें श्रीजयदयालजीने कहा--देखो, मैं तुम्हारे साथ चलनेका वचन दे चुका हूँ और तुम कहोगे तो मैं चलूँगा, पर तुम्हें अभी भोग भोगना अनिवार्य है। यदि तुम संन्यास लोगे तो फिर तुम्हें अपनी गृहस्थीमें आना पड़ेगा और मैंने यदि संन्यास ग्रहण किया तो मैं वापस लौटूँगा नहीं। मैं तो यदि बना तो कानोंसे बहरा, मुँहसे गूँगा और पैरोंसे पंगु संन्यासी बनूँगा। मेरे मनमें अपने एवं तुम्हारे पूर्वजन्मकी बातें स्फुरित हो आई हैं। लगभग दो हजार वर्ष पहले तुम राजा थे, मैं तुम्हारा मंत्री था। उस समय भी हम दोनोंने राज्य छोड़कर संन्यास लिया था। संन्यासके बाद हमलोगोंके पास बहुत लोग सत्संग करने आते थे। वृक्षोंके नीचे सत्संग होता था। कुछ समय बाद मेरा शरीर छूट गया! तुम अकेले रह गये। लोग तेरा अत्यधिक सम्मान करते थे। मैं जब जीवित था तो सम्मान मेरा भी बहुत होता था, परन्तु मैं मनसे स्वीकार नहीं करता था! मेरी मृत्युके पश्चात तुमने सम्मान स्वीकार करना आरम्भ कर दिया अर्थात् पूर्व प्रकृतिके अनुसार उस त्यागाश्रममें भी गद्दे, तकिये एवं बढ़िया खान–पान आदि भोग तुम भोगने लगे, जिससे तुम्हारी बड़ी हानि हुई। तेरा पतन हो गया। समयपर तुम्हारी मृत्यु हुई। मृत्युके बाद तबसे अबतक तुम्हें मनुष्य–जन्म नहीं मिला। तुम पशु–पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करते रहे, परन्तु मैं इतने दिनोंतक ऊपरके लोकमें ही रहा। अब इतने दिनों बाद दैवयोगसे तुम्हारे शुभ कर्म प्रकट हुए और तुम्हें मनुष्य–जन्म मिला और मेरा भी आना हुआ। यदि अब तुम हठ करोगे तो वचनबद्ध होनेसे मैं तुम्हारे साथ सन्यास ग्रहण कर लूँगा, पर निश्चय मानों कि तुम्हें लौटना होगा और मैं लौटूँगा नहीं। मेरा–तुम्हारा संग छूट जायगा। इन बातोंको लेकर बहुत देर विचार होता रहा। अन्तमें संन्यासका विचार त्याग दिया गया। यह निश्चय हुआ कि जयदयालजी बाँकुड़ा रहें तथा हनुमानदासजी कलकत्तामें। समय–समयपर दोनों मिलते रहे। यह क्रम कई वर्षोतक चलता रहा। जब मिलते तो कई बार सारी–सारी रात भगवत्–चर्चा करते बीत जाती, फिर भी बातें समाप्त नहीं होतीं। चुरू भी प्रायः साथ ही जाया करते थे।

सं० १९६४ के आसपास श्रीहनुमानदासजीको उपदंशका रोग हो गया था। भयानक पीड़ा होती थी, तब उन्होंने जयदयालजीसे कहा—मेरा विश्वास है कि यदि तुम अपने मुँहसे कह दो कि मेरा रोग मिट जाय तो मेरा यह रोग मिट सकता है। अवश्य ही तुम्हारे भजन-ध्यानकी पूँजीमें कोई क्षति नहीं होनी चाहिये उन्होंने कहा ठीक है, तुम्हारा रोग तो अवश्य मिट सकता है, पर भोग समाप्त होनेके पूर्व मिटानेसे अवशिष्ट अंश दूसरे जन्ममें भोगना पड़ेगा तथा तुम्हें दूसरा जन्म धारण करना पड़े, ऐसी चेष्टा मेरे द्वारा नहीं हो सकती। हाँ, एक उपाय है, अपना यह रोग तुम मुझे दे दो। हनुमानदासजीने कहा—भला अपना यह भयंकर रोग तुम्हें कैसे दे दूँ, यह मेरेसे नहीं होगा। जयदयालजीने कहा—देखो, यह तुम अस्वीकार कर रहे हो, पर अब जो कहता हूँ उसे अस्वीकार मत करना। उसे अवश्य मान लेना। तुम मुझे अपनी आधी बीमारी अवश्य दे दो, मैं ले लेता हूँ। इससे तुम्हारी आधी पीड़ा कम हो जायगी। इतनी बात होनेके बाद तत्काल ही सचमुच आधा रोग जयदयालजीके शरीरपर चला गया। उनकी मूत्रेन्द्रियपर तत्क्षण आधा घाव हो गया और हनुमानदासजीका आधा घाव ठीक हो गया तथा पीड़ा भी आधी हो गई। जयदयालजीने कहा—दवाकी शीशियाँ फेंक दो। वैसे ही किया गया। हनुमानदासजी आश्चर्यमें डूबे उनकी बातें सुनते रहे। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही जब उन्होंने देखा कि पाँच-सात दिनोंमें ही घावमें बिलकुल आराम हो गया।

सं० १९६५ के आसपासकी बात है। हनुमानदासजी उस समय चुरूमें थे। उन्हें अचानक हैजेका रोग हो गया। कष्ट बहुत बढ़ गया। रातमें बारह बजे जीवनकी आशा जाती रही। वैद्योंने निराश होकर जबाब दे दिया। जयदयालजी उस समय चक्रधरपुरमें थे। उनके पिता श्रीखूबचन्दजी उनके पास थे। उन्होंने पूछा—तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा हो तो बताओ। आग्रहपूर्वक पूछनेपर हनुमानदासजीने कहा और तो कोई इच्छा नहीं है, केवल एक इच्छा है कि जयदयालजीसे एक बार मिल लेता। खूबचन्दजीने कहा—वह तो चक्रधरपुरमें होनेसे अभी पहुँच नहीं सकता। उनका यह कहना ही था कि हनुमानदासजीने देखा—जयदयालजी सशरीर उनके सामने खड़े हैं कि मैं क्यों नहीं आ सकता ? फिर दोनों मित्र आपसमें घुल-मिलकर बातें करने लगे। जयदयालजीने कहा—तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी यह बीमारी ठीक हो

जायगी। आश्चर्यकी बात यह थी कि जो शब्द हनुमानदासजी बोलते थे, वे शब्द सबलोग सुन पाते थे, पर श्रीसेठजीके बोले हुए शब्द केवल हनुमानदासजी ही सुन पाते थे, और कोई नहीं। इससे सबने अनुमान लगाया कि इन्हें सन्निपात हो गया है। बातें करनेके बाद हनुमानदासजीको नींद आ गयी। जागनेपर उन्होंने कहा कि मेरे कोई कष्ट नहीं है। वस्तुतः वे ठीक हो गये। जब जयदयालजीको इसके बारेमें पूछा गया तो कहा—मुझे इस बातका कुछ भी पता नहीं है।

जयदयालजीके प्रति हनुमानदासकी तो श्रद्धा थी, पर उनके घरवालोंकी नहीं थी। एक बार उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि जयदयालजी दूसरेके मनकी बात बता देता है, पर उनकी स्त्रीको इस बातपर विश्वास नहीं हुआ और उसने कहा कि यदि मेरे मनकी बात बता दें तो मैं सच मानूँ। परीक्षाके लिये उसने मनमें किसी विशेष बातका चिन्तन किया तथा जयदयालजीने वह बात ज्योंकि त्यों बता दी। तबसे उनकी स्त्रीकी भी श्रद्धा हो गई।

सत्संगके प्रसंगमें एक दिन जयदयालजीने उनकी पत्नीसे कहा कि भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। वह बोली—उसका ध्यान करना तो संभव है, जिसे पहले देखा हो। भगवान्‌को तो मैंने पहले कभी देखा नहीं, तब उनका ध्यान कैसे करूँ ? जयदयालजीने उसे समझानेकी चेष्टा की कि ऐसी धारणा रखनेसे भगवान्‌के दर्शन होने बड़े कठिन हैं। पर वह अपने बातका समर्थन करती हुई बोली कि प्रत्यक्ष न सही, स्वप्नमें भी यदि दर्शन हो जाय तो उसके अनुसार ध्यान किया जा सकता है। जयदयालजीने अन्तमें क़हा—अच्छी बात है, यदि स्वप्नमें तुम्हें भगवान्‌के दर्शन हो जायँ तो फिर ध्यान करोगी ? उसने तुरन्त उत्तर दिया—फिर तो अवश्य करूँगी। कहना नहीं होगा कि उसी दिन रात्रिमें उनको स्वप्नमें भगवान् विष्णुके दर्शन हुए।

जयदयालजीकी उम्र बीस–बाईस सालकी थी तब ध्यानमें वृत्ति इतनी तल्लीन रहती कि कई बार रास्तेमें बैठ जाते या किसीका कंधा पकड़कर चलते। एक दिन हनुमानदासजीका कंधा पकड़कर रास्तेमें चल रहे थे और उनसे कह रखा था तुम ध्यान रखना, मेरी बृत्तियाँ ध्यानमें एकाग्र हो रही है। रास्तेमें इसी तरह जाते हुए श्रीलालजी गोयन्दकाके

पिताजी स्नान करके आ रहे थे। उनसे सिरसे सिर भिड़ गया। उन्होंने कहा——देखकर नहीं चलता ? इन्होंने कहा——गलती हो गई, क्षमा चाहता हूँ। फिर हनुमानदासजीसे बोले——मैंने तुम्हें पहले ही कह दिया था कि मेरी वृत्तियाँ ध्यानमें एकाग्र हो रही हैं, तुम ध्यान रखना, परन्तु फिर भी तुमने ध्यान नहीं दिया।

व्यापार

सं० १९६० में श्रीजयदयालजी अपने मामाके यहाँ काम करने चुरूसे बाँकुड़ा (बंगाल) आ गये। उनके यहाँ कुछ दिन काम सीखा, फिर अपना अलग व्यापार कर लिया। सं० १९६७ से १९७७ तक, दस वर्ष चक्रधरपुरमें व्यापारकी दृष्टिसे रहना हुआ। सत्यवादिताकी दृष्टिसे व्यापारमें इनका और पिताजीका मतभेद रहा। पिताजीका मोल–भाव जब ग्राहकोंको करते देखते तो उन्हें जितनेमें बेचना होता उससे कुछ अधिक दाम बताते और जो ग्राहक एक दाम पूछता उसे एक दाम बताते। एक दाम बतानेके बाद एक पैसा भी कम न लेते। मोल–भाववाला यदि अधिक मुनाफा दे देता तो हँसकर अधिक रकम वापस दे देते। श्रीजयदयालजी ग्राहकोंसे एक ही दाम बताते। उचित मुनाफा रखकर एक दाम बतानेके बाद उसमें जरा भी परिवर्तन न करते। पिता–पुत्र दोनों ही अपने–अपने विचारोंपर दृढ़ रहे। इससे व्यापारमें इनकी साख बहुत बढ़ गयी। इनके श्रद्धालुजन इन्हें 'सेठजी'के उपनामसे पुकारते थे। इनका व्यापार तो बाँकुड़ामें ही रहा, पर कुछ वर्षो बाद व्यापारका कार्य घरवालोंपर छोड़कर ये अपना अधिकांश समय भगवद्भावोंके प्रचारमें ही लगाते थे।

सत्संग–प्रवचन

जब श्रीसेठजीकी उम्र बाईस वर्षकी थी तभीसे सत्संग–व्याख्यान देने लगे। धीरे–धीरे जैसे लोगोंकी सुननेमें रुचि बढ़ी ये अपना अधिक समय प्रवचनमें लगाने लगे। जहाँ भी रहते वहीं सत्संगका आयोजन होने लगा और उपस्थिति भी बढ़ने लगी। सं० १९६७ से जब ये चक्रधरपुर रहने लगे तो वहाँसे ये शामको खड़गपुर आ जाते तथा सत्संग सुननेवाले कलकत्तेसे खड़गपुर पहुँच जाते। फिर वहाँ सत्संगकी चर्चा होती। फिर सब अपने–अपने स्थानोंको चले जाते। कलकत्तेमें प्रारम्भमें इनका प्रवचन १७४, हरिसन रोडमें होता। श्रीआत्मारामजी खेमकाकी गद्दीमें श्रीसेठजी सोया

करते, वहीं सत्संग कराते। श्रीहीरालालजी गोयन्दकाके पिताजी श्रीसूरजमलकी दूकान मनोहरदास कटरामें थी, वहाँ भी सत्संग होता था। प्रारम्भमें बीस–तीस व्यक्तियोंकी उपस्थिति रहती। रातमें आत्मारामजीकी गद्दीमें चार–पाँच प्रेमीजन सोते थे, ये रात्रिमें जगकर सबसे दो–दो घंटे अकेलेमें बातें करते थे। इस तरह उस समय कलकत्ता जाते तो कई रात्रियोंमें रातभर जगकर सत्संगकी बातें करते थे। दिनमें लोगोंके घरोंमें जाकर सत्संगकी बातें सुनाते। धीरे–धीरे सत्संगियोंकी संख्या बढ़ने लगी और इसके लिये अन्य व्यवस्थाकी आवश्यकता हुई, तब बाँसतल्ला गलीमें 'गोविन्द–भवन' के नामसे एक स्थान किरायेपर लिया गया। कलकत्तामें यह स्थान श्रीसेठजीके सत्संगका प्रधान केन्द्र हो गया। उस समय हनुमानदासजी गोयन्दका श्रीआत्मारामजीके यहाँ नौकरी करते थे। जब श्रीसेठजी कलकत्ता जाते तो वे प्रायः दिनभर साथ रहते। उन्होंने आत्मारामजीको कह रखा था कि श्रीसेठजी जब कलकत्ता रहेंगे तो मैं काम नहीं करूँगा, उनके साथ ही रहूँगा।

उस समय ये साधकोंके पत्रोंका उत्तर अपने हाथसे लिखकर दिया करते थे। कई साधक इकट्ठे होकर उन पत्रोंके भावोंपर विचार–विमर्श करते। जैसे गीताजीके श्लोकोंके अर्थ निकाले जाते हैं, वैसे ही इनके लिखे शब्दोंके अर्थ निकालते। अधिक पत्र–व्यवहार श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका, श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका, श्रीआत्मारामजी खेमका तथा श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया आदिसे होता था। इनके पत्र लोग एक–दूसरेको रजिस्ट्रीसे पढ़नेके लिये भेजते तथा फिर वापस मँगा लेते। उस समय लोगोंकी श्रद्धा बहुत थी।

पूज्यजनोंकी श्रद्धा

श्रीसेठजीके पिताजी पहले आर्यसमाजी थे। 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ा करते थे। बादमें जब श्रीसेठजीकी सत्संगकी बातें सुनीं तथा इनका प्रभाव देखा तो उससे बहुत प्रभावित हुए तथा इनमें श्रद्धा हो गई। श्रीसेठजी बताया करते थे कि उनके जैसी श्रद्धा बहुत कम व्यक्तियोंकी थी। अपनी पत्नीसे कहते थे कि इसको पुत्र नहीं मानो, यह अपने घरमें अवतार है। सं० १९७१ में श्रीसेठजीसे प्रभावित होकर 'हरे राम' के मन्त्रका जप करने लगे। इनके सत्संग आदिके प्रचारसे उनकी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी। एक बार बहुत बीमार हुए तो इनसे पूछा कि मेरा शरीर रहेगा या नहीं ? श्रीसेठजीने कहा—मुझे मालूम नहीं है। वे बोले—हनुमानको तो तुम बता देते हो, वह

तुम्हारा मित्र है, मैं भी तो तुम्हारा कुछ लगता हूँ। उसी समय श्रीसेठजीके मनमें आया कि इस बीमारीमें शरीर नहीं जायगा।

मृत्युके एक महीने पूर्व फिर पूछा कि अब मेरा शरीर रहेगा या नहीं ? श्रीसेठजीने कहा—बतानेसे कोई लाभ नहीं है। यदि मैं कहूँगा मर जायेंगे तो हमलोगोंका सेवाभाव कम हो जायगा कि इनका शरीर तो जानेवाला है ही। यदि मैं कह दूँगा कि नहीं मरेंगे तो भी सेवाभाव कम हो जायगा कि शरीर जानेवाला तो है नहीं इसलिये बतानेमें लाभ नहीं है। जब इन्होंने नहीं बताया तो इनकी माँसे उन्होंने कहा कि तुम पूछो, मुझे तो बताता नहीं। इनकी माँने दो–तीन बार इनसे अलगसे पूछा कि तुम्हारे पिताजी बार–बार पूछते हैं। फिर पिताजीने पूछा तो इन्होंने कह दिया कि आपका शरीर बचता नहीं लगता। मृत्युके एक दिन पहले रात्रिमें सोये नहीं, बोले कि सोते समय कहीं प्राण निकल न जाय ! इन्होंने कहा—आप सो जाइये। वे बोले—तुम गारण्टी लो तो मैं सो सकता हूँ। इनके कहनेपर सो गये। दूसरे दिन प्रातःकाल उठे तो इन्होंने कहा—आज आपका शरीर जा सकता है, आज नींद मत लीजियेगा, आज मेरी गारण्टी नहीं है। उनको जमीनपर सुला दिया था। उनको इतना आनन्द और मुग्धता थी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मृत्युसे पहले श्रीसेठजीकी माँको बोले कि इसे अपना लड़का नहीं मानना, इसे अवतार मानना। उनके मामा श्रीनारमलजी बाजोरियाको बोले—इसे भानजा मत मानिये। इसने अपने घरमें अवतार लिया है। अपने सब लोगोंका उद्धार हो जायगा। पहले दिनसे ही अवर्णनीय प्रसन्नता थी।

श्रीघनश्यामदासजी जालान अपने पिताका कहना न मानते तो श्रीसेठजीके पिताजी उनसे कहते—तुम इसका संग करते हो, पर न इसकी बात मानते हो और न इसका अनुकरण करते हो, फिर संग करनेसे क्या लाभ हुआ ?

श्रीहीरालालजी गोयन्दका श्रीसेठजीके सत्संगमें निकटके साथी थे—बहुत श्रद्धा थी। उनसे भी उनके पिताजी, श्रीसूरजमलजीकी अधिक श्रद्धा थी। वे लोगोंको बुला–बुलाकर श्रीसेठजीके प्रभाव, गुणोंकी प्रशंसा करते तथा उन्हें सत्संगमें लगाते। श्रीसेठजी उनसे कहते—आप मेरी प्रशंसा न किया करें। वे उत्तर देते—और आपकी सब बात मान लेगें, केवल यह एक बात नहीं मानेंगे। उनकी मृत्युके चार–पाँच घंटे पूर्व श्रीसेठजी उनके पास बैठे थे। भगवान्‌की बातें सुना रहे थे। उनको विष्णु

भगवान्‌का चित्र दिखाया और बोले कि भगवान्‌के दर्शन करिये। वे बोले——यह तो चित्र है तब श्रीसेठजीने अपना चश्मा उतारकर उनको लगा दिया और बोले——अब देखिये। चश्मा लगनेपर बोले——अब दर्शन हो रहे हैं।

सं० १९७३ में श्रीझाबरमलजी सिंघानिया पुरुलियामें थे। उनको प्लेगकी बीमारी हो गई और डाक्टरोंने जबाब दे दिया। श्रीसेठजी उस समय चुरूमें थे, उनके पिताजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। श्रीझाबरमलजीने श्रीसेठजीको बुलानेका तार भेज दिया कि तुमसे मिलनेकी इच्छा है, स्थिति चिंताजनक है। श्रीसेठजीने तार पिताजीको सुनाया। पिताजी कटाक्षसे बोले——जाना ही चाहिये, तुम्हारा मित्र है। श्रीसेठजीने कहा——मैं जानेकी बात नहीं कहता हूँ। पिताजी बोले——तब मुझे तार सुनानेकी जरूरत क्या थी ? फिर श्रीसेठजी तो गये नहीं। बादमें श्रीझाबरमलजीने बताया कि तार देनेके बाद उन्होंने देखा कि यमदूत आये हैं। फिर देखा, श्रीसेठजी आ रहे हैं तथा उनके साथ श्रीभगवान् भी हैं। उनको देखते ही यमके दूत भाग गये। वे ठीक हो गये।

एक बार श्रीबद्रीदासजी गोयन्दकाने, जो श्रीसेठजीमें श्रद्धा रखते थे, उनकी खडाऊँ धोकर उस जलको पी लिया। यह बात श्रीसेठजीके छोटे भाई श्रीहरिकृष्णदासजीने देख ली। उन्होंने श्रीसेठजीसे इसकी शिकायत की। श्रीसेठजीने उनको बुलाकर कहा कि आपको ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये। मैं जिस बातको बुरी बताता हूँ वह आप लोगोंको नहीं करनी चाहिये। यदि चोरी करनेसे धन मिलता हो तब भी चोरी नहीं करनी चाहिये। बादमें उनको बात समझमें आ गई।

अन्तरंग मित्रको गोपनीय पत्र

पूज्य श्रीसेठजीने चुरूसे वि० सं० १९७२ के लगभग अपने अन्तरंग मित्र श्रीहनुमानदासजी गोयन्दकाको कलकत्ते एक परम गोपनीय पत्र लिखा। श्रीसेठजीकी लेखनीसे ऐसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति मिलनी दुर्लभ है। पत्रका महत्त्वपूर्ण अंश उद्धरित कया जा रहा है——

"सिद्ध श्रीकलकत्ता बंदर भाई हनुमानसेती लिखी चुरूसे जयदयालका जयगोपाल परम आनन्द बचना। श्रीपरमेश्वरने हरदम याद राखियो। ....

और आपको कसूर छे नहीं। अपणे कोई प्रेमकी बात हुई जेंको तुमा कुछ भी विचार करना नहीं। हमारी मरजी माफक सगली बात हुवे छे पीछे

तुमारो दोष कुछ भी छे नहीं।

हमां तुमाने रेल मांय कई थी तुमारो भी हमारे मांय पूरो प्रेम नहीं है। जिको भाईजी पूरण प्रेम हुया पीछे देरी लागे नहीं। पूरण प्रभाव जान्यो पीछे कुछ बाकी रेवे नहीं। संसारके हिसाबसे तुमारो बहुत प्रेम छे, सगलोंसे ज्यादा प्रेम है।

ईश्वर भावसे पूरण विश्वास हुवतो तो परमेसर तो सगली जगा मोजूद छे। दर्शन हुया पड्‌या छे फेरूँ चिन्ता रेवती नहीं। हमारे केनेमें पूरण विश्वास तथा हमारेपर पूरण विश्वास तथा प्रेमपूरण हुयाँ पीछे ससार मांय कुछ करतब बाकी रेवे नहीं। इस मांय जान लेना। कुछ पूछनो हो तो चिट्ठी मौजूद राखियो। रूपकार पूछ लियो।

गीताप्रेसकी स्थापना

स्वयं भगवान्‌की वाणी होनेसे गीताजी प्रारम्भसे ही श्रीसेठजीको बहुत प्रिय थी। इसका स्वाध्याय वे बहुत मनपूर्वक करते। स्वाध्याय करते समय जब वे अध्याय १८ की श्लोक–संख्या ६८–६९ का मनन करते, जिसमें भगवान्‌ने कहा है—जो पुरुष इस रहस्ययुक्त गीताशास्त्रका मेरे भक्तोंमें प्रचार करेगा उससे बढ़कर कोई मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें न कोई है और न उससे बढ़कर कोई होगा—तब इनके मनमें आता कि मैं भी ऐसा ही बनूँ। इन्होंने निश्चय किया कि स्वयं अपना जीवन गीताके अनुसार बनानेपर ही ऐसा संभव है। इन्होंने स्वयं तत्परतापूर्वक लगकर पहले अपना स्वयंका जीवन वैसा ही बनाया। थोड़े ही समयमें ये गीताजीके सिद्धान्तोंके ज्वलन्त उदाहरण बन गये। उसके पश्चात् ये स्थान–स्थान घूमकर गीताके भावोंका प्रचार करने लगे। उसके लिये आवश्यकता थी शुद्ध पाठवाली गीता पुस्तककी, जो उस समय उपलब्ध नहीं थी। श्रीसेठजीने अपने भावानुसार उसकी व्याख्या लिखकर कलकत्ताके वणिक् प्रेससे पाँच हजार पुस्तकोंका संस्करण छपवाया। सावधानी रखनेपर भी पुस्तकमें मुद्रणकी भूलोंको देखकर उनका मन खिन्न हो गया। दूसरे संस्करणमें भी चेष्टा करनेपर भी भूलोंका सर्वथा अभाव नहीं हो सका। तब इन्होंने सोचा, जबतक अपना प्रेस न हो तबतक यह काम सम्भव नहीं है। यद्यपि इनका व्यापार बाँकुड़ामें था, पर ये सत्संगके प्रचार हेतु घूमते रहनेके कारण किसी एक स्थानपर अधिक समय नहीं रह पाते थे। अतः समस्या थी कि प्रेसकी

स्थापना कहाँ की जाय ? श्रीघनश्यामदासजी जालानने सुझाव दिया कि यदि प्रेसकी स्थापना गोरखपुरमें की जाय तो उसकी व्यवस्थाका कार्य मैं अपने व्यापारके साथ सँभाल सकता हूँ श्रीसेठजीको सुझाव ठीक लगा और गोरखपुरमें प्रेस खोलनेका निश्चय हो गया।

सन् १९२२ में श्रीसेठजीने सत्संग–प्रचार–हेतु 'गोविन्द–भवन कार्यालय' नामसे एक ट्रस्ट, सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्टके अन्तर्गत पंजीकृत कराया। इसी ट्रस्टके अन्तर्गत गीताप्रेसकी स्थापना मई सन् १९२३ में गोरखपुरमें हुई। प्रारम्भमें उर्दू बाजारमें दस रुपये मासिक किरायेपर मकान लेकर उसमें सर्वप्रथम हैंड प्रेस प्रिंटिंग मशीन खरीदकर सितम्बर सन् १९२३ में कार्य आरम्भ हुआ। इससे मुद्रण सुन्दर न होनेपर २२ अक्टूबर सन् १९२३ को सबसे पहले एक ट्रेडिल मशीन दो हजार रुपयेमें खरीदी गई और उसी मकानमें लगायी गयी। इससे भी कार्यमें समुचित प्रगति न होनेपर १० जनवरी १९२४ को सात हजार रुपयेमें २०–३० इंच साइजकी पैन–फ्लेट–बेड सिलिंडर मशीन खरीदी गयी। इससे गीताके मुद्रणमें सुविधा हो गई और गीताके छोटे–बड़े कई संस्करण प्रकाशित होने लगे। किरायेका स्थान बहुत छोटा होनेसे अपना मकान खरीदनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई एवं वर्तमान गीताप्रेसका पूर्वी खण्ड दस हजार रुपयेमें १२ जुलाई १९२६ को खरीदा गया। उस समय तो वह मकान आवश्यकतासे अधिक बड़ा लगता था, पर कार्यका विस्तार होनेसे थोड़े समय बाद वह स्थान भी छोटा लगने लगा। अतः आवश्यकतानुसार उसी मकानके बगलमें क्रमशः और भी जमीन खरीदी गयी और विस्तार होता गया। गीताजीके अतिरिक्त श्रीसेठजी एवं भाईजी द्वारा लिखित पुस्तकें, रामचरितमानसके विभिन्न संस्करण, 'कल्याण', अन्य संतोंकी पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगीं। श्रीसेठजीके जीवन–कालमें लगभग पाँच सौ विभिन्न आकार–प्रकारकी पुस्तकें प्रकाशित होकर दैवी–सम्पदाका प्रचार–प्रसार करने लगी थीं। धीरे–धीरे विस्तार करते हुए विभिन्न आकारोंकी बीस स्वचालित मशीनें लग गई थीं। इसके अतिरिक्त फोल्डिंग मशीने, सिलाई मशीनें, कटिंग मशीनें अलग थीं। इतने बड़े कार्यके सम्यक् संचालनके लिये अर्थकी समुचित व्यवस्था होना परमावश्यक था। इस दृष्टिसे श्रीसेठजीकी सूझ–बूझ तथा दूरदर्शिताकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम ही होगी। श्रीभाईजी जैसे अभिन्न सहयोगीके मिल जानेसे कार्यकी प्रगतिमें चार चाँद लग गये। श्रीसेठजीने प्रारम्भसे ही

अनुभव किया कि चन्दे या दानपर चलनेवाली संस्थाओंका जीवन सुदीर्घ नहीं होता। चन्देपर निर्भर रहनेसे न तो आयका स्थायी स्रोत रहता है, न उनके सिद्धान्त सदैव स्थिर रहते हैं। दानदाता अर्थके बलपर संस्थाकी नीतिको प्रभावित करते हैं। इसलिये इन विभूतिद्वयने प्रारम्भसे ही ऐसी नीति अपनायी कि अर्थकी दृष्टिसे गीताप्रेसकी आधारशिला दृढ़ रहे। साथ ही पुस्तकोंको लागतसे भी कम मूल्यपर उपलब्ध कराना था, जिससे वे सस्ती रहनेसे प्रचार अधिकाधिक होता रहे। इन सपनोंको साकार करनेके लिये टीटागढ़ पेपर मिलसे कागजकी एजेंसी ली गई। साथ ही अहिंसाके व्यावहारिक प्रचारके लिये चर्मरहित जूतोंकी दूकान, लाखरहित चूड़ियोंकी दूकान तथा आयुर्वेदिक औषधियोंकी दूकान कलकत्तेमें गोविन्द–भवनमें खोली गयी। इस अर्थनीतिका परिणाम था कि गीताप्रेसकी प्रगतिके लिये कभी किसीके सामने हाथ नहीं फैलाया गया। 'न लाभ, न हानि' के सिद्धान्तको स्वीकार करनेपर जब कार्यका विस्तार हुआ तो घाटा लगनेसे उसकी पूर्तिके लिये श्रीसेठजीके पश्चात् श्रीभाईजीके परामर्शसे हाथके बुने कपड़ोंका व्यापार खोला गया। इनके विलक्षण व्यक्तित्वसे आकर्षित होकर कई निस्पृह एवं कर्मठ व्यक्ति गीताप्रेसमें सेवा–भावनासे आ गये थे। श्रीघनश्यामदासजी जालान तो आजीवन निष्ठापूर्वक कार्य सँभालते रहे। इनके अतिरिक्त मुख्य थे श्रीसुखदेवजी अग्रवाल, श्रीगंगाप्रसादजी अग्रवाल तथा श्रीशम्भुनाथजी चतुर्वेदी।

शारीरिक बल

युवावस्थामें श्रीसेठजीमें शारीरिक बल भी असाधारण था। चारपाईकी रस्सीको मुँहसे पकड़कर चारपाईको चारों ओर घुमाया करते थे। दोनों हथेलियोंपर दो लड़कोंको खड़ा करके उन्हें उठा लेते थे। आसन, व्यायाम किया करते थे। कभी–कभी ललाट एवं गलेकी नाड़ीको तेज चलाकर दिखाते थे। पैरोंमें पसीना लाकर भी दिखाते थे। लोगोंने हाथ लगाकर देखा, कभी शरीरको एकदम गर्म कर लेते, कभी एकदम ठंडा। कभी शरीरके नीचेका आधा भाग ठंडा कर लेते, ऊपरका आधा भाग गरम। कभी नेत्रोंसे आँसुओंकी अजस्रधारा बहाकर दिखाते। जब इन बातोंका रहस्य पूछा गया तो श्रीसेठजीने कहा—इसमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, केवल संकल्पसे जैसा चाहूँ वैसा कर लेता हूँ।

ध्यान लगवाना

एक बार श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका श्रीसेठजीसे मिलनेके लिये चक्रधरपुर गये। एक दिन उन्होंने कहा——लोग समाधि लगाते हैं, उसी तरह मेरी भी समाधि लगा दें। श्रीसेठजी बोले——समाधि दो प्रकारसे लगाई जाती है। एक तो प्राणायामके द्वारा योग पद्धतिसे, दूसरी भगवान्‌के सगुण स्वरूपका ध्यान करनेसे आनन्दमें विभोर होकर बाह्य-ज्ञान लुप्त होनेसे लग सकती है। इस दूसरे प्रकारसे तुम्हारी समाधि लगानेकी चेष्टा करके मैं समाधि तो लगा सकता हूँ, पर समाधिको पुनः उतारनेकी क्रिया मैं नहीं जानता। यदि तुम्हारी समाधि लग गई और फिर नहीं उतरी तो लोग तुम्हें मरा हुआ समझकर शरीरको जला देंगे। अतः समाधिकी बात छोड़ दे। हनुमानदासजीने पूछा——इस प्रकारकी समाधिमें स्थित मनुष्यको लोग जला दें तो उसकी क्या गति होगी ? श्रीसेठजीने कहा——वैसे मनुष्यको भगवत्प्राप्ति हो जायगी, क्योंकि उसकी वृत्तियाँ भगवत्स्वरूपमें लीन रहती हैं। उस मनुष्यका तो लाभ ही है, क्योंकि उसका जीवन सफल हो गया। यह बात सुनकर उनकी उत्कंठा और बढ़ गयी। वे समाधि लगानेका आग्रह करने लगे। अधिक आग्रह देखकर श्रीसेठजीने स्वीकार कर लिया। जिस मकानमें वह रहते थे उसके समीप ही एक दूसरा टूटा हुआ मकान था। लोगोंकी धारणा थी कि उस मकानमें भूत रहता है। श्रीसेठजीने उसी मकानमें चलनेको कहा, क्योंकि उसमें किसीके आनेकी संभावना नहीं थी। दोनों व्यक्ति वहाँ जाकर थोड़ी-सी जगह साफ करके ओढ़नेकी चादर बिछाकर बैठ गये। श्रीसेठजी प्रभावसहित सगुण भगवान्‌के ध्यानकी बातें करने लगे। कुछ समय बीत गया पर उनका ध्यान नहीं लग रहा था। यह देखकर श्रीसेठजी अपने स्थानसे उठे और जहाँ स्वयं बैठे थे वहाँ उन्हें बैठा दिया और उनके स्थानपर स्वयं बैठ गये। पुनः ध्यानकी बातें आरम्भ करते ही उनको रोमांच होने लगा, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह निकले तथा ध्यान होने लगा तथा कुछ देर बाद समाधि जैसी स्थिति होनी आरम्भ हो गयी। श्रीसेठजीने कहा——मेरी रायमें अब समाधिकी चेष्टा यहीं बन्द कर देनी चाहिये, क्योंकि लोग तुम्हें देखकर कदापि नहीं समझेंगे कि समाधि लगी हुई है। वे मरा हुआ मानकर जलानेकी व्यवस्था करेंगे। घरवालोंको बड़ा दुःख होगा। लोग डरसे मेरे पास आना बन्द कर देंगे तथा उन्हें जो आध्यात्मिक यत्किंचित् सहायता मिलती है, वे उससे वंचित रह जायँगे। ऐसे कार्यमें तुम निमित्त बनो,

यह मैं नहीं चाहता। तुम्हारे कल्याणमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। आज हुआ तो क्या ? और कुछ दिन बाद हुआ तो क्या ? अतः मेरी बात मान लो। मैं वचन दे चुका हूँ, अतः तुम्हारी अनुमतिसे ही बन्द करना उचित है। वे उस प्रेममय रायकी अवहेलना नहीं कर सके। श्रीसेठजीने समाधि लगानेकी चेष्टा बन्द कर दी। कुछ देर बाद सेठजी बोले—वास्तवमें इस मकानमें एक मनुष्य मरकर प्रेत हो गया था। वह अबतक यहीं था। अभी हमलोगोंके बीच जो भगवान्‌की चर्चा हुई, उसे सुनकर उसने प्रेतयोनिसे छूटकर सद्‌गति प्राप्त कर ली। अतः हमलोगोंका परिश्रम तो सफल हो गया।

स्वास्थ्यके लिये अनुष्ठान

'कल्याण'का प्रथम अंक निकलनेके बाद श्रीसेठजीका स्वास्थ्य विशेष खराब हो गया। औषधोपचार जैसा होना चाहिये, वैसे हो रहा था पर उससे कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं हुआ। परिवारवालोंको चिन्ता थी ही, सत्संगी भाईयोंको भी चिन्ता थी। अन्य स्वजनोंको भी चिन्ता होने लगी। बीकानेरके पण्डित श्रीगणेशदत्तजी व्यास श्रीसेठजीके यज्ञोपवीत गुरु थे तथा उनका श्रीसेठजीपर बड़ा स्नेह था। इन्हें रुग्ण देखकर वे भी चिन्तित हो गये। व्यासजी स्वयं ज्योतिषी एवं तंत्रशास्त्रके ज्ञाता थे। श्रीसेठजीकी जन्मपत्री देखकर वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि ग्रह शान्तिके बिना वे स्वस्थ नहीं होंगे। अतः इसके लिये उन्होंने श्रीसेठजीके परिवारवालोंको प्रेरणा दी। यद्यपि परिवारवालोंका श्रीव्यासजीपर बड़ा विश्वास था, पर किसीने भी अनुष्ठानादिके लिये प्रोत्साहन नहीं दिया। अर्थका कोई संकोच नहीं था। रुपये चाहे जितने व्यय किये जा सकते थे, पर बात अड़ रही थी सैद्धान्तिक आदर्शको लेकर। श्रीसेठजीके सिद्धान्तमें निष्कामता कूट-कूटकर भरी थी। वे तो उपासनाके लिये उपासनाका सिद्धान्त मानते थे। नश्वर शरीरके लिये प्रभुकी उपासना वे उचित नहीं मानते थे, न कभी प्रोत्साहन देते थे, फिर ग्रहोंकी सकाम उपासनाके पक्षपाती होनेका प्रश्न ही नहीं था। परिवारवालोंमें किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी कि प्रत्यक्ष या छिपकर व्यासजीको प्रोत्साहन दें। समर्थन न पाकर व्यासजी कुछ निराश हो गये, क्योंकि अनुष्ठान अर्थसाध्य था। स्वयं उनके पास उतने रुपये थे नहीं और परिवारमें किसीने स्वीकार नहीं किया। साथ ही वे श्रीसेठजीको स्वस्थ देखना चाहते थे और अपनी समझसे सर्वोत्तम उपाय करना चाहते थे। अचानक उन्हें भाईजीकी याद

आई। उन्होंने सारा विवरण लिखकर भाईजीको भेजा कि अनुष्ठान तो मैं स्वयं कर दूँगा, उसका खर्च वहन तुम कर लो। पत्र पाते ही भाईजीने चुपचाप बिना किसीको बताये व्यासजीके बताये अनुसार सारी अर्थ-व्यवस्था कर दी। अनुष्ठान पूर्ण हो गया। सचमुच ही अनुष्ठान पूर्ण होते ही श्रीसेठजी पूर्ण स्वस्थ हो गये।

अग्रवाल महासभाको परामर्श

मारवाड़ी अग्रवाल महासभामें दो दल हो गये थे—एक दल विधवा-विवाह आदिका समर्थक था, दूसरा दल इसे आर्य-संस्कृतिका घातक मानकर विरोध करता था। वार्षिक अधिवेशन कलकत्तामें चैत्र शुक्ल सं० १९८४ में होनेवाला था। दूसरे दलका श्रीसेठजीके पास तार आया कि आपलोग महासभाको अपना सहयोग न दें तथा अधिवेशनमें उपस्थित तक न हों। श्रीसेठजीने भाईजीको बम्बई तार दिया कि यदि काममें विशेष हर्ज न हो, माँजी स्वस्थ हों तथा वे आज्ञा दें तो महासभाके समय पहुँचना चाहिये। उसी दिन उन्होंने दोपहरमें बाँकुड़ाके लिये प्रस्थान किया। श्रीसेटजीने भाईजी, अनुज श्रीहरिकृष्णदास एवं हनुमानदासजी गोयन्दका आदिसे परामर्श किया। अन्तमें कलकत्ते जानेका विचार तय हुआ। महासभामें सम्मिलित होनेवालोंके प्रति बहुत विरोध-प्रदर्शन किया जा रहा था। अतः ये सभी लोग शान्ति रक्षाकी दृष्टिसे हबड़ा स्टेशनसे पहले ही राजारामतल्ला स्टेशनपर उतर पड़े। सत्संगी भाइयोंको पहले ही सूचना मिल चुकी थी, अतः दस-पंद्रह व्यक्ति राजारामतल्ला स्टेशनपर आ गये थे। वहाँसे मोटरमें बैठकर गोविन्द-भवन चले गये। दोनों दलोंको समझानेके लिये भाईजीको भेजा गया। भाईजीने शान्ति बनाये रखनेकी पूरी चेष्टा की तथा अधिवेशन शान्तिसे सम्पन्न हो गया। श्रीसेठजीका अधिवेशनमें सम्मिलित होनेका पूर्ण विचार था, पर सभापतिके भाषणमें विधवा-विवाहका समर्थन देखकर विचार बदल गया।

हरिजन-बस्तीमें आग

श्रीसेठजी प्रायः प्रतिवर्ष चुरू जाया करते थे। एक बारकी बात है, वे चुरूमें थे, तभी हरिजनोंकी बस्तीमें आग लग गई। हरिजनोंके सारे झोपड़ें जलकर भस्म हो गये। अपने बाल-बच्चोंको आश्रय देना भी हरिजनोंके लिये विकट प्रश्न बन गया। इस विपन्नावस्थाकी जानकारी श्रीसेठजीको

मिली। उनका नवनीत–सा हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त हरिजनोंके लिये नये झोपड़े बनवानेकी व्यवस्था कर दी। नवीन झोपड़ियोंके बन जानेपर हरिजन पुनः सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

ऐसा कहा जाता है कि जब दुःखके दिन आरम्भ होते हैं तो उनकी श्रृंखला शीघ्र समाप्त नहीं होती। हरिजनोंके दुर्भाग्यकी बात क्या कही जाय ? श्रीसेठजीने जिन नवीन झोपड़ियोंको बनवाया था उनमें फिर आग लग गई। वे हरिजन पुनः आश्रय–विहीन हो गये। ज्योंहि श्रीसेठजीको यह ज्ञात हुआ कि आग लग जानेसे हरिजन पुनः घरबार–रहित हो गये हैं, श्रीसेठजीने असीम उदारतासे पुनः झोपड़िया बनवा दीं। हरिजनोंका हृदय अत्यधिक कृतज्ञतासे भर गया।

पर हाय रे दुर्भाग्यकी श्रृंखला ! उन झोपड़ियोंमें फिर आग लग गई और हरिजन फिर आश्रय–विहीन हो गये। अब वे किस मुँहसे श्रीसेठजीको अपना दुख–दर्द सुनायें ? हरिजन भले ही न कहें, पर श्रीसेठजीतक उनके दुःखकी गाथा पहुँच गयी। श्रीसेठजीने अपनी असीम उदारतावश सहज ही कहा कि उन हरिजनोंके लिये फिरसे नवीन झोपड़ियाँ बनवा देनी चाहिये। ऐसा कहते ही किसी स्वजनने कहा कि भगवान्‌को यह स्वीकार नहीं है कि हरिजन किसी आवास–आश्रयमें रहें, इसलिये तो उनके लिये बनी झोपड़ियाँमें बार–बार आग लग जाती है। अतः हरिजनोंके लिये नवीन झोपड़ियोंको नहीं बनवाना चाहिये।

इसपर परम भक्त श्रीसेठजीने उत्तर दिया—भगवान् क्या चाहते हैं और क्या करते हैं, इसे देखना हमारा काम नहीं है। हमारा कर्तव्य है कि अपनी दृष्टि ठीक लक्ष्यपर रखें तथा जो संकटग्रस्त हों उनकी यथाशक्ति उत्साहपूर्वक सहायता करें। यह तो भगवान् हमें सेवाका अवसर प्रदान कर रहे हैं, ऐसा मानना चाहिये।

स्वजन आगे कुछ बोल नहीं सके। अपने निश्चयानुसार श्रीसेठजीने हरिजनोंके लिये पुनः झोपड़ियाँ बनवा दीं। इस बार उनके आवासोंमें आग नहीं लगी और वे श्रीसेठजीके उपकारको न भूलकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

अहिंसा प्रचार

जब श्रीसेठजीको पता लगा कि चमड़ेके जूते बनानेके लिये गाय–बछड़ोंकी हिंसा की जाती है तो उन्होंने चमड़ेके जूते न पहननेका व्रत

ले लिया। पहने हुए जूते भी वहीं छोड़ दिये। उन दिनों बिना चमड़ेके जूते सरलतासे मिलते नहीं थे अतः काफी दिनोंतक श्रीसेठजी नंगे पैर ही घूमते रहे। फिर बड़ा प्रयत्न करके ऐसे जूतेके निर्माणकी व्यवस्था की जिनमें चमड़ेका प्रयोग न हो।

इसी प्रकार पहले लाखकी चूड़ियाँ बनती थीं, जिनके उत्पादनमें कीड़ोंकी हत्या होती थी। श्रीसेठजीका अहिंसक हृदय इस बातको सहन नहीं कर सका। उन दिनों मारवाड़ी समाजमें लाखकी चूड़ियाँ पहनना सौभाग्य—रक्षाका प्रतीक माना जाता था। श्रीसेठजीने अपने प्रवचनोंसे इस धारणाका उन्मूलन किया एवं उसके स्थानपर जहाँ काँचकी चूड़ियाँ बनती थीं, उन स्थानोंसे चूड़ियाँ प्राप्त करनेका प्रयास किया गया। कुछ समय बाद कलकत्तेमें गोविन्द—भवनकी दूकानमें चर्मरहित जूते—चप्पल तथा काँचकी चूड़ियोंके विक्रयकी व्यवस्था हो गई।

प्रयाग—कुम्भके गीता—ज्ञान—यज्ञमें

कुम्भके समय तीर्थराज प्रयागमें लाखों लोग दूर—दूरसे एकत्रित होते हैं। भगवन्नाम—प्रचारका सुन्दर अवसर समझकर श्रीसेठजीके परामर्शसे वहाँ 'गीता—ज्ञान—यज्ञ' का आयोजन किया गया। माघ सं० १९८६ में वे स्वयं भी पधारे तथा भाईजी भी वहाँ पहुँचे हुए थे। दिनमें श्रीसेठजीका प्रवचन होता। गीता प्रदर्शनीका भी आयोजन किया गया था। पं० जवाहरलाल नेहरूकी माताजी श्रीमती स्वरूपरानी नियमित रूपसे सम्मिलित होती थीं। आयोजन सफल रहा।

भाईजीकी एकान्तमें गंगा—तटपर रहनेकी लालसा प्रबल थी। वे श्रीसेठजीको बराबर पत्र लिखकर अनुमति माँगा करते थे। उत्तरमें श्रीसेठजीने पौष शुक्ल ४, सं० १९८६ को बाँकुड़ासे लिखा——"तुमने लिखा मेरे द्वारा अधिक दिन काम होना कठिन—सा है। ....तुम्हारे जानेके विषयमें क्या लिखूँ ? मुझे तो 'प्रेस' और 'कल्याण'से संसारमें बहुत लाभ दीख रहा है। मेरी बुद्धिके अनुसार तो तुम्हें गोरखपुरमें ही एकान्तमें रहकर काम देखना चाहिये। ....यदि मेरा और तुम्हारा प्रयाग जाना हो जाय तो वहाँपर एकान्तमें सब बातें की जा सकती हैं।"

प्रयागमें जब दोनों मिले तो सारी व्यवस्था ठीक करके माघ कृष्ण ३०, सं० १९८६ को जब श्रीसेठजी बाँकुड़ा जाने लगे तो भाईजीने एकान्तमें

बातें करके अपनी हार्दिक लालसा उनके सामने रखी। श्रीसेठजीने बहुत प्रेमसे कहा— -मुझे तो गोरखपुरके महान् कार्यको छोड़कर कहीं जानेकी बिलकुल नहीं जंचती है। तुम्हारा इतना आग्रह है तो तुम्हारी प्रबल इच्छाको रोकना उचित न समझकर कुछ दिनोंके लिये तुम्हें छुट्टी दी जा सकती है। पर 'रामायणांक' के सम्पादनकी जिम्मेवारी तुम्हारी है, तुम चाहे जहाँ रहकर कर सकते हो। भाईजी उनकी बातका पूरा आदर करते थे और एकान्तकी बात टल गई।

परिवार

श्रीसेठजीके तीन भाई और तीन बहनें थीं। श्रीसेठजीसे छोटे भाई श्रीहरिकृष्णदासजी बड़े ही धर्मनिष्ठ एवं विद्वान् थे। उन्होंने धर्मग्रन्थोंका अच्छा अध्ययन किया था। संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान था। संस्कृतके कई ग्रंथोंका हिन्दीमें अनुवाद किया, जो गीताप्रेससे प्रकाशित हुए। कुछ समय व्यापारके कार्योमे लगाकर अधिक समय ये स्वाध्यायमें लगाते थे। इनसे छोटे श्रीशिवदयालजी थे। इनका देहावसान सं० २००० में चुरूमें हो गया। सबसे छोटे भाई श्रीमोहनलालजीका जन्म आषाढ़ शुक्ल ७ सं० १९६५ (६ जुलाई सन् १९०८) को चुरूमें हुआ। सभी भाइयोंको सादगी तथा सत्यपरायणताके संस्कार पिताजीसे प्राप्त हुए थे। श्रीसेठजीके कोई सन्तानें न होनेसे जब मोहनलालजी आठ वर्षके थे तभी उन्होंने गोद ले लिया। इनका अध्ययन रतनगढ़के ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रममें हुआ। सन् १९२६ में ये स्नातक बनकर चुरू आये। सन् १९२७ में विवाह हुआ। तीन–चार महीने बाद ही पत्नीका देहान्त हो गया। घरवालोंके विशेष दबाव होनेसे और गाँधीजीका संकेत मिलनेसे सन् १९२७के मध्यमें पुनः विवाह हो गया—श्रीमोहनलालजी झुनझुनवालाकी पुत्री सावित्रीबाईके साथ। पहले ये खादीके व्यवसायमें लगे। गाँधीजीसे प्रभावित होकर ये बिना किसीको बताये घरसे निकल गये। गाँधीजीने घर लौटनेकी राय दी। कई महीने बाद घर आ गये। १९ वर्षकी उम्रमें बाँकुड़ा आकर अपने मामाजीकी अनाजकी दूकानमें व्यापार सँभालना शुरू किया। करीब तीन वर्ष अनाजका व्यापार करनेके बाद सन् १९३२ में भाइयोंको राजी करके 'जयदयाल हरिकृष्ण'के नामसे सूतका व्यापार शुरू किया। इस समय परिवारकी स्थिति साधारण थी। फिर सूत रँगनेका काम प्रारम्भ किया। थोड़े समय बाद एक बनियाइन बमानेकी

फैक्टरी लगाई। सन् १९३७–३८ के करीब श्रीसेठजी व्यवसायसे पूर्ण अवकाश ग्रहण कर चुके थे। सन् १९३८ में श्रीहरिकृष्णदासजीकी लड़की शान्ता, जो केवल २२ वर्षकी थी, विधवा हो गई–परिवारमें शोककी लहर दौड़ गई। उसी वर्ष मोहनलालजीका दूसरा लड़का ईश्वर चला गया। इनका धैर्य देखने योग्य था, सबको धैर्य बँधाते थे। सन् १९४० में 'गोयनका ट्रस्ट'की स्थापना की तथा अधिकांश व्यापार ट्रस्टमें ही करने लगे। आयसे जनताकी सेवा करना ही लक्ष्य हो गया। व्यापारमें असत्यका प्रयोग इन्हें भी पसन्द नहीं था। सन् १९४९ के अन्तमें श्रीहरिकृष्णदासजीकी पत्नीका निधन हो गया। परिवारकी भलाई तथा आपसी प्रेम बना रहे, इस बातको ध्यानमें रखकर मोहनलालजीने अपने दोनों बड़े भाइयोंके सामने कुटुम्बके आर्थिक बँटवारेका प्रस्ताव रखा। बँटवारेके समय प्रमुख अर्थोपार्जन करनेवाले होनेपर भी उन्होंने अपने लिये कोई हिस्सा नहीं लिया। सब काम प्रेमपूर्वक इस प्रकार तय किया कि वर्षों बाद भी लोगोंको इसका पूरा पता नहीं लग पाया। लोकोपकारी कार्योंमें भी श्रीमोहनलालजी पूर्ण रुचि रखते थे। बाँकुड़ामें काफी रुपया खर्च करके 'गोयनका विद्यायतन' नामक एक उच्च श्रेणीके विद्यालयका निर्माण किया। बाँकुड़ा जिलेमें अन्य तीन स्थानोंपर भी उच्च श्रेणीके विद्यालय स्थापित किये। बाँकुड़ाके दक्षिणमें द्वारकेश्वर नामकी बड़ी नदी है, उसपर पुल न होनेसे वर्षा ऋतु तथा गर्मीमें जनताको बहुत असुविधाका सामना करना पड़ता था। बहुत ही बड़ी धनराशि व्यय करके इन्होंने कुमारघाट नामक स्थानपर एक उत्कृष्ट पुलका निर्माण करा दिया। चक्षुदानके केन्द्रोंका आयोजन एवं दुर्भिक्षके समय प्रचुर सहायता आदि कार्य तो करते ही रहते थे।

स्वर्गाश्रममें सत्संग–सत्र

उत्तराखण्ड हमारे देशका शताब्दियोंसे साधना–स्थल रहा है। श्रीसेठजी वैसे तो स्थान–स्थानपर भ्रमण करके सत्संग कराया ही करते थे, पर उत्तराखण्डकी पवित्र भूमि ऋषिकेशमें तो श्रीसेठजीने एक सत्संग सत्र ही खोल दिया था। यह क्रम सं० १९७८–७९ के लगभग प्रारम्भ होकर अभीतक निर्बाध चल रहा था। प्रतिवर्ष श्रीसेठजी चैत्रसे आषाढ़तक प्रायः यहीं रहते एवं सत्संगियोंका एक दल बड़ी ही पवित्र श्रद्धाके साथ एकत्रित होकर सुरसरिकी पावन कलकल धारासे सुसज्जित पुलिनपर भगवद्–रसका

आस्वादन करता। कुछ दिन बाद यही आयोजन गंगाके दूसरे तटपर, जिसे स्वर्गाश्रम कहते हैं, आयोजित होने लगा। उस समय वहाँ सघन जंगल था, रहनेके लिये मात्र कुछ कुटियाएँ थीं। गंगातटपर विशाल वटवृक्षकी छायामें भगवद्–रसका प्रवाह बहता रहता। धीरे–धीरे सत्संगमें आनेवालोंकी संख्या बढ़ने लगी। उनकी सुविधाके लिये श्रीसेठजीकी प्रेरणा एवं प्रयत्नसे यहीं गंगातटपर 'गीता–भवन' नामक एक विशाल भवनका निर्माण सत्संगमें आनेवालोंके निवास हेतु हुआ। सत्संगके लिये एक बड़े हालका भी निर्माण हुआ एवं स्नानकी सुविधाके लिये विशाल घाट भी बने। सत्संगके समय भोजनालयकी भी व्यवस्थाकी जाती थी।

सत्संग–प्रवचनका क्रम प्रातः चार–साढ़े चार बजे प्रारम्भ होकर रात्रिके दस–साढ़े दस बजेतक चलता रहता। बीचमें थोड़ा समय भोजन तथा अपने व्यक्तिगत साधना–भजनके लिये रहता। पाँच–छः समय तो श्रीसेठजी स्वयं प्रवचन देते तथा उनके आग्रहसे भाईजी, स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज, स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज आदि अन्य संत भी पधारते एवं प्रवचन देते। प्रवचनके अतिरिक्त श्रीसेठजी आये हुए साधक–साधिकाओंकी समस्याओंके समाधान भी उन्हें एकान्तमें समय देकर करते थे।

गीताकी तत्त्व–विवेचनी टीका

स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज वैसे तो सर्वप्रथम श्रीसेठजीसे श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीकी प्रेरणासे मार्गशीर्ष कृष्ण २ सं० १९९१ को चुरूमें मिले थे। पर इनका विशेष आकर्षण श्रीसेठजीके प्रति सं० १९९३के चातुर्माससे हुआ। सन् १९३६ में स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराज, स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके पास गोविन्द–भवन कलकत्तामें जाया करते थे। गोविन्द–भवन उन दिनों बाँसतल्ला गलीमें था। एक दिन श्रीरामसुखदासजी महाराज श्रीसेठजीके कुछ पत्र एक साधकको सुना रहे थे। (बाबा) भी वहीं बैठे सुन रहे थे। एक पत्र सुनकर बाबाके मनमें आया कि बिना स्वरूपानुभूतिके ऐसा पत्र लिखा ही नहीं जा सकता। उन्होंने स्वामीजीसे पूछा––यह पत्र किसका लिखा हुआ है तथा वे कहाँ रहते हैं ? स्वामीजीने बताया––यह पत्र श्रीसेठजीका है एवं वे बाँकुड़ामें रहते हैं। बाबाने कहा––मैं इनसे मिलना चाहता हूँ। स्वामीजीको प्रसन्नता हुई कि एक प्रतिभा––सम्पन्न युवक संन्यासीके मनमें श्रीसेठजीके प्रति आदरभाव जाग उठा है। उन्होंने

सारी व्यवस्था करवायी तथा बाबा बाँकुड़ा पहुँच गये। बाबाने एकान्तमें श्रीसेठजीसे काफी बातचीत की तथा उन्हें अपने अनुमानकी पुष्टि मिल गई। उनकी श्रद्धा श्रीसेठजीपर बढ़ गई। कई दिनोंतक बाबा भगवतत्त्वपर श्रीसेठजीके साथ विचार-विनिमय करते रहे। तीन-चार दिनों बाद श्रीसेठजीको सत्संगके लिये राँची जाना था। श्रीसेठजीके अनुरोधपर बाबा भी उनके साथ राँची गये। वहाँ भी परस्पर विचार-विनिमय चलता रहा। बाबा श्रीसेठजीकी स्वरूपानुभूतिपर और उनके चिन्तन-विवेचनपर मुग्ध थे। बाबाको लगा कि गीतापर श्रीसेठजीके जो भाव, विचार और अनुभव हैं, वे यदि लिपिबद्ध नहीं हुए तो जगत् दिव्यनिधिसे वंचित रह जायगा। उन्होंने श्रीसेठजीसे कहा—आप गीतासम्बन्धी अपने विचारोंको लिपिबद्ध करा दें। श्रीसेठजीने कहा—इसे कौन करे और कैसे होगा ? मैं तो शुद्ध हिन्दी भी ठीक प्रकारसे बोल-लिख नहीं पाता। बाबाने कहा—मेरा लेखन आपको रुचिकर हो तो यह कार्य मैं कर सकता हूँ। श्रीसेठजीके एक गीता-प्रवचनको बाबाने लिपिबद्ध करके दिखाया। बाबाकी अभिव्यक्ति-कुशलता, भाषा-अधिकार और विषय-प्रवेशको देखकर श्रीसेठजी प्रसन्न हो गये। बस, तभी यह तय हो गया कि गीताकी टीका लिखी जानी चाहिये और यह भी तय हुआ कि यह कार्य गोरखपुरमें आरम्भ होगा। श्रीसेठजीको अन्यत्र जाना था। अतः गोरखपुर पहुँचनेकी तिथि तय हो गयी। बाबाको गोरखपुरका रेल-टिकट दे दिया गया। श्रीसेठजीने उन्हें वहाँ भाईजीसे मिलनेको भी कहा। बाबा पहले पहुँच गये, अतः वे भाईजीके निवास-स्थान 'गीता-वाटिका' जाकर उनसे मिले तथा वहीं ठहर गये।

श्रीसेठजीके गोरखपुर पहुँचनेपर गीताकी टीका लिखनेका कार्य आरम्भ हो गया। विद्वद्-गोष्ठीमें पहले गीताजीके श्लोकके अर्थपर विचार किया जाता। यह विचार-गोष्ठी प्रतिदिन बैठती। इस गोष्ठीमें रहते श्रीसेठजी, स्वामी रामसुखदासजी महाराज, पूज्य बाबा, श्रीसेठजीके छोटे विद्वान् भ्राता श्रीहरिकृष्णदासजी आदि। भाईजी भी कभी-कभी सम्मिलित हो जाते थे। कुछ समय तक पं० शान्तनुबिहारीजी द्विवेदी भी सम्मिलित रहे। बाबाका कार्य था, इस गोष्ठीमें गीताजीके श्लोकोंपर भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतोंको बतलाना। तदुपरान्त श्लोकोंमें निहित रहस्यपर परस्परमें विचारोंका आदान-प्रदान होता। इस रहस्य-मन्थनमें श्रीसेठजीका मत ही निर्णयके रूपमें मान्य रहता। श्रीसेठजीके इन विचारोंको बाबा लिपिबद्ध करते।

लिपिबद्ध सामग्रीमें आवश्यक संशोधन भाईजीके द्वारा होता। सत्संगके लिये श्रीसेठजीको प्रायः यत्र–तत्र जाना ही पड़ता था। अतः इस भ्रमणमें भी विचार–गोष्ठीमें भाग लेनेवाले यथासंभव साथ जाते। इस प्रकार निरन्तर तत्परतापूर्वक संलग्न रहनेके बाद लगभग ढाई वर्षमें यह कार्य सम्पन्न हुआ। लेखन–कार्यकी सम्पन्नता अप्रैल सन् १९३९ में बाँकुड़ामें हुई, उस समय भाईजी भी वहीं थे। श्रीसेठजीके जीवनकी यह तत्त्व–निधि सर्वप्रथम 'कल्याण' के १४ वें वर्षके विशेषांक 'गीता–तत्त्वांक' के नामसे सन् १९४० में प्रकाशित हुई। बादमें श्रीसेठजीके द्वारा आवश्यक संशोधनके पश्चात् ग्रन्थरूपसे 'गीता–तत्त्व–विवेचनी' के नामसे गीताप्रेससे प्रकाशित हुई।

मध्यस्थता

पढ़े–लिखे न होनेपर भी श्रीसेठजीको समाजका अत्यधिक विश्वास प्राप्त था। पारिवारिक विभिन्न प्रकारके झगड़े सलटवानेके लिये लोग कोर्टमें न जाकर श्रीसेठजीको अपना पंच बना लेते थे। श्रीसेठजीने लाखों–लाखों रुपये कोर्टमें बर्बाद होनेसे बचाये तथा दोनों पक्षवालोंको सन्तुष्ट करके भेजा। उनका पर्याप्त समय इन कामोंमें लगता था। इतना ही नहीं, कई बार तो बडे–बड़े व्यक्तियोंकी भी मध्यस्थता की। एक बार पं० मदनमोहनजी मालवीय हरिजनोंके लिये मन्त्र–दीक्षा देनेका विशेष प्रचार कर रहे थे—सभा, पुस्तकें, व्याख्यान, लेख आदिके द्वारा। श्रीकरपात्रीजी महाराजने शास्त्रविरुद्ध होनेसे इसका विरोध किया। दोनोंमें शास्त्रार्थका दिन निश्चित हुआ। यह शास्त्रार्थ ऋषिकेशमें हुआ। उनमें दो मध्यस्थ चुने गये—श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका। यह शास्त्रार्थ कई दिनोंतक चला तथा उनमें दोनों व्यक्ति उपस्थित रहे। दोनों ही महानुभाव उच्चकोटिके विद्वान् होनेके कारण प्रबल युक्तियों एवं प्रमाणोंसे अपना पक्ष ठीक सिद्ध कर रहे थे। अन्तमें गौरीशंकरजीने श्रीकरपात्रीजी महाराजके पक्षमें अपना निर्णय दे दिया। परन्तु श्रीसेठजीने कुछ इस प्रकारका निर्णय दिया—'देश और समाजकी परिस्थितिके अनुसार प्रौढ़ युक्तियोंके द्वारा मालवीयजीने अपना पक्ष सिद्ध कर दिया है। शास्त्रप्रमाणकी दृष्टिसे श्रीकरपात्रीजी महाराजका पक्ष ठीक है।' स्पष्ट निर्णय न देनेसे श्रीकरपात्रीजी महाराज कुछ रुष्ट हो गये। करपात्रीजीने 'कल्याण' में लेख देना बन्द कर दिया। परन्तु बादमें श्रीसेठजीने अपनी व्यवहार–कुशलतासे

करपात्रीजीको प्रसन्न कर लिया। करपात्रीजीने स्वयं एक बार कहा कि गीताप्रेसवाले श्रीसेठजी और भाईजीने गोरक्षा–आन्दोलनमें इतना सहयोग दिया कि मेरा मन प्रसन्न हो गया और मतभेद रहनेपर भी मैंने विरोध करना छोड़ दिया।

कट्टर सनातनधर्मी होनेपर भी श्रीसेठजी सामाजिक परिस्थिति, राष्ट्रीय हित, मानवोचित सहृदयता एवं राष्ट्रीय नेताओं तथा महात्माओंके आदरभावसे कभी असावधान नहीं हुए।

दुःख मिटानेकी युक्ति

जिन दिनों 'गीता–तत्त्व–विवेचनी' टीका बाँकुड़ामें लिखी जा रही थी, उस समय भाईजी, रामसुखदासजी महाराज, बाबा चक्रधरजी महाराज, पं० शान्तनुबिहारजी द्विवेदी आदि विद्वान् वहींपर थे। उन्हीं दिनों मोहनलालजीके छोटे बच्चेका शरीर शान्त हो गया। मोहनलालजी श्रीसेठजीके छोटे भाई तो थे ही, श्रीसेठजीके कोई सन्तान न होनेसे उन्हींको दत्तक पुत्रके रूपमें स्वीकार कर लिया था। बच्चेको लेकर सब श्मशान गये। लौटनेपर देखा कि श्रीसेठजी अत्यन्त व्याकुल हैं। सब लोग उनकी सेवामें लग गये। समझाने लगे––आप इतने दुःखी हो जायँगे तो लोग क्या कहेंगे ? आप इतने भगवद्भक्त हैं, लोग कहेंगे कि जब इनका दुःख नहीं मिटा तो भगवान्के मार्गपर चलनेसे हमारा दुःख क्या मिटेगा ? श्रीसेठजीने कहा––घर–बाहरका कोई भी व्यक्ति मेरे सामने दुःखी होकर आयेगा तो मैं फिर दुःखी हो जाऊँगा। इसलिये तुम लोग यह प्रतिज्ञा करो कि कोई दुःखी नहीं होगा तो मैं व्याकुल नहीं रहूँगा। ऐसा ही किया गया और सब ठीक हो गया। श्रीसेठजी सर्वथा सामान्य हो गये।

दूसरे दिन एकान्तमें किसीने श्रीसेठजीसे पूछा––क्या कल सचमुच आपको इतना दुःख हुआ। श्रीसेठजी बोले––मैंने सोच–विचारकर दुःखी होनेका अभिनय किया था। यदि मैं व्याकुल न होता तो घरके सब लोग रोते–पीटते और मैं उन्हें समझाते–समझाते थक जाता। जब मैं दुखी हो गया तो सब लोग समझदार हो गये तथा मुझे समझाने लगे। अकेले मेरे दुःखी होनेसे सबका दुःख मिट गया।

लोगोंका दुःख मिटानेकी भी एक कला होती है, जो किसी–किसी महापुरुषको आती है।

तीर्थयात्रा

सन् १९३८ के लगभग गीताप्रेसकी ओरसे एक तीर्थयात्रा ट्रेन निकली थी। लगभग तीन महीनेतक सब तीर्थोंकी यात्रा हुई। श्रीसेठजी भी साथमें थे। उनकी खान–पानकी पवित्रता एवं निष्ठा प्रसिद्ध थी। वे खान–पानकी वस्तुमें पवित्रता एवं व्यक्तियों तथा पात्रोंकी शुद्धिपर बड़ा ध्यान रखते थे। अपनी इस निष्ठाके कारण वे चाहे जहाँका भोजन एवं जल स्वीकार नहीं करते थे, चाहे वह भगवत्प्रसाद ही क्यों न हो। कई बार ऐसे प्रसंग उपस्थित हो जाते थे, जहाँ प्रसादकी मर्यादा तथा आपसी व्यवहारका निर्वाह करना पड़ता था, वहाँ वे, अपनी व्यवहार–कुशलतासे प्रसादकी मर्यादाका निर्वाह करते हुए——बिना किसीका चित्त दुखाये अपनी आचार–निष्ठाको अक्षुण्ण रखते थे। एक बार एक मन्दिरमें दर्शन करने गये। दर्शन करके बाहर निकल रहे थे तो पुजारी भगवान्का चरणामृत देनेके लिये दौड़कर उपस्थित हुए। चरणामृत होनेसे श्रीसेठजीने हाथमें ले लिया तथा उसे मुँहमें न लेकर सिरपर डाल लिया। साथवाले लोग इनकी निष्ठा देखकर मुग्ध हो गये। साथ रहनेवालोंको इस प्रकारके निष्ठा–निर्वाहको देखनेके कई उदाहरण मिलते थे।

तीर्थयात्रा करते समय साथवालोंके आग्रहके कारण श्रीसेठजी भावनगरका राजमहल देखने गये। वहाँ उस समय राजा तो थे नहीं, परन्तु स्वागत–सत्कारका पूरा प्रबन्ध था। कार्यकर्ताओंने श्रीसेठजीसे खाने–पीनेके लिये बहुत आग्रह किया। श्रीसेठजी उत्तर देते रहे——मैं अभी भोजन करके आया हूँ, भूख नहीं है। अन्ततः वे लोग जल पीनेके अनुरोधपर अड़ गये। श्रीसेठजी बार–बार एक ही उत्तर देते——भूख नहीं है। वहाँसे लौटनेपर एक महानुभावने सेठजीसे पूछा——वे लोग आग्रह कर रहे थे जल पीनेको और आप उत्तर देते रहे 'भूख नहीं है'। इसका क्या रहस्य है ? श्रीसेठजीने बताया——उस समय मुझे प्यास लगी हुई थी और वहाँका जल पीना नहीं था, क्योंकि शुद्धताका पता नहीं, तब मैं यह कैसे कह देता कि प्यास नहीं है। वे अपने वाक्–कौशलसे बिना वहाँके लोगोंका चित्त दुखाये बच आये।

तोताद्रिमें यात्रियोंने वहाँके अभिषेक–तेलकी महिमा सुनकर टीन भरकर ट्रेनमें रख लिये। वहाँ तेलकी कोई कीमत नहीं ली जाती। श्रीसेठजीको यह बात ज्ञात होनेपर सबको डाँटा और कहा——यह प्रसादकी मर्यादाके विपरीत है, अन्याय है, बेईमानी है। सबसे कीमत वसूल ली गई और सैकड़ों

रुपये मन्दिरमें जमा कराये गये। उनकी न्यायनिष्ठा आदर्श थी। मार्गमें रेलवे–कर्मचारियोंको पुरस्कार तो दिलवाते थे, परन्तु घूस देनेको मना करते थे। तीर्थोंके प्रति श्रीसेठजीकी विशेष रुचि नहीं थी। उनका मुख्य उद्देश्य सत्संग–प्रचारका था। प्रत्येक स्टेशन एवं शहरमें श्रीसेठजीका प्रवचन होता। उसकी व्यवस्था करनेके लिये कुछ लोग अग्रिम पहुँच जाते थे। श्रीरमण महर्षिका दर्शन करने श्रीसेठजी गये तथा ध्यानके विषयमें उनसे बातें कीं। यात्रामें श्रीसेठजी कई स्थानोंपर वहाँके विद्वानोंको बुलाते, उनका बड़ा आदर–सत्कार करते और दक्षिणा देते।

श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी (स्वामी अखण्डानन्दजी)से वार्तालाप

श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी जो सन्यासके पश्चात् स्वामी अखण्डानन्दजीके नामसे विख्यात हुए—'कल्याण' में प्रकाशित लेखोंसे प्रभावित होकर सं० १९९३ में भाईजीके पास रहनेके लिये गोरखपुर आ गये। 'कल्याण' के सम्पादकीय विभागमें काम करने लगे, साथ ही साधन–भजनमें विशेष रुचि लेने लगे। भाईजीमें तो विशेष श्रद्धा थी ही, श्रीसेठजीमें भी अच्छी श्रद्धा थी। सेठजीसे कई बार एकान्तमें समय माँगकर बातें किया करते थे।

एक दिन उन्होंने श्रीसेठजीसे पूछा—आपके गुरु कौन हैं? श्रीसेठजीने कहा—मैं स्वामी मंगलनाथजीको गुरुतुल्य मानता हूँ। पहले तो उनपर सोलह आना श्रद्धा थी, बादमें जब वे गोशालाके मुकदमेंमें पड़ गये तो श्रद्धा दो पैसे कम हो गई। निर्गुणविषयक उनका और हमारा सिद्धान्त एक ही है। ब्रह्म–साक्षात्कारके लिये अद्वैत वेदान्त सर्वथा आवश्यक है। श्रीशंकराचार्यजीपर भी साढे पन्द्रह आने श्रद्धा बताई। कारण पूछा तो कहा—शंकाराचार्यजीने तत्त्वज्ञानके लिये कर्मत्याग करके संन्यास–ग्रहणकी जो अनिवार्य आवश्यकता बतलायी है, वह मुझे मान्य नहीं है, और बातें मैं मानता हूँ। श्रीसेठजीका स्वाभाव ऐसा था कि वे वेदशास्त्र, पुराणकी किसी बातको न अनुचित बताते थे और न ही खण्डन करते थे। उनके बोलनेकी शैली थी—यह बात हमारे समझमें नहीं आयी, इस बातमें मेरी रुचि नहीं है। किसी भी विवादसे अपनेको अलग कर लेनेका उनमें अद्भुत कौशल था।

श्रीसेठजी कहीं भी सत्संग–प्रवचन करते तो अपनी सन्ध्योपासनाका समय अवश्य बचा लेते थे। एक दिन उन्होंने बताया—जबसे

मैने यज्ञोपवीत ग्रहण किया हे तबसे अबतक (लगभग पचास वर्षोमें) कभी सन्ध्योपासनमें अन्तर नहीं पड़ा। यथाशक्ति कालातिक्रमण भी नहीं किया, कर्मातिक्रमणकी तो बात ही क्या है ? ट्रेनमें होनेपर समयपर मानसिक सन्ध्या करके बादमें क्रियारूपमें भी कर लिया करते। जल न मिलनेपर बालूसे भी अर्घ्य देनेका काम करना पड़ा। अपने धर्मका यह अपूर्व निर्वाह उनकी दृढ़निष्ठाका ही सूचक है।

श्रीसेठजी जब गीताजीकी टीका लिखा रहे थे तो श्रीद्विवेदीजी भी कुछ महीनोंके लिये उनके निवास–स्थान बाँकुड़ामें रहे थे। वहाँसे आनेके समय श्रीसेठजी और उनके विद्वान् भ्राता श्रीहरिकृष्णदासजी उनसे बोले—पण्डितजी ! आपके घरमें लड़कीका विवाह होनेवाला है। आप हमारी इस बर्तनकी दुकानके अन्दर चले जाइये और आपको जितना चाहिये उतना बर्तन छाँटकर अलग कर दीजिये। हम आपके साथ भेज देंगे। उनकी उदारता देखकर द्विवेदीजीका हृदय भर गया। बर्तन तो उन्होंने अधिक नहीं लिये, पर उनके उन्मुक्त हृदय–उदारतासे आप्यायित हो गये।

श्रीद्विवेदीजीने श्रीसेठजीके पूर्वजन्मकी कुछ बातें सुनीं तो उनको पूरा विश्वास नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने श्रीसेठजीसे एकान्तमें पूछा—आपके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें आपके नामसे कई बातें कही जाती है। क्या आपने कभी पूर्वजन्मकी बातें किसीको कहीं हैं ? श्रीसेठजीने कहा—मैंने अबसे बीस–तीस वर्ष पूर्व कुछ ऐसी बातें कही थी। उन्होंने पूछा—आपको पूर्वजन्मका स्मरण है ? श्रीसेठजीने 'हाँ' में उत्तर दिया। बोले—चाहें तो आप भी अपने पूर्वजन्मकी बातें जान सकते हैं। उन्होंने पूछा—सो कैसे ? श्रीसेठजी बोले—**'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म–कथन्ता सम्बोधः'** इस योगसूत्रके अनुसार संयम कीजिये। वासनारहित प्रज्ञामें सत्यका आविर्भाव होता है। मैंने कभी ऐसी धारणा की थी तब मुझे पूर्व जन्मकी स्फुरणा हुई थी। पर श्रीसेठजी जन्म–जन्मान्तरकी चर्चापर बल नहीं देते थे। सगुण–निर्गुण परमात्माकी उपासनापर ही बल देते थे। श्रीसेठजी व्यक्ति पूजाके विरोधी थे। उनका कहना था किसी साधु–महात्माको अपनी पूजा नहीं करानी चाहिये। फोटो खिंचवाना, उच्छिष्ट प्रसाद देना, स्त्रियोंसे एकान्तमें मिलना, अपनी प्रशंसा करवाना—वे किसी महात्माके लिये उचित नहीं समझते थे। न वे स्वयं कभी ऐसा करते थे। इस सम्बन्धमें इतने दृढ़ थे कि बड़े–बड़े प्रसिद्ध महात्माओंसे मिल–जुलकर एकान्तमें तथा जनसमूहमें उन्होंने निःसंकोच

ऐसा कह दिया कि आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। इस चर्चाको लेकर कभी–कभी विवादके प्रसंग भी उपस्थित हो गये, पर वे अपने सिद्धान्तपर अड़िग रहे। एक बार श्रीकरपात्रीजी महाराजका वेदान्त–चर्चामें श्रीसेठजीसे मतभेद हो गया। वह मतभेद था––तत्त्वज्ञके आचरणके सम्बन्धमें। श्रीसेठजीका कहना था––तत्त्वज्ञ महात्मा उसको मानना चाहिये जिसका आचरण लोगोंके लिये आदर्श एवं अनुकरणीय हो। उनकी दृढ़ निष्ठा थी कि जो सच्चा ज्ञानी है, उससे शास्त्र–विरुद्ध आचरण हो ही नहीं सकता।

एक बार हरिद्वारमें कुम्भका मेला था। उसमें गीताप्रेसने भी पुस्तकोंकी दूकान लगाई थीं। मेलेमें आग लग जानेसे गीताप्रेसकी दूकान भी जलकर भस्म हो गई। दूकानका बीमा कराया हुआ था, अतः पूरे रुपये मिल गये। श्रीसेठजीके सामने बात आई तो उन्होंने पूरा हिसाब देखा और आज्ञा दी कि जो पुस्तकें बिक गई थीं उनका रुपया बीमा कम्पनीको वापस कर दिया जाय। वैसा ही किया गया। वे तो कहा करते थे कि ईमानदारी और भगवान्‌की सेवाकी भावनासे व्यापार किया जाय तो उससे भी मुक्ति हो जाती है।

एक दिन मस्तीमें आकर बोले––स्वामीजी ! कई लोगोंको कोई न कोई शौक होता है। मेरी रुचिका विषय है––सत्संग, अन्यथा मैं इन सब कामोंमें क्यों पड़ता ? इसमें कुछ–न–कुछ खर्च भी करता रहता हूँ और समय भी लगाता हूँ।

भागवतांकका प्रकाशन

'कल्याण' के रामचरितमानस एवं गीतापर विशेषांक निकलनेके बाद, यह विचार और जोड़ पकड़ने लगा कि श्रीमद्भागवत महापुराणपर विशेषांक निकलना चाहिये। श्रीसेठजी भी श्रीमद्भागवतके महत्त्वको भलीभाँति जानते थे पर वे एक कट्टर मर्यादावादी संत थे। उनके मनमें आशंका थी कि समाजके अभद्र तत्त्व 'रासपंचाध्यायी' का मनमाना अर्थ लगाकर समाजमें अनर्थकारी वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। लोक–संग्रहकी कसौटीपर खरा उतरनेपर ही वे किसी प्रसंगका प्रकाशन चाहते थे। लोकसंग्रहकी भावनासे प्रेरित होनेके कारण उनकी इच्छा थी कि भागवतपर विशेषांक प्रकाशित हो तो दशम स्कन्धके श्रीमहारासवाले पाँच अध्यायोंको विशेषांकमें नहीं छापना चाहिये।

इस बातपर भाईजीका श्रीसेठजीसे मतान्तर था। भाईजीकी गहरी आस्था एवं सुदृढ़ मान्यता थी कि श्रीरासपञ्चाध्यायीके पाँच अध्याय तो भागवतके पाँच प्राण हैं। हमलोगोंको भगवान् वेदव्यासकी वाणीपर अविश्वास करनेका क्या अधिकार है ? श्रीरासपंचाध्यायीके अन्तमें फलश्रुतिके रूपमें स्पष्ट कहा गया है कि इससे हृद्‌रोगका नाश होता है। भले ही श्रीमद्भागवतका प्रकाशन न हो, पर यदि हो तो उसमें पाँच अध्याय अवश्य रहें। अपनी आस्था अभिव्यक्त कर देनेके बाद वे तटस्थ रहे। उनकी उपराम–वृत्ति उन दिनों प्रबल थी। अतः वे सितम्बर १९३६ में एकान्तवासके लिये श्रीसेठजीसे आज्ञा लेकर दादरी चले गये। तीन मास वहाँ रहकर वे रतनगढ़ चले गये। श्रीसेठजीने देखा, भाईजीके बिना 'कल्याण'का सम्पादन और प्रकाशन संभव नहीं है अतः वे एक दिन गीतावाटिका गये तथा सम्पादकीय विभागके सभी वरिष्ठ कार्यकर्ताओंसे कहा—आपलोग यहाँसे रतनगढ़ चले जायँ और हनुमानको लेकर यहाँ आयें। यदि आनेकी बात न बन पाये तो अपालोग सब वहीं रह जायँ तथा वहींसे 'कल्याण' के सम्पादनका काम होता रहे। श्रीसेठजीके कथनके बाद सारा सम्पादकीय विभाग रतनगढ़ चला गया एवं पाँच वर्ष सबलोग वहीं रहे। सन् १९४० में 'कल्याण' का विशेषांक 'साधनांक' प्रकाशित हुआ। समाज प्रतीक्षा कर रहा था भगवतांककी और श्रीसेठजी भी इस बातको भली प्रकार समझ रहे थे। सन् १९४१ में चुरूस्थित ऋषिकुलका वार्षिकोत्सव हुआ, जिसमें श्रीसेठजी यथासंभव जाते ही थे तो उसके बाद सेठजी रतनगढ़ गये। श्रीभाईजीसे मिलकर विभागके वरिष्ठ लोगोंके सामने ही मारवाड़ी भाषामें कहा—हनुमान ! एक रकम सेती म्हे हार्या, तू जीत्यो ! इब भागवतांक प्रकाशित कर। श्रीसेठजीने यह भी कहा कि तुम चीरहरण–लीला और महारास–लीलापर अपनी ओरसे विस्तृत टिप्पणी अवश्य दे देना। अनुमति देकर सेठजी चले गये। समय बचा था मात्र तीन–चार मास। इस छोटी अवधि में अठारह हजार श्लोकोंवाले महापुराणका अनुवाद कराकर, आवश्यक लेखोंको एकत्रित करके, चित्र तैयार कराकर ग्यारह सौ पृष्ठोंके विशेषांकको ठीक समयपर प्रकशित कर देना भाईजीकी शक्तिका प्रबल प्रमाण है। इतना विशाल विशेषांक न पहले कभी प्रकाशित हुआ, न बादमें। सम्पादनके अलावा श्रीसेठजीकी आज्ञानुसार चीरहरण–लीला, महारास–लीलाके साथ ही माखनचोरी लीलापर टिप्पणीके रूपमें विस्तृत लेख स्वयं लिखे जो युगोंतक साधकोंको एक महान् आलोक प्रदान करते रहेंगे।

कर्मठता

ब्रह्मनिष्ठ सन्त होनेपर भी श्रीसेठजीकी कर्मठता अद्भुत थी। ऐसी कर्मठता ब्रह्मनिष्ठ सन्तोंमें प्रायः देखनेको नहीं मिलती। युवावस्थामें ही नहीं, सत्तर वर्षकी आयुके उपरान्त भी उन्हें सोलह घण्टे काम करते देखा गया। प्रातः चार बजे उठ जाते थे तथा शारीरिक कार्योंमें एवं भोजनादिमें लगभग दो घण्टेके अतिरिक्त चाहे प्रवासमें हो अथवा बाँकुड़ामें, सारे समय सावधानीपूर्वक कार्योंमें ही लगे रहते थे। अपनी नित्योपासनाके अतिरिक्त सत्संग कराना, साधकोंसे एकान्तमें बात करना, लेख लिखवाना, आये हुए पत्रोंका उत्तर लिखवाना। लगभग पच्चीस–तीस पत्र प्रतिदिन आते थे। पंचायत करके झगड़े निपटवाना, स्वजनोंको परामर्श देना आदि–आदि न जाने कितने कार्योंमें लगे रहकर दस बजे रात्रिसे पहले कभी नहीं सोते थे। रात्रिके समय साधक वार्तालापके लिये पहुँच जाते तो सोनेकी परवाह न करके देरतक उनसे बातचीत करते रहते। रात्रिमें एक–दो बजेतक बातचीत करते भी उन्हें देखा गया। दिनभरमें कहीं प्रमाद नहीं, आलस्य नहीं, शिथिलता नहीं, उदासीनता नहीं। ऐसा लगता था कि वे चिर जागरूक हैं, सतत सावधान हैं। एक शब्दमें कहा जाय तो वे साक्षात् 'गीतामूर्ति' थे, गीताके सशरीर अवतार ही थे। गीतानुसार जीवनका ऐसा उदाहरण भारतीय संस्कृति और साधनाके इतिहासमें विरले ही है।

विशेष प्रभावकी बातें

प्रसंग वि० सं० २००० के आसपासका है। पूज्य श्रीसेठजी गीता जयन्तीके कुछ दिनों पूर्व गोरखपुर पधारे हुए थे। वे श्रीघनश्यामदासजी जालानके घरपर ठहरे हुए थे। मार्गशीर्ष शु० ४–५ के लगभग गीताप्रेसके मुख्य कार्यकर्ता श्रीघनश्यामजीके घरपर ही श्रीसेठजीसे बातें कर रहे थे। सभी प्रेमीजनोंके सामने श्रीसेठजी बोले कि इस बार गीता–जयन्तीके अवसरपर श्रीगीताजीकी प्रदर्शनी बहुत ही सुन्दर ढंगसे सजानी चाहिये।

इसपर श्रीशुकदेवजी बोले कि गंगाबाबू तो चित्रकूट जा रहे हैं तब प्रदर्शनी सुन्दर ढंगसे कौन सजायेगा ? इसके बाद पं० लाधूरामजीने अपने पुत्र नारायण प्रसादको गीता रामायण परीक्षा समितिमें काम देनेसे असन्तोष प्रकट किया। फिर श्रीबद्रीप्रसादजी आचार्यने भी कुछ असन्तोष प्रकट किया। इन सब बातोंको श्रीसेठजी मौन रहकर कुछ देरतक सुनते रहे।

थोड़ी देर बाद श्रीसेठजी सावधानीसे वीरासनसे बैठकर बोले कि आपलोग इतने वर्षोंसे मेरे साथ रहते हैं, गीताप्रेसकी सेवा करते हैं, आप लोग मुझे अभीतक क्या समझ रहे है ?

(१) जो मुझे सर्वशक्तिमान् समझता है उसके लिये मैं सर्वशक्तिमान् हूँ।

(२) जो मुझे अन्तर्यामी समझता है उसके लिये मैं अन्तर्यामी हूँ।

(३) जो मुझे सर्वज्ञ समझता है उसके लिये सर्वज्ञ हूँ। आपलोगोंसे मुझे कुछ संसारकी सेवाका काम लेना है इसलिये मैं वैसी श्रद्धा नहीं होने देता। नहीं तो श्रद्धा होनेमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं हो सकता।

विशेष साधनकी बातें

एक बार स्वर्गाश्रममें गंगा किनारे वट–वृक्षके नीचे सत्संग हो रहा था। श्रीसेठजी बोले आज आपलोगोंको ऐसी बात बताते हैं जिसमें आपको कुछ भी करना न पड़े और आपका कल्याण हो जाय। लोग बड़ी उत्सुकतासे सुनने लगे कि ऐसी क्या बात है कि जिसमें कुछ भी न करना पड़े और कल्याण हो जाय। श्रीसेठजी बोले वह बात यह है कि आप हर समय प्रसन्न रहिये। फिर स्वयं ही प्रश्न करने लगे कि आप लोग कहेंगे कि क्या बात लेकर हर समय प्रसन्न रहें ? तो वह बात यह है कि आप लोगोंपर भगवान्‌की इतनी कृपा है कि आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मेरे कहनेसे आप इस बातपर विश्वास कर लीजिये और इसी बातको याद करके हर समय प्रसन्न रहिये।

दूसरे अवसरपर उसी वट–वृक्षके नीचे सत्संग कराते समय बोले आप लोग मेरे पर कृपा करके एक बातका तो निश्चय कर लीजिये कि अब मेरा और जन्म नहीं होगा। जो भी भाई–बहिन ऐसा निश्चय कर लेगा उसका फिर और जन्म नहीं होगा। पर कोई सन्देह करेगा कि क्या पता और जन्म होगा या नहीं तो उसके बारेमें संन्देह है

नेत्र ऑपरेशन

देखनेमें पर्याप्त तकलीफ रहनेके कारण श्रीसेठजीके नेत्रोंका ऑपरेशन करानेकी बात कई दिनोंसे सोची जा रही थी। अन्ततोगत्वा भाईजीके परामर्शसे भिवानी जाकर वहाँके नेत्र–विशेषज्ञसे ऑपरेशन करानेका निश्चय किया गया। भाईजी भी गोरखपुरसे श्रीसेठजीके साथ फाल्गुन शुक्ल ११

सं० २००५ को रवाना होकर गये। रास्तेमें दिल्लीमें श्रीसेठजीने 'हिन्दू-कोड-बिल' के विरोधमें प्रवचन दिया। भिवानीमें भाईजीकी उपस्थितिमें श्रीसेठजीके नेत्रोंका ऑपरेशन हुआ।

पौत्रका विवाह

श्रीसेठजीके दत्तक पुत्र मोहनलालजीके एकमात्र पुत्र माधवका विवाह चैत्र शुक्ल १५ सं० २००८ को सत्संग-प्रेमी श्रीश्रीनिवासजी बूबनाकी लड़की गायत्रीसे तय हुआ। श्रीसेठजीके घरमें बहुत वर्षो बाद पुत्र-विवाह होनेसे दूर-दूरसे लोग बाँकुड़ा आये थे। भाईजी तथा अन्य सन्त भी पधारे। कलकत्तेसे तो सत्संगी भाइयोंकी एक बड़ी टोली पहुँच गई थी। बारातका दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। श्रीडूँगरमलजी लोहिया बारात रवाना होनेपर श्रीसेठजी एवं भाईजीके आगे-आगे नृत्य करते हुए संकीर्तन करा रहे थे। संकीर्तन करते हुए ही बारात विवाह-स्थलपर पहुँची। विवाहका लग्न अर्धरात्रिके बाद होनेसे अधिकांश लोग रात्रिमें वहीं रहे।

गोरखपुरमें अकाल-पीड़ितोंकी सेवा

बाढ़ एवं अकालके समय गोरखपुर-क्षेत्रमें प्रायः गीताप्रेसकी ओरसे सहायता-कार्य होता था। सं० २००६ में गोरखपुर-क्षेत्रमें भयंकर अकाल पड़ा। श्रीसेठजी भी उस समय वहाँ थे, अतः भाईजीके साथ वे स्वयं भी जीपमें गाँव-गाँवमें भ्रमण करके अकाल-पीड़ितोंकी अन्न-वस्त्रसे अपने हाथों सेवा करते। श्रीसेठजीके साथ रहनेसे कार्यकर्ताओंमें बड़ा उत्साह रहता। वैसे भी सेठजी विभिन्न अवसरोंपर याचकोंकी आवश्यकतानुसार सहायता सर्वदा करते ही रहते थे।

आचार-निष्ठा एवं उदर-शूल

सं० २००६ में जब श्रीसेठजी गोरखपुरमें थे, तो एक बार उनको भयंकर उदर-शूल हो गया। श्रीसेठजीकी आचार-निष्ठा बड़ी कठोर थी। उन्होंने जीवनभर आयुर्वेदिक औषधियोंको छोड़कर अन्य किसी चिकित्सा-पद्धतिकी दवाइयोंका सेवन नहीं किया। आयुर्वेदिक औषधियोंमें भी वे केवल उन्हीं औषधियोंको उपयोगमें लेते थे, जिनमें कोई अशुद्ध वस्तु सम्मिलित न होती। आसव-अरिष्ट--वर्गको वे अशुद्ध मानते थे। स्थानीय वैद्यराजोंके निर्देशनमें कई तरहके उपचार हुए, पर शूलमें कमी नहीं आई,

वह बराबर बढ़ता ही गया। शारीरिक स्थिति गम्भीर हो गयी। सभी स्वजन चिन्तित होने लगे। यद्यपि श्रीसेठजी एलोपैथिक दवा कभी लेते नहीं थे, पर कुछ स्वजन रोग–निदानके लिये स्थानीय सिविल सर्जन कैप्टन राजेन्द्रप्रसादजीको बुला लाये। कैप्टन राजेन्द्रप्रसादजी बड़े निपुण डॉक्टर माने जाते थे। उन्होंने काफी देरतक देखा और शूलकी बढ़ती हुई भीषणतासे वे चिन्तित हो गये। उन्होंने स्वजनोंसे कहा—इन्हें एलोपैथिक दवा, इन्जेक्शन देना चाहिये, अन्यथा जीवन खतरेमें पड़ सकता है। स्वजनोंने श्रीसेठजीकी आचार–निष्ठा बताते हुए एलोपैथिक दवा करनेमें सर्वथा लाचारी व्यक्त की। सिविल सर्ज़न महोदय स्थितिकी गम्भीरतासे पूर्ण परिचित थे। वे नहीं चाहते थे कि आचार–निष्ठाके नामपर इतने बड़े सन्तका जीवन खतरेमें रहे। श्रीसेठजीके पास जाकर गम्भीर स्वरमें बोले—महाराज ! आप बड़े ही बुद्धिमान् हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपको कोई भी अशुद्ध वस्तु हम नहीं देंगे। आप हमारी दवा लीजिये। पीड़ा बड़ी तीव्र है और बढ़ रही है। उचित दवा न लेनेसे कुछ भी हो सकता है। श्रीसेठजीने उनकी हितभरी सलाह सुनी और वे सहजभावसे बोले—डॉक्टर साहब ! एलोपैथिक दवा न लेनेसे मृत्युसे बढ़कर और तो कुछ नहीं होगा ? वहाँतक हम निश्चय करके बैठे हैं। इससे अधिक कुछ और हो तो आप कहिये। डॉक्टर साहब उनकी इस दृढ़ताको देखकर चकित रह गये। भाईजीने चुपचाप उनके स्वास्थ्य लाभके लिये विश्वासी व्यक्तियोंसे अनुष्ठान करवाया, जिससे श्रीसेठजीके स्वास्थ्यमें शीघ्र लाभ हुआ।

'गोविन्द–भवन'के नये भवनका निर्माण

जबसे कलकत्तामें गोविन्द–भवनकी स्थापना हुई, तबसे उसका कार्य बाँसतल्लागलीके एक किरायेके मकानमें चलता था। आगेका हिस्सा पुस्तकों, औषधियों, काँचकी चूड़ियों तथा चर्मरहित जूतोंकी दूकानके रूपमें काममें आता था। कालान्तरमें यह स्थान सभी दृष्टियोंसे छोटा पड़ने लगा। कार्यक्षेत्र भी विस्तृत हो गया था तथा सत्संगके लिये भी हॉल पर्याप्त नहीं था। कई वर्षोंतक नये भवनके लिये विचार–विमर्श चलता रहा। फिर श्रीसेठजीकी अनुमतिसे महात्मा गाँधी रोड़पर नये भवनके निर्माण हेतु जमीन खरीदी गई। शिलान्यासका कार्य वैदिक विधिसे भाईजीके हाथोंसे माघ सं० २०१६ में सम्पन्न हुआ। कुछ समय बाद वहाँ तीन मंजिलका विशाल भवन तैयार हो गया।

धर्मपत्नीका देहान्त

श्रीसेठजीकी धर्मपत्नी भी बड़ी ही धर्मपरायणा, सरल स्वभावकी तथा पतिव्रत–धर्मका पालन करनेवाली थीं। पहले जब घरकी स्थिति साधारण थी तो सत्संगके लिये आनेवाले भाइयोंके लिये स्वयं उत्साहसे अपने हाथों रसोई बनातीं। श्रीसेठजीके सत्संग–प्रचारके कार्यमें तन–मनसे सहयोग ही दिया, कभी कोई असुविधा उत्पन्न नहीं की। श्रीसेठजीकी सेवाके बहुतसे कार्य स्वयं अपने हाथोंसे करतीं रहीं। सं० २०१७ में बाँकुड़ामें एक दिन प्रातःकाल स्नानादि करनेके बाद माला फेरते हुए करीब छः बजे अचानक रक्तचाप एकदम बढ़ गया। उसके बाद करीब एक घण्टा होश रहा, बादमें बाहरका होश नहीं रहा। दिनमें ग्यारह बजेसे दो बजेके बीच खूनकी उल्टी हुई। फिर श्वास बढ़कर शरीर शान्त हो गया। बाहर भगवान्‌के नारायण–नामका कीर्तन बराबर हो रहा था। श्रीसेठजी स्वयं वहीं उपस्थित थे। अन्त्येष्टिके सारे कार्य श्रीमोहनलालजीने सम्पन्न किये।

श्रीघनश्यामदासजी जालान

श्रीघनश्यामदासजी जालान श्रीसेठजीके विरल साथी, सखा, मित्र, सचिव, अनन्य भक्त थे। आत्मसमर्पणकी प्रतिमूर्ति ही थे, समर्पणकी ऐसी सुषमा देखनेको नहीं मिलती। इनका जन्म वि० सं० १६४८ में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीपृथ्वीराजजी एवं माताका नाम श्रीमती हरदेईबाई था। इनके पूर्वज मूलतः राजस्थानके रतनगढ़ नगरके समीपके निवासी थे। भक्तिके संस्कार इन्हें पैतृक धरोहरके रूपमें मिले। इन्होंने किसी प्रकारकी विद्यालयीय शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। इनका ज्ञानार्जन सत्संग एवं जीवनके गम्भीर अनुभवों द्वारा हुआ। इनका व्यापार गोरखपुरमें था। हिसाब–किताबकी पटुताके लिये ये व्यापारिक क्षेत्रमें अद्वितीय माने जाते थे। यह निपुणता आगे चलकर गीताप्रेसके लिये एक निधि सिद्ध हुई। इनका विवाह सं० १६६३ में श्रीमती बसन्तीदेवीके साथ हुआ। लगभग बीस वर्षकी आयुमें इनका सम्पर्क चुरूमें श्रीसेठजीसे हुआ। सम्पर्कका श्रीगणेश नाथ–सम्प्रदायके सन्तोंके संग हुआ। धीरे–धीरे यह सम्पर्क घनिष्ठतामें परिणित हो गया। इनके कारण ही गीताप्रेसकी स्थापना गोरखपुरमें हुई। ये गीताप्रेसका कार्य पूर्णनिष्ठाके साथ सँभालते थे। अमुक पुस्तकमें कितना कागज, कितना डोरा, कितना पारिश्रमिक लगता है––इसका सही हिसाब ये रखते थे।

कागजका स्टॉक, पुस्तकोंका तथा 'कल्याण' के विशेषांकोंका स्टॉक आदि बातें इनकी जबानपर रहती थीं। पुस्तकोंके कम मूल्यमें उपलब्ध करानेमें इनका योगदान अनुपम था। अपनी इसी निपुणताके कारण ये आजीवन ट्रस्टी रहनेके साथ ही गीताप्रेसके मुद्रक, प्रकाशक भी बने रहे। प्रेसके कर्मचारियोंके शुभचिन्तक होनेके साथ ही ये सेवाके कार्योंको भी रुचिपूर्वक सँभालते थे। ऐसा लगता था कि श्रीसेठजीकी कर्मशक्ति इनमें तेजस्विताके साथ स्फूर्त हुई थी। अखिल भारतीय तीर्थयात्रामें १०४ डिग्री ज्वर, खाँसी आदिके होते हुए अस्वस्थ एवं जीर्ण शरीरसे श्रीसेठजीके अनुष्ठानको निष्ठाके साथ सम्पन्न किया। गीताप्रेसके इतिहासमें ही नहीं, श्रीसेठजीकी समस्त प्रवृत्तियों एवं संकल्पोंको साकार करनेमें इनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा मिलेगा। पिछले वर्षोंमें ये प्रायः श्रीसेठजीके साथ ही अधिकांश समय बिताते थे। अस्वस्थ रहते हुए भी यथासम्भव श्रीसेठजीके कार्योंमें सहयोग देते रहे। ज्येष्ठ शुक्ल ६ सं० २०१५ को स्वर्गाश्रममें गीताभवनके गंगाघाटपर श्रीसेठजी एवं भाईजीकी पावन सन्निधिमें संकीर्तनके मध्य अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका इन्होंने त्याग किया।

साधकोंका पथ–निर्देश

श्रीसेठजी लगभग साठ वर्षोंतक आध्यात्मिक साधकों–जिज्ञासुओंका मार्गदर्शन करते रहे। सत्संग–प्रवचन तथा पत्रोंद्वारा मार्गदर्शन बहुत छोटी उम्रसे ही प्रारम्भ कर दिया था। साधकोंके हर एक पत्रोंका उत्तर दिया करते थे। श्रीसेठजी यथासम्भव हर एक जिज्ञासाका समाधान करते थे। आगे चलकर प्रतिदिन डेढ़ से दो घंटा समय पत्रोंके उत्तर लिखानेमें लग जाता था। सामूहिक रूपसे प्रवचनमें साधकोंके प्रश्नोंका उत्तर देकर समाधान करते। जो साधक एकान्तमें समाधान चाहते, उन्हें एकान्तमें समय देकर संतुष्ट करते। यह क्रम वे चाहे जहाँ रहें, निर्बाध रूपसे चलता रहता था। हजारों–हजारोंकी संख्यामें साधकोंने उनसे समाधान प्राप्त करके अपने पथपर आगे बढ़नेका प्रयत्न किया। कोई कैसा भी प्रश्न करे, श्रीसेठजीने कभी झुँझलाहट प्रकट नहीं की, बल्कि प्रसन्नतासे उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट किया।

परम प्रयाण

श्रीसेठजी भारतीय संस्कृति और साधनाकी अखण्ड परम्पराके एक सुयोग्यतम लोक संग्रही गृहस्थ थे। जीवनका एक–एक श्वास, शरीरका

एक–एक रक्त–कण भगवान् वासुदेवके गीतामृतसे सुवासित एवं आलोकित था। साधनाके व्यापक क्षेत्रमें जो कुछ भी, जितना कुछ भी 'सत्यं–शिवं–सुन्दरं' है उसे आत्मसात् कर जीवनमें चरितार्थ कर लिया। शास्त्रचिन्तन चिन्तनमात्र ही नहीं रह गया था, वह जीवनका अविभेद्य अंग बन गया था। जबतक शरीरने थोड़ा भी साथ दिया, वे सतत लगे रहे––लोगोंको गीतामृत पिलानेमें, उनका जीवन भगवद्मुखी बनानेमें। स्वास्थ्यकी बिना पर्वाह किये जब भी कोई साधक, जिज्ञासु उनके पास पहुँचा उसे अमृत पिलाने लगते।

धीरे–धीरे शरीरने साथ छोड़ दिया। सं० २०२१ से वे रुग्ण रहने लगे। औषधोपचारके पश्चात् भी सुधारके स्थानपर स्वास्थ्य गिरता ही गया। सत्संग–प्रवचनादि भी शनैः–शनैः कम हो गये। यात्रा भी बन्द–सी हो गई। एक बार बाँकुड़ासे वाराणसी गये, पर फिर लौट आये। शरीरकी ऐसी अवस्थामें छोटे भाई एवं दत्तक–पुत्र श्रीमोहनलालजीको बिना अपराधके सरकारने केवल दमन–नीतिका प्रयोग करके २३ सितम्बर सन् १९६४ को मिदनापुर–जेल भेज दिया। करीब एक महीना वहाँ रखकर सरकारने उन्हें कलकत्ताकी प्रेसीडेन्सी जेलमें तबादला कर दिया। श्रीसेठजीकी रुग्णावस्थामें सेवासे वंचित हो जानेसे वे बड़े दुःखी थे, पर श्रीसेठजीके मुखपर वही प्रसन्नता थी।

मार्च १९६५ से ऐसा अनुमान होने लगा था कि श्रीसेठजीकी भौतिक देह अब अधिक दिन नहीं चलेगी। उतः उनके इच्छानुसार इन्हें बाँकुड़ासे गंगातटपर स्थित गीताभवन, स्वर्गाश्रममें लाया गया। ऐसी रुग्णावस्थामें भी स्वर्गाश्रम जाते समय लखनऊमें दशनार्थ आये हुए लोगोंको उन्होंने सत्संग–साधनकी बातें सुनायीं। नित्य–निरन्तर भगवान्के नामका श्रद्धासहित निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक जप करना और भगवान्के स्वरूपका ध्यान करनेको कहा। ऐसे साधन बताये, जिनका नित्य श्रद्धा–विश्वासपूर्वक निष्काम भावके साथ पालन करनेसे बारह महीनेमें भगवान्की प्राप्ति हो सकती है।

३१ मार्च १९६५ को श्रीसेठजी गीताभवन, स्वर्गाश्रम पहुँचे। समाचार मिलनेपर श्रीभाईजी भी ६ अप्रैलको पहुँच गये। परिवार–घरके प्रिय बन्धु तथा सत्संगी भाई–बहन भी प्रचुर संख्यामें पहुँचने लगे और अन्ततक बहुत लोग आ गये। शरीरकी स्थिति उनकी उत्तरोत्तर गिरती गई। बड़े प्रयत्नसे श्रीमोहनलालजी ७ अप्रैल १९६५ को कारागारसे मुक्त हुए तथा सीधे दिल्ली होते हुए स्वर्गाश्रम पहुँच गये। देहावसानके पाँच दिन पहले तक वे पत्र

सुनते तथा उनका उत्तर लिखवाते रहे। बोलनेकी शक्ति कम हो गयी थी और उदर, पीठ तथा सिरमें भयानक पीड़ा थी, तथापि वे धीरे–धीरे बोलते और उपदेशकी बात करते थे। आनेवाले भाई–बहिनोंको दर्शनोंकी सुविधा थी। यद्यपि उनकी दृष्टि क्षीण हो चुकी थी फिर भी उन्होंने कह रखा था कि जो भाई–बहन आयें उनके नाम उन्हें बता दिये जायँ, प्रतिदिन यहाँतक कि देहावसानके दिनतक उन्होंने संन्ध्या की, सूर्यार्घ्य दिया। नामजप तो उनका अन्तिम क्षणतक चलता रहा। सदाचारादि नियमोंका पालन भी अक्षुण्ण रूपसे अन्त समयतक उनका चालू रहा।

१६ अप्रैलकी रातको श्रीसेठजीने भाईजीसे ध्यान करानेको कहा। पहले तो वे समझे नहीं, परन्तु संकेत प्राप्त करनेपर उन्होंने श्रीसेठजीके प्रिय 'आनन्द–तत्त्व' का विशेषणोंसहित उच्चारण किया। उन्होंने उसे बार–बार सुना। बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर पुनः वैसा ही संकेत मिला तब भाईजीने पुनः 'आनन्द–तत्त्व' के शब्द कई बार सुनाये, फिर अद्वैत ब्रह्मबोधक कुछ श्रुतियाँ सुनायी और उन्हें उनके अपने नित्य सत्य ब्रह्मस्वरूपका वर्णन सुनाया। जिस समय भाईजी उन्हें सुना रहे थे, उस समय श्रीसेठजीके चेहरेपर आनन्दकी लहरें–सी उठ रही थीं। वे अत्यन्त प्रसन्न थे। सोये–सोये ही बारंबार भाईजीको हाथोंसे खींचकर, उनके गलेमें दोनों हाथ डालकर उन्हें हृदयसे लगाना चाहते थे। सब सुननेके बाद वे आनन्द–गद्गद् वाणोसे धीमे स्वरनें बोले—'ठीक है, ठीक है। सब ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही है। और कुछ भी नहीं है। आनन्द, आनन्द!'

१७ अप्रैलको दिनमें उन्हें कमरेसे बाहर बरामदेमें लिटा दिया गया, जिससे सब लोग निर्बाध बैठे दर्शन करते रहे। बड़ी संख्यामें सत्संगी भाई–बहन चारों और बैठे संकीर्तन कर रहे थे। पवित्र गंगातटपर गीता–भवनमें वैशाख कृष्ण २ सं० २०२२, दिनांक १७ अप्रैल १९६५ शनिवारके दिनमें ४ बजे श्रीसेठजी भौतिक देहका त्यागकर ब्रह्मलीन हो गये। उनके पार्थिव कलेवरका उनके प्रिय वट–वृक्षके सामने गंगातटपर अग्नि–संस्कार कर दिया गया। उनके सिद्धान्तानुसार उस स्थानपर कोई भी चिह्न नहीं रहने दिया गया।

* * * *

स्वामी श्रीशिवानन्दजीके शब्दोंमें—'श्रीसेठजीने हिन्दू–धर्मके पुनरुद्धारके निमित्त जितना भी कुछ किया है, उसकी तुलना महर्षि वेदव्याससे की जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं।'
(योग–वेदान्त, मई सन् १९६५)

श्रीभाईजीके उद्गार

गीताप्रेसके मूल संस्थापक, संचालक प्राणदाता श्रीजयदयालजी गोयन्दका मुक्त महापुरुष थे, संत थे; अतएव भौतिक देहके अवसानसे उनकी कोई हानि नहीं हुई। वे तो अपने स्वरूपमें ही स्थित थे और अब भी हैं ही, पर उनके प्रत्यक्ष उपदेशसे उनके आचरणसे, उनके व्यवहार–बर्तावसे असंख्य लोगोंको जो परम लाभ अनवरत चिर–कालसे प्राप्त हो रहा था, वह अब नहीं होगा। उनके लिये शोक या दुःख प्रकट करनेकी जरा भी बात न होनेपर भी हमलोग जो उनके प्रत्यक्ष उपदेशोंसे वंचित हो गये, यह हमारे लिये बहुत बड़ी हानि है और इसका भयानक दुःख भी है ही।

उन्होंने भयानकसे भयानक पीड़ामें भी कभी एलोपैथिक दवा तो ली ही नहीं, आयुर्वेदिक औषधियोंमें भी उनका सेवन नहीं किया, जिनमें कुछ भी अपवित्र वस्तुका संयोग रहा हो। खान–पानमें उनका नियम ज्यों–का–त्यों ही बना रहा। वे आदर्श सदाचारी थे। अपनी अस्सी वर्षकी दीर्घ आयुमें उन्होंने आजन्म भारतीय संस्कृति, ऋषिप्रणीत सनातन धर्म, अध्यात्मतत्त्व, ईश्वरभक्ति, गीतोक्त निष्काम कर्मयोग, ज्ञान, दीन–सेवा, गो–सेवा एवं प्राणिहित आदिके सेवन तथा प्रचार–प्रसारके द्वारा भगवान्‌की जो अवर्णनीय सेवा की, वह सर्वथा आदर्श और चिरस्मरणीय है। साधनामें भक्तिकी प्रधानता, सिद्धान्तमें निष्काम कर्मयोग और स्वरूपतत्त्वमें अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा आपके जीवनमें प्रतिष्ठित थी। उन्होंने इनका केवल प्रचार ही नहीं किया––स्वयं साधन किया और अनुभव किया। वे जीवन्मुक्त महापुरुष थे।

अब तो हम सभीको उनके जीवनमें आचरित व्यवहारोंके द्वारा और वे जो धार्मिक और आध्यात्मिक अमूल्य साहित्य दे गये हैं, उसको अपने जीवनमें उतारने और उसके प्रचार–प्रसारके द्वारा ही लाभ उठाना चाहिये। यही उनकी परम सेवा होगी, उनका वास्तविक स्मारक होगा और उनके अनन्त उपकारोंके बदलेमें कुछ निवेदन करने योग्य सम्पत्ति होगी।

पुस्तकके संक्षिप्त संस्करणपर विद्वानोंके विचार एवं संतोके आशीर्वाद

(१)

श्रद्धेय भाईजी हनुमानप्रसाद पोद्दारके संक्षिप्त जीवन परिचयकी पुस्तक प्राप्त हुई। भाईजीका यह जीवन चरित्र किसी भी कल्याण पथके पथिकके लिये संबल स्वरूप है। साधना–पथपर कितनी निष्ठाके साथ भाईजी आगे बढ़े, किस प्रकार उन्होंने अपने जीवनको भगवन्मय बना लिया, इसका कुछ अनुमान इस जीवन–परिचयके द्वारा किया जा सकता है। 'कल्याण'के माध्यमसे भाईजीने सारे भारतवर्षको अपना ऋणी बना लिया है। धार्मिक ग्रन्थोंका जितना प्रामाणिक संस्करण स्वल्प मूल्योंमें उन्होंने प्रकाशित किया उसकी तुलना नहीं हो सकती। इस मंगलमय कार्यके लिये मैं श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारीको पुनः पुनः साधुवाद देता हूँ।

——डॉ० विष्णुकान्त शास्त्री

राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश

(२)

राधा–कृष्ण–विलास–रास–कालितां स्वानन्द–वृन्दावनीम्।
बन्दे श्रीहनुप्रसाद–हृदयो भीलन्महा माधुरीम्।।

नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके जीवन–वृत्त–सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ पढ़े; किन्तु सार तत्त्वके उद्‌घाटनकी दृष्टिसे और असन्दिग्ध प्रामाणिकताके कारण 'भाईजी परिचय' ग्रन्थसे जो आनन्द प्राप्त हुआ वैसा अन्यत्र नहीं हो सका।

——डॉ० विश्वम्भर शरण पाठक

कुलपति (अवकाश प्राप्त) गोरखपुर विश्वविद्यालय

(३)

पू० भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक महान् दिव्य आध्यात्मिक विभूति थे। उनके सान्निध्यका सौभाग्य जिन व्यक्तियोंको प्राप्त हुआ उनमें श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी भी है। उन्होंने भाईजीको अत्यन्त निकटसे देखा तथा उनके दिव्य जीवनसे प्रेरणा ली। अपने पिताजी द्वारा संग्रहीत भाईजीके जीवन तथ्योंपर आधारित उनकी पुस्तक "भाईजी–परिचय" भाईजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्वको अत्यन्त प्रभावी ढंगसे प्रस्तुत करती है। इस पुस्तकको पढ़कर भाईजीके जीवनके प्रत्येक पहलूकी विशद् जानकारी सहज ही प्राप्त

हो जाती है। कुछ प्रसंग तो ऐसे प्रभावोत्पादक हैं कि खिन्न एवं चिन्तित मनको भी तत्क्षण उल्लाससे भर देते हैं। ऐसा प्रामाणिक जीवन वृत्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। श्रीदेशपाण्डेजीको स्वप्नमें भाईजी लिखित 'साधन–पथ' पुस्तक किसी महात्मासे प्राप्त होना और जागनेपर वह पुस्तक अपने बिछावनपर मिलना तथा उद्दामनाम संकीर्तनमें सम्मिलित होनेपर एक लड़केकी रीढ़की हड्डीमें बोन टी०बी०का तत्काल ठीक हो जाना आदि कई ऐसे प्रसंग है जो आस्थाहीन व्यक्तिमें भी आस्था उत्पन्न कर देनेमें सक्षम हैं। इसी तरह पू० राधाबाबाके भाईजीके सम्बन्धमें उद्‌गार विलक्षण प्रभावोत्पादक हैं। मेरा विश्वास है प्रत्येक आध्यात्मिक रुचि रखनेवालेको ही नहीं बल्कि जनसाधारणके लिये भी यह पुस्तक अत्यन्त प्रेरक और मार्गदर्शक है। आशा है भाई–बहिन अवश्य इससे लाभ उठायेंगे।

—**शिवकुमार गोयल**, वरिष्ठ पत्रकार
सम्पादक—"अग्रोहाधाम", "गोधन"
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार राष्ट्रसेवा सम्मानसे अलंकृत

(४)

'भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार संक्षिप्त जीवन परिचय' ग्रन्थका आद्योपान्त अवलोकन करनेके उपरान्त मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि रस–सिद्ध–संत श्रीभाईजीके जीवन–वृत्त, साधना, सिद्धि एवं जीवन दर्शनके सम्बन्धमें यह एक अद्वितीय रचना है। इसके विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि—**"न भूतो न भविष्यति"**।

भारतके अप्रतिम मनीषी श्रीभाईजीके जीवन दर्शनपर प्रकाश डालनेवाली इस रचनाके लिये, कृतिकारके प्रति सारा देश सदैव ऋणी रहेगा।

इस रचनाके कृतिकारने श्रीभाईजीके जीवनके समस्त पक्षों उनकी साधना, उनके जीवन क्रम, जीवन दर्शन एवं सिद्धियोंपर जिस अप्रतिम कौशल एवं अगाध वैचक्षण्यके साथ प्रकाश डाला है वह स्तुत्य है। मनीषियों एवं साधकोंके लिये यह एक अप्रतिम संग्रहणीय ग्रंथ है। श्रीभाईजीकी पावन–स्मृतिके पावन क्षणोंमें कृतिकारने जिस पावन आनन्दानुभूतियोंके रत्नाकरमें डुबकी लगाकर जिन भाव–रत्नोंको प्राप्त किया है उसका लक्ष्य भी यही रहा है कि अन्य लोग भी उन्हें प्राप्त करके जीवन कृतार्थ करें।

कृतिकारकी सशक्त लेखनीने इस कृतिके प्रणयनमें जिस स्वगत आत्मानुभूतिकी शक्तिका परिचय दिया है वह शास्त्र वैचक्षण्यकी संकुचित

रेखासे परे होनेके कारण केवल वैदुष्य मात्रकी रचना नहीं है प्रत्युत अन्तस्साधनकी गहराइयोंमें लगाई जानेवाली डुबकियोंमें सम्प्राप्त अध्यात्ममशियोंका दिव्य प्रकाश भी है। इसी दिव्यालोककी मशाल लेकर कृतिकारने श्रीभाईजीके सम्पूर्ण जीवन वृत्त एवं उनके जीवन दर्शनपर प्रकाश डालनेका जो अथक प्रयास किया है उसीके कारण श्रीभाईजीके रहस्यात्मक अन्तर्पथकी यात्राके रहस्योंका अनावरण हो पाया है अन्यथा सम्भव नहीं था।

कृतिकारकी यशस्वी लेखनीसे प्रसूत इस अनुपम कृतिके लिये पावन श्रीचरणोंमें मस्तक अनायास नमन करता है।

—**डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी, 'आनन्द'**
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, दर्शन)
पी० एच० डी०, डी० लिट् साहित्य महामहोपाध्याय

(५)

श्रीश्यामसुन्दर दुजारी द्वारा लिखित भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवनीको मैं आद्योपान्त पढ़ गया। थोड़ेसे पृष्ठोंमें उन्होंने 'गागरमें सागर' भरनेकी कुशलता दिखाई है। मेरा परम सौभाग्य था कि मैं भी भाईजीके निकट सम्पर्कमें आया। वे गीताप्रेसके पर्याय थे।

श्रीदुजारीजीने इस पुस्तकमें उनके यशस्वी व्यक्तित्व एवं दिव्य कृतित्वके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पहलूपर बड़े सुन्दर एवं प्रभावशाली ढंगसे प्रकाश डाला है। साथ ही लेखन इतना रोचक है कि प्रारम्भ करनेपर बीचमें छोड़नेको मन नहीं करता। मैं भी दुजारीजीको इस पुस्तककी रचनाके लिये बधाई देता हूँ और पाठकोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़े। इससे उन्हें अवश्य दिव्य प्रेरणा मिलेगी।

—**यशपाल जैन,** साहित्यकार,
मंत्री सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

(६)

श्रीदुजारीजीने भाईजीका जीवनवृत्त घटनाओंके आधारपर संकलन किया है। यह जीवन–परिचय रोचक होनेके साथ प्रेरक और प्रामाणिक है। इस जीवन वृत्तको पढ़कर पाठकके मनमें आस्तिक भावना और परोपकारकी सहज वृत्ति उत्पन्न होगी। पुस्तक बहुत सुन्दर है। मैं इस शुभ कार्यके लिये लेखकको बधाई देता हूँ।

—**डॉ० विजयेन्द्र स्नातक,** दिल्ली
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिल्ली वि० वि०

(७)

प्रातः स्मरणीय भाईजीका संक्षिप्त जीवन परिचय देनेवाली पुस्तक प्राप्त हुई। इसमें आपकी अनुकम्पा और भगवान्‌की कृपा मानता हूँ। मैंने इसमें वर्णित सामग्रीको दो बार पढ़ा है जिसने मुझे बहुत प्रेरित और प्रभावित किया। ऐसा लगता है उनका दैवी व्यक्तित्व मेरे मन और मस्तिष्कपर छा गया है। ऐसी दिव्य विभूतिकी चर्चा सुनना या पढ़ना मनको आनन्द सागरमें अवगाहन करने जैसा है। मेरी दृष्टिमें गोस्वामी तुलसीदासके बाद भाईजी दूसरे महत्त्वपूर्ण अवतारी पुरुष हुए जिन्होंने धर्म और संस्कृतिके लिये ऐसा अलौकिक कार्य किया जो किसी एक व्यक्तिके द्वारा बिलकुल असंभव लगता है। उनका श्रीराधाकृष्णसे एकात्म भाव हो गया था और श्रीराधाबाबाने अपनी अनुभूतियों और दर्शनसे इस सत्यकी पुष्टि भी की है। साहित्य समाज और आध्यात्मके क्षेत्रमें उनका अद्वितीय योगदान है। वे भूत, वर्तमान और भविष्यके प्रेरणा स्रोत हैं, एक प्रकाश स्तम्भ हैं।

यह पुस्तक उनके महान जीवनकी एक अच्छी झाँकी प्रस्तुत करती है। मुझे यह पुस्तक सर्वथा उपयोगी लगी। मैं चाहता हूँ कि इसे अधिक आस्तिक जनता पढ़े।

—लल्लन प्रसाद व्यास

सम्पादक—'विश्व हिन्दी दर्शन'

संयोजक—अन्तराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन

(८)

"भाईजी–परिचय" जैसी लोक–कल्याणकारी, जीवनोपयोगी और अत्यन्त प्रेरणादायक पुस्तकका संकलन–संयोजन करके आपने निश्चय ही अभिनंदनीय जनसेवाका कार्य किया है। पुस्तक पढ़ते हुए प्रतिक्षण, प्रतिपल ऐसा आत्मिक सुख मिला, ऐसी प्रेरक अनुभूति होती रही कि मन इस भौतिक धरातलसे दूर किसी अनिर्वचनीय आनन्द लोकमें विचरण–रमण कर रहा है और एक नई उन्नायक शक्तिका संचरण हो रहा है। मनोभावोंकी इस स्थितिमें ऐसा अभिभूत हो गया कि अनेक स्थलोंपर भावातिरेकसे आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती रही। मन निर्मल, शान्त और निर्द्वन्द हो गया। आपके पू० पिताजी श्रद्धेय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीने भक्त समाजका बड़ा उपकार किया है जो भाईजीकी साधनाके साक्षी होकर साधनाके सोपानोंका क्रमिक अनुभूतिपरक विवरण लिपिबद्ध करते रहे। वे प्रणम्य हैं, धन्य हैं।

भाईजीके साधनागुरु संतप्रवर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका जीवनवृत्त भी मनको उदात्त बना देता है। बहुत ही चमत्कारिक है उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियोंका विवरण। गीताप्रेससे सम्बद्ध और भी साधकोंका, साहित्यकारोंका आपने उल्लेख किया है। उनकी चर्चा, भाईजीके जीवनके विभिन्न पक्ष, उनकी काव्य प्रतिभा, अपरिग्रह और त्याग आदि न मालूम कितनी ऐसी बातें हैं जो हमारे लिये प्रेरणाके स्रोत हैं।

किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ, और करूँ आभार प्रदर्शन।
बन्धु आपने करा दिया जो भाईजी का पावन दर्शन।।
भाईजीने दिया विश्वको आध्यात्मिक रसका उपहार।
हिन्दू धर्म और संस्कृतिका जिससे जगमें हुआ प्रसार।।

——डॉ० वीरेन्द्र शर्मा,
पी०एच०डी०, साहित्यशास्त्री
तुर्कमिनिस्तानके पूर्व राजदूत, दिल्ली

(९)

ऐसी पुस्तककी नितान्त आवश्यकता थी। महात्माओंके चरित्र स्वयं बड़े उद्‌बोधक होते हैं। उनमें अनेक ऐसे उपयोगी तत्त्व निहित होते हैं जिनसे नई पीढ़ीको अत्यधिक लाभ हो सकता है। भाईजीका चरित्र स्वयं अपने आपमें एक दीपककी तरह प्रेरक और प्रकाशमान था। स्वयं कभी अपना विज्ञापन नहीं किया। अनेक मित्र इस पुस्तकसे लाभ उठा रहे हैं।

——डॉ० रामचरण महेन्द्र
रिटायर्ड प्रिंसीपल, गवर्नमेंट कालेज, कोटा

(१०)

मेरा विश्वास है कि परमार्थपथमें भाईजीकी अभूतपूर्व देन गीताप्रेसके साहित्यसे जीवोंको जैसी प्रेरणा मिलती रहेगी, वैसी ही उनके इस पुनीत चरित्रसे भी मिलती रहेगी। उनका यह चरित्र संसारके भूले–भटके जीवोंके लिये ऐसा आलोक–स्तम्भ है, जो निरन्तर मार्ग–दर्शन कराता रहेगा।

—अवध बिहारी लाल कपूर,
वृन्दावन

(११)

उनके जीवनकी कई महत्त्वपूर्ण बातें आपने इस पुस्तकमें संशोधित रूपसे संग्रहीत कर दी हैं। यह बड़े ही उपकारका काम किया है। मैं इसका एक–एक अक्षर बड़े चावसे एकान्तमें पढ़कर मनन कर रहा हूँ।

श्रीकृष्ण गोपाल माथुर
साहित्यकार, पत्रकार, उज्जैन

(१२)

श्रीपोद्दारजीका जीवन समाज, धर्म और साहित्यके लिये समर्पित व्यक्तिका आदर्श जीवन था। प्रस्तुत पुस्तकमें संक्षिप्त रूपसे उनकी राष्ट्र, समाज, धर्म, साहित्यकी सेवाओंपर सरल हिन्दी भाषामें प्रकाश डाला गया है, जिससे पाठकोंको दिव्य प्रेरणा मिलती रहेगी।

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
डी०लिट्; साहित्यवाचस्पति,
यू०जी०सी० प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), सहारनपुर

(१३)

बैकुण्ठवासी यशः शरीरसे अजर–अमर श्रीभाईजीके विभिन्न पक्षोंको उजागर करनेवाली यह पुस्तक गागरमें सागरकी उक्तिको चरित्रार्थ करती ही है—साथ ही उस देव दुर्लभ व्यक्तित्वके आदर्श गुणोंके अनुसरणकी प्रेरणा भी देती है। इस दुर्लभ प्रकाशनके लिये हार्दिक अभिवादन एवं साधुवाद।

—डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री,
पी०एच०डी०; डी०लिट् , हैदराबाद

(१४)

पूरी पुस्तक बहुत लगनसे पढ़ी। ऐसी पुस्तक आजतक नहीं पढ़ी। आपको किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ, शब्द नहीं हैं। श्रीचिन्मयी देवीकी तो घटना ऐसी है कि न कभी पढ़ी, न आगे पढ़नेकी आशा है।

—डॉ० हंसराज, गीताभवन
स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)

(१५)

श्रद्धेय भाईजीकी जीवनी पूरी पढ़ ली। मुझे बहुत अच्छी लगी। यह पुस्तक भक्ति–मार्गवालोंके भक्तिभावको एवं सेवा करनेवालोंके सेवाभावको बढ़ानेवाली है। स्वामी श्रीसनातन देवजीने भी पुस्तक पूरी पढ़ी। उन्हें भी बहुत अच्छी लगी। आपका प्रयास सराहनीय है।

स्वामी शंकरानन्द सरस्वती
परमार्थ–निकेतन, स्वर्गाश्रम

(१६)

भाईजीके संक्षिप्त जीवन–परिचयकी पुस्तकमें भाईजीके जीवन–वृत्तके कुछ अंशोंका सुरुचिपूर्ण आंकलन हुआ है, जो यथार्थ, शिक्षाप्रद एवं हृदयावर्द्धक हैं। दुजारीजीने इस पुस्तकमें 'गागरमें सागर' भरनेका स्तुत्य प्रयास किया

है। निकट अतीतमें जो भगवद्भक्त हुए हों, जिन्हें हम लोगोंमेंसे बहुतोंने देखा है, उनका यथार्थ चरित्र यदि पुस्तकमें पढ़नेको मिल जाता है तो लोगोंका बड़ा कल्याण होता है, कारण आजके इस प्रत्यक्षवादी युगमें श्रद्धा–विश्वासकी ही तो कमी है। बिना प्रत्यक्ष प्रमाणके लोग विश्वास नहीं करते और बिना विश्वासके श्रद्धा नहीं होती। अतएव जिन महाभक्तोंका प्रत्यक्ष द्रष्टा इस समय कोई नहीं है, उनकी जीवनीपर लोगोंका विश्वास नहीं जमता, पर जिन महाभक्तोंके प्रत्यक्ष द्रष्टा लोग जीवित हैं, उनकी जीवनीपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं होता। अविश्वासी लोग प्रत्यक्ष द्रष्टा सज्जनोंसे महाभक्तोंकी जीवनी सत्यापित करा सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तकके चरित्र नायक महाभावगत भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके दर्शक एवं भक्त लोग हजारोंकी संख्यामें अभी जीवित हैं। वे ही इसके प्रमाण हैं। लोक कल्याणकी भावनासे ऐसी पुस्तकोंका प्रचार–प्रसार बहुत उपादेय है। श्रीदुजारीजी धन्यवाद एवं साधुवादके पात्र हैं।

—**श्रीतारिणीश झा**

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

(१७)

भाईजीकी संक्षिप्त जीवनीका प्रकाशन बड़ा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें उस साहित्य, धर्म एवं भक्तिके महामनीषीके जीवन एवं कृतित्वको समग्रतासे स्वल्प मूल्यमें सुलभ करा दिया गया है। जैसे श्रद्धेय पोद्दारजीने हिन्दू धर्मके कीर्तिमान ग्रन्थोंको जन–सुलभ कराया, वैसे ही आपने उस यशः व्यक्तित्वको इस पुस्तकमें साकार किया है। आपकी यह पुस्तक बड़े कामकी है। आशा है लोग इससे लाभ उठायेंगे।

—**डॉ० तपेश्वरनाथ,** पी०एच०डी०, डी०लिट्०

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय

(१८)

श्रीभाईजीके संक्षिप्त जीवन–परिचयकी पुस्तक प्राप्त हुई, हार्दिक धन्यवाद। मैंने इसको आद्योपान्त पढ़ी। मैं यह निश्चित कह सकता हूँ कि जो भी व्यक्ति इसको आद्योपान्त पढ़ेगा वह चाहे नास्तिक ही हो निःसंदेह एक बारगी स्वयंको परमभागवत श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें प्रणति निवेदन किये बिना नहीं रह सकेगा। पुस्तकमें प्रस्तुत श्रीभाईजीके भगवद्दर्शन एवं भगवत्सान्निध्य विषयक प्रसंग जीवनके सत्य तथ्यों, अनुभवों, आदर्शोंको इस तरह उद्वेलित करते हैं और निराशाके क्षणोंमें आशाकी ज्योति जगाकर

माधुर्य प्रदान करते हैं। कुल मिलाकर पुस्तक सभी दृष्टिसे उपादेय एवं संग्रहणीय है। ऐसे सत्साहित्यको स्वल्प मूल्यमें उपलब्ध करानेके लिये श्रीदुजारीजी निश्चय ही बधाईके पात्र हैं।

—आचार्य डॉ० उमाकान्त 'कपिध्वज'
एम० ए०, पी० एच० डी० काव्यरत्न

(१६)

गीतावाटिकाके अनन्य अन्तर्वासी श्रद्धेय श्रीश्यामसुन्दर दुजारी द्वारा प्रणीत 'भाईजी परिचय' पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यूँ तो नित्यलीलालीन भक्तप्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'भाईजी' एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसको जानना प्रत्येक हिन्दू अनिवार्य मानता है उनके कृतित्वको जानकर ही कोई भी भारतीय अपनेको सच्चा भारतीय कह सकता है। फिर भी श्रीमान् दुजारीजीने जिस निष्ठाके साथ श्रीभाईजीकी स्मृतिको धर्मप्रेमियोंके मानस पटलपर प्रतिष्ठित किया है उससे ऐसा लगता है कि श्रीदुजारीजीने अत्यन्त पुण्यका कार्य किया है। कारण स्पष्ट है। जिनके हृदयमें दुर्लभ गुणियोंकी प्रतिष्ठा होती है वे ही कलिकल्मषोंसे दूर रहकर भगवत्प्राप्ति अथवा आत्मज्ञान कर सकते हैं। श्रीभाईजी जैसे ऋषिकल्प महात्माओंका चारुचरित्र प्रत्येक कालमें देशमें और विचारके व्यक्तिको सदैव सत्प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। हमारा सभीका कर्तव्य है कि भावी पीढ़ीको प्रेरणा प्रदान करनेवाला और भारतीय जीवन मूल्योंको सुरक्षित रखनेवाला सत्साहित्य प्रकाशित करें।

श्रीवर्य भाईजीके उन दिशानिर्देशों और अनुभवोंका प्रचार–प्रसार करें जिनके कारण वे 'महामना' थे।

श्रीदुजारीजीने अपनी लेखनीको धन्य करते हेतु एक 'महामना' का परिचय प्राप्त करनेमें असाधारण सफलता प्राप्त की है। भगवान् श्रीमन्नारायणसे प्रार्थना है कि श्रीभाईजीका संकल्प, समाजका प्रकल्प बनकर सामाजिक समरसताका मुख्य हेतु बने और श्रीदुजारीजी जैसे निस्पृह महात्माओंकी लेखनी समाजमें धार्मिक वातावरण बनानेका कलात्मक कार्य सम्पन्न करें।

डॉ० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
सम्पादक—श्रीतुलसीपीठ सौरभ
गाजियाबाद

संग्रहकर्ताको प्राप्त संतोंके आशीर्वाद

The glory and usefulness of Gita Press and Kalyan magazine is well known to the whole world. Gita Press has done a great spiritual awakening in India through its valuable publication of spritual books. The soul or the moving sprit of such a unique istitution is Sri Hanuman Prasad Poddarji, a Bhakta, Gyani and a dynamic Karam yogi . Hanuman Prasadji is a silently unstatutory , humble soul who is endowed with many divine qualities . He has done much in the ——— of Bhakti , Karma yoga , Kirtan and name of god . He is good writer and fluent speaker in Hindi. His language is humid and understandable and style charming and arresting

The life of such a glorious personality must be brought out as soon as possible . Many aspirants will be immensely .... glory to Sri Hanuman Prasadji . May he live long peacefully . May Lord bless him .

May the genuine effort of Sri Ghambhir Chandji Dujari in publishing it be issued with success.

SHIVA NAND

(FOUNDER DIVINE LIFE SOCIETY)

(२)

तुम हनुमानप्रसादका जीवन चरित्र लिख रहे हो। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। हमारे हरी बाबाजी तो उनकी बहुत प्रशंसा किया करते हैं। मेरा हजार बार आशीर्वाद है, तुम इस कार्यमें सफलता प्राप्त करो।

—पूर्णानन्द तीर्थ (उड़िया बाबा)

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन

भाद्र कृष्ण ५ वि० सं० २००३

(३)

संतोंका जन्म दूसरोंके कल्याणके लिये होता है। मेरी समझसे हनुमान प्रसादजी पोद्दार एक सच्चे संत ही हैं, जिनसे सारा धार्मिक जगत् तो परिचित है ही, जिन्होंने 'कल्याण' रूपी पत्रको निकालकर जनताका सच्चा कल्याण किया है। उनकी जीवनीके लिये जो प्रयास किया जा रहा है। वह सज्जन सराहनीय हैं। ऐसे संतोंकी जीवनीसे सच्चा सुधार हो सकता है। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि इस कार्यमें भगवान् उनकी सहायता करें।

——**शुकदेवानंद** परमार्थ निकेतन

स्वर्गाश्रम, जे० शु० ७ सं० २००३

(४)

वर्तमानकालमें अनेक महापुरुष इस भूमिपर ज्ञात और अज्ञात हैं। उसमें अगर यह कहा जाय कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस आध्यात्मिक जगत्में एक ही हैं——तो मेरी इस तुच्छ बुद्धिसे अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसे महापुरुषकी जीवनी लिखनेका जो प्रयत्न आपने किया है——यह एक बहुत ही विशेष बात है। मेरी भगवान्से प्रार्थना है कि पोद्दारजीकी जीवनी आद्योपान्त आनंदपूर्वक लिखी जाय और छपकर संसारके सामने आये ताकि आध्यात्मिक जिज्ञासुओंको सरलतासे कल्याणका पथ मिल जावे।

——**भजनानंद**, परमार्थ निकेतन

ज्येष्ठ शु० सं० २००३

(५)

श्रद्धेय भाईजीसे मेरा प्रायः सत्रह वर्षसे सम्बन्ध रहा है। वे दैवी सम्पदा और सौजन्यके मूर्तिमान विग्रह हैं। उनका व्यवहार सर्वसाधारणके लिये सच्चा पथ प्रदर्शक है। आप उनके जीवनकी सामग्री संकलित कर रहे हैं। यह बड़े आनन्दकी बात है। भगवान् आपके इस सदुद्देश्यमें सहायक हों। आपके इस कार्यसे जगत्का बड़ा उपकार हो सकता है। श्रीभाईजी सच्चे महापुरुष हैं और महापुरुषोंका जीवन ही कल्याणकारी साधकोंका सच्चा पथप्रदर्शक होता है।

——**सनातन देव**

(गीताप्रेसके आर्षग्रन्थोंके अनुवादक)

संग्रहकर्त्ताका परिचय

श्रद्धेय भाईजीके अनन्य भक्त पूज्य श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका जन्म राजस्थानके बीकानेर शहरमें भाद्रपद शुक्ल ८, शुक्रवार वि० सं० १९५८ (सन् १९०१) को एक धर्म परायण माहेश्वरी कुलमें हुआ था। पारिवारिक संस्कारोंके कारणवश बचपनसे ही इन्हें सत्संगकी लगन थी। चार वर्ष एवं सात वर्षकी उम्रमें क्रमशः मातृ तथा पितृ वियोगके फलस्वरूप इनका बाल्यकाल कष्टमय बीता। इसी कारण विधिवत् शिक्षा भी न पा सके। अल्पायुमें ही इन्होंने गीता पाठ शुरू कर दिया था, तथा श्रीइच्छालाल जोशी, नाथ सम्प्रदायके स्वामी श्रीउत्तमनाथजी और श्रीलाली माईजीके सत्संगमें जाने लगे। सभीकी इनपर कृपा रही। घरेलू कारणोंसे बारह वर्षकी अल्पायुमें ही इन्हें व्यापार शुरू करना पड़ा। श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे इनकी भेंट सं० १९७६ में ऋषिकेशमें हुई। उनके व्यक्तित्वसे ये बहुत प्रभावित हुए। अतः अगले वर्ष जब श्रीसेठजी बीकानेर पधारे, तब उन्होंने उनके सत्संगका पूरा लाभ उठाया। सेठजीसे इनकी घनिष्ठताका उत्तरोत्तर विकास हुआ। सं० १९८० में बीकानेर प्रवास कालमें इनका भाईजीसे सम्पर्क हुआ। ये भाईजीके प्रति इतने आकर्षित हुए कि कुछ समय बाद व्यापार छोड़कर सदाके लिये अपने आपको भाईजीके चरणोंमें समर्पित कर दिया। इसके बाद भाईजी जब बीकानेर आते तो प्रायः उन्हींके घर रुकते थे। 'कल्याण' का प्रकाशन बम्बइसे आरम्भ होनेके बाद ये भाईजीके मुख्य सहयोगी बन गये। इन्होंने 'कल्याण'के प्रचारमें बड़ा परिश्रम किया। द्वार–द्वार घूम–घूमकर 'कल्याण' के सैकड़ों ग्राहक बनाये। 'कल्याण' के प्रारम्भिक अंकोंमें इनके बीकानेर स्थित मकानका पता भी दिया जाता था, जहाँपर 'कल्याण' के ग्राहक बनाये जाते थे। गीताप्रेसके उत्थानमें इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंको घर–घर घूमकर बेचते थे।

सं० १९८४ में आश्विन कृष्ण पक्षमें भाईजीको जसीडीहमें भगवान् विष्णुके दर्शन होनेपर इनको तार देकर बीकानेरसे बुलाया। रात्रिमें भाईजीसे उन्होंने गोरखपुरमें जब जसीडीहकी घटना सुनी उसी समय उन्होंने अपना जीवन भाईजीकी सेवामें लगानेका संकल्प किया और तभीसे अपने जीवनका उद्देश्य भाईजीके जीवन सम्बन्धी तथ्योंका संग्रह करना बना लिया। सहयोगके अभावमें भी ये अपना काम बड़ी तत्परतासे करते थे। भाईजी कब, कहाँ

जाते हैं, उनसे कौन और कब मिलने आता है, सत्संगमें उन्होंने क्या कहा आदिका विवरण और भाईजीके पत्रोंकी प्रतिलिपि नियमित रूपसे संग्रह करते। वे सदैव भाईजीके साथ रहनेकी चेष्टा करते तथा उनके जीवन सम्बन्धी छोटी–से–छोटी बात एवं घटनाको लिखते रहते थे। इनका यह कार्य भाईजीको रुचिकर नहीं था, क्योंकि भाईजी अपनी विशेषता द्योतक किसी चीजको रखना नहीं चाहते थे। अतः उन्हें भर्त्सना एवं रोष सहना पड़ता। श्रद्धास्पद द्वारा किया गया तिरस्कार और रोष ये प्रसाद समझकर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते। श्रीभाईजीके प्रति इनकी अनन्य निष्ठा थी। अपनी निष्ठानुसार वे प्रायः गाया करते थे––

और कोऊ समझें सो समझे, हमकूँ इतनी समझ भली।
ठाकुर भीमकुमार हमारे, ठकुराइन सियराम–लली।।

इनकी मुख्य रुचि थी, संसारके भूले–भटके संतप्त लोगों एवं दुःखी विधवाओंको भाईजी एवं सेठजीके सम्पर्कमें लाना। लोगोंको इधर लगानेमें ये अपने अपमानकी भी परवाह नहीं करके उनके घरोंमें चाहे जब चले जाते चाहे रात्रिके बारह बजे भी अथवा प्रातः चार बजे भी। सेठजी कई बार कहा करते थे 'दुजारीजीने जितने व्यक्तियोंको सत्संगमें लगाया उतने शायद ही किसी एक व्यक्तिने लगाया।' स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको इन्होंने ही सेठजीसे मिलाया। भाईजीने अपने 'वसीयतनामा' में लिखा है––'दुजारीजी बड़े ही सत्संग प्रेमी थे। बीकानेरसे सम्मान्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी–सरीखे सदाचारी विद्वान्‌को राज्यकी उच्च सेवासे छुड़ाकर 'कल्याण' में लानेवाले दुजारीजी हैं।' 'दुजारीजीने साधु श्रीच्यवनरामजी, श्रीईश्वरदासजी डागा, श्रीबद्रीप्रसादजी आचार्य आदिको इधर प्रेरित किया था।' मेरे पत्रादिके संग्रहमें मेरी इच्छा न होनेपर भी दुजारीजी लगे रहते थे। उनका प्रधान काम एक ही था––येन–केन प्रकारेण लोगोंको सत्संगमें लगाना। अपमान–झिड़कियाँ सहते, पर अपने स्वाभाविक कार्यसे कभी विचलित नहीं होते, बड़े निष्ठावान् थे।'

एक दिन मैंने पिताजीसे पूछा कि आप अपना समय साधन–भजनमें न लगाकर दिन–रात यह लिखनेका काम क्यों करते हैं ? उन्होंने कहा––'मेरे जीवनका उद्देश्य भगवत्प्राप्तिके स्थानपर भाईजीके जीवन सम्बन्धी तथ्योंका संग्रह करना है। जो वस्तु तुम लोगोंको भजन–ध्यानसे मिलेगी वह मुझे इसी कार्यसे मिल जायगी। मैंने कहा यह भाईजीके मनके अनुकूल नहीं है

तब आप इस कार्यमें क्यों लगे हैं ? वे बोले तथ्योंको एकत्र करना और लिखना भाईजीके अनुकूल नहीं है——यह तो मैं नहीं मानता क्योंकि मेरे कार्यको जाननेपर भी मेरी रुचिके लिये उन्होंने कई बार अपनी गुप्त–से–गुप्त बातें मुझे बतलानेकी कृपा की है। हाँ, मैं जो इसे दूसरोंको पढ़ाता या सुनाता हूँ यह उनके मनके अनुकूल नहीं है। परंतु इसमें मेरा भाव यही है कि भाईजीके जीवन कालमें उनके सम्पर्कमें आकर लोग जो लाभ उठा सकते हैं वह मौका उन्हें फिर कब मिलेगा। इसलिये उनकी डाँट–फटकार सुनकर भी मैं इस कार्यसे विरत नहीं होता। इसीके लिये वे अधिक–से–अधिक भाईजीके साथ रहना आवश्यक समझते थे। यहाँतक कि मेरे दोनों छोटे भाईयोंका विवाह सन् १९६० में एक ही दिन था। मेरी उम्र २७–२८ वर्षकी थी, मुझे विवाहके कार्यका अनुभव नहीं था। मैंने पिताजीको बहुत आग्रहपूर्वक कई बार लिखा कि आप कलकत्ता आ जायें तो विवाहकी व्यवस्था ठीकसे हो जाय। परंतु विशेष आग्रहपर भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। पूज्य भाईजी इस विवाहमें सम्मिलित होने आनेवाले थे ही। पिताजी उनके साथ ही आये और उनके साथ ही लौट गये। इतना ही नहीं हम तीनोंको उनका बराबर यही कहना था कि तुम लोग क्यों अपना जीवन बर्बाद कर रहे हो। भाईजीके साथ रहनेका फिर कब मौका लगेगा।

पिताजीके जीवनकालमें हमारे दुर्भाग्यवश हमलोगोंने उन्हें इस कार्यमें सहयोग नहीं किया। आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे किसीको वेतनपर रखकर इस कार्यमें सहायता लें। अन्य लोगोंका भी किसीका उन्हें इस कार्यमें सहयोग नहीं था। इन्हीं परिस्थितियोंसे झूझते हुए वे सन् १९६२ में गोलोकवासी हो गये। परंतु उनका दृढ़ संकल्प था जो यह कार्य हो ही रहा है।

देह त्यागके कुछ समय पहले पिताजी गोरखपुरसे हम लोगोंके पास कलकत्ता गये थे। उनके पैरकी हड्डी टूट जानेसे शरीर लाचार स्थितिमें था। इसी समय उन्हें दौरा आया और वे अचेत हो गये। गोरखपुर भाईजीको फोनसे सूचना दी। पूज्य भाईजीने क्या संकल्प किया इसे तो वे ही जाने। पिताजीको दूसरे ही दिन होश हो गया और दौरेसे पहलेकी तरह अपने सब काम करने लगे। करीब दो माह बाद पुरी–नवद्वीपकी यात्राके लिये पूज्य भाईजी अपने परिकरोंके साथ कलकत्ता पधारे। पिताजीसे मिलनेके लिये हमारे घर पधारे। पिताजीसे अच्छी तरह बात–चीत हुई।

भाईजीके घरसे लौटनेके बाद पिताजीने मुझसे कहा तुम तीनों भाई सपत्नीक भाईजीके साथ पुरी चले जाओ। तुम लोगोंको ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। तुम्हारी माँ मेरे पास है ही। यद्यपि ऐसी आशंका भी नहीं थी कि दो दिनमें उनका शरीर चला जायगा। पर मेरे आग्रह करनेपर उन्होंने छोटे भाई सीताराम एवं उसकी पत्नीको पास रख लिया और हम चारों भाईजीके साथ पुरी चले गये। दूसरे दिन पिताजीने 'सन्मार्ग' पत्रमें भाईजीका प्रवचन पढ़ा और उसकी कटिंग अपने पास सुरक्षित रख ली। अगले दिन प्रातः पिताजी उसी तरह उठे परंतु थोड़ी देर बाद उन्हें दो महीने पूर्वकी तरह दौरा आया और तत्काल चले गये। मानों भाईजीने उनसे अपने मिलनेके लिये संकल्प कर रखा हो और वह पूरा हो गया।

शामको हम लोग पुरीमें भाईजीके साथ समुद्र स्नानके लिये जा रहे थे वहीं भाईजीने पिताजीके देहावसानकी बात बतायी और हमें तत्काल कलकत्ता भेज दिया। भाईजी कलकत्ता लौटनेपर पुनः घर आये। सबके सामने कुछ बातें हुई फिर उन्होंने एकान्तमें मुझे बताया कि जब पहले पिताजीको दौरा आया था और तुमने मुझे फोन किया था उसी समय मैं बाबाके पास गया तब बाबाने मुझे बताया था कि दुजारीजीको १६ श्वास पहले श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जायगी——इसमें सन्देह नहीं। भाईजीके श्रीमुखसे यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई।

उनके हृदयमें एक अन्तरतम साध थी कि श्रीभाईजीके जीवनकी महानता और दिव्यताको उद्घाटित करनेवाले सारे तथ्य भविष्यमें भाईजीके तिरोधानके पश्चात् 'कल्याण' के एक विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हों। जिससे उसके लाखों पाठक उस महापुरुषका परिचय प्राप्त कर सकें जिसने उनके जीवनमें आध्यात्मिक आलोक प्रदान करके उनके जीवनको भगवान्‌से जोड़ा है। उनका यह स्वप्न अभी तक साकार नहीं हो सका है।

"ठाकुर भीमकुमार हमारे, ठकुराइन सियरामलली"

आज मेरे बाबूजीके एक निष्ठ भक्त श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका जन्मशताब्दी दिवस है। वे जब बाबूजीके पास आये उस समय मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। मैं उन्हें चाचाजी कहा करती थी। मेरे बाबूजी (अपने "भाईजी")के प्रति उनकी विलक्षण भावना थी। वे बाबूजीको अपना आराध्य ही मानते थे।

पूज्य बाबूजीके सम्बन्धमें उन्होंने एक वृहद संकलन किया और संकलन हेतु प्रत्येक सम्भव विधाका प्रयोग करनेमें उन्हें सदैव तत्पर देखा, सुना, पाया। अपने उच्चतम आध्यात्मिक स्वरूपको सर्वथा गोपन रखना बाबूजीका सहज स्वभाव था और अपने सम्बन्धमें कोई भी प्रशस्ति पत्र वे रखते नहीं थे अपितु उसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देते थे। मैंने देखा है कि चाचाजी उन फाड़कर फेंके टुकड़ोंको चुन-चुनकर उठा लेते थे और उन्हें जोड़-जोड़कर घण्टों लगाकर उस सामग्रीको पाठन योग्य बना लेते थे। बाबूजीके सम्बन्धमें पूज्य बाबाने भी उन्हें बड़े मनोयोगसे तेरह अध्यायोंमें अनुपम स्थिति चित्रण करके दिया था। किसी कारणवश बाबाने आगे लिखना बन्द कर दिया पर पूज्य बाबा द्वारा बाबूजीके सम्बन्ध लिखित कुछ दुर्लभ प्रपत्र उन्होंने कैसे प्राप्त किये इस सम्बन्धमें पूज्य बाबाने अपने काव्यमें कहा है—

"फिर भी बिखरी पत्रावली ले, उद्दाम पवन भागा प्रियतम।"

बाबाने चाचाजीको "उद्दाम पवन" कहकर सम्बोधित किया है। बाबूजीके सम्बन्धमें सामग्री मिलनी चाहिये चाहे उसके लिये कुछ भी करना पड़े। बाबूजीसे लड़कर, जबरदस्ती करके, छीनकर, डाँट खाकर, माँगकर, खुशामद करके, छुप-छुपकर सुनकर अथवा चोरी करके किसी भी तरह हो उन्हें संकलन करना ही अभीष्ट था यद्यपि उनका संकलन अद्भुत दुर्लभ एवं स्तुत्य है।

बाबूजीसे बड़ी मीठी नोंक-झोंक होती थी उनकी। बाबूजी खीज जाते और क्रोधमें (यद्यपि उनका क्रोध एक अभिनय मात्र ही होता था) कहते :—

"दुजारीजी ! थे मानो कोनी के ? थारो राम क्यूँ निकल्यो ? बात मान्या करो—अइयाँ मत करया करो।" पर वे उत्तर देते "हूँ तो यों ई करीस—करीस—थे काँई करसो ? मारसो ? ल्यो मारो—मारल्यो।"

माँ इस सम्वादको सुनकर कहती :—

"दुजारीजी ! थे क्यूँ झिड़मारी करो ? राम राम क्यूँ कोनी करो ? उत्तरमें चाचाजी कहते—भाभीजी ! थे कोनी जानो आँन। हूँ जाणूँ हूँ तौ

यौं ई करीस।"

अपने सारे परिवारको ही नहीं, न जाने कितने और लोगोंको लगाया इन्होंने बाबूजीकी शरण सन्निधिमें।

बहुत वर्षों पहले पूज्य बाबूजीके जीवनकालमें ही चाचाजी एक बार एकान्तमें मेरे पास आये एक लोहेका बड़ा बक्सा लिये और बोले––बेटी ! ये मेरे जीवनभरकी संग्रहीत पूँजी है––अनमोल निधि है। तुम इसकी प्रेस कापी तैयार करवा दो। मैं किसी ऐसी बाध्यताके कारण, जिसे मैं बता भी नहीं सकती, चाहने पर भी उनकी मनुहार नहीं रख सकी और लगभग छः महीने मेरे पास उनका अनमोल संग्रह रखा रहा जिसे मैंने यथावत उन्हें लौटा दिया। वही संग्रह अब भैया श्याम और हरि द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानोंपर प्रकाशित किया जा रहा है।

आज उनके जन्म शताब्दीके अवसरपर मैं उनको, उनके भावोंको, चेष्टाओंको प्रणाम करती हूँ क्योंकि शब्दोंमें उसका यथावत वर्णन मैं नहीं कर सकती। बस इतना अवश्य कह सकती हूँ कि बाबूजीके प्रति उनके जैसी आस्थावाला और कोई व्यक्ति आजतक तो देखनेको नहीं मिला।

अनुकूलतामें प्रीतिनिर्वाह बड़ा सरल है परन्तु प्रतिकूलतामें प्रीतिनिर्वाह ही असली प्रीतिनिर्वाह है ऐसा पूज्य बाबा कहा करते थे। अपनी किस चेष्टाके कारण चाचाजी जीवनके अन्तिम बिन्दुपर अपने आराध्यके प्रत्यक्ष सानिध्यसे वंचित हो गये यह अज्ञात है।

चाचाजीके मृत्युके एक दिन पूर्व ही बाबूजी कलकत्तासे दो दिनके लिये पुरी चले गये और दाह-संस्कारके दूसरे दिन वापस लौटे। ऐसा विधान क्यों, कैसे बना, नहीं जानती पर शायद उन्हें इसकी भी चिन्ता नहीं थी और वे अपने आराध्यकी आराध्यके प्रति उक्ति––

"दूर करो ठुकराओ चाहे, प्यारे घरसे निकलवाओ।
खूब सताओ पर मुझको मनसे न कभी तुम बिसराओ।।"

पर मन टिकाये थे।

मेरे बाबूजी कहा करते थे––

"और कोऊ समझे सो समझे, हमकूँ इतनी समझ भली।
ठाकुर नन्दकिशोर हमारे, ठकुराइन वृषभानुलली।।"

और एक थे वे जो कहा, गाया करते थे––

"ठाकुर भीमकुमार हमारे, ठकुराइन सिय रामलली।"

(भीमकुमार अर्थात् श्रीभीमराजजीके पुत्र मेरे बाबूजी भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी

पोद्दार और सियरामलली श्रीसीतारामजीकी पुत्री मेरी माँ श्रीमती रामदेई) धन्य है यह आस्था, मान्यता और दृढ़विश्वास——

भाद्र शुक्ला अष्टमी
राधाष्टमी
संवत २०५७

अपने बाबूजीकी लाडिली,
सावित्री
(सावित्रीदेवी फोगला)

❀❀❀❀

हमारे प्रकाशन

१. भाईजी परिचय (पू० श्रीभाईजी एवं पू० श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी) ५०)
२. भाईजी चरितामृत (पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रंसग) ५०)
३. सरस–पत्र भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ३०)
४. व्रजभावकी उपासना भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार २५)
५. परमार्थकी पगडंडियाँ भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ३०)
६. सत्संग वाटिका के बिखरे सुमन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ३०)
७. वेणुगीत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ३०)
८. समाज किस ओर जा रहा है भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
९. शान्तिकी सरिता भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
१०. प्रभुको आत्मसमर्पण भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
११. आस्तिकताकी आधार–शिलाएँ श्रीराधाबाबा ३०)
१२. श्रीभाईजी–एक अलौकिक विभूति (संकलनकर्ता श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी ७०)

पुस्तक एवं कैसेट प्राप्ति स्थान

१. गीतावाटिका प्रकाशन पो०–गीतावाटिका, गोरखपुर फोन नं० ३१२४४२
२. श्रीसुशीलकुमारजी मुँधड़ा ८, इण्डिया एक्सचेंज प्रेस (८ तल्ला) कलकत्ता–१
३. श्रीओमप्रकाशजी सेकसरिया १३६, नगीनदास मास्टर रोड, मुम्बई–२३
४. श्रीशिवकुमार दुजारी के. आई. १५५, कविनगर, गाजियाबाद–२
५. श्रीमगनलालजी गाँधी नाहट्टा मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)
६. श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मति सेवा ट्रस्ट, बी० २७/८२ दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी
७. जय हिन्दी पुस्तकालय, प्रमोद वन, अयोध्या

नोट : कैसेटकी विस्तृत सूची उपरोक्त पतोंपर प्राप्त की जा सकती है।
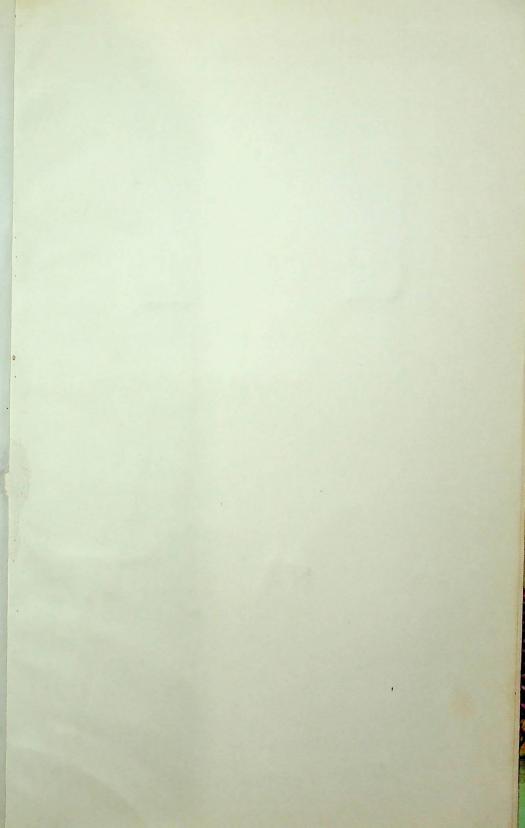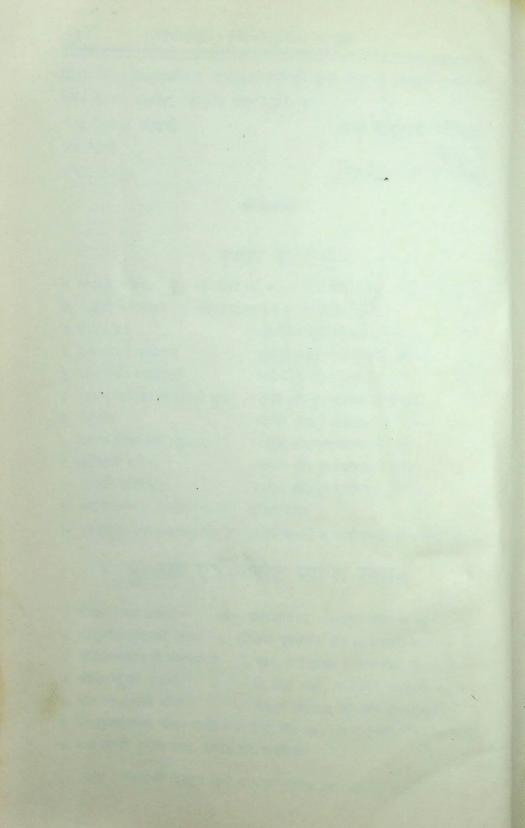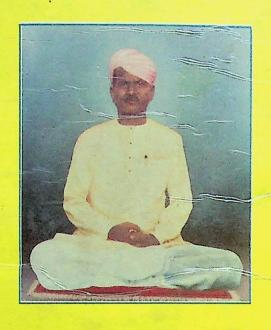
गोलोकवासी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी
(सन् १९०१-१९६२)

आपके जीवनकालमें हम लोग पूरा समझ नहीं पाये थे कि आप जिस कार्यमें अपना सम्पूर्ण जीवन लगा रहे हैं उसका क्या महत्त्व है ? अब कुछ समझमें आ रहा है कि वर्तमान युगके दो सर्वोपरि संतोंके जीवन-तथ्य विश्वके समक्ष आ ही नहीं पाते यदि आप अपना जीवन इस कार्यके लिये समर्पित नहीं करते । आप जिस रूपमें इस सामग्रीको प्रकाशित करना चाहते थे, वह तो संभव नहीं हो सका-पर जैसा मेरेसे बन पड़ा आज आपके सौवें जन्मदिनपर-

"वस्तु तुम्हारी तव चरणोंमें अर्पणकर कर रहा प्रणाम"